ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

[हिन्दी अनुवाद सहितम्]

उत्तरभागः

संपादक

तारिणीश झा

अनुवादक

स्व० बाबूराम उपाध्याय

शक १९०६ : सन् १९८४

हिन्दी साहित्य सम्मेलन · प्रयाग

ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

उत्तरभागः

श्रीकृष्णजन्मखण्डम्–पूर्वार्धम्

⊙

अनुवादक एवं सम्पादक
तारिणीश झा
व्याकरण-वेदान्ताचार्य

⊙

अनुवादक
स्व० बाबूराम उपाध्याय

⊙

BVB Sri Sa[illegible]acharya Sanskrit Mahavidyalaya
५५5

शक १९०६ : सन् १९८४
हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

Funding by IKS-MoE

Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya
445

प्रकाशक
प्रभात शास्त्री
प्रधान मंत्री : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

⊙

प्रकाशन वर्ष : शक १९०६ : सन् १९८४
प्रथम संस्करण
मूल्य : अस्सी रुपए

⊙

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

Funding by IKS-MoE

प्रकाशकीय

⊙ ⊙

भज तं परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम् ।
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ॥

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रवर्तित पुराण-प्रकाशन-योजना के अन्तर्गत सन् १९८१ ई० में 'ब्रह्मवैवर्तपुराणम्' का पूर्व भाग प्रकाशित हुआ था जिसके अन्तर्गत ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड एवं गणपतिखण्ड का मूल पाठ, पाठान्तर एवं हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया गया था। यह प्रसन्नता का विषय है कि "ब्रह्मवैवर्तपुराणम्" के पूर्वभाग की विद्वानों और अध्येताओं ने सराहना की और इसके शेष भाग के शीघ्र प्रकाशन का अनुरोध भी किया। प्रारम्भ में यह अनुमान था कि यह पुराण दो भागों में प्रकाशित हो जाएगा। किन्तु पाठकों एवं जिज्ञासुओं की मांग को दृष्टि में रखते हुए यह निश्चय किया गया है कि अब इसे तीन भागों में प्रकाशित किया जाय। तदनुसार श्रीकृष्णजन्मखण्ड के पूर्वार्ध को दूसरे भाग के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है, जिसमें कुल ५४ अध्याय हैं। शेष इस खण्ड का उत्तरार्ध, जिसमें ५३ अध्याय हैं, तीसरे भाग के रूप में प्रकाशित होगा। वह अन्तिम भाग भी वर्षान्त तक प्रकाशित हो जाएगा।

यहाँ सूचनीय है कि सम्मेलन के तत्त्वावधान में सम्प्रति 'अग्निपुराणम्' का भी मुद्रण कार्य सम्पन्न हो रहा है। यथाशीघ्र वह भी प्रकाशित हो जाएगा।

ब्रह्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण की रूप-रेखा के अनुसार ही भविष्य एवं नारदीय पुराणों को भी प्रकाशित किया जायगा। मत्स्यपुराण एवं वायुपुराण के मात्र हिन्दी अनुवादों का जो संस्करण पहले प्रकाशित हुआ था, वह अब समाप्त हो गया है। इन दोनों पुराणों को भी मूल पाठ एवं पाठान्तर सहित प्रकाशित करने की योजना है।

विश्वास है, विद्वानों एवं सहृदय पाठकों के उदार सहयोग एवं प्रोत्साहन से राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन द्वारा प्रवर्तित पुराण-प्रकाशन-योजना को पूर्ण करने में सम्मेलन समर्थ होगा।

व्यासपूर्णिमा
संवत् २०४१ वि०

—प्रभातशास्त्री
प्रधानमन्त्री

प्रस्तावना

⊙⊙

पुण्यवर्ष भारत में सुदूर प्राचीन काल से ही वेदों और पुराणों की समान मान्यता जनमानस में सुप्रतिष्ठित है। मिथिला के प्राक्कालिक सर्वश्रेष्ठ विद्वान् महर्षि याज्ञवल्क्य की स्मृति तथा उसकी मिताक्षरा टीका की सर्वाधिक मान्यता प्राचीन काल से अभी तक सभी न्यायालयों में प्रचलित है। प्रमाण के लिये वह सर्वप्रथम पुराणों का ही उल्लेख करती है। पुराणादि की सहायता से ही वेद-विद्या और धर्म का स्थान निश्चित होता है—

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥ ––याज्ञ० १, २

वेद के परम प्रामाण्य होने पर भी उसके सभी अंश प्राप्त नहीं हैं। भगवान् पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य ग्रन्थ के प्रथम आह्निक में लिखा है कि 'सहस्रवर्त्मा सामवेदः'––अर्थात् सामवेद की एक हजार शाखायें हैं। आज सामवेद की मात्र तीन शाखायें मिल रही हैं। यही दशा अन्य वेदों की भी है। मत्स्य-पुराण के १४४ वें अध्याय में भी द्वापरान्त के बाद वेदों की दुर्दशा का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इसके अनुसार प्राप्त अंशों का अर्थ भी सहज ज्ञानगम्य नहीं है। अतः वेद के अर्थों के निर्णय के लिये पुराण और इतिहास ही साधन हैं, जो वेदांश विदित नहीं हैं, वे भी पुराण के आधार पर ही दृष्ट और अनुमेय हो सकते हैं, अतः पुराण ही वेद के प्रामाण्य का सुगम साधन है। इसीलिए महाभारत में कहा गया है कि इतिहास और पुराणों के आधार पर वेद का अर्थ स्पष्ट समझना चाहिए।––

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरेदिति ॥ ––पद्मपुराण २, ५२

उपर्युक्त श्लोक से प्रतीत होता है कि वेदों के साथ ही पुराणों का अस्तित्व रहा है, 'पुरा अनतीति पुराणम्'––इस व्युत्पत्ति के अनुसार भी पुराणों का अस्तित्व बहुत प्राचीन मालूम पड़ता है, क्योंकि पुरा का अर्थ है पहले और अन का अर्थ है श्वास लेना, अर्थात् जिसका अस्तित्व बहुत पहले था। अथर्ववेद में पुराणों के उल्लेख इस प्रकार मिलते हैं—

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् । ––१५, ७, ११

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः ॥ —७, २४

Funding by IKS-MoE

स्कन्दपुराण के प्रभासखण्ड में उल्लिखित है कि पूर्वकाल में देव-पितामह ब्रह्मा ने उग्र तपस्या की। उसके फलस्वरूप षडङ्ग पदक्रम के साथ वेद का आविर्भाव हुआ। अनन्तर ब्रह्मा के मुख से नित्य शब्दमय, शतकोटिश्लोकनिबद्ध, सुविस्तृत, पवित्र, सर्वशास्त्रमय, परमार्थ तत्त्व के प्रतिपादक ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड——इन अठारह पुराणों का आविर्भाव हुआ——

पुरा तपश्चचारोग्रममराणां पितामहः ।
आविर्भूतास्ततो वेदाः सषडङ्गपदक्रमाः ॥
ततः पुराणमखिलं सर्वशास्त्रमयं ध्रुवम् ।
नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ——स्क० ७, २, २७-२८

ऐसे ही श्रीमद्भागवत के वेदोत्पत्ति-प्रकरण में कहा गया है कि ब्रह्मा के पूर्व आदि मुखों से यथाक्रम से ऋक्, यजुः, साम और अथर्व आविर्भूत हुए एवं इतिहास-पुराणात्मक पञ्चम वेद का सभी मुखों से आविर्भाव हुआ——

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः ।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ॥ ——श्रीमद्भा०, ३, १२, ३९

यही कारण है कि 'पुराणं पञ्चमो वेदः' साङ्गवेद की कौथुमीय शाखा और तलवकार शाखा की छान्दोग्य उपनिषद् में स्पष्ट शब्दों में पुराणों को पञ्चम वेद के रूप में निर्दिष्ट किया गया है——**'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासं पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्'** (छा० ७, १, २)। इससे स्पष्ट है कि चार वेदों में पुराण के अन्तर्भाव का प्रश्न भी नहीं उठता। वेदाध्ययन के अनूठे, सामान्यजनों के अध्ययन-योग्य महर्षि व्यासकृत पुराण और इतिहास हैं। व्यास ने ही वेद-विभाजन और इतिहास-पुराण की रचना साधारणजन के कल्याण की भावना से की है।

पुराण की पञ्चम वेद के रूप में मान्यता के लिए वायु एवं विष्णु आदि पुराणों मेंभी प्रमाण उपलब्ध होते हैं। वहाँ वेदों का व्यसन (विस्तार) करने से ही पुराणकर्ता को 'व्यास' संज्ञा दी गयी है——

'व्यस्यति वेदान् इति व्यासः'।

——विष्णु पु० ३, ४, ४

आख्यान, उपाख्यान तथा पुरावृत्त आदि से संवलित पञ्चलक्षणात्मक पुराणों का एवं महाभारत आदि संहिताओं का प्रणयन व्यास ने किया। वेदों का मुख्य लक्ष्य यज्ञ-सम्पादन है। यजुर्वेद की प्रधानता यज्ञ-सम्पादन में ही है। सुविधा के लिए फिर उसके चार भेद किये गये, यह बात सूत ने कही है——

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिर्द्विजसत्तमाः ।
पुराणसंहिताश्चक्रे पुराणार्थविशारदः ॥
इतिहासपुराणानां वक्तारं सम्यगेव हि ।
मां चैव प्रतिजग्राह भगवानीश्वरः प्रभुः ॥

Funding by IKS-MoE

एक आसीद् यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयत् ।
चातुर्होत्रमभूत् तस्मिंस्तेन यज्ञमकल्पयत् ॥
आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु होत्रमृत्विग्भिरेव च ।
उद्गात्रं सामभिश्चैव ब्रह्मत्वं चाथर्वणेन तु ॥ ––वायु पु० ६०, १६-१९

मत्स्यपुराण में भगवान् ने भी कहा है कि द्विजवर ! कालधर्म के अनुसार मनुष्य सभी पुराणों को ग्रहण करने में समर्थ नहीं है, अतः प्रत्येक युग में मैं व्यास रूप में अवतीर्ण होकर पूर्वसिद्ध शतकोटि संख्यक पुराण-राशि को मनुष्य के संग्रह की दृष्टि से संक्षिप्त करता हूँ। पुराण को शतकोटिप्रविस्तर, पद्मपुराण में भी कहा है––

कालेनाग्रहणं मत्वा पुराणस्य द्विजोत्तमाः ।
व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे युगे ॥ ––मत्स्य पु० ११, ८
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ––पद्मपु०, सृष्टिखंड १, ५३

फिर मत्स्यपुराण में कहा है––प्रत्येक द्वापर युग में चार लाख श्लोकों में संक्षिप्त एक पुराण को अठारह भागों में विभक्त करके मर्त्यलोक में प्रचारित किया। आज भी देवलोक में पुराण शतकोटि के रूप में उपलब्ध है। उसी का संक्षिप्त रूप मर्त्यलोक में अष्टादश पुराण हैं। इस प्रकार यजुर्वेद का अवशिष्ट अंश ही पुराण है––

चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा ।
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रभाष्यते ॥
अद्यापि स्वर्गलोके तु शतकोटिप्रविस्तरम् ।
तदर्थोऽस्य चतुर्लक्षः संक्षेपेण निरूपितः ॥ ––मत्स्य पु० ५३, ९–१०

शिव पुराण की वायवीय संहिता में भी इस विषय को कहा गया है––

संक्षिप्य चतुरो वेदांश्चतुर्धा व्यभजत् प्रभुः ।
व्यस्ता वेदा यतस्तेन वेदव्यास इति स्मृतः ॥
पुराणमपि संक्षिप्तं चतुर्लक्षप्रमाणतः ।
अद्याप्यमर्त्यलोके तु शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ––शिव, २, १, १६-१७

विष्णुपुराण में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि वेद पुराणों में प्रतिष्ठित हैं––'वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः।' वेद के दुरूह अंश की व्याख्या के कारण पुराण का वैशिष्ट्य सर्वथा मान्य है।

नारदीय पुराण में पुराण को वेद से भी बढ़-चढ़कर बताया गया है। वहाँ शंकर ने पार्वती से कहा कि वेदों में ग्रहसंचार, तिथिनिर्णय आदि स्पष्ट नहीं हैं, वे स्मृतियों में भी नहीं हैं, पर पुराणों ने इसका निर्णय किया है, अतः हे सुमुखि ! मैं वेदार्थ से पुराणों के अर्थ को अधिक मानता हूँ––**'वेदार्थमधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने'** (२, २०, ५); क्योंकि वेदार्थ पुराण में ही प्रतिष्ठित है, इसमें सन्देह नहीं।

Funding by IKS-MoE

पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड के अध्याय १०४ में तो यहाँ तक कहा गया है कि सर्वप्रथम ब्रह्मा के मुख से पुराणों का ही स्मरण किया गया, पश्चात् उनके मुख से वेद-मन्त्र निकले—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥

इस प्रकार पुराण का प्रामाण्य वेद के समान सुनिश्चित है। ऐसी स्थति में भारत में जो मुष्टिप्रमेय लोग वेदों को तो मानते हैं, किन्तु पुराणों को नहीं, वे अपने आपको धोखा देते हैं। उनके लिए उदयनाचार्य के शब्दों में—'काले कारुणिक त्वयैव कृपया ते भावनीया नराः'—यही हम कह सकते हैं।

पुराणों में भारतीय संस्कृति के ज्ञान का अक्षय भाण्डार तो भरा ही है। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए पुराणों का विशेष महत्त्व माना गया है, इसके अतिरिक्त पुराणों का धार्मिक महत्त्व भी है। पुराण सुनने वालों की विपत्तियों का दूर होना, उनके लिए स्वर्ग में स्थान पाना, उनकी कामनाओं का पूरा होना, पापों से छुटकारा पाना आदि संभव होता है। पुराणों की बहुविध उपयोगिता का सांगोपांग वर्णन महापुराण (१, २०४—२०७) में इस प्रकार मिलता है—

पुराणमृषिभिः प्रोक्तं प्रमाणं सूक्तमाञ्जसम् ।
ततः श्रद्धेयमध्येयं ध्येयं श्रेयोऽर्थिनामिदम् ॥
इदं पुण्यमिदं पूतमिदं मङ्गलमुत्तमम् ।
इदमायुष्यमर्थ्यं च यशस्यं स्वर्ग्यमेव च ॥
इदमर्चयतां शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिश्च पृच्छताम् ।
पठतां क्षेममारोग्यं शृण्वतां कर्मनिर्जरा ॥
इतो दुःस्वप्ननिर्णाशः सुस्वप्नस्फातिरेव च ।
इतोऽभीष्टफलव्यक्तिनिमित्तमभिपश्यताम् ॥

इस पुस्तक के प्रकाशन में जिन लोगों का प्रत्यक्ष किंवा अप्रत्यक्ष योगदान रहा है, हम उन सबके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। इन कार्तज्ञयभाजनों में सर्वप्रथम तो सम्मेलन के वर्तमान प्रधान-मंत्री माननीय श्री प्रभात शास्त्री का ही हम नामोल्लेख करेंगे, जिनकी सदिच्छा एवं सत्प्रयत्न से सम्मेलन की पुराण-प्रकाशन-योजना चल रही है। साहित्य-विभागाध्यक्ष श्री हरिमोहन मालवीय तथा अपने पुराण-सहकर्मियों—श्री जगदेव पाण्डेय, श्री रुद्रप्रसाद मिश्र एवं श्री हरिमोहन पाण्डेय के प्रति भी आभार प्रकट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। सम्मेलन मुद्रणालय के वे कर्मचारी भी मेरे धन्यवाद के पात्र हैं, जो सुरुचि-पूर्वक पुराण का मुद्रण-कार्य सम्पन्न कर रहे हैं। अन्त में मैं उन कृतिकारों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनकी कृतियों से इस कार्य में मुझे यत्किञ्चित् सहायता मिली है।

हरिशयनी एकादशी
सन् १९८४

प्रश्रयावनत
तारिणीश झा

विषय-सूची

श्रीकृष्णजन्मखण्ड

(पूर्वार्ध)

अध्याय १ : नारद ने नारायण से श्रीकृष्ण के जन्म-संबंध में प्रश्न किया; नारायण ने विष्णु और वैष्णव के गुणों की प्रशंसा की और प्रश्नोत्तर देना आरंभ किया।

अध्याय २ : जिस लिए विष्णु गोप के वेश में गोकुल आये तथा राधा गोपी हुईं, वह कारण बताया; नारद ने श्रीदामा और राधा के कलह के बारे में पूछा; रत्नमण्डप में विरजा पर आसक्त श्रीकृष्ण के बारे में सखियों से सुनकर कुपित हुईं राधिका रत्नमण्डप में गईं; राधा का नाम सुनते ही हरि अदृश्य हो गये और डर से विरजा ने प्राण त्यागकर नदी का रूप धारण कर लिया।

अध्याय ३ : सात समुद्रों की उत्पत्ति; कोपभवन के द्वार पर श्रीदामा के साथ आये हुए हरि को राधा ने खरी-खोटी सुनाई, फिर हरि को निकाल देने के लिए सखियों को आज्ञा दी, इस पर श्रीदामा राधा से हरि का महत्त्व बताने लगे; पश्चात् आवेश में आकर राधा और श्रीदामा ने परस्पर शाप दे डाला; फिर शाप के दुःख से व्याकुल राधा और श्रीदामा को हरि ने सान्त्वनापूर्ण वचन कहा।

अध्याय ४ : देवताओं के साथ शरण में आयी हुई पृथ्वी को ब्रह्मा ने आश्वासन दिया; ब्रह्मा के पूछने पर पृथ्वी ने बताया कि किन लोगों का भार उसे असह्य होता है; अनन्तर पृथ्वी एवं देवसमूहों के साथ शिवलोक में जाकर ब्रह्मा ने शिव से पृथ्वी का वृत्तान्त बताया; फिर देवता और पृथ्वी के साथ ब्रह्मा, शिव तथा धर्म वैकुंठ गये; उन लोगों ने श्रीहरि की स्तुति की; श्रीहरि के आदेशानुसार सभी देवताओं का गौलोक-गमन तथा गोलोक-वर्णन।

अध्याय ५ : राधा के मन्दिर तथा उसके सोलह द्वारों का वर्णन; राधा के भीतरी महल में देवताओं का गमन; राधामन्दिर का वर्णन; राधामन्दिर में देवताओं द्वारा श्रीकृष्ण के तेजःस्वरूप का दर्शन; ब्रह्मा, शंकर और धर्म द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति; उस स्तोत्र के पाठ का फल-कथन।

अध्याय ६ : पहले के देखे हुए तेजःस्वरूप के मध्य में देवताओं ने कृष्णमूर्ति की स्तुति की; देवों के स्तोत्र से सन्तुष्ट श्रीकृष्ण ने देवों को अभयदान दिया; गोलोकवर्ती राधा आदि परिजनों को श्रीकृष्ण ने पृथ्वी पर अवतार धारण करने की आज्ञा दी; गोलोक से आये हुए नारायण, विष्णु एवं बलराम श्रीकृष्ण के शरीर में लीन हो गये; पृथ्वी पर अपने-अपने अंश से अवतीर्ण होने के लिए श्रीकृष्ण ने सभी देवताओं को आज्ञा प्रदान की; किसको कहाँ किस नाम से अवतार लेना चाहिए—ऐसा ब्रह्मा के प्रश्न करने पर श्रीकृष्ण ने सब बता दिया। भावी वियोग से कातर होकर रोती हुई राधा को

Funding by IKS-MoE

श्रीकृष्ण ने उद्बोधन दिया। कृष्ण की आज्ञा से सभी देवता अपने-अपने स्थान को चले गये। कृष्ण की आज्ञा से राधा गोप-गोपियों के साथ गोलोक से गोकुल में आ गये। श्रीहरि मथुरा आये।

अध्याय ७ : श्रीकृष्ण के जन्म का आख्यान।

अध्याय ८ : श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत के उपवास का विधान।

अध्याय ९ : नारद के पूछने पर नारायण ने नन्द, यशोदा और रोहिणी के जन्मान्तर का वर्णन किया; बलदेव के जन्म का आख्यान; नन्द के पुत्रोत्सव का वर्णन।

अध्याय १० : कंस की प्रेरणा से कृष्ण को मारने के लिए नन्दगृह में आयी हुई पूतना ने कृष्ण को स्तनपान कराया; जिससे उसे मोक्ष मिला; उसके पूर्वजन्म की कथा।

अध्याय ११ : श्रीकृष्ण द्वारा तृणावर्तनामक दैत्य का वध; उसके जन्मान्तर का वृत्तान्त-वर्णन।

अध्याय १२ : शकटासुर का भंजन; योगनिद्रा का बताया हुआ कवचन्यास।

अध्याय १३ : वसुदेव की प्रार्थना से श्रीकृष्ण का नामकरण आदि संस्कार करने के लिए गर्ग नन्द के घर पहुँचे। गर्ग ने अपने आने का प्रयोजन बताया कि श्रीकृष्ण का मुझे नाम रखना है। फिर उन्होंने नन्द और यशोदा को गोलोक का वृत्तान्त सुनाया, जिसे पूर्वकाल में उन्होंने शिव के मुख से सुन रखा था। गर्ग की आज्ञा से नन्द ने कृष्ण का नामकरण आदि संस्कार किया; गर्ग ने श्रीकृष्ण की स्तुति की; गर्ग अपने घर चले गये।

अध्याय १४ : यमलार्जुन का भंजन; नलकूबर का मोक्ष; वृक्ष का आख्यान।

अध्याय १५ : भाण्डीरवन में राधा-कृष्ण का विवाह; नवसंगम का प्रस्ताव।

अध्याय १६ : बकासुरवध; प्रलम्बासुरवध; केशी नामक दैत्य का वध; इनके जन्मान्तर का वृत्तान्त; पार्वती द्वारा अनुष्ठित त्रैमासिक नामक व्रत का विधान; नन्द की आज्ञा से समस्त व्रजवासियों का वृन्दावन में गमन।

अध्याय १७ : वृन्दावन का वर्णन; उसके बीच प्रसंगवश कलावती का इतिहास; वृन्दावन नाम की व्युपत्ति आदि; राधा के सोलह नाम वाला स्तोत्र; उन नामों की व्युत्पत्ति।

अध्याय १८ : ब्राह्मण-पत्नियों के मोक्ष का प्रस्ताव; विप्रपत्नियों का किया हुआ श्रीकृष्ण का स्तोत्र।

अध्याय १९ : कालियनाग के दर्प का दमन; दावाग्नि का भक्षण।

अध्याय २० : गाय, बछड़े और गोपबालक के प्रसंग में ब्रह्मा द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति।

अध्याय २१ : इन्द्रयाग का खण्डन; गोवर्धन धारण।

अध्याय २२ : धेनुकासुर का वध।

अध्याय २३ : तिलोत्तमा और बलिपुत्र को दुर्वासा का शाप; धेनुकासुर के जन्म का वृत्तान्त।

अध्याय २४ : प्रसंगतः दुर्वासा का आख्यान; बलिपुत्र का मोक्ष।

अध्याय २५ : दुर्वासा को और्व ऋषि का शाप; इसी प्रसंग में अम्बरीष का आख्यान।

अध्याय २६ : अम्बरीष की कथा के प्रसंग में एकादशीव्रत का निरूपण।

अध्याय २७ : गोपियों के वस्त्रों का अपहरण; इस बीच गोपियों ने सर्व-मंगला की स्तुति की; गौरीव्रत के विधान आदि का कथन; राधा का किया हुआ पार्वती-स्तोत्र; श्रीकृष्ण द्वारा गोपिकाओं को अभीष्ट वरदान।

अध्याय २८ : रासक्रीड़ा का आख्यान।

अध्याय २९ : अष्टावक्र मुनि के मोक्ष का आख्यान।

अध्याय ३० : राधा के पूछने पर कृष्ण ने अष्टावक्र का इतिहास बताया।

अध्याय ३१ : पुनः राधा के प्रश्न करने पर कृष्ण ने ब्रह्मा के शाप का कारण बताया; वहाँ प्रसंगवश राजा सुचन्द्र का वृत्तान्त कहा; विरहातुर मोहिनी की अवस्था का वर्णन; मोहिनी का व्रत एवं उसके द्वारा कामदेव की स्तुति।

अध्याय ३२ : ब्रह्मा और मोहिनी का संवाद।

अध्याय ३३ : मोहिनी ने ब्रह्मा को शाप दिया; ब्रह्मा का दर्पहरण।

अध्याय ३४ : गंगोत्पत्ति का वर्णन।

अध्याय ३५ : राधा और कृष्ण के संवादरूप में ब्रह्मा और भारती का उपाख्यान।

अध्याय ३६ : शंकर के दर्प का विमोचन और उनकी प्रशंसा।

अध्याय ३७ : शंकर के निर्माल्य को शाप।

अध्याय ३८ : सती के गर्व का अपहरण; पार्वती का हिमालय से जन्म-ग्रहण; पार्वती को अपने सौन्दर्य का अभिमान; शिव के दर्शन के लिए हिमालय का अक्षयवट के पास जाना; हिमालय द्वारा शिव की स्तुति।

अध्याय ३९ : शिव के सौन्दर्य का वर्णन; शिव के समीप पार्वती का जाना; शिव के क्रोधाग्नि से कामदेव का दहन; पार्वती के गर्व का अपहरण।

अध्याय ४०-४१ पार्वती की तपस्या का प्रकार; शंकर नर्तक के वेश में हिमालय के घर पहुँचे; देवताओं के द्वारा प्रार्थना करने पर अपनी निन्दा करने के लिए शिव हिमालय के पास गये; शिव की निन्दा सुनने से हिमालय शिव को अपनी कन्या देने के प्रति अनिच्छुक हो गये; तब अरुन्धती, वसिष्ठ आदि ने शिव की प्रशंसा करते हुए उपदेश दिया; इस प्रसंग में राजा अनरण्य का वृत्तान्त बताया।

अध्याय ४२ : अनरण्य की कन्या पद्मा का पातिव्रत आदि वृत्तान्त कहने के पश्चात् पार्वती के पूर्वजन्मान्तरीय सती-शरीर के त्याग का वर्णन।

अध्याय ४३ : सती के लिए शिव का शोकोद्गार; नारायण के उपदेश से शिव ने प्रकृति की स्तुति की; इससे शिव का शोक दूर हुआ।

अध्याय ४४ : अरुन्धती और वसिष्ठ के उद्बोधन से प्रसन्नचित्त हिमालय ने शिव को, स्तुति के साथ विधिपूर्वक कन्या प्रदान की।

अध्याय ४५-४६ शिव-पार्वती का विवाहोत्सव; जलाकर भस्म किये गये कामदेव का पुनरुज्जीवन; रति और

कन्दर्प के विलास का वर्णन; हर-गौरी के विलास का वर्णन; देवता और नारायण के संवाद-प्रसंग में स्त्री और पुरुष के रतिभंग का दोष-वर्णन।

अध्याय ४७ : इन्द्र के गर्व का अपहरण।

अध्याय ४८ : सूर्य के दर्प का अपहरण।

अध्याय ४९ : अग्नि के दर्प का अपहरण।

अध्याय ५० : दुर्वासा के गर्व का अपहरण।

अध्याय ५१ : धन्वन्तरि के गर्वनाश के प्रसंग में मनसा का विजय।

अध्याय ५२ : राधा और माधव के रास-वर्णन-प्रसंग में 'राधाकृष्ण' इस नाम में कृष्णनाम से पूर्व राधा नाम के उच्चारण करने का कारण-वर्णन।

अध्याय ५३ : गोपियों के साथ राधा-कृष्ण का भाण्डीर आदि वनों में गमन तथा वहाँ किये गये विहारों का वर्णन।

अध्याय ५४ : श्रीकृष्ण के मथुरा-गमन से लेकर गोलोक-गमन तक के चरित्र का संक्षेप में कथन।

⊙

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीतं

ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

तत्र

चतुर्थं श्रीकृष्णजन्मखण्डम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥

नारद उवाच

श्रुतं प्रथमतो ब्रह्मन्ब्रह्मखण्डं मनोहरम् । ब्रह्मणो वदनाम्भोजात्परमाद्भुतमेव च ॥२॥
ततस्तद्वचनात्तूर्णं समागत्य तवान्तिकम् । श्रुतं प्रकृतिखण्डं च सुधाखण्डात्परं वरम् ॥३॥
ततो गणपतेः खण्डमखण्डभवखण्डनम् । न मे तृप्तं मनो लोलं विशिष्टं श्रोतुमिच्छति ॥४॥
श्रीकृष्णजन्मखण्डं च जन्मादेः खण्डनं नृणाम् । प्रदीपं सर्वतत्त्वानां कर्मघ्नं हरिभक्तिदम् ॥५॥
सद्यो वैराग्यजननं भवरोगनिकृन्तनम् । कारणं मुक्तिबीजानां भवाब्धेस्तारणं परम् ॥६॥

चौथा श्रीकृष्णजन्मखण्ड

अध्याय १

विष्णु और वैष्णव के गुणों की प्रशंसा

नारद बोले—हे ब्रह्मन्! सर्वप्रथम मैंने ब्रह्मा के मुखकमल से मनोहर एवं परम अद्भुत ब्रह्मखण्ड सुना, अनन्तर उन्हीं की आज्ञा से मैंने आपके पास आकर आपके द्वारा अमृत-खण्ड से भी परम श्रेष्ठ प्रकृति-खण्ड और अखण्ड संसार (जन्म-मरण)-नाशक गणपति खण्ड का श्रवण किया, किन्तु मेरा चञ्चल मन तृप्त न हुआ, अतः (इससे भी) विशिष्ट कुछ कथायें सुनना चाहता हूँ—भगवान् श्रीकृष्ण का जन्मखण्ड सुनाने की कृपा करें, जो मनुष्यों के जन्म-मरण रूप संसार का नाशक, समस्त तत्त्वों का प्रदीप, कर्मनाशक (मुक्तिप्रद); भगवान् की भक्ति देने वाला, शीघ्र वैराग्य उत्पन्न होने का हेतु, संसार रूपी रोग का नाशक, मुक्तिबीज का कारण,

Funding by IKS-MoE

श्रीकृष्णचरणाम्भोजप्राप्तिसोपानकारणम् ॥७॥
कर्मोपभोगरोगाणां खण्डने च रसायनम् । वैष्णवानां च जगतां पावनं परम्। वद विस्तार्य मां भक्तं शिष्यं च शरणागतम् ॥८॥
जीवनं वैष्णवानां च जगतां पावनं परम्। वद विस्तार्य मां भक्तं शिष्यं च शरणागतम् ॥८॥
केन वा प्रार्थितः कृष्ण आजगाम महीतलम् । सर्वांशैरेक एवेशः परिपूर्णतमः स्वयम् ॥९॥
युगे कुत्र कुतो हेतोः कुत्रवाऽऽविर्बभूव ह । वसुदेवोऽस्य जनकः को वा का वा च देवकी ॥१०॥
वद कस्य कुले जन्म मायया सुविडम्बनम् । किं चकार समागत्य केन रूपेण वा हरिः ॥११॥
जगाम गोकुलं कंसभयेन सूतिकागृहात् । कथं कंसात्कीटतुल्याद्भयेशस्य भयं मुने ॥१२॥
हरिर्वा गोपवेषेण गोकुले किं चकार ह । [1]कुतो गोपाङ्गनासार्धं विजहार जगत्पतिः ॥१३॥
का वा गोपाङ्गना के वा गोपाला बालरूपिणः । का वा यशोदा को नन्दः किं वा पुण्यं चकार ह ॥१४॥
कथं राधा पुण्यवती देवी गोलोकवासिनी । व्रजे वा व्रजकन्या सा बभूव प्रेयसी हरेः ॥१५॥
कथं गोप्यो दुराराध्यं संप्रापुरीश्वरं परम् । कथं ताश्च परित्यज्य जगाम मथुरां पुनः ॥१६॥
भारावतरणं कृत्वा किं विधाय जगाम सः । कथयस्व महाभाग पुण्यश्रवणकीर्तन ॥१७॥
सुदुर्लभां हरिकथां तरणिं [2]भवसागरे । निषेकभोगनिगडक्लेशच्छेदनकर्तनीम् ॥१८॥

भवसागर का परम नौका, जन्मान्तरीय कर्मों के उपभोगस्वरूप रोगों आदि के नाश करने के लिए रसायन रूप, भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल की प्राप्ति में सोपान (सीढ़ियों) का कारण, वैष्णवों का जीवन और समस्त जगत् को परम पवित्र करने वाला है। मैं आपका भक्त शिष्य एवं शरणागत हूँ, अतः विस्तार पूर्वक मुझे बताने की कृपा करें ॥१-८॥ किसकी प्रार्थना के वशीभूत होकर भगवान् श्रीकृष्ण, जो परिपूर्णतम एवं एक हैं, संपूर्ण अंशों से स्वयं पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए ? ॥९॥ किस युग में, किस कारण और कहाँ प्रकट हुए? उनके पिता वसुदेव कौन हैं और देवकी कौन हैं? ॥१०॥ उन्होंने अपनी माया द्वारा अति विडम्बना करते हुए किसके कुल में जन्म ग्रहण किया? और यहाँ आकर भगवान् ने किस रूप से कौन कार्य किया? ॥११॥ हे मुने ! उन्होंने कंस-भय के कारण प्रसूति-गृह (सौरीघर) से गोकुल को प्रस्थान किया था किंतु कंस (उनके लिए) एक कीड़े के समान था और वे भय के भी ईश हैं, फिर क्यों उन्हें कंस से भय मालूम हुआ? ॥१२॥ भगवान् जगत्पति ने गोकुल में आकर गोपवेष में कौन-सा कार्य किया ? और गोपियों के साथ कहाँ विहार (रासक्रीड़ा) किया? ॥१३॥ वे गोपियाँ कौन थीं? बालरूपी गोपाल कौन थे? यशोदा और नंद कौन थे? उन्होंने कौन-सा पुण्य किया था? (जिससे उन्हें भगवान् पुत्र रूप में मिले) ॥१४॥ क्यों गोलोक की रहने वाली पुण्यवती राधा देवी ने, व्रज में या व्रज की कन्या होकर भगवान् की प्रेयसी बनीं ? ॥१५॥ गोपियों ने दुराराध्य परमेश्वर को (पति रूप में) कैसे प्राप्त किया और भगवान् उन्हें छोड़ कर पुनः मथुरा क्यों चले गए? ॥१६॥ पवित्र श्रवण और कीर्तन वाले हे महाभाग ! आप यह बताएँ कि भगवान् पृथ्वी का भार उतारने के बाद क्या करके गये ॥१७॥ भगवान् की यह दुर्लभ कथा भवसागर पार करने की नौका, कर्म-भोग रूपी बेड़ी तथा क्लेश काटने की (कैंची),

---

[1] क. कुत्र गो०। [2] क. ०वतारणे०।

Funding by IKS-MoE

पापेन्धनानां दहने ज्वलदग्निशिखामिव । पुंसां श्रुतवतां कोटिजन्मकिल्विषनाशिनीम् ॥१९॥
मुक्तिं कर्णसुधारम्यां शोकसागरनाशिनीम् । मह्यं भक्ताय शिष्याय ज्ञानं देहि कृपानिधे॥२०॥
तपोजपमहादानात्पृथिव्यां तीर्थदर्शनात् । श्रुतिपाठादनशनाद्व्रताद्देवार्चनादपि ॥२१॥
दीक्षायाः सर्वयज्ञेषु यत्फलं लभते नरः । षोडशीं ज्ञानदानस्य कलां नार्हति तत्फलम् ॥२२॥
पित्राऽहं प्रेषितो ज्ञानादानाय तव संनिधिम् । सुधासमुद्रं संप्राप्य को वाऽन्यत्पातुमिच्छति॥२३॥

नारायण उवाच

मया ज्ञातोऽसि धन्यस्त्वं पुण्यराशिः सुमूर्तिमान् । करोषि भ्रमणं लोकान्पावितुं कुलपावन ॥२४॥
जनानां हृदयं सद्यः सुव्यक्तं वचनेन वै । शिष्ये कलत्रे कन्यायां दौहित्रे बान्धवेऽपि च॥२५॥
पुत्रे पौत्रे च वचसि प्रतापे [१]चाऽऽपदि स्त्रियाम् । वृद्धौ वैरिणि विद्यायां ज्ञायते हृदयं नृणाम्॥२६॥
जीवन्मुक्तोऽसि पूतस्त्वं शुद्धभक्तो गदाभृतः । पुनासि पादरजसा सर्वाधारां वसुंधराम्॥२७॥
पुनासि लोकान्सर्वांश्च स्वीयविग्रहदर्शनात् । सुमङ्गलां हरिकथां तेन त्वं श्रोतुमिच्छसि॥२८॥
यत्र कृष्णकथाः सन्ति तत्रैव सर्वदेवताः । ऋषयो मुनयश्चैव तीर्थानि निखिलानि च॥२९॥

पाप रूपी लकड़ी जलाने के लिए प्रज्वलित अग्नि की ज्वाला और सुनने वाले के करोड़ों जन्मों के पापों का नाश करने वाली कान को सुन्दर अमृत देने वाली एवं शोकसागर की नाशिनी मुक्ति-रूप है। हें कृपानिधे! मुझ भक्त शिष्य को ज्ञान देने की कृपा करें॥१८-२०॥ क्योंकि तप, जप, महादान, पृथ्वी के तीर्थ-दर्शन, वेदों के पाठ, उपवास, व्रत, देवार्चन और समस्त यज्ञों की दीक्षा से जिन फलों की प्राप्ति होती है, वे इस ज्ञान-दान की सोलहवीं कला के भी समान नही हैं॥२१-२२॥ पिता ने मुझे ज्ञान प्राप्त करने के लिए आपके पास भेजा है। अमृत सागर प्राप्त होने पर कौन अन्य पान की इच्छा करता है॥२३॥

श्री नारायण बोले—कुलपावन! तुम धन्य हो, पुण्य की राशि एवं सुमूर्तिमान् हो, यह मैंने भली-भाँति जान लिया है और लोकों को पवित्र करने के लिए ही तुम इधर-उधर भ्रमण किया करते हो॥२४॥ वचन बोलते ही मनुष्यों का हृदय तुरन्त स्पष्ट मालूम हो जाता है। शिष्य, स्त्री, कन्या और कन्यापुत्र (नाती), बन्धु, पुत्र, पौत्र, वाणी, प्रताप (तेज), स्त्री, आपत्ति, वृद्धि, वैरी और विद्या में मनुष्यों का हृदय जाना जाता है॥२५-२६॥ तुम जीवन्मुक्त हो, पवित्र हो, गदाधारी भगवान् विष्णु के शुद्ध भक्त हो, अपनी चरण-धूलि से इस सर्वाधार पृथ्वी को पवित्र कर रहे हो॥२७॥ अपने स्वरूप के दर्शन प्रदान द्वारा सभी लोकों (लोगों) को पावन कर रहे हो। इसीलिए भगवान् की अति मांगलिक कथा सुनने की तुम्हें विशेष इच्छा हो रही है॥२८॥ जिस स्थान पर भगवान् श्रीकृष्ण की कथा होती है, उसी स्थान पर समस्त देवगण, ऋषिगण, मुनिवृन्द और समस्त तीर्थ निवास करते हैं॥२९॥

---

[१] क यशसि।

Funding by IKS-MoE

कथाः श्रुत्वा कथान्ते ते यान्ति सन्तो निरापदम् । भवन्ति तानि तीर्थानि येषु कृष्णकथाः शुभाः ।।३०।।
सद्यः कृष्णकथावक्ता स्वस्य पुंसां शतं शतम् । समुद्धृत्य श्रुतवतां पुनाति निखिलं कुलम् ।।३१।।
प्रष्टा तु प्रश्नमात्रेण पुनाति कुलमात्मनः । श्रोता श्रवणमात्रेण स्वकुलं स्वस्वबान्धवान् ।।३२।।
शतजन्मतपःपूतो जन्मेदं भारते लभेत् । करोति जन्म सफलं श्रुत्वा हरिकथामृतम् ।।३३।।
अर्चनं वन्दनं मन्त्रजपः सेवनमेव च । स्मरणं कीर्तनं शश्वद्गुणश्रवणमीप्सितम् ।।३४।।
निवेदनं तस्य दास्यं नवधाभक्तिलक्षणम् । करोति जन्म सफलं कृत्वैतानि च नारद ।।३५।।
न च विघ्नो भवेत्तस्य परमायुर्न नश्यति । न याति तत्पुरः कालो वैनतेयमिवोरगः ।।३६।।
न जहाति समीपं च क्षणं तस्य हरिः स्वयम् । उपतिष्ठन्ति तूर्णं तमणिमादिकसिद्धयः ।।३७।।
सुदर्शनं भ्रमत्येव तस्य पार्श्वे दिवानिशम् । कृष्णाज्ञया च रक्षार्थं को वा किं कर्तुमीश्वरः ।।३८।।
न यान्ति तत्समीपं च स्वप्नेऽपि यमकिंकराः । ज्वलदग्निं यथा दृष्ट्वा शलभा न व्रजन्ति तम् ।।३९।।
व्याधयो विपदः शोका विघ्नाश्च न प्रयान्ति तम् । न याति तत्समीपं च मृत्युर्मृत्युभयान्मुने ।।४०।।
ऋषयो मुनयः सिद्धाः संतुष्टाः सर्वदेवताः । स च सर्वत्र निःशङकः सुखी कृष्णप्रसादतः ।।४१।।
तव कृष्णकथायां च रतिरात्यन्तिकी सदा । जनकस्य स्वभावो हि जन्ये तिष्ठति निश्चितम् ।।४२।।

कथा सुनने के उपरांत कथा-समाप्ति होने पर सन्त लोग (भगवान् का) निरापद स्थान प्राप्त करते हैं और जिन स्थानों में भगवान् कृष्ण की शुभ कथा होती है वे तीर्थ हो जाते हैं ।।३०।। भगवान् कृष्ण की कथा कहने वाला (वक्ता) अपनी सौ पीढ़ियों और सुनने वालों के समस्त कुल का उद्धार करता है ।।३१।। प्रश्नकर्ता केवल प्रश्न मात्र से अपने कुल को पवित्र करता है, और श्रोता उसके सुनने मात्र से बन्धु-बान्धव समेत अपने कुल को पवित्र करता है ।।३२।। सौ जन्मों में तप करने पर भारत में जन्म प्राप्त होता है, जिससे भगवान् की अमृत-कथा का श्रवण कर अपने जन्म को सफल कर लेता है ।।३३।। भगवान् की पूजा वंदना, उनके मंत्र का जप, सेवा, स्मरण, कीर्तन, निरन्तर, अभीष्ट गुणों का श्रवण, आत्मसमर्पण और दास्यभाव यही नव प्रकार की भक्ति है। हे नारद ! इन कर्मों को सुसम्पन्न कर मनुष्य अपना जन्म सफल करता है ।।३४-३५।। उस मनुष्य के यहाँ कभी विघ्न नहीं होता है, उसकी परमायु नष्ट नहीं होती है और गरुड़ के सामने सर्प की भाँति काल उसके सामने कभी भी नहीं जाता है ।।३६।। उसके सामीप्य को स्वयं भगवान् किसी क्षण नहीं छोड़ते हैं और अणिमा आदि सिद्धियाँ शीघ्र उसके समीप पहुँच जाती हैं ।।३७।। भगवान् की आज्ञा से उनका चक्र सुदर्शन भक्त के रक्षार्थ दिन रात उसके समीप घूमता रहता है, अतः उस भक्त का कोई क्या बिगाड़ सकता है ।।३८।। जलते हुए अग्नि को देख कर जिस प्रकार पतिङ्गे वहाँ नहीं जाते हैं उसी भाँति यम के किंकर वर्ग स्वप्न में भी उस भक्त के पास नहीं जाते हैं ।।३९।। हे मुने ! रोग, विपत्तियाँ; शोक, विघ्न, उसके पास नहीं फटकते और मृत्यु-भय के कारण मृत्यु भी वहाँ नहीं जाती है ।।४०।। ऋषिगण, मुनिवृन्द, सिद्ध तथा समस्त देवता, उस पर सन्तुष्ट रहते हैं। इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण के प्रसाद से वह सर्वत्र निःशंक और सुखी रहता है ।।४१।। भगवान् कृष्ण की कथा में तुम्हारा सदैव अत्यन्त प्रेम रहा है। ठीक ही है जनक (पिता) का स्वभाव जन्य (पुत्र) में निश्चित आता ही है ।।४२।।

Funding by IKS-MoE

विप्रेन्द्र का प्रशंसेयं जन्म ते ब्रह्ममानसे । यस्य यत्र कुले जन्म तन्मतिस्तादृशी भवेत् ।।४३।।
पिता विधाता जगतः कृष्णपादाब्जसेवया । नित्यं करोति यः शश्वन्नवधाभक्तिलक्षणम् ।।४४।।
रतिः कृष्णकथायां च यस्याश्रुपुलकोद्गमः । मनो निमग्नं तत्रैव स भक्तः कथितो बुधैः ।।४५।।
पुत्रदारादिकं सर्वं जानाति श्रीहरेरिति । आत्मना मनसा वाचा स भक्तः कथितो बुधैः ।।४६।।
निर्जने तीर्थसंपर्के निःसङ्गा ये मुदाऽन्विताः । ध्यायन्ते चरणाम्भोजं श्रीहरेस्ते च वैष्णवाः ।।४७।।
दयाऽस्ति सर्वजीवेषु सर्वं कृष्णमयं जगत् । यो जानाति महाज्ञानी स भक्तो वैष्णवो मतः ।।४८।।
शश्वद्ये नाम गायन्ति गुणं मन्त्रं जपन्ति च । कुर्वन्ति श्रवणं गाथा वदन्ति तेऽतिवैष्णवाः ।।४९।।
लब्धानीष्टानि वस्तूनि प्रदातुं हरये मुदा । तूर्णं यस्य मनो हृष्टं स भक्तो ज्ञानिनां वरः ।।५०।।
यन्मनो हरिपादाब्जे स्वप्ने ज्ञाने दिवानिशम् । पूर्वकर्मोपभोगं च बहिर्भुङ्क्ते स वैष्णवः ।।५१।।
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशत्ययम् । तं वैष्णवं महापूतं प्रवदन्ति मनीषिणः ।।५२।।
पूर्वान्सप्त परान्सप्त सप्त मातामहादिकान् । सोदरानुद्धरेद्भक्तः स्वप्रसूं च प्रसूप्रसूम् ।।५३।।
कलत्रं कन्यकां बन्धुं शिष्यं दौहित्रमात्मनः । किंकरान्किंकरीश्चैवमुद्धरेद्वैष्णवः सदा ।।५४।।
सदा वाञ्छन्ति तीर्थानि वैष्णवस्पर्शदर्शने । पापिदत्तानि पापानि तेषां नश्यन्ति सङ्गतः ।।५५।।

विप्रेन्द्र ! तुम्हारी क्या प्रशंसा करूँ ? ब्रह्मा के मन से तुम्हारा जन्म हुआ है। जिस प्रकार के कुल में जिसका जन्म होता है, उसकी बुद्धि भी वैसी ही होती है।।४३।। तुम्हारे पिता भगवान् कृष्ण के चरण-कमल की सेवा द्वारा जगत् के विधाता हुए जो निरन्तर नित्य नवधा भक्ति करते रहते हैं।।४४।। भगवान् कृष्ण की कथा में प्रेम के नाते जिसके नेत्र में आँसू और रोमांच होता रहे और मन सदैव उसी में निमग्न रहे, बुध लोग उसे ही भक्त कहते हैं।।४५।। मन, वाणी, कर्म से जो अपने पुत्र, स्त्री आदि समस्त परिवार को श्री भगवान् का ही जानता है, उसे विद्वान् लोग भक्त कहते हैं।।४६।। निर्जन स्थान एवं तीर्थों में निःसंग होकर जो सहर्ष श्री हरि के चरण-कमल का ध्यान करते हैं, वे ही वैष्णव हैं ।।४७।। जो समस्त जीवों पर दया करते हुए समस्त संसार को कृष्णमय देखता है, उसे महाज्ञानी वैष्णव भक्त कहा जाता है ।।४८।। जो भगवान् के नाम का गान, गुण-कथन, मंत्र जप और उनकी गाथाओं का श्रवण करते हैं वे महावैष्णव हैं।।४९।। प्राप्त अभीष्ट वस्तु को भगवान् को समर्पित करने के लिए जिसका मन शीघ्र हर्षित होता है वह भक्त ज्ञानियों में श्रेष्ठ है।।५०।। जिसका मन भगवान् के चरण कमल में स्वप्न, जागरण समेत रातदिन लगा रहता है और पूर्व कर्मों के फलोपभोग बाहरी मन से (उदासीन भाव से) किया करता है, वह वैष्णव है।।५१।। गुरु के मुख से जिसके कान में भगवान् का मंत्र प्रवेश करता है, उसे मनीषी गण महापूत वैष्णव कहते हैं।।५२।। वह अपनी पूर्व की सात पीढ़ियों, पर की सात पीढ़ियों, नाना कुल की सात पीढ़ियों, सोदरों तथा अपनी जननी एवं नानी का उद्धार करता है।।५३।। स्त्री, कन्या, बंधु, शिष्य, कन्या-पुत्र और नौकर–नौकरानियों का वैष्णव सदा उद्धार करता है।।५४।। वैष्णवों के दर्शन-स्पर्शन के लिए समस्त तीर्थगण नित्य लालायित रहते हैं क्योंकि उनके सम्पर्क से तीर्थों के, पापी-प्रदत्त पाप नष्ट हो जाते हैं।।५५।।

Funding by IKS-MoE

गोदोहनक्षणं यावद्यत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः। तत्र सर्वाणि तीर्थानि सन्ति तावन्महीतले ।।५६।।
ध्रुवं तत्र मृतः पापी मुक्तो याति हरेः पदम्। तथैव ज्ञानगङ्गायामन्ते कृष्णस्मृतौ यथा ।।५७।।
तुलसीकानने गोष्ठे श्रीकृष्णमन्दिरे पदे। वृन्दारण्ये हरिद्वारे तीर्थेष्वन्येषु वा यथा ।।५८।।
पापानि पापिनां यान्ति तीर्थस्नानावगाहनात्। तेषां पापानि नश्यन्ति वैष्णवस्पर्शवायुना ।।५९।।
न हि स्थातुं शक्नुवन्ति पापान्येव कृतानि च। ज्वलदग्नौ यथा क्षिप्रं शुष्काणि हि तृणानि च ।।६०।।
भक्तं वर्त्मनि गच्छन्तं ये येपश्यन्ति मानवाः। सप्तजन्मार्जिताघानि तेषां नश्यन्ति निश्चितम् ।।६१।।
ये निन्दन्ति हृषीकेशं तद्भक्तं पुण्यरूपिणम्। शतजन्मार्जितं पुण्यं तेषां नश्यति निश्चितम् ।।६२।।
ते पच्यन्ते महाघोरे कुम्भीपाके भयानके। भक्षिताः कीटसंघेन यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।६३।।
तस्य दर्शनमात्रेण पुण्यं नश्यति निश्चितम्। गङ्गां स्नात्वा रविं नत्वा तदा विद्वान्विशुध्यति ।।६४।।
वैष्णवस्पर्शमात्रेण मुक्तो भवति पातकी। तस्य पापानि हन्त्येव स्वान्तःस्थो मधुसूदनः ।।६५।।
इत्येवं कथितो विप्र विष्णुवैष्णवयोर्गुणः। अधुना श्रीहरेर्जन्म निबोध कथयामि ते ।।६६।।

इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण श्रीकृष्णजन्मखण्ड नारदनारायण विष्णुवैष्णवयोर्गुण-प्रशंसाप्रस्ताववर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

गोदोहन समय तक भी वैष्णव जहाँ ठहर जाते हैं वहाँ भूतल में समस्त तीर्थ आ जाते हैं।।५६।। वहाँ पर मरने वाला पापी उसी प्रकार मुक्त हो कर निश्चित रूप से भगवान् के लोक में जाता है जैसे अन्तकाल में श्री कृष्ण की स्मृति होने पर अथवा ज्ञान-गङ्गा में अवगाहन करने पर मनुष्य परम पद को प्राप्त हो जाता है ।।५७।। जैसे तुलसी वन, गौओं के रहने के स्थान, भगवान् श्रीकृष्ण के मन्दिर, वृन्दावन, हरिद्वार और अन्य तीर्थों में मृत्यु होने पर मनुष्य को परम धाम की प्राप्ति होती है ।।५८।। तीर्थों में स्नान करने से पापियों के पाप धुल जाते हैं। फिर उन तीर्थों के पाप वैष्णवों को छू कर बहने वाले वायु के स्पर्श से नष्ट होते हैं ।।५९।। प्रज्वलित अग्नि में सूखे तृण की भाँति उनके पाप कभी ठहर नहीं सकते हैं।।६०।। मार्ग में जाते हुए भक्त को जो लोग देखते हैं, उनके सात जन्मों के पाप निश्चित नष्ट हो जाते हैं।।६१।। जो भगवान् हृषीकेश या पुण्यस्वरूप उनके भक्त की निन्दा करते हैं, उसके सौ जन्मों के पुण्य निश्चित नष्ट हो जाते हैं।।६२।। और अंत में महाघोर एवं भीषण कुम्भीपाक नरक में सूर्य-चन्द्रमा के समय तक वे पड़े रहते हैं और कीड़े नोंच-नोंच कर उन्हें खाया करते हैं।।६३।। उनके दर्शन मात्र से पुण्य निश्चित नष्ट हो जाता है। गंगा-स्नान तथा सूर्य को नमस्कार करने पर ही वह (देखने वाला) विद्वान् शुद्ध होता है।।६४।। वैष्णव के स्पर्श मात्र से पातकी मुक्त होता है क्योंकि भगवान् मधुसूदन उनके भीतर स्थित होकर उसका समस्त पाप नष्ट कर देते हैं।।६५।। हे विप्र! इस प्रकार मैंने तुम्हें विष्णु और वैष्णव का गुण बता दिया, अब श्री हरि का जन्म कह रहा हूँ, सुनो।।६६।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में विष्णु-वैष्णव के गुणों की प्रशंसा के प्रस्ताव का वर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त।।१।।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

नारायण उवाच

येन वा प्रार्थितः कृष्ण आजगाम महीतलम् । यं यं विधाय भूमौ स जगाम स्वालयं विभुः ॥१॥
भारावतरणोपायं दुष्टानां च वधोद्यमम् । सर्वं ते कथयिष्यामि सुविचार्य विधानतः ॥२॥
अधुना गोपवेषं च गोकुलागमनं हरेः । राधा गोपालिका येन निबोध कथयामि ते ॥३॥
शङ्खचूडवधं पूर्वं संक्षेपात्कथितं श्रुतम् । अधुना तत्सुविस्तार्य निबोध कथयामि ते ॥४॥
श्रीदाम्नः कलहश्चैव बभूव राधया सह । श्रीदामा शङ्खचूडश्च शापात्तस्या बभूव ह ॥५॥
राधां शशाप श्रीदामा याहि योनिं च मानवीम् । व्रजे व्रजाङ्गना भूत्वा विचरस्व महीतले ॥६॥
भीता श्रीदामशापात्सा श्रीकृष्णं समुवाच ह । गोपीरूपा भविष्यामि श्रीदामा मां शशाप ह ॥७॥
कमुपायं करिष्यामि वद मां भयभञ्जन । त्वया विना कथमहं धरिष्यामि स्वजीवनम् ॥८॥
क्षणेन मे युगशतं कालं नाथ त्वया विना । चक्षुर्निमेषविरहाद्भवेद्दग्धं मनो मम ॥९॥
शरत्पार्वणचन्द्राभं सुधापूर्णाननं तव । नाथ चक्षुश्चकोराभ्यां पिबाम्यहमहर्निशम् ॥१०॥
त्वमात्मा मे मनः प्राणा देहमात्रं वहाम्यहम् । दृष्टिशक्तिश्च चक्षुस्त्वं जीवनं परमं धनम् ॥११॥

अध्याय २

विरजा नामक गोपी का नदी-रूप धारण

श्री नारायण बोले—जिसकी प्रार्थना वश भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वी पर आये और पृथ्वी पर जो-जो कार्य करके अपने लोक को चले गए; जैसे पृथ्वी का भार उतारना, दुष्टों के वध तथा पृथ्वी के भार उतारने का उपाय एवं दुष्टों के वध का प्रयत्न; इन सबको भली भाँति विचार कर सविधान मैं कहूँगा ॥१-२॥ इस समय भगवान् का गोप-वेश और गोकुल में आगमन तथा जिस कारण से राधा गोपी होकर अवतरित हुई हैं, मैं कह रहा हूँ, सुनो ॥३॥ मैंने शंखचूड़ का वध संक्षेप में पहले सुना दिया था, अब उसी को विस्तार से कह रहा हूँ, सुनो ॥४॥ एक बार श्रीदामा का राधा के साथ झगड़ा हुआ, उसी में राधा के शाप से श्रीदामा शंखचूड़ होकर उत्पन्न हुए ॥५॥ श्रीदामा ने भी राधा को शाप दिया था कि—तू भी मनुष्य होकर उत्पन्न हो—व्रज में स्त्री बन कर वहाँ की भूमि में विचरण करो ॥६॥ अनन्तर श्रीदामा के शाप से भयभीत होकर राधा ने श्रीकृष्ण से कहा कि—'मुझे श्रीदामा के शाप से गोपी होना पड़ेगा।' भवभंजन! अब कौन उपाय करूँ, बताने की कृपा करो, क्योंकि तुम्हारे बिना मैं अपना जीवन धारण कैसे कर सकती हूँ ॥७-८॥ हे कालनाथ! तुम्हारे बिना एक क्षण भी मुझे सैकड़ों युग के समान बीतता है, नेत्र-निमेष मात्र वियोग होने से तो मेरा मन जलने लगता है ॥९॥ हे नाथ! शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान कान्ति और सुधा से पूर्ण आपके मुख (-सौन्दर्य) का मैं रातदिन अपने नेत्र रूपी चकोर से पान करती हूँ ॥१०॥ तुम मेरे आत्मा, मन और प्राण हो, मैं केवल इस देहमात्र का वहन करती हूँ। अतः तुम्हीं मेरी दृष्टि-शक्ति, नेत्र और परम जीवन धन हो ॥११॥ सोते-जागते सभी समय तुम्हीं में अपना मन लगा कर तुम्हारे चरण-कमल

Funding by IKS-MoE

स्वप्ने ज्ञाने त्वयि मनः स्मरामि त्वत्पदाम्बुजम् । तव दास्यं विना नाथ न जीवामि क्षणं विभो ॥१२॥
कृष्णस्तद्वचनं श्रुत्वा बोधयामास सुन्दरीम् । वक्षसि प्रेयसीं कृत्वा चकार निर्भयां च ताम् ॥१३॥
महीतलं गमिष्यामि वाराहे च वरानने । त्वया सार्धं भूगमनं जन्म तेऽपि निरूपितम् ॥१४॥
व्रजं गत्वा व्रजे देवि विहरिष्यामि कानने । मम प्राणाधिका त्वं च भयं किं ते मयि स्थिते ॥१५॥
तामित्युक्त्वा हरिस्तत्र विरराम जगत्पतिः । अतो हेतोर्जगन्नाथो जगाम नन्दगोकुलम् ॥१६॥
किं वा तस्य भयं कंसाद्भयान्तकारकस्य च । मायाभयच्छलेनैव जगाम राधिकान्तिकम् ॥१७॥
विजहार तया सार्धं गोपवेषं विधाय सः । सह गोपाङ्गनाभिश्च प्रतिज्ञापालनाय च ॥१८॥
ब्रह्मणा प्रार्थितः कृष्णः समागत्य महीतलम् । भारावतरणं कृत्वा जगाम स्वालयं विभुः ॥१९॥

नारद उवाच

श्रीदाम्नः कलहश्चैव कथं वा राधया सह । संक्षेपात्कथितं पूर्वं संव्यस्य कथयाधुना ॥२०॥

नारायण उवाच

एकदा राधया सार्धं गोलोके श्रीहरिः स्वयम् । विजहार महारण्ये[1] निर्जने रासमण्डले ॥२१॥
राधिका सुखसंभोगाद्बुबुधे न स्वकं परम् । कृत्वा विहारं श्रीकृष्णस्तामपृष्ट्वा विहाय च ॥२२॥

का स्मरण किया करती हूँ। हे नाथ ! हे विभो ! विना तुम्हारी सेवा के मैं क्षण भर भी जी नहीं सकती ॥१२॥ अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने उनकी बातें सुनकर उस सुन्दरी को समझाया। प्रेयसी को अपने अंक से लगाते हुए उसे निर्भय किया और कहा—हे सुमुखी ! वाराह कल्प में मैं भी पृथ्वी-तल पर चलूंगा उसी समय मेरे साथ तुम्हारा भी जन्म भूतल पर होगा ॥१३-१४॥ हे देवि! व्रज में हम लोग चल कर जंगल में विहार करेंगे। तुम मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो, अतः मेरे रहते तुम्हें भय क्या है ॥१५॥ जगत्पति भगवान् इतना कह कर चुप हो गए। इसी कारण जगन्नाथ भगवान् ने गोकुल में गमन किया ॥१६॥ भयनाशक भगवान् को कंस से भय क्या हो सकता है ? वे मायिक भय के बहाने ही राधा के समीप गये और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए उनके साथ तथा गोपियों के साथ वहाँ विहार किया ॥१७-१८॥ ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने पृथ्वी पर आकर इसका भार उतारा और अंत में पुनः अपने लोक चले गये ॥१९॥

नारद बोले—श्रीदामा और राधा का कलह आपने पहले संक्षेप में कहा था, अतः इस समय इसे पुनः विस्तारपूर्वक सुनाने की कृपा करें ॥२०॥

श्री नारायण बोले—एक बार भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं गोलोक में रासमण्डल में निर्जन महावन में विहार किया ॥२१॥ राधिका को सुख सम्भोग में निमग्न होने के कारण अपने पराये का ज्ञान नहीं रहा, इसीलिए

---

[1] क. रम्ये।

Funding by IKS-MoE

गोपिकां विरजामन्यां श्रृङ्गारार्थं जगाम ह । वृन्दारण्ये च विरजा सुभगा राधिकासमा ॥२३॥
तस्या वयस्याः सुन्दर्यो गोपीनां शतकोटयः । कृष्णप्राणाधिका गोपी धन्या मान्या च योषिताम् ॥२४॥
रत्नसिंहासनस्था सा ददर्श हरिमन्तिके । ददर्श श्रीहरिस्तां च शरच्चन्द्रनिभाननाम् ॥२५॥
मनोहरां सस्मितां च पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा । सदा षोडशवर्षीयां प्रोद्भिन्नवयौवनाम् ॥२६॥
रत्नालंकारशोभाढ्यां भूषितां शुक्लवाससा । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गीं कामबाणप्रपीडिताम् ॥२७॥
दृष्ट्वा तां श्रीहरिस्तूर्णं विजहार तया सह । पुष्पतल्पे महारण्ये निर्जने रत्नमण्डपे ॥२८॥
मूर्च्छामवाप विरजा कृष्णशृङ्गारकौतुकात् । कृत्वा वक्षसि प्राणेशं कोटिकन्दर्पसंनिभम् ॥२९॥
तया सक्तं श्रीहरिं च रत्नमण्डपसंस्थितम् । दृष्ट्वा च राधिकाल्यश्च चक्रुस्तां च निवेदनम् ॥३०॥
तासां च वचनं श्रुत्वा सुष्वाप च चुकोप ह । भृशं रुरोद सा देवी रक्तपङ्कजलोचना ॥३१॥
ता उवाच महादेवी मां तं दर्शयितुं क्षमाः । यदि सत्यं ब्रूत यूयं मया सार्धं प्रयच्छत ॥३२॥
करिष्यामि फलं गोप्याः कृष्णस्य च यथोचितम् । को रक्षिताऽद्य तस्याश्च मयि शास्ति प्रकुर्वति ॥३३॥
शीघ्रमानयताल्यश्च तया सार्धं हरिं प्रियम्[1] । अन्तर्वक्रं सस्मितं च विषकुम्भं सुधामुखम् ॥३४॥

विहार करने के उपरांत भगवान् श्रीकृष्ण बिना उनसे पूछे उन्हें छोड़ कर एक अन्य विरजा गोपी के साथ श्रृंगार-संभोग करने के लिए चले गये। वह राधा के समान सुन्दरी थी और वृन्दावन में रहती थी ॥२२-२३॥ सौ करोड़ गोप-सुन्दरियाँ उसकी सखी थीं। वह गोपी भगवान् कृष्ण की प्राणों से भी अधिक प्रिय और स्त्रियों में धन्य-मान्य थी ॥२४॥ रत्नसिंहासन पर बैठी हुई उसने भगवान् को अपने समीप आए हुए देखा और भगवान् ने भी उस गोपी का शारदीय चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख देखा ॥२५॥ मनोहर, मन्द मुसुकान एवं कटाक्ष करती हुई, सदा सोलह वर्ष की, प्रस्फुटित नवयौवन से युक्त, रत्नों के आभूषणों की शोभा से सम्पन्न शुक्ल वस्त्र से विभूषित, सर्वांग में रोमांच से युक्त और कामबाण से पीड़ित उसे देखकर भगवान् ने निर्जनमहारण्यवर्ती रत्नमण्डप में पुष्प-शय्या पर उसके साथ शीघ्र विहार करना प्रारम्भ कर दिया ॥२६-२८॥ करोड़ों काम के समान सुन्दर एवं प्राणेश कृष्ण को छाती से चिपका कर रति-क्रीड़ा करती हुई विरजा कृष्ण की श्रृंगार-चेष्टाओं के कौतुकवश मूर्च्छित हो गयी—किन्तु भगवान् उसी से लिपटे उस रत्नमण्डप में पड़े रहे। राधिका की सखियों ने यह दृश्य देख कर राधिका जी से निवेदन कर दिया ॥२९-३०॥ उनकी बातें सुन कर राधा सो गईं और कुपित हुईं। उन्होंने अत्यन्त रोदन किया। जिससे उनके नेत्र रक्तकमल की भाँति हो गये ॥३१॥ महादेवी ने सहेलियों से कहा—'तुम लोग यदि सत्य कह रही हो, तो मेरे साथ चलो और मुझे दिखाओ—मैं उस गोपी समेत कृष्ण को भी इसका उचित फल प्रदान करूँगी (अच्छा मजा चखाऊँगी) । देखती हूँ, मेरे शासन करने पर आज कौन उसकी रक्षा करता है' ॥३२-३३॥ सखियो ! उस गोपी समेत प्रिय हरि को शीघ्र लाओ, जो भीतर से कुटिल, मन्द मुसकान से युक्त और विष से भरे तथा मुह में अमृत रखे हुए घड़े के समान हैं। किन्तु तुम लोग दास को मेरे आश्रय में आने नहीं दोगी, अतः उसी रमणीय मण्डप में जाओ और प्रभु की सुरक्षा

---

[1] क. प्रियाः।

मदाश्रयं समागन्तुं यूयं दासं न दास्यथ । तमेव मण्डपं रम्यं यात संरक्षतेश्वरम् ॥३५॥
राधिकावचनं श्रुत्वा काश्चिद्गोप्यो भयान्विताः । ताः सर्वाः संपुटाञ्जलयो भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥३६॥
तामूचुः पुरतः स्थित्वा सर्वा एव प्रियां सतीम् ॥३७॥

आल्य ऊचुः

वयं तं दर्शयिष्यामो विरजासहितं विभुम् ।
तासां च वचनं श्रुत्वा रथमारुह्य सुन्दरी । जगाम सार्धं गोपीभिस्त्रिषष्टिशतकोटिभिः ॥३८॥
रत्नेन्द्रसाररचितं कोटिसूर्यसमप्रभम् मणीन्द्रसाररचितं कलशानां त्रिकोटिभिः ॥३९॥
राजितं चित्रराजीभिर्वैजयन्तीविराजितम् । लक्षचक्रसमायुक्तं मनोयायि मनोहरम् ॥४०॥
मणिसारविकारैश्च कोटिस्तम्भैः सुशोभितम् । नानाचित्रविचित्रैश्च सहितैः सुमनोहरैः ॥४१॥
सिन्दूराकारमणिभिर्मध्यदेशे विभूषितैः । रत्नकृत्रिमसिंहैश्च रथचक्रोर्ध्वसंस्थितैः ॥४२॥
चतुर्लक्षपरिमितैश्चित्रघण्टासमन्वितैः । चित्रपुत्तलिशोभाढ्यैर्विचित्रैश्च विराजितम् ॥४३॥
रतिमन्दिरलक्षैश्च रत्नसारविनिर्मितैः । मणिसारकपाटैश्च शोभितैश्चित्रवाजिभिः ॥४४॥
मणीन्द्रसारकलशैः शेखरोज्ज्वलितैर्युतम् । भोगद्रव्यसमायुक्तं वेषद्रव्यसमन्वितम् ॥४५॥
शोभितं रत्नशय्याभी रत्नपात्रघटान्वितम् । हरिन्मणीनां वेदीनां समूहेन समन्वितम् ॥४६॥
कुङ्कुमाभमणीनां च सोपानकोटिभिर्युतम् । स्यमन्तकैः कोस्तुभैश्च रुचकैः प्रवरैस्तथा ॥४७॥

करो।' ॥३४-३५॥ राधिका की ऐसी बातें सुन कर कुछ गोपियाँ बहुत भयभीत हुईं। अनन्तर सभी ने हाथ जोड़े, भक्ति से कन्धे झुकाये, सामने खड़ी होकर उन सती एवं प्रिय राधिका से कहा—॥ ३६–३७ ॥

सखियाँ बोलीं—विरजा समेत भगवान् को हम सब अवश्य दिखा देंगी। उनकी बातें सुनकर सुन्दरी राधा ने तिरसठ अरब सखियों समेत रथ पर बैठ कर वहाँ प्रस्थान किया ॥३८॥ वह रथ रत्नों के उत्तम भाग से रचित, करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण, मणियों के उत्तम भाग से निर्मित, तीन करोड़ कलशों से सुशोभित, चित्रों की पंक्तियों तथा पताकाओं से विभूषित, एक लाख चक्के से युक्त, मन की भाँति वेगगामी, मनोहर, मणियों के सार भाग से बने करोड़ों स्तम्भों से सुशोभित, अनेक भाँति की चित्र-विचित्र कलाओं से पूर्ण, अति मनोहर, मध्य भाग में सिन्दूर जैसे आकार वाली मणियों से शोभित, रथ के चक्के के ऊपर रत्नों के कृत्रिम सिंहों से विराजित, चित्रघंटा समेत चार लाख सुन्दर चित्र-विचित्र तस्वीरों और पुतलियों से सुशोभित, चित्र के सुन्दर घोड़ों तथा मणियों के सार भाग के बने कपाटों वाले रत्न-निर्मित लाखों रति-मन्दिरों से युक्त, उज्ज्वल शिखर वाले कलशों से युक्त, तथा उपभोग की वस्तुओं, वेष रचना की वस्तुओं, रत्नों की शय्याओं, रत्नों के पात्रों एवं घड़ों तथा पन्नों की बनी चौकियों के समूहों से युक्त था ॥३९-४६॥ कुंकुम के समान कान्तिपूर्ण मणियों के करोड़ों सोपान (सीढ़ियों) से, स्यमंतक, कौस्तुभ, आदि मणियों और करोड़ों कृत्रिम कमलों से

Funding by IKS-MoE

पद्मकृत्रिमकोटीनां शतकैश्च सुशोभितम् । चित्रकाननवापीभिर्विशिष्टाभिर्विराजितम् ॥४८॥
रत्नेन्द्रसाररचितकलशोज्ज्वलशेखरम् । शतयोजनमूर्ध्वं च दशयोजनविस्तृतम् ॥४९॥
पारिजातप्रसूनानां मालाकोटिविराजितम् । कुन्दानां करवीराणां यूथिकानां तथैव च ॥५०॥
सुचारुचम्पकानां च नागेशानां मनोहरैः । मल्लिकानां मालतीनां माधवीनां सुगन्धिनाम् ॥५१॥
कदम्बानां च मालानां कदम्बैश्च विराजितम् । सहस्रदलपद्मानां मालाभिश्च विराजितम् ॥५२॥
चित्रपुष्पोद्यानसरःकाननैश्च विभूषितम् । सर्वेषां स्यन्दनानां च श्रेष्ठं वायुवहं परम् ॥५३॥
तत्सूक्ष्मवस्त्रसाराणां वरैराच्छादितं परम् । रत्नदर्पणलक्षाणां शतकैश्च समन्वितम् ॥५४॥
श्वेतचामरकोटीभिर्वज्रमुष्टिभिरन्वितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितैः ॥५५॥
पारिजातप्रसूनानां कोटितल्पविराजितम् । कोटिघण्टासमायुक्तं पताकाकोटिभिर्युतम् ॥५६॥
रत्नशय्याकोटिभिश्च चित्रवज्रपरिच्छदैः । चन्दनाक्तैश्चम्पकानां कुङ्कुमैश्च विचित्रितैः ॥५७॥
पुष्पोपधानसंयुक्तैः शृङ्गाराहैभिरन्वितम् । अदृश्यैरश्रुतैर्द्रव्यैः सुन्दरैश्च विभूषितम् ॥५८॥
एवंभूताद्रथात्तूर्णमवरुह्य हरिप्रिया । जगाम सहसा देवी तं रत्नमण्डपं मुने ॥५९॥
द्वारे नियुक्तं ददृशे द्वारपालं मनोहरम् । लक्षगोपैः परिवृतं स्मेराननसरोरुहम् ॥६०॥
गोपं श्रीदामनामानं श्रीकृष्णप्रियकिंकरम् । तमुवाच रुषा देवी रक्तपङ्कजलोचना ॥६१॥
गच्छ दूरं गच्छ दूरं रतिलम्पटकिंकर । कीदृशीं मत्परां कान्तां द्रक्ष्यामि त्वत्प्रभोरहम् ॥६२॥

सुशोभित, चित्र विचित्र एवं विशिष्ट वनों, एवं बावलियों से युक्त तथा रत्नों के सार भाग के बने कलशों के उज्ज्वल शिखरभाग से समन्वित था। वह सौ योजन ऊँचा और दश योजन विस्तृत था ॥४७-४९॥ पारिजात पुष्पों की करोड़ों मालाओं तथा कुंद, करवीर (कनेर), जूही, सुन्दर चम्पा, मनोहर नागकेशर, मल्लिका, मालती, सुगन्धित माधवी और कदम्ब की मालाओं से सुशोभित, सहस्र दल वाले कमलों की मालाओं, चित्र पुष्पोद्यानों, तालाबों, एवं वनों से विभूषित और सभी रथों में श्रेष्ठ एवं वायु की भाँति अति वेग से चलने वाला था ॥५०-५३॥ वह अतिसूक्ष्म उत्तम वस्त्रों से आच्छादित, सौ लाख रत्नों के दर्पणों से युक्त, एक करोड़ वज्र मणिनिर्मित मूंठ वाले श्वेत चामरों से युक्त, चन्दन, अगर, कस्तूरी एवं कुंकुम आदि के लेपों से चर्चित, पारिजात पुष्पों की करोड़ों शय्याओं, करोड़ों घंटाओं, करोड़ों पताकाओं से सुसज्जित, रत्नों की करोड़ों शय्याओं, चित्र वज्रमणि की झालरों, चन्दनलिप्त चम्पकों, विचित्र कुंकुमों, पुष्पों के उपधानों (तकियों-मसनदों), शृंगार की वस्तुओं, अदृश्यों (जो कभी देखे न गये हों) एवं अश्रुतों (जो कने सुने न गये हों ऐसे) सुन्दर पदार्थों से सुभूषित था ॥५४-५८॥ हे मुने! इस प्रकार के रथ से शीघ्र उतर कर भगवान् की प्रिया राधा उस रत्न-मण्डप में सहसा पहुँच गयीं ॥५९॥ वहाँ दरवाजे पर एक सुन्दर द्वारपाल को देखा, जो एक लाख गोपों से घिरा हुआ तथा मुस्कराते हुए मुखारविन्द से युक्त था ॥६०॥ श्रीकृष्ण के प्रिय किंकर श्रीदामा नामक गोप को देख कर राधा देवी ने रक्तकमल के समान नेत्र किए क्रुद्ध भाव से उससे कहा—हे रति-लम्पट के किंकर! शीघ्र दूर हटो, मैं तुम्हारे प्रभु की श्रेष्ठ प्रिया को, जो मुझसे भी बढ़कर है, देखूंगी कि वह कैसी है ॥६१-६२॥ राधिका

राधिकावचनं श्रुत्वा निःशङ्कः पुरतः स्थितः। तामेव न ददौ गन्तुं वेत्रपाणिर्महाबलः ॥६३॥
तूर्णं च राधिकाल्यश्च श्रीदामानं सकिंकरम्। बलेन प्रेरयामासुः कोपेन स्फुरिताधराः ॥६४॥
श्रुत्वा कोलाहलं शब्दं गोपिकानां हरिः स्वयम्। ज्ञात्वा च कोपितां राधामन्तर्धानं चकार ह ॥६५॥
विरजा राधिकाशब्दादन्तर्धानं हरेरपि। दृष्ट्वा राधां भयार्ता सा जहौ प्राणांश्च योगतः ॥६६॥
सद्यस्तत्र सरिद्रूपं तच्छरीरं बभूव ह। व्याप्तं च वर्तुलाकारं तया गोलोकमेव च ॥६७॥
कोटियोजनविस्तीर्णं प्रस्थेऽतिनिम्नमेव च। दैर्घ्ये दशगुणं चारु नानारत्नाकरं परम् ॥६८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० विरजानदप्रस्ताववर्णनं
नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

नारायण उवाच

राधा रतिगृहं गत्वा न ददर्श हरिं मुने। विरजां च सरिद्रूपां दृष्ट्वा गेहं जगाम सा ॥१॥
श्रीकृष्णो विरजां दृष्ट्वा सरिद्रूपां प्रियां सतीम्। उच्चै रुरोद विरजातीरे नीरमनोहरे ॥२॥

की बातें सुनकर हाथ में बेंत लिए उस महाबली ने उन्हें भीतर नहीं जाने दिया। वह आकर उनके सामने निःशंक खड़ा हो गया ॥६३॥ अनन्तर राधिका की सहेलियों ने शीघ्रता से किंकर समेत श्रीदामा को बलपूर्वक हटा दिया। उस समय गोपियों के अधरोष्ठ कोप से फड़फड़ा रहे थे ॥६४॥ गोपियों के इस कोलाहल को सुन कर भगवान् स्वयं राधा को क्रुद्ध जान कर अन्तर्हित हो गए, और विरजा भी राधा के (रोषपूर्ण) शब्दों द्वारा भगवान् को अन्तर्हित देख कर इतना भयभीत हुई कि योग द्वारा उसने अपने प्राण ही छोड़ दिये ॥६५–६६॥ अनन्तर उसकी देह तुरन्त नदीरूप हो गयी, जिसने वर्तुला (गोला) कार होकर गोलोक को व्याप्त कर लिया तथा जो करोड़ योजन चौड़ी, समतल में बहुत गहरी, चौड़ाई से दसगुनी लम्बी, विविध रत्नों की खान तथा सुन्दर है ॥६७-६८॥ सुन्दर है।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारद - नारायण - संवाद में विरजा का
नद - प्रस्ताव - वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

अध्याय ३

राधा और श्रीदामा का परस्पर शाप

श्रीनारायण बोले—हे मुने! राधा ने रति-गृह में जाकर भगवान् को नहीं देखा और विरजा का नदी रूप देखकर अपने भवन लौट गयीं ॥१॥ अनन्तर श्रीकृष्ण ने अपनी प्रेयसी विरजा को नदी रूप में देख कर उसके जल से मनोहर

समान्तिकं समागच्छ प्रेयसीनां परे वरे। त्वया विनाऽहं सुभगे कथं जीवामि सुन्दरि॥३॥
नद्यधिष्ठात्रि देवि त्वं भव मूर्तिमती सती। ममाऽऽशिषा रूपवती सुन्दरी योषितां वरा॥४॥
पूर्वरूपाच्च सौभाग्यादिदानीं सुभगा भव। पुरातनं शरीरं ते सरिद्रूपमभूत्सति॥५॥
जलादुत्थाय चाऽऽगच्छ विधाय तनुमुत्तमाम्। अष्टौ सिद्धीर्मया दत्ताः सुरसुन्दरि सत्वरम्॥६॥
कृष्णाज्ञया च विरजा विधाय तनुमुत्तमाम्। आजगाम हरेरग्रे साक्षाद्राधेव सुन्दरी॥७॥
पीतवस्त्रपरीधाना स्मेराननसरोरुहा। पश्यन्तं प्राणनाथं च पश्यन्ती वक्रचक्षुषा॥८॥
नितम्बश्रोणिभारार्ता पीतोन्नतपयोधरा। मानिनी मानिनीनां च गजेन्द्रमन्दगामिनी॥९॥
सुन्दरी सुन्दरीणां च धन्या मान्या च योषिताम्। चारुचम्पकवर्णाभा पक्वबिम्बाधरा वरा॥१०॥
पक्वदाडिमबीजाभदन्तपङ्क्तिमनोहरा। शरत्पार्वणचन्द्रास्या फुल्लेन्दीवरलोचना॥११॥ इन्दीवर
कस्तूरीबिन्दुना सार्धं सिन्दूरबिन्दुभूषिता। चारुपत्रकशोभाढ्या सुचारुकबरीयुता॥१२॥ ब
रत्नकुण्डलगण्डस्था भूषिता रत्नमालया। गजमौक्तिकनासाग्रा मुक्ताहारविराजिता॥१३॥
रत्नकंकणकेयूरचारुशङ्खकरोज्ज्वला। किंकिणीजालशब्दाढ्या रत्नमञ्जीररञ्जिता॥१४॥ मंजीर-
तां च रूपवतीं दृष्ट्वा प्रेमोद्रेकाज्जगत्पतिः। चकाराऽऽलिङ्गनं तूर्णं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः॥१५॥

तट पर उच्च स्वर से रोदन करना आरम्भ किया, कहा—'प्रेयसियों में अतिश्रेष्ठे! तुम शीघ्र मेरे पास आ जाओ, हे सुभगे, हे सुन्दरि! तुम्हारे बिना मैं जीवित कैसे रहूँगा?॥२-३॥ तुम नदियों की मूर्तिमती अधिष्ठात्री हो जाओ। मेरे आशीर्वाद से परम सुन्दरी स्त्री हो जाओ। सौभाग्यवश तुम अपने पहले के रूप से अधिक मनोहर बनो, तुम्हारा पुराना शरीर नदी बन गया है। अतः अब उत्तम शरीर धारण कर जल से निकल कर शीघ्र आओ। हे सुरसुन्दरि! इसीलिए मैंने तुम्हें आठों सिद्धियाँ प्रदान की हैं ॥४-६॥ अनन्तर श्रीकृष्ण की आज्ञा से विरजा साक्षात् राधा के समान सुन्दरी बनकर उनके सामने आकर खड़ी हो गयी ॥७॥ पीताम्बर पहने, मुसकराते हुए मुखकमल वाली वह ताकते हुए प्राणनाथ को कटाक्षों से देखने लगी ॥८॥ वह नितम्ब और श्रोणी के भार से दबी हुई, मोटे और उन्नत स्तनों वाली, मानिनी स्त्रियों में प्रमुख मानिनी, गजराज की भाँति मन्द-मन्द चलने वाली, सुन्दरियों में सुन्दरी और स्त्रियों में धन्या-मान्या थी। चारु चम्पा के समान उसका रूप-रंग, पके बिम्बा के समान अधर, पके अनार के समान दाँतों की मनोहर पंक्तियाँ, शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख और खिले कमल की भाँति आँखें थीं। कस्तूरी की बिन्दी के साथ सिन्दूर बिन्दी से भूषित, चारु पत्र (कामकला) से अलंकृत, अति मनोहर केशपाश से युक्त, रत्नों के कुण्डलों से भूषित कपोल वाली, रत्नों की माला, नासिका के अग्र भाग में गजमुक्ता तथा कण्ठ में मोती के हार से भूषित, रत्नों के कंकण, केयूर और शंखाभूषण से उज्ज्वल हाथ वाली तथा किंकणी के समूहों के शब्दों और रत्नों के नूपुरों की ध्वनि से सुशोभित थी॥९-१४॥ उस सुन्दरी को देख कर प्रेमातिरेक होने से जगत्पति भगवान् ने सहसा उसका आलिंगन और बार-बार चुम्बन किया ॥१५॥ प्रभु ने एकान्त में उस प्रेयसी को पाकर विपरीत आदि अनेक

नानाप्रकारशृङ्गारं विपरीतादिकं विभुः। रहसि प्रेयसीं प्राप्य चकार च पुनः पुनः ।।१६।।
विरजा सा रजोयुक्ता धृत्वा वीर्यममोघकम्। सद्यो बभूव तत्रैव धन्या गर्भवती सती ।।१७।।
दधार गर्भमीशस्य दिव्यं वर्षशतं च सा। ततः सुषाव तत्रैव पुत्रान्सप्त मनोहरान् ।।१८।।
माता सा सप्तपुत्राणां श्रीकृष्णस्य प्रिया सती। तस्थौ तत्र सुखासीना सार्धं पुत्रैश्च सप्तभिः ।।१९।।
एकदा हरिणा सार्धं वृन्दारण्ये च निर्जने। विजहार पुनः साध्वी शृङ्गारासक्तमानसा ।।२०।।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र मातुः क्रोडं जगाम ह। कनिष्ठपुत्रस्तस्याश्च भ्रातृभिः पीडितो भिया ।।२१।।
भीतं स्वतनयं दृष्ट्वा तत्याज तां कृपानिधिः। क्रोडे चकार बालं सा कृष्णो राधागृहं ययौ ।।२२।।
प्रबोध्य बालं सा साध्वी न ददर्शान्तिके प्रियम्। विललाप भृशं तत्र शृङ्गारातृप्तमानसा ।।२३।।
शशाप स्वसुतं कोपाल्लवणोदो भविष्यसि। कदाऽपि ते जलं केचिन्न खादिष्यन्ति जीविनः ।।२४।।
शशाप बालान्सर्वांश्च यान्तु मूढा महीतलम्। गच्छध्वं च महीं मूढ जम्बुद्वीपं मनोहरम् ।।२५।।
स्थितिर्नैकत्र युष्माकं भविष्यति पृथक्पृथक्। द्वीपे द्वीपे स्थितिं कृत्वा तिष्ठन्तु सुखिनः सदा ।।२६।।
द्वीपस्थाभिर्नदीभिश्च सह क्रीडन्तु निर्जने। कनिष्ठो मातृशापाच्च लवणोदो बभूव ह ।।२७।।
कनिष्ठः कथयामास मातृशापं च बालकान्। आजग्मुर्दुःखिताः सर्वे मातृस्थानं च बालकाः ।।२८।।

प्रकार की रति बार-बार उसके साथ की ।।१६।। अनन्तर उनका अमोघ वीर्य धारण करने से सती विरजा उसी क्षण गर्भवती हो गयी ।।१७।। ईश्वर का अमोघ वीर्य उसने दिव्य सौ वर्ष तक धारण किया और पश्चात् अति मनोहर सात पुत्रों को जन्म दिया ।।१८।। भगवान् श्रीकृष्ण की वह प्रेयसी पत्नी, जो सात पुत्रों की माता हुई, अपने सातों पुत्रों समेत सुखपूर्वक वहाँ रहने लगी ।।१९।। श्रृंगार में आसक्त रहने के नाते एक बार भगवान् के साथ निर्जन वृन्दावन में घूमती हुई वह पुनः उनके साथ विहार करने लगी ।।२०।। उसी बीच कनिष्ठ (छोटा) पुत्र भ्राताओं द्वारा पीड़ित एवं भयभीत होकर माता के पास आया और गोद में बैठ गया ।।२१।। कृपानिधान भगवान् ने अपने पुत्र को भीत देखकर विरजा का त्याग कर दिया। उसने अपने बालक को गोद में उठाया कि कृष्ण राधा के घर चले गये। बालक को समझा-बुझाकर शांत करने के उपरांत वह अपने प्राणेश्वर भगवान् को अपने समीप न देखकर श्रृंगारोपभोग से अतृप्त मन रहने के कारण अत्यन्त विलाप करने लगी ।।२२-२३।। तब अपने उस छोटे पुत्र को उसने शाप दिया कि—"तुम लवण सागर (खारा समुद्र) हो जाओ, जिससे कोई भी जीव तुम्हारा जल पान नहीं करेगा ।।२४।। फिर अन्य पुत्रों को भी शाप दिया कि—मूढ़! तुम लोग भूतल पर चले जाओ। मनोहर जम्बूद्वीप में पहुँचने पर तुम मूर्खों की स्थिति एकत्र न रह जायगी। पृथक्-पृथक् द्वीपों में अपनी स्थिति करके तुम लोग वहाँ सदा सुखपूर्वक निवास करोगे और निर्जन स्थान में रहते हुए, द्वीप की नदियों के साथ क्रीड़ा करोगे।" इस प्रकार वह कनिष्ठ (छोटा) पुत्र माता के शाप से लवण-सागर हो गया ।।२५-२७।। अनन्तर उस कनिष्ठ पुत्र ने सभी बालकों को माता का शाप कह सुनाया, जिससे दुःखी होकर सभी बालक माता के पास आये और वहाँ अपने सम्बन्ध की विशेष बातें सुनने पर भक्तिपूर्वक शिर

श्रुत्वा विवरणं सर्वे प्रजग्मुर्धरणीतलम्। प्रणम्य चरणं मातुर्भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ॥२९॥
सप्तद्वीपसमुद्राश्च सप्त तस्थुर्विभागशः। कनिष्ठाद्वृद्धपर्यन्तं द्विगुणं द्विगुणं मुने ॥३०॥
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवाः। एतेषां च जलं पृथ्व्यां सस्यार्थं च भविष्यति ॥३१॥
व्याप्ताः समुद्राः सप्तैव सप्तद्वीपां वसुन्धराम्। रुरुदुर्बालकाः सर्वे मातृभ्रातृशुचाऽन्विताः ॥३२॥
रुरोद च भृशं साध्वी पुत्रविच्छेदकातरा। मूर्च्छामवाप शोकेन पुत्राणां भर्तुरेव च ॥३३॥
तां शोकसागरे मग्नां विज्ञाय राधिकापतिः। आजगाम पुनस्तस्याः स्मेराननसरोरुहः ॥३४॥
दृष्ट्वा हरिं सा तत्याज शोकं रोदनमेव च। आनन्दसागरे मग्ना दृष्ट्वा कान्तं बभूव ह ॥३५॥
चकार श्रीहरिं क्रोडे विजहार स्मरातुरा। तां च पुत्रपरित्यक्तां हरिस्तुष्टो बभूव ह ॥३६॥
वरं तस्यै ददौ प्रीत्या प्रसन्नवदनेक्षणः। कान्ते नित्यं तव स्थानमागमिष्यामि निश्चितम् ॥३७॥
यथा राधा तत्समा त्वं भविष्यसि प्रिया मम। पुत्रान्द्रक्ष्यसि नित्यं त्वं मद्वरस्य प्रसादतः ॥३८॥
इत्युक्तवन्तं श्रीकृष्णं वसन्तं विरजान्तिके। दृष्ट्वा राधावयस्याश्च कथयामासुरीश्वरीम् ॥३९॥
श्रुत्वा रुरोष सा देवी सुष्वाप क्रोधमन्दिरे। एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो जगाम राधिकान्तिकम् ॥४०॥
स तस्थौ राधिकाद्वारे श्रीदाम्ना सह नारद। रासेश्वरी हरिं दृष्ट्वा रुष्टोवाच[1] प्रियं पुरः ॥४१॥

झुकाये माता की चरण-वन्दना करते हुए उन लोगों ने भूतल के लिए प्रस्थान किया ॥२८-२९॥ हे मुने! इस प्रकार वे विभागपूर्वक सात द्वीपों में, सात समुद्र होकर स्थित हुए और कनिष्ठ से ज्येष्ठ तक के एक दूसरे का क्षेत्रफल क्रमशः दुगुना-दुगुना हो गया। वे लवण (खारा) इक्षु (ऊख), सुरा (मद्य), सर्पि (घृत), दही, दूध और जल नामक समुद्र हुए। पृथिवी पर इनका जल खेतों के लिए विशेष हितकर होगा ॥३०-३१॥ उन सातों समुद्रों ने सातों द्वीपवाली पृथिवी को व्याप्त कर लिया। (अनन्तर चलते समय) सब ने माता और भ्राताओं के शोक से दुःखी होकर रोदन किया। और वह पतिव्रता तो पुत्रों तथा पति के वियोग-दुःख से अधीर होकर रोदन करते-करते मूर्च्छित हो गई ॥३२-३३॥ उसे शोक-सागर में निमग्न जानकर राधिका-पति भगवान् श्रीकृष्ण पुनः उसके पास आये, जिनका मुखारविन्द मन्द हास कर रहा था ॥३४॥ अपने कान्त भगवान् को देखते ही उसने शोक और रोदन दोनों का त्याग कर दिया, आनन्द-सागर में वह मग्न हो गयी। कामपीड़ित होने के नाते उसने भगवान् को अपने अंक में कस लिया और उस समय उस पुत्र-परित्यक्ता के ऊपर भगवान् भी प्रसन्न हो रहे थे ॥३५-३६॥ अनन्तर अपने मुख और नेत्र से प्रसन्नता प्रकट करते हुए भगवान् ने उससे प्रीति-पूर्वक कहा—'कान्ते! मैं नित्य तुम्हारे स्थान पर निश्चित रूप से आऊँगा। राधा के समान ही तुम मेरी प्रिया होगी और मेरे वरदान के प्रभाव से तुम नित्य अपने पुत्रों को देखोगी ॥३७-३८॥ विरजा के पास रहकर भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार कह ही रहे थे कि—'राधा की सखियों ने पुनः जाकर ईश्वरी राधा से कह दिया, जिसे सुनकर राधा देवी क्रुद्ध होकर कोपभवन में चली गयीं। इसी बीच भगवान् श्रीकृष्ण राधा के पास आये ॥३९-४०॥ हे नारद! श्रीदामा के साथ भगवान् राधिका के दरवाजे पर खड़े हुए कि रासेश्वरी राधा ने उन्हें सामने देखकर

---

[1] क. वाचाप्रियं पु०

मत्तो बहुतराः कान्ता गोलोके सन्ति ते हरे। याहि तासां संनिधानं मया ते किं प्रयोजनम् ॥४२॥
विरजा प्रेयसी कान्ता सरिद्रूपा बभूव ह। देहं त्यक्त्वा मम भयात्तथाऽपि याहि तां प्रति ॥४३॥
तत्तीरे मन्दिरं कृत्वा तिष्ठ तिष्ठ च याहि ताम्। नदी बभूव सा त्वं च नदो भवितुमर्हसि ॥४४॥
नदस्य नद्या सार्धं च सङ्गमो गुणवान्भवेत्। स्वजातौ परमा प्रीतिः शयने भोजने सुखात् ॥४५॥
देवचूडामणेः क्रीडा नद्या सार्धमहो बत। महाजनः स्मेरमुखः श्रुत्वा सद्यो भविष्यति ॥४६॥
ये त्वां वदन्ति सर्वेशं ते किं जानन्ति तत्त्वतः। भगवान्सर्वभूतात्मा नदीं संभोक्तुमिच्छति ॥४७॥
इत्युक्त्वा राधिका देवी विरराम रुषाऽन्विता। नोत्तस्थौ भूमिशयनाद्गोपीलक्षसमन्विता ॥४८॥
काश्चिच्चामरहस्ताश्च काश्चित्सूक्ष्मांशुकाम्बराः। काश्चित्ताम्बूलहस्ताश्च काश्चिन्मालाकरा वराः ॥४९॥
वासितोदकराः काश्चित्काश्चित्पद्मकरावराः। काश्चित्सिन्दूरहस्ताश्च पानहस्ताश्च काश्चन ॥५०॥
रत्नालंकारहस्ताश्च काश्चित्कज्जलवाहिकाः। वेणुवीणाकराःकाश्चित्काश्चित्कङ्कतिकाकराः ॥५१॥
काश्चिदावीरहस्ताश्च यन्त्रहस्ताश्च काश्चन। सुगन्धितैलहस्ताश्च काश्चन प्रमदोत्तमाः ॥५२॥
करतालकराः काश्चिद्गेन्दुहस्ताश्च काश्चन। काश्चिन्मृदङ्गमुरजमुरलीतानकारिकाः ॥५३॥

रुष्ठ होकर कहना आरम्भ किया—'हे हरे! गोलोक में हमारे समान तुम्हारी अनेक कान्तायें हैं, उन्हीं के पास जाओ, मुझसे तुम्हारा क्या प्रयोजन हैं? ॥४१–४२॥ तुम्हारी विरजा प्रेयसी, जो मेरे भय के कारण देह छोड़कर नदी रूप हो गयी हैं, तुम्हें अति प्यारी हैं, क्योंकि तुम अब भी उसके पास जाते हो। अच्छा होता कि तुम उसी के किनारे मन्दिर (घर) बना लो और सब समय वहीं रहो या वह नदी हो गयी हैं, तो तुम नद हो जाओ, क्योंकि नदी-नद का समागम हितकर होगा। और शयन भोजन में सुख के होने से अपनी जाति में परम प्रीति होती है॥४३–४५॥ अहो! एक नदी के साथ देव-शिरोमणि (आप) रति-क्रीड़ा कर रहे हैं, इसे सुनते ही भले लोग मुस्कराने लग जायेंगे॥४६॥ क्या जो तुम्हें सर्वाधीश्वर कहते हैं वे तुम्हें ठीक-ठीक जानते हैं कि—सब जीवों का आत्मा होकर भी भगवान् नदी के साथ सम्भोग करना चाहते हैं॥४७॥ इतना कहकर राधिका देवी चुप हो गयीं और रुष्ट होने के नाते भूमि पर पड़ी ही रह गयीं उठीं नहीं। वहाँ उनकी एक लाख गोपियाँ परिचारिका के रूप में थीं—कोई चामर डुला रही थीं, कोई हाथ में अति सूक्ष्म साड़ी लिए खड़ी थीं, कोई हाथ में ताम्बूल, कोई उत्तम माला, कोई सुवासित जल, कोई हाथ में कमल, कोई हाथ में सिन्दूर, कोई हाथ में पेय पदार्थ, कोई हाथ में रत्नों के अलंकार, कोई आंखों के काजल (सुरमा) आदि, कोई हाथ में बाँसुरी और वीणा तथा कोई हाथ में कंघी लिये थीं॥४८-५१॥ कोई हाथ में अबीर, कोई यंत्र और अन्य अनेक उत्तम प्रमदायें हाथ में सुगन्धित तेल लिये थीं। तथा कोई हाथ में करताल तो कोई गेंद लिये थीं। कोई मृदंग, ढोल और मुरली की तान करने वाली थीं। उनमें कोई संगीत में निपुण, कोई नृत्य करनेवाली, और कोई क्रीड़ा-

संगीतनिपुणा: काश्चित्काश्चिन्नर्तनतत्परा:। क्रीडावस्तुकरा: काश्चिन्मधुहस्ताश्च काश्चन ॥५४॥
सुधापात्रकरा: काश्चिदङ्घ्रिपीठकरा: परा:। वेषवस्तुकरा: काश्चित्काश्चिच्चरणसेविका: ॥५५॥
पुटाञ्जलिकरा: काश्चित्काश्चित्स्तुतिपरा वरा:। एवं कतिविधा: सन्ति राधिकापुरतो मुने ॥५६॥
बहिर्देशस्थिता: काश्चित्कोटिश: कोटिश: सदा। काश्चिद्द्वारनियुक्ताश्च वयस्या वेत्रधारिका: ॥५७॥
कृष्णमभ्यन्तरं गन्तुं न ददुर्द्वारसंस्थिता:। पुर:स्थितं तं प्राणेशं राधा पुनरुवाच सा॥
नानुरूपमत्यकथ्यमयोग्यमतिकर्कशम् ॥५८॥

राधिकोवाच

हे कृष्ण विरजाकान्त गच्छ मत्पुरतो हरे। कथं दुनोषि मां लोल रतिचौरातिलम्पट ॥५९॥
शीघ्रं पद्मावतीं गच्छ रत्नमालां मनोरमाम्। अथवा वनमालां वा रूपेणाप्रतिमां व्रज ॥६०॥
हे नदीकान्त देवेश देवानां च गुरोर्गुरो। मया ज्ञातोऽसि भद्रं ते गच्छ गच्छ ममाऽऽश्रमात् ॥६१॥
शश्वत्ते मानुषाणां च व्यवहारस्य लम्पट। लभतां मानुषीं योनिं गोलोकाद्व्रज भारतम् ॥६२॥
हे सुशीले शशिकले हे पद्मावति माधवि। निवार्यतां च धूर्तोऽयं किमस्यात्र प्रयोजनम् ॥६३॥
राधिकावचनं श्रुत्वा तमूचुर्गोपिका हरिम्। हितं तथ्यं च विनयं सारं यत्समयोचितम् ॥६४॥

वस्तु (खेल के सामानों) को हाथ में लिये थीं एवं कोई हाथ में मधु, कोई सुधा पात्र, कोई चरण-पीठिका और कोई वेष बनाने की वस्तु लिए थीं कोई चरण की सेवा कर रही थीं ॥५२-५५॥ कोई हाथ जोड़े खड़ी थीं, कोई सुन्दर स्तुति कर रही थीं। हे मुने! इस प्रकार राधा के सामने कितने प्रकार की दासियाँ उपस्थित थीं ॥५६॥ करोड़ों दासियाँ तो बाहर द्वार पर खड़ी थीं और कुछ हाथ में बेंत लिए, जो उन्हीं की आयु की थीं, द्वारपाल के रूप में नियुक्त थीं ॥५७॥ उन द्वारपालिकाओं ने कृष्ण को भीतर जाने से रोक दिया। फिर प्राणेश कृष्ण को सामने खड़ा देखकर राधा ने पुन: कहना आरम्भ किया, जो उनके अननुरूप, अति अकथनीय, अयोग्य और अति कटु था ॥५८॥

राधिका बोलीं—हे कृष्ण! हे विरजाकान्त! मेरे सामने से चले जाओ! हे हरे! हे चंचल! हे रति-चोर! हे अतिलम्पट! मुझे क्यों दु:ख देते हो? शीघ्र पद्मावती के यहाँ या मनोरमा रत्नमाला के यहाँ जाओ, अथवा अनुपम रूपवती वनमाला के पास चले जाओ ॥५९-६०॥ हे नदी के कान्त! हे देवाधीश्वर! हे देवों के गुरु के गुरु! मैंने तुम्हें भलीभाँति जान लिया है, अत: तुम्हारा कल्याण इसी में है कि—'मेरे यहाँ से शीघ्र चले जाओ ॥६१॥ क्योंकि हे लम्पट! मनुष्यों की भाँति ही तुम्हारा सदैव का व्यवहार रहा है। इसलिए तुम यहाँ गोलोक से जाकर भारत में मनुष्य-योनि में रहो ॥६२॥ हे सुशीले! हे शशिकले! हे पद्मावति! हे माधवि! इस धूर्त को यहाँ से दूर हटाओ, इसका यहाँ क्या प्रयोजन है? ॥६३॥ राधिका की ऐसी बातें सुनकर उन गोपी दासियों ने भगवान् से कहा—जो हितकर, सत्य, विनयपूर्ण, सार और समयानुकूल था'। किसी ने कहा—हे हरे! कुछ समय के

काश्चिदूचुरिति हरे गच्छ स्थानान्तरं क्षणम्। राधाकोपापनयने ह्यागमिष्यामहे वयम् ।।६५।।
काश्चिदूचुरिति प्रीत्या क्षणं गच्छ गृहान्तरम्। त्वयैव वर्धिता राधा त्वां विना कं च वक्ष्यति ।।६६।।
काश्चिदूचुरिति प्रेम्णा राधिकायां हरिं मुने। क्षणं वृन्दावनं गच्छ मानापनयनावधि ।।६७।।
काश्चिदित्यूचुरीशं च परिहासपरं वचः। मानापनयनं भक्त्या मानिन्याः कुरु कामुक ।।६८।।
काश्चनोचुरितीशं तं याहि जायान्तरं तव। लोलुपस्य कथं नाथ करिष्यामो यथोचितम् ।।६९।।
काश्चनोचुरिति हरिं सस्मितं पुरतः स्थितम्। गत्वा समीपमुत्थाय मानापनयनं कुरु ।।७०।।
काश्चनोचुरिति प्राणनाथं गोप्यो दुरक्षरम्। कः क्षमः सांप्रतं द्रष्टुं राधिकामुखपंकजम् ।।७१।।
काश्चनोचुरिति विभुं व्रज स्थानान्तरं हरे। कोपापनयने काले पुनरागमनं तव ।।७२।।
काश्चनोचुरितीदं तं प्रगल्भाः प्रमदोत्तमाः। वयं त्वां वारयिष्यामो न चेद्याहि गृहान्तरम् ।।७३।।
काश्चिन्निवारयामासुर्माधवं प्रमदोत्तमाः। स्मितवक्त्रं च सर्वेशं स्वस्थमक्रोधमीश्वरम् ।।७४।।
गोपीभिर्वार्यमाणे च जगत्कारणकारणे। सद्यश्चुकोप श्रीदामा हरौ गेहान्तरं गते ।।७५।।
कोपादुवाच श्रीदामा राधिकां परमेश्वरीम्। रक्तपद्मेक्षणां रुष्टां रक्तपंकजलोचनाम् ।।७६।।

श्रीदामोवाच

कथं वदसि मातस्त्वं कटुवाक्यं मदीश्वरम्। विचारणां विना देवि करोषि भर्त्सनं वृथा ।।७७।।

लिए कहीं अन्यत्र चले जाओ; और राधिका का कोप शांत होने पर हम सब बुलाने आयेंगी ।।६४-६५।। किसी ने सप्रेम कहा—एक क्षण के लिए किसी दूसरे घर में चले जाओ, क्योंकि तुम्हारे ही द्वारा राधा उन्नत हुई है अतः तुम्हारे बिना वह किससे कहेगी ।।६६।। हे मुने! कुछ दासियों ने भगवान् से कहा कि—जब तक राधा का मानापनयन नहीं हो रहा है तब तक के लिए आप वृन्दावन चले जायँ ।।६७।। और कुछ हास्य (मजाक) करने वाली गोपियों ने भगवान् से कहा—हे कामुक! भक्ति (सेवा) पूर्वक मानिनी राधा का मान दूर करो ।।६८।। किसी ने उनसे कहा—अपनी दूसरी स्त्री के पास चले जाओ। हे नाथ! लोलुप का यथोचित सत्कार हम कैसे कर सकेंगी ।।६९।। कुछ ने तो सामने मुस्कराते हुए खड़े भगवान् से कहा कि—उनके पास चले जाओ और उन्हें उठा कर उनका मान दूर कर दो ।।७०।। और किसी ने तो उन प्राणनाथ से यह कटु अक्षर कहा कि—इस समय राधा का मुखकमल देखने में कौन समर्थ हो सकता है? ।।७१।। किसी ने उस प्रभु से कहा—हे हरे! अभी किसी दूसरे स्थान में चले जाओ, और उनका क्रोध शांत हो जाने पर पुनः आ जाना ।।७२।। अनन्तर कुछ धृष्ट गोपियों ने भगवान् से ऐसा कहा कि—हम लोग तुम्हें रोक देंगी, नहीं तो दूसरे घर में चले जाओ। कुछ प्रमदाओं ने उन्हें वहाँ से हटा दिया—आगे नहीं जाने दिया, किन्तु सर्वेश्वर भगवान् शान्त, क्रोधरहित एवं मन्द मुसुकान करते हुए वहाँ से हट गये ।।७३-७४।। गोपियों के रोकने से जगत्-कारणों के कारण भगवान् कृष्ण के दूसरे महल में चले जाने पर श्रीदामा वहुत क्रुद्ध हुआ ।।७५।। उसने परमेश्वरी राधिका से, जो रुष्ट होने के कारण नेत्रों को रक्त कमल की भाँति लाल किये हुई थीं, क्रुद्ध भाव से कहना आरम्भ किया ।।७६।।

श्रीदामा बोले—हे मातः! मेरे स्वामी को तुम इस प्रकार की कटु वाणी क्यों कह रही हो? हे देवि! बिना विचारे तुम उन्हें व्यर्थ ही डांट-फटकार रही हो ।।७७।। जो ब्रह्मा, अनन्त शिव और देवताओं के प्रभु, संसार के

ब्रह्मानन्तेशदेवेशं[1] जगत्कारणकारणम्। वाणीपद्मालयामायाप्रकृतीशं च निर्गुणम्॥७८॥
स्वात्मारामं पूर्णकामं करोषि त्वं विडम्बनम्। देवीनां प्रवरा त्वं च निबोध यस्य सेवया॥७९॥
यस्य पादार्चनेनैव सर्वेषामीश्वरी परा। तन्न जानासि कल्याणि किमहं वक्तुमीश्वरः॥८०॥
भ्रूभङ्गलीलया कृष्णः स्रष्टुं शक्तश्च त्वद्विधाः। कोटिशः कोटिशो देव्यस्तं न जानासि निर्गुणम्॥८१॥
वैकुण्ठे श्रीहरेरस्य चरणाम्बुजमार्जनम्। करोति केशैः शश्वच्छ्रीः सेवनं भक्तिपूर्वकम्॥८२॥
सरस्वती च स्तवनैः कर्णपीयूषसुन्दरैः। सततं स्तौति यं भक्त्या न जानासि तमीश्वरम्॥८३॥
भीता च प्रकृतिर्माया सर्वेषां बीजरूपिणी। सततं स्तौति यं भक्त्या तं न जानासि मानिनि॥८४॥
स्तुवन्ति सततं वेदा महिम्नः षोडशीं कलाम्। कदाऽपि न विजानन्ति तं न जानासि भामिनि॥८५॥
वक्त्रैश्चतुर्भिर्यं ब्रह्मा वेदानां जनको विभुः। स्तौति सेवां च कुरुते चरणाम्बुजमीश्वरि॥८६॥
शंकरः पञ्चभिर्वक्त्रैः स्तौति यं योगिनां गुरुः। साश्रुपूर्णः सपुलकः सेवते चरणाम्बुजम्॥८७॥
शेषः सहस्रवदनैः परमात्मानमीश्वरम्। सततं स्तौति यं भक्त्या सेवते चरणाम्बुजम्॥८८॥
धर्मः पाता च सर्वेषां साक्षी च जगतां पतिः। भक्त्या च चरणाम्भोजं सेवते सततं मुदा॥८९॥

कारणों के कारण, वाणी (सरस्वती), लक्ष्मी, माया और प्रकृति के अधीश्वर, निर्गुण, अपने आत्मा में रमण करने वाले एवं पूर्ण काम हैं तुम उनकी इतनी विडम्बना (भद्द) क्यों करती हो? जिसकी सेवा करने से तुम देवियों में श्रेष्ठ हुई हो और जिसकी चरण-सेवा से ही तुम सब की महान् अधीश्वरी हुई हो, हे कल्याणि! क्या तुम उसे नहीं जानती हो, क्या मैं उसे कहने में कभी समर्थ हो सकता हूँ? ॥७८-८०॥ अपनी भौंहों को तिरछी करते ही लीला द्वारा कृष्ण तुम्हारे समान करोड़ों-करोड़ों देवियाँ बनाने में समर्थ हैं, क्या उस निर्गुण को तुम नहीं जानती हो॥८१॥ वैकुण्ठ में इन्हीं भगवान् के चरण-कमल को अपने केशों द्वारा पोंछती हुई लक्ष्मी भक्तिपूर्वक उनकी सेवा नित्य करती हैं॥८२॥ कान को अमृत की भाँति सुन्दर लगने वाले स्तोत्रों से सरस्वती भक्तिपूर्वक निरन्तर जिनकी स्तुति करती हैं, क्या उस ईश्वर को तुम नहीं जानती हो? ॥८३॥ सबकी बीजरूपा प्रकृति माया भीत रहती हुई भक्तिपूर्वक निरन्तर जिसकी प्रार्थना करती हैं, हे मानिनि! क्या उसे तुम नहीं जानती हो? ॥८४॥ वेदगण निरन्तर जिनकी महिमा की सोलहवीं कला की स्तुति करते हैं और कभी भी उसे जान नहीं पाते हैं, हे भामिनि! क्या उसे तुम नहीं जानती हो? हे ईश्वरि! वेदों के जनक विभु ब्रह्मा अपने चारों मुखों द्वारा स्तुति करते हुए जिसके चरण-कमल की सेवा करते हैं, योगियों के गुरु शिव अपने पाँचों मुखों द्वारा जिसकी स्तुति करते हैं तथा सजल नयन और पुलकित होकर जिसके चरण-कमल की सेवा करते हैं, शेष अपने सहस्रों मुखों द्वारा भक्तिपूर्वक जिस परमात्मा ईश्वर की सतत स्तुति करते रहते हैं तथा चरण-कमल की सेवा करते हैं, धर्म सब का रक्षक, साक्षी तथा संसार का स्वामी होकर जिसके चरण कमल की सेवा सदा भक्तिपूर्वक करता है, श्वेत-द्वीप के निवासी विष्णु, जो विभु एवं रक्षक हैं, वे स्वयं जिसके अंश हैं, और जो अनेक परम

---

[1] क. ०शधर्मेशं।

Funding by IKS-MoE

श्वेतद्वीपनिवासी यः पाता विष्णुः स्वयं विभुः। तस्यांशश्च तथा यं यं धार्यतेऽप्यक्षरं परम् ॥९०॥
सुरासुरमुनीन्द्राश्च मनवो मानवा बुधाः। सेवन्ते न हि पश्यन्ति स्वप्नेऽपि चरणाम्बुजम् ॥९१॥
क्षिप्रं रोषं परित्यज्य भज पादाम्बुजं हरेः। भ्रूभङ्गलीलामात्रेण सृष्टिसंहर्तुरेव च ॥९२॥
निमेषमात्रादस्यैव ब्रह्मणः पतनं भवेत्। यस्यैकदिवसेऽप्यष्टाविंशतीन्द्राः पतन्त्यपि ॥९३॥
एवमष्टोत्तरशतमायुर्यस्य जगद्विधेः। त्वं वा काऽन्याश्च वा राधे मदीश्वरवशेऽखिलम् ॥९४॥
श्रीदाम्नो वचनं श्रुत्वा केवलं[1] कटुमुज्ज्वलम्। सद्यश्चु कोप सा ब्रह्मन्नुत्थाय समुवास ह ॥९५॥
रासेश्वरी बहिर्गत्वा तमुवाचह निष्ठुरम्। स्फुरदोष्ठी मुक्तकेशी रक्ताम्भोरुहलोचना: ॥९६॥

अम्भोरुह-कमल

राधिकोवाच

रे रे जाल्म महामूढ शृणु लम्पटकिंकर। त्वं च जानासि सर्वार्थं न जानामि त्वदीश्वरम् ॥९७॥
त्वदीश्वरश्च श्रीकृष्णो न ह्यस्माकं व्रजाधम। जानामि जनकं स्तौषि सदा निन्दसि मातरम् ॥९८॥
यथाऽसुराश्च त्रिदशा नित्यं निन्दन्ति संततम्। तथा निन्दसि मां मूढ तस्मात्त्वमसुरो भव ॥९९॥

अविनाशी रूप को धारण किये हुए हैं देव, असुर, मुनिवृन्द, मनुगण, विद्वान् मनुष्य जिसके चरण-कमल की निरन्तर सेवा करते हैं और स्वप्न में भी जिनको नहीं देख पाते हैं, उस हरि के चरण-कमल की सेवा क्रोध त्याग कर शीघ्र करो, वह अपने भ्रूभंग मात्र से सृष्टि का संहार करने वाला है॥८५-९२॥ उसी के एक निमेष मात्र समय वीतने से ब्रह्मा का पतन (अंत) हो जाता है और उसके एक दिन व्यतीत होने पर अट्ठाईस इन्द्र समाप्त हो जाते हैं। हे राधे! इस प्रकार एक सौ आठ वर्ष की आयु जिसकी है उसी मेरे ईश्वर के अधीन तुम क्या अन्य सभी देवियाँ और समस्त ब्रह्माण्ड हैं॥९३-९४॥ हे ब्रह्मन्! श्रीदामा की इस प्रकार कटुपूर्ण स्वच्छ वातें सुन कर भगवान् की प्राणेश्वरी राधा तुरन्त क्रुद्ध हो गयीं। अनन्तर रासेश्वरी ने, जिनका उस समय ओंठ फड़क रहा था, केश पाश खुल गया था एवं नेत्र रक्त कमल की भाँति लाल हो गये थे, वाहर निकल कर उस निष्ठुरवादी से कहा॥९५-९६॥

राधिका बोलीं—रे जाल्म (नीच)! रे महामूढ़, लम्पट-किंकर! सुनो—तुम्हीं सब कुछ जानते हो, मैं तुम्हारे ईश्वर को नहीं जानती हूँ। रे अधम! श्रीकृष्ण तुम्हारे ही ईश्वर हैं हम लोगों के नहीं, अतः भाग जाओ यहाँ से। मैं जानती हूँ, तुम सदा पिता की प्रशंसा करते हो और माता की निन्दा॥९७-९८॥ हे मूढ़! जिस प्रकार असुरगण देवों की निरन्तर निन्दा किया करते हैं, उसी भाँति तुम मेरी निन्दा कर रहे हो इसलिए तुम असुर हो जाओ। हे गोप! गोलोक से वाहर होकर आसुरी योनि में जन्म ग्रहण करो। मूढ़! मैंने तुम्हें

---

[1] ०मुल्बणम्।

Funding by IKS-MoE

गोप व्रजाऽऽसुरीं योनिं गोलोकाच्च बहिर्भव। मयाऽद्य शप्तो मूढस्त्वं कस्त्वां रक्षितुमीश्वरः ॥१००॥
रासेश्वरी तमित्युक्त्वा सुष्वाप विरराम च। वयस्याः सेवयामासुश्चामरै रत्नमुष्टिभिः ॥१०१॥
श्रुत्वा च वचनं तस्याः कोपेन स्फुरिताधरः। शशाप तां च श्रीदामा व्रज योनिं च मानुषीम् ॥१०२॥

श्रीदामोवाच

मानुष्या इव कोपस्ते तस्मात्त्वं मानुषी भुवि। भविष्यसि न संदेहो मया शप्ता त्वमम्बिके ॥१०३॥
छायया कलया वाऽपि परशक्त्या कलङ्किना। मूढा रायणपत्नीं त्वां वक्ष्यन्ति जगतीतले ॥१०४॥
रायणः श्रीहरेरंशो वैश्यो वृन्दावने वने। भविष्यति महायोगी राधाशापेन गर्भजः ॥
गोकुले प्राप्य तं कृष्णं विहरिष्यसि कानने ॥१०५॥
भविता ते वर्षशतं विच्छेदो हरिणा सह। पुनः प्राप्य तमीशं च गोलोकमागमिष्यसि ॥१०६॥
तामित्युक्त्वा च नत्वा च स जगाम हरेः पुरः। गत्वा प्रणम्य श्रीकृष्णं शापाख्यानमुवाच ह ॥१०७॥
आनुपूर्व्यात्तु तत्सर्वं रुरोद च भृशं पुनः। उवाच तं रुदन्तं च गच्छ त्वं धरणीतलम् ॥१०८॥
न जेता ते त्रिभुवने ह्यसुरेन्द्रो भविष्यसि। काले शंकरशूलेन देहं त्यक्त्वा ममान्तिकम् ॥१०९॥

आज शाप दे दिया है, देखती हूँ, अब तुम्हें कौन बचाने में समर्थ है ॥९९-१००॥ रासेश्वरी राधा उससे कह कर चुप हो गयीं और उनके शयन करने पर सखियों ने रत्नों की मूठ लगे चामरों द्वार। उनकी सेवा आरम्भ कर दी ॥१०१॥ किन्तु राधा की बातें सुन कर श्रीदामा का भी होंठ फड़फड़ाने लगा। उसने भी शाप दिया कि—तुम भी मनुष्य योनि में जाओ।

श्रीदामा बोला—हे अम्बिके! तुम्हारा भी क्रोध मनुष्य के ही समान है अतः मेरे शाप के कारण तुम्हें भी भूतल में मनुष्य होना पड़ेगा, इसमें संदेह नहीं है। पराशक्ति की छाया, या कला द्वारा वहाँ भूतल में प्रकट होने पर मूर्खलोग तुम्हें रायण वैश्य की पत्नी कहेंगे, जो वृन्दावन में भगवान् श्रीकृष्ण के अंश से समुत्पन्न होगा ॥१०२-१०४॥ राधा के शापवश वह गर्भ में ही महायोगी होकर बाहर निकलेगा। अनन्तर गोकुल में भगवान् कृष्ण को प्राप्त होकर वनों में उनके साथ विहार करोगी ॥१०५॥ तदुपरांत भगवान् से तुम्हारा सौ वर्ष का वियोग होगा और उसके पश्चात् पुनः भगवान् से मिलकर उनके साथ गोलोक आओगी ॥१०६॥ उनसे ऐसा कहकर और नमस्कार करके श्रीदामा भगवान् के पास चला आया। वहाँ उन्हें प्रणाम करने के उपरान्त उनसे शाप की सभी बातें क्रमशः बता दीं ॥१०७॥ वह बार-बार रोदन करने लगा। उसी समय भगवान् ने उससे कहा—तुम अब पृथिवी पर चले जाओ, तुम्हें जीतने वाला तीनों लोकों में भी कोई राक्षस राजा नहीं होगा, तुम असुरों के राजा होगे और समयानुसार शंकर के शूल द्वारा निधन होने पर देहत्यागपूर्वक यहाँ चले आओगे। मैं आशीर्वाद दे रहा हूँ—'पचास युग के समय तक तुम वहाँ रहोगे।' भगवान् श्रीकृष्ण की बातें सुनकर शोकाकुल होकर उसने पुनः उनसे कहा (आपकी

आगमिष्यसि पञ्चाशद्युगान्ते[1] तु ममाऽशिषा। श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा तमुवाच शुचाऽन्वितः ।।११०।।
त्वद्भक्तिरहितं मां च कदाचिन्न करिष्यसि। इत्युक्त्वा श्रीहरिं नत्वा जगाम स्वाश्रमाद्बहिः ।।१११।।
पश्चाज्जगाम सा देवी रुरोद च पुनः पुनः। क्व यासि वत्सेत्युच्चार्य विललाप भृशं सती ।।११२।।
श्रीदामाऽपि च तां नत्वा रुरोद प्रेमविह्वलः। स एव शङ्खचूडश्च बभूव तुलसीपतिः ।।११३।।
गते श्रीदाम्नि सा देवी जगामेश्वरसंनिधिम्। सर्वं निवेदयामास हरिः प्रत्युत्तरं ददौ ।।११४।।
शोकातुरां च तां कृष्णो बोधयामास प्रेयसीम्। शङ्खचूडश्च कालेन संप्राप पुनरीश्वरम् ।।११५।।
राधा जगाम धरणीं वाराहे हरिणा सह। वृषभानुगृहे जन्म ललाभे गोकुले मुने ।।११६।।
इत्येवं कथितं सर्वं श्रीकृष्णाख्यानमङ्गलम्। सर्वेषां वाञ्छितं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।११७।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० सप्तसमुद्रजन्मराधाश्रीदामशापोद्भवो नाम तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

नारद उवाच

केन वा प्रार्थितः कृष्णो महीं च केन हेतुना। आजगाम जगन्नाथो वद वेदविदां वर ।।१।।

आज्ञा शिरोधार्य है किन्तु) वहाँ मुझे अपनी भक्ति से रहित न करियेगा। इतना कह कर भगवान् को नमस्कार करके वह आश्रम से बाहर हो गया ।।१०८-१११।। राधा देवी भी पीछे-पीछे चलने लगीं और बार-बार रोदन करते हुए कहने लगीं—'हे वत्स! कहाँ जा रहे हो? ऐसा कहकर उस सती ने अत्यन्त विलाप किया। श्रीदामा ने भी उस समय उन्हें नमस्कार करके प्रेमाकुल होकर बहुत रोदन किया। वही तुलसी का पति शंखचूड़ हुआ ।।११२-११३।। श्रीदामा के चले जाने पर राधा देवी ने भी भगवान् कृष्ण के समीप गमन किया, वहाँ जाकर उनसे सब वृत्तान्त कह सुनाया, भगवान् ने उसका उत्तर भी दिया ।।११४।। राधा को शोक-सागर में निमग्न देखकर भगवान् ने उन अपनी प्रेयसी को बहुत समझाया। वह शंखचूड़ समयानुसार पुनः गोलोक जाकर ईश्वर का पार्षद हुआ ।।११५।। हे मुने! इधर राधा ने भी वाराह कल्प में भगवान् के साथ भूतल पर जाकर गोकुल में वृषभानु के घर जन्म ग्रहण किया ।।११६।। इस प्रकार मैंने भगवान् श्रीकृष्ण का मंगल आख्यान, जो सभी लोगों को तत्त्वरूप से अभीष्ट है, तुम्हें सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो? ।।११७।।

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में सातों समुद्रों के जन्म और राधा श्रीदामा का शाप-वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ।।३।।

अध्याय ४

गोलोक का विस्तृत वर्णन

नारद बोले—हे वेद-वेत्ताओं में श्रेष्ठ! किसकी प्रार्थना से भगवान् श्रीकृष्ण, जो समस्त विश्व के स्वामी हैं, इस पृथ्वी पर प्रकट हुए? इसका क्या कारण है, बताने की कृपा करें।।१।।

---

[1] क. ०युगेऽतीते।

Funding by IKS-MoE

नारायण उवाच

पुरा वाराहकल्पे सा भाराक्रान्ता वसुंधरा। भृशं बभूव शोकार्ता ब्रह्माणं शरणं ययौ॥२॥
सुरैश्चासुरसंतप्तैर्भृशमुद्विग्नमानसैः । सार्धं तैस्तां दुर्गमां च जगाम वेधसः सभाम्॥३॥
ददर्श तस्यां देवेशं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। ऋषीन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सिद्धेन्द्रैः सेवितं मुदा॥४॥
अप्सरोगणनृत्यं च पश्यन्तं सस्मितं मुदा। गन्धर्वाणां च संगीतं श्रुतवन्तं मनोहरम्॥५॥
जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्ण इत्यक्षरद्वयम्। भक्त्याऽऽनन्दाश्रुपूर्णं तं पुलकाङ्कितविग्रहम्॥६॥
भक्त्या सा त्रिदशैः सार्धं प्रणम्य चतुराननम्। सर्वं निवेदनं चक्रे दैत्यभारादिकं मुने॥७॥
साश्रुपुर्णा सपुलका तुष्टाव च रुरोद च। तामुवाच जगद्धाता कथं स्तौषि च रोदिषि॥८॥
कथमागमनं भद्रे वद भद्रं भविष्यति। सुस्थिरा भव कल्याणि भयं किं ते मयि स्थिते॥९॥
आश्वास्य पृथिवीं ब्रह्मा देवान्पप्रच्छ सादरम्। कथमागमनं देवा युष्माकं मम संनिधिम्॥१०॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा देवा ऊचुः प्रजापतिम्। भाराक्रान्ता च वसुधा दस्युग्रस्ता वयं प्रभो॥११॥
त्वमेव जगतां स्रष्टा शीघ्रं नो निष्कृतिं कुरु। गतिस्त्वमस्या भो ब्रह्मन्निर्वृतिं कर्तुमर्हसि॥१२॥
पीडिता येन भारेण पृथिवीयं पितामह। वयं तेनैव दुःखार्तास्तद्भारहरणं कुरु॥१३॥

नारायण बोले—पहले वाराह कल्प में यह पृथिवी (पापियों के) भार से आक्रान्त होने पर अतिशोकाकुल होकर ब्रह्मा के शरण गयी॥२॥ राक्षसों से अत्यन्त सन्तप्त होने के कारण पृथिवी देवगण के साथ ब्रह्मा की दुर्गम सभा में पहुँची॥३॥ वहाँ उसने देवाधीश्वर ब्रह्मा को देखा, जो ब्रह्मतेज से देदीप्यमान तथा उत्तम ऋषियों, मुनियों और सिद्धों द्वारा हर्ष से सेवित हो रहे थे॥४॥ वे मन्दहास करते हुए सहर्ष अप्सराओं के नृत्य देखते हुए और गन्धर्वों का मनोहर संगीत सुनते हुए परब्रह्म का 'कृष्ण' यह दो अक्षर का नाम जप रहे थे। भक्ति के कारण आनन्द के आँसुओं से युक्त उनका शरीर पुलकायमान हो रहा था॥५-६॥ हे मुने! पृथ्वी ने देवों के साथ चतुरानन (ब्रह्मा) को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और दैत्यों के भार आदि को कह सुनाया। अनन्तर पुलकित शरीर, आँखों में आँसू भरे और रोदन करती हुई वह ब्रह्मा की स्तुति करने लगी। उसे देखकर जगत् के धाता ब्रह्मा ने कहा——हे भद्रे! क्यों रोदन कर रही हो और स्तुति क्यो करती हो? तुम्हारा यहाँ आना कैसे हुआ? शीघ्र कहो। अवश्य तुम्हारा कल्याण होगा। हे कल्याणि! मेरे रहते तुम्हें भय क्या है, अतः भलीभाँति स्थिर रहो॥७-९॥ इस प्रकार पृथ्वी को आश्वासन देकर ब्रह्मा ने देवों से सादर पूछा—हे देवगण! मेरे पास क्यों आये? आने का कारण कहो। ब्रह्मा की बात सुनकर देवों ने प्रजापति से कहा—हे प्रभो! यह पृथिवी (दैत्यों के) भार से दबी जा रही है और हम लोग दस्युगणों से पीड़ित हो रहे हैं। आप समस्त जगत् के स्रष्टा हैं। अतः शीघ्र इसका कोई उपाय करें। हे ब्रह्मन्! हे पितामह! इसके आप ही एक मात्र गति हैं, अतः इसे इससे मुक्त कराने की कृपा करें और जिसके भार से यह पृथिवी पीड़ित हो रही है, उसी के द्वारा हम लोग दुःखी हो रहे हैं। अतः भार का हरण करें॥१०-१३॥

Funding by IKS-MoE

देवानां वचनं श्रुत्वा पप्रच्छ तां जगद्विधिः। दूरीकृत्य भयं वत्से सुखं तिष्ठ ममान्तिकम् ॥१४॥
केषां भारमशक्ता त्वं सोढुं पंकजलोचने। अपनेष्यामि तं भद्रे भद्रं ते भविता ध्रुवम् ॥१५॥
तस्य सा वचनं श्रुत्वा तमुवाच स्वपीडनम्। पीडिता येन येनैवं प्रसन्नवदनेक्षणा ॥१६॥

क्षितिरुवाच

श्रृणु तात प्रवक्ष्यामि स्वकीयां मानसीं व्यथाम्। विना बन्धुं सविश्वासं नान्यं कथितुमर्हति ॥१७॥
स्त्रीजातिरबला शश्वद्रक्षणीया स्वबन्धुभिः। जनकस्वामिपुत्रैश्च गर्हिताऽन्यैश्च निश्चितम् ॥१८॥
त्वया पृष्टा जगत्तात न लज्जा कथितुं मम। येषां भारैः पीडिताऽहं श्रूयतां कथयामि ते ॥१९॥
कृष्णभक्तिविहीना ये ये च तद्भक्तनिन्दकाः। तेषां महापातकिनामशक्ता भारवाहने ॥२०॥
स्वधर्माचारहीना ये नित्यकृत्यविवर्जिताः। श्रद्धाहीनाश्च वेदेषु तेषां भारेण पीडिता ॥२१॥
पितृमातृगुरुस्त्रीणां पोषणं पुत्रपोष्ययोः। ये न कुर्वन्ति तेषां च न शक्ता भारवाहने ॥२२॥
ये मिथ्यावादिनस्तात दयासत्यविवर्जिताः। निन्दका गुरुदेवानां तेषां भारेण पीडिता ॥२३॥
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः। विश्वासघ्नो न्यासहर्ता तेषां भारेण पीडिता ॥२४॥
कल्याणसूक्तसामानि हरेर्नामैकमङ्गलम्। कुर्वन्ति विक्रयं ये वै तेषां भारेण पीडिता ॥२५॥

करूँगा और तुम्हारा कल्याण अवश्य होगा। उनकी बातें सुनकर उसने अपने मुख और नेत्रों से प्रसन्नता प्रकट करती हुई अपना उत्पीड़न—जिस-जिसके द्वारा जिस प्रकार हो रहा था—कहना आरम्भ किया ॥१४-१६॥

पृथ्वी बोली—हे तात! बिना बंधु के किसी अन्य से विश्वास पूर्वक नहीं कहा जा सकता। अतः मैं अपने मन की पीड़ा आप से कह रही हूँ, सुनने की कृपा करें। स्त्री जाति अबला होती है, इसीलिए पिता, पति और पुत्रों द्वारा उसके रक्षण का निरन्तर प्रयत्न होना चाहिये और अन्य लोगों से उनकी रक्षा निन्दित कही गयी है ॥१७-१८॥ आप जगत् के पिता हैं और पूछ रहे हैं, अतः जिन लोगों के भार से मैं पीड़ित हूँ वह कह रही हूँ; क्योंकि आपसे कहने में मुझे कोई लज्जा नहीं है, सुनिये ॥१९॥ भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति से जो हीन हैं और जो उनके भक्तों की निन्दा करते हैं, उन महापातकी लोगों के भार वहन करने में मैं सर्वदा असमर्थ हूँ ॥२०॥ जो अपना धर्माचरण नहीं करते, नित्य कर्म से शून्य हैं और वेदों में श्रद्धा नहीं है, उनके भार से मैं पीड़ित हो रही हूँ ॥२१॥ पिता, माता, गुरु, स्त्री, पुत्र और अन्य पोष्य वर्ग का जो पोषण नहीं करते हैं, उनका भार वहन करने में मैं सदा अशक्त हूँ ॥२२॥ हे तात! जो मिथ्याभाषी (झूठे), दया-सत्य से हीन तथा गुरु और देवों की निन्दा करने वाले हैं, उन लोगों के भार से मैं पीड़ित हूँ ॥२३॥ जो मित्रद्रोही, कृतघ्न, झूठी गवाही देने वाला, विश्वासघाती और न्यास (धरोहर) का अपहरण करने वाला है, उसके भार से मैं दबी जा रही हूँ ॥२४॥ सामवेद के कल्याण सूक्त और भगवान् के मंगलमय नाम का विक्रय करने वाले जो हैं उनके भार से मैं पीड़ित हूँ ॥२५॥ जीवहिंसक, गुरुद्रोही,

Funding by IKS-MoE

जीवघाती गुरुद्रोही ग्रामयाजी च लुब्धकः। शवदाही शूद्रभोजी तेषां भारेण पीडिता ।।२६।।
पूजायज्ञोपवासादिव्रतानि विविधानि[1] च। ये ये मूढा निहन्तारस्तेषां भारेण पीडिता ।।२७।।
सदा द्विषन्ति ये पापा गोविप्रसुरवैष्णवान्। हरिं हरिकथां भक्तिं तेषां भारेण पीडिता ।।२८।।
शङ्खादीनां च भारेण पीडिताऽहं यथा विधे। ततोऽधिकानां दैत्यानां भारेण परिपीडिता ।।२९।।
इत्येवं कथितं सर्वं मद्व्यथाया निवेदनम्। त्वया यदि सुपाल्याऽहं प्रतीकारं कुरु प्रभो ।।३०।।
इत्येवमुक्त्वा वसुधा रुरोद च मुहुर्मुहुः। ब्रह्मा तद्रोदनं दृष्ट्वा तामुवाच कृपानिधिः ।।३१।।
भारं तवापनेष्यामि दस्यूनामप्युपायतः। उपायतोऽपि कार्याणि सिद्ध्यन्त्येव वसुंधरे ।।३२।।
कालेन भारहरणं करिष्यति मदीश्वरः। मन्त्रं मङ्गलकुम्भं च शिवलिङ्गं च कुङ्कुमम् ।।३३।।
मधुकाष्ठं चन्दनं च कस्तूरीं तीर्थमृत्तिकाम्। खड्गगण्डकखण्डं च स्फाटिकं पद्मरागकम् ।।३४।।
इन्द्रनीलं सूर्यमणिं रुद्राक्षं कुशमूलकम्। शालग्रामशिलां शङ्खं तुलसीं प्रतिमां जलम् ।।३५।।
शङ्खं प्रदीपमालां च शिलामर्च्यां च घण्टिकाम्। निर्माल्यं चैव नैवेद्यं हरिद्वर्णमणिं तथा ।।३६।।
ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं दर्पणं श्वेतचामरम्। गोरोचनं च मुक्तां च शुक्तिं माणिक्यमेव च ।।३७।।
पुराणसंहितां वह्निं कर्पूरं परशुं तथा। रजतं काञ्चनं चैव प्रवालं रत्नमेव च ।।३८।।

गाँव-गाँव यज्ञ कराने वाला, हिंसक, शूद्रों के शव का दाह और उनका अन्न भोजन करने वाला जो है उन लोगों के भार से पीड़ित हो रही हूँ ।।२६।। पूजा, यज्ञ, उपवास आदि अनेक भाँति के व्रतों का जो नाश करते हैं; उन मूढ़ों के भार से मैं पीड़ित हूँ ।।२७।। गौ, ब्राह्मण, देवता और वैष्णवगण, भगवान् की कथा और भक्ति से जो द्वेष करते हैं, उनके भार से मैं पीड़ित हूँ ।।२८।। हे विधे! शंखचूड़ आदि के भार से मैं जितनी दुःखी हूँ, उससे कहीं अधिक दैत्यों के भार से मैं पीड़ित हो रही हूँ ।।२९।। हे प्रभो! इस प्रकार मैंने आपसे अपना दुःख निवेदन कर दिया; अब यदि आपकी मैं (भली भाँति पालनीया) हूँ, तो इसका प्रतीकार करने की शीघ्र कृपा करें ।।३०।। इतना कहकर पृथिवी उनके सामने बार-बार रोदन करने लगी। उसका रोदन देखकर कृपानिधान ब्रह्मा ने उससे कहा—हे वसुन्धरे! तुम्हारे भार का मैं अपनयन करूँगा, साथ ही उपाय द्वारा दस्युगणों को भी दूर करूँगा; क्योंकि उपाय करने से ही कार्य सफल होते हैं ।।३१-३२।। समय आने पर हमारे प्रभु तुम्हारा भार अवश्य दूर करेंगे। मंत्र, मंगलकलश, शिवलिंग, कुंकुम, जेठीमधु, (मुरेठी), चन्दन, कस्तूरी, तीर्थ की मिट्टी, खड्ग, गैंड़े के सींग का टुकड़ा, स्फटिकमणि, पद्मरागमणि, इन्द्रनीलमणि, सूर्यमणि, रुद्राक्ष, कुश का मूल भाग, शालग्रामशिला, शंख, तुलसी, देव-मूर्ति, जल, शंख, प्रदीपमाला, पूजनीय शिला, घंटी, (शिव) निर्माल्य, नैवेद्य, हरे रंग की मणि, गांठ युक्त यज्ञोपवीत, दर्पण, श्वेतचँवर, गोरोचन, मोती, शुक्ति (सुतुही), माणिक्य, पुराणसंहिता, अग्नि, कपूर, फरसा अस्त्र, चाँदी, सुवर्ण, प्रवाल (मूँगा), रत्न, कुशबीज, तीर्थजल, गौ के दूध, दही, घी, गोबर, गोमूत्र, इन वस्तुओं को हे सुन्दरी! जो तुम्हारे ऊपर रखेगा, वह मूर्ख दशसहस्र वर्ष तक कालसूत्र नामक नरक में, निश्चित पकता रहेगा।

---

[1] क. नियमानि।

कुशबीजं तीर्थतोयं गव्यं गोमूत्रगोमयम्। त्वयि ये स्थापयिष्यन्ति मूढाश्चैतानि सुन्दरि ।।३९।।
पच्यन्ते कालसूत्रे ते वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ।।४०।।
ब्रह्मा पृथ्वीं समाश्वास्य देवताभिस्तया सह। जगाम जगतां धाता कैलासं शंकरालयम् ।।४१।।
गत्वा तमाश्रमं रम्यं ददर्श शंकरं विधिः। वसन्तमक्षयवटमूले स्वः सरितस्तटे ।।४२।।
व्याघ्रचर्मपरीधानं दक्षकन्यास्थिभूषणम्। त्रिशूलपटि्टशधरं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ।।४३।।
नानासिद्धैः परिवृतं योगीन्द्रगणसेवितम्। परितोऽप्सरसां नृत्यं पश्यन्तं सस्मितं मुदा ।।४४।।
गन्धर्वाणां च संगीतं श्रुतवन्तं कुतूहलात्। पश्यन्तीं पार्वतीं प्रीत्या पश्यन्तं वक्रचक्षुषा ।।४५।।
जपन्तं पञ्चवक्त्रेण हरेर्नामैकमङ्गलम्। मन्दाकिनीपद्मबीजमालया पुलकाङ्कितम् ।।४६।।
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा तस्थावग्रे स धूर्जटेः। पृथिव्या सुरसंघैश्च सार्धं प्रणतकंधरैः ।।४७।।
उत्तस्थौ शंकरः शीघ्रं भक्त्या दृष्ट्वा जगद्गुरुम्। ननाम मूर्ध्ना संप्रीत्या लब्धवानाशिषं ततः ।।४८।।
प्रणेमुर्देवताः सर्वे शंकरं चन्द्रशेखरम्। प्रणनाम धरा भक्त्या चाऽऽशिषं युयुजे हरः ।।४९।।
वृत्तान्तं कथयामास पार्वतीशं प्रजापतिः। श्रुत्वा नतमुखस्तूर्णं शंकरो भक्तवत्सलः ।।५०।।
भक्तापायं समाकर्ण्य पार्वतीपरमेश्वरौ। बभूवतुस्तौ दुःखार्तौ बोधयामास तौ विधिः ।।५१।।
ततो ब्रह्मा महेशश्च सुरसंघान्वसुंधराम्। गृहं प्रस्थापयामास समाश्वास्य प्रयत्नतः ।।५२।।

।।३३-४०।। इस प्रकार जगत् के धाता ब्रह्मा पृथिवी को समझा-बुझाकर देवों और उसे साथ लिये शंकर के घर— कैलास गये ।।४१।। वहाँ पहुँच कर ब्रह्मा ने शिव को देखा, जो स्वर्ग गंगा के तट पर अक्षयवट के नीचे स्थित, बाघम्बर पहने, दक्ष कन्या (सती) की अस्थियाँ भूषणरूप में धारण किये, त्रिशूलधारी, पांच मुख वाले, तीन नेत्र वाले, अनेक सिद्धों से आवृत, योगीन्द्रगण से सुसेवित, मन्दहास करते हुए हर्ष से अप्सराओं का नृत्य देख रहे थे, गन्धर्वों के संगीत कौतूहल से सुन रहे थे, पार्वती सप्रेम उन्हें देख रही थीं और वे भी अपनी आँखों की कोर से उन्हें देख रहे थे। वे पाँचों मुखों द्वारा भगवान् का एक मात्र मंगल रूप नाम जप रहे थे। मन्दाकिनी (गंगा) के कमल-बीज की माला पहने पुलकित हो रहे थे ।।४२-४६।। उसी बीच ब्रह्मा शिव के सामने कंधे झुकाकर प्रणाम करने वाले देवताओं और पृथिवी समेत खड़े हो गये ।।४७।। शिव जगत्गुरु ब्रह्मा को देखते ही भक्तिपूर्वक शीघ्र आसन से खड़े हो गये और शिर से उन्हें नमस्कार किया। अनन्तर सप्रेम उनका आशीर्वाद भी प्राप्त किया ।।४८।। देवगण चन्द्र-शेखर शिव को प्रणाम करने लगे और पृथ्वी ने भी भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया, भगवान् हर ने सबको शुभाशिष प्रदान किया ।।४९।। अनन्तर प्रजापति ब्रह्मा ने पार्वती-पति शिव से समस्त वृत्तान्त कह सुनाया, जिसे सुनकर भक्त-वत्सल शंकर ने नीचे मुख कर लिया ।।५०।। पार्वती और शिव ने भक्तों के ऐसे कष्टों को सुन कर बहुत दुःख प्रकट किया, यह देखकर ब्रह्मा ने उन्हें समझाया ।।५१।। तत्पश्चात् ब्रह्मा और महेश्वर ने वसुन्धरा तथा देवों को सप्रयत्न आश्वासन देकर उन्हें अपने-अपने घर भेज दिया ।।५२।। देवेश ब्रह्मा और महेश्वर भी बड़ी शीघ्रता से

ततो देवेश्वरैस्तूर्णमागत्य धर्ममन्दिरम्। सह तेन समालोच्य प्रजग्मुर्भवनं हरेः॥५३॥
वैकुण्ठं परमं धाम जरामृत्युहरं परम्। वायुना धार्यमाणं च ब्रह्माण्डादूर्ध्वमुत्तमम्॥५४॥
कोटियोजनमूर्ध्वं च ब्रह्मलोकात्सनातनम्। वर्णनीयं न कविभिर्विचित्रं रत्ननिर्मितम्॥५५॥
पद्मरागैरिन्द्रनीलै राजमार्गैर्विभूषितम्। ते मनोयायिनः सर्वे संप्रापुस्तं मनोहरम्॥५६॥
हरेरन्तः पुरं गत्वा ददृशुः श्रीहरिं सुराः। रत्नसिंहासनस्थं च रत्नालंकारभूषितम्॥५७॥
रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरशोभितम्। रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम्॥५८॥
पीतवस्त्रपरीधानं वनमालाविभूषितम्। शान्तं सरस्वतीकान्तं लक्ष्मीधृतपदाम्बुजम्॥५९॥
कोटिकन्दर्पलीलाभं स्मितवक्त्रं चतुर्भुजम्। सुनन्दनन्दकुमुदैः पार्षदैरुपसेवितम्॥६०॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सुरत्नमुकुटोज्ज्वलम्। परमानन्दरूपं च भक्तानुग्रहकारकम्॥६१॥
तं प्रणेमुः सुरेन्द्राश्च भक्त्या ब्रह्मादयो मुने। तुष्टुवुः परया भक्त्या भक्तिनम्रात्मकंधराः॥६२॥
परमानन्दभारार्ताः पुलकाञ्चितविग्रहाः ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

नमामि कमलाकान्तं शान्तं सर्वेशमच्युतम्। वयं यस्य कलाभेदा कलांशकलया सुराः॥६४॥

धर्म के यहाँ जाकर उनसे विचार विमर्श किया और अन्त में सब लोगों ने हरिभवन वैकुण्ठ के लिए प्रस्थान किया, जो परमवाम, जरा-मृत्यु का परम विनाशक एवं ब्रह्माण्ड से ऊपर वायु द्वारा स्थित है। वह सनातन लोक ब्रह्माण्ड से एक करोड़ योजन ऊपर, चित्र-विचित्र, रत्ननिर्मित, कवि-वर्णनातीत, पद्मराग एवं इन्द्रनील खचित राजमार्गों (सड़कों) से सुशोभित है। मन की भाँति गमन करने वाले देवगणों ने उस मनोहर लोक में पहुँचकर भगवान् के अंतःपुर में लक्ष्मीनारायण को देखा, जो रत्नसिंहासन पर सुखासीन, रत्नों के अलंकारों से अलंकृत, रत्नों के केयूर, कंकण और नूपुरों से सुशोभित थे। रत्नों के युगल कुण्डल से उनका गण्डस्थल भूषित था, स्वयं पीताम्बर पहने, वनमाला-भूषित, शांत, सरस्वती के कान्त, लक्ष्मी द्वारा सेवित चरण-कमल वाले, करोड़ों कन्दर्प की शोभा की भाँति कान्ति वाले, हँसमुख, चतुर्भुज, सुनंद, नंद और कुमुद आदि पार्षदों द्वारा सेवित, चन्दन-चर्चित सर्वांग वाले, उत्तम रत्नमुकुट से समुज्वल, परमानन्द स्वरूप और भक्तों पर कृपा करने वाले उन विष्णु को ब्रह्मादिदेवों ने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और हे मुने! पराभक्ति से कन्धे झुकाये हुए वे उनकी स्तुति करने लगे। उस समय देवगण परमानन्द में मग्न थे एवं उनके शरीर में रोमाञ्च हो रहा था॥५३-६३॥

ब्रह्मा बोले—कमलापति, शांत, सर्वाधीश्वर अच्युत को मैं नमस्कार कर रहा हूँ, हम लोग जिनकी

Funding by IKS-MoE

मनवश्च मुनीन्द्राश्च मानुषाश्च चराचराः। कलाकलांशकलया भूतास्त्वत्तो निरञ्जन ।।६५।।

शंकर उवाच

त्वामक्षयमक्षरं वा व्यक्तमव्यक्तमीश्वरम्। अनादिमादिमानन्दरूपिणं सर्वरूपिणम् ।।६६।।
अणिमादिकसिद्धीनां कारणं सर्वकारणम्। सिद्धिज्ञं सिद्धिदं सिद्धिरूपं कः स्तोतुमीश्वरः ।।६७।।

धर्म उवाच

वेदे निरूपितं वस्तु वर्णनीयं विचक्षणैः। वेदे निर्वचनीयं यत्तन्निर्वक्तुं च कः क्षमः ।।६८।।
यस्य संभावनीयं यद्गुणरूपं निरञ्जनम्। तदतिरिक्तं स्तवनं किमहं स्तौमि निर्गुणम् ।।६९।।
ब्रह्मादीनामिदं स्तोत्रं षट्श्लोकोक्तं महामुने। पठित्वा मुच्यते दुर्गाद्वाञ्छितं च लभेन्नरः ।।७०।।
देवानां स्तवनं श्रुत्वा तानुवाच हरिः स्वयम्। गोलोकं यात यूयं च यामि पश्चाच्छ्रिया सह ।।७१।।
नरनारायणौ तौ द्वौ श्वेतद्वीपनिवासिनौ। एते यास्यन्ति गोलोकं तथा देवी सरस्वती ।।७२।।
[१]अनन्ता मम माया च कार्तिकेयो गणाधिपः। सावित्री वेदमाता च पश्चाद्यास्यन्ति निश्चितम् ।।७३।।
तत्राऽहं द्विभुजः कृष्णो गोपीभी राधया सह। अत्राहं कमलायुक्तः सुनन्दादिभिरावृतः ।।७४।।
नारायणश्च कृष्णोऽहं श्वेतद्वीपनिवासकृत्। ममैवैताः कलाः सर्वे देवा ब्रह्मादयः स्मृताः ।।७५।।

कला और देवगण कलांश की कलायें हैं। हे निरञ्जन! तुम्हारी ही कला की अंशकला से मनुगण, मुनीन्द्रवर्ग, मनुष्य एवं समस्त चर-अचर उत्पन्न हुए हैं।।६४-६५।।

शंकर बोले—हे भगवन्! तुम नाशरहित, क्षरित न होने वाले, व्यक्त, अव्यक्त, ईश्वर, अनादि, आदि सहित, आनन्द-स्वरूप, अखिल रूप, अणिमा आदि सिद्धियों के कारण, सबके कारण, सिद्धिज्ञाता, सिद्धिदायक और सिद्धिरूप हो, अतः तुम्हारी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ।।६६-६७।।

धर्म बोले—वेद में कहे हुए का वर्णन बुद्धिमानों ने किया है, किंतु जो वेद में भी अनिर्वचनीय (वाणी से परे) हैं, उसकी स्तुति कौन कर सकता है? जिसके लिए जिस वस्तु की संभावना की जाती है, वह गुण रूप होती है। वही उसका स्तवन है, जो निरञ्जन (निर्मल) तथा गुणों से पृथक् निर्गुण है, उस परमात्मा की मैं क्या स्तुति करूँ ? हे महामुने! ब्रह्मा आदि देवकृत इस छह श्लोकों के स्तोत्र का जो पाठ करता है, वह मनुष्य संकटरहित होकर मनोरथ प्राप्त करता है। देवों की ऐसी स्तुति सुनकर विष्णु ने स्वयं उन लोगों से कहा—'तुम लोग गोलोक चलो, पीछे लक्ष्मी समेत मैं भी आ रहा हूँ। श्वेतद्वीपनिवासी नर-नारायण और सरस्वती देवी भी तुम लोगों के साथ गोलोक जायंगी। मेरी अनन्त माया, कार्तिकेय, गणेश एवं वेदजननी सावित्री भी पीछे निश्चित जायँगी ।।६८-७३।। गोलोक में भी मैं ही दो भुजा से कृष्णरूप धारण कर राधा और गोपियों के साथ रहता हूँ और यहाँ कमला के साथ सुनंद आदि पार्षदों समेत रहता हूँ ।।७४।। श्वेतद्वीपनिवासी नारायण और कृष्ण मैं ही हूँ, ब्रह्मा आदि समस्त देवगण हमारी कलाएँ हैं।।७५।। देव, असुर और मनुष्य आदि कला की कलांश-कलायें

---

[१] क. ०नन्तो म०।

Funding by IKS-MoE

कलाकलांशकलया सुरासुरनरादयः। गोलोकं यात यूयं च कार्यसिद्धिर्भविष्यति ॥७६॥
वयं पश्चाद्गमिष्यामः सर्वेषामिष्टसिद्धये। इत्युक्त्वा वै सभामध्ये विरराम हरिः स्वयम् ॥७७॥
प्रणम्य देवताः सर्वा जग्मुर्गोलोकमद्भुतम्। विचित्रं परमं धाम जरामृत्युहरं परम् ॥७८॥
ऊर्ध्वं वैकुण्ठतोऽगम्यं पञ्चाशत्कोटियोजनम्। वायुना धार्यमाणं च निर्मितं स्वेच्छया विभोः ॥७९॥
तमनिर्वचनीयं च देवास्ते गमनोत्सुकाः[1]। ते मनोयायिनः सर्वे संप्रापुर्विरजातटम् ॥८०॥
दृष्ट्वा देवाः सरित्तीरं विस्मयं परमं ययुः। शुद्धस्फटिकसंकाशं सुविस्तीर्णं मनोहरम् ॥८१॥
मुक्तामाणिक्यपरममणिरत्नाकरान्वितम्। कृष्णशुभ्रहरिद्रक्तमणिराजिविराजितम् ॥८२॥
प्रवालाङ्कुरमुद्भूतं कुत्रचित्सुमनोहरम्। परमामूल्यसद्रत्नाकरराजिविभूषितम् ॥८३॥
विधेरदृश्यमाश्चर्यं निधिश्रेष्ठाकरान्वितम्। पद्मरागेन्द्रनीलानामाकरं कुत्रचिन्मुने ॥८४॥
कुत्रचिच्च मरकताकरश्रेणीसमन्वितम्। स्यमन्तकाकरं कुत्र कुत्रचिद्रुचकाकरम् ॥८५॥
अमूल्यपीतवर्णाभं मणिश्रेण्याकरान्वितम्। रत्नाकरं कुत्रचिच्च कुत्रचित्कौस्तुभाकरम् ॥८६॥
कुत्रानिर्वचनीयानां मणीनामाकरं परम्। कुत्रचित्कुत्रचिद्रम्यविहारस्थलमुत्तमम् ॥८७॥
दृष्ट्वा तु परमाश्चर्यं जग्मुस्तत्पारमीश्वराः। ददृशुः पर्वतश्रेष्ठं शतशृङ्गं मनोरमम् ॥८८॥

हैं। तुम लोग गोलोक जाओ, कार्य की सिद्धि अवश्य होगी ॥७६॥ सभी के मनोरथ की पूर्ति के लिए हम लोग पश्चात् जायंगे। सभा में इतना कहकर भगवान् चुप हो गये ॥७७॥ अनन्तर सभी देवों ने उन्हें प्रणाम करके गोलोक को प्रस्थान किया, जो अद्भुत, चित्रविचित्र, जरा-मृत्यु रहित एवं परमधाम है ॥७८॥ प्रभु का यह लोक वैकुण्ठ से पचास करोड़ योजन ऊपर वायु के आधार पर स्थित एवं विभु की स्वेच्छा से रचित है ॥७९॥ उसी अनिर्वचनीय लोक जाने के लिए देवगण ने बड़ी उत्सुकता से प्रस्थान किया और मन की भाँति वेगगामी वे देव लोग विरजा के तट पर पहुँच गये ॥८०॥ नदी का तट देखकर देवों को महान् आश्चर्य हुआ। वह शुद्ध स्फटिक की भाँति उज्ज्वल, अति विस्तृत, अति मनोहर, मुक्ता, माणिक्य, परमोत्तम मणि और रत्नों की खानों से युक्त, श्यामल, श्वेत, हरे एवं रक्तवर्ण की मणियों से सुशोभित था ॥८१-८२॥ प्रवाल के अंकुर निकलने के कारण कहीं-कहीं अति मनोहर, परम अमूल्य उत्तम रत्नों की खानों से शोभायमान था ॥८३॥ हे मुने ! ब्रह्मा के लिए वह आश्चर्य अदृश्य था। वहाँ अनेक परमोत्तम खाने थीं कहीं पद्मराग, इन्द्रनील और कहीं मरकत मणियों की खानें, कहीं स्यमंतक मणि की खान और कहीं सुवर्ण की निधियां थीं ॥८४॥ कहीं अमूल्य पीतवर्ण की मणियों की निधि, कहीं रत्नों के निधान, कहीं कौस्तुभ निधान और कहीं अनिर्वचनीय मणियों की खान थी एवं कहीं विहार करने का सुरम्य स्थान था ॥८६-८७॥ उसे देख कर आश्चर्य चकित हो देवगण उसके पार पहुँचे। वहाँ उन्हें सौ शिखरवाला मनोहर पर्वत दिखायी पड़ा, जो पारिजात वृक्षों की वन-श्रेणियों से सुशोभित, कल्पवृक्षों

---

[1] क. ०नोन्मुखाः।

Funding by IKS-MoE

पारिजाततरूणां च वनराजिविराजितम्। कल्पवृक्षैः परिवृतं वेष्टितं कामधेनुभिः ॥८९॥
कोटियोजनमूर्ध्वं च दैर्घ्यं दशगुणोत्तरम्। शैलप्रस्थपरिमितं पञ्चाशत्कोटियोजनम् ॥९०॥
प्राकाराकारमस्यैव शिखरे रासमण्डलम्। दशयोजनविस्तीर्णं वर्तुलाकारमुत्तमम् ॥९१॥
पुष्पोद्यानसहस्रेण पुष्पितेन सुगन्धिना। संकुलेन मधुघ्राणां समूहेन समन्वितम् ॥९२॥
सुरतद्रव्यसंयुक्तै राजितं रत्नमन्दिरैः। रत्नमण्डपकोटीनां सहस्रेण समन्वितम् ॥९३॥
रत्नसोपानयुक्तेन सद्रत्नकलशेन च। हरिन्मणीनां स्तम्भेन शोभितेन च शोभितम् ॥९४॥
सिंदूरवर्णमणिभिः परितः खचितेन च। इन्द्रनीलैर्मध्यगतैर्मण्डितेन मनोहरैः ॥९५॥
[1]रत्नप्राकारसंयुक्तमणिभेदैर्विराजितम्। द्वारैः कपाटसंयुक्तैश्चतुर्भिश्च विराजितम् ॥९६॥
रज्जुग्रन्थिसमायुक्तं[2] रसालपल्लवान्वितैः। परितः कदलीस्तम्भसमूहैश्च समन्वितम् ॥९७॥
[3]शुक्लधान्यपर्णजालफलदूर्वांकुरान्वितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥९८॥
वेष्टितं गोपकन्यानां समूहैः कोटिशो मुने। रत्नालंकारसंयुक्तै रत्नमालाविराजितैः ॥९९॥
रत्नकंकणकेयूररत्ननूपुरभूषितैः। रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितैः ॥१००॥
रत्नाङ्गुलीयललितैर्हस्ताङ्गुलिविराजितैः। रत्नपाशकवृन्दैश्च[4] विराजितपदाङ्गुलैः ॥१०१॥
भूषितै रत्नभूषाभिः सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलैः। गजेन्द्रमुक्तालंकारैर्नासिकामध्यराजितैः ॥१०२॥

पाशक = बिछुआ

से घिरा और कामधेनुओं से आच्छन्न था ॥८८-८९॥ वह एक करोड़ योजन ऊँचा और उसका दशगुना चौड़ा था। उसके ऊपर की भूमि पचास करोड़ योजन विस्तृत थी। वह पर्वत चहारदीवारी की भाँति गोलोक के चारों ओर फैला हुआ था। उसी पर्वत के शिखर पर दश-योजन विस्तीर्ण, गोलाकार परमोत्तम रासमण्डल स्थित है ॥९०-९१॥ वह सुगन्धित एवं फूली हुई सहस्रों पुष्प-वाटिकाओं और भौरों के समूहों से युक्त था ॥९२॥ वह सुरतोपभोग की वस्तुओं से सजे रतिमन्दिरों से युक्त, सहस्र करोड़ रत्नमण्डलों तथा रत्नों की सीढ़ियों, उत्तम रत्नों के कलशों और हरे रंग की मणियों के खम्भों से अति सुशोभित था ॥९३-९४॥ चारों ओर सिन्दूरवर्ण की मणियों से खचित तथा मध्य में इन्द्रनील से भूषित होने के नाते अति मनोहर, रत्नों की चहारदीवारी में लगी विभिन्न रंग की मणियों तथा कपाट (किवाड़) लगे चार दरवाजों से सुभूषित था ॥९५-९६॥ रस्सियों में गांठ देकर आम के पल्लवों से तथा चारों ओर केले के स्तम्भों से युक्त था ॥९७॥ हे मुने! शुक्ल धान्य (चावल) पत्तों के जाल, फल, दूर्वा के अंकुर, चन्दन, अगरु, कस्तूरी, और कुंकुम आदि द्रव (पिसे) पदार्थों से शोभित एवं करोड़ों गोप-कन्याओं से आच्छन्न था, जो रत्नों के भूषणों एवं रत्नों की मालाओं से शोभित थीं। वे रत्नों के कंकण एवं नूपुरों को पहनती थीं और रत्नों के युगल कुण्डल से उनके गण्डस्थल सुशोभित थे ॥९८-१००॥ वे रत्नों की अंगूठियों से रम्य हाथ की अंगुलियों से विराजित, रत्नों के बिछुओं से भूषित चरण की अंगुलियों वाली, रत्नों के भूषणों से भूषित, उत्तम रत्नों के मुकुटों से समुज्ज्वल, नासिका के मध्य गजेन्द्रमुक्तालंकार

---

[1] क. ०त्नप्रकाशसं०। [2] क. ०युक्तै र। [3] क. र्णलाजाफ०। [4] क. ०कषट्कैश्च।

Funding by IKS-MoE

५४५

मुख् → [illegible]

BVBSSMV

सिन्दूरबिन्दुना सार्धमलकाधः स्थलोज्ज्वलैः। चारुचम्पकवर्णाभैश्चन्दनद्रवर्चचितैः ॥१०३॥
पीतवस्त्रपरीधानैर्बिम्बाधरमनोहरैः। शरत्पार्वणचन्द्राणां प्रभाजुष्टमुखोज्ज्वलैः ॥१०४॥
शरत्प्रफुल्लपद्मानां शोभामोषणलोचनैः। कस्तूरीपत्रिकायुक्तै रेखाक्तकज्जलोज्ज्वलैः ॥१०५॥
प्रफुल्लमालतीमालाजालैः कबरशोभितैः। मधुलुब्धमधुघ्राणां समूहैश्चापि संकुलैः। ॥१०६॥
चारुणा गमनेनैव गजखञ्जनगञ्जनैः ॥१०७॥
वक्रभ्रूभङ्गसंयोगश्लक्षणस्मितसमन्वितैः। पक्वदाडिमबीजाभदन्तपङ्क्तिविराजितैः ॥१०८॥
खगेन्द्रचञ्चुशोभाढ्यनासिकोन्नतभूषितैः। गजेन्द्रगण्डयुग्माभस्तनभारनतैरिव ॥१०९॥
नितम्बकठिनश्रोणीपीनभारभरानतैः। कन्दर्पशरचेष्टाभिर्जर्जरीभूतमानसैः ॥११०॥
दर्पणैः पूर्णचन्द्रास्यसौन्दर्यदर्शनोत्सुकैः। राधिकाचरणाम्भोजसेवासक्तमनोरथैः ॥१११॥
सुन्दरीणां समूहैश्च रक्षितं राधिकाज्ञया। क्रीडासरोवराणां च लक्षैश्च परिवेष्टितम् ॥११२॥
श्वेतरक्तैर्लोहितैश्च वेष्टितैः पद्मराजितैः। सुकूजद्भिर्मधुघ्राणां समूहैः संकुलैः सदा ॥११३॥
पुष्पोद्यानसहस्रेण पुष्पितेन समन्वितम्। कोटिकुञ्जकुटीरैश्च पुष्पशय्यासमन्वितैः ॥११४॥
भोगद्रव्यसकर्पूरताम्बूलवस्त्रसंयुतैः। रत्नप्रदीपैः परितः श्वेतचामरदर्पणैः ॥११५॥
विचित्रपुष्पमालाभिः शोभितैः शोभितं मुने। तं रासमण्डपं दृष्ट्वा जग्मुस्ते पर्वताद्बहिः ॥११६॥
ततो विचक्षणं रम्यं ददृशुः सुन्दरं वनम्। वनं वृन्दावनं नाम राधामाधवयोः प्रियम् ॥११७॥

से सुशोभित तथा सिन्दूर-बिन्दी के साथ बालों के नीचे उज्ज्वल स्थल से युक्त थीं, चारु चम्पा के समान कान्ति-पूर्ण एवं चन्दन के द्रव से चर्चित थीं ॥१०१-१०३॥ पीतवस्त्र के पोशाक, मनोहर बिम्बा के समान अधरोष्ठ, शरच्चन्द्र की प्रभा को चुराने वाले समुज्ज्वल मुख, शरत्कालीन विकसित कमलों की शोभा को चुराने वाले नेत्र, कस्तूरी-पत्रिका, रेखाक्त काजल, फूली हुई मालती की मालाओं से शोभित केशपाश, मधु के लोभी भौरों के समूहों और गजराज एवं खंजन की गति के समान सुन्दर चाल, भौंहों को टेढ़ी-सीधी करते समय मन्द मुसुकान, पके अनार के दाने के समान कान्तिपूर्ण दाँतों की पंक्ति और गरुड़ की चोंच के समान ऊंची सुन्दर नासिका से युक्त थीं। गजेन्द्र के युगल गण्डस्थल के समान कान्तिपूर्ण स्तनों के भार से दबी-सी, पीन नितम्ब एवं कठिन श्रोणी के भार से झुकी-सी, कामबाणों से जर्जर मन वाली और दर्पण में पूर्णचन्द्र के समान सौंदर्यपूर्ण मुख देखने के लिए उत्सुक थीं। राधिका जी के चरण-कमल की सेवा में सदैव मन लगाने वाली उन सुन्दरियों के समूहों से वह (रासमण्डल) सुरक्षित था। उस में लाखों क्रीड़ा-सरोवर थे, जो श्वेत, रक्त और अति रक्त वर्ण की कमल-पंक्तियों से भूषित थे, पक्षियों का कूजन और भौरों का गुंजन उसमें सदैव होता रहता था ॥१०४-११३॥ फूले हुए सहस्रों उपवन, पुष्पशय्या-युक्त करोड़ों कुंजो एवं कुटीरों से (रासमंडल) पूर्ण था। भोग्य वस्तु, कपूर, ताम्बूल, वस्त्र, रत्नदीप, श्वेत चामर, दर्पण और विचित्र पुष्पों की मालाओं से सुशोभित था। हे मुने! ऐसे रासमण्डल को देखते हुए वे देवगण पर्वत से बाहर हो गये ॥११४-११६॥ वहाँ राधा-माधव का प्रिय वृन्दावन नामक वन देखा, जो रमणीक एवं अति सुन्दर था ॥११७॥

Funding by IKS-MoE

क्रीडास्थानं तयोरेव कल्पवृक्षचयान्वितम् । विरजातीरनीराक्तैः कम्पितं मन्दवायुभिः ॥११८॥
कस्तूरीयुक्तपत्राब्जैः पुष्पौघैः सुरभीकृतम्। नवपल्लवसंसक्तपरपुष्टरुतैर्युतम् ॥११९॥
कुत्र केलिकदम्बानां कदम्बैः कमनीयकम्। मन्दाराणां चम्पकानां चन्दनानां तथैव च ॥१२०॥
सुगन्धिकुसुमानां च गन्धेन सुरभीकृतम्। आम्राणां [1]नागरङ्गाणां पनसानां तथैव च ॥१२१॥
तालानां नारिकेलानां वन्दैर्वृन्दारकं वनम्। जम्बूनां बदरीणां च खर्जूराणां विशेषतः ॥१२२॥
गुवाकाम्रातकानां च जम्बीराणां च नारद। कदलीनां श्रीफलानां दाडिमानां मनोहरैः ॥१२३॥
सुपक्वफलसंयुक्तैः समूहैश्च विराजितम्। पिप्पलीनां च शालानामश्वत्थानां तथैव च ॥१२४॥
निम्बानां शाल्मलीनां च तित्तिडीनां च शोभनैः। अन्येषां तरुभेदानां संकुलैः संकुलं सदा ॥१२५॥
परितः कल्पवृक्षाणां वृन्दैर्वृन्दैर्विराजितम्। मल्लिकामालतीकुन्दकेतकीमाधवीलताः ॥१२६॥
एतासां च समूहैश्च यूथिकाभिः समन्वितम्। चारुकुञ्जकुटीरैस्तैः पञ्चाशत्कोटिभिर्मुने ॥१२७॥
रत्नप्रदीपदीपैश्च धूपेन सुरभीकृतैः। शृङ्गारद्रव्ययुक्तैश्च वासितैर्गन्धवायुभिः ॥१२८॥
चन्दनाक्तैः पुष्पतल्पैर्मालाजालसमन्वितैः । मधुलुब्धमधुघ्राणां कलशब्दैश्च शब्दितम् ॥१२९॥
रत्नालंकारशोभाढ्यैर्गोपीवृन्दैश्च वेष्टितम् । पञ्चाशत्कोटिगोपीभी रक्षितं राधिकाज्ञया ॥१३०॥
द्वात्रिंशत्काननं तत्र रम्यं रम्यं मनोहरम्। वृन्दावनाभ्यन्तरितं निर्जनस्थानमुत्तमम् ॥१३१॥

उसमें उन दोनों—राधामाधव के क्रीड़ास्थान को भी देखा, जो कल्पवृक्षों से युक्त और विरजा के तीर पर जलसिक्त मंद वायु से कम्पित हो रहा था। कस्तूरी भरे कमलपत्ते के पुटों और पुष्प-समूहों से सुगन्धित, नवीन पल्लवों में बैठे कोकिल की कूक से युक्त, कहीं क्रीड़ा कदम्ब के समूहों से सुरम्य, मंदार, चम्पा, चन्दन वृक्षों तथा सुगन्धित पुष्पों से सुगन्धिमय, आम्र, नारंगी, कटहल, ताड़, नारियल के समूहों से, विशेषकर जामुन, बेर और खजूर के वृक्षों से भूषित था ॥११८-१२२॥ हे नारद! सुपारी, आमड़ा, नीबू, केला, बेल और अनार के पके एवं उत्तम फलों से युक्त, पीपरि, साखू, पीपल, नीम, सेमर एवं इमली तथा अन्य अनेक भाँति के वृक्षों के समूहों से सदा सुशोभित था ॥१२३-१२५॥ वह चारों ओर कल्पवृक्षों के समूहों से सुशोभित, मल्लिका, मालती, कुंद, केतकी तथा माधवी-लताओं के वृन्दों से युक्त था। हे मुने! उसमें पचास करोड़ कुंज-कुटीर बने थे, जो रत्नों के दीपकों और धूप, सुवासित शृंगार की वस्तुओं से तथा सुगन्धित वायु, चन्दन-सिक्त पुष्पशय्या एवं मालाओं से युक्त भौरों से गुंजित, और रत्नों के भूषणों से सुभूषित गोपियों से घिरे थे। इस प्रकार राधिका की आज्ञा से वह पचास करोड़ गोपियों से सुरक्षित था ॥१२६-१३०॥ उस वृन्दावन के भीतर बत्तीस वन और थे, जो अति रमणीय, मनोहर एवं उत्तम निर्जन स्थान थे ॥१३१॥ हे मुने! उत्तम पके और स्वादिष्ठ फलों से पूर्ण,

---

[1] क. ०वङ्गरा०।

सुपक्वमधुरस्वादुफलैर्वृन्दारकं मुने। गोष्ठानां च गवां चैव समूहैश्च समन्वितम् ॥१३२॥
पुष्पोद्यानसहस्रेण पुष्पितेन सुगन्धिना। मधुलुब्धमधुघ्राणां समूहेन समन्वितम् ॥१३३॥
पञ्चाशत्कोटिगोपानां विलासैश्च विराजितम्। श्रीकृष्णतुल्यरूपाणां सद्रत्नगुण्ठितैर्वरैः ॥१३४॥
दृष्ट्वा वृन्दावनं रम्यं ययुर्गोलोकमीश्वराः। परितो वर्तुलाकारं कोटियोजनविस्तृतम् ॥१३५॥
रत्नप्राकारसंयुक्तं चतुर्द्वारान्वितं मुने। गोपानां च समूहैश्च द्वारपालैः समन्वितम् ॥१३६॥
आश्रमै रत्नखचितैर्नानाभोगसमन्वितैः। गोपानां कृष्णभृत्यानां पञ्चाशत्कोटिभिर्युतम् ॥१३७॥
भक्तानां गोपवृन्दानामाश्रमैः शतकोटिभिः। ततोऽधिकसुविस्तीर्णैः सद्रत्नग्रथितैर्युतम् ॥१३८॥
आश्रमैः पार्षदानां च ततोऽधिकविलक्षणैः। अमूल्यरत्नरचितैः संयुक्तं शतकोटिभिः ॥१३९॥
पार्षदप्रवराणां च श्रीकृष्णरूपधारिणाम्। आश्रमैः कोटिभिर्युक्तं सद्रत्नेन विनिर्मितैः ॥१४०॥
राधिकाशुद्धभक्तानां गोपीनामाश्रमैर्वरैः। सद्रत्नरचितैर्दिव्यैर्द्वात्रिंशत्कोटिभिर्युतम् ॥१४१॥
तासां च किङ्करीणां च भवनैः सुमनोहरैः। मणिरत्नादिरचितैः शोभितं दशकोटिभिः ॥१४२॥
शतजन्मतपःपूता भक्ता ये भारते भुवि। हरिभक्तिपरा ये च कर्मनिर्वाणकारकाः ॥१४३॥
स्वप्ने ज्ञाने हरेर्ध्याने निविष्टमानसा मुने। राधाकृष्णेति कृष्णेति प्रजपन्तो दिवानिशम् ॥१४४॥

गोशालाओं और गौओं के समूहों से सुशोभित, फूले हुए सुगन्धित पुष्पों से युक्त सहस्र उपवनों से पूर्ण, मधुलोभी भौंरों के वृन्दों से युक्त और श्रीकृष्ण के तुल्य रूप वाले तथा उत्तम रत्नहार से विभूषित पचास करोड़ गोपों के विविध विलासों से विलसित रमणीय वृन्दावन को देखते हुए देवेश्वरगण गोलोक में पहुँच गये, जो चारों ओर गोलाकार तथा एक करोड़ योजनों में विस्तृत है।। १३१-१३५।। हे मुने! वह रत्नों की चहारदीवारी से युक्त और चार द्वारों से भूषित है, जहाँ गोपों का समूह द्वारपालरूप में विराजमान है।।१३६।। वहाँ श्रीकृष्ण की सेवा में लगे रहने वाले गोपों के आश्रम भी रत्नों से जटित तथा नाना प्रकार के भोगों से सम्पन्न हैं। उन आश्रमों की संख्या पचास करोड़ है। इनके अतिरिक्त भक्त गोप-समूहों के सौ करोड़ आश्रम हैं, जिनका निर्माण पूर्वोक्त आश्रमों से भी सुन्दर है। वे सबके सब उत्तम रत्नों से गठित हैं। उनसे भी अधिक विलक्षण तथा बहुमूल्य रत्नों-द्वारा रचित आश्रम पार्षदों के हैं, जिनकी संख्या दस करोड़ है। पार्षदों में भी जो प्रमुख हैं, वे श्रीकृष्ण के समान रूप धारण करके रहते हैं। उनके लिए उत्तम रत्नों से निर्मित एक करोड़ आश्रम हैं।।१३७-१४०।। राधिका में विशुद्ध भक्ति रखने वाली गोपांगनाओं के बत्तीस करोड़ दिव्य एवं श्रेष्ठ आश्रम हैं, जिनकी रचना उत्तम श्रेणी के रत्नों द्वारा हुई है। उनकी जो किंकरियाँ हैं, उनके लिए भी मणिरत्न आदि के द्वारा बड़े सुन्दर भवन बनाये गये हैं, जिनकी संख्या दस करोड़ है।।१४१-१४२।। हे मुने! भारत-भूतल पर रहने वाले जो (भक्त-जन) सैकड़ों जन्मों के तप से पूत, हरिभक्तिपरायण, कर्मबन्धन से मुक्त और सोते-जागते सब समय एकमात्र भगवान् के ध्यान में मन लगाये रात-दिन राधाकृष्ण, कृष्ण—यह जपते रहते हैं,

तेषां श्रीकृष्णभक्तानां निवासैः सुमनोहरैः। सद्रत्नमणिनिर्माणैर्नानाभोगसमन्वितैः ॥१४५॥
पुष्पशय्यापुष्पमालाश्वेतचामरशोभितैः। रत्नदर्पणशोभाढ्यैर्हरिन्मणिसमर्पितैः ॥१४६॥
अमूल्यरत्नकलशसमूहान्वितशेखरैः। सूक्ष्मवस्त्राभ्यन्तरितैः संयुक्तं शतकोटिभिः ॥१४७॥
देवास्तमद्भुतं दृष्ट्वा कियद्दूरं ययुर्मुदा। तत्राक्षयवटं रम्यं ददृशुर्जगदीश्वराः ॥१४८॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णमूर्ध्वं तद्द्विगुणं मुने। सहस्रस्कन्धसंयुक्तशाखासंस्थासमन्वितम् ॥१४९॥
रक्तपक्वफलाकीर्णं शोभितं रत्नवेदिभिः। कृष्णस्वरूपांस्तन्मूले ददृशुर्वल्लभाञ्छिशून् ॥१५०॥
पीतवस्त्रपरीधानान्क्रीडासक्तमनोहरान्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गान्रत्नभूषणभूषितान् ॥१५१॥
ददृशुस्तत्र देवेशाः पार्षदप्रवरान्हरेः। ततोऽविदूरे ददृशु राजमार्गं मनोहरम् ॥१५२॥
सिन्दूराकारमणिभिः परितो रचितं मुने। इन्द्रनीलैः पद्मरागैर्हीरकै रुचकैस्तथा ॥१५३॥
निर्मितैर्वेदिभिर्युक्तं परितो रत्नमण्डलम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवर्चाचितम् ॥१५४॥
दधिपूर्णलाजफलपुष्पदूर्वाङ्कुरान्वितम्। सूक्ष्मसूत्रग्रन्थियुक्तश्रीखण्डपल्लवान्वितम् ॥१५५॥
रम्भास्तम्भसमूहैश्च कुङ्कुमाक्तैर्विराजितम्। सद्रत्नमण्डलघटैः फलशाखासमन्वितैः ॥१५६॥
सिन्दूरकुङ्कुमाक्तैश्च गन्धचन्दनचर्चितैः। भूषितैः पुष्पमालाभिः पादपैः परिभूषितम् ॥१५७॥

उन श्रीकृष्ण-भक्तों के लिए भी अतिमनोहर, उत्तम रत्नों एवं मणियों से सुरचित और नाना भोग-वस्तुओं से पूर्ण निवास-स्थान हैं, जहाँ पुष्पशय्या, पुष्पों की मालायें, श्वेत चामर-समूह, रत्नों के दर्पण, मरकतमणिसमूह तथा अमूल्य रत्नों के कलश-समूहों से भूषित शिखर हैं और सूक्ष्म वस्त्रों के आवरण पड़े हुए हैं। ऐसे भवनों की संख्या भी सौ करोड़ हैं॥१४३-१४७॥ ब्रह्मा आदि जगदीश्वर एवं देवगण इस प्रकार सुप्रसन्न मन से देखते हुए कुछ ही दूर गये कि एक रमणीक अक्षयवट (बरगद) का वृक्ष उन्हें दिखाई पड़ा। उस वृक्ष का विस्तार पाँच योजन और ऊँचाई दस योजन है। उसमें सहस्रों तनें और असंख्य शाखायें शोभा पाती हैं॥१४८-१४९॥ वह रक्तवर्ण के पके फल से आच्छन्न तथा रत्नों की वेदियों से सुशोभित है। उस वृक्ष के नीचे कृष्ण के समान स्वरूप-वाले प्यारे बच्चे दिखाई पड़े, जो पीतवस्त्र पहने, क्रीड़ा में मग्न, सर्वांग में चन्दन-चर्चित और रत्नों के भूषणों से भूषित थे॥१५०-१५१॥ देवेश्वरों ने वहाँ भगवान् के श्रेष्ठ पार्षदों को देखा। मुने! वहाँ से थोड़ी दूर पर उन्हें एक राजमार्ग दिखाई दिया, जो सिन्दूर के समान लाल मणियों से सुरचित था, पद्मराग, हीरा और रुचक आदि से बनी वेदियाँ उस राजमार्ग के उभय पार्श्व को सुशोभित कर रही थीं। दोनों ओर रत्नमय विश्राम-मण्डप शोभा पाते थे। उस मार्ग पर चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम के द्रव से मिश्रित जल का छिड़काव किया गया था। पल्लव, लावा, फल, पुष्प, दूर्वा तथा सूक्ष्म सूत्र में गुंथे हुए चन्दन-पल्लवों की बन्दनवार से युक्त सहस्रों कदली-स्तम्भों के समूह उस राजमार्ग के तटप्रान्त की शोभा बढ़ाते थे। उन सब पर कुंकुम-केसर छिड़के गये थे। जगह-जगह उत्तम रत्नों के बने हुए मंगल-घट स्थापित थे, उनमें फल और शाखाओं सहित पल्लव शोभा पाते थे। सिन्दूर कुंकुम, गन्ध और चन्दन से वे चर्चित थे। पुष्पमालाओं से विभूषित वृक्ष राजमार्ग की शोभा

क. ०शुर्वल्लवाञ्छि०।

गोपिकानां समूहैश्च क्रीडासक्तैश्च वेष्टितम्। बहुमूल्येन रत्नेन रत्नसोपाननिर्मितान् ॥१५८॥
वह्निशौचांशुकै रम्यैः श्वेतचामरदर्पणैः। रत्नतल्पविचित्रैश्च पुष्पमाल्यैर्विराजितान् ॥१५९॥
षोडशद्वारसंयुक्तान्द्वारपालैश्च रक्षितान्। परितः परिखायुक्तान्रत्नप्राकारवेष्टितान् ॥१६०॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितान्। गृहान्मनोरमान्दृष्ट्वा ते देवा गमनोत्सुकाः ॥१६१॥
जग्मुः शीघ्रं कियद्दूरं ददृशुः सुन्दरं ततः। आश्रमं राधिकायाश्च रासेश्वर्याश्च नारद ॥१६२॥
देवाधिदेव्या गोपीनां वरायाश्चारुनिर्मितम्। प्राणाधिकायाः कृष्णस्य रम्यद्रव्यमनोहरम् ॥१६३॥
सर्वानिर्वचनीयं च पण्डितैर्न निरूपितम्। सुचारुवर्तुलाकारं षड्गव्यूतिप्रमाणकम् ॥१६४॥
शतमन्दिरसंयुक्तं ज्वलितं रत्नतेजसा। अमूल्यरत्नसाराणां चयैर्विरचितं वरम् ॥१६५॥
दुर्लङ्घ्याभिर्गभीराभिः परिखाभिः सुशोभितम्। कल्पवृक्षैः परिवृतं पुष्पोद्यानशतान्तरम् ॥१६६॥
सुमूल्यरत्नखचितप्राकारैः परिवेष्टितम्। सद्रत्नवेदिकायुक्तैर्युक्तं द्वारैश्च सप्तभिः ॥१६७॥
संयुक्तं रत्नचित्रैश्च विचित्रैर्वर्तुलं मुने। प्रधानसप्तद्वारेभ्यः क्रमशः क्रमशो मुने ॥१६८॥
सर्वतोऽपि ततस्तत्र षोडशद्वारसंयुतम्। देवा दृष्ट्वा च प्राकारं सहस्रधनुरुच्छ्रितम् ॥१६९॥
सद्रत्नक्षुद्रकलशसमूहैः सुमनोहरैः। प्रदीप्तं तेजसा रम्यं परमं विस्मयं ययुः ॥१७०॥

बढ़ा रहे थे। क्रीड़ा-मग्न गोपिकायें इस मार्ग को घेरे खड़ी थीं। बहुमूल्य रत्नों से वहाँ मणिमय सोपानों का निर्माण किया गया था॥१५२-१५८॥ वहाँ कुल मिलाकर सोलह द्वार थे, जो अग्निशुद्ध रमणीय चिन्मय वस्त्रों, श्वेत चामरों, दर्पणों, रत्नमयी शय्याओं तथा विचित्र पुष्पमालाओं से शोभायमान थे। बहुत-से द्वारपाल उन प्रदेशों की रक्षा करते थे। उनके चारों ओर खाइयाँ थीं और लाल रंग के परकोटों से वे घिरे हुए थे। इन मनोरम प्रदेशों का दर्शन करके देवता वहाँ से आगे बढ़ने को उद्यत हुए। वे शीघ्रता से कुछ दूर तक गये। वहाँ उन्हें रासेश्वरी राधा का आश्रम दिखाई पड़ा। नारद! देवताओं की आदि देवी गोपीशिरोमणि, श्रीकृष्णप्राणाधिका का वह निवासस्थान बड़ा ही सुन्दर बनाया गया था। रमणीय द्रव्यों के कारण उसकी मनोहरता बहुत बढ़ गयी थी। वहाँ का सब कुछ सबके लिए अनिर्वचनीय था। बड़े से बड़े विद्वान् भी उस स्थान का सम्यक् वर्णन नहीं कर सके हैं। वह मनोहर आश्रम गोलाकार बना है तथा उसका विस्तार बारह कोश का है। उसमें सौ मन्दिर बने हुए हैं। वह अद्भुत आश्रम दिव्य रत्नों के तेज से जगमगाता रहता है। बहुमूल्य रत्नों के सारभाग से उसकी रचना हुई है। वह दुर्लंघ्य एवं गहरी खाइयों से सुशोभित है। कल्पवृक्ष उस आश्रम को सब ओर से घेरे हुए हैं। उसके भीतर सैकड़ों पुष्पोद्यान शोभा पाते हैं। बहुमूल्य रत्नों द्वारा निर्मित परकोटों से वह आश्रम-मण्डल घिरा हुआ है। उसमें सात दरवाजे हैं, जो सभी उत्तम रत्नों की बनी हुई वेदिकाओं से युक्त हैं॥१५९-१६७॥ उन दरवाजों में विचित्ररत्न जड़े गये हैं और नाना प्रकार के चित्र बने हैं। क्रमशः बने हुए इन सातों द्वारों को पार करने पर वह आश्रम सोलह द्वारों से युक्त है। देवताओं ने देखा—उसकी चहारदीवारी सहस्र धनुष ऊँची है। उत्तम रत्नों के बने हुए अत्यन्त मनोहर छोटे-छोटे कलशों के समुदाय अपने तेज से उस परकोटे को उद्भासित कर रहे हैं। उसे देखकर देवगण बहुत विस्मित हुए॥१६८-१७०॥

ततः प्रदक्षिणीकृत्य कियद्दूरं ययुर्मुदा। पुरतो गच्छतां तेषां पश्चाद्भूतस्तदाश्रमः ॥१७१॥
गोपानां गोपिकानां च ददृशुश्चाऽऽश्रमान्परान्। अमूल्यरत्नरचिताञ्छतकोटिमितान्मुने ॥१७२॥
दर्शं दर्शं च परितो गोपानां सर्वमाश्रमम्। गोपिकानां चापरं वा रम्यं रम्यं नवं नवम् ॥१७३॥
गोलोकं निखिलं दृष्ट्वा पुलकाङ्गं ययुः सुराः। तदेव वर्तुलाकारं रम्यं वृन्दावनं वनम् ॥१७४॥
ददृशुः शतशृङ्गं च तद्बहिर्विरजानदीम्। विरजां तां ययुर्देवा ददृशुः शून्यमेव च ॥१७५॥
वाय्वाधारं च गोलोकं सद्रत्नमयमद्भुतम्। ईश्वरेच्छाविनिर्माणं राधिकाज्ञानुबन्धनात् ॥१७६॥
युक्तं सहस्रैः सरसां केवलं मङ्गलालयम्। नृत्यं च ददृशुस्तत्र देवाश्च सुमनोहरम् ॥१७७॥
सुतानं चारुसंगीतं राधाकृष्णगुणान्वितम्। श्रुत्वैव गीतपीयूषं मूर्च्छामापुः सुरा मुने ॥१७८॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य ते देवाः कृष्णमानसाः। ददृशुः परमाश्चर्यं स्थाने स्थाने मनोहरम् ॥१७९॥
ददृशुर्गोपिकाः सर्वा नानावेषविधायिकाः। काश्चिन्मृदङ्गहस्ताश्च काश्चिद्वीणाकरा वराः ॥१८०॥
काश्चिच्चामरहस्ताश्च करतालकराः पराः। काश्चिद्यन्त्रवाद्यहस्ता रत्ननूपुरशोभिताः[1] ॥१८१॥
सद्रत्नकिंकिणीजालशब्देन शब्दिता वराः। काश्चिन्मस्तककुम्भाश्च नृत्यभेदमनोरथाः ॥१८२॥
पुंवेषनायिका काश्चित्काश्चित्तासां च नायिकाः। कृष्णवेषधराः काश्चिद्राधावेषधराः पराः ॥१८३॥

वे उसकी परिक्रमा करते हुए बड़ी प्रसन्नता के साथ कुछ दूर और आगे गये। सामने चलते हुए वे इतने आगे बढ़ गये कि वह आश्रम उनसे पीछे हो गया। तदनन्तर उन्होंने गोपों और गोपिकाओं के आश्रम देखे, जिनमें बहुमूल्य रत्न जड़े हुए हैं। उनकी संख्या सौ करोड़ हैं। इस प्रकार सब ओर गोपों और गोपिकाओं के सम्पूर्ण आश्रम को तथा अन्य नये-नये रमणीय स्थलों को देखते-देखते उन देवेश्वरों ने समस्त गोलोक का निरीक्षण किया। वह सब देखकर उनके शरीर में रोमांच हो आया। फिर गोलाकार एवं रमणीक वृन्दावन, सौ शिखर वाला पर्वत और उसके बाहर विरजा नदी दिखाई दी। विरजा के बाद देवताओं ने सब कुछ सूना ही देखा। वह अद्भुत गोलोक उत्तम रत्नों से निर्मित तथा वायु के आधार पर स्थित था। राधिका की आज्ञा का अनुसरण करते हुए परमेश्वर श्रीकृष्ण की इच्छा से उसका निर्माण हुआ है। वह केवल मंगल का धाम है और सहस्रों सरोवरों से सुशोभित हैं। मुने! देवों ने वहाँ अत्यन्त मनोहर नृत्य तथा सुन्दर ताल से युक्त रमणीय संगीत देखा, जहाँ राधा-कृष्ण का गुणानुवाद हो रहा था। उस अमृतोपम गीत को सुनते ही वे देवता मूर्च्छित हो गये॥१७१-१७८॥ फिर क्षणभर में सचेत हो मन ही मन श्रीकृष्ण का चिन्तन करते हुए उन्होंने स्थान-स्थान पर परम आश्चर्यमय मनोहर दृश्य देखे। नाना प्रकार के वेश धारण किये समस्त गोपिकायें उनके दृष्टिपथ में आयीं। कोई अपने हाथों से मृदंग बजा रही थीं तो किन्हीं के हाथों से वीणा-वादन हो रहा था। किन्हीं के हाथ में चवँर थे तो किन्हीं के हाथों में करताल। किन्हीं के हाथों में यन्त्रवाद्य शोभा पा रहे थे। कितनी ही रत्नमय नूपुरों की झनकार फैला रही थीं। बहुतों की रत्नमयी काञ्ची बज रही थी, जिसमें क्षुद्र घंटिकाओं के शब्द गूँज रहे थे। किन्हीं के माथे पर जल से भरे घड़े थे, जो भाँति-भाँति के नृत्य के प्रदर्शन का मनोरथ लिये खड़ी थीं। कोई नायिका पुरुष-वेष में थीं तो कोई उनकी नायिका बनी थीं। कोई कृष्ण का वेष तो कोई राधा का वेष धारण किये हुई थीं। कोई संयोग से पृथक् हो रही थीं तो कोई आलिंगन में

---

[1] क. शब्दिताः।

Funding by IKS-MoE

काश्चित्संयोगविरताः काश्चिदालिङ्गनेरताः। क्रीडासक्ताश्च ता दृष्ट्वा सस्मिता जगदीश्वराः॥१८४॥
प्रगच्छन्तः कियद्दूरं ददृशुश्चाऽऽश्रमान्बहून्। राधासखीनां गेहांश्च प्रधानानां च नारद॥१८५॥
रूपेणैव गुणेनैव वेषेण यौवनेन च। सौभाग्येनैव वयसा सदृशीनां च तत्र वै॥१८६॥
त्रयस्त्रिंशद्वयस्याश्च राधिकायाश्च गोपिकाः। वेषानिर्वचनीयाश्च तासां नामानि च शृणु॥१८७॥
सुशीला[1] च शशिकला यमुना माधवी रती। कदम्बमाला कुन्ती च जाह्नवी च स्वयंप्रभा॥१८८॥
चन्द्रमुखी[1] च सावित्री गायत्री सुमुखी सुखा। पद्मालया पारिजाता गौरी च सर्वमङ्गला॥१८९॥
कालिका कमला दुर्गा भारती च सरस्वती। गङ्गाऽम्बिका मधुमती चम्पापर्णा च सुन्दरी॥१९०॥
कृष्णप्रिया सती चैव नन्दिनी नन्दनेति च। एताः समानाः सद्रत्नरचिता राधिकाप्रियाः॥१९१॥
एतासां समरूपाणां रत्नधातुविचित्रितान्। नानाप्रकारचित्रेण चित्रितान्सुमनोहरान्॥१९२॥
अमूल्यरत्नकलशसमूहैः शिखरोज्ज्वलान्। सद्रत्नरचिताञ्छुभ्रानाश्रमान्ददृशुस्तथा॥१९३॥
ब्रह्माण्डाद्बहिरूर्ध्वं च नास्ति लोकस्तदूर्ध्वकः। ऊर्ध्वं शून्यमयं सर्वं तदन्ता सृष्टिरेव च॥१९४॥
रसातलेभ्यः सप्तभ्यो नास्त्यधः सृष्टिरेव च। तदधश्च जलं ध्वान्तमगन्तव्यमदृश्यकम्॥१९५॥
ब्रह्माण्डान्तं तद्बहिश्च सर्वं मत्तो निशामय ॥१९६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० गोलोकवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

निरत थीं और कोई क्रीड़ा में तन्मय हो रही थीं। उन्हें देखकर जगदीश्वर मुसकराये॥ १७९-१८४॥ नारद! कुछ दूर और आगे जाने पर उन्होंने वहुत-से आश्रम देखे, जो राधा की प्रधान सखियों के आवासस्थान थे। वे रूप, गुण, वेष, यौवन, सौभाग्य और अवस्था में एक दूसरी के समान थीं। राधा की समवयस्क सखियाँ तैंतीस गोपियाँ हैं, जिनकी वेशभूषा अनिर्वचनीय है। उनके नाम सुनो॥१८५-१८७॥ सुशीला, शशिकला, यमुना, माधवी, रती, कदम्बमाला, कुन्ती, जाह्नवी, स्वयंप्रभा, चन्द्रमुखी, सावित्री, गायत्री, सुमुखी, सुखा, पद्मालया, पारिजाता, गौरी, सर्वमंगला, कालिका, कमला, दुर्गा, भारती, सरस्वती, गंगा, अम्बिका, मधुमती, चम्पा, अपर्णा, सुन्दरी, कृष्णप्रिया, सती, नन्दिनी और नन्दना——ये सबकी सब समान रूप वाली हैं। इनके शुभ आश्रम रत्नों और धातुओं से चित्रित हैं। नाना प्रकार के चित्रों से चित्रित होने के कारण वे अत्यन्त मनोहर प्रतीत होते हैं। उनके शिखर वहुमूल्य रत्नमय कलश-समूहों से जाज्वल्यमान हैं। उत्तम रत्नों द्वारा उनकी रचना हुई है॥१८८-१९३॥ गोलोक ब्रह्माण्ड से वाहर और ऊपर है। उससे ऊपर दूसरा कोई लोक नहीं है। ऊपर सव कुछ शून्य ही है। वहीं तक सृष्टि की अन्तिम सीमा है। सात रसातलों से नीचे सृष्टि नहीं है। रसातलों से नीचे जल और अन्धकार है, जो अगम्य और अदृश्य है। ब्रह्माण्ड पर्यन्त और उससे बाहर भी सब कुछ मुझसे सुन लो॥१९४-१९६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड में नारद-नारायण के संवाद में
गोलोक वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त॥४॥

---

[1] ०खी पद्ममुखा सावित्री सुमुखा सु०।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

नारायण उवाच

गोलोकं निखिलं दृष्ट्वा देवास्ते हृष्टमानसाः। पुनराजग्मू राधायाः प्रधानद्वारमेव च ॥१॥
सद्रत्नमणिनिर्माणं वेदिकायुग्मसंयुतम्। हरिद्राकारमणिना वज्रसंमिश्रितेन च ॥२॥
अमूल्यरत्नरचितकपाटेन विभूषितम्। द्वारे नियुक्तं ददृशुर्वीरभानुमनुत्तमम् ॥३॥
रत्नसिंहानस्थं च रत्नाभरणभूषितम्। पीतवस्त्रपरीधानं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् ॥४॥
द्वारं चित्रविचित्रेण विचित्रं परमाद्भुतम्। सवं निवेदनं चक्रुर्देवा दौवारिकं मुदा ॥५॥
तानुवाच द्वारपालो निःशंकं त्रिदशेश्वरान्। नाहं विनाऽऽज्ञया गन्तुं दातुं सांप्रतमीश्वरः ॥६॥
किंकरान्प्रेषयामास श्रीकृष्णस्थानमेव च। हरेरनुज्ञां संप्राप्य ददौ गन्तुं सुरान्मुने ॥७॥
तं संभाष्य ययुर्देवा द्वितीयं द्वारमुत्तमम्। ततोऽधिकं विचित्रं च सुन्दरं सुमनोहरम् ॥८॥
द्वारे नियुक्तं ददृशुश्चन्द्रभानुं च नारद। किशोरं श्यामलं चारुस्वर्णवेत्रधरं वरम् ॥९॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम्। गोपानां च समूहेन पञ्चलक्षेण शोभितम् ॥१०॥
तं संभाष्य ययुर्देवास्तृतीयं द्वारमुत्तमम्। ततोऽतिसुन्दरं चित्रं ज्वलन्तं मणितेजसा ॥११॥
द्वारे नियुक्तं ददृशुः सूर्यभानुं च नारद। द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं श्यामसुन्दरम् ॥१२॥

अध्याय ५

श्रीकृष्ण का स्तोत्रराज

नारायण बोले—समस्त गोलोक को देखते हुए वे देवलोग अति प्रसन्न होकर पुनः राधा जी के प्रधान द्वार पर आये ॥१॥ वह उत्तम रत्नों और मणियों से सुरचित, युगल वेदी से संयुक्त, हरदी के समान रंगवाली मणि, हीरे एवं अमूल्य रत्नों के वने (किवाड़) से विभूषित था। वहाँ परमोत्तम वीरभानु नामक द्वारपाल को देखा, जो रत्नसिंहासन पर स्थित, रत्नों के भूषणों से भूषित, पीतवस्त्र पहने एवं उत्तम रत्न के बने मुकुट से समुज्ज्वल था ॥२-४॥ विचित्र चित्रों से विचित्र एवं परम अद्भुत दरवाजे पर वैठे हुए उस द्वारपाल से देवों ने प्रसन्न मन से सव अपना वृत्तान्त निवेदन किया, जिसे सुनकर द्वारपाल ने निःशंक होकर उन देवों से कहा कि—बिना आज्ञा के मैं भीतर जाने देने में असमर्थ हूँ ॥५-६॥ हे मुने! उसने सेवकों को भेजकर भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा प्राप्त की और देवों को भीतर जाने दिया ॥७॥ देव लोग उससे अनुज्ञा प्राप्त कर आगे बढ़े तो दूसरा दरवाजा देखा जो उससे भी अधिक विचित्र, सुन्दर एवं अति मनोहर था ॥८॥ हे नारद! उस द्वार पर चन्द्रभान् नामक द्वारपाल स्थित था, जो किशोर, श्यामल, सुवर्ण का सुन्दर बेंत लिए, रत्नसिंहासन पर स्थित, रत्नभूषण-भूषित एवं पांच लाख गोपों से सुशोभित हो रहा था ॥९-१०॥ उससे कहकर देवगण तीसरे दरवाजे पर पहुँचे, जो उससे भी अति सुन्दर, चित्रविचित्र और मणि के तेज से प्रदीप्त था ॥११॥ हे नारद! उस दरवाजे पर नियुक्त सूर्यभानु नामक द्वारपाल को देखा, जो दो भुजाओं वाला, हाथ में मुरली लिये, किशोररूप, श्यामसुन्दर, मणि के युगल कुण्डल से

Funding by IKS-MoE

मणिकुण्डलयुग्मेन कपोलस्थलराजितम्। रत्नदण्डकरं श्रेष्ठं प्रेष्यं राधेशयोः परम् ॥१३॥
नवलक्षेण गोपानां वेष्टितं च नृपेन्द्रवत्। तं संभाष्य ययुर्देवाश्चतुर्थं द्वारमेव च ॥१४॥
तेभ्यो विलक्षणं रम्यं सुदीप्तं मणितेजसा। अत्यद्भुतं विचित्रेण भूषितं सुमनोहरम् ॥१५॥
द्वारे नियुक्तं ददृशुर्वसुभानुं व्रजेश्वरम्। किशोरं सुन्दरवरं मणिदण्डकरं परम् ॥१६॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम्। पक्वबिम्बाधरोष्ठं च सस्मितं सुमनोहरम् ॥१७॥
तं संभाष्य ययुर्देवाः पञ्चमं द्वारमेव च। वज्रभित्तिस्थितैश्चित्रविचित्रैर्ज्वलितं परम् ॥१८॥
द्वारपालं च ददृशुर्देवभानुं च तत्र वै। चारुसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम् ॥१९॥
मयूरपिच्छचूडं च रत्नमालाविभूषितम्। कदम्बपुष्पसंसक्तसद्रत्नकुण्डलोज्ज्वलम् ॥२०॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् । नृपेन्द्रवरतुल्यं च दशलक्षप्रजान्वितम् ॥२१॥
तं वेत्रपाणिं संभाष्य ययुर्देवा मुदाऽन्विताः। विलक्षणं द्वारषट्कं चित्रराजिविराजितम् ॥२२॥
वज्रभित्तियुग्मयुक्ते पुष्पमाल्यविभूषिते। द्वारे नियुक्तं ददृशुः शुक्रभानुं व्रजेश्वरम् ॥२३॥
नानालंकारशोभाढ्यं दशलक्षप्रजान्वितम्। श्रीखण्डपल्लवासक्तकपोलं कुण्डलोज्ज्वलम् ॥२४॥
तूर्णं सुरास्तं संभाष्य ययुर्द्वारं च सप्तमम्। नानाप्रकार चित्रं च षड्भ्यश्चातिविलक्षणम् ॥२५॥
द्वारे नियुक्तं ददृशू रत्नभानुं हरेः प्रियम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं पुष्पमालाविभूषितम् ॥२६॥
भूषितं भूषणै रम्यैर्मणिरत्नमनोहरैः ॥२७॥

सुशोभित कपोल वाला एवं हाथ में रत्नदण्ड लिए था। राधामाधव का वह सेवक नौ लाख गोपों से आवृत होकर महाराज की भाँति सुसज्जित था। उससे कहकर देव लोग चौथे द्वार पर पहुँचे, जो उससे भी रम्य एवं विलक्षण, मणि-तेज से देदीप्यमान, महान् अद्भुत, विचित्र रत्न से भूषित और अति मनोहर था। वहाँ वसुभानु नामक द्वारपाल उन्हें दिखायी पड़ा, जो व्रजेश्वर, किशोर, सर्वसुन्दर एवं हाथ में परमसुन्दर मणिदण्ड लिए था॥१२-१६॥ वह रत्नसिंहासन पर स्थित, रत्नों के भूषणों से भूषित, पके बिम्बाफल के समान अधरोष्ठ वाला, मन्दहासयुक्त और अतिमनोहर था। उससे कहकर देव लोग आगे पाँचवें द्वार पर पहुँचे, जो हीरे की दीवालों पर बने चित्र-विचित्र चित्रों से अति समुज्ज्वल था॥१७-१८॥ वहाँ देवभानु नामक द्वारपाल दिखायी पड़ा, जो चारु रत्नसिंहासन पर स्थित, रत्नभूषण से भूषित, मोरपंख का मुकुट तथा रत्नमाला पहने, कदम्बपुष्प लगे उत्तम रत्न के कुण्डल से समुज्ज्वल, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम के द्रव से चर्चित तथा दश लाख गोपों समेत श्रेष्ठ महाराज के समान था॥१९-२१॥ उससे आज्ञा प्राप्त कर देव लोग छठे दरवाजे पर पहुँचे, जो विलक्षण तथा चित्रपंक्तियों से सुशोभित था और उसके दोनों ओर हीरे की दीवालों पर पुष्पमालाएँ शोभा वृद्धि कर रही थीं। वहाँ व्रजाधीश्वर द्वारपाल शुक्रभानु उन्हें दिखायी पड़ा, जो अनेक भाँति के अलंकारों से भूषित, दश लाख गोपों के नायक तथा चन्दन-पल्लव-युक्त कुण्डल से समुज्ज्वल था। उससे शीघ्रता से कहकर देव लोग सातवें द्वार पर गये, जो विभिन्न प्रकार से चित्रित और छहों से अति विलक्षण था। वहाँ भगवान् का प्रिय रत्नभानु नामक द्वारपाल दिखायी पड़ा, जो सर्वांग में चन्दन-चर्चित, पुष्पों की माला से भूषित, मणियों और रत्नों के रमणीक एवं अति मनोहर भूषणों से भूषित था॥२२-२७॥

गोपैर्द्वादशलक्षैश्च राजेन्द्रमिव राजितम्। रत्नसिंहासनस्थं च स्मेराननसरोरुहम् ॥२८॥
तं वेत्रहस्तं संभाष्य जग्मुर्देवेश्वरा मुदा। विचित्रमष्टमं द्वारं सप्तभ्योऽपि विलक्षणम् ॥२९॥
दौवारिकं ते ददृशुः सुपार्श्वं सुमनोहरम्। सस्मितं सुन्दरवरं श्रीखण्डतिलकोज्ज्वलम् ॥३०॥
बन्धुजीवाधरोष्ठं च रत्नकुण्डलमण्डितम्। सर्वालंकारशोभाढ्यं रत्नदण्डवरं वरम् ॥३१॥
गोपैर्द्वादशलक्षैश्च किशोरैश्च समन्वितम्। ततः शीघ्रं ययुर्देवा नवमं द्वारमीप्सितम् ॥३२॥
वज्रसद्रत्नरचितं चतुर्वेदिसमन्वितम्। अपूर्वचित्ररचितं मालाजालैर्विराजितम् ॥३३॥
द्वारपालं च ददृशुः [1]सुबलं ललिताकृतिम्। नानाभूषणशोभाढ्यं भूषणार्हं मनोहरम् ॥३४॥
व्रजैर्द्वादशलक्षैश्च संयुक्तं सुमनोहरम्। तं दण्डहस्तं संभाष्य सुरा द्वारान्तरं ययुः ॥३५॥
विशिष्टं दशमद्वारं दृष्ट्वा ते विस्मयं ययुः। सर्वानिर्वचनीयं चाप्यदृष्टमश्रुतं मुने ॥३६॥
ददृशुर्द्वारपालं च सुदामानं च सुन्दरम्। अनिर्वचनीयरूपं च कृष्णतुल्यं मनोहरम् ॥३७॥
गोपविंशतिलक्षाणां समूहैः परिवारितम्। तं दण्डहस्तं दृष्ट्वैव जग्मुर्द्वारान्तरं सुराः ॥३८॥
द्वारमेकादशाख्यं च सुचित्रं महदद्भुतम्। द्वारपालं च तत्रस्थं श्रीदामानं व्रजेश्वरम् ॥३९॥
राधिकापुत्रतुल्यं च पीतवस्त्रेण भूषितम्। अमूल्यरत्नरचितरम्यसिहानस्थितम् ॥४०॥
अमूल्यरत्नभूषाभिर्भूषितं सुमनोहरम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितम् ॥४१॥

वह बारह लाख गोपों से युक्त, राजेन्द्र की भाँति विराजमान, रत्नसिंहासन पर स्थित एवं विकसित मुखारविन्द से युक्त था। उस वेत्रपाणि (द्वारपाल) से कहकर देव लोग आगे आठवें द्वार पर गये, जो सातों से भी विलक्षण था ॥२८-२९॥ वहाँ सुपार्श्व नामक अतिमनोहर द्वारपाल दिखायी पड़ा, जो मन्दहास से युक्त, श्रेष्ठ, सुन्दर, श्रीखण्ड (चन्दन) की तिलक से समुज्ज्वल, बन्धुजीव (दुपहरिया) पुष्प के समान अधरोष्ठ वाला, रत्नकुण्डल से सुभूषित, समस्त अलंकारों से सुशोभित, तथा श्रेष्ठ रत्नदण्ड लिए स्थित था ॥३०-३१॥ उसके साथ बारह लाख किशोर गोप थे। उससे कहकर देवगण आगे अभीष्ट नवें द्वार पर पहुँचे, जो हीरे आदि उत्तम रत्नों की बनी चार वेदियों से युक्त, अपूर्व एवं चित्र-विचित्र मालाओं के समूह से विराजमान था। वहाँ सुबल नामक ललित रूप वाला द्वारपाल दिखायी पड़ा, जो अनेक भांति के भूषणों से भूषित, भूषणों के योग्य, मनोहर, बारह लाख गोपों से युक्त, अति मनोहर एवं दण्ड हाथ में लिए स्थित था। उसकी आज्ञा से देवगण आगे विशिष्ट दशवें द्वार पर पहुँचे। उसे देख देवों को महान् आश्चर्य हुआ। हे मुने! वह सब से अनिर्वचनीय, अदृष्ट और अश्रुत है ॥३२-३६॥ वहाँ सुदामा नामक सुन्दर द्वारपाल उन्हें दिखायी पड़ा, जो अनिर्वचनीय रूप वाला, कृष्ण के समान मनोहर, बीस लाख गोपों से युक्त और दण्ड हाथ में लिए वर्तमान था, उसे देख कर देवगण आगे ग्यारहवें द्वार पर पहुँचे, जो अति विचित्र और महान् अद्भुत था। वहाँ श्रीदामा नामक व्रजेश द्वारपाल दिखायी पड़ा, जो राधिका जी के पुत्र के समान, पीताम्बर भूषित, अमूल्य रत्नों के बने उत्तम सिंहासन पर स्थित,

---

[1] क. सुवर्णं।

गण्डस्थलकपोलार्हसद्रत्नकुण्डलोज्ज्वलम्। सद्रत्नश्रेष्ठरचितविचित्रमुकुटोज्ज्वलम् ।।४२।।
प्रफुल्लमालतीमालाजालैः सर्वाङ्गभूषितम्। कोटिगोपैः परिवृतं राजेन्द्राधिकमुज्ज्वलम् ।।४३।।
तं संभाष्य ययुर्द्वारं द्वादशाख्यं सुरा मुदा। अमूल्यरत्नरचितवेदिकाभिः समन्वितम् ।।४४।।
सर्वेषां दुर्लभं चित्रमदृश्यमश्रुतं मुने। वज्रभित्तिस्थितं चित्रं सुन्दरं सुमनोहरम् ।।४५।।
द्वारे नियुक्ता ददृशुर्देवा गोपाङ्गना वराः। नवयौवनसंपन्ना रत्नाभरणभूषिताः ।।४६।।
पीतवस्त्रपरीधानाः कबरीभारभूषिताः। सुगन्धिमालतीमालाजालैः सर्वाङ्गभूषिताः ।।४७।।
रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषिताः। रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताः ।।४८।।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङकुमद्रवर्चचिताः। पीनश्रोणीभरानम्रा नितम्बाभारपीडिताः ।।४९।।
गोपीनां शतकोटीनां श्रेष्ठाः प्रेष्ठा हरेरपि। गोपीश्च कोटिशो दृष्ट्वा सुरास्ते विस्मयं ययुः ।।५०।।
संभाष्य ता मुदा युक्ता ययुर्द्वारान्तरं मुने। ततश्च क्रमशो विप्र त्रिषु द्वारेषु तत्र वै ।।५१।।
गोपाङ्गनानां श्रेष्ठाश्च ददृशुः सुमनोहराः। वराणां च वरा रम्या धन्या मान्याश्च शोभनाः ।।५२।।
सर्वाः सौभाग्ययुक्ताश्च राधिकायाः प्रियाश्च ताः। भूषिता भूषणै रम्यैः प्रोद्भिन्ननवयौवनाः ।।५३।।
एवं द्वारत्रयं दृष्ट्वा स्वप्नज्ञानाद्भुताश्रुतम्। अदृश्यमतिरम्यं चाप्यनिरूप्यं विचक्षणैः ।।५४।।
तास्ताः संभाष्य देवास्ते विस्मिता ययुरीश्वराः। राधिकाभ्यन्तरं द्वारं षोडशाख्यं मनोहरम् ।।५५।।

अमूल्य रत्नों के भूषणों से भूषित, अति मनोहर, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से शोभायमान, गण्डस्थल-कपोल पर योग्य एवं उत्तम रत्नकुण्डल से समुज्ज्वल, उत्तम रत्न के बने विचित्र मुकुट से उज्ज्वल, अत्यन्त विकसित मालती की मालाओं से सर्वाङ्ग-भूषित और करोड़ों गोपों से आवृत वह राजेन्द्र से भी अधिक कान्तिपूर्ण था ।।३७-४३।। देवगण सुप्रसन्नतापूर्वक उससे कहकर आगे बारहवें दरवाजे पर पहुँचे, जो अमूल्य रत्नों की बनी वेदियों से युक्त था।।४४।। हे मुने! हीरे की दीवालों पर सुन्दर एवं अति मनोहर चित्र बने थे, जो सभी के लिए दुर्लभ, अदृश्य और अश्रुत थे।।४५।। देवों ने वहाँ पर नियुक्त श्रेष्ठ गोपांगनाओं को देखा, जो नवयौवन से पूर्ण, रत्नों के भूषणों से भूषित, पीताम्बर पहने, सुन्दर केशपाश से सुशोभित, सुगन्धित मालती पुष्पों के मालासमूह से सर्वांग-भूषित, रत्नों के कंकण, केयूर तथा नूपुर से अलंकृत, रत्नों के युगल कुण्डलों से सुशोभित गण्डस्थल वाली, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा कुंकुम द्रव से चर्चित, स्थूल श्रोणीभार से झुकी-सी तथा नितम्ब के भार से पीड़ित-सी सौ करोड़ गोपियों में श्रेष्ठ एवं कृष्ण की अति प्रिय करोड़ों गोपियों को देखकर देवों को महान् आश्चर्य हुआ।।४६-५०।। हे मुने! सुप्रसन्न देवों ने उनसे आज्ञा पाकर अगले द्वार पर प्रस्थान किया। हे विप्र! इस तरह क्रमशः तीन द्वारों पर उन्होंने श्रेष्ठ और अत्यन्त मनोहर गोपियों को देखा, जो उत्तमों में भी उत्तम, रमणीय, धन्य, मान्य और अनुपम शोभा-सम्पन्न थीं। सभी सकल सौभाग्य से पूर्ण एवं राधा की अति प्रिय थीं। रमणीय आभूषणों से भूषित उन सुन्दरियों में नवयौवन प्रकट हो रहा था।।५१-५३।। इस प्रकार वे तीनों द्वार स्वप्नकालिक अनुभव के समान अद्भुत, अश्रुत, अतिरम्य एवं विद्वानों के द्वारा अवर्णनीय थे। उन्हें देखकर तथा उन सुन्दरियों से संभाषण कर आश्चर्यचकित हुए वे देवेश्वर सोलहवें द्वार पर गये, जो राधिका के अन्तःपुर का द्वार था। वह सब द्वारों में

सर्वासां च प्रधानं च गोप्यं गोपाङ्गनागणैः। त्र्यस्त्रिंशद्वयस्यानां निकरैर्वेष्टितं मुने ॥५६॥
तेषामनिर्वचनीयैर्नानागुणसमन्वितैः। रूपयौवनसंपन्नै रत्नालंकारभूषितैः ॥५७॥
रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषितैः। सद्रत्नकिङ्किणीजालैर्मध्यदेशविभूषितैः ॥५८॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितैः। प्रफुल्लमालतीमालाजालैर्वक्षःस्थलोज्ज्वलैः ॥५९॥
शरत्पार्वणपद्मानां प्रभां मुष्णन्मुखेन्दुभिः। पारिजातप्रसूनानां मालाजालेन वेष्टितैः ॥६०॥
पक्वबिम्बाधरोष्ठैश्च स्मेराननसरोरुहैः। पक्वदाडिमबीजाभिः शोभितैर्दन्तपङ्क्तिभिः ॥६१॥
चारुचम्पकवर्णाभिर्मध्यस्थलकृशैर्मुने। गजमौक्तिकयुक्ताभिर्नासिकाभिर्विराजितैः ॥६२॥
खगेन्द्रचारुचञ्चूनां शोभामुष्णाभिरेव च। गजेन्द्रगण्डकठिनस्तनभारभरानतैः ॥६३॥
पीनश्रोणिभरार्तैश्च मुकुन्दपदमानसैः। निमेषरहिता देवा द्वारं च ददृशुश्च ताः ॥६४॥
सद्रत्नमणिरत्नैश्च वेदिकायुग्मशोभितम्। हरिन्मणीनां स्तम्भानां समूहैः संयुतं सदा ॥६५॥
सिन्दूराकारमणिभिर्मध्यस्थलविराजितैः। पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विभूषितम् ॥६६॥
तत्संस्पर्शैर्गन्धवाहैः सर्वत्र सुरभीकृतम्। दृष्ट्वा तत्परमाश्चर्यं राधिकाभ्यन्तरं सुराः ॥६७॥
श्रीकृष्णचरणाम्भोजदर्शनैकमनोरथाः। ताः संभाष्य ययुः शीघ्रं पुलकाञ्चितविग्रहाः ॥६८॥

प्रधान तथा केवल गोपांगनागणों द्वारा ही रक्षणीय था। राधा की जो तैंतीस समवयस्क सखियाँ थीं, वे ही इस द्वार का संरक्षण करती थीं। उन सबकी वेशभूषा अवर्णनीय थी। वे नाना प्रकार के सद्‌गुणों से युक्त, रूपयौवन से सम्पन्न तथा रत्नमय अलंकारों से विभूषित थीं। रत्ननिर्मित कंकण, केयूर तथा नूपुर धारण किए हुए थीं। उनके कटिप्रदेश श्रेष्ठ रत्नों की बनी हुई क्षुद्र घण्टिकाओं से अलंकृत थे। रत्ननिर्मित युगल कुण्डलों से उनके गण्डस्थल शोभायमान थे। प्रफुल्ल मालती की मालाओं से उनके वक्षःस्थल का मध्यभाग उद्‌भासित हो रहा था। उनके मुखचन्द्र शरत्पूर्णिमा के चन्द्रों की प्रभा को छीन लेते थे। परिजात के पुष्पों की मालाओं से उनके सुरम्य केशपाश आवेष्टित थे। वे भाँति-भाँति के सुन्दर आभूषणों से विभूषित थीं। पके बिम्बफल के समान उनके लाल-लाल ओठ थे। मुखारविन्दों पर मन्द मुसकान की छटा छा रही थी। पके अनार के दानों की भाँति दन्तपंक्तियाँ उनकी शोभा बढ़ा रही थीं। मनोहर चम्पा के समान गौर वर्ण वाली उन गोप-किशोरियों के कटिभाग अत्यन्त कृश थे। उनकी नासिकाओं में गजमुक्ता की बुलाकें शोभा दे रही थीं। वे नासिकायें पक्षिराज गरुड़ की सुन्दर चोंच के समान शोभायमान थीं। वे गजेन्द्र के गण्डस्थल की भाँति कठिन स्तनों के भार से झुकी हुई थीं। स्थूल श्रोणी-भार से दबी-सी उन गोपियों का चित्त मुकुन्द के चरणारविन्दों में लगा था। द्वार पर खड़े हुए निमेष-रहित देवताओं ने उन सबको देखा ॥५४-६४॥ वह द्वार श्रेष्ठ मणिरत्नों की वेदिकाओं से सुशोभित था। इन्द्रनील मणि के बहुत-से खम्भे उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उनके बीच-बीच में सिन्दूरी रंग की लाल मणियाँ जड़ी थीं। उस द्वार को पारिजात पुष्पों की मालाओं से सजाया गया था। उन्हें छूकर बहने वाला वायु वहाँ सर्वत्र सुगन्ध फैला रहा था। राधा के उस परम आश्चर्यमय अन्तःपुर के द्वार का अवलोकन करके देवताओं के मन में श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों के दर्शन की

भक्त्युद्रेकादश्रुपूर्णाः किंचिन्नम्रात्मकंधराः। आरात्ते ददृशुर्देवा राधिकाभ्यन्तरं वरम् ॥६९॥
मन्दिराणां च मध्यस्थं चतुःशालं मनोहरम्। अमूल्यरत्नसाराणां सारेण रचितं परम् ॥७०॥
नानारत्नमणिस्तम्भैर्वज्रयुक्तैश्च भूषितम्। पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् ॥७१॥
मुक्तासमूहैर्माणिक्यैः श्वेतचामरदर्पणैः। अमूल्यरत्नसाराणां कलशैर्भूषितं मुने ॥७२॥
पट्टसूत्रग्रन्थियुक्तश्रीखण्डपल्लवान्वितैः। मणिस्तम्भसमूहैश्च रम्यप्राङ्गणभूषितम् ॥७३॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम्। शुक्लधान्यशुक्लपुष्पप्रवालफलतण्डुलैः ॥७४॥
पर्णदूर्वाक्षतैर्लाजैर्निर्मञ्छनविभूषितैः। फलयुक्तै रत्नकुम्भैः सिन्दूरकुङ्कुमान्वितैः ॥७५॥
पारिजातप्रसूनानां मालायुक्तैर्विराजितम्। प्रसूनाक्तैर्गन्धवाहैः सर्वत्र सुरभीकृतम् ॥७६॥
सर्वानिर्वचनीयं च यद्द्रव्यमनिरूपिणम्। ब्रह्माण्डे दुर्लभं यद्यद्वस्तुभिस्तैर्विराजितम् ॥७७॥
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैः सुशोभितम्। रत्नशय्यासु ललिताः सूक्ष्मवस्त्रपरिच्छदाः ॥७८॥
कोटिशो रत्नकुम्भाश्च रत्नपात्राणि नारद। अमूल्यानि च चारूणि तैस्तैरेव विभूषितम् ॥७९॥
नानाप्रकारवाद्यानां कलनादैर्निनादितम्। स्वरयन्त्रैश्च वीणाभिर्गोपीसंगीतसुश्रुतम् ॥८०॥
मोहितं वाक्यशब्दैश्च मृदङ्गानां च नारद। गोपानां कृष्णतुल्यानां समूहैः परिवारितम् ॥८१॥
राधासखीनां गोपीनां वृन्दैर्वृन्दैर्विराजितम्। राधाकृष्णगुणोद्रेकपदसंगीतसुश्रुतम् ॥८२॥

उत्कण्ठा जाग उठी। उन्होंने सखियों से पूछकर शीघ्र ही द्वार के भीतर प्रवेश किया। उनके शरीर में रोमांच हो आया था। भक्ति के उद्रेक से उनकी आँखें भर आयी थीं। उनके मुख और कंधे कुछ-कुछ झुक गए थे। तब उन्होंने राधा के उस श्रेष्ठ अन्तःपुर को अत्यन्त निकट से देखा ॥६५-६९॥ वहाँ मन्दिरों के मध्य में एक मनोहर चतुःशाला थी। वह भाँति-भाँति के अमूल्य रत्नों के सार भाग से परम सुन्दर रचित, अनेक भाँति के रत्नों और मणियों के खंभों तथा हीरों से भूषित एवं पारिजात-पुष्पों के माला-जाल से शोभित थी ॥७०-७१॥ हे मुने! वह मोती, माणिक्य, श्वेत चामर, दर्पण, अमूल्य रत्नों के सारभागों से बने कलशों से सुशोभित, रेशमी सूत में गाँठ लगाकर बँधे चन्दन-पल्लवों और मणियों के स्तम्भों से सुन्दर प्रांगणों से भूषित था ॥७२-७३॥ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुमद्रव से युक्त, शुक्ल धान्य, श्वेतपुष्प, मूंगा, फल, अक्षत, दूर्वादल और लावा के निर्मञ्छन (निछावर) से विभूषित, सिन्दूर, कुंकुम, पारिजात पुष्पों की मालाओं से सुशोभित एवं पुष्पोंसे सुवासित वायु द्वारा सर्वत्र सुगन्धित हो रहा था ॥७४-७६॥ जो सर्वथा अनिवर्चनीय, अनिरूपित और ब्रह्माण्ड मात्र में दुर्लभ द्रव्य एवं वस्तुएँ थीं, उन्हीं से उस भव्य भवन को विभूषित किया गया था। वहाँ अत्यन्त सुन्दर रत्नमयी शय्या बिछी थी, जिस पर महीन एवं कोमल वस्त्रों का बिछावन था ॥७७-७८॥ नारद! वह भवन करोड़ों अमूल्य और सुन्दर रत्न-कलशों एवं रत्नपात्रों से विभूषित, अनेक प्रकार के वाद्यों की मधुर ध्वनि से मुखरित, स्वरयंत्र, वीणा और गोपियों के संगीत से युक्त तथा मृदंग की ध्वनि से मोहक लगता था। वहाँ राधा और कृष्ण के गुण गान सम्बन्धी पदों का संगीत सुनाई

एवमभ्यन्तरं दृष्ट्वा बभूवुर्विस्मिताः सुराः। शुश्रुवुर्मधुरं गीतं ददृशुर्नृत्यमुत्तमम् ।।८३।।
तत्र तस्थुः सुराः सर्वे ध्यानैकतानमानसाः। रत्नसिंहासनं रम्यं ददृशुस्त्रिदशेश्वराः ।।८४।।
धनुः शतप्रमाणं च परितो वर्तुलाकृतिम्। सद्रत्नक्षुद्रकलशसमूहैश्च समन्वितम् ।।८५।।
चित्रपुत्तलिकापुष्पचित्रकाननभूषितम्। तत्र तेजः समूहं च सूर्यकोटिसमप्रभम् ।।८६।।
प्रभया ज्वलितं ब्रह्मन्नाश्चर्यंमहदद्भुतम्। सप्ततालप्रमाणं तद्व्याप्तमूर्ध्वं समन्ततः ।।८७।।
तेजोमुषं च सर्वेषां [1]सहाश्रमविवर्जितम्। सर्वव्यापि सर्वबीजं चक्षूरोधकरं परम् ।।८८।।
दृष्ट्वा तेजः स्वरूपं च ते देवा ध्यानतत्पराः। प्रणेमुः परया भक्त्या भक्तिनम्रात्मकंधराः ।।८९।।
परमानन्दसंयोगादश्रुपूर्णविलोचनाः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गा वाञ्छापूर्णमनोरथाः ।।९०।।
नत्वा तेजः स्वरूपं च तमीशं त्रिदशेश्वराः। तत्रोत्थाय ध्यानयुक्ताः प्रतस्थुस्तेजसः पुरः ।।९१।।
ध्यात्वैवं जगतां धाता बभूव संपुटाञ्जलिः। दक्षिणे शंकरं कृत्वा वामे धर्मं च नारद ।।९२।।
भक्त्युद्रेकात्प्रतुष्टाव ध्यानैकतानमानसः। परात्परं गुणातीतं परमात्मानमीश्वरम् ।।९३।।

ब्रह्मोवाच

वरं वरेण्यं वरदं वरदानां च कारणम्। कारणं सर्वभूतानां तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।९४।।

पड़ता था। ऐसे अन्तःपुर को देखकर वे देवता विस्मय से विमुग्ध हो उठे। उन्होंने वहाँ मधुर गीत सुना और उत्तम नृत्य देखा। वे सब देवता वहाँ स्थिर भाव से खड़े हो गए। उन सबका चित्त ध्यान में एकतान हो रहा था। उन देवेश्वरों को वहाँ रमणीय रत्नसिंहासन दिखाई दिया, जो सौ धनुष के बराबर विस्तृत था। वह सब ओर से मण्डलाकार दिखाई देता था। श्रेष्ठ रत्नों के बने हुए छोटे-छोटे कलश-समूह उसमें जड़े हुए थे। विचित्र पुतलियों, फूलों तथा चित्रमय काननों से उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। ब्रह्मन्! वहाँ उनको एक अत्यन्त अद्भुत और आश्चर्यमय तेजः पुञ्ज दिखाई दिया, जो करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान था। वह दिव्य ज्योति से जाज्वल्यमान हो रहा था। ऊपर चारों ओर सात ताड़ों की दूरी में उसका प्रकाश फैला हुआ था। सबके तेज को छीन लेने वाला वह प्रकाशपुञ्ज सम्पूर्ण आश्रम को व्याप्त करके देदीप्यमान था। वह सर्वव्यापक, सबका बीज तथा सबके नेत्रों को अवरुद्ध कर देने वाला था।।७९-८८।। उस परमानन्द के संयोग होने पर देवों के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये, सर्वांग में रोमांच हो गया और मनोरथ सिद्ध होने की झलक मिलने लगी। उस तेजःपुञ्ज स्वरूप को नमस्कार करने के अनन्तर देवलोग उठकर ध्यानपूर्वक उस तेज के सामने पहुँचे।।८९-९१।। हे नारद! इस प्रकार ध्यान करते हुए जगत् के धाता ब्रह्मा के दोनों हाथ जुड़ गये। उन्होंने अपने दाहिने ओर शंकर को और बायें ओर धर्म को कर लिया तथा ध्यानमग्न एवं भक्ति के अविरल प्रवाह से प्रवाहित होकर उस ईश्वर की स्तुति करना प्रारम्भ किया, जो परात्पर, गुण (सत्त्वादि) से परे और परमात्मा हैं।।९२-९३।।

ब्रह्मा बोले——मैं उस तेजोरूप को नमस्कार कर रहा हूँ, जो श्रेष्ठ, श्रेष्ठ होने के योग्य, वरदायक, वरदायकों के कारण और समस्त जीवों के कारण है।।९४।। मंगलों के मंगल स्वरूप, मंगलप्रद और समस्त मंगलों

---

[1] क. व्यासाश्रमविराजितम्।

मङ्गलं मङ्गलानां च मङ्गलं मङ्गलप्रदम्। समस्तमङ्गलाधारं तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।९५।।
स्थितं सर्वत्र निर्लिप्तमात्मरूपं परात्परम्। निरीहमवितर्क्यं च तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।९६।।
सगुणं निर्गुणं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम्। साकारं च निराकारं तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।९७।।
तमनिर्वचनीयं च व्यक्तमव्यक्तमेककम्। स्वेच्छामयं सर्वरूपं तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।९८।।
गुणत्रयविभागाय रूपत्रयधरं परम्। कलया ते [1]कृताः सर्वे किं जानन्ति श्रुतेः परम् ।।९९।।
सर्वाधारं सर्वरूपं सर्वबीजमबीजकम्। सर्वान्तकमनन्तं च तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।१००।।
लक्ष्यं षड्गुणरूपं च वर्णनीयं विचक्षणैः। किं वर्णयामि लक्ष्यं च तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।१०१।।
अशरीरं विग्रहवदिन्द्रियं यदतीन्द्रियम्। यदसाक्षि सर्वसाक्षि तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।१०२।।
गमनार्हमपादं यदचक्षुः सर्वदर्शनम्। हस्तास्यहीनं यद्भोक्तृ तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।१०३।।
वेदे निरूपितं वस्तु सन्तः शक्ताश्च वर्णितुम्। वेदेऽनिरूपितं यत्तत्तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।१०४।।
सर्वेशं यदनीशं यत्सर्वादि यदनादि यत्। सर्वात्मकमनात्मं यत्तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।१०५।
अहं विधाता जगतो वेदानां जनकः स्वयम्। पाता धर्मो हरो हर्ता स्तोतुं शक्ता न केऽपि यत् ।।१०६।।

के आधार स्वरूप तेजोरूप को नमस्कार करता हूँ ।।९५।। सर्वत्र स्थित, निर्लिप्त, आत्मरूप, परे से भी परे, निरीह, एवं तर्कविषय से परे रहने वाले तेजोरूप को नमस्कार करता हूँ ।।९६।। सगुण, निर्गुण, ब्रह्म, ज्योति रूप, सनातन, साकार और निराकार होने वाले तेजोरूप को नमस्कार करता हूँ। उस अनिर्वचनीय, व्यक्त (प्रकट), अव्यक्त (अप्रकट), एक, स्वेच्छामय, सर्वरूप तथा तेजोरूप को नमस्कार करता हूँ ।।९७-९८।। तीनों गुणों के विभागार्थ आपने तीन रूप धारण किये हैं और सभी देवगण आपकी कला ही द्वारा उत्पन्न हैं, फिर श्रुति से भी परे आपको जान सकते हैं क्या ? ।।९९।। इसलिए सब के आधार, सबके रूप, सबके कारण, बीजरहित और सबका अंत करने वाले, अनन्त और तेजोरूप को मैं नमस्कार करता हूँ ।।१००।। जो सगुण रूप है, वही लक्ष्य होता है और विद्वान् पुरुष उसी का वर्णन कर सकते हैं, परन्तु अलक्ष्य आपका वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ ? तेजोरूप को मेरा नमस्कार है ।।१०१।। शरीररहित, सशरीर, इन्द्रिययुक्त और इन्द्रिय से परे, साक्षी रहित और सबका साक्षी है, उस तेजोरूप को नमस्कार करता हूँ ।।१०२।। जो बिना चरण के सब स्थान में जानेवाले, बिना नेत्र के सब को देखने वाले और हाथ-मुँह के बिना भी भोज़न करने वाले हैं, उस तेजोरूप को नमस्कार है ।।१०३।। वेद में कही गयी वस्तु का वर्णन करने में सन्त लोग समर्थ हैं, किन्तु वेदों में भी जो अवर्णनीय रहा है, उस तेजोरूप को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ।।१०४।। जो सब का ईश और अनीश, सबका आदि और अनादि, सबका आत्मा और अनात्मा भी है, उस तेजोरूप को नमस्कार है ।।१०५।। मैं जगत् का विधाता और वेदों का स्वयं जनक हूँ, धर्म रक्षक हैं, शिव (सृष्टि) संहर्ता हैं, पर कोई भी आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं है ।।१०६।।

---

१. क सुराः।

Funding by IKS-MoE

सेवया तव धर्मोऽयं[1] पालने च निरूपितः। तवाऽऽज्ञया च संहर्ता त्वया काले निरूपिते ।।१०७।।
[2]निःशेषोत्पत्तिकर्ताऽहं त्वत्पदाम्भोजसेवया। कर्मिणां फलदाता च त्वं भक्तानां च नः प्रभुः ।।१०८।।
ब्रह्माण्डे बिम्बसदृशो भूत्वा[3] विषयिणो वयम्। एवं कतिविधाः सन्ति तेष्वनन्तेषु सेवकाः ।।१०९।।
यथा न संख्या रेणूनां तथा तेषामणीयसाम्। सर्वेषां जनकश्चेशो यस्तं स्तोतुं च के क्षमाः ।।११०।।
एकैकलोमविवरे ब्रह्माण्डमेकमेककम्। यस्यैव महतो विष्णोः षोडशांशस्तवैव सः ।।१११।।
ध्यायन्ते योगिनः सर्वे तवैतद्रूपमीप्सितम्। त्वद्भक्तदास्यनिरताः सेवन्ते चरणाम्बुजम् ।।११२।।
किशोरं सुन्दरतरं यद्रूपं कमनीयकम्। मन्त्रध्यानानुरूपं च दर्शयास्माकमीश्वर ।।११३।।
नवीनजलदश्यामं पीताम्बरधरं वरम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं सुमनोहरम् ।।११४।।
मयूरपिच्छचूडं च मालतीजालमण्डितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ।।११५।।
अमूल्यरत्नसाराणां सारभूषणभूषितम्। अमूल्यरत्नरचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलम् ।।११६।।
शरत्प्रफुल्लपद्मानां प्रभामोष्यास्यचन्द्रकम्। पक्वबिम्बसमानेन ह्यधरोष्ठेन राजितम् ।।११७।।

आपकी सेवा करने के फलस्वरूप ही धर्म पालन के लिए नियुक्त हुए हैं, आपके निर्धारित समय पर आपकी ही आज्ञा से शिव संहारक हुए हैं और आपके चरण-कमल की सेवावश मैं निखिल सृष्टि का स्रष्टा हुआ हूँ और कर्मों का फल प्रदान करता हूँ, इसलिए आप हम भक्तों के स्वामी हैं।।१०७-१०८।। बिम्ब सदृश इस ब्रह्माण्ड में हम विषयी हो रहे हैं और इसी भांति उन अनन्त ब्रह्माण्डों में ऐसे कितने ही सेवक आपके हैं।।१०९।। जिस प्रकार धूलि और उनके परमाणुओं की संख्या नहीं हो सकती है उसी भाँति उन (लघु) सेवकों की संख्या असंभव है किन्तु समस्त का जो जननकर्ता है, उस ईश की स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है? ।।११०।। क्योंकि जिनके एक-एक लोमविवर में एक-एक ब्रह्माण्ड है, वे महाविष्णु भी आप ही के षोडशांश हैं।।१११।। आपके इस अभीष्ट रूप का समस्त योगीजन ध्यान करते हैं, और दास्य भाव में निमग्न रहने वाले भक्तगण आपके चरण-कमल की सेवा करते हैं ।।११२।। अतः हे ईश्वर! हमें आप अपने किशोर, अति सुन्दर एवं कमनीय रूप के दर्शन देने की कृपा करें, जो मंत्र और ध्यान के अनुरूप हो।।११३।। जो (रूप) नूतन मेघ के समान श्यामवर्ण, पीताम्बर-भूषित, श्रेष्ठ, दो भुजायुक्त, मुरली हाथ में लिये, मन्द मुसुकान से युक्त, अतिमनोहर, मोरपंख की चूडा धारण किये, मालती मालाओं से भूषित, सर्वाङ्ग में चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम द्रव से चर्चित, अमूल्य रत्न के सार भागों के सार से बने भूषणों से सुशोभित, अमूल्य रत्नों के सुरचित किरीट-मुकुट से समुज्ज्वल (प्रकाशित), शरत्कालीन विकसित कमलों की कान्ति को चुराने वाले मुखचन्द्र और पके बिम्बाफल के समान अधरोष्ठ से विराजमान हो।।११४-११७।।

---

[1] क. ०यं रक्षितारं च रक्षति। [2] क. निषेकलिपिक०। [3] क. भृत्या।

पक्वदाडिमबीजाभदन्तपङ्क्तिमनोहरम्। केलीकदम्बमूले च स्थितं [1]रासरसोन्मुखम् ॥११८॥
गोपीवक्त्रस्मिततनुं राधावक्षःस्थलस्थितम्। एवं वाञ्छितरूपं ते द्रष्टुं को वा न चोत्सुकः ॥११९॥
इत्येवमुक्त्वा विश्वसृट् प्रणनाम पुनः पुनः। एवं स्तोत्रेण तुष्टाव धर्मोऽपि शंकरः स्वयम् ॥१२०॥
ननाम भूयो भूयश्च साश्रुपूर्णविलोचनः। तिष्ठन्तोऽपि पुनः स्तोत्रं प्रचक्रुस्त्रिदशेश्वराः ॥१२१॥
व्याप्तास्तत्राऽऽश्रमे सर्वे श्रीकृष्णतेजसा मुने। स्तवराजमिमं नित्यं ब्रह्मेशधर्मभिः कृतम् ॥१२२॥
पूजाकाले हरेरेवं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्। सुदुर्लभां दृढां भक्तिं निश्चलां लभते हरेः ॥१२३॥
सुरासुरमुनीन्द्राणां दुर्लभं दास्यमेव च। अणिमादिकसिद्धिं च सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥१२४॥
इहैव विष्णुतुल्यश्च विख्यातः पूजितो ध्रुवम्। वाक्सिद्धिर्मन्त्रसिद्धिश्च भवेत्तस्य सुनिश्चितम् ॥१२५॥
सर्वसौभाग्यमारोग्यं यशसा पूरितं जगत्। पुत्रश्च विद्या कविता निश्चला कमला तथा ॥१२६॥
पत्नी पतिव्रता साध्वी सुशीला सुस्थिराः प्रजाः। कीर्तिश्च चिरकालीना त्वन्ते कृष्णान्तिके गतिः ॥१२७।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० गोलोकवर्णने श्रीकृष्ण-
स्तोत्रराजपठनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

जो पके अनार के दाने के समान दांतों की पंक्तियों से मनोहर, क्रीडाकदम्ब के मूलभाग में स्थित, रासरस के लिए उत्सुक, गोपियों के द्वारा मुख-मुसुकान समेत दृष्ट और राधा जी के वक्षःस्थल पर स्थित हो, ऐसा आपका अभिलषित रूप देखने के लिए कौन नहीं लालायित होता है?॥११८-११९॥ इतना कहकर विश्वस्रष्टा ब्रह्मा उन्हें बार-बार प्रणाम करने लगे। इसी भाँति धर्म तथा शिव ने भी स्तोत्र द्वारा उनकी स्तुति की और सजल नयन से बार बार प्रणाम किया। वहाँ रहते हुए देवों ने पुनः स्तोत्र द्वारा स्तुति की। हे मुने! उस आश्रम में श्रीकृष्ण के तेज से देवगण आच्छन्न थे। ब्रह्मा, शिव और धर्म कृत इस स्तवराज का जो भगवान् की पूजा के अवसर पर भक्तिपूर्वक नित्य पाठ करता है, उसे भगवान् की अतिदुर्लभ, दृढ और निश्छल भक्ति प्राप्त होती है॥१२०-१२३॥ सुर, असुर और मुनियों के लिए भी दुर्लभ उनका दास्य पद प्राप्त हो जाता है, और अणिमा आदि सिद्धियों एवं सालोक्य आदि चारों मुक्तियों से वह सम्पन्न होता है॥१२४॥ इस लोक में भी विष्णु के समान विख्यात तथा पूजनीय होता है। उसे वाक्सिद्धि समेत मन्त्रसिद्धि सुनिश्चित प्राप्त होती है॥१२५॥ वह समस्त सौभाग्य और आरोग्य से सम्पन्न होता है एवं उसके यश से समस्त जगत् आच्छन्न हो जाता है तथा पुत्र, विद्या, कविता और निश्चल कमला का उसके यहाँ निवास होता है, पत्नी पतिव्रता, सुशीला होती है, प्रजाएँ सुस्थिर होती हैं, कीर्ति चिरकाल तक (भूमण्डल में) व्याप्त रहती है और अन्त में भगवान् कृष्ण के समीप गति प्राप्त होती है॥१२६-१२७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत गोलोक-वर्णन में
श्रीकृष्णस्तोत्रराजपठन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥५॥

---

[1] क. ०सोत्सुकम्।

अथ षष्ठोऽध्यायः

नारायण उवाच

ध्यात्वा स्तुत्वा च तिष्ठन्तो देवास्ते तेजसः पुरः। ददृशुस्तेजसो मध्ये शरीरं कमनीयकम् ।।१।।
सजलाम्भोदवर्णाभं सस्मितं सुमनोहरम् । परमाह्लादकं रूपं त्रैलोक्यचित्तमोहनम् ।।२।।
गण्डस्थलकपोलाभ्यां ज्वलन्मकरकुण्डलम्। सद्रत्ननूपुराभ्यां च चरणाम्भोजराजितम् ।।३।।
वह्निशुद्धहरिद्राभामूल्यवस्त्रविराजितम्। मणिरत्नेन्द्रसाराणां स्वेच्छाकौतुकनिर्मितैः ।।४।।
भूषितं भूषणै रम्यैस्तद्रूपेणैव भूषितैः। विनोदमुरलीयुक्तबिम्बाधरमनोहरम् ।।५।।
प्रसन्नेक्षणपश्यन्तं भक्तानुग्रहकारकम्। सद्रत्नगुटिकायुक्तकवचोरःस्थलोज्ज्वलम् ।।६।।
कौस्तुभासक्तसद्रत्नप्रदीप्ततेजसोज्ज्वलम्। तत्र तेजसि चार्वङ्गीं ददृशू राधिकाभिधाम् ।।७।।
पश्यन्तं सस्मितं कान्तं पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा। मुक्तापङक्तिविनिन्द्यैकदन्तपङक्तिविराजिताम् ।।८।।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शरत्पङकजलोचनाम्। शरत्पार्वणचन्द्राभाविनिन्दास्यमनोहराम् ।।९।।
बन्धुजीवप्रभामुष्टाधरौष्ठरुचिराननाम्। रणन्मञ्जीरयुग्मेन पादाम्बुजविराजिताम् ।।१०।।

अध्याय ६

तेज:पुञ्ज में श्रीकृष्ण और राधा के दर्शन

नारायण बोले—तेज के सामने स्थित देवों ने ध्यान-स्तुति करने के अनन्तर उसी तेज के मध्य एक परम सुन्दर शरीर को देखा, जो सजल जलधर के समान कान्तियुक्त, मन्दहास समेत, अतिमनोहर, परम आह्लादकारक, तीनों लोकों को मोहित करने वाला, गण्डस्थल पर प्रज्वलित मकराकार कुण्डल से सुशोभित, उत्तम रत्नों के नूपुरों से विभूषित चरण-कमल वाला, अग्नि के समान विशुद्ध और हर्दी के रंग के समान (पीत) वस्त्र से सुसज्जित, स्वेच्छा और कौतुक से सुरचित मणियों और उत्तम रत्नों के भूषणों से भूषित, मनोरंजन-सामग्री मुरली से युक्त एवं बिम्वसदृश अरुण अधरों के कारण मनोहर था।।१-५।। वह प्रसन्नतापूर्ण नेत्र से देख रहा था, जो भक्तों पर कृपा करने के लिए सतत उद्यत तथा उत्तम रत्नों की बनी गुटिका से युक्त किवाड़ जैसे विशाल वक्ष:स्थल से प्रकाशित हो रहा था।।६।। वह कौस्तुभ में लगे उत्तम रत्न के प्रदीप्त तेज से देदीप्यमान था। उसी तेज में देवों ने चारु अंगों वाली राधा का दर्शन किया था, जो अपनी तिरछी आँखों से मन्द मुसुकान समेत प्रियतम को देख रही थीं। वे मोतियों की पंक्तियों को तिरस्कृत करने वाली दन्तावली से तथा मन्दहास समेत प्रसन्न मुख से सुशोभित थीं। उनके नेत्र शरत्काल के कमल के समान थे। वे शरत्काल की चन्द्रकान्ति को निन्दित करने वाले मुख के कारण मनोहर लगती थीं।।७-९।। दुपहरिया के फूल की शोभा को चुराने वाले अधरोष्ठ से उनका मुख शोभायमान था। ध्वनि करते हुए युगल नूपुरों से युक्त चरण-कमलों से वे विराजित थीं।।१०।।

Funding by IKS-MoE

मणीन्द्राणां प्रभामोषनखराविजिराजिताम् । कुङ्कुमाभासमाच्छाद्यपदाधोरागभूषिताम् ॥११॥
अमूल्यरत्नसाराणां [1]रशनाश्रोणिभूषिताम् । हुताशनविशुद्धांशुकामूल्यज्वलितोज्ज्वलाम् ॥१२॥
महामणीन्द्रसाराणां किङ्किणीमध्यसंयुताम् । सद्रत्नहारकेयूरकरकङ्कणभूषिताम् ॥१३॥
रत्नेन्द्रसाररचितकपोलोज्ज्वलकुण्डलाम् । कर्णोपरि मणीन्द्राणां कर्णभूषणभूषिताम् ॥१४॥
खगेन्द्रचञ्चुनासाग्रगजेन्द्रमौक्तिकान्विताम् । मालतीमालया वक्रकबरीभारशोभिताम् ॥१५॥
मालया कौस्तुभेन्द्राणां वक्षःस्थलसुशोभिताम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालोज्ज्वलाम्बराम् ॥१६॥
रत्नाङ्गुलीयनिकरैः कराङ्गुलिविभूषिताम् । दिव्यशङ्खविकारैश्च चित्ररागविभूषितैः ॥१७॥
सूक्ष्मसूत्राकृतै रम्यैर्भूषितां शङ्खभूषणैः । सद्रत्नसारगुटिकाराजिसूत्रसुशोभिताम् ॥१८॥
प्रतप्तस्वर्णवर्णाभामाच्छाद्य चारुविग्रहाम् । नितम्बश्रोणिललितां पीनस्तननताम्बराम् ॥१९॥
भूषितां भूषणैः सर्वैः सौन्दर्येण विभूषितैः । विस्मितास्त्रिदशाः सर्वे दृष्ट्वा तामीश्वरीं वराम्
तुष्टुवुस्ते सुराः सर्वे परिपूर्णमनोरथाः ॥२०॥

उत्तम मणियों की छटा को चुराने वाली नख-कान्ति से वे भूषित थीं। कुंकुम की कान्ति से आच्छादित चरणतल की प्रभा से सुशोभित थीं। अमूल्य रत्नों के सार भाग से बनी करधनी से युक्त उनका श्रोणीभाग था। अग्निशुद्ध अमूल्य वस्त्र से वे देदीप्यमान थीं। महामणियों के सारभाग से बनी किंकिणी से उनका मध्यभाग भूषित था। उत्तम रत्नों के हार, बाजूबंद और कंकण से वे विभूषित थीं। रत्नेन्द्र के सारभाग से सुरचित कुंडलों से उनके कपोल उद्दीप्त हो रहे थे। कानों में श्रेष्ठ मणियों के कर्णभूषणों से वे शोभायमान थीं ॥११-१४॥ गरुड़ की चोंच के समान नुकीली नासिका में गजमुक्ता से युक्त थीं। घुंघराले बालों की वेणी में वे मालती की माला लपेटे हुई थीं ॥१५॥ उनका वक्षःस्थल उत्तम कौस्तुभ-मणियों की माला से सुशोभित था। पारिजात के फूलों की माला से उनका वस्त्र अधिक उज्ज्वल जान पड़ता था ॥१६॥ उनके हाथ की अँगुलियाँ रत्नों की अँगूठियों से विभूषित थीं। दिव्य शंख के बने हुए विचित्र रागविभूषित रमणीय भूषण उन्हें विभूषित कर रहे थे। वे शंखभूषण महीन रेशमी डोरे में गुंथे हुए थे। उत्तम रत्नों के सारतत्त्व की बनी हुई गुटिका को लाल डोरे में गूंथकर उसके द्वारा उन्होंने अपने आपको सज्जित किया था। तपाये हुए सुवर्ण के समान अंगकान्ति को सुन्दर वस्त्र से आच्छादित करके वे शोभायमान हो रही थीं। उनका शरीर अतिमनोहर था। नितम्ब और श्रोणी-भाग से वे ललित लगती थीं। स्थूल स्तनों से उनका वस्त्र मुड़ गया था ॥१७-१९॥ वे समरत आभूषणों और सौन्दर्य से भूषित थीं। देवगण उस श्रेष्ठ ईश्वरी को देख कर आश्चर्य-चकित तथा अपने सभी मनोरथों को सफल समझते हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥२०॥

---

[1] क. ०पाक्षक्श्रो० ।

ब्रह्मोवाच

तव चरणसरोजे मन्मनश्चञ्चरीको
भ्रमतु सततमीश प्रेमभक्त्या सरोजे।
भुवनविभवभोगात्तापशान्त्यौषधाय
सुदृढसुपरिपक्वां देहि भक्तिं च दास्यम् ॥२१॥

शंकर उवाच

भवजलधिनिमग्नश्चित्तमीनो मदीयो
भ्रमति सततमस्मिन्घोरसंसारकूपे ।
विषयमतिविनिन्द्यं सृष्टिसंहाररूप-
मपनय तव भक्तिं देहि पादारविन्दे ॥२२॥

धर्म उवाच

तव निजजनसार्धं संगमो मे मदीश
भवतु विषयबन्धच्छेदने तीक्ष्णखड्गः।
तव चरणसरोजे स्थानदानैकहेतु-
र्जनुषि जनुषि भक्तिं देहि पादारविन्दे ॥२३॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा परिपूर्णैकमानसाः । कामपूरस्य पुरतस्तिष्ठन्तो राधिकापतेः ॥२४॥
सुराणां स्तवनं श्रुत्वा तानुवाच कृपानिधिः।। हितं तथ्यं च वचनं स्मेराननसरोरुहः ॥२५॥

ब्रह्मा बोले—हे ईश ! तुम्हारे चरण-कमल में मेरा मन रूपी भौंरा प्रेम भक्ति पूर्वक निरन्तर भ्रमण किया करे और भुवनों के विभव (ऐश्वर्य) भोगों से उत्पन्न ताप की शान्ति रूपी ओषधि के लिए अति दृढ़ और परिपक्व भक्ति एवं दास्य (सेवा) प्रदान करें॥२१॥

शंकर बोले—संसार-सागर में निमग्न होने वाला मेरा चित्त रूपी मत्स्य इस घोर संसार रूपी कूप में निरन्तर भमण कर रहा है, अतः सृष्टि और संहार रूप अति निन्दित विषय को (मुझसे) दूर करते हुए मुझे अपने चरण-कमल की भक्ति प्रदान करें॥२२॥

धर्म बोले—मेरे स्वामी ! इस विषय रूपी बन्धन को काटने के लिए तुम्हारे निजी जनों का साथ रूपी तीक्ष्ण खड्ग मुझे प्राप्त हो जो तुम्हारे चरण-कमल में स्थान दिलाने का एकमात्र हेतु है। अपने चरण-कमल की भक्ति मुझे प्रत्येक जन्म में दीजिए॥२३॥ इस प्रकार स्तुति करके पूर्ण मनोरथ हुए तीनों देव राधिकापति के सामने खड़े हो गए॥२४॥ देवों की ऐसी स्तुति सुन कर कृपानिधान एवं मुसकराते हुए मुखारविन्द वाले श्रीकृष्ण ने उनसे हितकर और सत्य वचन कहा॥२५॥

श्रीकृष्ण उवाच

तिष्ठताऽऽगच्छत सुरा मदीया नात्र संशयः। शिवाश्रयाणां कुशलं प्रष्टुं युक्तं न साम्प्रतम् ॥२६॥
निश्चिन्ता भवतात्रैव का चिन्ता वो मयि स्थिते। स्थितोऽहं सर्वजीवेषु प्रत्यक्षोऽहं स्तवेन वै ॥२७॥
युष्माकं यमभिप्रायं सर्वं जानामि निश्चितम्। शुभाशुभं च यत्कर्म काले खलु भविष्यति ॥२८॥
महत्क्षुद्रं च यत्कर्म सर्वं कालकृतं सुराः। स्वे स्वे काले च तरवः फलिताः पुष्पिणः सदा ॥२९॥
परिपक्वफलाः कालेऽकाले पक्वफलान्विताः। सुखं दुःखं विपत्संपच्छोकचिन्ताशुभाशुभम् ॥३०॥
स्वकर्मफलनिष्ठं च सर्वकालेऽप्युपस्थितम्। न हि कस्य प्रियः को वा विप्रियो वा जगत्त्रये ॥३१॥
काले कार्यवशात्सर्वे भवन्त्येवाप्रियाः प्रियाः। राजानो मनवः पृथ्व्यां दृष्टा युष्माभिरत्र वै ॥३२॥
स्वकर्मफलपाकेन सर्वे कालवशं गताः। युष्माकमधुना चैव गोलोके यत्क्षणं गतम् ॥३३॥
पृथिव्यां तत्क्षणेनैव सप्त मन्वन्तरं गतम्। इन्द्राः सप्त गतास्तत्र देवेन्द्रश्चाष्टमोऽधुना ॥३४॥
कालचक्रं भ्रमत्येव मदीयं च दिवानिशम्। इन्द्राश्च मानवा भूपाः सर्वे कालवशं गताः ॥३५॥
कीर्तिः पृथ्व्यां पुण्यमद्य कथामात्रावशेषितम्। अधुनाऽपि च राजानो दुष्टाश्च हरिनिन्दकाः ॥३६॥
बभूवुर्बहवो भूमौ महाबलपराक्रमाः। सर्वे यास्यन्ति राजानः कालान्तरवशं ध्रुवम् ॥३७॥
उपस्थितोऽपि कालोऽयं वातो वाति निरन्तरम्। वह्निर्दहति सूर्यश्च तपत्येव ममाऽऽज्ञया ॥३८॥

श्रीकृष्ण बोले--हे देवगण ! तुम लोग तो मेरे ही हो, इसमें संशय नहीं। अतः आओ, बैठो। शिव के आश्रित रहने वालों से कुशल प्रश्न करना उपयुक्त नहीं है, इसलिए तुम लोग यहाँ निश्चिन्त हो जाओ। मेरे रहते तुम्हें चिंता किस बात की हो सकती है। मैं समस्त जीवों में स्थित रहता हूँ, किन्तु स्तुति से ही प्रत्यक्ष होता हूँ ॥२६-२७॥ मैं तुम लोगों का अभिप्राय निश्चित रूप से जानता हूँ। शुभ-अशुभ—जो भी कर्म है समय पर होगा ॥२८॥ देवगण ! बड़ा-छोटा सभी कर्म कालकृत ही होता है। अपने-अपने समय पर वृक्ष फूलते-फलते हैं ॥२९॥ समय पर उनके फल भलीभाँति पकते हैं और समय पर वे कच्चे फल से युक्त होते हैं। सुख, दुःख, विपत्, सम्पत, शोक-चिन्ता, शुभ-अशुभ सभी अपने कर्म के फल-स्वरूप समय पर उपस्थित होते हैं। तीनों लोकों में किसी का कोई प्रिय और अप्रिय नहीं हैं। समयानुसार कार्यवश अप्रिय भी प्रिय हो जाता है। भूतल पर तुम लोगों ने मनुओं और राजाओं को देखा ही है। अपने-अपने कर्म फल के उपस्थित होने पर सभी काल के अधीन हो गये। इस समय गोलोक में तुम लोगों का जो एक क्षण व्यतीत हुआ है—भूमण्डल पर उसी क्षण के भीतर सात मन्वन्तर समाप्त हो गये। सात इन्द्र व्यतीत हो गये—इस समय आठवाँ देवराज वहाँ स्थित है ॥३०-३४॥ मेरा कालचक्र दिनरात घूमा करता है इसलिए इन्द्रगण, मनु और राजा लोग सभी कालवश होकर चले गये ॥३५॥ अब पृथ्वी पर उनकी कीर्ति और पुण्य की कथा मात्र शेष रह गयी है, इस समय भी बहुत-से राजा दुष्ट और हरि-निन्दक हैं ॥३६॥ पृथ्वी पर महाबली और पराक्रमी अनेक राजा हुए हैं किन्तु सभी राजा काल के वश में निश्चित हो जायंगे ॥३७॥ यह काल उपस्थित भी है। मेरी ही आज्ञा से वायु निरन्तर चल रहा है, अग्नि जला रहा है और सूर्य तप रहा है ॥३८॥

Funding by IKS-MoE

व्याधयः सन्ति देहेषु मृत्युश्चरति जन्तुषु। वर्षन्त्येते जलधराः सर्वे देवा ममाऽऽज्ञया ॥३९॥
ब्राह्मण्यनिष्ठा विप्राश्च तपोनिष्ठास्तपोधनाः। ब्रह्मर्षयो ब्रह्मनिष्ठा योगनिष्ठाश्च योगिनः ॥४०॥
ते सर्वे मद्भयाद्भीताः स्वकर्मधर्मतत्पराः। मद्भक्ताश्चैव निःशङ्काः कर्मनिर्मूलकारकाः ॥४१॥
देवाः कालस्य कालोऽहं विधाता धातुरेव च। संहारकर्तुः संहर्ता पातुः पाता परात्परः ॥४२॥
ममाऽऽज्ञयाऽयं संहर्ता नाम्ना तेन हरः स्मृतः। त्वं विश्वसृट् सृष्टिहेतोः पाता धर्मश्च रक्षणात् ॥४३॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वेषामहमीश्वरः। स्वकर्मफलदाताऽहं कर्मनिर्मूलकारकः ॥४४॥
अहं यान्संहरिष्यापि कस्तेषामपि रक्षिता। यानहं पालयिष्यामि तेषां हन्ता न कोऽपि वा ॥४५॥
सर्वेषामपि संहर्ता स्रष्टा पाताऽहमेव च। नाहं शक्तश्च भक्तानां संहारे नित्यदेहिनाम् ॥४६॥
भक्ता ममानुगा नित्यमत्पादार्चनतत्परः। अहं भक्तान्तिके शश्वत्तेषां रक्षणहेतवे ॥४७॥
सर्वे नश्यन्ति ब्रह्माण्डे प्रभवन्ति पुनः पुनः। न मे भक्ताः प्रणश्यन्ति निःशङ्काश्च निरापदः ॥४८॥
अतो विपश्चितःसर्वे दास्यं वाञ्छन्ति नो वरम्। ये मां दास्यं प्रयाचन्ते धन्यास्तेऽन्ये च वञ्चिताः ॥४९॥
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं च यमयातना। अन्येषां कर्मिणामस्ति न भक्तानां च कर्हिचित् ॥५०॥
भक्ता न लिप्ताः पापेषु पुण्येषु सर्वकर्मिणः। अहं धुनोमि तेषां च कर्मभोगान्सुनिश्चितम् ॥५१॥

देवगण! मेरी आज्ञा से शरीरों में व्याधियाँ उत्पन्न हो रही हैं, सभी जीवों में मृत्यु विचरण कर रहा है और ये मेघ वर्षा कर रहे हैं ॥३९॥ ब्राह्मण ब्राह्मणत्व धर्म में लगे हैं, तपस्वी तप में लगे हैं, ब्रह्मर्षि ब्रह्म में लगे हैं और योगी योग साधन कर रहे हैं ॥४०॥ ये सब मेरे भय से भयभीत हो कर अपने-अपने धर्म-कर्म में लगे हैं और कर्म का निर्मूलन (नाश) करने वाले मेरे भक्त गण निःशंक हैं ॥४१॥ देवगण! मैं काल का भी काल, विधाता का विधाता, संहार करने वाले का संहर्ता और रक्षक का परात्पर रक्षक हूँ ॥४२॥ मेरी आज्ञा से ये संहर्ता हुए हैं अतःनाम से इन्हें 'हर' कहा जाता है। तुम सृष्टि के कारण विश्व के स्रष्टा हो और रक्षा करने के नाते धर्म रक्षक हैं ॥४३॥ मैं ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सभी का ईश्वर हूँ, स्वकर्म का फल प्रदान करता हूँ और कर्मों का निर्मूलन-कर्ता हूँ ॥४४॥ मैं जिनका संहार करता हूँ, उनका रक्षक कौन हो सकता है? और मैं जिनका पालन करता हूँ, उनका हनन करने वाला कौन हो सकता है?॥४५॥ मैं सभी का संहर्ता, स्रष्टा और रक्षक हूँ, किन्तु नित्य देह प्राप्त भक्तों के संहार करने में मैं समर्थ नहीं हूँ ॥४६॥ भक्त लोग नित्य मेरे चरण की अर्चना में तत्पर रहने के कारण मेरे अनुगामी होते हैं और भक्तों के रक्षणार्थ मैं निरन्तर उनके समीप स्थित रहता हूँ ॥४७॥ ब्रह्माण्ड में सब बार-बार नष्ट होते हैं और बार-बार उत्पन्न होते हैं किन्तु मेरे भक्तगण कभी नष्ट नहीं होते हैं अपितु निरापद रह कर निःशंक विचरण करते हैं ॥४८॥ इसीलिए सभी विद्वान् दास्य पद की ही अभिलाषा करते हैं दूसरे किसी वर की नहीं। जो मुझसे दास्य की याचना करते हैं वे धन्य हैं और इतर लोग वंचित हैं ॥४९॥ इस प्रकार जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, भय और यम की यातना अन्य प्राणियों के लिए है, मेरे भक्तों के लिए कभी नहीं ॥५०॥ क्योंकि भक्त लोग पाप कर्म में कभी नहीं रहते, सदैव पुण्य ही किया करते हैं, मैं उनके कर्म-भोगों को निश्चित ही नष्ट कर देता हूँ ॥५१॥

Funding by IKS-MoE

अहं प्राणश्च भक्तानां भक्ताः प्राणा ममापि च। ध्यायन्ते ते च मां नित्यं तान्स्मरामि दिवानिशम् ॥५२॥
चक्रं सुदर्शनं नाम षोडशारं सुतीक्ष्णकम्। यत्तेजः षोडशांशोऽपि नास्ति सर्वेषु जीविषु ॥५३॥
भक्तान्तिके तु तच्चक्रं दत्त्वा रक्षार्थमीप्सितम्। न स्वास्थ्यं नच प्रीतिर्मे यामि तेषां च संनिधिम् ॥५४॥
न मे स्वास्थ्यं च वैकुण्ठे गोलोके राधिकान्तिके। यत्र तिष्ठन्ति भक्तास्ते तत्र तिष्ठाम्यहर्निशम् ॥५५॥
प्राणेभ्यः प्रेयसी राधा स्थितोरसि दिवानिशम्। यूयं प्राणाधिका लक्ष्मीर्न मे भक्तात्परा प्रिया ॥५६॥
भक्तदत्तं च यद्द्रव्यं भक्त्याऽश्नामि सुरेश्वराः। अभक्तदत्तं नाश्नामि ध्रुवं भुङ्क्ते बलिः स्वयम् ॥५७॥
स्त्रीपुत्रस्वजनांस्त्यक्त्वा ध्यायन्ते मामहर्निशम्। युष्मान्विहाय तान्नित्यं स्मराम्यहमहर्निशम् ॥५८॥
दुष्टा यदा मे भक्तानां ब्राह्मणानां गवामपि। क्रतूनां देवतानां च हिंसां कुर्वन्ति निश्चितम् ॥५९॥
तदाऽचिरं ते नश्यन्ति यथा वह्नौ तृणानि च। न कोऽपि रक्षिता तेषां मयि हन्तर्युपस्थिते ॥६०॥
यास्यामि पृथिवीं देवा यात यूयं स्वमालयम्। यूयं चैवांशरूपेण शीघ्रं गच्छत भूतलम् ॥६१॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथो गोपानाहूय गोपिकाः। उवाच मधुरं वाक्यं सत्यं यत्समयोचितम् ॥६२॥
गोपा गोप्यश्च शृणुत यात नन्दव्रजं परम्। वृषभानुगृहे क्षिप्रं गच्छ त्वमपि राधिके ॥६३॥

मैं भक्तों का प्राण हूँ और भक्त मेरे प्राण हैं। वे नित्य मेरा ध्यान करते हैं और मैं दिनरात उनका स्मरण करता हूँ ॥५२॥ सोलह अरे वाला यह सुदर्शन चक्र अति तीक्ष्ण है। उसके तेज का सोलहवाँ भाग भी समस्त जीवों में नहीं है। भक्तों के पास रक्षा के निमित्त उस अभीष्ट चक्र को देकर भी मुझे प्रतीति नहीं होती, इसलिए मैं भी स्वयं उनके पास जाता हूँ ॥५३-५४॥ मुझे वैकुण्ठ लोक और गोलोक में राधा के समीप भी स्थिरता प्राप्त नहीं होती है अतः जहाँ भक्त रहते हैं मैं भी रात दिन वहीं रहता हूँ ॥५५॥ प्राणों से भी अति प्रेयसी होने के नाते राधा रात दिन मेरे वक्षः पर स्थित रहती हैं। तुम सब लोग तथा प्राणों से अधिक प्रिय लक्ष्मी भी मुझे भक्तों से बढ़कर प्रिय नहीं हैं ॥५६॥ सुरेश्वर! भक्तों द्वारा भक्तिपूर्वक दिए हुए पदार्थ को मैं सप्रेम ग्रहण करता हूँ, किन्तु अभक्त के दिए हुए का कभी भक्षण नहीं करता हूँ। उसे बलि स्वयं खाता है ॥५७॥ भक्त लोग अपनी स्त्री, पुत्र आदि परिवार की चिन्ता न कर दिन रात मेरा ही ध्यान करते हैं अतः मैं तुम लोगों को भी छोड़ कर नित्य दिन रात उन्हीं का स्मरण किया करता हूँ ॥५८॥ इसीलिए यदि दुष्ट लोग मेरे भक्तों, ब्राह्मणों, गौओं, यज्ञों और देवों की हिंसा करते हैं तो वे अग्नि में तृण की भाँति शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। और मुझ हन्ता के रहते उन दुष्टों की कोई भी रक्षा नहीं कर सकता है ॥५९-६०॥ अतः देवगण! मैं पृथ्वी पर चलूंगा किन्तु तुम लोग अपने-अपने घर जाओ और अपने अंश से पृथ्वी पर अवतार लो ॥६१॥ जगत् के स्वामी भगवान् ने इतना कह कर गोपों और गोपियों को वुला कर उनसे मधुर, सत्य और सामयिक वातें कहीं ॥६२॥ गोपो और गोपियो! सुनो, नन्द के परमोत्तम व्रज में जाओ और राधिके! तुम भी वृषभानु के घर शीघ्र जाओ ॥६३॥

---

१ क. धन्ये।

वृषभानुप्रिया साध्वी नन्दगोपकलावती। सुबलस्य सुता सा च कमलांशसमुद्भवा ॥६४॥
पितृणां मानसी कन्या धन्या मान्या च योषिताम्। पुरा दुर्वाससः शापाज्जन्म तस्या व्रजे गृहे ॥६५॥
तस्या गृहे जन्म लभ शीघ्रं नन्दव्रजं व्रज। त्वामहं बालरूपेण गृह्णामि कमलानने ॥६६॥
त्वं मे प्राणाधिका राधे तव प्राणाधिकोऽप्यहम्। न किंचिदावयोर्भिन्नमेकाङ्गं सर्वदैव हि ॥६७॥
श्रुत्वैवं राधिका तत्र रुरोद प्रेमविह्वला। पपौ चक्षुश्चकोराभ्यां मुखचन्द्रं हरेर्मुने ॥६८॥
जनुर्लभत गोपाश्च गोप्यश्च पृथिवीतले। गोपानामुत्तमानां च मन्दिरे मन्दिरे शुभे ॥६९॥
एकस्मिन्नन्तरे सर्वे ददृशू रथमुत्तमम्। मणिरत्नेन्द्रसारेण हीरकेण विभूषितम् ॥७०॥
श्वेतचामरलक्षेण शोभितं दर्पणायुतैः। सूक्ष्मकाषायवस्त्रेण वह्निशुद्धेन भूषितम् ॥७१॥
सद्रत्नकलशानां च सहस्रेण सुशोभितम्। पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् ॥७२॥
पार्षदप्रवरैर्युक्तं शातकुम्भमयं शुभम्। तेजः स्वरूपमतुलं शतसूर्यसमप्रभम् ॥७३॥
तत्रस्थं पुरुषं श्यामं सुन्दरं कमनीयकम्। शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं वरम् ॥७४॥
किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥७५॥
चतुर्भुजं स्मेरवक्त्रं भक्तानुग्रहकारकम्। मणिरत्नेन्द्रसाराणां सारभूषणभूषितम् ॥७६॥

वहाँ वृषभानु की प्रिय एवं पतिव्रता पत्नी कलावती है, जो सुबल की कन्या एवं कमला के अंश से उत्पन्न है। वह पितरों की मानसी कन्या है तथा स्त्रियों में सब से धन्या-मान्या है, पूर्व काल में दुर्वासा के शाप से व्रज में उसका जन्म हुआ है ॥६४-६५॥ हे कमलानने! उसी के घर जन्म धारण करो, अतः शीघ्र नन्द के व्रज में जाओ। मैं बाल रूप से ही वहाँ तुम्हें अपनाऊँगा ॥६६॥ राधे! तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो और तुम्हें मैं भी उसी भाँति प्रिय हूँ, हम दोंनो में कभी भी भिन्नता नहीं है हम सदा एक रूप हैं ॥६७॥ मुने! यह सुन कर राधिका प्रेम-व्याकुल होकर रोदन करने लगीं और अपने नेत्र-चकोर द्वारा भगवान् के मुखचन्द्र का एकटक पान करने लगीं ॥६८॥ गोप-गोपियो! भूतल पर तुम लोग उत्तम गोपों के शुभ घरों में उत्पन्न होओ ॥६९॥ उसी बीच सभी लोगों ने एक परमोत्तम रथ देखा, जो मणि-रत्नेन्द्र के सार भाग और हीरे से भूषित, एक लाख श्वेत चामर, दश सहस्र दर्पण, अग्नि-विशुद्ध सूक्ष्म काषाय वस्त्र से भूषित, उत्तम रत्नों के सहस्र कलशों से सुशोभित, पारिजात पुष्पों के माला-समूहों से अलंकृत, श्रेष्ठ पार्षदों से युक्त, सुवर्णमय, शुभ, तेजः स्वरूप, अनुपम और सैकड़ों सूर्यों के समान प्रभापूर्ण था ॥७०-७३॥ उसमें एक पुरुष सुखासीन था, जो श्याम, सुन्दर, मनोमोहक, शंख, चक्र, गदा एवं पद्म लिए, उत्तम पीताम्बर, किरीट, कुण्डल और वनमाला से भूषित, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, एवं कुंकुम द्रव से चर्चित, चार भुजाओं, एवं मुसकराते हुए मुख से युक्त, भक्तों के अनुग्रहार्थ लालायित और मणि-रत्नेन्द्र के सारभाग के बने भूषणों से भूषित था ॥७४-७६॥

---

[१] क. ०स्या गर्भे।

देवीं तद्वामतो रम्यां शुक्लवर्णां मनोहराम्। रत्नालंकारशोभाढ्यां शोभिनां पीतवाससा ॥७७॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम्। पक्वबिम्बाधरोष्ठीं च स्मेरयुक्तां मनोहराम् ॥७८॥
वेणुवीणाग्रन्थहस्तां भक्तानुग्रहकारिकाम्। विद्याधिष्ठातृदेवीं च ज्ञानरूपां सरस्वतीम् ॥७९॥
अपरां दक्षिणे रम्यां शतचन्द्रसमप्रभाम्। प्रतप्तस्वर्णवर्णाभां सस्मितां सुमनोहराम् ॥८०॥
सद्रत्नकुण्डलाभ्यां च सुकपोलविराजिताम्। अमूल्यरत्नखचितामूल्यवस्त्रेण भूषिताम् ॥८१॥
अमूल्यरत्नकेयूरकरकङ्कणशोभिताम्। सद्रत्नसारमञ्जीरकलशब्दसमन्विताम् ॥८२॥
मणीन्द्रकिङ्किणीयुक्तमध्यदेशसमन्विताम्। पारिजातप्रसूनानां मालावक्षःस्थलोज्ज्वलाम् ॥८३॥
प्रफुल्लमालतीमालासंयुक्तकबरीयुताम्। शरच्चन्द्रप्रभामुष्णन्मुखचारुविभूषिताम् ॥८४॥
कस्तूरीबिन्दुसंयुक्तसिन्दूरतिलकान्विताम्। सुचारुकज्जलासक्तशरत्पङ्कजलोचनाम् ॥८५॥
सहस्रदलसंसक्तलीलाकमलसंयुताम्। नारायणं च पश्यन्तं पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा ॥८६॥
अवरुह्य रथात्तूर्णं सस्त्रीकः सहपार्षदः। जगाम च सभां रम्यां गोपगोपीसमन्विताम् ॥८७॥
देवा गोप्यश्च गोपाश्च तस्थुः प्राञ्जलयो मुदा। सामवेदोक्तस्तोत्रेण कृतेन च सुरर्षिभिः ॥८८॥
गत्वा नारायणो देवो विलीनः कृष्णविग्रहे। दृष्ट्वा च परमाश्चर्यं ते सर्वे विस्मयं ययुः ॥८९॥

उनके बांये भाग में शुक्ल वर्ण की अति मनोहर एक देवी स्थित थीं जो रत्नों के अलंकारों की शोभाओं से सुशोभित, पीताम्बर धारण किये, शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख वाली, शरत्कालीन कमल की भाँति नेत्र वाली, पके विम्बाफल के समान अधरोष्ठ वाली, मन्द हास करने वाली और अति मनोहर थीं ॥७७-७८॥ उनके हाथों में वेणु, वीणा और पुस्तकें थीं। वे भक्तों पर कृपा करने के लिए कातर तथा विद्या की अधिष्ठात्री देवी ज्ञानरूपा सरस्वती थीं ॥७९॥ उनके दाहिने भाग में एक दूसरी देवी स्थित थीं, जो सैकड़ों चन्द्रमा के समान कान्तिपूर्ण, अत्यन्त तपाये सुवर्ण के समान रूप रंग वाली, मुसकराहट से युक्त तथा अत्यन्त मनोहर थीं ॥८०॥ उनके सुन्दर कपोल उत्तम रत्नमय कुण्डलों से जगमगा रहे थे। वे बहुमूल्य रत्नों और महामूल्यवान् वस्त्रों से भूषित थीं ॥८१॥ अमूल्य रत्नों द्वारा निर्मित बाजूबंद और कंगन उनकी भुजाओं की श्रीवृद्धि कर रहे थे। श्रेष्ठ रत्नों के सारतत्त्व से बने हुए मंजीर की मधुर झनकारों से वे युक्त थीं ॥८२॥ उत्तम मणियों की किंकिणियों (से युक्त करधनी) से उनका कटिप्रदेश शोभित था। पारिजात के पुष्पों की माला से उनका वक्षःस्थल समुज्ज्वल था ॥८३॥ उनकी वेणी खिली हुई मालती की मालाओं से युक्त थी। उनका सुन्दर मुख शरत्काल के चन्द्रमा की प्रभा को छीन लेता था ॥८४॥ वे कस्तूरी-बिन्दु से युक्त सिन्दूर के तिलक से शोभित थीं। उनके शरत्काल के प्रफुल्ल कमलों के समान नेत्रों में मनोहर काजल लगा हुआ था ॥८५॥ उनके हाथ में सहस्र पत्रों से युक्त लीलाकमल सुशोभित था। वे अपनी ओर देखने वाले नारायण देव को तिरछी चितवन से निहार रही थीं ॥८६॥ पत्नियों और पार्षदों समेत वे देव रथ से शीघ्र उतर कर गोपों और गोपियों से युक्त रमणीय सभा में पहुँच गये ॥८७॥ वहाँ देवगण, गोपियों और गोपों ने हाथ जोड़कर सहर्ष उठकर स्वागत किया और देवर्षियों ने सामवेदोक्त स्तोत्र द्वारा उनकी स्तुति की ॥८८॥ नारायण देव वहाँ पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर में विलीन हो गए। यह देख कर उन लोगों को परम आश्चर्य हुआ ॥८९॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शातकुम्भमयाद्रथात्। अवरुह्य स्वयं विष्णुः पाता च जगतां पतिः ॥९०॥
आजगाम चतुर्बाहुर्वनमालाविभूषितः। पीताम्बरधरः श्रीमान्सस्मितः सुमनोहरम् ॥९१॥
सर्वालंकारशोभाढ्यः सूर्यकोटिसमप्रभः। उत्तस्थुस्ते च तं दृष्ट्वा तुष्टुवुः प्रणता मुने ॥९२॥
स चापि लीनस्तत्रैव राधिकेशस्य विग्रहे। ते दृष्ट्वा महदाश्चर्यं विस्मयं परमं ययुः ॥९३॥
संविलीने हरेरङ्गे श्वेतद्वीपनिवासिनि। एतस्मिन्नन्तरे तूर्णमाजगाम त्वरान्वितः ॥९४॥
शुद्धस्फटिकसंकाशो नाम्ना संकर्षणः स्मृतः। सहस्रशीर्षा पुरुषः शतसूर्यसमप्रभः ॥९५॥
आगतं तुष्टुवुः सर्वे दृष्ट्वा तं विष्णुविग्रहम्। सचाऽऽगत्य नतस्कन्धस्तुष्टाव राधिकेश्वरम् ॥९६॥
सहस्रमूर्धा भक्त्या च प्रणनाम च नारद। आवां च धर्मपुत्रौ द्वौ नरनारायणाभिधौ ॥९७॥
लीनोऽहं कृष्णपादाब्जे बभूव फाल्गुनो वरः। ब्रह्मेशशेषधर्माश्च तस्थुरेकत्र तत्र वै ॥९८॥
एतस्मिन्नन्तरे देवा ददृशू रथमुत्तमम्। स्वर्णसारविकारं च नानारत्नपरिच्छदम् ॥९९॥
मणीन्द्रसारसंयुक्तं वह्निशुद्धांशुकान्वितम्। श्वेतचामरसंयुक्तं भूषितं दर्पणायुतैः ॥१००॥
सद्रत्नसारकलशसमूहेन विराजितम्। पारिजातप्रसूनानां मालाजालैः सुशोभितम् ॥१०१॥
सहस्रचक्रसंयुक्तं मनोयायिमनोहरम्। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभामोषकरं वरम् ॥१०२॥

उसी बीच सुवर्णमय रथ से उतरकर जगत् के स्वामी एवं रक्षक स्वयं विष्णु आये। उनके चार भुजायें थीं। वे वनमाला से भूषित, पीताम्बरधारी, शोभासम्पन्न तथा मन्द मुसुकान करते हुए अति मनोहर थे ॥९०-९१॥ वे समस्त अलंकारों की शोभाओं से सम्पन्न और सैकड़ों सूर्यों के समान प्रभापूर्ण थे। मुने! उन्हें देखकर सभी लोगों ने उठकर उनका स्वागत किया और विनीत होकर स्तुति की ॥९२॥ वे भी राधिकापति कृष्ण की देह में विलीन हो गए, यह देखकर उन सबको और भी महान् आश्चर्य हुआ ॥॥९३॥ श्वेतद्वीपनिवासी विष्णु के श्रीकृष्ण के अंग में विलीन हो जाने के अनन्तर बड़ी शीघ्रता से संकर्षण नामक पुरुष आये, जो शुद्ध स्फटिक के समान गौर वर्ण वाले, एक सहस्र शिर वाले, और सैकड़ों सूर्यों के समान देदीप्यमान थे ॥९४-९५॥ उन विष्णु देह वाले संकर्षण को आया देखकर सब ने उनकी स्तुति की। और उन्होंने भी वहाँ पहुँचकर मस्तक झुकाकर राधिकाधीश श्रीकृष्ण की स्तुति की ॥९६॥ नारद! उन्होंने अपने सहस्र शिर से भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। तत्पश्चात् हम दोनों धर्म-पुत्र नर और नारायण वहाँ गये। मैं तो कृष्ण के चरण-कमल में लीन हो गया किन्तु नर अर्जुन के रूप में अवतीर्ण हुए। फिर ब्रह्मा, शिव शेष और धर्म ये सब एक स्थान पर खड़े हो गए ॥९७-९८॥ उसी बीच देवों ने एक परमोत्तम रथ देखा, जो सुवर्ण के सार भाग से सुरचित और भाँति-भाँति के रत्नों के बने उपकरणों से अलंकृत था। श्रेष्ठ मणियों के सार भाग से युक्त, अग्नि विशुद्ध वस्त्र, श्वेत चामर और दर्पणों से भूषित, उत्तम रत्नों के सार भाग के कलशों से विराजमान, पारिजात पुष्पों के माला-समूहों से सुशोभित एक सहस्र पहियों से युक्त, मन की भाँति वेगगामी और मनोहर था। ग्रीष्मकाल के मध्याह्नकालीन सूर्य की प्रभा को चुराने वाला और मुक्ता, माणिक्य, हीरक के

मुक्तामाणिक्यवज्राणां समूहेन समुज्ज्वलम्। चित्रपुत्तलिकापुष्पसरः काननचित्रितम् ।।१०३।।
देवानां दानवानां च रथानां प्रवरं मुने। यत्नेन शंकरप्रीत्या निर्मितं विश्वकर्मणा।।१०४।।
पञ्चाशद्योजनोर्ध्वं च चतुर्योजनविस्तृतम्। [1]रतितुल्यवधूयुवतैः शोभितं रतिमन्दिरैः।।१०५।।
तत्रस्थां ददृशुर्देवीं रत्नालंकारभूषिताम्। प्रदग्धस्वर्णसाराणां प्रभामोषकरद्युतिम् ।।१०६।।
तेजः स्वरूपामतुलां मूलप्रकृतिमीश्वरीम्। सहस्रभुजसंयुक्तां नानायुधसमन्विताम्।।१०७।।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारकाम्। गण्डस्थलकपोलस्थसद्रत्नकुण्डलोज्ज्वलाम् ।।१०८।।
रत्नेन्द्रसाररचितक्वणन्मञ्जीररञ्जिताम् । मणीन्द्रमेखलायुक्तमध्यदेशसुशोभिताम्।।१०९।।
सद्रत्नसारकेयूरक[2]रकङ्कणभूषिताम् । मन्दारपुष्पमालाभिरुरःस्थलसमुज्ज्वलाम्।।११०।।
नितम्बकठिनश्रोणीं पीनोन्नतकुचानताम् । शरत्सुधाकराभासविनिन्द्यास्यमनोहराम्।।१११।।
कज्जलोज्ज्वलरेखाक्तशरत्पङ्कजलोचनाम् । चन्दनागुरुकस्तूरीचित्रपत्रविभूषिताम् ।।११२।।
नवीनबन्धुजीवाभामोष्ठाधरसुशोभिताम् । मुक्तापङ्क्तिप्रभामुष्टदन्तराजिविराजिताम् ।।
प्रफुल्लमालतीमालासंसक्तकबरीं वराम् ।।११३।।

समूहों से जाज्वल्यमान था। विचित्र पुतलियों, पुष्पों, सरोवरों और काननों से उसकी अद्भुत शोभा हो रही थी।।९९-१०३।। मुने! वह देवों एवं दानवों के रथों से बहुत बड़ा था। विश्वकर्मा ने शंकर के प्रसन्नार्थ उसे बड़े प्रयत्न से बनाया था।।१०४।। वह पचास योजन का ऊँचा, चार योजन का चौड़ा और रति के समान सुन्दरी स्त्रियों से युक्त रति-मन्दिरों से भूषित था।।१०५।। उसमें बैठी हुई मूल प्रकृति देवी को देवताओं ने देखा, जो रत्नों के अलंकारों से भूषित और अत्यन्त तपाये सुवर्ण के सारभाग की प्रभा को चुराने वाली कान्ति से युक्त थी। उन तेजः स्वरूप अनुपम देवी के सहस्रों भुजायें थीं और उनमें भाँति-भाँति के आयुध शोभा पा रहे थे। उनके प्रसन्न मुख में मुसकराहट थी। वे भक्तों पर कृपा करने वाली थीं। उनके गण्डस्थल और कपोल उत्तम रत्नों के कुण्डलों से समुज्ज्वल थे। रत्नों के सारभाग से सुरचित एवं ध्वनिपूर्ण नूपुरों से वे शोभायमान थीं। मणीन्द्र की करधनी से उनका मध्यभाग अलंकृत था। उनके हाथों में उत्तम रत्नों के सारभाग के बने हुए केयूर और कंकण से शोभा दे रहे थे। उनका वक्षःस्थल मन्दार पुष्पों की माला से समुज्ज्वल था। उनका नितम्ब और श्रोणी भाग गठा हुआ था। स्तन उन्नत और स्थूल थे। मुख शारदीय चन्द्रमा के कान्ति को विनिन्दित करने वाला था। काजल की रेखा से युक्त नेत्र शारदीय कमल के समान थे। चन्दन, अगुरु तथा कस्तूरी द्वारा रचित चित्र-पत्रक से वे विभूषित थीं। नवीन बन्धुजीव-पुष्प के समान आभा वाले लाल-लाल ओठ से वे अधिक शोभायमान थीं। उनकी दन्तावलि मोतियों की पंक्ति की प्रभा को लूट लेती थी। विकसित मालती की माला से अलंकृत वेणी धारण करने वाली वे देवी मनोहर लग रही थीं।।१०६-११३।। गरुड़ की चोंच के समान नासिका के अग्रभाग में गजमुक्ता से वे समन्वित थीं। अग्निशुद्ध एवं अत्यन्त दीप्तिमान् वस्त्र से उद्भासित थीं। पुत्रों समेत सुप्रसन्न मन से सिंह की पीठ पर बैठी थीं।

---

[1] क. रतितल्पसमायुक्तं शो०। [2] क. °रभूषणभू°।

पक्षीन्द्रचञ्चुनासाग्रगजेन्द्रमौक्तिकान्विताम् । वह्निशुद्धांशुकेनातिज्वलितेन समुज्ज्वलाम् ॥११४॥
सिंहपृष्ठसमारूढां सुताभ्यां सहितां मुदा। अवरुह्य रथात्तूर्णं श्रीकृष्णं प्रणनाम च ॥११५॥
सुताभ्यां [1]सहिता देवी समुवास वरानना। गणेशः कार्तिकेयश्च नत्वा कृष्णं परात्परम् ॥११६॥
ननाम शंकरं धर्ममनन्तं कमलोद्भवम्। उत्तस्थुराराते देवा दृष्ट्वा तौ त्रिदशेश्वरौ ॥११७॥
आशिषं च ददुर्देवा वासयामासुरन्तिके। ताभ्यां सह सदालापं चक्रुर्देवा मुदान्विताः ॥११८॥
तस्थुर्देवा सभामध्ये देवस्य पुरतो हरेः। गोपा गोप्यश्च बहुशो बभूवुर्विस्मयाकुलाः ॥११९॥
उवाच कमलां कृष्णः स्मेराननसरोरुहः। त्वं गच्छ भीष्मकगृहं नानारत्नसमन्वितम् ॥१२०॥
वैदर्भ्या उदरे जन्म लभ देवि सनातनि। तव पाणिं ग्रहीष्यामि गत्वाऽहं कुण्डिनं सति ॥१२१॥
ता देव्यः पार्वतीं दृष्ट्वा समुत्थाय त्वरान्विताः। रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरीम् ॥१२२॥
विप्रेन्द्र पार्वतीलक्ष्मीवागधिष्ठातृदेवताः। तस्थुरेकासने तत्र संभाष्य च यथोचितम् ॥१२३॥
ताश्च संभाषयामासुः संप्रीत्या गोपकन्यकाः। ऊचुर्गोपालिकाः काश्चिन्मुदा तासां च संनिधौ ॥१२४॥
श्रीकृष्णः पार्वतीं तत्र समुवाच जगत्पतिः। देवि त्वमंशरूपेण व्रज नन्दव्रजे शुभे ॥१२५॥
उदरे च यशोदायाः कल्याणी नन्दरेतसा। लभ जन्म महामाये सृष्टिसंहारकारिणि ॥१२६॥

रथ से शीघ्र उतरकर उन्होंने श्रीकृष्ण को प्रणाम किया ॥११४-११५॥ अपने दोनों पुत्रों समेत सुमुखी देवी आसनासीन हुईं। गणेश तथा कार्तिकेय ने परात्पर श्रीकृष्ण को नमस्कार किया ॥११६॥ पश्चात् शंकर, धर्म, अनन्त और ब्रह्मा को भी प्रणाम किया। उन दोनों देवेश्वरों को देखकर सभी देव उठकर खड़े हो गये। देवों ने उन्हें शुभाशीर्वाद प्रदान कर अपने समीप बैठाया और सुप्रसन्न मन से वार्तालाप भी आरम्भ किया ॥११७-११८॥ सभा मध्य में भगवान् के सम्मुख देव लोग बैठ गये यह देखकर गोपों और गोपियों को बहुत आश्चर्य हुआ ॥११९॥ अनन्तर मुसकराते हुए श्रीकृष्ण ने लक्ष्मी से कहा—सनातनी देवी ! विविध रत्नों से परिपूर्ण राजा भीष्मक के भवन में जाओ। वहाँ वैदर्भी के उदर से जन्म ग्रहण करो। सती ! मैं कुण्डिन नगर में जाकर तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा ॥१२०-१२१॥ वे देवियाँ पार्वती को देखकर शीघ्र ही उठकर खड़ी हो गईं। उन्होंने ईश्वरी को रमणीय रत्न सिंहासन पर बैठाया ॥१२२॥ विप्रेन्द्र ! एक सिंहासन पर पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती आपस में यथोचित कुशलवार्ता पूछती हुईं एक ही आसन पर विराजमान हुईं ॥१२३॥ गोप-कन्याओं ने बड़े प्रेम से उन लोगों के साथ बातचीत की और उनके समीप में बैठ कर कुछ गोपियाँ भी हर्ष से बोलीं। जगत्पति श्रीकृष्ण ने पार्वती से कहा—देवी ! तुम अंश रूप से नन्द के शुभ व्रज में जाओ। सृष्टि का संहार करने वाली महामाया ! तुम नन्द द्वारा यशोदा के गर्भ से कल्याणी मूर्ति होकर जन्म ग्रहण करो ॥१२४-१२६॥ भूतल पर गाँव-गाँव में तुम्हारी पूजा

---

[1] क. सहसा।

Funding by IKS-MoE

ग्रामे ग्रामे च पूजां ते कारयिष्यामि भूतले। कृत्स्ने महीतले भक्त्या नगरेषु वनेषु च ॥१२७॥
तत्राधिष्ठातृदेवीं त्वां पूजयिष्यन्ति मानवाः। द्रव्यैर्नानाविधैर्दिव्यैर्बलिभिश्च मुदाऽन्विताः ॥१२८॥
त्वद्भूमिस्पर्शमात्रेण सूतिकामन्दिरे शिवे। पिता मां तत्र संस्थाप्य त्वामादाय गमिष्यति ॥१२९॥
कंसदर्शनमात्रेण गमिष्यसि शिवान्तिकम्। भारावतरणं कृत्वाऽऽगमिष्यामि स्वमाश्रमम् ॥१३०॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तूर्णमुवाच च षडाननम्। अंशरूपेण वत्स त्वं गमिष्यसि महीतलम् ॥१३१॥
जाम्बवत्याश्च गर्भे च लभ जन्म सुरेश्वर। अंशेन देवताः सर्वा गच्छन्तु धरणीतलम् ॥१३२॥
भारहारं करिष्यामि वसुधायाश्च निश्चितम्। इत्युक्त्वा राधिकानाथस्तस्थौ सिंहासने वरे ॥१३३॥
तस्थुर्देवाश्च देव्यश्च गोपा गोप्यश्च नारद। एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा समुत्तस्थौ हरेः पुरः ॥
पुटाञ्जलिर्जगत्कान्तमुवाच विनयान्वितः ॥१३४॥

ब्रह्मोवाच

अवधानं कुरु विभो किंकरस्य निवेदनम्। आज्ञां कुरु महाभाग कस्य कुत्र स्थलं भुवि ॥१३५॥
भर्ता पातोद्धारकर्ता सेवकानां प्रभुः सदा। स भृत्यः सर्वदा भक्त ईश्वराज्ञां करोति यः ॥१३६॥
के देवाः केन रूपेण देव्यश्च कलया कया। कुत्र कस्याभिधेयं च विषयं च महीतले ॥१३७॥

करवाऊँगा। समस्त भूतल पर नगरों एवं वनों में तुम्हें अधिष्ठात्री देवी के रूप में मनुष्य भक्तिपूर्वक तुम्हारी पूजा करेंगे। विविध भाँति के दिव्य पदार्थों और बलि को सप्रेम अर्पित करेंगे ॥१२७-१२८॥ शिवे! तुम ज्योंही भूमि का स्पर्श करोगी, त्यों ही मेरे पिता सूतिकागार में मुझे स्थापित कर देंगे और तुम्हें लेकर चले जायँगे ॥१२९॥ कंस को देखते ही तुम शिव के समीप चली जाओगी और मैं भी पृथ्वी का भार उतार कर अपने धाम में आ जाऊँगा ॥१३०॥ इतना कहकर भगवान् ने शीघ्र ही कार्तिकेय से भी कहा—वत्स! देवेश्वर! तुम अपने अंश-रूप से पृथिवी पर जाओ और वहाँ जाम्ववती के गर्भ से जन्म ग्रहण करो। समस्त देवगण अपने-अपने अंश से भूतल पर जन्म ग्रहण करें। मैं निश्चित ही पृथिवी का भार उतारूँगा। ऐसा कहकर राधिकानाथ सिंहासन पर बैठे। फिर देवता, देवियाँ और गोपियाँ भी बैठ गईं। इसी बीच ब्रह्मा ने भगवान् के सामने खड़े होकर हाथ जोड़े विनय-विनम्र भाव से जगत्पति से कहना आरम्भ किया ॥१३१-१३४॥।

ब्रह्मा बोले—विभो! इस सेवक का भी कुछ निवेदन सुनें। महाभाग! आप आज्ञा प्रदान करें कि भूतल पर किसके लिए कहाँ स्थान होगा। स्वामी ही सदा सेवकों का पोषक, रक्षक और उद्धारकर्ता होता है। वही सेवक सदा भक्त कहलाता है, जो प्रभु की आज्ञा का पालन करता है। पृथिवी-तल पर कौन देवता किस रूप से और कौन देवी किस कला द्वारा, कहाँ, किसके यहाँ जन्म ग्रहण करें? उनका निवास-स्थान कहाँ होगा? और नाम क्या

Funding by IKS-MoE

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच जगत्पतिः। यत्र यस्यावकाशं च कथयामि विधानतः ॥१३८॥

श्रीकृष्ण उवाच

कामदेवो रौक्मिणेयो रतिर्मायावती सती। शम्बरस्य गृहे यावच्छायारूपेण संस्थिता ॥१३९॥
त्वं तस्य पुत्रो भविता नाम्नाऽनिरुद्ध एव च। भारती शोणितपुरे बाणपुत्री भविष्यति ॥१४०॥
अनन्तो देवकीगर्भाद्रौहिणेयो जगत्पतिः। मायया गर्भसंकर्षान्नाम्ना संकर्षणः प्रभुः ॥१४१॥
कालिन्दी सूर्यतनया गङ्गांशेन महीतले। अर्धांशेनैव तुलसी लक्ष्मणा राजकन्यका ॥१४२॥
सावित्री वेदमाता च नाम्ना नाग्नजिती सती। वसुंधरा सत्यभामा शैव्या देवी सरस्वती ॥१४३॥
रोहिणी मित्रविन्दा च भविता राजकन्यका। सूर्यपत्नी रत्नमाला कलया च [1]जगत्प्रभोः ॥१४४॥
स्वाहांशेन सुशीला च रुक्मिण्याद्याः स्त्रियो नव। दुर्गांशार्धाज्जाम्बवतीं महिषीणां दश स्मृताः ॥१४५॥
अर्धांशेन शैलपुत्री यातु जाम्बवतो गृहम्। कैलासे शंकराज्ञा च बभूव पार्वतीं पुरा ॥१४६॥
केलासगामिनं विष्णुं श्वेतद्वीपनिवासिनम्। आलिङ्गनं देहि कान्ते नास्ति दोषो ममाऽऽज्ञया ॥१४७॥

होगा? ब्रह्मा की बात सुनकर जगत्पति ने उत्तर दिया—जिसके लिए जहाँ स्थान होगा, वह विधिवत् बता रहा हूँ ॥१३५-१३८॥

श्रीकृष्ण बोले—कामदेव, रुक्मिणी का पुत्र होकर जन्म ग्रहण करेगा तथा शम्बरासुर के घर में मायावती नाम से प्रसिद्ध जो सती रति छाया रूप से स्थित है, वह उसकी पत्नी होगी। तुम उसी के पुत्र होओगे और तुम्हारा नाम अनिरुद्ध होगा। भारती शोणितपुर में वाणासुर की पुत्री होगी। जगत्पति अनन्त देवकी के गर्भ से रोहिणी के गर्भ में जाकर उत्पन्न होंगे। माया द्वारा गर्भ का संकर्षण होने से उनका संकर्षण नाम होगा। भूतल पर गंगा के अंश से सूर्य-पुत्री कालिन्दी उत्पन्न होगी, अपने अर्द्धांश भाग से तुलसी राजकन्या लक्ष्मणा होकर जन्म ग्रहण करेगी। और वेद-मात सावित्री नग्नजित् की पुत्री सती सत्या के नाम से उत्पन्न होगी। सत्यभामारूप से वसुंधरा और शैव्या रूप से सरस्वती देवी उत्पन्न होंगी। रोहिणी मित्रविन्दा नामक राजकन्या होंगी। सूर्य की पत्नी संज्ञा अपनी कला द्वारा जगत्स्वामी की रत्नमाला, स्वाहा के अंश से सुशीला और रुक्मिणी आदि नौ स्त्रियाँ होंगी। दुर्गा अपने आधे अंश से जाम्बवती होंगी। ये दश पटरानियाँ वताई गई हैं। शैलपुत्री (पार्वती) आधे अंश से जाम्बवान् के घर जायँ। पूर्वकाल में कैलास पर पार्वती के लिए शंकर की आज्ञा भी हुई थी कि हे कान्ते! कैलास पर आये हुए श्वेतद्वीपनिवासी विष्णु को अपना आलिंगन प्रदान करो, मेरी आज्ञा से तुम्हें ऐसा करने से कोई दोष नहीं लगेगा ॥१३९-१४७॥

---

[1] क. 'गद्गुरोः।

ब्रह्मोवाच

कथं शिवाज्ञा तां देवीं बभूव राधिकापते। विष्णोः संभाषणे पूर्वं श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥१४८॥

श्रीभगवानुवाच

पुरा गणेशं द्रष्टुं च प्रजग्मुः सर्वदेवताः। श्वेतद्वीपात्स्वयं विष्णुर्जगाम शंकरालये ॥१४९॥
दृष्ट्वा गणेशं मुदितः समुवास सुखासने। सुखेन ददृशुः सर्वे त्रैलोक्यमोहनं वपुः ॥१५०॥
किरीटिनं कुण्डलिनं पीताम्बरधरं वरम्। सुन्दरं श्यामरूपं च नवयौवनसंयुतम् ॥१५१॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम् । रत्नालंकारशोभाढ्यं स्मेराननसरोरुहम् ॥१५२॥
रत्नसिंहासनस्थं च पार्षदैः परिवेष्टितम्। वन्दितं च सुरैः सर्वैः शिवेन पूजितं स्तुतम् ॥१५३॥
तं दृष्ट्वा पार्वती विष्णुं प्रसन्नवदनेक्षणा। मुखमाच्छादितं चक्रे वाससा व्रीडया सती ॥१५४॥
अतीव सुन्दरं रूपं दर्शं दर्शं पुनः पुनः। ददर्श मुखमाच्छाद्य निमेषरहिता सती ॥१५५॥
परमाद्भुतवेषं च सस्मिता वक्रचक्षुषा। सुखसागरसंमग्ना बभूव पुलकाञ्चिता ॥१५६॥
क्षणं ददर्श पञ्चास्यं शुभ्रवर्णं त्रिलोचनम्। [१]त्रिशूलपट्टिशधरं कन्दर्पकोटिसुन्दरम् ॥१५७॥

ब्रह्मा बोले—हे राधिकापते ! पूर्वकाल में श्वेत द्वीप निवासी विष्णु के संभाषण में पार्वती को शिव ने कैसे आज्ञा प्रदान की ? ॥१४८॥

श्री भगवान् बोले—पूर्व समय में गणेश को देखने के लिए शंकर के घर सभी देवता गये। श्वेतद्वीप से विष्णु भी गये। ॥१४९॥ गणेश को देखकर ये बहुत प्रसन्न हुए और सुखपूर्वक आसन पर बैठ गये। उस समय वहाँ के सभी लोगों ने उन (विष्णु) का जगमोहन रूप देखा, जो किरीट, कुण्डल, पीताम्बर पहने, नवयौवन सम्पन्न, श्यामल, सुन्दर रूप वाले, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, और कुंकुम द्रव से युक्त तथा रत्नों के आभूषणों से भूषित थे। उनका मुखकमल मुसकरा रहा था ॥१५०-१५२॥ वे रत्नों के सिंहासन पर विराजमान थे और पार्षदगण घेरे हुए थे। सभी देवताओं ने उनकी वन्दना की और शिव ने पूजा एवं स्तुति की ॥१५३॥ उन विष्णु को देखकर पार्वती का मुख और नेत्र प्रसन्नता से खिल उठे। तब सती ने लज्जावश वस्त्र से मुख को ढक लिया। किन्तु अत्यन्त सुन्दर रूप को वे निर्निमेष दृष्टि से देख-देखकर बार-बार मुख ढक लेती थीं, फिर परम अद्भुत स्वरूप को मुसकराती हुई वक्रदृष्टि से देखकर वे आनन्द-सागर में निमग्न हो गईं और उन्हें रोमाञ्च हो आया ॥१५४-१५६॥ क्षण में उन्होंने शिव की ओर देखा, जो पाँच मुख, धवल वर्ण, तीन नेत्र, त्रिशूल, पट्टिश (पटा नामक शस्त्र) लिए, करोड़ों काम से सुन्दर थे और

---

[१] ख. 'परिघं'

क्षणं ददर्श श्यामं तमेकास्यं च द्विलोचनम्। चतुर्भुजं पीतवस्त्रं वनमालाविभूषितम् ॥१५८॥
एकं ब्रह्म मूर्तिभेदमभेदं वा निरूपितम्। दृष्ट्वा बभूव सा माया सकामा विष्णुमायया ॥१५९॥
मदंशाश्च त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। ताभ्यामौत्कर्षपाताच्च श्रेष्ठः सर्वगुणात्मकः ॥१६०॥
दृष्ट्वा तं पार्वती भक्त्या पुलकाञ्चितविग्रहा। मनसा पूजयामास परमात्मानमीश्वरम् ॥१६१॥
दुर्गान्तराभिप्रायं च बुबुधे शंकरः स्वयम्। सर्वान्तरात्मा भगवानन्तर्यामी जगत्पतिः ॥१६२॥
दुर्गां निर्जनमाहूय तामुवाच हरः स्वयम्। बोधयामास विविधं हितं तथ्यमखण्डितम् ॥१६३॥

शंकर उवाच

निवेदनं मदीयं च निबोध शैलकन्यके। शृङ्गारं देहि भद्रं ते हरये परमात्मने ॥१६४॥
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च ब्रह्मैकं च सनातनम्। देवको भेदरहितो विषयो मूर्तिभेदकः ॥१६५॥
एका प्रकृतिः सर्वेषां माता त्वं सर्वरूपिणी। स्वयंभूरसि वाणी त्वं लक्ष्मीर्नारायणोरसि ॥१६६॥
मम वक्षसि दुर्गा त्वं निबोधाऽऽध्यात्मिकं सति। शिवस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच सुरेश्वरी ॥१६७॥

पार्वत्युवाच

दीनबन्धो कृपासिन्धो तव मामकृपा कथम्। सुचिरं तपसा लब्धो नाथस्त्वं जगतां मया ॥१६८॥

क्षण में पुनः विष्णु की ओर देखा जो श्यामल वर्ण, एक मुख, दो नेत्र, चार भुजाएँ, पीताम्बर और वनमाला से विभूषित हो रहे थे। देखकर मन में सोचने लगीं—ब्रह्म तो एक ही हैं, पर, मूर्ति-भेद या अभेद का निरूपण किया गया है। इस प्रकार विष्णु-माया द्वारा माया (पार्वती) की काम भावना जाग उठी ॥१५७-१५९॥ यद्यपि मेरे ही अंश से ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ये तीनों देव उत्पन्न हैं, तथापि उन दोनों से सत्त्व गुण प्रधान (विष्णु) हैं ॥१६०॥ पार्वती उन्हें देख कर पुलकित हो उठीं, और भक्तिपूर्वक मन से परमात्मा ईश्वर की पूजा की ॥१६१॥ परन्तु दुर्गा के भीतरी भाव को सब के अन्तरतम अन्तर्यामी भगवान् और जगत् के पति शंकर जी स्वयं समझ गये ॥१६२॥ अनन्तर शिव ने दुर्गा को एकान्त स्थान में बुला कर हितकर, तथ्य और अखण्डनीय बातें विविध प्रकार से समझायीं ॥१६३॥

शंकर बोले—हे पर्वत पुत्रि! मेरा कुछ निवेदन है, सुनो! परमात्मा विष्णु को रतिदान प्रदान करो, क्योंकि मैं, ब्रह्मा और विष्णु ये तीनों एक सनातन ब्रह्म हैं। देवता भेद रहित होता है और विषय मूर्तियों का भेद कराने वाला होता है। सब की प्रकृति एक होती है, तुम सब रूपों वाली माता हो। तुम ब्रह्मा के वक्षः स्थल पर सरस्वती, नारायण के उर पर लक्ष्मी और मेरे वक्ष पर दुर्गा हो। हे सती! आध्यात्मिक बात सुनो। शिव की बात सुन कर सुरेश्वरी पार्वती ने कहा ॥१६४-१६७॥

पार्वती बोलीं—हे दीनबन्धो! तुम कृपासागर हो, किन्तु किन्तु मुझ पर यह अकृपा कैसी? क्योंकि मैंने अतिचिरकाल तक तप करके तुम जगत्स्वामी को पति रूप में प्राप्त किया है। हे नाथ! अतः मुझ दासी का त्याग

मादृशीं किंकरीं नाथ न परित्यक्तुमर्हसि। अयोग्यमीदृशं वाक्यं मा मा वद महेश्वर ॥१६९॥
तव वाक्यं महादेव करिष्याम्येव पालनम्। देहान्तरे जन्म लब्ध्वा भजिष्यामि हरिं हर ॥१७०॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा विरराम महेश्वरः। उच्चैर्जहासाभयदः पार्वत्यै चाभयं ददौ ॥१७१॥
तत्प्रतिज्ञापालनाय पार्वती जाम्बवद्गृहे। लभिष्यति जनुर्धातर्नाम्ना जाम्बवती सती ॥१७२॥

ब्रह्मोवाच

भूमौ कतिविधे भूपे संस्थिते पार्वती कथम्। ललाभ भारते जन्म निन्दिते भल्लुके गृहे ॥१७३॥

श्रीकृष्ण उवाच

रामावतारे त्रेतायां देवांशाश्च ययुर्महीम्। हिमालयांशो भल्लूको जाम्बवान्नाम किंकरः ॥१७४॥
रामस्य वरदानेन चिरंजीवी श्रिया युतः। कोटिसिंहबलाधानं विधत्ते च महाबलः ॥१७५॥
पितुरंशगृहे दुर्गा जगामांशेन भूतलम्। पूर्वं[१] पूर्वस्य वृत्तान्तं कथितं शृणु मन्मुखात् ॥१७६॥
सर्वेषां च सुराणां वै वंशा गच्छन्तु भूतलम्। नृपपुत्रा मत्सहाया भविष्यन्ति रणे विधे ॥१७७॥
कमलाकलया सर्वा भवन्तु नृपकन्यकाः। मन्महिष्यो भविष्यन्ति सहस्राणां च षोडश ॥१७८॥

न करें। हे महेश्वर! ऐसी अयोग्य बातें मुझसे कभी न कहें ॥१६८-१६९॥ हे महादेव! हे हर! आपकी आज्ञा का पालन मैं करूँगी, किन्तु दूसरे जन्म में जन्म धारण कर विष्णु की सेवा करूँगी ॥१७०॥ इतना सुनकर महेश्वर चुप हो गए। अनन्तर अभयप्रद शिव ने बड़े ऊँचे स्वर से हँस कर पार्वती को अभय दान दिया। हे ब्रह्मन्! उसी प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए पार्वती जाम्बवान् के घर सती जाम्बवती होकर उत्पन्न होंगी ॥१७१-१७२॥

ब्रह्मा बोले—भूतल पर अनेक भाँति के राजाओं के रहते हुए पार्वती ने भारत में निन्दित भालू के घर क्यों जन्म ग्रहण किया? ॥१७३॥

श्रीकृष्ण बोले—त्रेतायुग में रामावतार के समय सभी देवों ने भूतल पर अपने-अपने अंश से जन्म ग्रहण किया था, उसी में हिमालय के अंश से जाम्बवान् नामक मेरा सेवक उत्पन्न हुआ था, जो राम के वरदान द्वारा चिरजीवी, श्रीसम्पन्न, महाबली एवं करोड़ों सिंह का बल धारक था ॥१७४-१७५॥ तब पार्वती पिता के आंशिक गृह में एक अंश से पृथ्वी पर गईं। इस प्रकार अब मेरे मुख से कहे गए पूर्व का वृत्तान्त सुनो ॥१७६॥ समस्त देवों के अंश भूतल पर जायँ। ब्रह्मन्! वे राजकुमार होकर रण में मेरे सहायक बनेंगे ॥१७७॥ कमला की कला से समस्त राजकन्यायें उत्पन्न होंगी, वे सब-की-सब मेरी सोलह हजार स्त्रियाँ होंगी ॥१७८॥ ये धर्मदेव अपने अंश से

---

[१] क. एवं पू°।

वह्नि और हुताशन में अन्तर ?

धर्मोऽयमंशरूपेण पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः । वायोरंशाद्भीमसेनः स वज्री ह्यर्जुनः स्वयम् ॥१७९॥
नकुलः सहदेवश्च स्ववैद्यांशसमुद्भवौ। सूर्यांशः कर्णवीरश्च विदुरः स यमः स्वयम् ॥१८०॥
दुर्योधनः कलेरंशः समुद्रांशश्च शंतनुः। अश्वत्थामा शंकरांशो द्रोणो वह्न्यंशसंभवतः ॥१८१॥
हुताशनांशो भगवान्धृष्टद्युम्नो महाबलः। चन्द्रांशोऽप्यभिमन्युश्च भीष्मश्चैव वसूद्भवः ॥१८२॥
वसुदेवः कश्यपांशोऽप्यदित्यंशा च देवकी। वस्वंशो नन्दगोपश्च यशोदा वसुकामिनी ॥१८३॥
द्रौपदी कमलांशा च यज्ञकुण्डसमुद्भवा। सुभद्रा शतरूपांशा देवकीगर्भसंभवः ॥१८४॥
देवा गच्छन्तु पृथिवीमंशेन मारहारकाः। कलया देवपत्न्यश्च गच्छन्तु पृथिवीतलम् ॥१८५॥
इत्येवमुक्त्वा भगवान्विरराम च नारद। सर्वं विवरणं श्रुत्वा तत्रोवास प्रजापतिः ॥१८६॥
कृष्णस्य वामे वाग्देवी दक्षिणे कमलालया। पुरतो देवताः सर्वाः पार्वती चापि नारद ॥१८७॥
गोप्यो गोपाश्च परितो राधा वक्षःस्थलस्थिता। एतस्मिन्नन्तरे सा च तमुवाच व्रजेश्वरी ॥१८८॥

राधिकोवाच

शृणु नाथ प्रवक्ष्यामि किंकरीवचनं प्रभो। प्राणा दहन्ति सततमान्दोलयति मे मनः ॥१८९॥
चक्षुर्निमीलनं कर्तुमशक्ता तव दर्शने। त्वया विना कथं नाथ यास्यामि धरणीतलम् ॥१९०॥

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर होंगे, वायु के अंश से भीमसेन, इन्द्र के अंश से अर्जुन, स्वर्ग के वैद्य अश्विनी-कुमार के अंश से और नकुल-सहदेव का प्रादुर्भाव होगा। सूर्य के अंश से वीर, कर्ण और स्वयं यम विदुर होंगे ॥१७९-१८०॥ कलि के अंश से दुर्योधन, समुद्र के अंश से शन्तनु, शंकर के अंश से अश्वत्थामा और अग्नि के अंश से द्रोण की उत्पत्ति होगी। हुताशन के अंश से महावली भगवान् धृष्टद्युम्न, चन्द्रमा के अंश से अभिमन्यु, वसु के अंश से भीष्म. कश्यप के अंश से वसुदेव. दिति के अंश से देवकी वसु के अंश से नन्दगोप और वसु की स्त्री यशोदा होंगी ॥१८१-१८३॥ कमला के अंश से यज्ञकुण्ड द्वारा द्रौपदी, देवकी के गर्भ से और शतरूपा के अंश से सुभद्रा उत्पन्न होंगी ॥१८४॥ इस प्रकार पृथिवी का भार उतारने के लिए देव लोग और देवियाँ अपने-अपने अंश से पृथिवी पर अवतीर्ण हों ॥१८५॥ हे नारद ! इतना कह कर भगवान् चुप हो गये। यह सब विवरण सुन कर प्रजापति ब्रह्मा वहाँ अपने स्थान पर जा बैठे ॥१८६॥ हे नारद ! भगवान् श्रीकृष्ण के वायें भाग में सरस्वती थीं, दाहिने भाग में लक्ष्मी थीं, सामने सभी देवगण और पार्वती थीं ॥१८७॥ चारों ओर गोप-गोपियाँ एवं उनके वक्षःस्थल में राधिका विराजमान थीं। इसी बीच व्रजेश्वरी राधा ने भगवान् से कहा ॥१८८॥

राधिका बोलीं—हे नाथ ! हे प्रभो ! मुझ किंकरी की भी कुछ सुनने की कृपा करें—हे नाथ ! मेरे प्राण निरन्तर जल रहे हैं, मन आकुल हो रहा है, आपके दर्शन करते समय मैं आँख बंद करने या पलक मारने में भी असमर्थ हो जाती हूँ। आपके बिना भूतल पर (अकेली) कैसे जाऊँगी ? ॥१८९-१९०॥ प्राणेश्वर ! सत्य बताइए

Funding by IKS-MoE

कियत्कालान्तरेणैव मेलनं मे त्वया सह। प्राणेश्वर ब्रूहि सत्यं भविष्यत्येव गोकुले ॥१९१॥
निमेषं च युगशतं भविता मे त्वया विना। कं द्रक्ष्यामि क्व यास्यामि को वा मां पालयिष्यति ॥१९२॥
मातरं पितरं बन्धुं भ्रातरं भगिनीं सुतम्। त्वया विनाऽहं प्राणेश चिन्तयामि न कंचन ॥१९३॥
करोषि मायया छन्नां मां चेन्मायेश भूतले। विस्मृतां विभवं दत्त्वा सत्यं मे शपथं कुरु ॥१९४॥
अनुक्षणं मम मनोमधुपो मधुसूदन। करोतु भ्रमणं नित्यं समाध्वीक पदाम्बुज ॥१९५॥
यत्र यत्र च यस्यां वा योनौ जन्म भवत्विदम्। त्वं स्वस्य स्मरणं दास्यं मह्यं दास्यसि वाञ्छितम् ॥१९६॥
कृष्णस्त्वं राधिकाऽहं च प्रेमसौभाग्यमावयोः। न विस्मरामि भूमौ च देहि मह्यं वरं परम् ॥१९७॥
यथा तन्वा सह प्राणाः शरीरं छायया सह। तथाऽऽवयोर्जन्म यातु देहि मह्यं वरं विभो ॥१९८॥
चक्षुर्निमेषविच्छेदो भविता नाऽऽवयोर्भुवि। तत्राऽऽगत्यापि कुत्रापि देहि मह्यं वर प्रभो ॥१९९॥
मम प्राणैस्तव तनुः केन वा करुणा हरे। आत्मना मुरलीपादौ मनसा वा विनिर्मितौ ॥२००॥
स्त्रियः कतिविधाः सन्ति पुरुषा वा पुरुष्टुतः। नास्ति कुत्रापि कान्ता वा कान्त्या शक्त्या च मादृशी ॥२०१॥
तव देहार्धभागेन केन वाऽहं विनिर्मिता। अयमेवाऽऽवयोर्भेदो नास्त्यतस्त्वयि मे मनः ॥२०२॥
ममाऽऽत्मा मानसं प्राणास्त्वयि संस्थापिता यथा। तवाऽऽत्ममानसप्राणा मयि वा संस्थितास्तथा ॥२०३॥

कि—गोकुल में कितने समय के उपरान्त हमारा-तुम्हारा मिलन होगा ॥१९१॥ तुम्हारे बिना एक पल भी मुझे सौ युग के समान प्रतीत होता है। वहाँ मैं किसे देखूंगी ? कहाँ जाऊँगी ? और मेरा कौन पालन करेगा ? ॥१९२॥ प्राणेश ! तुम्हारे बिना मैं माता, पिता, बन्धु, भ्राता, भगिनी और पुत्र आदि किसी की भी चिंता नहीं करती हूँ ॥१९३॥ मायापते ! यदि भूतल पर मुझे भेज कर (ऐश्वर्य) देकर माया से आच्छन्न कर के भुलाना चाहते हो, तो मेरे समक्ष प्रतिज्ञा करो । मधुसूदन ! मेरा मन रूपी भौंरा प्रतिक्षण तुम्हारे मधुपूर्ण चरण-कमल में नित्य भ्रमण करता रहे। जहाँ-जहाँ जिस-जिस योनि में मेरा जन्म हो, वहाँ-वहाँ तुम मुझे अपना स्मरण और अभीष्ट दास्यभाव प्रदान करोगे ॥१९४-१९६॥ तथा तुम कृष्ण हो और मैं राधिका हूँ एवं हम दोनों का प्रेम सौभाग्य पृथिवी पर जाने पर भी मुझे विस्मृत न हो, इसके लिए भी मुझे वर प्रदान करो ॥१९७॥ विभो ! जिस प्रकार शरीर के साथ प्राण और छाया के साथ शरीर रहता है उसी प्रकार हम दोनों का (साथ-साथ) जन्म हो, यह वर मुझे प्रदान करो ॥१९८॥ प्रभो ! भूतल पर पहुँचने पर कहीं भी हम दोनों का पलक मात्र भी वियोग न हो, यह भी मुझे वर प्रदान करो ॥१९९॥ हरे ! मेरे प्राणों द्वारा तुम्हारा शरीर बना है, मेरे शरीर से मुरली और मेरे मन से तुम्हारे चरणों का निर्माण हुआ है। (संसार में) कितने ही ऐसे स्त्री-पुरुष हैं, जो एक दूसरे की स्तुति करते हैं, परन्तु कहीं भी कान्ति और शक्ति में मुझ जैसी प्रिया नहीं है ॥२००-२०१॥ तुम्हारी देह के आधे भाग से किसने मेरा निर्माण किया है ? यही हम दोनों में भेद नहीं है। अतः मेरा मन तुममें लगा रहता है ॥२०२॥ मेरी आत्मा, मन और प्राण जिस प्रकार तुममें नित्य लगे रहते हैं उसी भाँति तुम्हारा भी मन, प्राण और आत्मा मुझमें लगे रहते हैं ॥२०३॥

अतो निमेषविरहादात्मनोर्विक्लवं मनः। प्रदग्धं सततं प्राणा दहन्ति विरहश्रुतौ ।।२०४।।
इत्येवमुक्त्वा सा देवी तत्रैव सुरसंसदि। भूयो भूयो रुरोदोच्चैर्धृत्वा तच्चरणाम्बुजम् ।।२०५।।
कोडे कृत्वा तु तां कृष्णो मुखं संमृज्य वाससा। बोधयामास विविधं सत्यं तथ्यं हितं वचः ।।२०६।।
आध्यात्मिकं परं योगं शोकच्छेदन[1]कारकम्। शृणु देवि प्रवक्ष्यामि योगीन्द्राणां च दुर्लभम् ।।२०७।।
आधाराधेययोः सर्वं ब्रह्माण्डं पश्य सुन्दरि। आधारव्यतिरेकेण नास्त्याधेयस्य संभवः ।।२०८।।
फलाधारं च पुष्पं च पुष्पाधारं च पल्लवम्। स्कन्धश्च पल्लवाधारः स्कन्धाधारस्तरुः स्वयम् ।।२०९।।
वृक्षाधारोऽप्यङ्कुरश्च जीवशक्तिसमन्वितः। अष्टिरेकाऽङ्कुराधारश्चाष्टयाधारो वसुंधरा ।।२१०।।
शेषो वसुंधराधारः शेषाधारो हि कच्छपः। वायुश्च कच्छपाधारो वाय्वाधारोऽहमेव च ।।२११।।
ममाऽऽधारस्वरूपा त्वं त्वयि तिष्ठामि सांप्रतम्। त्वं च शक्तिसमूहा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ।।२१२।।
त्वं शरीरस्वरूपाऽसि त्रिगुणाधाररूपिणी। तवाऽऽत्माऽहं निरीहश्च चेष्टावांश्च त्वया सह ।।२१३।।
पुरुषाद्वीर्यमुत्पन्नं वीर्यात्संततिरेव च। तयोराधाररूपा च कामिनी प्रकृतेः कला ।।२१४।।
विना देहेन क्वाऽऽत्मा च क्व शरीरं विनाऽऽत्मना। प्राधान्यं च[2]तयोर्देवि विना त्वाद्यां कुतो भवः ।।२१५।।

इसीलिए एक पल के वियोग होने पर भी मेरा मन आकुल होने लगता है, वियोग सुनते ही प्राण सन्तप्त होने लगते हैं।।२०४।। उस देव-सभा में इतना कहकर राधिका देवी भगवान् का चरण-कमल पकड़कर ऊँचे स्वर से बार-बार रोदन करने लगीं ।।२०५।। अनन्तर भगवान् कृष्ण ने उन्हें अपने अंक में बैठाकर वस्त्र से उनका मुख पोंछा और विविध भाँति की हित, सत्य और तथ्य बातें कहकर उन्हें समझाया ।।२०६।।

श्रीकृष्ण बोले—देवि! मैं तुम्हें परम श्रेष्ठ आध्यात्मिक योग बता रहा हूँ, जो शोक का नाशक और योगीन्द्रों के लिए भी दुर्लभ है, सुनो ।।२०७।। सुन्दरि! समस्त ब्रह्माण्ड आधार-आधेय के रूप में विभक्त है। इनमें भी आधार से पृथक् आधेय का होना सम्भव नहीं है ।।२०८।। जैसे फल का आधार पुष्प है, पुष्प का आधार पल्लव, पल्लव का आधार तना और उसका आधार स्वयं वृक्ष है ।।२०९।। वृक्ष का आधार अंकुर है, जो जीवशक्ति-सम्पन्न रहता है। अंकुर का आधार बीज है, बीज का आधार पृथिवी है, वसुन्धरा का आधार शेष नाग है, शेष का आधार कच्छप, कच्छप का आधार वायु और वायु का आधार मैं हूँ। मेरा आधार तुम हो, क्योंकि मैं सदा तुम्हीं में स्थित रहता हूँ। तुम शक्ति-समूह और मूल प्रकृति ईश्वरी हो। शरीररूपिणी तथा त्रिगुणाधारस्वरूपिणी भी तुम्हीं हो। मैं तुम्हारा आत्मा निरीह हूँ और तुम्हारे सम्पर्क से चेष्टावान् होता हूँ ।।२१०-२१३।। पुरुष से वीर्य उत्पन्न होता है, वीर्य से सन्तान उत्पन्न होती है और उन दोनों की आधाररूपिणी स्त्री प्रकृति की कला है ।।२१४।। बिना देह के आत्मा और आत्मा के बिना शरीर कहाँ हो सकता है? देवि! यद्यपि उन दोनों की प्रधानता है। तथापि बिना दो के संसार कैसे

---

[1] क. °नकर्तनम्। [2] क. द्वयो°।

Funding by IKS-MoE

न कुत्राप्याऽऽवयोर्भेदो राधे संसारबीजयोः। यत्राऽऽत्मा तत्र देहं च न भेदो विनयेन किम् ॥२१६॥
यथा क्षीरे च धावल्यं दाहिका च हुताशने। भूमौ गन्धो जले शैत्यं तथा त्वयि मयि स्थितिः ॥२१७॥
धावल्यदुग्धयोरैक्यं दाहिकानलयोर्यथा। भूगन्धजलशैत्यानां नास्ति भेदस्तथाऽऽवयोः ॥२१८॥
मया विना त्वं निर्जीवा चादृश्योऽहं त्वया विना। त्वया विना भवं कर्तुं नालं सुन्दरि निश्चितम्॥२१९॥
विना मृदा घटं कर्तुं यथा नालं कुलालकः। विना स्वर्णं स्वर्णकारोऽलंकारं कर्तुमक्षमः ॥२२०॥
स्वयमात्मा यथा नित्यस्तथा त्वं प्रकृतिः स्वयम्। सर्वशक्तिसमायुक्ता सर्वाधारा सनातनी ॥२२१॥
मम प्राणसमा लक्ष्मीर्वाणी च सर्वमङ्गला। ब्रह्मेशानन्तधर्माश्च त्वं मे प्राणाधिका प्रिया ॥२२२॥
समीपस्था इमे सर्वे सुरा देव्यश्च राधिके। एभ्योऽप्यधिका नो चेत्कथं वक्षःस्थलस्थिता ॥२२३॥
त्यजाश्रुमोक्षणं राधे भ्रान्तिं च निष्फलां सति। विहाय शंकां निशंकं वृषभानुगृहं व्रज ॥२२४॥
कलावत्याश्च जठरे मासानां नव सुन्दरि। वायुना पूरयित्वा च गर्भं रोधय मायया ॥२२५॥
दशमे समनुप्राप्ते त्वमाविर्भव भूतले। स्वात्मरूपं परित्यज्य शिशुरूपं विधाय च॥२२६॥
वायुनिःसारणे काले कलावत्याः समीपतः। भूमौ विवसनीभूय पतित्वा रोदिषि ध्रुवम् ॥२२७॥

चल सकता है ? ॥२१५॥ राधे ! संसार के बीजरूप हम दोनों में कहीं भेद नहीं है। जहाँ आत्मा है वहाँ देह है। वे दोनों एक दूसरे से अलग नहीं हैं। जिस प्रकार दूध में धवलता, अग्नि में दाहिका शक्ति, भूमि में गन्ध और जल में शीतलता है, उसी भाँति हम तुममें हैं। जिस भाँति धवलता और दुग्ध में, दाहिका शक्ति और अग्नि में, पृथिवी और गन्ध में तथा जल और शीतलता में ऐक्य (भेदाभाव) है उसी प्रकार हम दोनों में भेद नहीं है ॥२१६-२१८॥ सुन्दरि ! मेरे बिना तुम निर्जीव-सी हो जाती हो और मैं तुम्हारे बिना अदृश्य रहता हूँ तथा यह भी निश्चत है कि तुम्हारे बिना मैं कभी भी सृष्टि करने में समर्थ नहीं होता हूँ ॥२१९॥ जैसे कुम्हार बिना मिट्टी के घड़ा बनाने में और सोनार सुवर्ण के बिना आभूषण बनाने में असमर्थ रहता है उसी प्रकार तुम्हारे बिना मैं असमर्थ हूँ ॥२२०॥ जिस प्रकार आत्मा स्वयं नित्य है उसी भाँति तुम प्रकृति नित्य हो। तुम समस्त शक्ति सम्पन्न, सबकी आधारभूता एवं सनातनी हो ॥२२१॥ लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, ब्रह्मा, शिव, शेषनाग और धर्म—ये सब मेरे प्राणों के समान हैं, परन्तु तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो ॥२२२॥ राधिके ! ये सभी देव और देवियाँ मेरे समीप रहती हैं, किन्तु तुम इन सबसे अधिक प्रिय न होती तो मेरे वक्षःस्थल पर कैसे विराजमान हो सकती थीं ? ॥२२३॥ अतः राधे ! अश्रुपात करना बन्द करो और इस प्रकार का मिथ्या भ्रम भी छोड़ दो। निःशंक होकर वृषभानु के घर जाओ ॥२२४॥ सुन्दरि ! वहाँ पहुँच कर कलावती के उदर में नव मास तक गर्भ को वायु द्वारा पूर्ण कर उसे अपनी माया से रोके रहो ॥२२५॥ दसवें मास के आरम्भ में तुम वहाँ अपने रूप को त्याग कर शिशु का रूप धारण कर प्रकट हो जाओ ॥२२६॥ गर्भ से वायु के निकलने के समय तुम कलावती के समीप वस्त्ररहित होकर शिशुरूप

अयोनिसंभवा त्वं च भविता गोकुले सति। अयोनिसंभवोऽहं च नाऽऽवयोर्गर्भसंस्थितिः ॥२२८॥
भूमिसंस्पृष्टमात्रं मां गोकुले प्रापयिष्यति। तव हेतोर्गमिष्यामि कृत्वा कंसभयं छलम् ॥२२९॥
यशोदामन्दिरे मां च सानन्दं नन्दनन्दनम्। नित्यं द्रक्ष्यसि कल्याणि ममाऽऽश्लेषणपूर्वकम् ॥२३०॥
स्मृतिस्ते भविता काले वरेण मम राधिके। स्वच्छन्दं विहरिष्यामि नित्यं वृन्दावने वने ॥२३१॥
त्रिःसप्तशतकोटीभिर्गोपीभिर्गोकुलं व्रज । त्रयस्त्रिंशद्वयस्याभिः सुशीलादिभिरेव च ॥२३२॥
संस्थाप्य संख्यारहिता गोपीर्गोकुल एव च। ता आश्वास्य प्रबोधैश्च मितया च सुधागिरा ॥२३३॥
अहं गोपालसुहृदः संस्थाप्यात्रैव राधिके। वसुदेवाश्रमं पश्चाद्यास्यामि मथुरां पुरीम् ॥२३४॥
व्रजं व्रजन्तु क्रीडार्थं मम सङ्गे प्रियात्प्रियाः। बल्लवानां गृहे जन्म लभन्तां गोपकोटयः ॥२३५॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो विरराम च नारद। ऊषुर्देवाश्च देव्यश्च गोपा गोप्यश्च तत्र वै ॥२३६॥
ब्रह्मेशशेषधर्माश्च श्रीकृष्णं तं परात्परम्। शिवापद्मासरस्वत्यस्तुष्टुवुः परया मुदा ॥२३७॥
भक्त्या गोपाश्च गोप्यश्च विरहज्वरकातराः। तत्र संस्तूय श्रीकृष्णं प्रणेमुः प्रेमविह्वलाः ॥२३८॥
प्राणाधिकं प्रियं कान्तं राधापूर्णमनोरथम्[1] । परितुष्टोऽभवद्भक्त्या विरहज्वरकातराम् ॥२३९॥

में गिर कर अवश्य रोना ॥२२७॥ सती ! तुम गोकुल में अयोनिजा रूप से प्रकट होओगी। मैं भी अयोनिज रूप से ही प्रकट होऊँगा। हम दोनों की गर्भ में स्थिति संभव नहीं है ॥२२८॥ भूमि पर अवतीर्ण होते ही पिता जी मुझे गोकुल पहुँचा देंगे। कंस-भय के व्याज से मैं तुम्हारे लिए वहाँ (गोकुल) अवश्य जाऊँगा ॥२२९॥ कल्याणि ! वहाँ यशोदा के भवन में मुझे नन्द-नन्दन के रूप में नित्य सानन्द देखोगी और मिलती भी रहोगी ॥२३०॥ राधिके ! मेरे वरदान द्वारा तुम्हें समय पर मेरी स्मृति होगी और मैं तुम्हारे साथ वृन्दावन में नित्य स्वच्छन्द विहार करूँगे ॥२३१॥ अतः सुशीला आदि अपनी तैंतीस सखियों और इक्कीस सौ करोड़ गोपियों के साथ तुम गोकुल को पधारो। गोकुल में उन असंख्य गोपियों को रख कर अपनी मित और अमृतमय वाणी द्वारा उन्हें समझा-बुझाकर आश्वासन देते रहना ॥२३२-२३३॥ राधिके ! हम भी अपने मित्र गोपालों को यहीं (गोकुल में) रखकर पश्चात् मथुरापुरी में वसुदेव के घर चले जायँगे ॥२३४॥ मेरे प्रिय-से-प्रिय गोप मेरे साथ क्रीड़ा के लिए व्रज में चलें और वहाँ गोपों के घर में करोड़ों गोप जन्म ग्रहण करें ॥२३५॥ नारद ! इतना कह कर भगवान् श्रीकृष्ण चुप हो गए और अनन्तर देव-देवियाँ, गोप और गोपियाँ भी वहीं ठहर गईं ॥२३६॥ ब्रह्मा, शिव, शेष, धर्म , पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती ने अत्यन्त प्रसन्नता से परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की ॥२३७॥ वियोग-दुःख से दुःखी होकर गोपियाँ और गोप भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करके प्रेमविभोर होते हुए उन्हें प्रणाम करने लगे ॥२३८॥ प्राणाधिक प्रिय एवं पूर्णमनोरथ वाले पति श्रीकृष्ण का राधा ने भी स्तवन किया। उससे सन्तुष्ट होकर स्वयं हरि ने विरहज्वर

---

[1] क. °रथाः। परितुष्टाव भक्त्या च वि° ।

Funding by IKS-MoE

साश्रुपूर्णातिदीनां च दृष्ट्वा राधां भयाकुलाम् । प्रबोधवचनं [1]सत्यमुवाच तां हरिः स्वयम् ॥२४०॥

श्रीकृष्ण उवाच

प्राणाधिके महादेवि स्थिरा भव भयं त्यज । यथा त्वं च तथाऽहं च का चिन्ता ते मयि स्थिते ॥२४१॥
किं तु ते कथयिष्यामि किंचिदेवास्त्यमङ्गलम् । वर्षाणां शतकं पूर्णं त्वद्विच्छेदो मया सह ॥२४२॥
श्रीदामशापजन्येन कर्मभोगेन सुन्दरि । भविष्यत्येष मम च मथुरागमनं ततः ॥२४३॥
तत्र भारावतरणं पित्रोर्बन्धनमोचनम् । मालाकारतन्तुवायकुब्जिकानां च मोक्षणम् ॥२४४॥
घातयित्वा च यवनं मुचुकुन्दस्य मोक्षणम् । द्वारकायाश्च निर्माणं राजसूयस्य दर्शनम् ॥२४५॥
उद्वाहं राजकन्यानां सहस्राणां च षोडश । दशाधिकशतस्यापि शत्रूणां दमनं तथा ॥२४६॥
मित्रोपकरणं चैव वाराणस्याश्च दाहनम् । हरस्य जृम्भणं तत्र बाणस्य भुजकृन्तनम् ॥२४७॥
पारिजातस्य हरणं यद्यत्कर्माणि तानि च । गमनं तीर्थयात्राणां मुनिसंघप्रदर्शनम् ॥२४८॥
संभाषणं च बन्धूनां यज्ञसंपादनं पितुः । शुभक्षणे पुनस्तत्र त्वया सार्धं प्रदर्शनम् ॥२४९॥
करिष्यामि च तत्रैव गोपिकानां च दर्शनम् ॥
तुभ्यमाध्यात्मिकं दत्त्वा पुनः सत्यं त्वया सह । दिवानिशमविच्छेदो मया सार्धमतःपरम् ॥२५०॥
भविष्यति त्वया सार्धं पुनरागमनं व्रजे । कान्ते विच्छेदसमये वर्षाणां शतके सति ॥२५१॥

से कातर, आँसुओं से भरी हुई, अत्यन्त दीन और भय से व्याकुल राधा को सान्त्वना की सत्य बात कही ॥२३९-२४०॥

श्रीकृष्ण बोले—महादेवि ! तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो, अतः स्वस्थ रहो, भय छोड़ दो। जिस प्रकार तुम हो, वैसा ही मैं भी हूँ, अतः मेरे रहते तुम्हें क्या चिंता है ? ॥२४१॥ हाँ, एक बात तुमसे कह रहा हूँ, जो कुछ अशुभ अवश्य है—'सौ वर्ष तक हमारा-तुम्हारा वियोग रहेगा।' सुन्दरि ! श्रीदामा के शापवश ऐसा होगा। तब मैं मथुरा चला जाऊँगा ॥२४२-२४३॥ वहाँ रहकर पृथ्वी का भार उतारेंगे, पिता-माता को बन्धन से मुक्त करेंगे। एवं माली, दरजी तथा कुबड़ी का मोक्ष, यवन का वध कराकर मुचुकुन्द का मोक्ष और द्वारकापुरी का निर्माण करके (युधिष्ठिर का) राजसूय यज्ञ देखेंगे। सोलह हजार राजकुमारियों के साथ विवाह, एक सौ दस शत्रुओं का दमन, मित्र (सुदामा) का उपकार, वाराणसी नगरी का दहन, शंकर का स्तम्भन, बाणासुर की भुजाओं का छेदन, पारिजात का हरण, तथा और अन्य कार्यों को सुसम्पन्न करते हुए तीर्थयात्रा करेंगे। उसमें मुनिवृन्दों के दर्शन, बन्धुओं से बातचीत और पिता के यज्ञ का सम्पादन करके पुनः शुभ मुहूर्त में तुम्हारे साथ मिलन तथा गोपियों के साक्षात्कार आदि कार्य मुझे करने हैं ॥२४४-२४९॥ अनन्तर तुम्हें आध्यात्मिक सत्य ज्ञान प्रदान कर अपने साथ सदैव रखूंगा, तब रातदिन मेरे साथ रहना कभी भी वियोग नहीं होगा ॥२५०॥ पुनः तुम्हारे साथ मैं व्रज आऊँगा। प्रिये ! उस सौ वर्ष के वियोग-दिन में हमारा-तुम्हारा मिलन नित्य स्वप्न में हुआ करेगा। तुमसे बिछुड़कर द्वारका में जाने पर मेरे नारायणांश के द्वारा सौ वर्षों के बीच होने वाले कार्य सम्पादित होंगे, यह निश्चित है। अनन्तर पुनः

---

[1] ख. श्रुत्य° ।

नित्यं संमीलनं स्वप्ने भविष्यति त्वया सह। मम नारायणांशो यस्तस्य यानं च द्वारकाम् ॥२५२॥
शतवर्षान्तरे साध्यमेतदेव सुनिश्चितम्। भविष्यति पुनस्तत्र वने रासस्त्वया सह ॥२५३॥
पुनः पित्रोश्च गोपीनां शोकसंमार्जनं परम्। कृत्वा भारावतरणं पुनरागमनं मम ॥२५४॥
त्वया सहापि गोलोकं गोपैर्गोपीभिरेव च। मम नारायणांशस्य वाण्या च पद्मया सह ॥२५५॥
वैकुण्ठगमनं राधे नित्यस्य परमात्मनः। श्वेतद्वीपं धर्मगेहमंशानां च भविष्यति ॥२५६॥
देवानां चैव देवीनामंशा यास्यन्ति स्वक्षयम्। पुनः संस्थितिरत्रैव गोलोके मे त्वया सह ॥२५७॥
इत्येवं कथितं सर्वं भविष्यं च शुभाशुभम्। मया निरूपितं यत्तत्कान्ते केन निवार्यते ॥२५८॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णः कृत्वा राधां स्ववक्षसि। तस्थौ तस्थुः सुराः सर्वे सुरपत्न्यश्च विस्मिताः ॥२५९॥
उवाच श्रीहरिर्देवान्देवीं च समयोचितम्। देवा गच्छत कार्यार्थं स्वालयं विषयोचितम् ॥२६०॥
गच्छ पार्वति कैलासं सुताभ्यां स्वामिना सह। मया नियोजितं कर्म सर्वं काले भविष्यति ॥२६१॥
भविता कलया जन्म सर्वेषां च व्रजेश्वरि। क्षुद्राणां चैव महतां देवं लम्बोदरं विना ॥२६२॥
प्रणम्य श्रीहरिं देवाः स्वालयं प्रययुर्मुदा। लक्ष्मीं सरस्वतीं भक्त्या प्रणम्य पुरुषोत्तमम् ॥२६३॥
हरिणा योजितं कर्म कर्तुं व्यग्रा महीं ययुः। भर्त्रा निरूपितं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ॥२६४॥
उवाच राधिकां कृष्णो वृषभानुगृहं व्रज। गोपगोपीसमूहैश्च सह पूर्वनिरूपितैः ॥२६५॥

वृन्दावन में तुम्हारे साथ रासक्रीडा होगी ॥२५१-२५३॥ पश्चात् माता-पिता और गोपियों के शोक को दूर कर और पृथ्वी का भार उतार कर तुम्हें तथा गोप-गोपियों को साथ लेकर गोलोक में आगमन होगा। राधे! मेरे अंशभूत जो नित्य परमात्मा नारायण हैं, वे लक्ष्मी और सरस्वती के साथ वैकुण्ठ को पधारेंगे। धर्म और मेरे अंशों का निवासस्थान श्वेतद्वीप में होगा ॥२५४-२५६॥ देवों एवं देवियों के अंश से उत्पन्न होने वाले भी अपने निवास को चले जायँगे। तब पुनः हम तुम्हारे साथ इसी गोलोक में रहेंगे ॥२५७॥ कान्ते! इस प्रकार मैंने भावी सभी शुभ-अशुभ बातें बता दीं और जो कुछ मैंने कहा है उसे अन्यथा कोई नहीं कर सकता है ॥२५८॥ ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण ने राधा को अपने वक्षःस्थल से लगा लिया और देवता एवं देव-पत्नियाँ आश्चर्य-चकित हो गयीं ॥२५९॥ अनन्तर श्री हरि ने देवों और देवियों से कहा कि——तुम लोग भावी कार्य की सिद्धि के लिए अपने-अपने स्थान को जाओ। पार्वति! तुम भी अपने दोनों पुत्रों और स्वामी के साथ कैलास को चली जाओ। मैंने जो कुछ कार्य नियोजित किया है, वह सब समय पर अवश्य होगा ॥२६०-२६१॥ व्रजेश्वरि! गणेश के अतिरिक्त छोटे-बड़े सभी देवताओं और देवियों का कला द्वारा भूतल पर अवतरण होगा ॥२६२॥ अनन्तर सभी देवगण प्रसन्नतापूर्वक पुरुषोत्तम कृष्ण, लक्ष्मी, और सरस्वती को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके अपने-अपने स्थान को चले गए ॥२६३॥ भगवान् ने जिस कार्य का आयोजन किया था, उसे सफल बनाने के लिए वे व्यग्रतापूर्वक भूतल पर पधारे; क्योंकि स्वामी का बताया हुआ स्थान देवों के लिए भी दुर्लभ था ॥२६४॥ श्रीकृष्ण ने राधिका से कहा——पहले बताये हुए गोपों और गोपियों समेत

अहं यास्यामि मथुरां वसुदेवालयं प्रिये। पश्चात्कंसभयव्याजाद्गोकुलं तव संनिधिम् ॥२६६॥
राधा प्रणम्य श्रीकृष्णं रक्तपंकजलोचना। भृशं रुरोद पुरतः प्रेमविच्छेदकातरा ॥२६७॥
स्थायं स्थायं क्वचिद्यान्ती गत्वा गत्वा पुनः पुनः। पुनः पुनः समागत्य दर्शं दर्शं हरेर्मुखम् ॥२६८॥
पपौ चक्षुश्चकोराभ्यां निमेषरहिता सती। शरत्पार्वणचन्द्राभसुधापूर्णं प्रभोर्मुखम् ॥२६९॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य सप्तधा परमेश्वरी। प्रणम्य सप्तधा चैव पुनस्तस्थौ हरेः पुरः ॥२७०॥
आजग्मुर्गोपिकानां च त्रिःसप्तशतकोटयः। आजगाम च गोपानां समूहः कोटिसंख्यकः ॥२७१॥
गोपानां गोपिकानां च समूहैः सह राधिका। पुनः प्रणम्य तं राधा तत्र तस्थौ च नारद ॥२७२॥
त्रयस्त्रिंशद्वयस्याभिर्गोपीभिः सह सुन्दरी। गोपानां च समूहैश्च प्रणम्य प्रययौ महीम् ॥२७३॥
हरिणा योजितं स्थानं प्रजग्मुर्नन्दगोकुलम्। वृषभानुगृहं राधा गोपी गोपगृहं ययौ ॥२७४॥
महीं गतायां राधायां गोपीभिः सह गोपकैः। बभूव श्रीहरिः सद्यः पृथिवीं गमनोत्सुकः ॥२७५॥
संभाष्य गोपान्गोपीश्च नियोज्य स्वीयकर्मणि। मनोयायी जगन्नाथो जगाम मथुरां हरिः ॥२७६॥
पूर्वं यद्यदपत्यं च देवकीवसुदेवयोः। बभूव सद्यस्तत्कंसः पुत्रषट्कं जघान ह ॥२७७॥
शेषांशं सप्तमं गर्भं माययाऽऽकृष्य गोकुले। निधाय रोहिणीगर्भे जगाम चाऽऽज्ञया हरेः ॥२७८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० नारदना० श्रीकृष्णजन्मख० षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

तुम वृषभानु के घर जाओ ॥२६५॥ प्रिये ! मैं भी मथुरा में वसुदेव के घर जा रहा हूँ, पश्चात् कंस भय के बहाने मैं तुम्हारे समीप गोकुल चला आऊँगा ॥२६६॥ अनन्तर लाल कमल की भाँति नेत्र वाली राधा प्रेमविच्छेद के भय से कातर होकर श्रीकृष्ण को प्रणाम कर के उनके आगे फूट-फूटकर रोने लगीं ॥२६७॥ वे रुक-रुक कर कभी कुछ दूर तक जातीं और जा-जाकर बार-बार लौट आतीं और भगवान् के मुख का दर्शन करने लगती थीं। निमेष रहित नेत्र रूपी चकोर से भगवान् के शारदीय दूपूर्णिमा के चन्द्रमा के समान कान्ति-सुधा से पूर्ण मुख-सौन्दर्य का पान करती थीं ॥२६८-२६९॥ पश्चात् परमेश्वरी राधिका भगवान् की सात परिक्रमा कर के सात बार प्रणाम कर अनन्तर उनके सामने खड़ी हो गयीं ॥२७०॥ उसी समय यहाँ तिहत्तर करोड़ गोपियाँ और एक करोड़ गोप आ गए ॥२७१॥ नारद ! गोपियों और गोपों के साथ राधा पुनः हरि को प्रणाम कर के यहीं खड़ी रहीं ॥२७२॥ उन तैंतीस सहेलियों के आने पर सुन्दरी राधिका ने भगवान् को प्रणाम कर गोपों और गोपियों के साथ पृथ्वी के लिए प्रस्थान किया ॥२७३॥ भगवान् के बताए हुए स्थान—नन्द गोकुल में—राधा वृषभानु के घर में और गोपियाँ अन्यान्य गोपों के घर में गईं ॥२७४॥ इस प्रकार गोपों और गोपियों समेत राधा के भूतल पर चले जाने पर भगवान् भी पृथ्वी पर आने के लिए तुरन्त तैयार हो गए ॥२७५॥ इस प्रकार गोप-गोपियों से कह कर एवं अपने-अपने कर्म में उन्हें नियुक्त करके मन की गति से चलने वाले जगन्नाथ हरि मथुरा में जा पहुँचे ॥२७६॥ वसुदेव-देवकी के पहले जितने पुत्र हुए थे, कंस ने उन सब को अर्थात् छह पुत्रों को मार दिया था ॥२७७॥ भगवान् की आज्ञा से योगमाया सातवें शेषनाग वाले गर्भ को देवकी के उदर से खींच कर गोकुल स्थित रोहिणी के गर्भ में डाल कर चली गयी थीं ॥२७८॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के नारायण-नारद संवाद में छठा अध्याय समाप्त ॥६॥

Funding by IKS-MoE

अथ सप्तमोऽध्यायः

नारद उवाच

व्यस्यातिरेकं कृष्णस्य महत्पुण्यकरं परम्। वद जन्म महाभाग जन्ममृत्युजरापहम् ॥१॥
वसुदेवः कस्य पुत्रः कस्य कन्या च देवकी। को वसुदेवकी का वा विवाहं चोभयोर्वद ॥२॥
कथं जघान कंसस्तत्पुत्रषट्कं च दारुणः। कस्मिन्दिने हरेर्जन्म श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥३॥

नारायण उवाच

कश्यपो वसुदेवश्च देवमाता च देवकी। पूर्वपुण्यफलेनैव प्रापतुः श्रीहरिं सुतम् ॥४॥
देवमीढान्मारिषायां वसुदेवो महानभूत्। यस्योद्भवे देवसंघो वादयामास दुन्दुभिम् ॥५॥
आनकं च महाहृष्टाः श्रीहरेर्जनकं च तम्। सन्तः पुरातनास्तेन वदन्त्यानकदुन्दुभिम् ॥६॥
आहुकस्य सुतः श्रीमान्यदुवंशसमुद्भवः। देवको ज्ञानसिन्धुश्च तस्य कन्या च देवकी ॥७॥
गर्गो यदुकुलाचार्यः संबन्धं वसुना सह। देवक्याः कारयामास विधिवच्च यथोदितम् ॥८॥
महासंभृतसंभारो वसुदेवः शुभे क्षणे। उद्वाहे देवकीं तस्मै देवकः प्रददौ किल ॥९॥
अश्वानां च सहस्राणि गजानां च शतानि च। सालंकृतानां दासीनां शतानि सुन्दराणि च ॥१०॥

अध्याय ७

श्रीकृष्ण-जन्म का आख्यान

नारद बोले—महाभाग ! भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म कहने की कृपा करें, जो महान् पुण्यकारक, श्रेष्ठ और जन्म-मृत्यु एवं जरा का नाशक है ॥१॥ वसुदेव किसके पुत्र थे, देवकी किसकी कन्या थीं ? देवकी और वसुदेव पूर्वजन्म में कौन थे ? एवं उन दोनों के विवाह बताने की कृपा करें ॥२॥ भयंकर कंस ने उनके छह पुत्रों का वध कैसे किया ? और किस दिन भगवान् का जन्म हुआ ? यह भलीभाँति सुनना चाहता हूँ ॥३॥

श्री नारायण बोले—कश्यप वसुदेव हुए थे और देवों की माता अदिति देवकी हुई थीं। पूर्व पुण्य के फलस्वरूप इन्होंने भगवान् को पुत्र रूप में प्राप्त किया था ॥४॥ देवमीढ से मारिषा में महान् वसुदेव उत्पन्न हुए थे, जिनके जन्म समय देववृन्द ने अत्यन्त हर्षित होकर आनक (ढोल) और दुन्दुभि नामक वाजे बजाये थे। इसीलिए प्राचीन सन्त लोग श्री हरि भगवान् के पिता (वसुदेव) को आनकदुन्दुभि कहते हैं ॥५-६॥ यदुकुल में आनक के पुत्र श्रीमान् देव हुए थे जो ज्ञान के सागर कहे जाते हैं, उन्हीं की कन्या देवकी थीं ॥७॥ यदुकुल के आचार्य गर्ग ने देवकी का विवाह सम्बन्ध वसुदेव के साथ शास्त्रानुसार सविधि सम्पन्न कराया था ॥८॥ (विवाह के उस) शुभ क्षण में वसुदेव बहुत साज-सामान से युक्त हुए थे। देवक ने विवाह-काल में वसुदेव को देवकी समर्पित की ॥९॥ नारद ! देवक ने दहेज में वसुदेव को सहस्रों घोड़े, सैकड़ों हाथी, भूषणभूषित सैकड़ों सुन्दरी दासियाँ, विविध भाँति के द्रव्य,

जानामि जानासि

नानाविधानि द्रव्याणि रत्नानि विविधानि च। मणिश्रेष्ठानि वज्राणि स्वर्णपात्राणि नारद ॥११॥
सद्रत्नभूषितां कन्यां शतचन्द्रसमप्रभाम्। त्रैलोक्यमोहिनीं धन्यां मान्यां श्रेष्ठां च योषिताम् ॥१२॥
रूपाधारां गुणाधारां सुस्मितां वक्रलोचनाम्। नवसंगमयोग्यां च प्रोद्भिन्ननवयौवनाम् ॥१३॥
तां गृहीत्वा रथे कृत्वा प्रस्थानसमये तदा। कंसो हृष्टः सहचरो भगिन्युद्वाहकर्मणि ॥१४॥
तस्या रथसमीपस्थे कंसे गच्छति तत्क्षणे। कंसं संबोध्य गगने वाग्बभूवाशरीरिणी ॥१५॥
कथं हृष्टोऽसि राजेन्द्र शृणु सत्यं वचो हितम्। देवक्या ह्यष्टमो गर्भो मृत्युहेतुस्तवैव हि ॥१६॥
श्रुत्वैवं देवकीं कंसः खड्गहस्तो महाबलः। देववाक्याद्भयात्क्रोधात्पापिष्ठो हन्तुमुद्यतः ॥१७॥
तां हन्तुमुद्यतं दृष्ट्वा वसुदेवः सुपण्डितः। बोधयामास नीतिज्ञो नीतिशास्त्रविशारदः ॥१८॥

वसुदेव उवाच

राजनीतिं न जानासि शृणु मे वचनं हितम्। यशस्करं च दोषघ्नं शास्त्रोक्तं समयोचितम् ॥१९
अस्या एवाष्टमो गर्भो मृत्युश्चेत्तव भूमिप। इमां च हत्वा दुष्कीर्तिं करोषि त्वं नरः कथम् ॥२०॥
वधे च क्षुद्रजन्तूनां हिंसकानां च पण्डितः। कार्षापणं समुत्सृज्य मृत्युकाले प्रमुच्यते ॥२१॥

अनेक प्रकार के रत्न, श्रेष्ठ मणियाँ, हीरे और अनेक सुवर्ण के पात्र भी प्रदान किए ॥१०-११॥ उत्तम रत्नों से भूषित उस कन्या को, जो सैकड़ों चन्द्रमा के समान कान्तिपूर्ण, तीनों लोकों को मोहित करने वाली एवं स्त्रियों में धन्या, मान्या एवं श्रेष्ठा, रूप और गुण की निधि, मन्द मुसुकान एवं तिरछी चितवन से युक्त, नूतन संगम के योग्य और नवयौवन से सम्पन्न थी, ग्रहण करके रथ पर बैठाकर वसुदेव जब प्रस्थान करने लगे, तब भगिनी के विवाह-उत्सव में हर्ष से भरा कंस भी उसके साथ चला। देवकी के समीप होने पर तत्काल कंस को सम्बोधित करके आकाशवाणी हुई—राजेन्द्र! क्यों हर्ष से फूल उठे हो? सत्य और हितकर वचन सुनो—देवकी का आठवाँ गर्भ तुम्हारी मृत्यु का कारण होगा ॥१२-१६॥ इसे सुनते ही महाबली कंस ने हाथ में तलवार ले ली। आकाशवाणी पर विश्वास करके भयभीत और कुपित हो वह महापापी देवकी को मारने के लिए तैयार हो गया ॥१७॥ उसे मारने के लिए तैयार देख कर उत्तम पण्डित वसुदेव ने, जो नीतिवेत्ता एवं नीति-शास्त्र के कुशल विद्वान् थे, (कंस को) समझाना आरम्भ किया ॥१८॥

वसुदेव बोले—तुम राजनीति नहीं जानते हो, मेरी बातें सुनो, जो हितकर, यशोदायक, दोषनाशक, शास्त्रानुकूल और सामयिक है ॥१९॥ राजन्! यदि इसका आठवाँ गर्भ ही तुम्हारी मृत्यु का कारण है, तो इसकी हत्या करके तुम अपना अयश क्यों पैदा कर रहे हो? ॥२०॥ क्योंकि हिंसक क्षुद्र जन्तुओं का वध करने पर मृत्यु-काल में बुद्धिमान् व्यक्ति एक कार्षापण (एक पुराना सिक्का) दान देकर छुटकारा पा लेता है ॥२१॥ अहिंसक क्षुद्र

अहिंसकानां क्षुद्राणां वधः शतगुणं ध्रुवम्। प्रायश्चित्तं मृत्युकाले कथितं पद्मयोनिना ॥२२॥
वधे विशिष्टजन्तूनां पश्वादीनां च कामतः। ततः शतगुणं पापं निश्चितं मनुरब्रवीत् ॥२३॥
नराणां म्लेच्छजातीनां वधे शतगुणं ततः। म्लेच्छानां च शतानां च यत्पापं लभते वधे ॥२४॥
सच्छूद्रैकस्य च वधे तत्पापं लभते पुमान् ॥२५॥
सच्छूद्राणां शतानां च यत्पापं लभते वधे। तत्पापं लभते नूनं गोवधैकेन निश्चितम् ॥२६॥
गवां दशगुणं पापं ब्राह्मणस्य वधे भवेत्। विप्रहत्यासमं पापं स्त्रीवधे लभते नरः ॥२७॥
विशेषतो हि भगिनी पोष्या च शरणागता। स्त्रीहत्याशतपापं च भवेदस्या वधे नृप ॥२८॥
तपो जपं च दानं च पूजनं तीर्थदर्शनम्। विप्राणां भोजनं होमं स्वगार्थं कुरुते बुधः ॥२९॥
जलबुद्बुदवत्सर्वं स्वप्नतुल्यं भ्रमं भवम्। पश्यन्ति सततं सन्तो धर्मं कुर्वन्ति यत्नतः ॥३०॥
भगिनीं त्यज धर्मिष्ठ स्ववंशपद्मभास्कर । बुधाः कतिविधाः सन्ति सभायां पृच्छ्यतां नृप ॥३१॥
अस्याश्चैवाष्टमो गर्भो यदपत्यं भविष्यति। बन्धो तुभ्यं प्रदास्यामि तेन मे किं प्रयोजनम् ॥३२॥
अथवा यान्यपत्यानि भवन्ति ज्ञानिनां वर। तानि सर्वाणि दास्यामि त्वत्तः को मे वरः प्रियः ॥३३॥
भगिनीं त्यज राजेन्द्र कन्यातुल्यां प्रियां तव। मिष्टान्नपानदानेन वर्धितामनुजां सदा ॥३४॥
वसुदेववचः श्रुत्वा तत्याज भगिनीं नृपः। वसुदेवः प्रियां नीत्वां जगाम निजमन्दिरे ॥३५॥

जन्तुओं का वध करने पर उक्त से सौगुने अधिक प्रायश्चित्त करना पड़ता है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥२२॥ विशिष्ट जन्तुओं और पशु आदि की जानबूझकर हत्या करने पर अवश्य ही उससे सौगुने अधिक पाप लगता है, ऐसा मनु ने कहा है ॥२३॥ म्लेच्छ जाति के मनुष्य के वध करने पर उससे सौगुने और सौं म्लेच्छों के वध करने से जितना पाप होता है, उतना पाप एक सत् (स्पृश्य) शूद्र के वध करने से मनुष्य को प्राप्त होता है। तथा सौ सत् शूद्रों के वध करने से जितना पाप होता है उतना पाप एक गौ के वध करने पर निश्चित ही प्राप्त होता है। गौओं से दश गुने अधिक पाप ब्राह्मण-वध में लगता है। ब्राह्मण-हत्या के समान ही मनुष्य को स्त्री-हत्या का भी पाप लगता है, विशेषतया भगिनी या अपने पोषण योग्य अथवा शरणागत की हत्या का। राजन् ! इसलिए स्त्री-हत्या से सौगुना अधिक पाप इसके वध करने पर लगेगा। बुद्धिमान् व्यक्ति तप, जप, दान, पूजन, तीर्थदर्शन, ब्राह्मणभोजन और हवन स्वर्ग के लिए करता है। सन्त लोग समस्त संसार को जल के बुलबुले और स्वप्न के समान निस्सार एवं भ्रम मानकर सदैव यत्नपूर्वक धर्माचरण करते हैं। धर्मिष्ठ ! अपने वंश रूपी कमल के लिए सूर्य ! इस अपनी भगिनी को छोड़ दो। नृप ! तुम्हारी सभा में कई प्रकार के विद्वान् हैं, उनसे पूछो ॥२४-३१॥ इसके आठवें गर्भ से जो संतान उत्पन्न होगी, मैं उसे लाकर तुम्हें सौप दूंगा । उससे मेरा क्या प्रयोजन है ? अथवा ज्ञानियों में श्रेष्ठ ! इससे जितनी भी संतानें होंगी, उन सबको लाकर मैं तुम्हें दे दूंगा, क्योंकि तुमसे बढ़कर मुझे कौन प्रिय है ? राजेन्द्र, इस अपनी भगिनी को छोड दो, यह तुम्हें कन्या के समान प्रिय है। तुमने इस छोटी बहिन को मधुर अन्न पान देकर पाल-पोसकर बड़ा किया है ॥३२-३४॥ वसुदेव की बात सुनकर राजा ने देवकी को छोड़ दिया।

क्रमादपत्यषट्कं च यद्यद्भूतं च नारद। ददौ तस्मै वसुः सत्यात्स जघान क्रमेण तान् ॥३६॥
देवक्याः सप्तमे गर्भे कंसो रक्षां ददौ भिया। रोहिणीजठरे माया तमाकृष्य ररक्ष च ॥३७॥
रक्षकाः कथयामासुर्गर्भस्रावो बभूव ह। तस्माद्बभूव भगवानात्मा संकर्षणः प्रभुः ॥३८॥
तस्या एवाष्टमो गर्भो वायुपूर्णो बभूव ह। गते च नवमे मासि दशमे समुपस्थिते ॥३९॥
दृष्टिं ददौ च गर्भे च भगवान्सर्वदर्शनः। स्वयं रूपवती देवी सर्वासां योषितां वरा ॥४०॥
बभूव दर्शनात्सद्यः सुन्दरी सा चतुर्गुणा। ददर्श देवकीं कंसः प्रफुल्लवदनेक्षणाम् ॥४१॥
तेजसा प्रज्वलन्ती च मायामिव दिशो दश। ज्योतिषां संहतिं चैव यथा मूर्तिमतीमिव ॥४२॥
दृष्ट्वा तामसुरेन्द्रश्च विस्मयं परमं ययौ। अस्माद्गर्भादपत्यं च मृत्युबीजं ममैव च ॥४३॥
इत्येवमुक्त्वा कंसश्च ददौ रक्षां प्रयत्नतः। देवकीं वसुदेवं च सप्तद्वारं ररक्ष च ॥४४॥
पूर्णे च दशमे मासे गर्भः पूर्णो बभूव ह। बभूव सा चलस्पन्दा जडरूपा च नारद ॥४५॥
गर्भे च वायुना पूर्णे निर्लिप्तो भगवानजित्। हृत्पद्मकोशे देवक्या अधिष्ठानं चकार ह ॥४६॥
सा विश्वंभरगर्भा च मन्दिराभ्यन्तरे सती। उवास जडरूपा च क्लेशयुक्ता बभूव ह ॥४७॥
उवास च क्षणं देवी क्षणमुत्थाय तिष्ठति। क्षणं व्रजति पादैकं क्षणं स्वपिति तत्र वै ॥४८॥

तब वसुदेव अपनी प्रिया को लेकर अपने घर गए ॥३५॥ नारद ! वसुदेव के क्रमशः छह पुत्र उत्पन्न हुए, किन्तु वसुदेव सत्य के कारण उन्हें कंस को देते रहे और वह उनका वध क्रमशः करता रहा ॥३६॥ उपरान्त देवकी के सातवें गर्भ में कंस ने भय से रक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया, किन्तु योगमाया ने देवकी के गर्भ से उसे खींच कर रोहिणी के उदर में रख दिया ॥३७॥ रक्षकों ने कंस से कहा कि देवकी का गर्भ-स्राव (गर्भपात) हो गया। वहाँ रोहिणी के गर्भ से भगवान् 'संकर्षण' उत्पन्न हुए ॥३८॥ अनन्तर देवकी का आठवाँ गर्भ प्रकट हुआ, जो वायु से भरा हुआ था। नवाँ मास व्यतीत होने पर दशवाँ मास उपस्थित हुआ। तब सर्वदर्शी भगवान् ने उस गर्भ को देखा। देवकी स्वयं रूपवती और नारियों में श्रेष्ठ थीं, दर्शन मात्र से वह सुन्दरी पहले से चौगुनी सुन्दरी हो गयी। उस समय विकसित मुख और नेत्र वाली देवकी को कंस ने देखा। वह तेज से प्रज्वलित हो योगमाया के समान दसों दिशाओं को प्रकाशित कर रही थीं। मूर्तिमान् ज्योतिः पुञ्ज-सी दिखाई देती थीं। अनन्तर उसे देख असुरराज (कंस) को परम आश्चर्य हुआ। उसने सोचा—इसी गर्भ से उत्पन्न सन्तान मेरी मृत्यु का कारण है ॥३९-४३॥ ऐसा कहकर कंस यत्नपूर्वक देवकी और वसुदेव की रखवाली करने लगा। उसने सात द्वारों वाले भवन में उन्हें रख छोड़ा। ॥४४॥ नारद ! दशवाँ मास पूरा होने पर गर्भ पूरा हो गया। तब वह मन्दगति एवं जड़रूप हो गईं ॥४५॥ वायु से गर्भ के पूर्ण हो जाने पर अजेय एवं निर्लिप्त भगवान् ने देवकी के हृदयकमल-कोश में निवास किया ॥४६॥ भगवान् विश्वम्भर के गर्भ में आने पर वह सती देवकी उस घर के भीतर जड़रूप एवं क्लेशयुक्त हो गईं ॥४७॥ क्षण में देवी बैठतीं, क्षण में उठ कर खड़ी हो जातीं, क्षणमें एक पग चलतीं, क्षण में वहीं सो जातीं ॥४८॥ उस समय

०मासं न व्याप्तं च ?

दृष्ट्वा च देवकीं शीघ्रं वसुदेवो महामनाः। प्रसूतिसमयं ज्ञात्वा सस्मार हरिमीश्वरम् ॥४९॥
रत्नप्रदीपसंयुक्ते मन्दिरे सुमनोहरे। स्थापयामास खङ्गं च लोहं तोयं हुताशनम् ॥५०॥
मन्त्रज्ञं च नरं चैव बन्धुपत्नीर्भयाकुलः। विद्वांसं ब्राह्मणं चैव त्रस्तो बन्धूंश्च सादरम् ॥५१॥
एतस्मिन्नन्तरे तस्या रात्रेर्द्वौ प्रहरौ गतौ। व्यासं च गगनं मेघैः क्षणद्युतिसमन्वितैः ॥५२॥
ववुश्च वायवश्चेष्टा ययुर्निद्रां च रक्षकाः। अचेष्टितश्च शयने मृता इव विचेतनाः ॥५३॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चाऽऽजग्मुस्त्रिदशेश्वराः। तुष्टुवुर्धर्मब्रह्मेशा गर्भस्थं परमेश्वरम् ॥५४॥

देवा ऊचुः

जगद्योनिरयोनिस्त्वमनन्तोऽव्यय एव च। ज्योतिः स्वरूपो ह्यनघः सगुणो निर्गुणो महान् ॥५५॥
भक्तानुरोधात्साकारो निराकारो निरङ्कुशः। निर्व्यूहो निखिलाधारो[1] निःशङ्को निरुपद्रवः ॥५६॥
निरुपाधिश्च निर्लिप्तो निरीहो निधनान्तकः। स्वात्मारामः पूर्णकामो [2]निमिषो नित्य एव च ॥५७॥
स्वेच्छामयः सर्वहेतुः सर्वः सर्वगुणाश्रयः। सुखदो दुःखदो दुर्गो दुर्जनान्तक एव च ॥५८॥
सुभगो दुर्भगो वाग्मी दुराराध्यो दुरत्ययः। वेदहेतुश्च वेदाश्च वेदाङ्गो वेदविद्विभुः ॥५९॥
इत्येवमुक्त्वा देवाश्च प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः। हर्षाश्रुलोचनाः सर्वे ववृषुः कुसुमानि च ॥६०॥
द्विचत्वारिंशन्नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्। दृढां भक्तिं हरेर्दास्यं लभते वाञ्छितं फलम् ॥६१॥

महामना वसुदेव देवकी को देख कर प्रसव का समय जानकर भगवान् जगदीश्वर का स्मरण करने लगे ॥४९॥ रत्न के प्रदीप से युक्त उस परम मनोहर भवन में उन्होंने शीघ्र खड्ग, लोहा, जल और अग्नि को लाकर रखा। भयभीत होकर उन्होंने मंत्रवेत्ता पुरुष, भाइयों की पत्नियों, विद्वान् ब्राह्मण और अपने बन्धुओं को बुला लिया ॥५०-५१॥ इसी बीच रात्रि के दोपहर बीत गए, विद्युत् समेत मेघ आकाश में घिर गए, सुखकर वायु चलने लगा तथा रक्षक लोग उसी भाँति निद्रामग्न हो गए, जिस प्रकार चेतनाहीन प्राणी निश्चेष्ट होकर बिस्तरे पर पड़े रहते हैं ॥५२-५३॥ इस बीच देवों के अधीश्वर ब्रह्मा, शिव और धर्म आकर गर्भस्थ परमेश्वर की स्तुति करने लगे ॥५४॥

देवों ने कहा—आप जगत् के उत्पत्ति-स्थान, स्वयं उत्पत्ति-स्थान-रहित, अनन्त, अनश्वर, प्रकाशस्वरूप पापरहित, सगुण, निर्गुण एवं महान् हैं ॥५५॥ आप निराकार होते हुए भी भक्तों के अनुरोध से साकार हो जाते हैं। आप निरंकुश, स्वच्छन्द, समस्त के आधार, निःशंक, निरुपद्रव, उपाधिरहित, निर्लिप्त, निरीह, मृत्यु के काल, स्वात्मा में रमण करने वाले, पूर्णकाम, निमेषरहित, नित्य, स्वेच्छामय, सब के कारण, सर्वरूप, समस्त गुणों के आश्रय, सुखदायक, दुःखद, दुर्गरूप, दुर्जननाशक, सुभग, दुर्भग, मितभाषी, दुराराध्य, दुर्लंघ्य, वेदकारण, वेद-वेदांगस्वरूप और वेदवेत्ता एवं व्यापक हैं ॥५५-५९॥ इतना कहकर देवों ने बार-बार प्रणाम किया और आँखों में आँसू भरकर पुष्पों की वर्षा की ॥६०॥ इन बयालीस नामों का प्रातःकाल उठकर जो पाठ करता है, उसे हरि की दृढ़ भक्ति, दास्य भाव और वांछित फल की प्राप्ति होती है ॥६१॥

---

[1] क. °लाकरो। [2] क. निमेषो।

नारायण उवाच

इत्येव स्तवनं कृत्वा देवास्ते स्वालयं ययुः। बभूव जलवृष्टिश्च निश्चेष्टा मथुरापुरी ॥६२॥
घोरान्धकारनिबिडा बभूव यामिनी मुने। गते सप्तमुहूर्ते तु चाष्टमे समुपस्थिते ॥६३॥
वेदातिरिक्तदुर्ज्ञेये सर्वोत्कृष्टे शुभे क्षणे । शुभग्रहे दृष्टियुक्तेऽप्यदृष्टे चाशुभग्रहे ॥६४॥
अर्धरात्रे समुत्पन्ने रोहिण्यामष्टमीतिथौ । जयन्तीयोगसंयुक्ते चार्धचन्द्रोदये मुने ॥६५॥
दृष्ट्वा दृष्ट्वा क्षणं लग्नं भीताः सूर्यादयस्तदा। गगने क्रममुल्लङ्घ्य जग्मुर्मीनं शुभावहाः ॥६६॥
सुप्रसन्ना ग्रहाः सर्वे बभूवुस्तत्र संस्थिताः। एकादशास्ते प्रीत्या च मुहूर्तं धातुराज्ञया ॥६७॥
ववर्षुश्च जलधरा ववुर्वाताः सुशीतलाः। सुप्रसन्ना च पृथिवी प्रसन्नाश्च दिशो दश ॥६८॥
ऋषयो मनवश्चैव यक्षगन्धर्वकिंनराः। देवा देव्यश्च मुदिता ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥६९॥
जगुर्गन्धवपतयो विद्याधर्यश्च नारद। सुखेन सुस्रुवुर्नद्यो जज्वलुश्चाग्नयो मुदा ॥७०॥
नेदुर्दुन्दुभयो नाके चाऽऽनकाश्च मनोहराः। पारिजातप्रसूनानां महावृष्टिर्बभूव ह ॥७१॥
जगाम सूतिकागेहं नारीरूपं विधाय भूः। जयशब्दः शङ्खशब्दो हरिशब्दो बभूव ह ॥७२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र पपात देवकी सती। निःससार च वायुश्च देवकीजठरात्ततः ॥७३॥

नारायण बोले—इस प्रकार स्तुति कर देव लोग अपने-अपने लोक को चले गए ॥६२॥ मुने ! जलवृष्टि होने के कारण मथुरा पुरी उस समय निश्चेष्ट मालूम होती थी, रात्रि घोर अन्धकार से आच्छन्न थी। मुने ! सात मुहूर्त व्यतीत हो गए और आठवाँ उपस्थित हुआ, तब आधी रात के समय सर्वोत्कृष्ट शुभ लग्न आया। वह वेदों से अतिरिक्त तथा दूसरों के लिए दुर्ज्ञेय लग्न था। उस लग्न पर केवल शुभ ग्रहों की दृष्टि थी, अशुभ ग्रहों की नहीं थी। संयोग से जयन्ती नामक योग सम्पन्न हो गया था। मुने ! जब अर्ध-चन्द्रमा का उदय हुआ, उस समय लग्न की ओर देख-देख कर भयभीत हुए सूर्य आदि सभी ग्रह आकाश में अपनी गति के क्रम को लाँघकर मीन लग्न में जा पहुँचे, सभी शुभ ग्रह सुप्रसन्न होकर वहाँ अवस्थित हुए। विधाता की आज्ञा से एक मुहूर्त के लिए वे सभी ग्रह ग्यारहवें स्थान में जाकर सानन्द स्थित हो गए। मेघ वृष्टि करने लगे। वायु अति शीतल होकर बहने लगा। पृथ्वी अत्यन्त प्रसन्न थी, दशों दिशायें भी प्रसन्न थीं, ऋषिगण, मनुवृन्द, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, देव, देवियाँ प्रसन्न थीं, अप्सरायें नृत्य करने लगीं, गन्धर्वों के स्वामी और विद्याधरियाँ गीत गाने लगीं। नारद ! नदियाँ सुखपूर्वक बहने लगीं, अग्नि प्रसन्नता से प्रज्वलित हो उठे, स्वर्ग में दुन्दुभियाँ और मनोहर आनक वाद्य बजने लगे। पारिजात पुष्पों की महावृष्टि होने लगी। पृथ्वी स्त्री का रूप धारण करके सूतिका घर (सौरी) में पहुँची। जय-जयकार, शंख की ध्वनि और हरि-नाम का उच्चारण हो रहा था ॥६३-७२॥ उसी बीच सती देवकी (पृथ्वी पर) गिर पड़ीं

Funding by IKS-MoE

तत्रैव भगवान्कृष्णो दिव्यरूपं विधाय च। हृत्पद्मकोशाद्देवक्या हरिराविर्बभूव ह ॥७४॥
अतीव कमनीयं च शरीरं सुमनोहरम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं स्फुरन्मुकुटकुण्डलम् ॥७५॥
ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् । ॥७६॥
मणिरत्नेन्द्रसाराणां भूषणैश्च विभूषितम् । नवीननीरदश्यामं शोभितं पीतवाससा ॥७७॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यं बिम्बाधरमनोहरम् ॥७८॥
मयूरपच्छिचूडं च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम्। त्रिभङ्गवक्रमध्यं च वनमालाविभूषितम् ॥७९॥
श्रीवत्सवक्षसं चारुकौस्तुभेन विराजितम्। किशोरवयसं शान्तं कान्तं ब्रह्मेशयोः परम् ॥८०॥
ददर्श वसुदेवश्च देवकीपुरतो मुने। तुष्टाव परया भक्त्या विस्मयं परमं ययौ ॥८१॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः। साश्रुपूर्णः सपुलको देवक्या च स्त्रिया सह ॥८२॥

वसुदेव उवाच

त्वामतीन्द्रियमव्यक्तमक्षरं निर्गुणं विभुम्। ध्यानासाध्यं च सर्वेषां परमात्मानमीश्वरम् ॥८३॥
स्वेच्छामयं सर्वरूपं स्वेच्छारूपधरं परम्। निर्लिप्तं परमं ब्रह्म बीजरूपं सनातनम् ॥८४॥

और उनके गर्भ से वायु निकल पड़ा। भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य रूप धारण कर देवकी के हृदय-कमल-कोश से बाहर प्रकट हो गये। उनका शरीर अत्यन्त कमनीय और परम मनोहर था। दो भुजायें थीं। हाथ में मुरली शोभा पा रही थी। कानों में मकराकृति कुण्डल झलमला रहे थे। मुख मन्द हास्य की छटा से प्रसन्न तथा भक्तों पर कृपा करने वाला था। श्रेष्ठ मणिरत्नों के सार तत्त्व से निर्मित आभूषण उनके शरीर की शोभा बढ़ा रहे थे। पीताम्बर से सुशोभित श्रीविग्रह की कान्ति नूतन जलधर के समान श्याम थी। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम के द्रव से निर्मित अंगराग सब अंगों में लगा हुआ था। उनका मुखचन्द्र शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की शुभ्र ज्योत्स्ना को तिरस्कृत कर रहा था। बिम्बफल के सदृश लाल अधर के कारण उसकी मनोरहता और बढ़ गयी थी। माथे पर मोरपंख के मुकुट तथा उत्तम रत्नमय किरीट से श्रीहरि की दिव्य ज्योति और भी जाज्वल्यमान हो रही थी। टेढ़ी कमर, त्रिभंगी झाँकी, वनमाला का शृंगार, वक्ष में श्रीवत्स की स्वर्णमयी रेखा और उस पर मनोहर कौस्तुभमणि की भव्य प्रभा अद्भुत शोभा दे रही थी। उनकी किशोर अवस्था थी। वे शान्तस्वरूप भगवान् श्रीहरि ब्रह्मा और शिव के भी परम प्रिय थे ॥७३-८०॥ मुने! वसुदेव और देवकी ने उन्हें अपने समक्ष देखा। उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। वसुदेव ने अपनी पत्नी देवकी के साथ अश्रुपूर्ण नयन, पुलकित शरीर तथा नतमस्तक हो हाथ जोड़कर भक्तिभाव से उनकी स्तुति करने लगे ॥८१-८२॥

वसुदेव बोले—आप इन्द्रिय-अगोचर, अप्रकट, अविनाशी, निर्गुण, व्यापक, सभी के लिए ध्यान से असाध्य; परमात्मा, ईश्वर, स्वेच्छामय, सर्वरूप, स्वेच्छा से रूप धारण करने वाले, महान्, निर्लिप्त, परब्रह्म तथा सनातन बीजरूप

Funding by IKS-MoE

अनन्त सौनद

स्थूलात्स्थूलतरं व्यासमतिसूक्ष्ममदर्शनम्। स्थितं सर्वशरीरेषु साक्षिरूपमदृश्यकम् ॥८५॥
शरीरवन्तं सगुणमशरीरं गुणोत्करम्। प्रकृतेः प्रकृतीशं च प्राकृतं प्रकृतेः परम् ॥८६॥
सर्वेशं सर्वरूपं च सर्वान्तकरमव्ययम्। सर्वाधारं निराधारं निर्व्यूहं स्तौमि किं विभुम् ॥८७॥
अनन्तः स्तवनेऽशक्तोऽशक्ता देवी सरस्वती। यं वा स्तोतुमशक्तश्च पञ्चववक्त्रः षडाननः ॥८८॥
चतुर्मुखो वेदकर्ता यं स्तोतुमक्षमः सदा। गणेशो न समर्थश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥८९॥
ऋषयो देवताश्चैव मुनीन्द्रमनुमानवाः। स्वप्ने तेषामदृश्यं च त्वामेवं किं स्तुवन्ति ते ॥९०॥
श्रुतयः स्तवनेऽशक्ताः किं स्तुवन्ति विपश्चितः। विहायैवं शरीरं च बालो भवितुमर्हसि ॥९१॥
वसुदेवकृतं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। भक्तिं दास्यमवाप्नोति श्रीकृष्णचरणाम्बुजे ॥९२॥
विशिष्टपुत्रं लभते हरिदासं गुणान्वितम्। संकटं निस्तरेत्तूर्णं शत्रुभीत्या प्रमुच्यते ॥९३॥

नारायण उवाच

वसुदेववचः श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम्। प्रसन्नवदनः श्रीमान्भक्तानुग्रहकारकः ॥९४॥

श्रीकृष्ण उवाच

तपसां च फलेनैव पुत्रोऽहं तव सांप्रतम्। वरं वृणीष्व भद्रं ते भविष्यति न संशयः ॥९५॥

हैं। आप स्थूल से भी अतिस्थूल, व्याप्त, अतिसूक्ष्म, न दिखायी देने वाले, सभी के शरीर में साक्षीरूप से स्थित, अदृश्य, शरीर धारण कर सगुण रूप, शरीर-रहित, गुणों के निधान, प्रकृति और प्रकृति के अधीश्वर रूप, प्राकृत, प्रकृति से परे, सर्वेश, सर्वरूप, सब को अपने भीतर करने वाले, अनश्वर सर्वाधार, निराधार और निर्व्यूह रूप (तर्क के अविषय) हैं, ऐसे प्रभु की मैं क्या स्तुति कर सकता हूँ ॥८३-८७॥ आपकी स्तुति करने में अनक्त अशक्त हैं, देवी सरस्वती असमर्थ हैं और पाँच मुख वाले शिव एवं छह मुख वाले कार्तिकेय असमर्थ हैं। वेद के प्रणेता चार मुख वाले ब्रह्मा आपकी स्तुति करने में सदा अक्षम हैं और अणेश भी असमर्थ हैं। आप योगीन्द्रों के गुरु के गुरु हैं। ऋषिगण, देववृन्द, मुनीन्द्रवृन्द, मनु और मानवों को स्वप्न में भी आप दिखायी नहीं देते; फिर वे आपकी स्तुति कैसे कर सकते हैं? जब श्रुतियाँ स्तुति करने में असमर्थ हैं तो विद्वान् लोग क्या स्तुति करेंगे। अतः इस शरीर को हटा कर बाल रूप हो जाने की कृपा करें ॥८८-९१॥ वसुदेव कृत इस स्तोत्र का पाठ जो मनुष्य तीनों संध्याओं में करता है वह श्रीकृष्ण के चरण-कमल में दास्य भक्ति प्राप्त करता है। उसे विशिष्ट गुणी एवं हरिभक्त पुत्र की प्राप्ति होती है। उसका संकट अति शीघ्र निकल जाता है और शत्रुभय से वह मुक्त हो जाता है ॥९२-९३॥

नारायण बोले--वसुदेव की बातें सुनकर प्रसन्नमुख, श्रीमान् और भक्तों पर कृपा करने वाले स्वयं हरि ने उनसे कहा ॥९४॥

श्रीकृष्ण बोले--तपः फल के कारण ही मैं सम्प्रति तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ, वर मांगो, तुम्हारा कल्याण होगा,

पृश्नि नगरऽऽसीत्?

पुरा तपस्विनां श्रेष्ठः सुतपास्त्वं प्रजापतिः। पत्नी ते[1] पृश्निनाम्नी च तपसाऽराधितस्त्वया ॥९६
पुत्रो मत्सदृशस्तत्र दृष्ट्वा मां च वृतो बुधः। मया दत्तो वरस्तुभ्यं मत्समो भविता सुतः ॥९७॥
दत्त्वा तुभ्यं वरं तात मनसाऽलोच्य चिन्तितः। मत्समो नास्ति भुवने पुत्रोऽहं तेन हेतुना ॥९८॥
तपसां च प्रभावेण त्वमेव कश्यपः स्वयम्। सुतपा देवमातेयमदितिश्च पतिव्रता ॥९९॥
अधुना कश्यपांशस्त्वं वसुदेवः पिता मम। देवकी देवमातेयमदितेरंशसंभवा ॥१००॥
त्वत्तोऽदित्यां वामनोऽहं पुत्रस्तेंऽशेन संभवः। अधुना परिपूर्णोऽहं पुत्रस्ते तपसां फलात् ॥१०१॥
मां वा त्वं पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन वा पुनः। मां प्राप्तोऽसि महाप्राज्ञ जीवन्मुक्तो भविष्यसि ॥१०२॥
यशोदाभवनं शीघ्रं मां गृहीत्वा व्रजं व्रज। संस्थाप्य तत्र मां तात मायामादाय स्थापय ॥१०३॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र बालरूपो बभूव ह। नग्नं भूमौ शयानं च ददर्श श्यामलं सुतम् ॥१०४॥
दृष्ट्वा स बालकं तत्र मोहितो विष्णुमायया। किं वा कूटं च तन्द्रायामपूर्वं सूतिकागृहम् ॥१०५॥
इत्युक्त्वा वसुदेवश्च समालोच्य स्त्रिया सह। गृहीत्वा बालकं क्रोडे जगाम नन्दगोकुलम् ॥१०६॥
गत्वा नन्दव्रजं शीघ्रं विवेश सूतिकागृहम्। ददर्श शयनाविष्टां यशोदां निद्रयाऽन्वितास् ॥१०७॥

इसमें संशय नहीं ॥९५॥ पूर्व काल में तुम तपस्विश्रेष्ठ सुतपा नामक प्रजापति थें, और तुम्हारी पत्नी का नाम पृश्नि था। तुम दोनों ने तप कर के मेरी आराधना की और मेरा दर्शन होने पर यही वरदान मांगा था कि 'तुम्हारे समान मेरे पुत्र हो।' मैंने तुम्हें वर भी दिया था कि—'तुम्हारे मेरे समान ही पुत्र होगा' ॥९६-९७॥ तात ! तुम्हें वर प्रदान करके मैंने मन में विचार करके तय किया कि संसार में मेरे समान पुत्र नहीं हैं, अतः मैं ही तुम्हारा पुत्र हुआ ॥९८॥ तप के प्रभाव से तुम्हीं स्वयं कश्यप हुए थे और यह पतिव्रता सुतपा देवों की माता अदिति हुई थी ॥९९॥ इस समय कश्यप के अंश से वसुदेव होकर तुम मेरे पिता हो और देवमाता अदिति के अंश से उत्पन्न होकर यह देवकी मेरी माता है ॥१००॥ तुम्हारे द्वारा अदिति से मैं अंशतः वामन नामक तुम्हारा पुत्र हुआ था और इस समय तपस्या-फल के कारण मैं परिपूर्ण रूप से तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ ॥१०१॥ महाप्राज्ञ ! तुम मुझे पुत्रभाव से या ब्रह्मभाव से प्राप्त कर चुकने के कारण जीवन्मुक्त हो जाओगे ॥१०२॥ तात ! अव मुझे व्रज में यशोदा के भवन में शीघ्र पहुँचा दो और वहाँ मुझे रखकर वहाँ से योगमाया को लेकर यहाँ चले आओ ॥१०३॥ इतना कह कर भगवान् बालरूप हो गए। श्यामल पुत्र को पृथ्वी पर नग्नभाव से सोया देख विष्णु की माया से मोहित होकर वसुदेव उस बालक के वारे में बोले कि—यह कूट परब्रह्म ही है क्या ? इससे इस सूतिकागृह की कैसी उत्तम शोभा हो रही है ॥१०४-१०५॥ यह कहकर उन्होंने पत्नी के साथ विचार करके बालक को गोद में उठा लिया और नन्द के गोकुल की ओर चल पड़े ॥१०६॥ नन्द के व्रज में जाकर शीघ्रता से सूती-गृह में चले गए और वहाँ यशोदा को शय्या पर गाढ़ निद्रा से

---

[1] क. ते सूतपेयं च।

निद्रान्वितं च नन्दं च सर्वं तत्र गृहे स्थितम्। ददर्श बालिकां नग्नां तप्तकाञ्चनसंनिभाम् ॥१०८॥
ईषद्धास्यां प्रसन्नास्यां पश्यन्तीं गृहशेखरम्। तां दृष्ट्वा वसुदेवश्च विस्मयं परमं ययौ ॥१०९॥
संस्थाप्य तत्र पुत्रं च कन्यामादाय सत्वरम्। जगाम मथुरां हृष्टः स्वकान्तासूतिकागृहम् ॥११०॥
स्थापयामास तत्रैव महामायां च बालिकाम्। रोरूयमाणां तामेव दृष्ट्वा हृष्टा च देवकी ॥१११॥
रोदनेनैव सा बाला बोधयामास रक्षकान्। उत्थाय रक्षकाः शीघ्रं च बालिकां जगृहुस्तदा ॥११२
गृहीत्वा बालिकां ते च प्रजग्मुः कंससंनिधिम्। जगाम देवकी पश्चाद्वसुदेवश्च शोकतः ॥११३॥
दृष्ट्वा च बालिकां कंसो नातिहृष्टो महामुने। रोरूयमाणां कल्याणीं तद्दया न बभूव ह ॥११४॥
तां गृहीत्वा च पाषाणे हन्तुं यान्तं सुदारुणम्। उवाच वसुदेवश्च देवकीं परमादरम् ॥११५॥
भो भोः कंस नृपश्रेष्ठ नीतिशास्त्रविशारद। निबोध वाक्यं सत्यं च नीतियुक्तं मनोरमम् ॥११६॥
हत्वाऽवयोः पुत्रषट्कं दया ते नास्ति बान्धव। अधुना चाष्टमे गर्भे बालिकामबलां मम ॥११७॥
हत्वा तव किमैश्वर्यं भविष्यति महीतले। स्त्रीमेव हन्तुमबलां किं क्षमा रणमूर्धनि ॥११८॥
इत्येवमुक्त्वा तं वसुदेवकी च सभातले। रुरोद पुरतस्तत्र कंसस्य च दुरात्मनः॥
कंसस्तयोर्वचः श्रुत्वा तामुवाच दुरात्मना ॥११९॥

से युक्त देखा ॥१०७॥ नन्द को भी निद्रित और घर में सब को सोये हुए देखा। फिर उस बालिका को देखा, जो नग्न एवं तपाये हुए सुवर्ण की भाँति कान्तिपूर्ण, मन्द मुसुकाती, प्रसन्न मुख और घर की छत की ओर दृष्टिपात कर रही थी। उसे देखकर वसुदेव को महान् आश्चर्य हुआ ॥१०८-१०९॥ बालक को वहाँ रखकर शीघ्र कन्या लेकर मथुरा की ओर चल पड़े और हर्षित होकर अपनी प्रिया के सूती-घर में पहुँच गये ॥११०॥ उस महामाया बालिका को वहाँ रख दिया। वह जोर-जोर से रोने लगी। उसे देखकर देवकी अति हर्षित हुईं ॥१११॥ उस कन्या ने अपने रोदन से ही रक्षकों को जगा दिया, जिससे उन लोगों ने उठ कर उस बालिका को शीघ्र ले लिया, और कंस के पास ले जाकर रख दिया। पीछे देवकी-वसुदेव भी शोकाकुल होते हुए वहाँ पहुँचे ॥११२-११३॥ महामुने! उस बालिका को देखकर कंस बहुत प्रसन्न नहीं हुआ, किन्तु रोदन करती हुई उस कल्याणी पर उसे दया भी नहीं आई ॥११४॥ उसे लेकर वह पत्थर पर मारने जा रहा था। उस समय अति भयंकर से देवकी और वसुदेव ने परम आदर पूर्वक कहा—नृपश्रेष्ठ, कंस! तुम नीतिशास्त्र के कुशलवेत्ता हो। कुछ मेरी सत्य, नीति युक्त एवं मनोरम बातें सुनने की कृपा करो ॥११५-११६॥ भाई! हमारे छह पुत्रों को मारने पर भी तुम्हें दया नहीं आई। अब इस समय आठवें गर्भ से मेरी यह अबला पुत्री उत्पन्न हुई है ॥११७॥ इसे मार कर तुम्हें भूतल में क्या ऐश्वर्य मिलेगा? क्या एक अबला युद्ध के मुहाने पर तुम्हारी राज्यलक्ष्मी का हनन करने में समर्थ हो सकती है? ॥११८॥ इतना कहकर उस सभा-स्थल में वसुदेव और देवकी दुष्ट कंस के सामने रोदन करने लगे। दुरात्मा कंस ने उन दोनों की बातें सुन कर उनसे कहा ॥११९॥

Funding by IKS-MoE

कंस उवाच

शृणु वाक्यं मदीयं च निबोध बोधयामि ते। तृणेन पर्वतं हन्तुं शक्तो धाता च दैवतः ॥१२०॥
कीटेन सिंहशार्दूलं मशकेन गजं तथा। शिशुना च महावीरं महान्तं क्षुद्रजन्तुभिः ॥१२१॥
मूषकेन च मार्जारं मण्डूकेन भुजंगमम्। एवं जन्येन जनकं भक्ष्येणैव च भक्षकम् ॥१२२॥
वह्निना च जलं नष्टुं वह्निं शुष्कतृणेन च। पीताःसप्त समुद्राश्च द्विजेनैकेन जह्नुना ॥१२३॥
धातुर्गतिर्विचित्रा तु दुर्ज्ञेया भुवनत्रये। दैवेन बालिका नष्टुं मां समर्था भविष्यति ॥१२४॥
बालिकां च वधिष्यामि नात्र कार्या विचारणा। इत्येवमुक्त्वा कंसश्च गृहीत्वा बालिकां तदा ॥१२५॥
हन्तुमारब्धवान्कंसस्तमुवाच वसुस्तदा। वृथा हिंसितवान्राजन्देहि बालां कृपानिधे ॥१२६॥
स तच्छ्रुत्वा विचारज्ञः कंसस्तुष्टो महामुने। संबोधयन्तं तत्रैव वाग्बभूवाशरीरिणी ॥१२७॥
हे कंस हंसि कां मूढ न विज्ञाय हरेर्गतिम्। कुत्रचित्त्वन्निहन्ताऽस्ति काले व्यक्तो भविष्यति ॥१२८॥
श्रुत्वैव देववाणीं च तत्याज बालिकां नृपः। वसुदेवो देवकी च तामादाय मुदान्वितौ ॥१२९॥
जग्मतुः स्वगृहं तौ च कन्यां कृत्वा स्ववक्षसि। मृतामिव पुनः प्राप्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् ॥१३०॥

कंस बोला—मेरी बातें सुनो! मैं तुम्हें समझा रहा हूँ, उसे सुनकर ज्ञान करो। विधाता दैववश तृण द्वारा पर्वत को नष्ट कर सकता है। उसी भाँति कीड़े द्वारा सिंह और बाघ को, मच्छर के द्वारा गजराज को, बच्चे से महान् वीर को, क्षुद्र जन्तुओं द्वारा महान् (विशालकाय प्राणी) को, चूहे से बिलार को और मेढ़क से सर्प का हनन करने में समर्थ हो सकता है। संतान से पिता को, भक्ष्य द्वारा भक्षक को, अग्नि से जल को, सूखे तृण से अग्नि को नष्ट कर सकता है। एक ही ब्राह्मण जह्नु ने सातों समुद्रों का पान कर लिया था ॥१२०-१२३॥ इससे तीनों लोकों में विधाता की गति विचित्र एवं दुर्ज्ञेय है। दैववश यह बालिका भी मुझे मारने में समर्थ हो सकती है, अतः इस बालिका का वध मैं अवश्य करूँगा। इसमें कुछ विचार करने की आवश्यकता नहीं है। इतना कहकर कंस ने बालिका को पकड़कर मारना चाहा कि बीच में वसुदेव ने उससे कहा—'राजन्! आपने अब तक व्यर्थ ही हिंसा की है। कृपानिधे! अब इस बालिका को मुझे दे दो। महामुने! यह सुनकर विचारशील कंस प्रसन्न हो गया। उसी समय कंस को सम्बोधित करती हुई आकाशवाणी हुई—मूढ़ कंस! भगवान् की गति को न समझ कर तू किसे मार रहा है।' तुम्हारा हनन करने वाला कहीं उत्पन्न हो गया है, जो अवसर आने पर प्रकट हो जायगा ॥१२४-१२८॥ इस प्रकार की देववाणी सुनते ही राजा ने बालिका को छोड़ दिया। वसुदेव और देवकी प्रसन्नता पूर्वक बालिका को गोद में लिए अपने घर चले आए। मृत की भाँति उसे पुनः प्राप्त करने पर, वसुदेव ने ब्राह्मणों को धन दिया ॥१२९-१३०॥ विप्र! वह कन्या परमात्मा श्रीकृष्ण की बड़ी बहन हुई। पार्वती के अंश से समुत्पन्न

सा परा भगिनी विप्र कृष्णस्य परमात्मनः। एकानंशेति विख्याता पार्वत्यंशसमुद्भवा ॥१३१॥
वसुस्तां द्वारकायां तु रुक्मिण्युद्वाहकर्मणि। ददौ दुर्वाससे भक्त्या शंकरांशाय भक्तितः ॥१३२॥
एवं निगदितं सर्वं कृष्णजन्मानुकीर्तनम्। जन्ममृत्युजरारिघ्नं सुखदं पुण्यदं मुने ॥१३३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० कृष्णजन्मख० नारदना० सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

नारद उवाच

जन्माष्टमीव्रतं ब्रूहि व्रतानां व्रतमुत्तमम्। फलं जयन्ती योगस्य सामान्येनैव सांप्रतम् ॥१॥
को वा दोषोऽप्यकरणे भोजने वा महामुने। उपवासफलं किं वा जयन्त्यां च सुसंमतम् ॥२॥
व्रतं पूजाविधानं च संयमस्य च सांप्रतम्। उपवासपारणयोः सुविचार्य वद प्रभो ॥३॥

नारायण उवाच

कृत्वा हविष्यं सप्तम्यां संयतः पारणे तथा। अरुणोदयवेलायां समुत्थाय परेऽहनि ॥४॥

वह बालिका 'एकानंशा' नामसे विख्यात हुई। वसुदेव ने द्वारिका में रुक्मिणी-विवाह के समय शंकर के अंशावतार दुर्वासा के हाथ में भक्तिपूर्वक उसे दिया था। मुने! इस प्रकार मैंने भगवान् श्रीकृष्ण की जन्म-कथा सुना दी, जो जन्म, मृत्यु और जरा का नाश करके सुख और पुण्य प्रदान करने वाली है ॥१३१-१३३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के कृष्ण-जन्मखण्ड में नारायण-नारद संवाद में सातवाँ अध्याय समाप्त ॥७॥

अध्याय ८

जन्माष्टमी व्रत सम्बन्धी फल-निरूपण

नारद बोले--व्रतों में जन्माष्टमी व्रत परमोत्तम व्रत है, उसके फल के साथ जयन्ती योग का भी सामान्यतया फल सम्प्रति बता दें ॥१॥ महामुने! उस दिन व्रत न करने से या भोजन करने से क्या दोष होता है? और जयंती में सर्वसम्मत उपवास का क्या फल है? ॥२॥ प्रभो! व्रत, पूजाविधान, संयम, उपवास और पारण के सम्बन्ध में भलीभाँति विचार कर कहिए ॥३॥

नारायण बोले--ब्रह्मन्! सप्तमी के दिन हविष्य भोजन करके संयमपूर्वक दूसरे दिन जन्माष्टमी तिथि के

नारिकरं नारिकेलं वा ?
घटे आवाहन किसका ?

प्रातः कृत्यं संविधाय स्नात्वा संकल्पमाचरेत्। व्रतोपवासयोर्ब्रह्मञ्छ्रीकृष्णप्रीतिहेतुकम् ॥५॥
मन्वादिदिवसे प्राप्ते यत्फलं स्नानपूजनैः। फलं भाद्रपदेऽष्टम्यां भवेत्कोटिगुणं द्विज ॥६॥
तस्यां तिथौ वारिमात्रं पितृणां यः प्रयच्छति । गयाश्राद्धं कृतं तेन शताब्दं नात्र संशयः ॥७॥
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा निर्माय सूतिकागृहम् । लोहखण्डवह्निजालैर्युक्तं रक्षकसंघकैः ॥८॥
तत्र द्रव्यं बहुविधं नाभिच्छेदनकर्तनम्। धात्रीस्वरूपां नारीं च यत्नतः स्थापयेद्बुधः ॥९॥
पूजाद्रव्याणि चारूणि सोपचाराणि षोडश। फलान्यष्टौ च मिष्टानि द्रव्याण्येव हि नारद ॥१०
जातीफलं च कङ्कोलं दाडिमं श्रीफलं तथा ॥११॥
नारिकेरं च जम्बीरं कूष्माण्डं च सुवाससम्। आसनं वसनं पाद्यं मधुपर्कं तथैव च ॥१२॥
अर्घ्यमाचमनीयं च स्नानीयं शयनं तथा। गन्धं पुष्पं च नैवेद्यं ताम्बूलमनुलेपनम् ॥१३॥
धूपदीपौ भूषणं वै चोपचारांश्च षोडश। पादप्रक्षालनं कृत्वा धृत्वा धौते च वाससी ॥१४॥
आचम्य चाऽसने स्थित्वा स्वस्तिवाचनपूर्वकम्। घटस्याऽरोपणं कृत्वा संपूज्य पञ्च देवताः ॥१५॥
घटे ह्यावाहनं कृत्वा श्रीकृष्णं परमेश्वरम्। वसुदेवं देवकीं च यशोदां नन्दमेव च ॥१६॥
रोहिणीं बलदेवं च षष्ठीदेवीं वसुंधराम्। रोहिणीं ब्राह्मणीं चैव अष्टमीं स्थानदेवताम् ॥१७॥
अश्वत्थाम्ना सह बलिं हनूमन्तं विभीषणम्। कृपं परशुरामं च वेदव्यासं मृकण्डुजम् ॥१८॥

कं नर्हि ?

अरुणोदय वेला में उठकर स्नान करके प्रातःकृत्य करे। अनन्तर व्रत और उपवास के लिए संकल्प करे—'भगवान् श्रीकृष्ण की प्रीति हेतु मैं आज व्रत और उपवास करूँगा' ॥४-५॥ द्विज! मन्वादि तिथि प्राप्त होने पर स्नान-पूजन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, इस भाद्रपद श्रीकृष्णाष्टमी में वह फल कोटि गुना अधिक प्राप्त होता है ॥६॥ उस तिथि में जिसने पितरों को केवल जलमात्र ही प्रदान किया, उसने मानों सौ वर्ष तक गयाश्राद्ध किया, इसमें संशय नहीं ॥७॥ स्नान-नित्य क्रिया करने के उपरान्त सूती-गृह का निर्माण करे और उसमें लोहा, खड्ग, अग्नि, रक्षकवृन्द (सेवकगण), अनेक भाँति के द्रव्य रखकर नाल काटने की कैंची और धात्रीस्वरूप एक स्त्री को उपस्थित करे। नारद! षोडशोपचार पूजन के सुन्दर सामान, आठ फल, मिठाइयाँ और द्रव्य, जायफल, कंकोल, अनार, बेल, नारियल, नीबू, कुम्हड़ा, उत्तम वस्त्र, आसन, वस्त्र, पाद्य (जल), मधुपर्क, अर्घ्य, आचमनीय (जल) स्नानार्थ जल, शय्या, गंध, पुष्प, नैवेद्य, ताम्बूल, उबटन, धूप, दीप, भूषण, यही षोडशोपचार पूजन की सामग्री है ॥८-१३॥ उपरान्त पैर धोकर दो धुले वस्त्र धारण कर आसन पर बैठ आचमन करे और स्वस्तिवाचन पूर्वक कलश-स्थापन करके पाँच देवों का पूजन करे ॥१४-१५॥ कलश पर भगवान् श्रीकृष्ण का आवाहन करके वसुदेव, देवकी, यशोदा, नंद, रोहिणी, बलदेव, षष्ठी देवी, पृथ्वी, रोहिणी, ब्राह्मणी, अष्टमी, स्थान-देवता, अश्वत्थामा, बलि, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम, वेदव्यास और मार्कण्डेय इन सभी देवों के आवाहनपूर्वक भगवान् का ध्यान करे।

Funding by IKS-MoE

सर्वस्याऽऽवाहनं कृत्वा ध्यानं कुर्याद्धरेस्तदा। पुष्पकं मस्तके न्यस्य पुनर्ध्यायेद्विचक्षणः ॥१९॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं शृणु वक्ष्यामि नारद। ब्रह्मणा कथितं पूर्वं कुमाराय महात्मने ॥२०।

बालं नीलाम्बुजाभमतिशयरुचिरं स्मेरवक्त्राम्बुजं तं
ब्रह्मेशानन्तधर्मैः कतिकतिदिवसैः स्तूयमानं परं [१]यस्।
ध्यानासाध्यमृषीन्द्रैर्मुनिगणमनुजैः सिद्धसंघैरसाध्यं
योगीन्द्राणामचिन्त्यमतिशयमतुलं साक्षिरूपं भजेऽहम् ॥२१॥

ध्यात्वा पुष्पं च दत्त्वा च तत्सर्वं च निवेदयेत्। एवं व्रती व्रतं कुर्याच्छृणु मन्त्रक्रमं मुने ॥२२॥
आसनं सर्वशोभाढ्यं सद्रत्नमणिनिर्मितम्। विचित्रं च विचित्रेण गृह्यतां शोभनं हरे ॥२३॥
वसनं वह्निशौचं च निर्मितं विश्वकर्मणा। प्रतप्तस्वर्णखचितं चित्रितं गृह्यतां हरे ॥२४॥
पादप्रक्षालनार्थं च स्वर्णपात्रस्थितं जलम्। पवित्रं निर्मलं चारु पाद्यं च गृह्यतां हरे ॥२५।
मधुसर्पिर्दधिक्षीरं शर्करासंयुतं परम्। स्वर्णपात्रस्थितं देयं स्नानार्थं गृह्यतां हरे ॥२६॥
दूर्वाक्षतं शुक्लपुष्पं स्वच्छतोयसमन्वितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीसहितं गृह्यतां हरे ॥२७॥
सुस्वादु स्वच्छतोयं च वासितं गन्धवस्तुना। शुद्धमाचमनीयं च गृह्यतां परमेश्वर ॥२८॥
गन्धद्रव्यसमायुक्तं विष्णो तैलं सुवासितम्। आमलक्या द्रवं चैव स्नानीयं गृह्यतां हरे ॥२९॥

मस्तक पर पुष्प रख कर बुद्धिमान् को पुनः ध्यान करना चाहिए ॥१६-१९॥ नारद! मैं सामवेदोक्त ध्यान तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो। इसे ब्रह्मा ने पूर्वकाल में महात्मा कुमार को बताया था ॥२०॥ मैं नीलकमल के समान आभा वाले बालमुकुन्द का भजन करता हूँ, जो अत्यन्त सुन्दर हैं तथा जिनके मुखारविन्द पर मन्द मुस्कान की छटा छा रही है। ब्रह्मा, शिव, शेषनाग और धर्म कई-कई दिनों तक उनकी स्तुति करते रहते हैं। वे ध्यान द्वारा साध्य नहीं होते। श्रेष्ठ ऋषियों, मुनिगणों, मनुष्यों तथा सिद्धों के लिए भी वे असाध्य हैं। योगीन्द्रों के चिन्तन में भी वे नहीं आते। वे अतिशय (सब से बढ़कर), अनुपम एवं साक्षी रूप हैं ॥२१॥ मुने! इस प्रकार ध्यान करके पुष्प प्रदान करे और समस्त वस्तुएँ अर्पित कर दे। इसी भाँति व्रती को व्रत करना चाहिए। अब मंत्र का क्रम बता रहा हूँ, सुनो। हरे! समस्त शोभा से सम्पन्न, उत्तम रत्नों एवं मणियों द्वारा निर्मित, विचित्र वेलबूटों से चित्रित एवं सुन्दर यह आसन ग्रहण करें ॥२२-२३॥ हरे! अग्नि की भाँति विशुद्ध, विश्वकर्मा द्वारा सुरचित, अत्यन्त तपाये हुए सुवर्ण से खचित इस चित्रित वस्त्र को ग्रहण करें ॥२४॥ हरे! सुवर्ण के पात्र में स्थित, पवित्र, निर्मल और सुन्दर यह जल चरण प्रक्षालन के लिए स्वीकार करें ॥२५॥ हरे! सुवर्ण के पात्र में स्थित मधु, घृत, दही, दुग्ध और शक्कर (रूप मधुपर्क या पञ्चामृत) स्नानार्थ आप स्वीकार करें ॥२६॥ हरे! दूर्वा, अक्षत, श्वेत पुष्प, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी मिश्रित स्वच्छ जल (रूप अर्घ्य) ग्रहण करें ॥२७॥ परमेश्वर! सुस्वादु और सुवासित, शुद्ध और स्वच्छ जल आचमन के लिए स्वीकार करें ॥२८॥ विष्णो! गंध द्रव्य एवं सुवासित तेल समेत इस आँवले के रस

---

[१] ख. यत्।

सद्रत्नमणिसारेण रचितां सुमनोहराम्। छादितां सूक्ष्मवस्त्रेण शय्यां च गृह्यतां हरे ॥३०॥
चूर्णं च वृक्षभेदानां मूलानां द्रवसंयुतम्। कस्तूरीद्रवसंयुक्तं गन्धं च गृह्यतां हरे ॥३१॥
पुष्पं सुगन्धियुक्तं च संयुक्तं कुङ्कुमेन च। सुप्रियं सर्वदेवानां सांप्रतं गृह्यतां हरे ॥३२॥
गृह्यतां स्वस्तिकोक्तं च मिष्टद्रव्यसमन्वितम्। सुपक्वफलसंयुक्तं नैवेद्यं गृह्यतां हरे ॥३३॥
लड्डुकं मोदकं चैव सर्पिः क्षीरं गुडं मधु। नवोद्धृतं दधि तक्रं नैवेद्यं गृह्यतां हरे ॥३४॥
शीतलं शर्करायुक्तं क्षीरं स्वादु सुपक्वकम्। ताम्बूलं भोगसारं च कर्पूरादिसमन्वितम् ॥
भक्त्या निवेदितमिदं गृह्यतां परमेश्वर ॥३५॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम् । अबीरचूर्णं रुचिरं गृह्यतां परमेश्वर ॥३६॥
तरुभेदरसोत्कर्षो गन्धयुक्तोऽग्निना सह । सुप्रियः सर्वदेवानां धूपोऽयं गृह्यतां हरे ॥३७॥
घोरान्धकारनाशैकहेतुरेव शुभावहः। सुप्रदीपो दीप्तिकरो दीपोऽयं गृह्यतां हरे ॥३८॥
पवित्रं निर्मलं तोयं कर्पूरादिसमायुतम्। जीवनं सर्वजीवानां पानार्थं गृह्यतां हरे ॥३९॥
नानापुष्पसमायुक्तं ग्रथितं सूक्ष्मतन्तुना। शरीरभूषणवरं माल्यं च प्रतिगृह्यताम् ॥४०॥
दत्त्वा देयानि द्रव्याणि पूजोपयोगितानि च। व्रतस्थानस्थितं द्रव्यं हरये देयमेव च ॥४१॥
फलानि तरुबीजानि स्वादूनि सुन्दराणि च। वंशवृद्धिकराण्येव गृह्यतां परमेश्वर ॥४२॥

को स्नानार्थ स्वीकार करें ॥२९॥ हरे ! उत्तम रत्नमणि के सार भाग से सुरचित, अति मनोहर एवं सूक्ष्म वस्त्र से आच्छादित इस शय्या को स्वीकार करें ॥३०॥ हरे ! विभिन्न वृक्षों के चूर्ण से युक्त, नाना प्रकार के वृक्षों की जड़ों के द्रव से पूर्ण तथा कस्तूरी से मिश्रित यह गन्ध ग्रहण करें ॥३१॥ हरे ! कुंकुम से युक्त और सुगन्धित पुष्प, जो सभी देवों को अत्यन्त प्रिय है, स्वीकार करें ॥३२॥ हरे ! स्वस्तिका (इमिरती) नाम वाली मिठाई और सुन्दर पके फल से युक्त नैवेद्य ग्रहण करें ॥३३॥ हरे ! लड्डू, मोदक, घृत, दुग्ध, गुड़, मधु, ताजा दही और तक्र का नैवेद्य स्वीकार करें ॥३४॥ परमेश्वर ! शीतल, शक्कर मिलाया हुआ ठंडा और परिपक्व स्वादिष्ठ दूध और कर्पूरादि से सुवासित यह भोगों का सारभूत ताम्बूल भक्तिपूर्वक निवेदित है, ग्रहण करें ॥३५॥ परमेश्वर ! चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम के द्रव से संयुक्त, सुन्दर अवीर चूर्ण (अनुलेपन के रूप में) ग्रहण करें ॥३६॥ हरे ! विभिन्न वृक्षों के उत्कृष्ट गोंद तथा अन्य सुगन्धित पदार्थों के संयोग से वना हुआ तथा सभी देवों को अतिप्रिय यह धूप ग्रहण करें ॥३७॥ हरे ! घोर अंधकार के नाश का एकमात्र कारण, शुभप्रद, ज्योतिकारक एवं सुन्दर यह प्रदीप ग्रहण करें ॥३८॥ हरे ! पवित्र, निर्मल, कर्पूरादि सुवासित और समस्त जीवों का जीवन रूप यह जल, पान करने के लिए ग्रहण करें ॥३९॥ अनेक भाँति के पुष्पों से मिश्रित, सूक्ष्म डोरे में गुंथा हुआ तथा शरीर के लिए भूषण रूप यह हार ग्रहण करें ॥४०॥ पूजा की अन्य देय सामग्रियाँ उन्हें अर्पित कर के व्रत के स्थान में रखा हुआ द्रव्य भगवान् को समर्पित कर देना चाहिए ॥४१॥ परमेश्वर ! सुन्दर, स्वादपूर्ण, तरु के बीज रूप एवं वंशवृद्धिकारी इन फलों को

Funding by IKS-MoE

आवाहितांश्च देवांश्च प्रत्येकं पूजयेद्व्रती। तान्पूज्य भक्तिभावेन दद्यात्पुष्पाञ्जलित्रयम् ॥४३॥
सुनन्दनन्दकुमुदान्गोपान्गोपीश्च राधिकाम्। गणेशं कार्तिकेयं च ब्रह्माणं च शिवं शिवाम् ॥४४॥
लक्ष्मीं सरस्वतीं चैव दिक्पालांश्च ग्रहांस्तथा। शेषं सुदर्शनं चैव पार्षदप्रवरांस्तथा ॥४५॥
संपूज्य सर्वदेवांश्च प्रणम्य दण्डवद्भुवि। ब्राह्मणेभ्यश्च नैवेद्यं दत्त्वा दद्याच्च दक्षिणाम् ॥४६
कथां च जन्माध्यायोक्तां शृणुयाद्भक्तिभावतः। तदा कुशासने स्थित्वा कुर्याज्जागरणं व्रती ॥४७॥
प्रभाते चाऽह्निकं कृत्वा संपूज्य श्रीहरिं मुदा। ब्राह्मणान्भोजयित्वा च कारयेद्धरिकीर्तनम् ॥४८॥

नारद उवाच

व्रतकालव्यवस्थां च वेदोक्तां सर्वसंमताम्। वेदार्थं च समालोच्य संहितां च पुरातनीम् ॥४९॥
उपवासे जागरणे व्रते किं वा फलं मुने। किं वा पापं तत्र भुक्त्वा वद वेदविदां वर ॥५०॥

नारायण उवाच

अष्टमी [1]कर्क्षसंयुक्ता रात्र्यर्धे यदि दृश्यते। स एव मुख्यकालश्च तत्र जातः स्वयं हरिः ॥५१॥
जयं पुण्यं च कुरुते जयन्ती तेन संस्मृता। तत्रोपोष्य व्रतं कृत्वा कुर्याज्जागरणं बुधः ॥५२॥

ग्रहण करें ॥४२॥ इसी भाँति आवाहित प्रत्येक देवों की अर्चना व्रती को करनी चाहिए। भक्तिभाव से उन देवों की पूजा करने के उपरान्त तीन पुष्पाञ्जलि अर्पित करे ॥४३॥ अनन्तर सुनन्द, नन्द, कुमुद नामक गोप और गोपियों समेत राधिका, गणेश, कार्तिकेय, ब्रह्मा, शिव, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, दिक्पाल एवं ग्रहों और शेष, सुदर्शन तथा पार्षद प्रवरों और अन्य समस्त देवों की अर्चना करके भूमि में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को नैवेद्य और दक्षिणा प्रदान करे ॥४४-४६॥ पश्चात् जन्माध्याय में बतायी गई कथा भक्तिपूर्वक सुन कर व्रती उस रात्रि कुशासन पर बैठ कर जागरण करे ॥४७॥ पुनः प्रातःकाल नित्य कर्म के उपरान्त सुप्रसन्न मन से भगवान् की पूजा और ब्राह्मण भोजन करा कर हरि कीर्तन कराये ॥४८॥

नारद बोले—मुने! वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! सर्वसम्मत एवं वेदोक्त व्रतकाल की व्यवस्था के निमित्त वेदार्थ और प्राचीन संहिता का विचार कर के व्रतोपवास और तन्निमित्त जागरण करने से किस फल की प्राप्ति होती है तथा उस दिन भोजन करने पर कौन-सा पाप लगता है, बताने की कृपा करें ॥४९-५०॥

नारायण बोले—आधी रात के समय अष्टमी तिथि यदि रोहिणी नक्षत्र से संयुक्त हो तो वही मुख्य समय माना जायगा क्योंकि स्वयं भगवान् उसी में प्रकट हुए हैं ॥५१॥ (उसमें व्रत करने से) जय और पुण्य की प्राप्ति

---

१. कर्क्षेण ब्रह्मनक्षत्रेण रोहिणीनक्षत्रेण संयुक्तेत्यर्थः।

कर्क्ष शब्द का [illegible]

महानिशा कदाऽस्ति ?
केन प्रकारेण व्रती पुंसां कोटिं समुद्धरेत् ?

सर्वापवादः कालोऽयं प्रधानः सर्वसंमतः। इति वेदविदां वाणी चेत्युक्ता वेधसा पुरा ।।५३।।
तत्र जागरणं कृत्वा यश्चोपोष्य व्रतं चरेत्। कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।।५४।।
वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसहिताऽष्टमी। सा सर्क्षाऽपि न कर्तव्या सप्तमीसहिताऽष्टमी ।।५५।।
अविद्धायां कऋक्षायां जातो देवकिनन्दनः। वेदवेदाङ्गगुप्तेति विशिष्टे मङ्गलक्षणे ।।५६।।
व्यतीते रोहिणीऋक्षे व्रती कुर्याच्च पारणाम्। तिथ्यन्ते च हरिं स्मृत्वा कृत्वा देवार्चनं व्रती ।।५७।।
पारणं पावनं पुंसां सर्वपापप्रणाशनम्। उपवासाङ्गभूतं च फलदं सिद्धिकारणम् ।।५८।।
सर्वेष्वेवोपवासेषु दिवा पारणमिष्यते। अन्यथा फलहानिः स्यात्कृते धारणपारणे ।।५९।।
न रात्रौ पारणं कुर्यादृते वै रोहिणीव्रतात्। निशायां पारणं कुर्याद्वर्जयित्वा महानिशाम् ।।६०।।
पूर्वाह्णे पारणं शस्तं कृत्वा विप्रसुरार्चनम्। सर्वेषां संमतं कुर्यादृते वै रोहिणीव्रतम् ।।६१।।
बुधसोमसमायुक्ता जयन्ती यदि लभ्यते। न कुर्याद्गर्भवासं च तत्र कृत्वा व्रतं व्रती ।।६२।।
उदये चाष्टमी किंचिन्नवमी सकला यदि। भवेद्बुधेन्दुसंयुक्ता प्राजापत्यर्क्षसंयुता ।।६३।।
अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वा न लभ्यते। व्रतं तत्र व्रती कुर्यात्पुंसां कोटिं समुद्धरेत् ।।६४।।
नृणां विना व्रतेनापि भक्तानां हीनसंपदाम्। कृतेनैवोपासेन प्रीतो भवति माधवः ।।६५।।

होती है अतः उसे जयन्ती भी कहते हैं। विद्वान् को चाहिए कि उसमें व्रतोपवास और जागरण करें। यह समय सब का अपवाद, प्रधान और सर्वसम्मत है, ऐसा वेदवेत्ताओं का कहना है। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने ऐसा ही कहा था ।।५२-५३।। उसमें जो व्रतोपवास पूर्वक जागरण करता है, वह करोड़ों जन्मों के सञ्चित पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ।।५४।। सप्तमी विद्धा अष्टमी में कभी भी व्रत नहीं करना चाहिए, चाहे उस समय (रोहिणी) नक्षत्र भी क्यों न आ जाए। क्योंकि अविद्ध रोहिणी नक्षत्र में भगवान् देवकीनन्दन प्रकट हुए थे ।।५५।। यह विशिष्ट मंगलमय क्षण वेदों और वेदांगों के लिए भी गुप्त है। रोहिणी नक्षत्र के व्यतीत होने पर व्रती को पारण करना चाहिए। अष्टमी तिथि के अन्त में भगवान् के स्मरणपूर्वक देवों का पूजन करके व्रती को वह पावन पारण करना चाहिए, जो मनुष्यों के समस्त पापों का नाश करने वाला है। वह उपवास का अंगभूत, फलप्रद एवं सिद्धि का कारण है ।।५६-५८।। सभी प्रकार के उपवासों में दिन में ही पारण करना चाहिए। अन्य प्रकार से व्रत और पारण करने पर फल की हानि होती है ।।५९।। रोहिणी व्रत को छोड़ कर रात्रि में कभी भी पारण नहीं करना चाहिए। निशा में पारण करे किन्तु महानिशा को छोड़ कर ।।६०।। ब्राह्मण एवं देवों की अर्चना के अनन्तर पूर्वाह्ण में पारण करना उत्तम है। सर्वसम्मत से निश्चय कर के पारण करना चाहिए किन्तु रोहिणी व्रत को छोड़ कर ।।६१।। बुध अथवा सोमयुक्त जयन्ती प्राप्त होने पर उसमें व्रत करने से व्रती को कभी भी गर्भ में वास नहीं करना पड़ता है ।।६२।। उदयकाल में कुछ अष्टमी हो और सम्पूर्ण समय नवमी तिथि हो और बुध या सोम दिन समेत रोहिणी नक्षत्र हो, ऐसा योग सैकड़ों वर्षों में भी मिले या न मिले, किन्तु उसमें व्रत करने से व्रती अपनी करोड़ों पीढ़ियों का उद्धार करता है ।।६३-६४।। जो सम्पत्तिहीन भक्त मनुष्य हैं, उन पर व्रतोत्सव के बिना भी केवल उपवास मात्र कर लेने से ही

Funding by IKS-MoE

कृतेनैवोपासेन कृतेनैवोपवासेन अन्यथा

भक्त्या नानोपचारेण रात्रौ जागरणेन च। फलं ददाति दैत्यारिर्जयन्तीव्रतसंभवम् ॥६६॥
वित्तशाठ्यमकुर्वाणः सम्यक्फलमवाप्नुयात्। कुर्वाणो वित्तशाठ्यं च लभते सदृशं फलम् ॥६७॥
अष्टम्यामथ रोहिण्यां न कुर्यात्पारणं बुधः। हन्यात्पुराकृतं पुण्यं चोपवासार्जितं फलम् ॥६८॥
तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रं च चतुर्गुणम्। तस्मात्प्रयत्नतः कुर्यात्तिथिभान्ते च पारणम् ॥६९॥
महानिशायां प्राप्तायां तिथिभान्तं यदा भवेत्। तृतीयेऽह्नि मुनिश्रेष्ठ पारणं कुरुते बुधः ॥७०॥
षण्मुहूर्ते व्यतीते तु रात्रावेव महानिशा। लभते ब्रह्महत्यां च तत्र भुक्त्वा च नारद ॥७१॥
गोमांसविण्मूत्रसमं ताम्बूलं च फलं जलम्। पुंसामभक्ष्यं शुद्धानामोदनस्य च का कथा ॥७२॥
त्रियामां रजनीं प्राहुस्त्यक्त्वाऽऽद्यं च चतुष्टयम्। नाडीनां तदुभे संध्ये दिवसाद्यन्तसंज्ञिते ॥७३॥
जन्माष्टम्यां च शुद्धायां कृत्वा जागरणं व्रतम्। शतजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥७४॥
जन्माष्टम्यां च शुद्धायामुपोष्य केवलं नरः। अश्वमेधफलं तस्य व्रतं जागरणं विना ॥७५॥
यद्बाल्ये यच्च कौमारे यौवने यच्च वार्धके। सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥७६॥
श्रीकृष्णजन्मदिवसे यश्च भुङ्क्ते नराधमः। स भवेन्मातृगामी च ब्रह्महत्याशतं लभेत् ॥७७॥

भगवान् माधव प्रसन्न हो जाते हैं। ॥६५॥ भक्तिपूर्वक विविध उपचार से पूजन और रात्रि-जागरण करने पर दैत्यों के शत्रु भगवान् उसे जयन्तीव्रत का फल प्रदान करते हैं ॥६६॥ उस समय वित्तशाठ्य कृपणता न करने वाले प्राणी को उत्तम फल प्राप्त होता है। जो कृपणता करता है, वह उसके अनुरूप ही फल पाता है ॥६७॥ विद्वान् यदि अष्टमी या रोहिणी में पारण नहीं करता है, तो पूर्व जन्म के उपवासादि जनित पुण्य-फल को नष्ट करता है ॥६८॥ तिथि आठ गुने फल को और नक्षत्र चौगुने फल को नष्ट करता है। इसलिए सप्रयत्न तिथि और नक्षत्र के अंत में पारण करे ॥६९॥ मुनिश्रेष्ठ ! यदि महानिशा के समय तिथि और नक्षत्र की समाप्ति होती हो, तो विद्वान् को तीसरे दिन पारण करना चाहिए ॥७०॥ नारद ! छह मुहूर्त व्यतीत होने पर रात्रि में महानिशा का समय हो जाता है, उसमें भोजन करने पर ब्रह्महत्या का दोषभागी होना पड़ता है ॥७१॥ गोमांस, विष्ठा और मूत्र के समान उसमें ताम्बूल, फल और जल हो जाता है। उस समय पुरुषों को शुद्ध भक्ष्य भी अभक्ष्य हो जाता है, तो भात की बात ही क्या कही जाए ॥७२॥ आदि और अन्त के चार-चार दण्ड को छोड़ कर बीच की तीन पहर वाली रात्रि को त्रियामा रजनी कहते हैं। उस रजनी के आदि और अन्त में दो संध्यायें होती हैं, जिनमें से एक को दिनादि या प्रातः सन्ध्या कहते हैं और दूसरी को दिनान्त या सायं सन्ध्या। शुद्धा जन्माष्टमी में व्रत एवं जागरण करके मनुष्य सौ जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥७३-७४॥ शुद्ध जन्माष्टमी में केवल उपवास करने से ही मनुष्य अश्वमेध का फल प्राप्त करता है। विना जागरण के केवल व्रत करने से ही बाल्यावस्था, कुमार, युवा और वृद्धावस्था के सात जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥७५-७६॥ भगवान् कृष्ण के जन्म-दिन जो भोजन करता है, वह अधम मनुष्य मातृगामी

Funding by IKS-MoE

कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम्। अनर्हश्चाशुचिः शश्वद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥७८॥
अन्ते वसेत्कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ। कृमिभिः शूलतुल्यैश्च तीक्ष्णदंष्ट्रैश्च भक्षितः ॥७९॥
पापी ततः समुत्थाय भारते जन्म चेल्लभेत्। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां च कृमिर्भवेत् ॥८०॥
गृध्रकोटिसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः। श्वापदः शतजन्मानि सृगालः सप्त जन्म च ॥८१॥
सप्तजन्मसु सर्पश्च काकश्च सप्तजन्मसु। ततो भवेन्नरो मूको गलत्कुष्ठी सदाऽतुरः ॥८२॥
ततो भवेत्पशुघ्नश्च व्यालग्राही ततो भवेत्। तदन्ते च भवेद्दस्युर्धर्महीनश्च[1] गृध्रकः ॥८३॥
ततो भवेत्स रजकस्तैलकारस्ततो भवेत् । ततो भवेद्देवलको ब्राह्मणश्च सदाऽशुचिः ॥८४॥
उपवासासमर्थश्चेदेकं विप्रं च भोजयेत्। तावद्धनानि वा दद्याद्यद्भुक्तं द्विगुणं भवेत् ॥८५॥
सहस्रसंमितां देवीं जपेद्वा प्राणसंयमान्। कुर्याद्द्वादशसंख्याकान्यथार्थं तद्व्रते नरः ॥८६॥
इत्येवं कथितं वत्स श्रुतं यद्धर्मवक्त्रतः। व्रतोपवासपूजानां विधानस्कृते च यत् ॥८७॥
इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० कृष्णजन्माष्टमीव्रतपूजोपवासनिरूपणं
नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

होने का दोषभागी और सौ ब्रह्म हत्याओं का दोषभागी होता हैं और उसके करोड़ों जन्मों का पुण्य निश्चित नष्ट हो जाता हे। देव एवं पितर के कार्य में निरन्तर अयोग्य और अपवित्र रहता हैं तथा अन्त में सूर्य-चन्द्रमा के वर्तमान कालतक काल सूत्र नामक नरक में पड़ता हैं। वहाँ शूल के समान तीक्ष्ण दाँत वाले कीड़े उसे नित्य काट-काट कर खाते हैं। पश्चात् वह पापी वहाँ से निकलने पर यदि भारत में जन्म ग्रहण करता हैं, तो साठ सहस्र करोड़ वर्षों तक गोप, सौ जन्म सूकर, सौ जन्म हिंसक जन्तु, सात जन्म गीदड़, सात जन्म सर्प, सात जन्म कौवा होकर पश्चात् मूक (गूंगा) और गलत्कुष्ठ का रोगी मनुष्य होता हैं, जो सदैव आतुर रहा करता हैं। अनन्तर पशु हिंसक, सँपेरा, धर्मरहित दस्यु (लुटेरा), गीध, रजक (धोबी), तेली होकर अंत में सदा अपवित्र पुजारी ब्राह्मण होता हैं ॥७७-८४॥ उपवास न कर सके तो एक ब्राह्मण को भोजन कराये अथवा उतना धन दे दे, जितने से वह दो बार भोजन कर ले ॥८५॥ प्राणायाम पूर्वक एक सहस्र गायत्री देवी का जप करे। उस व्रत में मनुष्य बारह हजार मंत्रों का यथार्थ रूप से जप करे।८६॥ मैंने धर्म के मुख से जो कुछ सुना था, वह सब तुम्हें सुना दिया और उसके न करने पर जो कुछ दोष होता हैं। वह सब बता दिया गया ॥८७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के नारद और नारायण के संवाद में कृष्णजन्माष्टमीव्रत, पूजा और उपवास निरूपण नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ॥८॥

---

[1] क. ॰हीनो नरघ्नकः।

Funding by IKS-MoE

अथ नवमोऽध्यायः

नारद उवाच

संस्थाप्य गोकुले कृष्णं यशोदामन्दिरे वसुः। जगाम स्वगृहं नन्दः किंचकार सुतोत्सवम् ॥१॥
किं चकार हरिस्तत्र कतिवर्षस्थितिः प्रभोः। बालक्रीडनकं तस्य वर्णय क्रमशो मुने ॥२॥
पुरा कृता या प्रतिज्ञा गोलोके राधया सह। तत्कृतं केन विधिना प्रतिज्ञापालनं हरेः ॥३॥
कीदृग्वृन्दावनं नाम मण्डलं किंविधं वद। रासक्रीडां जलक्रीडां संव्यस्य वर्णय प्रभो ॥४॥
नन्दस्तपः किं चकार यशोदा चाथ रोहिणी । हरेः पूर्वं च हलिनः कुत्र जन्म बभूव ह ॥५॥
पीयूषखण्डमाख्यानमपूर्वं श्रीहरेः स्मृतम्। विशेषतः कविमुखान्नव्यं नूनं पदे पदे ॥६॥
स्वरासमण्डलक्रीडां वर्णय स्वयमेव च। परोक्षवर्णनात्काव्यं प्रशस्तं नव्यवर्णनम् ॥७॥
श्रीकृष्णांशो भवान्साक्षाद्योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः। यो यस्यांशः स च जनस्तस्यैव सुखतः सुखी ॥८॥
त्वयैव वर्णितौ पादौ विलीनौ तु युवां हरेः। साक्षाद्गोलोकनाथांशस्त्वमेव तत्समो महान् ॥९॥

नारायण उवाच

ब्रह्मेशशेषविघ्नेशाः कूर्मो धर्मोऽहमेव च। नरश्च कार्तिकेयश्च श्रीकृष्णांशा वयं नव ॥१०॥

अध्याय ९

नन्दपुत्रोत्सव-वर्णन

नारद बोले—वसुदेव ने भगवान् श्रीकृष्ण को यशोदा के महल में रख दिया और अपने घर चले गये। पश्चात् उन्होंने किस प्रकार पुत्रोत्सव मनाया? वहाँ उनकी स्थिति कितने वर्षों तक रही ? उनकी बाल-लीला क्रमशः बताइये ॥१-२॥ गोलोक में पूर्वसमय भगवान् ने राधा से जो प्रतिज्ञा की थी, उन्होंने किस प्रकार उस प्रतिज्ञा का पालन किया? ॥३॥ प्रभो! वृन्दावन कैसा था ? रास कैसा था? जलक्रीड़ा और रासक्रीड़ा का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए॥४॥ नन्द, यशोदा और रोहिणी ने कौन-सा तप किया था? भगवान् के पूर्व बलभद्र का जन्म कहाँ हुआ था? ॥५॥ हरि का अपूर्व आख्यान अमृतखण्ड के समान माना गया है, विशेषतः कवि के मुख से हरिचरित्रमय काव्य पद-पद पर नूतन प्रतीत होता है, आप अपने रासमण्डल की क्रीड़ा का स्वयं ही वर्णन कीजिए। काव्य में परोक्ष वस्तु का वर्णन होता है। परन्तु जहाँ प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तु का वर्णन हो, उसे उत्तम कहा गया ॥६-७॥ आप भगवान् श्रीकृष्ण के अंश होने से योगीन्द्रों के गुरु के गुरु हैं। जो जिसका अंश होता है वह उसी के सुख से सुखी होता है ॥८॥ भगवान् के चरण-कमलों का वर्णन आपने ही किया था, जिसमें आप दोनों नर-नारायण विलीन हो गये थे। इसलिए आप साक्षात् गोलोक-नाथ के अंश और उन्हीं के समान महान् हैं ॥९॥

नारायण बोले—ब्रह्मा, शिव, शेष, गणेश, कच्छप, धर्म, मैं, नर और कार्तिकेय, ये नव भगवान्

अहो गोलोकनाथस्य महिमा केन वर्ण्यते। यं स्वयं नो विजानीमो न वेदाः किं विपश्चितः ॥११॥
सूकरो वामनः कल्किबौद्धः कपिलमीनकौ। एते चांशाः कलाश्चान्ये सन्त्येव कतिधा मुने ॥१२॥
कूर्मो नृसिंहो रामश्च श्वेतद्वीपविराड्विभुः । परिपूर्णतमः कृष्णो वैकुण्ठे गोकुले स्वयम् ॥१३॥
वैकुण्ठे कमलाकान्तो रूपभेदाच्चतुर्भुजः । गोलोके गोकुले राधाकान्तोऽयं द्विभुजः स्वयम् ॥१४॥
अस्यैव तेजो नित्यं च चित्ते कुर्वन्ति योगिनः। भक्ताः पादाम्बुजं तेजः कुतस्तेजस्विनं विना ॥१५॥
शृणु विप्र वर्णयामि यशोदानन्दयोस्तपः। रोहिण्याश्च यतो हेतोर्ददृशुस्ते हरेर्मुखम् ॥१६॥
वसूनां प्रवरो नन्दो नाम्ना द्रोणस्तपोधनः। तस्य पत्नी धरा साध्वी यशोदा सा तपस्विनी ॥१७॥
रोहिणी सर्पमाता च कद्रूश्च सर्पकारिणी। एतेषां जन्मचरितं निबोध कथयामि ते ॥१८॥
एकदा च धराद्रोणौ पर्वते गन्धमादने। पुण्यदे भारते वर्षे गौतमाश्रमसंनिधौ ॥१९॥
चक्रतुश्च तपस्तत्र वर्षाणामयुतं मुने। श्रीकृष्णदर्शनार्थं च निर्जने सुप्रभातटे ॥२०॥
न ददर्श हरिं द्रोणो धरा चैव तपस्विनी। कृत्वाऽग्निकुण्डं वैराग्यात्प्रवेष्टुं समुपस्थितौ ॥२१॥
तौ मर्तुकामौ दृष्ट्वा च वाग्बभूवाशरीरिणी। द्रक्ष्यथः श्रीहरिं पृथ्व्यां गोकुले पुत्ररूपिणम् ॥२२॥

श्रीकृष्ण के अंश हैं ॥१०॥ अहो, गोलोकनाथ की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है, जिसे मैं स्वयं नहीं जानता और न वेद जानते हैं। फिर दूसरे विद्वान् क्या जान सकते हैं ? ॥११॥ मुने ! सूकर, वामन, कल्कि, बौद्ध, कपिल, मत्स्य, ये भी भगवान् के अंश हैं और अन्य कितने ही अवतार हैं, जो श्रीकृष्ण की कला मात्र हैं ॥१२॥ कूर्म, नृसिंह, राम और श्वेतद्वीप के विराट् स्वामी विष्णु पूर्ण अंश से सम्पन्न हैं। श्रीकृष्ण परिपूर्णतम परमात्मा हैं। वे स्वयं ही वैकुण्ठ और गोलोक में निवास करते हैं । वैकुण्ठ में वे कमलाकान्त कहे गये हैं और रूपभेद से चतुर्भुज हैं। गोलोक और गोकुल में ये द्विभुज श्रीकृष्ण स्वयं ही राधाकान्त कहलाते हैं ॥१३-१४॥ योगी लोग नित्य इन्हीं के तेज का ध्यान करते हैं और भक्तलोग तेजोमय चरण-कमल का ध्यान करते हैं। बिना तेजस्वी के तेज कहाँ संभव हो सकता है ? ॥१५॥ विप्र ! अब मैं यशोदा, नन्द और रोहिणी के तप का वर्णन कर रहा हूँ, जिसके कारण उन लोगों ने भगवान् का मुख दर्शन किया था, सुनो। नन्द वसुओं में श्रेष्ठ एवं द्रोण नामक वसु थे और उनकी सती एवं तपस्विनी धरा नामक पत्नी यशोदा हुई थीं ॥१६-१७॥ सर्पों को जन्म देने वाली नागमाता ही रोहिणी हुई थी अब इन लोगों के जन्म-चरित कह रहा हूँ, सुनो । मुने ! एकबार धरा और द्रोण ने गन्धमादन पर्वत पर पुण्यप्रद भारतवर्ष में गौतम-आश्रम के समीप दश सहस्र वर्षों तक तप किया। वहाँ सुप्रभा नदी के तट पर निर्जन प्रदेश में वे लोग भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ तप कर रहे थे। ॥१८-२०॥ अनन्तर द्रोण और तपस्विनी धरा भगवान् का दर्शन न पाने पर वैराग्यवश अग्निकुण्ड में प्रवेश करने के लिए तैयार हो गये ॥२१॥ उन्हें मरने के लिए तैयार देखकर आकाशवाणी हुई कि—वसुश्रेष्ठ ! जन्मान्तर में पृथ्वी पर गोकुल में पुत्ररूप में भगवान् का दर्शन तुम्हें प्राप्त होगा। योगियों को भी उन भगवान् का दर्शन होना

Funding by IKS-MoE

जन्मान्तरे वसुश्रेष्ठ दुर्दर्शं योगिनां विभुम्। ध्यानासाध्यं च विदुषां ब्रह्मादीनां च वन्दितम् ॥२३॥
श्रुत्वैवं तद्धराद्रोणौ जग्मतुः स्वालयं सुखात्। लब्ध्वा तु भारते जन्म दृष्टं ताभ्यां हरेर्मुखम् ॥२४॥
यशोदानन्दयोरेवं कथितं चरितं तव। सुगोप्यं त्रिदशानां च रोहिणीचरितं शृणु ॥२५॥
एकदा देवमाता च पुष्पोत्सवदिने सती। विज्ञापनं चरद्वारा चकार कश्यपं मुने ॥२६॥
सुस्नाता सुन्दरी देवी रत्नालंकारभूषिता। चकार वेषं विविधं ददर्श दर्पणे मुखम् ॥२७॥
कस्तूरीबिंदुना सार्धं सिन्दूरबिन्दुसंयुतम् । रत्नकुण्डलशोभाढ्यं पत्राभरणभूषितम् ॥२८॥
गजमौक्तिकसंयुक्तं नासाग्रं सुमनोहरम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥२९॥
वक्रभ्रूभङ्गिना युक्तं विचित्रकज्जलोज्ज्वलम् । पक्वदाडिमबीजाभदन्तपंक्तिविराजितम् ॥३०॥
पक्वबिम्बाधरौष्ठं च सस्मितं सुन्दरं सदा। अतीव कमनीयं च मुनीन्द्रचित्तमोहनम् ॥३१॥
एवंभूतं मुखं दृष्ट्वा सुन्दरी स्वगृहे स्थिता। पश्यन्ती पतिमार्गं च कामबाणप्रपीडिता ॥३२॥
शुश्राव वार्तामदितिः कश्यपं कद्रुसंयुतम्। रत्नसारसमारम्भे तस्या वक्षःस्थले स्थितम् ॥३३॥
श्रुत्वा चुकोप साध्वी सा हताशा रतिकातरा। न शशाप पतिं प्रेम्णा शशाप सर्पमातरम् ॥३४॥
न देवालययोग्या सा धर्मिष्ठा धर्मनाशिनी। दूरं गच्छतु स्वर्लोकादात्मयोनिं च मानवीम् ॥३५॥

कठिन है। वे विद्वानों के भी ध्यान में न आने वाले हैं तथा ब्रह्मा आदि के भी वन्दनीय हैं ॥२२-२३॥ इसे सुनकर धरा और द्रोण सुखपूर्वक अपने घर चले गये। और दूसरे जन्म में भारत में उन दोनों ने भगवान् के मुख का दर्शन किया ॥२४॥ इस प्रकार यशोदा और नन्द का चरित तुम्हें सुना दिया, जो देवों के लिए भी अत्यन्त गोपनीय है। अब रोहिणी-चरित कह रहा हूँ, सुनो ॥२५॥ मुने! एकबार पुष्पोत्सव (ऋतुधर्म) के समय सती देवमाता अदिति ने दूत द्वारा कश्यप को संदेश भिजवाया। भलीभाँति स्नान कर रत्नों के अलंकारों से भूषित होने पर भी उस सुन्दरी ने दर्पण में मुख देखती हुई विविध वेष बनाया ॥२६-२७॥ कस्तूरी बिन्दु समेत सिन्दूर की बिन्दी लगाई, रत्नों के कुण्डल पहने, पत्राभरण बनाये। अत्यन्त मनोहर नासिका के अग्रभाग में गजमुक्ता धारण की। शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान उसका मुख था और शरद् ऋतु के कमल के समान नेत्र थे, जो टेढ़ी भौंहों से युक्त और विचित्र काजल से समुज्ज्वल (रतनार) थे। पके अनार दाने के समान दाँतों की पंक्तियों से मुख शोभायमान था। पके विम्बाफल के समान अधरोष्ठ थे। इस प्रकार मन्द मुसुकान से सुन्दर तथा मुनीन्द्रों के चित्त को मोहित करने वाला कमनीय मुख देखकर वह सुन्दरी अपने घर में विराजमान थी और कामवाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर बार-बार पति का मार्ग देख रही थी ॥२८-३२॥ इसी बीच उसने दूत द्वारा सुना कि—कश्यप कद्रू के साथ रहकर उसके वक्षःस्थल पर स्थित हैं ॥३३॥ अनन्तर उस सती ने हताश और रतिकातर होते हुए भी प्रेमवश पति को तो शाप नहीं दिया, किन्तु सर्पमाता कद्रू को शाप दे दिया—वह धर्मिष्ठा देवालय के योग्य न होकर धर्मनाशिनो हुई है, अतः स्वर्गलोक से दूर जाकर मनुष्य-योनि में जन्मग्रहण करे।

श्रुत्वैवं सा चरद्वारा शशाप देवमातरम्। सा चैवं मानवीं योनिं यातु मर्त्ये जरायुताम् ॥३६॥
कश्यपो बोधयामास कद्रुं च सर्पमातरम्। काले यास्यसि मर्त्यं च मया सह शुचिस्मिते ॥३७॥
त्यज भीतिं लभ सुखं द्रक्ष्यसि श्रीहरेर्मुखम्। एवमुक्त्वा कश्यपश्च जगाम चादितेर्गृहम् ॥३८॥
वाञ्छां पूर्णां च तस्याश्च चकार भगवान्विभुः। ऋतौ तत्र महेन्द्रश्च बभूव च सुरर्षभः ॥३९॥
अदितिर्देवकी चैव सर्पमाता च रोहिणी। कश्यपो वसुदेवश्च श्रीकृष्णजनको महान् ॥४०॥
रहस्यं गोपनीयं च सर्वं निगदितं मुने। अधुना बलदेवस्य जन्माख्यानं मुने शृणु ॥४१॥
अनन्तस्याप्रमेयस्य सहस्रशिरसः प्रभोः। रोहिणी वसुदेवस्य भार्यारत्नं च प्रेयसी ॥४२॥
जगाम गोकुलं साध्वी वसुदेवाज्ञया मुने। संकर्षणस्य रक्षार्थं कंसभीता पलायिता ॥४३॥
देवक्याः सप्तमं गर्भं माया कृष्णाज्ञया तदा । रोहिण्या जठरे तत्र स्थापयामास गोकुले ॥४४॥
संस्थाप्य च तदा गर्भं कैलासं सा जगाम ह। दिनान्तरे कतिपये रोहिणी नन्दमन्दिरे ॥४५॥
सुषाव पुत्रं कृष्णांशं तप्तरौप्याभमीश्वरम्। ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥४६॥
तस्यैव जन्ममात्रेण देवा सुमुदिरे तदा। स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुरानका मुरजादयः ॥४७॥
जयशब्दं शङ्खशब्दं चक्रुर्देवा मुदाऽन्विताः। नन्दो हृष्टो ब्राह्मणेभ्यो धनं बहुविधं ददौ ॥४८॥

इस बात को दूत-मुख से सुन कर कद्रू ने भी देवमाता अदिति को शाप दिया कि—वह भी मर्त्यलोक में जराग्रस्त मानवीयोनि में उत्पन्न हो ॥३४-३६॥ अनन्तर कश्यप ने सर्पमाता कद्रू को समझाया कि—पवित्र मुसुकान वाली ! समय आने पर मर्त्यलोक चलते समय हम भी साथ रहेंगे। इसलिए भय त्याग कर हर्ष प्रकट करो। क्योंकि वहाँ पुत्ररूप में भगवान् का मुख दर्शन करोगी। इतना कहकर कश्यप अदिति के घर चले गये ॥३७-३८॥ वहाँ पहुँच कर भगवान् कश्यप ने अदिति का मनोरथ पूरा किया, जिससे उस गर्भ से देवश्रेष्ठ महेन्द्र उत्पन्न हुए ॥३९॥ वही अदिति वहाँ देवकी हुईं और सर्पमाता रोहिणी। एवं कश्यप भगवान् श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव हुए ॥४०॥ मुने ! सारा गोपनीय रहस्य बता दिया, अब बलदेव का जन्माख्यान कह रहा हूँ, सुनो ॥४१॥ वे अनन्त अप्रमेय एवं सहस्र शिर (फण) वाले प्रभु (के अवतार) थे। स्त्रीरूप रोहिणी वसुदेव की प्रियतमा थीं ॥४२॥ मुने ! वसुदेव की आज्ञा से वह पतिव्रता संकर्षण के रक्षार्थ कंस से भयभीत होकर गोकुल चली गयीं ॥४३॥ उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से माया ने देवकी का सातवाँ गर्भ—उनके उदर से खींच कर गोकुलस्थित रोहिणी के उदर में स्थापित कर दिया ॥४४॥ उस गर्भ को वहाँ रख कर देवी स्वयं कैलास को चली गईं। कुछ दिन व्यतीत होने पर रोहिणी ने नन्द के भवन में श्रीकृष्ण के अंश स्वरूप पुत्र उत्पन्न किया, जो तपायी हुई चांदी के समान कान्तिपूर्ण, ईश्वर, मन्दमुसुकान समेत प्रसन्न मुख और ब्रह्म तेज से प्रज्वलित था ॥४५-४६॥ उसके जन्मग्रहण मात्र से देववृन्द अत्यन्त हर्षित हुए। स्वर्ग में नगाड़े, आनक और मुरज (मृदंग) आदि वाद्य बज उठे ॥४७॥ अत्यत्त प्रसन्न होकर देवों ने जय-जय कार समेत शंख की ध्वनि की। नंद ने प्रसन्न होकर

चिच्छेद नाडीं धात्री च स्नापयामास बालकम्। जयशब्दं जगुर्गोप्यः सर्वाभरणभूषिताः ॥४९॥
परपुत्रोत्सवं नन्दश्चकार परमादरात्। तदा यशोदा गोपीभ्यो ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥५०॥
धनानि नानावस्तूनि तैलं सिन्दूरमेव च। इत्येवं कथितं वत्स यशोदानन्दयोस्तपः ॥५१॥
जन्माख्यानं च हलिनो रोहिणीचरितं तथा। अधुना ते वाञ्छनीयं नन्दपुत्रोत्सवं शृणु ॥५२॥
सुखदं मोक्षदं सारं जन्ममृत्युजरापहम्। मङ्गलं कृष्णचरितं वैष्णवानां च जीवनम् ॥५३॥
सर्वाशुभविनाशं च भक्तिदास्यप्रदं हरेः। श्रीकृष्णं वसुदेवश्च संस्थाप्य नन्दमन्दिरे ॥५४॥
गृहीत्वा बालिकां हृष्टो जगाम निजमन्दिरम्। कथितं चरितं तस्याः श्रुतं सन्मुखतो मुने ॥५५॥
अधुना गोकुले कृष्णचरितं शृणु मङ्गलम्। वसुदेवे गृहं याते यशोदा नन्द एव च ॥५६॥
मङ्गले सूतिकागारे जयागारे जयान्विते। ददर्श पुत्रं भूमिष्ठं नवीननीरदप्रभम् ॥५७॥
अतीव सुन्दरं नग्नं पश्यन्तं गृहशेखरम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यं नीलेन्दीवरलोचनम् ॥५८॥
रुदन्तं च हसन्तं च वेणुसंसक्तविग्रहम्। हस्तद्वयं सुविन्यस्तं प्रेमवन्तं पदाम्बुजम् ॥५९॥
दृष्ट्वा नन्दः स्त्रिया सार्धं हरिं हृष्टो बभूव ह। धात्री तं स्नापयामास शीततोयेन बालकम् ॥६०॥
चिच्छेद नाडीं बालस्य हर्षाद्गोप्यो जयं ददुः। आजग्मुर्गोपिकाः सर्वा बृहच्छ्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥६१

ब्राह्मणों को अनेक भाँति का बहुत-सा धन दान किया ॥४८॥ धाई ने नाल छेदन कर बालक को नहलाया। समस्त भूषणों से विभूषित गोपियाँ जय-जय कार करने लगीं ॥४९॥ नन्द ने परम आदर से दूसरे के पुत्र का उत्सव मनाया। अत्यन्त प्रसन्न होकर यशोदा ने गोपियों और ब्राह्मणों को धन, विविध वस्तुएँ, तेल, सिन्दूर प्रदान किये। वत्स! इस प्रकार यशोदा और नन्द का तप मैंने तुम्हें बता दिया, जिसमें बलभद्र का जन्माख्यान और रोहिणी का चरित भी सम्मिलित हैं। अब तुम्हारा अभिलषित नन्द-पुत्रोत्सव कह रहा हूँ, सुनो ॥५०-५२॥ कृष्ण का चरित्र सुखदायक, मोक्षप्रद, तत्त्वरूप, जन्म-मृत्यु-जरा का अपहारी, वैष्णवों का जीवन, समस्त अशुभ का विनाशक और भगवान् की भक्ति एवं दास्य देने वाला है। मुने! वसुदेव श्रीकृष्ण को नन्द के भवन में रखकर और बालिका को लेकर सहर्ष अपने घर को लौटे। यह प्रसंग तथा उस कन्या का श्रवण-सुखद चरित्र पहले कहा जा चुका है ॥५३-५५॥ सम्प्रति गोकुल में भगवान् कृष्ण का मंगलमय चरित्र सुनो। वसुदेव के चले जाने पर नन्द-यशोदा ने मंगलमय उस सूती-गृह में, जो विजय का गृह तथा जया तिथि से युक्त था, नवीन मेघ के समान कान्तिपूर्ण बालक को भूमि पर पड़ा हुआ देखा ॥५६-५७॥ वह अत्यन्त सुन्दर एवं नग्न बालक गृह का ऊपरी कलश देख रहा था। उसका मुख शरत्काल की पूर्णिमा के चन्द्रमा को लज्जित कर रहा था। दोनों नेत्र नीलकमल के समान थे। वह कभी रोता था और कभी हँसने लगता था। उसके अंगों में धूलि के कण लगे हुए थे। उसके दोनों हाथ भूमि पर टिके हुए थे और युगल चरणारविन्द प्रेम के पुञ्ज-से जान पड़ते थे ॥५८-५९॥ भगवान् को देखकर पत्नी सहित नन्द को अत्यन्त हर्ष हुआ। अनन्तर धाय ने उस बालक को शीतल जल से स्नान कराया ॥६०॥ बालक की नाल काटी। हर्षमग्न गोपियाँ जय-जय कार करने लगीं। स्थूल नितम्ब और

Funding by IKS-MoE

बालिकाश्च वयस्याश्च विप्रपत्न्यश्च सूतिकाम्। आशिषं युयुजुः सर्वा ददृशुर्बालकं मुदा ॥६२॥
क्रोडे चक्रुः प्रशंसन्त्य ऊषुस्तत्र च काश्चन। नन्दः सचैलः स्नातश्च धृत्वा धौते च वाससी ॥६३॥
पारम्पर्यविधिं तत्र चकार हृष्टमानसः। ब्राह्मणान्भोजयामास कारयामास मङ्गलम् ॥६४॥
वाद्यानि वादयामास बन्दिभ्यश्च ददौ धनम्। ततो नन्दश्च सानन्दं ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् ॥६५॥
सद्रत्नानि प्रवालानि हीरकाणि च सादरम्। तिलानां पर्वतान्सप्त सुवर्णशतकं मुने ॥६६॥
रौप्यं धान्याचलं वस्त्रं गोसहस्रं मनोहरम्। दधि दुग्धं शर्करां च नवनीतं घृतं मधु ॥६७॥
मिष्टान्नं सल्लड्डुकौघं स्वादूनि मोदकानि च। भूमिं च सर्वसस्याढ्यां वायुवेगांस्तुरंगमान् ॥६८॥
ताम्बूलानि च तैलानि दत्त्वा हृष्टो बभूव ह। रक्षितुं सूतिकागारं योजयामास ब्राह्मणान् ॥६९॥
तत्र मन्त्रज्ञमनुजान्स्थविरान्गोपिकागणान्। वेदांश्च पाठयामास हरेर्नामैकमङ्गलम् ॥७०॥
भक्त्या च ब्राह्मणद्वारा पूजयामास देवताः। गोपालिकाश्च वृद्धाश्च रत्नालंकारभूषिताः ॥७१॥
आनन्दाः सुमुखा गोपाः पुलकाञ्चितविग्रहाः। प्रहृष्टमानसा ब्रह्मन्नाजग्मुर्नन्दमन्दिरम् ॥७२॥
आशीर्वादं प्रयुञ्जाना ब्राह्मणा वेदपारगाः। शीघ्रगाः पुष्पहस्ताश्चाप्याजग्मुर्नन्द० ॥७३॥
नानाविधाश्च गणका ज्योतिःशास्त्रविशारदाः। वाक्सिद्धाः पुस्तककरा आजग्मुर्नन्द० ॥७४॥
सस्मिता विप्रपत्न्यश्च वयस्याः स्थविरा वराः। बालिका बालकयुता आजग्मुर्नन्द० ॥७५॥

चलायमान स्तनों वाली सभी गोपियाँ वहाँ आयीं ॥६१॥ बालिकाएँ, सखियाँ और ब्राह्मण की स्त्रियाँ सती-गृह में जाकर बालक को देखने लगीं और हर्ष से उसे शुभ आशीर्वाद देने लगीं ॥६२॥ कुछ स्त्रियाँ वहाँ बालक को अपनी गोद में रखकर उसकी प्रशंसा करने लगीं। उनमें से कितनी ही गोपियाँ वहीं रह गईं। नन्द ने सचैल स्नान कर दो नूतन वस्त्र धारण किये तथा परम्पराप्राप्त विधान को सुप्रसन्न मन से सम्पन्न किया—ब्राह्मण भोजन कराया, मंगल पाठ करवाया, वाजे बजवाये और याचकों को धन प्रदान किया। पश्चात् आनन्दमग्न नन्द ने ब्राह्मणों को धन दान किया ॥६३-६५॥ मुने ! उत्तम रत्न, मूंगे और हीरा भी आदरपूर्वक उन्हें दिये। तिलों के सात सर्वत, सुवर्ण के सौ ढेर चाँदी, धान्य के पर्वत, वस्त्र, एक सहस्र सुन्दर गौएँ, दही, दूध, शक्कर, मक्खन, घी, मधु, मिष्टान्न, उत्तम लड्डू, स्वादपूर्ण मोदक, सस्यसम्पन्न (फूली-फली) भूमि, वायु वेग वाले घोड़े, ताम्बूल और तेल प्रदान करके नन्द अत्यन्त हर्षित हुए। उन्होंने सूतिका-गृह की रक्षा के लिए ब्राह्मणों को वहाँ नियुक्त किया ॥६६-६९॥ पुनः वहाँ मंत्र-निपुण मनुष्यों और वृद्ध गोपियों को रखकर वेदपाठ और एकमात्र मंगलमय हरिकीर्तन कराया ॥७०॥ भक्तिपूर्वक ब्राह्मण द्वारा देवपूजन कराया। रत्नों के अलंकारों से भूषित गोपियाँ आयीं। आनन्द से रोमाञ्चित शरीर वाले आनन्दविभोर, सुमुख तथा प्रसन्नचित्त गोप नन्द के भवन में आये ॥७१-७२॥ वेदपारंगत ब्राह्मण हाथ में पुष्प लिए आशीर्वाद देते हुए शीघ्रता से नन्द के घर पधारे ॥७३॥ ज्योतिष शास्त्र के विशेषज्ञ विविध ज्योतिषी, जिनकी वाणी सिद्ध थी, हाथ में पुस्तकें लिए नन्द-भवन में आये ॥७४॥ युवती तथा बड़ी-बूढ़ी ब्राह्मण-पत्नियाँ बालक-बालिकाओं को साथ ले मुसकराती हुई

Funding by IKS-MoE

तेभ्योऽपि प्रददौ रत्नं धनानि विविधानि च। वरवस्त्राणि रौप्याणि गोसहस्राणि सादरम् ॥७६॥
नन्दस्तेभ्यो नमस्कृत्य चकार विनयं मुदा। आशिषं युयुजुः सर्वे ददृशुर्बालकं परम् ॥७७॥
एवं सभृतसंभारो बभूव व्रजपुंगवः। गणकैः कारयामास यद्भविष्यं शुभाशुभम् ॥७८॥
एवं ववर्ध बालश्च शुक्लपक्षे यथा शशी। नन्दालये हली चैव भुङ्क्ते मातुः पयोधरम् ॥७९॥
तदा च रोहिणी हृष्टा तत्र पुत्रोत्सवे मुदा। तैलसिन्दूरताम्बूलं धन ताभ्यो ददौ मुने ॥८०॥
दत्त्वाऽऽशिषश्च शिरसि ताश्च ते स्वालयं ययुः। यशोदारोहिणीनन्दास्तस्थुर्गेहे मुदाऽन्विताः ॥८१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० नन्दपुत्रोत्सवो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

नारायण उवाच

अथ कंसः सभामध्ये स्वर्णसिंहानस्थितः। शुश्राव वाचं गगने सूनृतामशरीरिणीम् ॥१॥
किं करोषि महामूढ चिन्तां स्वश्रेयसः कुरु। जातः कालो धरण्यां ते तिष्ठोपाये नराधिपः ॥२॥

नन्द-भवन में आयीं ॥७५॥ नन्द ने उन्हें भी नाना प्रकार के धन, रत्न, उत्तम वस्त्र तथा सहस्र गौएँ प्रदान कीं ॥७६॥ नन्द ने उन्हें नमस्कार करके हर्ष से विनय प्रकट किया। सबने आशीर्वाद दिये और उत्तम बालक को देखा ॥७७॥ इस प्रकार व्रजराज नन्द ने सामग्री एकत्रित करके पुत्रोत्सव मनाया और ज्योतिषियों द्वारा शुभाशुभ भविष्य का प्रकाशन कराया ॥७८॥ तदनन्तर वह बालक नन्द-भवन में शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति दिनों दिन बढ़ने लगा। नन्द-भवन में बलभद्र भी माता (रोहिणी) का दुग्ध पान कर रहे थे। मुने! उस समय रोहिणी ने भी उस पुत्रोत्सव में आयी हुई स्त्रियों को सुप्रसन्न मन से तेल, सिन्दूर, ताम्बूल और धन प्रदान किये। वे सब बालक के सिर पर आशीर्वाद देकर अपने-अपने घर चली गयीं। केवल यशोदा नन्द तथा रोहिणी घर में आनन्द-पूर्वक रहीं ॥७९-८१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के नारायण-नारद-संवाद में नन्द-पुत्रोत्सव-वर्णन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ॥९॥

अध्याय १०

पूतना-मोक्ष-वर्णन

नारायण बोले—अनन्तर राजसभा में स्वर्ण-सिंहासन पर बैठे हुए कंस ने आकाशवाणी सुनी—'ओ महामूढ़! तुम क्या कर रहे हो? अपने कल्याण की चिन्ता करो। राजन्! तुम्हारा काल पृथ्वी पर उत्पन्न

स्वर्णसिंहासनस्थितः

नन्दाय तनयं दत्त्वा वसुदेवस्तवान्तकम्। कन्यामादाय तुभ्यं च दत्त्वा संमायया स्थितः ॥३॥
मायांशा कन्यकेयं च वासुदेवः स्वयं हरिः। तव हन्ता गोकुले च वर्धते नन्दमन्दिरे ॥४॥
देवक्याः सप्तमो गर्भो वर्धते नन्दमन्दिरे। देवक्याः सप्तमो गर्भो न सुस्रावामृतं सुतम् ॥५॥
स्थापयामास माया तं रोहिणीजठरे किल। तत्र जातश्च शेषांशो बलदेवो महाबलः ॥६॥
गोकुले तौ च वर्धेते कालौ ते नन्दमन्दिरे। श्रुत्वेति वचनं राजा बभूवाऽनम्रकंधरः ॥७॥
चिन्तामवाप सहसा तत्याजाहारमुन्मनाः। पूतनां च समानीय प्राणेभ्यः प्रेयसीं सतीम् ॥८॥
उवाच भगिनीं राजा सभामध्ये च नीतिवित्।

कंस उवाच

पूतने गोकुलं गच्छ कार्यार्थं नन्दमन्दिरम्। ॥९॥
विषाक्तं च स्तनं कृत्वा शिशवे देहि सत्वरम्। त्वं मनोयायिनी वत्से मायाशास्त्रविशारदा ॥१०॥
मायामानुषरूपं च विधाय व्रज योगिनि। दुर्वाससो महामन्त्रं प्राप्य सर्वत्रगामिनी ॥११॥
सर्वरूपं विधातुं त्वं शक्ताऽसि सुप्रतिष्ठिते। इत्युक्त्वा तां महाराजस्तस्थौ संसदि नारद ॥१२॥
जगाम पूतना कंसं प्रणम्य कामचारिणी। तप्तकाञ्चनवर्णाभा नानालंकारभूषिता ॥१३॥

हो गया है, अपने कल्याण का उपाय सोचो। वसुदेव ने तुम्हारा विनाश करने वाला अपना पुत्र नन्द के यहाँ रख कर छल से लायी हुई कन्या तुम्हें सौंप दी ॥१-३॥ यह कन्या माया के अंश से उत्पन्न हुई है और स्वयं भगवान् वासुदेव (वसुदेव के पुत्र) होकर उत्पन्न हुए हैं। वे ही तुम्हारी हत्या करने वाले होंगे, इस समय गोकुल में नन्द के भवन में बढ़ रहे हैं ॥४॥ देवकी का सातवाँ गर्भ भी नन्द-भवन में बढ़ रहा है। देवकी का सातवाँ गर्भ स्खलित नहीं हुआ है, वह पुत्र जीवित है। योगमाया ने उसे रोहिणी के उदर में स्थापित कर दिया था। उस गर्भ से शेष के अंशभूत महाबली बलदेव प्रकट हुए हैं ॥५-६॥ वे दोनों (श्रीकृष्ण और बलदेव) तुम्हारे काल हैं और इस समय गोकुल के नन्द-भवन में पल रहे हैं।' ऐसी वाणी सुनकर राजा कन्धा झुकाकर सहसा चिन्ता करने लगा।। उसने अनमने होकर भोजन भी त्याग दिया और प्राणों से भी बढ़कर प्रिय बहन साध्वी पूतना को बुलाकर राजनीतिज्ञ भूप ने भरी सभा में इस प्रकार कहा ॥७-८-१/२॥

कंस बोला—पूतने ! तुम मेरे कार्य के लिए गोकुल में नन्द के भवन में जाओ और स्तनों में विष लगाकर शीघ्र ही नवजात शिशु के मुख में दे दो। वत्से ! तुम मन के समान चलने वाली और मायाशास्त्र में निपुण हो ॥९-१०॥ योगिनी ! तुम माया द्वारा मनुष्य रूप धारण कर जाओ। सुप्रतिष्ठते ! तुम दुर्वासा से महामंत्र को प्राप्त करके सर्वत्र जाने वाली हो तथा सब प्रकार के रूप धारण करने में समर्थ हो। नारद ! इतना कह कर महाराज (कंस) सभा में चुप हो गया ॥११-१२॥ अनन्तर कंस को प्रणाम कर स्वेच्छा-

बिभ्रती कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम्। कस्तूरीबिन्दुना युक्तं सिन्दूरं दधती मुदा ॥१४॥
मञ्जीररशनाभ्यां च कलशब्दं प्रकुर्वती। संप्राप्य गोष्ठं दुर्दर्शं नन्दालयमनोहरम् ॥१५॥
परिखाभिर्गंभीराभिर्दुर्लङ्घ्याभिश्च वेष्टितम्। रचितं प्रस्तरैर्दिव्यैर्निर्मितं विश्वकर्मणा ॥१६॥
इन्द्रनीलैर्मरकतैः पद्मरागैश्च भूषितम्। सुवर्णकलशैर्दिव्यैश्चित्रितैः शेखरोज्ज्वलैः ॥१७॥
प्राकारैर्गगनस्पर्शैश्चतुर्द्वारसमन्वितैः । युक्तलोहकपाटैश्च द्वारपालसमन्वितैः ॥१८॥
वेष्टितं सुन्दरं रम्यं सुन्दरीगणवेष्टितम्। मुक्तामाणिक्यपरशैः पूर्णरत्नादिभिर्धनैः ॥१९॥
स्वर्णपात्रघटाकीर्णं गवां कोटिभिरन्वितम्। भरणीयैः किंकरैश्च गोपलक्षैः समन्वितम् ॥२०॥
दासीनां च सहस्रैश्च कर्मव्यग्रैः समन्वितम्। प्रविवेशाऽश्रमं साध्वी सस्मिता सुमनोहरा ॥२१॥
दृष्ट्वा तां प्रविशन्तीं च गोप्यो दृष्ट्वाऽनुमेनिरे। किं वा पद्मालया दुर्गा कृष्णं द्रष्टुं समागता ॥२२॥
प्रणेमुर्गोपिका गोपाः पप्रच्छुः कुशलं च ताम्। ददौ सिंहासनं पाद्यं वासयामास तत्र वै ॥२३॥
पप्रच्छ कुशलं सा च गोपानां बालकस्य च। उवास सस्मिता साध्वी पाद्यं जग्राह सादरम् ॥२४॥
तामूचुर्गोपिकाः सर्वाः का त्वमीश्वरि सांप्रतम्। वासस्ते कुत्र किं नाम किं वाऽत्र कर्म नो वद ॥२५॥

चारिणी पूतना चल पड़ी। उसकी अंगकान्ति तपाये सुवर्ण की भाँति थी। वह विविध भूषणों से भूषित थी। मालती-माला से अलंकृत सुन्दर केशपाश धारण किये हुई थी। ललाट पर कस्तूरी की बिन्दी के साथ सिन्दूर लगाये हुई थी। पायल और करधनी की मधुरध्वनि करती हुई जा रही थी। व्रज में पहुँचकर उसने नन्द का सुन्दर भवन देखा। वह अन्य के लिए कठिनाई से देखने योग्य, दुलर्भदर्शन, गम्भीर और दुर्लंघ्य खाइयों से घिरा और विश्वकर्मा द्वारा दिव्य पत्थरों से सुरचित था ॥१३-१६॥ इन्द्रनील, मरकत मणि और पद्मराग मणियों से भूषित, दिंव्य सुवर्ण-कलश एवं चित्रित शिखरों से समुज्ज्वल, गगनस्पर्शी परकोटों एवं चार द्वारों से युक्त था। उसमें लोहे के किवाड़ लगे हुए थे। द्वारों पर द्वारपाल पहरा दे रहे थे ॥१७-१८॥ वह सुन्दर भवन सुन्दरी स्त्रियों से घिरा-सा, मोती, माणिक्य, पारसमणि तथा रत्नादि धनों से परिपूर्ण था। वहाँ सुवर्ण के पात्र और घट भारी संख्या में थे। करोड़ों गौएँ थीं। लाखों ऐसे गोप-सेवक थे, जिनका वहाँ भरण-पोषण होता था। विभिन्न कार्यों में लगी हुई सहस्रों दासियाँ थीं। ऐसे भवन में वह सती अति मनोहर वेष बनाये मन्द मुसुकाती हुई प्रविष्ट हुई ॥१९-२१॥ उसे प्रवेश करते हुए देखकर गोंपियों ने यह अनुमान किया कि—लक्ष्मी या दुर्गा कहीं कृष्ण को देखने के लिए तो नहीं आ गयीं। सभी गोप-गोपियों ने उससे प्रणामपूर्वक कुशल पूछा। उसे बैठने के लिए सिंहासन दिया और चरण-प्रक्षालन के लिए जल अर्पित किया। उस सती ने भी गोपों और बालक का कुशल पूछा। वह सुन्दरी वहाँ मुसकराती हुई बैठ गई। उसने आदर के साथ गोपियों का दिया हुआ पाद्य-जल ग्रहण किया ॥२२-२४॥ अनन्तर उससे सभी गोपियों ने पूछा—स्वामिनी ! तुम कौन हो ? इस समय कहाँ रहती हो ? क्या नाम है ? और यहाँ अपने आगमन का प्रयोजन बताने की कृपा करो ॥२५॥

तासां च वचनं श्रुत्वा साऽप्युवाच मनोहरम्। मथुरावासिनी गोपी सांप्रतं विप्रकामिनी ॥२६॥
श्रुतं वाचिकवक्त्रेण तत्त्वं मङ्गलसूचकम्। बभूव स्थविरे काले नन्दपुत्रो महानिति ॥२७॥
श्रुत्वाऽगताऽहं तं द्रष्टुमाशिषं कर्तुमीप्सिताम्। पुत्रमानय तं दृष्ट्वा यामि कृत्वा तमाशिषम् ॥२८॥
ब्राह्मणीवचनं श्रुत्वा यशोदा हृष्टमानसा। प्रणमय्य सुतं क्रोडे ददौ ब्राह्मणयोषितः ॥२९॥
कृत्वा क्रोडे तु तं साध्वी चुचुम्ब च पुनः पुनः। स्तनं ददौ सुखासीना हरिं पुण्यवती सती ॥३०॥
अहोऽद्भुतोऽयं बालस्ते सुन्दरो गोपसुन्दरि। गुणैर्नारायणसमो बालोऽयमित्युवाच ह ॥३१॥
कृष्णो विषस्तनं पीत्वा जहास वक्षसि स्थितः। तस्याः प्राणैः सह पपौ विषक्षीरं सुधामिव ॥३२॥
तत्याज बालकं साध्वी प्राणांस्त्यक्त्वा पपात ह। विकृताकारवदना चोत्तानवदना मुने ॥३३॥
स्थूलदेहं परित्यज्य सूक्ष्मदेहं विवेश सा। आरुरोह रथं शीघ्रं रत्नसारविनिर्मितम् ॥३४॥
पार्षदप्रवरैर्दिव्यैर्वेष्टितं सुमनोहरैः। श्वेतचामरलक्षेण शोभितं लक्षदर्पणैः ॥३५॥
वह्निशौचेन वस्त्रेण सूक्ष्मेण भूषितं वरम्। नानाचित्रविचित्रैश्च सद्रत्नकलशैर्युतम् ॥३६॥
सुन्दरं शतचक्रं च ज्वलितं रत्नतेजसा। पार्षदास्तां रथे कृत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ॥३७॥
दृष्ट्वा तमद्भुतं लोका गोपिकाश्चातिविस्मिताः। कंसः श्रुत्वा च तत्सर्वं विस्मितश्च बभूव ह ॥३८॥

गोपियों की बातें सुनकर उसने भी अति मनोहर शब्दों में कहा कि—मैं मथुरा की रहने वाली गोपी हूँ और सम्प्रति ब्राह्मण की स्त्री हूँ ॥२६॥ मैंने संदेशवाहक के द्वारा यह मंगल-सूचक संवाद सुना है कि वृद्धावस्था में नन्द के महान् पुत्र उत्पन्न हुआ है। ऐसा सुनकर उसे अभीष्ट आशीर्वाद देने आयी हूँ, पुत्र को ले आओ, मैं उसे देखकर आशिष देकर चली जाऊँगी ॥२७-२८॥ ब्राह्मणी की बातें सुन कर हर्ष-मग्न यशोदा ने प्रणाम कर बच्चे को उस ब्राह्मण-पत्नी की गोद में रख दिया ॥२९॥ उस सती ने बच्चे को अपनी गोद में रख कर बार-बार चुम्बन किया, अनन्तर सुख से बैठी हुई उस पुण्यवती सती ने श्रीकृष्ण के मुख में अपना स्तन दे दिया ॥३०॥ उसने कहा—'गोप-सुन्दरी! यह तुम्हारा बालक अद्भुत एवं सुन्दर है। यह गुणों में नारायण के समान है।' भगवान् कृष्ण उसका विषाक्त स्तन पीकर उसके वक्षःस्थल पर बैठे हँसने लगे। उन्होंने उसके प्राणों समेत उसका विष मिश्रित दुग्ध अमृत की भाँति पान कर लिया ॥३१-३२॥ मुने! उस सती ने अपने प्राणों के साथ ही बालक को त्याग दिया और पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसका आकार और मुख विकराल दिखाई देने लगा। वह उत्तान मुँह होकर पड़ी थी। उसने स्थूल शरीर को त्याग कर सूक्ष्म शरीर में प्रवेश किया और शीघ्रता से रत्नों के उत्तम भाग से सुरचित रथ पर बठ गयी। वह रथ दिव्य एवं श्रेष्ठ पार्षदों से घिरा हुआ, अति मनोहर, लाखों श्वेत चामरों तथा दर्पणों से सुशोभित, अग्निशुद्ध सूक्ष्म वस्त्र से भूषित, श्रेष्ठ, उत्तम रत्नों के बने चित्र-विचित्र कलशों और सौ पहियों से युक्त, सुन्दर और रत्नों के तेज से प्रज्वलित था। पार्षद-वृन्द उसे उसी रथ पर बैठाकर उत्तम गोलोक ले गये ॥३३-३७॥ गोकुल के गोपों और गोपियों

4 *. वक्षसि

यशोदा बालकं नीत्वा क्रोडे कृत्वा स्तनं ददौ। मङ्गलं कारयामास विप्रद्वारा शिशोर्मुने ॥३९॥
ददाह देहं तस्याश्च नन्दः सानन्दपूर्वकम्। चन्दनागुरुकस्तूरीसमं संप्राप्य सौरभम् ॥४०॥

नारद उवाच

सा वा का राक्षसीरूपा कथं पुण्यवती सती। केन पुण्येन तं दृष्ट्वा जगाम कृष्णमन्दिरम् ॥४१॥

नारायण उवाच

बलियज्ञे वामनस्य दृष्ट्वा रूपं मनोहरम्। बलिकन्या रत्नमाला पुत्रस्नेहं चकार तम् ॥४२॥
मनसा मानसं चक्रे पुत्रस्य सदृशो मम। पिबेद्यदि स्तनं कृष्णः करोमि तं च वक्ष्यसि ॥४३॥
हरिस्तन्मानसं ज्ञात्वा पपौ जन्मान्तरे स्तनम्। ददौ मातृगतिं तस्यै कामपूरः कृपानिधिः ॥४४॥
दत्त्वा विषस्तनं कृष्णं पूतना राक्षसी मुने। भक्त्या मातृगतिं प्राप कं भजाम विना हरिम् ॥४५॥
इत्येव कथितं विप्र श्रीकृष्णगुणकीर्तनम्। पदे पदे सुमधुरं प्रवरं कथयामि ते ॥४६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्म० नारदना० पूतनामोक्षो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

ने उसे देखकर अत्यन्त आश्चर्य प्रकट किया ॥३८॥ मुने ! यशोदा ने बच्चे को उठाकर अपनी गोद में रख लिया और स्तन-पान कराने लगीं। ब्राह्मण द्वारा पुत्र का मंगल कर्म भी कराया ॥३९॥ अनन्तर नन्द ने बड़े आनन्द से पूतना की देह का दाह-संस्कार किया, जिससे चन्दन, अगुरु और कस्तूरी के समान सुगन्ध निकल रही थी ॥४०॥

नारद बोले—राक्षसी का रूप धारण करने वाली वह सती पुण्यवती कौन थी ? किस पुण्य से भगवान् का दर्शन कर वह कृष्ण-लोक को गयी ?

नारायण बोले—बलि के यज्ञ में वामन का मनोहर रूप देखकर बलि की कन्या रत्नमाला ने उनके प्रति पुत्र-स्नेह किया था। उसने अपने मन ही मन सोचा था कि—इन्हीं के समान पुत्र मेरा स्तन पान करता तो मैं उसके मुख में स्तन देकर वक्षःस्थल पर बिठाती ॥४२-४३॥ भगवान् ने उसका मनोभाव समझकर दूसरे जन्म में उसका स्तन पान किया। कामनाओं को परिपूर्ण करने वाले कृपानिधान भगवान् ने उसे माता की गति प्रदान की ॥४४॥ मुने ! पूतना राक्षसी ने भक्तिपूर्वक भगवान् कृष्ण को अपना विषाक्त स्तन पिलाकर माता की गति प्राप्त की, तो मैं ऐसे भगवान् को छोड़कर किसका भजन करूँ ? ॥४५॥ विप्र ! इस प्रकार मैंने भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन किया जो पद-पद पर अति मधुर है। अब इससे और श्रेष्ठ गुण बता रहा हूँ ॥४६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में पूतना मोक्ष-वर्णन नामक दसवाँ अध्याय समाप्त ॥१०॥

१क. °पा सुने पु०।

Funding by IKS-MoE

अथैकादशोऽध्यायः

नारायण उवाच

एकदा गोकुले साध्वी यशोदा नन्दगेहिनी। गृहकर्मणि संसक्ता कृत्वा बालं स्ववक्षसि ।।१।।
वात्यारूपं तृणावर्तमागच्छन्तं च गोकुलम्। श्रीहरिर्मनसा ज्ञात्वा भारयुक्तो बभूव ह ।।२।।
भाराक्रान्ता यशोदा च तत्याज बालकं तदा। शयने कारयित्वा च जगाम यमुनां मुने ।।३।।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वात्यारूपधरोऽसुरः। आदाय तं भ्रामयित्वा गत्वा च शतयोजनम् ।।४।।
बभञ्ज वृक्षशाखाश्च ह्यन्धीभूत च गोकुलम्। चकार सद्यो मायावी पुनस्तत्र पपात ह ।।५।।
असुरोऽपि हरिस्पर्शाज्जगाम हरिमन्दिरम्। सुन्दरं रथमारुह्य कृत्वा कर्मक्षयं स्वकम् ।।६।।
पाण्ड्यदेशोद्भवो राजा शापाद्दुर्वाससोऽसुरः। श्रीकृष्णचरणस्पर्शाद्गोलोकं स जगाम ह ।।७।।
वात्यारूपे गते गोपा गोप्यश्च भयविह्वलाः। न दृष्ट्वा बालकं तत्र शयानं शयने मुने ।।८।।
सर्वे निजघ्नुः स्वं वक्षःस्थलं शोकाकुला भयात्। केचिन्मूर्च्छामवापुश्च रुरुदुश्चापि केचन ।।९।।
अन्वेषणं प्रकुर्वन्तो ददृशुर्बालकं व्रजे। धूलिधूसरसर्वाङ्गं पुष्पोद्यानान्तरस्थितम् ।।१०।।

अध्याय ११

तृणावर्त-वध-वर्णन

नारायण बोले—एक बार गोकुल में नन्द की पत्नी सती यशोदा बालक को गोद में लिये घर के कार्य में लगी हुई थीं ।।१।। उसी समय तृणावर्त नामक राक्षस बवंडर का रूप धारण कर गोकुल में आया। मन से उसका आगमन समझ कर भगवान् ने अपने शरीर का भार बढ़ा लिया ।।२।। मुने ! उनका भार न सहने के कारण यशोदा बालक को शय्या पर शयन कराकर स्वयं यमुना जी चली गयीं ।।३।। इसी बीच वह बवंडर रूपधारी राक्षस उन्हें लेकर घुमाता हुआ सौ योजन ऊपर ले गया ।।४।। उसने वृक्षों की डालियाँ तोड़ दीं तथा इतनी धूल उड़ायी कि गोकुल में अँधेरा छा गया। उस मायावी ने तत्काल यह सब उत्पात किया। फिर वह (स्वयं भी श्रीकृष्ण के भार से आक्रान्त हो) वहीं पृथ्वी पर गिर पड़ा। हरि के स्पर्श से वह असुर भी वैकुण्ठ को चला गया। अपने कर्मों का नाश करके सुन्दर रथ पर आरूढ़ हो गोलोक में जा पहुँचा। वह पाण्ड्यदेश का राजा था और दुर्वासा के शाप वश असुर हो गया था। श्रीकृष्ण के चरण-स्पर्श होने से वह गोलोक पहुँच गया ।।५-७।। मुने ! बवंडररूपधारी उस राक्षस के चले जाने पर गोप-गोपियाँ भय से व्याकुल हो गये। शय्या पर बालक को न देखकर शोकाकुल हो वे सब भय से छाती पीटने लगे। कोई मूर्च्छित हो गये और कोई रोदन करने लगे ।।८-९।। वन में खोजते हुए लोगों ने बालक को देखा, जो सर्वाङ्ग में धूलि लपेटे, पुष्प वाटिका के

Funding by IKS-MoE

बाह्यैकदेशे सरसस्तीरे नीरसमन्विते । पश्यन्तं गगनं शश्वद्द(द्रु)दन्तं भयकातरम् ॥११॥
गृहीत्वा बालकं नन्दः कृत्वा वक्षसि सत्वरम् । दर्शं दर्शं मुखं तस्य रुरोद च शुचाऽन्वितः ॥१२॥
यशोदा रोहिणी शीघ्रं दृष्ट्वा बालं रुरोद च । कृत्वा वक्षसि तद्वक्त्रं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः ॥१३॥
मङ्गलं कारयामास स्नापयामास बालकम् । स्तनं ददौ यशोदा च प्रसन्नवदनेक्षणा ॥१४॥

नारद उवाच

कथं शशाप दुर्वासाः पाण्ड्यदेशोद्भवं नृपम् । सुविचार्य वद ब्रह्मन्नितिहासं पुरातनम् ॥१५॥

नारायण उवाच

पाण्ड्यदेशाधिपो राजा सहस्राक्षः प्रतापवान् । स्त्रीसहस्रं समादाय कामबाणप्रपीडितः ॥१६॥
मनोहरे निर्जने च पर्वते गन्धमादने । विजहार नदीतीरे पुष्पोद्याने मनोरमे ॥१७॥
नानाप्रकारशृङ्गारं विपरीतादिकं नृपः । नखदन्तक्षताङ्गं च कामिनीनां चकार सः ॥१८॥
कृत्वा मूर्तिसहस्रं च योगीन्द्रो नृपतीश्वरः । कृत्वा स्थलविहारं च जलक्रीडां चकार ह ॥१९॥
नार्यो विवसनाः सर्वा नग्नाश्च नृपयोषितः । विजह्रुश्च पुष्पभद्रानदीतीरे मनोहरे ॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र समायातो महामुनिः । शिष्यलक्षैः परिवृतो गच्छन्वै शंकरं प्रति ॥२१॥

भीतर स्थित था ॥१०॥ बाहर के एक प्रदेश में तालाब के किनारे—जल के समीप—भय से कातर होने का शब्द करते हुए आकाश की ओर देख रहा था ॥११॥ नंद ने शीघ्र बालक को उठाकर अपनी गोद में रख लिया और बच्चे का मुख बार-बार देखते हुए शोकाकुल होकर रोदन भी करने लगे ॥ १२॥ पश्चात् यशोदा-रोहिणी भी बालक को देखते ही रोदन करने लगीं और अपनी गोद में रख कर बार-बार उसका मुख चूमने लगीं ॥१३॥ पुनः मंगल कराकर बालक को स्नान कराया। अनन्तर मुख और नेत्र से प्रसन्नता प्रकट करती हुई यशोदा ने उसे अपना स्तन-पान कराया ॥१४॥

नारद बोले—ब्रह्मन् ! पाण्ड्यदेशोत्पन्न राजा को दुर्वासा ने क्यों शाप दिया था ? भलीभाँति विचार कर यह प्राचीन इतिहास बतायें ॥१५॥

नारायण बोले—पाण्ड्य देश का राजा सहस्राक्ष प्रतापी था । वह कामदेव के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर अपनी सहस्र स्त्रियों के साथ मनोहर गन्धमादन पर्वत के निर्जन स्थान में—नदी तट पर स्थित मनोरम पुष्पवाटिका—में विहार करने लगा ॥१६-१७॥ राजा ने उन कामिनियों के साथ विपरीत रति-नखक्षत और दन्तक्षत आदि विविध शृंगार किया ॥१८॥ उस योगीन्द्र राजा ने अपना सहस्र रूप बनाकर उन स्त्रियों के साथ स्थल-विहार पूर्वक जल-विहार किया ॥१९॥ इस प्रकार पुष्पभद्रानदी के मनोहर तट पर राजा की सभी रानियाँ वस्त्ररहित होकर क्रीड़ा कर रही थीं । इसी बीच अपने लक्ष शिष्यों समेत महामुनि दुर्वासा

दृष्ट्वा मुनिं महामत्तो नोत्तस्थौ न ननाम ह। वाचा हस्तेन राजा च संभाषां न चकार ह ॥२२॥
दृष्ट्वा चुकोप नृपतिं शशाप स्फुरिताधरः। असुरो भव पापिष्ठ योगाद्भ्रष्टो भुवं व्रज ॥२३॥
भारते लक्षवर्षं च स्थातव्यं ते नराधम। ततो हरिपदस्पर्शाद्गोलोकं यास्यसि ध्रुवम् ॥२४॥
स्थाने स्थाने हे महिष्यो जनिं लभत भारते। राजेन्द्रगेहे राजेन्द्राद्भविष्यथ मनोहरा ॥२५॥
इत्युक्त्वा तु मुनीन्द्रस्तु जगाम शंकरालयम्। हाहाशब्दं विचक्रुश्च शिष्यसंघाः कृपालवः ॥२६॥
गते मुनीन्द्रे राजेन्द्रो रुरोद च सरित्तटे। रुरुदू रमणीयाश्च रमण्यो विरहातुराः ॥२७॥
हे नाथ रमणश्रेष्ठेत्युच्चार्य च पुनः पुनः। त्वां विना वा क्व यास्यामो वयं त्वं वा क्व यास्यसि ॥२८
वयं नो विहरिष्यामस्त्वया सार्धं सुनिर्जने। न करिष्यसि राज्यं त्वं न यास्यामो गृहं वयम् ॥२९॥
शरच्चन्द्रप्रभामुष्टं न द्रक्ष्यामो मुखं तव। प्रसारिताभ्यां बाहुभ्यां नाऽनयिष्याम .इत्यतः ॥३०॥
इत्युक्त्वा रुरुदुः सर्वाः पुरस्कृत्य नराधिपम्। मूर्च्छामवापुश्चरणं धृत्वा राज्ञः सरित्तटे ॥३१॥
राजाऽग्निकुण्डमाधाय नारीभिः सह नारद। स्मृत्वा हरिपदाम्भोजं ज्वलदग्निं विवेश ह ॥३२॥
हाहाकारं सुराः सर्वे विचक्रुर्गगने स्थिताः। इत्यूचुर्मुनयश्चैवं दैवं च बलवत्तरम् ॥३३॥
स च राजा तृणावर्तो जगाम हरिमन्दिरम्। महिष्यो भारते वर्षे लेभिरे जन्म वाञ्छितम् ॥३४॥

शंकर के यहाँ जाते हुए वहाँ आ गये ॥२०-२१॥ मुनि को देखकर मतवाला राजा न तो उठकर खड़ा हुआ और न प्रणाम ही किया, न वाणी या हाथ के संकेत से ही कुछ कहा ॥२२॥ राजा को देखकर मुनि को क्रोध हुआ, उनके ओठ फड़कने लगे। तब उन्होंने शाप दिया—पापिष्ठ ! तू योग से भ्रष्ट होकर राक्षस हो जा, पृथ्वी पर जा। नराधम ! तू भारत में लाख वर्षों तक रहने के उपरान्त भगवान् के चरण-स्पर्श होने पर निश्चित ही गोलोक को जाएगा ॥२३-२४॥ रानियों ! तुम लोग भी भारत में स्थान-स्थान पर राजाओं के यहाँ जन्म ग्रहण करोगी ॥२५॥ यह कहकर महामुनि शिव के निवास की ओर चल पड़े। उनके दयालु शिष्य-समुदाय हाहाकार कर उठे ॥२६॥ मुनिराज के चले जाने पर वह राजा सरोवर के तट पर रोने लगा और उसकी रमणीय रमणियाँ विरह-व्याकुल होकर रोने लगीं ॥२७॥ नाथ ! रमणश्रेष्ठ ! तुम्हारे बिना हम लोग कहाँ जायेंगी और हमें छोड़ कर तुम कहाँ जाओगे ? हाय ! अति निर्जन स्थानों में तुम्हारे साथ हम लोग अब विहार न कर सकेंगी। तुम राज्य नहीं करोगे तो हम लोग अब घर भी नहीं जायेंगी ॥२८-२९॥ शरत्कालीन चन्द्र-कान्ति को चुराने वाले तुम्हारे मुख को अब न देख पायेंगी और फैली हुई इन बाहुओं के भीतर अब न आने पायेंगी ॥३०॥ उस नदी-तट पर राजा के चरण पकड़ कर सभी रानियाँ रोते-रोते मूर्च्छित हो गयीं ॥३१॥ नारद ! पश्चात् रानियों समेत राजा प्रज्वलित अग्निकुण्ड में भगवान् के चरण-कमल का स्मरण करता हुआ प्रविष्ट हो गया, जिसे देखकर आकाश-स्थित देवगण हाहाकार करने लगे। दैव बड़ा बलवान् होता है, ऐसा मुनियों ने कहा ॥३२-३३॥ इस प्रकार वह राजा तृणावर्त होने के पश्चात् वैकुण्ठ को चला गया। रानियों ने भारतवर्ष में अभीष्ट जन्म

Funding by IKS-MoE

इत्येवं कथितं सर्वं हरेर्माहात्म्यमुत्तमम्। मोक्षणं नृपतेश्चैव मुनीन्द्रशापहेतुकम् ॥३५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० तृणावर्तवधो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

नारायण उवाच

एकदा मन्दिरे नन्दपत्नी सानन्दपूर्वकम्। कृत्वा वक्षसि गोविन्दं क्षुधितं च स्तनं ददौ ॥१॥
एतस्मिन्नन्तरे गोप्य आजग्मुर्नन्दमन्दिरम्। स्थविराश्च वयस्याश्च बालिका बालकान्विताः ॥२
अतृप्तं बालकं शीघ्रं संन्यस्य शयने सती। प्रणनाम समुत्थाय कर्मण्यौत्थानिके मुदा ॥३॥
तैलसिन्दूरताम्बूलं ददौ ताभ्यो मुदाऽन्विता। मिष्टवस्तूनि वस्त्राणि भूषणानि च गोपिका ॥४॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो रुरोद क्षुधितस्तदा। प्रेरयित्वा स चरणं मायेशो मायया विभुः ॥५॥
पपात चरणं तस्य प्रवीणे शकटे मुने। विश्वंभरपदाघातात्तच्च चूर्णं बभूव ह ॥६॥

लाभ किया ॥३४॥ इस तरह हरि का सारा उत्तम माहात्म्य कह दिया; साथ ही मुनिवर के शाप से (असुर-योनि में पड़े हुए) राजा का उद्धार भी बताया ॥३५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के नारायण-नारद-संवाद में तृणावर्त वधनामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११॥

अध्याय १२

शकटासुर-भञ्जन-वर्णन

नारायण बोले—एक बार महल में बैठी हुई नन्द-पत्नी यशोदा क्षुधित भगवान् को अपनी गोद में लेकर स्तनपान करा रही थीं ॥१॥ इसी बीच गोपियाँ वृद्धाएँ और सखियाँ—बालक-बालिकाओं समेत नन्द के भवन में आयीं ॥२॥ उस समय सती यशोदा अतृप्त बालक को शीघ्र शय्या पर रखकर उठ पड़ीं और प्रसन्नता-पूर्वक उन लोगों को प्रणाम करके औत्थानिक (वर्षगाँठ) उत्सव के उपलक्ष में (आयी हुई उन लोगों को) तैल सिन्दूर, ताम्बूल, मिठाई, वस्त्र और आभूषण देने लगीं ॥३-४॥ इस बीच क्षुधा-पीड़ित कृष्ण रोदन करने लगे। फिर मायापति भगवान् ने माया से चरण को प्रेरित किया। मुने! उनका चरण पास के दृढ़ शकट (गाड़ी) पर गिरा। विश्वम्भर के चरणाघात से वह चूर-चूर हो गया। शकट के टुकड़े-टुकड़े हो गये। उसके टूटे काष्ठ

बभञ्च शकटं पेतुर्भग्नकाष्ठानि तत्र वै। पपात दधि दुग्धं च नवनीतं घृतं मधु ॥७॥
दृष्ट्वाऽऽश्चर्यं गोपिकाश्च [1]दुद्रुवुर्बालकं भयात् । ददृशुर्भग्नशकटमिन्धनाभ्यन्तरे शिशुम् ॥८॥
भग्नभाण्डसमूहं च पतितं बहुगोरसम्। प्रेरयित्वा तु काष्ठानि जग्राह बालकं भिया ॥९॥
मायारक्षितसर्वाङ्गं रुदितं क्षुधितं क्षुधा। स्तनं ददौ यशोदा तं रुरोद च भृशं शुचा ॥१०॥
[2]पप्रच्छुर्बालकान्गोपा बभञ्ज शकटं कथम्। किंचिद्धेतुं न पश्यामः सहसेति किमद्भुतम् ॥११॥
इत्यूचुर्बालकाः सर्वे गोपाः शृणुत मद्वचः। श्रीकृष्णस्य पदाघाताद्बभञ्ज शकटं ध्रुवम् ॥१२॥
श्रुत्वा तद्वचनं गोपा गोप्यश्च जहसुर्मुदा। न हि जग्मुः प्रतीतिं च मिथ्येत्यूचुर्व्रजे प्रजाः ॥१३॥
शिशोः स्वस्त्ययनं कार्यं चक्रुर्ब्राह्मणपुंगवाः। हस्तं दत्त्वा शिशोर्गात्रे पपाठ कवचं द्विजः ॥१४॥
वदामि तत्ते विप्रेन्द्र कवचं सर्वरक्षणम्। यद्दत्तं मायया पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे ॥१५॥
निद्रिते जगतीनाथे जले च जलशायिनि। भीताय स्तुतिकर्त्रे च मधुकैटभयोर्भयात् ॥१६॥

योगनिद्रोवाच

दूरीभूतं कुरु भयं भयं किं ते हरौ स्थिते। स्थितायां मयि च ब्रह्मन्सुखी तिष्ठ जगत्पते ॥१७

वहीं बिखर गये । उस पर लदा हुआ दही, दूध, मक्खन, घी और मधु गिरकर बह चला । ॥५-७॥ इस आश्चर्य को देखकर व्याकुल हुई गोपिकायें बालक के पास दौड़ी हुई आयीं । उन्होंने देखा कि—गाड़ी टूटी पड़ी है और उसके काष्ठों के बीच बालक पड़ा हुआ है । मिट्टी के सभी पात्र टूट-फूट गये हैं, जिससे बहुत गोरस बह रहा है । काष्ठों को हटवा कर भयभीत होती हुई यशोदा ने किसी भाँति बालक को निकाला, जिसका सर्वांग माया द्वारा सुरक्षित था, केवल क्षुधा के कारण वह रोदन कर रहा था । शोक के कारण अत्यन्त रोदन करती हुई यशोदा बालक को स्तन पिलाने लगीं ॥८-१०॥ गोपों ने वहाँ खेलते हुए बालकों से पूछा—'यह गाड़ी कैसे टूट पड़ी ? कोई कारण नहीं दीख रहा है । सहसा यह आश्चर्य कैसे हो गया ? 'यह सुन कर बालकों ने कहा—'गोपगण ! हमारी बात सुनें—'श्रीकृष्ण के चरण-प्रहार से यह गाड़ी टूट गयी है ।' यह सुनकर गोप-गोपियाँ आनन्द-मग्न होकर हँस पड़ीं, उन्हें इनका विश्वास नहीं हुआ । व्रज की प्रजाओं ने कहा कि यह मिथ्या है । ॥११-१३॥ अनन्तर ब्राह्मण के द्वारा बच्चे का स्वस्त्ययन कराया । एक ब्राह्मण ने बालक के शिर पर हाथ रखकर कवच का पाठ किया ॥१४॥ विप्रेन्द्र ! मैं उस सर्वरक्षक कवच को बता रहा हूँ, जिसे पूर्व काल में योगमाया ने ब्रह्मा को उस समय दिया था जब भगवान् जगन्नाथ के जल में सो जाने पर मधु-कैटभ के भय से वे योगनिन्द्रा की स्तुति कर रहे थे ॥१५-१६॥

योगनिद्रा बोली—जगपति, ब्रह्मन् ! भय त्याग कर निर्भय हो जाओ, मेरे और भगवान् के रहते तुम्हें भय किस बात का है ? अतः सुखी होकर रहो ॥१७॥ श्रीहरि तुम्हारे मुख की रक्षा करें, मधुसूदन तुम्हारे

---

[1] क. °वुर्बल्लभा भ° । [2] क. °प्रच्छ बालकान्गोपी ब° ।

Funding by IKS-MoE

श्रीहरिः पातु ते वक्त्रं मस्तकं मधुसूदनः। श्रीकृष्णश्चक्षुषी पातु नसिकां राधिकापतिः ॥१८॥
कर्णयुग्मं च कण्ठं च कपालं पातु माधवः। कपोलं पातु गोविन्दः केशांश्च केशवः स्वयम् ॥१९॥
अधरोष्ठं हृषीकेशो दन्तपङ्क्तिं गदाग्रजः। रासेश्वरश्च रसनां तालुकं वामनो विभुः ॥२०॥
वक्षः पातु मुकुन्दश्च जठरं पातु दैत्यहा। जनार्दनः पातु नाभिं पातु विष्णुश्च मेहनम् ॥२१॥
नितम्बयुग्मं गुह्यं च पातु ते पुरुषोत्तमः। जानुयुग्मं जानकीशः पातु ते सर्वदा विभुः ॥२२॥
हस्तयुग्मं नृसिंहश्च पातु सर्वत्र संकटे। पादयुग्मं वराहश्च पातु ते कमलोद्भवः ॥२३॥
ऊर्ध्वं नारायणः पातु ह्यधस्तात्कमलापतिः । पूर्वस्यां पातु गोपालः पातु वह्नौ दशास्यहा ॥२४॥
वनमाली पातु याम्यां वैकुण्ठः पातु नैर्ऋतौ। वारुण्यां वासुदेवश्च सतो रक्षाकरः स्वयम् ॥२५॥
पातु ते संततमजो वायव्यां विष्टरश्रवाः। उत्तरे च सदा पातु तेजसा जलजासनः ॥२६॥
ऐशान्यामीश्वरः पातु पातु सर्वत्र शत्रुजित्। जले स्थले चान्तरिक्षे निद्रायां पातु राघवः ॥२७॥
इत्येवं कथितं ब्रह्मन्कवचं परमाद्भुतम्। कृष्णेन कृपया दत्तं स्मृतेनैव पुरा मया ॥२८॥
शुम्भेन सह संग्रामे निर्लक्ष्ये घोरदारुणे। गगने स्थितया सद्यः प्राप्तिमात्रेण स जितः ॥२९॥
कवचस्य प्रभावेण धरण्यां पतितो मृतः। पूर्वं वर्षशतं खे च कृत्वा युद्धं भयावहम् ॥३०॥
मृते शुम्भे च गोविन्दः कृपालुर्गगनस्थितः। मालां च कवचं दत्त्वा गोलोकं स जगाम ह ॥३१॥

मस्तक की रक्षा करें, श्रीकृष्ण दोनों नेत्र की और राधिकापति नासिका की रक्षा करें ।१८॥ दोनों कान, कण्ठ, और कपाल की रक्षा माधव, कपोल की रक्षा गोविन्द एवं केशों की रक्षा स्वयं केशव करें ॥१९॥ अधरोष्ठ की रक्षा हृषीकेश, दाँतों की पंक्तियों की रक्षा गदाग्रज, जिह्वा की रक्षा रासेश्वर तथा तालु की रक्षा विभु वामन करें ॥२०॥ वक्षःस्थल की रक्षा मुकुन्द, उदर की दैत्यहा, नाभि की जनार्दन, लिङ्ग की विष्णु, दोनों नितम्बों और गुह्य की रक्षा पुरुषोत्तम करें । प्रभु जानकीश दोनों जानुओं (घुटनों,) की रक्षा करें ॥२१-२२॥ सभी संकटों में दोनों हाथों की रक्षा नृसिंह करें । कमलोद्भव वराह युगल चरण की रक्षा करें ॥२३॥ ऊर्ध्वभाग की रक्षा नारायण, नीचे की रक्षा कमलापति, पूर्व दिशा में गोपाल, अग्निकोण में दशमुखहन्ता, दक्षिण में वनमाली, नैर्ऋतकोण में वैकुण्ठ और पश्चिम में सज्जन-रक्षक वासुदेव रक्षा करें ॥२४-२५॥ वायव्य में अजन्मा विष्टरश्रवा तुम्हारी निरन्तर रक्षा करें । उत्तर में कमलासन अपने तेज से सदा रक्षा करें ॥२६॥ ईशान कोण में ईश्वर, सर्वत्र शत्रुजित् और जल, स्थल, अन्तरिक्ष एवं निद्रा में राघव रक्षा करें ॥२७॥ ब्रह्मन् ! यह परम अद्भुत कवच तुम्हें बता दिया है, जो पूर्व काल में स्मरण मात्र करने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने मुझे दिया था ॥२८॥ शुम्भ दैत्य के साथ घोर संग्राम करती हुई आकाश-स्थित दुर्गा ने इस कवच की प्राप्ति मात्र से उसे तुरन्त पराजित किया था ॥२९॥ इसी कवच के प्रभाव से वह मृत होकर पृथ्वी पर गिरा था । पूर्व समय में सौ वर्षों तक आकाश में भीषण युद्ध करने के उपरान्त शुम्भ के मर जाने पर भगवान् गोविन्द ने कृपया आकाश में स्थित होकर माला समेत यह कवच प्रदान किया था। अनन्तर वे गोलोक को चले गये थे ॥३०-३१॥

कल्पान्तरस्य वृत्तान्तं कृपया कथितं मुने। अभ्यन्तरभयं नास्ति कवचस्य प्रभावतः ॥३२॥
कोटिशः कोटिशो नष्टा मया दृष्टाश्च वेधसः। अहं च हरिणा सार्धं कल्पे कल्पे स्थिरा सदा ॥३३॥
इत्युक्त्वा कवचं दत्त्वा सान्तर्धानं चकार ह। निःशङ्को नाभिकमले तस्थौ स कमलोद्भवः ॥३४॥
सुवर्णगुटिकायां च कृत्वेदं कवचं परम्। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ बध्नीयाद्यः सुधीः सदा ॥३५॥
विषाग्निजलशत्रुभ्यो भय तस्य न जायते। जले स्थले चान्तरिक्षे निद्रायां रक्षतीश्वरः ॥३६॥
संग्रामे वज्रपाते च विपत्तौ प्राणसंकटे। कवचस्मरणादेव सद्यो निःशङ्कतां व्रजेत् ॥३७॥
बद्ध्वेदं कवचं कण्ठे शंकरस्त्रिपुरं पुरः । जघान लीलामात्रेण दुरन्तमसुरेश्वरम् ॥३८॥
बद्ध्वेदं कवचं काली रक्तबीजं चखाद सा। सहस्रशीर्षा धृत्वेदं विश्वं धत्ते तिलं यथा ॥३९॥
आवां सनत्कुमारश्च धर्मसाक्षी च कर्मणाम्। कवचस्य प्रभावेण सर्वत्र जयिनो वयम् ॥४०॥
तस्य नन्दशिशोः कण्ठे चकार कवचं द्विजः। आत्मनः कवचं कण्ठे दधार च स्वयं हरिः ॥४१॥
प्रभावः कथितः सर्वः कवचस्य हरेस्तथा। अनन्तस्याच्युतस्यैव प्रभावमतुलं मुने ॥४२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० शकटभञ्जनयोगनिद्रोक्तकवचन्यासो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

मुने ! यह कल्पान्तर का वृत्तान्त तुम से बताया है, इस कवच के प्रभाव से कभी मन में भय नहीं होता है ॥३२॥ मैंने प्रत्येक कल्प में भगवान् के साथ रहकर करोड़ों ब्रह्माओं का पतन देखा है ॥३३॥ इतना कहकर कवच देकर वह देवी अन्तर्हित हो गयी और ब्रह्मा (भगवान् के) नाभि-कमल में निःशंक होकर रहने लगे ॥३४॥ सुवर्ण के यन्त्र में इस श्रेष्ठ कवच को रखकर जो बुद्धिमान् कण्ठ या दाहिनी बाँह में सदा इसे धारण किये रहता है, उसे विष, अग्नि, जल एवं शत्रु से कभी भी भय नहीं होता। जल, स्थल, अन्तरिक्ष और निद्रा के समय ईश्वर रक्षा करते हैं ॥३५-३६॥ युद्ध, वज्रपात, विपत्ति और संकट में कवच के स्मरण मात्र से वह तुरन्त निःशंक हो जाता है ॥३७॥ पहले समय में शिव ने यही कवच कण्ठ में बांधकर तुरन्त ही त्रिपुरासुर को लीला की भाँति मार दिया था ॥३८॥ इसी कवच को बांधकर काली रक्तबीज को खा गयी थी और सहस्र शिर वाले शेषनाग सम्पूर्ण विश्व को तिल की भाँति धारण करते हैं ॥३९॥ हम दोनों (नर-नारायण) सनत्कुमार, कर्मों के साक्षी धर्म इसी कवच के प्रभाव से सर्वत्र विजयी होते हैं ॥४०॥ अनन्तर ब्राह्मण ने इस नन्द-कुमार के कण्ठ में वह कवच बाँध दिया। इस प्रकार साक्षात् हरि ने अपने ही कवच को अपने कण्ठ में धारण कर लिया ॥४१॥ मुने ! मैंने हरि के कवच का सम्पूर्ण प्रभाव कह दिया तथा अनन्त एवं अच्युत (भगवान्) का अनुपम प्रभाव भी बता दिया ॥४२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के नारायण-नारद-संवाद में शकट-भंजन तथा योगनिद्रा-कथित कवच-न्यास-वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

Funding by IKS-MoE

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

नारायण उवाच

अपरं कृष्णमाहात्म्यं शृणु किंचिन्महामुने। विघ्ननिघ्नं पापहरं महापुण्यकरं परम् ॥१॥
एकदा नन्दपत्नी च कृत्वा कृष्णं स्ववक्षसि। स्वर्णसिंहासनस्था च क्षुधितं तं स्तनं ददौ ॥२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र विप्रेन्द्रैकः समागतः। वृतः शिष्यसमूहैश्च प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥३॥
प्रजपन्परमं ब्रह्म शुद्धस्फटिकमालया। दण्डी छत्री शुक्लदन्तः शोभितः शुक्लवाससा ॥४॥
ज्योतिर्ग्रन्थो मूर्तिमांश्च वेदवेदाङ्गपारगः । परिबिभ्रज्जटाजालं तप्तकाञ्चनसंनिभम् ॥५॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यो गौराङ्गः पद्मलोचनः । योगीन्द्रो धूर्जटेः शिष्यः शुद्धभक्तो गदाभृतः ॥६॥
व्याख्यामुद्राकरः श्रीमाञ्छिष्यानध्यापयन्मुदा। वेदव्याख्यां कतिविधां प्रकुर्वन्निव लीलया ॥७॥
एकीभूय चतुर्वेदस्तेजसा मूर्तिमानिव। साक्षात्सरस्वतीकण्ठः सिद्धान्तैकविशारदः ॥८॥
ध्यानैकनिष्ठः श्रीकृष्णपादाम्भोजे दिवानिशम्। जीवन्मुक्तो हि सिद्धेशः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः ॥९॥

अध्याय १३

श्रीकृष्ण का अन्नप्राशन और नामकरण

नारायण बोले--महामुने ! भगवान् कृष्ण का दूसरा माहात्म्य सुनो जो विघ्नविनाशक, पापहारी, महापुण्यदायक और उत्तम है ॥१॥ एक बार सुवर्ण के सिंहासन पर बैठी हुई नन्दपत्नी यशोदा भूखे कृष्ण को गोद में लेकर स्तनपिला रहीं थीं ॥२॥ उस समय यहाँ एक विपेन्द्र आया, जो शिष्य समूहों से घिरा हुआ और ब्रह्म-तेज से देदीप्यमान था ॥३॥ वह शुद्ध स्फटिक की माला लेकर परब्रह्म का जप कर रहा था। दण्ड, छत्र और श्वेत वस्त्र धारण किये वह विप्रवर दाँतों की पंक्तियों से सुशोभित हो रहा था ॥४॥ वह ज्योतिः शास्त्र का मूर्तिमान् स्वरूप तथा वेद-वेदाङ्गों का पारगामी विद्वान् था। उसने अपने मस्तक पर तपाये हुये सुवर्ण के समान पिंगल जटा-भार धारण कर रखा था ॥५॥ उसका मुख शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा की कान्ति को लज्जित कर रहा था। वह गौरांग था। उसके नेत्र कमल के समान थे। वह योगीन्द्र, शंकर का शिष्य तथा विष्णु का शुद्ध भक्त था ॥६॥ वह श्रीमान् महर्षि प्रसन्नतापूर्वक शिष्यों को पढ़ाता था। उसके एक हाथ में व्याख्या की मुद्रा सुस्पष्ट दिखाई देती थी। वह वेदों की अनेक प्रकार की व्याख्या लीलापूर्वक करता था। उसे देखकर ऐसा मालूम पड़ता था मानों चारों वेदों का तेज मूर्तिमान् हो गया था। उसके कण्ठ में साक्षात् सरस्वती का वास था। वह शास्त्रीय सिद्धान्त का एकमात्र विशेषज्ञ था और दिनरात श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों के ध्यान में निमग्न रहता था। वह जीवन्मुक्त, सिद्धों का स्वामी, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी था ॥७-९॥ उन्हें देखते ही यशोदा ने उठ

Funding by IKS-MoE

तं दृष्ट्वा सा समुत्तस्थौ यशोदा प्रणनाम च। पाद्यं गां मधुपर्कं च स्वर्णसिंहासनं ददौ ॥१०॥
बालकं वन्दयामास मुनीन्द्रं सस्मितं मुदा। मुनिश्च मनसा चक्रे प्रणामशतकं हरिम् ॥११॥
आशिषं प्रददौ प्रीत्या वेदमन्त्रोपयोगिकम्। प्रणनाम च शिष्यांश्च ते तां युयुजुराशिषम् ॥१२॥
शिष्यान्पाद्यादिकं भक्त्या प्रददौ च पृथक्पृथक्। सशिष्याङ्घ्री च प्रक्षाल्य समुवास सुखासने ॥१३॥
समुद्यता सा प्रष्टुं च पुटाञ्जलियुता सती। स्वक्रोडे बालकं कृत्वा भक्तिनम्रात्मकं धरा ॥१४॥
स्वात्मारामं मङ्गलं च प्रष्टुं यद्यपि न क्षमा। तथाऽपि भवतो नाम शिवं पृच्छामि सांप्रतम् ॥१५॥
अबलाबुद्धिहीनाया दोषं क्षन्तुं सदाऽर्हसि। मूढस्य सततं दोषं क्षमां कुर्वन्ति साधवः ॥१६॥
अङ्गिरा वाऽथ वाऽत्रिर्वा मरीचिर्गौतमोऽथवा। क्रतुः किं वा प्रचेता वा पुलस्त्यः पुलहोऽथवा ॥१७॥
दुर्वासाः कर्दमस्त्वं वा वशिष्ठो गर्ग एव वा। जैगीषव्यो देवलो वा कपिलो वा स्वयं विभुः ॥१८॥
सनत्कुमारः सनकः सनन्दो वा सनातनः। वोढुः पञ्चशिखो वा त्वमासुरिः सौभरिः किमु ॥१९॥
विश्वामित्रोऽथ वाल्मीको वामदेवोऽथ कश्यपः। संवर्तः किमुतथ्यो वा किं कचो वा बृहस्पतिः ॥२०
भृगुः शुक्रश्च च्यवनो नरनारायणोऽथवा। शक्तिः पराशरो व्यासः शुकदेवोऽथ जैमिनिः ॥२१॥
मार्कण्डेयो लोमशश्च कण्वः कात्यायनस्तथा। आस्तीको वा जरत्कारुर्ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः ॥२२॥
पौलस्त्यस्त्वमगस्त्यो वा शरद्वान्गिरिरेव च। शमीकोऽरिष्टनेमिश्च मण्डव्यः पैल एव च ॥२३॥
पाणिनिर्वा कणादो वा शाकल्यः शाकटायनः। अष्टावक्रो भागुरिर्वा सुमन्तुर्वत्स एव वा ॥२४॥

कर प्रणाम किया और अर्घ्य, गौ, मधुपर्क और-सुवर्ण सिंहासन प्रादान किये। ॥१०॥ अनन्तर हर्षपूर्वक अपने बालक से मुसकराते हुए मुनीन्द्र की वन्दना करवायी। मुनि ने भी मन ही मन भगवान् को सौ-बार प्रणाम किया ॥११॥ और वेद मंत्र द्वारा बड़े प्रेम से अशीर्वाद दिया। अनन्तर यशोदा ने उनके शिष्यों को भी प्रणाम किया और उन लोगों ने भी उन्हें आशिष प्रदान किया। ॥१२॥ यशोदा ने शिष्यों को भी भक्तिपूर्वक पृथक्-पृथक् पाद्य आदि अर्पित किये। अनन्तर मुनि अपने शिष्यों के साथ पैर धोकर जब सिंहासन पर बैठे तब सती यशोदा बालक को अपनी गोद में लिये और भक्ति से कन्धे झुकाये हाथ जोड़कर मुनि से कुछ पूछने के लिए उद्यत हुईं ॥१३-१४॥ उन्होंने कहा—'यद्यपि स्वात्माराम (अपनी आतमा में ही रमण करने वाले) व्यक्ति से मंगल पूछने के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ, तथापि इस समय मैं आपका कुशल-समाचार पूछ रही हूँ। मुझ बुद्धिहीन अबला का दोष आप क्षमा करेंगे, साधु पुरुष मूढ़ के दोष को सतत क्षमा करते हैं। अंगिरा, अत्रि, मरीचि, गौतम, क्रतु, प्रचेता, पुलस्त्य, पुलह, दुर्वासा, कर्दम, वशिष्ठ, गर्ग, जैगीषव्य, देवल, या स्वयं विभु, कपिल, सनत्कुमार, सनक, सनन्द, सनातन, वोढु, पञ्चशिख, आसुरि, सौभरि, विश्वामित्र, वाल्मीकि, वामदेव, कश्यप, संवर्त, कच, बृहस्पति, भृगु, शुक्र, च्यवन, नर-नारायण, शक्ति, पराशर, व्यास, शुकदेव, जैमिनि, मार्कण्डेय, लोमश, कण्व, कात्यायन, आस्तीक, जरत्कारु, ऋष्यशृङ्ग, विभाण्डक, पौलस्त्य, अगस्त्य, शरद्वान्, गिरि, शमीक, अरिष्टनेमि, मण्डव्य, पैल, पाणिनि, कणाद, शाकल्य, शाकटायन, अष्टावक्र, भागुरि, सुमन्तु, वत्स, जाबाल, याज्ञवल्क्य,

जाबालो याज्ञवल्क्यश्च वैशंपायन एव च। यतिर्हंसी पिप्पलादो मैत्रेयः करुषस्तथा ॥२५॥
उपमन्युर्गौरमुखोऽरुणिरौर्वोऽथ कक्षिवान्। भरद्वाजो वेदशिराः शङ्कुकर्णोऽथ शौनकः ॥२६॥
एतेषां पुण्यश्लोकानां को भवान्वद मे प्रभो। प्रत्युत्तरार्हा नाहं चेत्तथाऽपि वक्तुमर्हसि ॥२७॥
किंकरः किंकरी वाऽपि समर्था प्रष्टुमीश्वरम्। यो यस्य सेवानिरतः स कं पृच्छति तं विना ॥२८॥
धन्याऽहं कृतकृत्याऽहं सफलं जीवितं मम। त्वत्पादाब्जरजःस्पर्शाज्जन्मकोट्यंहसां क्षयः ॥२९॥
त्वत्पादोदकसंस्पर्शात्सद्यः पूता वसुंधरा। तवाऽऽगमनमात्रेण तीर्थीभूतो ममाऽऽश्रमः ॥३०॥
ये ये श्रुताः श्रुतौ ब्रह्मञ्छ्रुतिसारा महाजनाः। तेषामेको मया दृष्टः पूर्वपुण्यफलोदयात् ॥३१॥
शिष्या वेदा मूर्तिमन्तो ग्रीष्ममध्याह्नभास्कराः। गोकुलं मत्कुलं सद्यः पुनन्ति पादरेणुना ॥३२॥
आशिषं कर्तुमर्हन्ति प्रसन्नमनसा शिशुम्। पूर्णस्वस्त्ययनं सद्यो विप्राशीर्वचनं ध्रुवम् ॥३३॥
इत्येवमुक्त्वा नन्दस्त्री भक्त्या तस्थौ मुनेः पुरः। नरं प्रस्थापयामास नन्दमानयितुं सती ॥३४॥
यशोदावचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुंगवः। जहसुः शिष्यसंघाश्च भासयन्तो दिशो दश ॥३५॥
हितं तथ्यं नीतियुक्तं महत्पुण्यकरं[1] परम्। तामुवाच मुदा युक्तः शुद्धबुद्धिर्महामुनिः ॥३६॥

वैशम्पायन, यति, हंसी, पिप्पलाद, मैत्रेय, करुष, उपमन्यु, गौरमुख, अरुणि, और्व, भरद्वाज, वेदशिरा, शंकुकर्ण या शौनक इन पुण्य श्लोकों में आप कौन हैं ? प्रभो ! मैं प्रत्युत्तर के योग्य नहीं हूँ तथापि आप नाम बताने की कृपा अवश्य करें ॥१५-२७। किंकर या किंकरी ही प्रभु से पूछने में समर्थ होती है । जो जिसकी सेवा में निरत रहता है, वह उसे छोड़कर किससे पूछने जायगा ? ॥२८॥ मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ, मेरा जीवन सफल हो गया; आपके चरण-कमल की धूलि के स्पर्श मात्र से करोड़ों जन्मों के पाप का नाश हो जाता है ॥२९॥ क्योंकि आपके चरणोदक के स्पर्श से पृथ्वी तत्क्षण पवित्र हो जाती है और आपके आगमन मात्र से मेरा आश्रम तीर्थ रूप हो गया है ॥३०॥ ब्रह्मन् ! वेदों में श्रुतिसार रूप जिन श्रेष्ठ पुरुषों को सुना गया है, उनमें एक का दर्शन मुझे जन्मान्तरीय पुण्य फल के उदय होने से प्राप्त हुआ है ॥३१॥ मूर्तिमान् वेद रूप आपके शिष्यगण ग्रीष्मकाल के मध्याह्नकालीन सूर्य जैसे हैं। ये अपनी चरण-धूलि से गोकुल तथा मेरे कुल को सद्यः पवित्र कर रहे हैं ॥३२॥ आप जैसे महात्मा पुरुष प्रसन्न मन से बच्चे को आशीर्वाद देने योग्य हैं । निश्चय ही ब्राह्मण का आशीर्वाद तत्काल पूर्ण मंगलकारी होता है, ॥३३॥ इतना कहकर नन्द की पत्नी यशोदा मुनि के सामने भक्तिपूर्वक खड़ी हो गयीं और नन्द को बुलाने के लिए एक दूत भेज दिया ॥३४॥ यशोदा की ऐसी बातें सुनकर मुनिवर हँस पड़े और शिष्य-समूह भी दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए हँसने लगे ॥३५॥ तब शुद्धबुद्धि महामुनि ने सुप्रसन्न होकर यशोदा से हितकर, सत्य, नीतियुक्त और महान् पुण्यकारक बात कही ॥३६॥

---

[1] क. °हृत्प्रीतिक° ।

Funding by IKS-MoE

गर्ग उवाच

सुधामयं ते वचनं लौकिकं च कुलोचितम् । यस्य यत्र कुले जन्म स एव तादृशो भवेत् ॥३७॥
सर्वेषां [1]गोपपद्मानां गिरिभानुश्च भास्करः । पत्नी पद्मासमा तस्य नाम्ना पद्मावती सती ॥३८॥
तस्याः कन्या यशोदा त्वं यशोवर्धनकारिणी । बल्लवानां च प्रवरो लब्धो नन्दश्च वल्लभः ॥३९॥
नन्दो यस्त्वं च या भद्रे बालो यो येन वाऽऽगतः । जानामि निर्जने सर्वं वक्ष्यामि नन्दसंनिधिम् ॥४०॥
गर्गोऽहं यदुवंशानां चिरकालं पुरोहितः । प्रस्थापितोऽहं वसुना नान्यसाध्ये च कर्मणि ॥४१॥
एतस्मिन्नन्तरे नन्दः श्रुतमात्रं जगाम ह । ननाम दण्डवद्भूमौ मूर्ध्ना तं मुनिपुंगवम् ॥४२॥
शिष्यान्ननाम मूर्ध्ना च ते तं युयुजुराशिषम् । समुत्थायाऽऽसनात्तूर्णं यशोदा नन्द एव च ॥
गृहीत्वाऽभ्यन्तरं रम्यं जगाम विदुषां वरः ॥४३॥
गर्गो नन्दो यशोदा च सपुत्रा सा मुदाऽन्विता । वाक्यं गर्गस्तदोवाच निगूढं निर्जने मुने ॥४४॥

गर्ग उवाच

अयि नन्द प्रवक्ष्यामि वचनं ते सुखावहम् । प्रस्थापितोऽहं वसुना येन तच्छ्रूयतामिति ॥४५॥
वसुना सूतिकागारे शिशुः प्रत्यर्पणं कृतः । पुत्रोऽयं वसुदेवस्य ज्येष्ठश्च तस्य च ध्रुवम् ॥४६॥

गर्ग बोले—तुम्हारी अमृतमय वाणी लोक और कुल के अनुकूल ही है । जिसका जिस कुल में जन्म होता है, उसका स्वभाव भी वैसा ही होता है ॥३७॥ समस्त गोप-कुल-कमल के लिए गिरिभानु सूर्य के समान हैं, उनकी पत्नी सती पद्मावती लक्ष्मी के समान हैं ॥३८॥ तुम उन्हीं की कन्या हो और यशोवृद्धि करने के कारण तुम्हारा नाम यशोदा हुआ है । तुमने वल्लव-कुल-श्रेष्ठ नन्द को वल्लभ (पति) के रूप में प्राप्त किया है ॥३९॥ भद्रे ! नन्द और तुम जो हो तथा वह बालक जो है और जिस कारण आया है, वह सब जानता हूँ, किन्तु नन्द के सान्निध्य में किसी निर्जन स्थान में मैं यह सब बताऊँगा ॥४०॥ मैं यदुवंशियों का गर्ग नामक चिरकालीन पुरोहित हूँ । मुझे कुछ ऐसे कार्यवश वसुदेव ने भेजा है, जो अन्य द्वारा सिद्ध नहीं हो सकता ॥४१॥ इसी बीच नन्द सुनते ही आ गये और मुनिवर को शिर से भूमि पर दण्डवत् किया ॥ ४२॥ उनके शिष्यों को भी शिर से नमस्कार किया । उन लोगों ने भी नन्द को शुभाशिष प्रदान किया । अनन्तर यशोदा और नन्द आसन से शीघ्र उठकर विद्वज्जन-श्रेष्ठ गर्ग को भी साथ लिए भीतरी रमणीक कमरे में चले गये । मुने ! उस एकान्त स्थान में गर्ग, नन्द और पुत्र समेत सुप्रसन्न यशोदा थीं, उस समय गर्ग ने उन लोगों से गूढ़ बात कही ॥४३-४४॥

गर्ग बोले—नन्द ! मैं तुमसे सुखकर बात कहूँगा । वसुदेव ने जिस प्रयोजन से मुझे यहाँ भेजा है, वह सुनो । कंस के भय से वसुदेव ने इस बच्चे को लाकर तुम्हारे सूतिकागृह में रख दिया था और तुम्हारी

---

[1] क. °पवल्लानां ।

कन्या ते तेन या नीता मथुरां कंसभीरुणा। अस्यान्नप्राशनायाहं नामानुकरणाय च॥
गूढेन प्रेषितस्तेन तस्योद्योगं कुरु द्विज ॥४७॥
पूर्णब्रह्मस्वरूपोऽयं शिशुस्ते मायया महीम्। आगत्य भारहरणं कर्ता धात्रा च सेवितः॥४८॥
गोलोकनाथो भगवाञ्छ्रीकृष्णो राधिकापतिः। नारायणो यो वैकुण्ठे कमलाकान्त एव च॥४९॥
श्वेतद्वीपनिवासी यः पाता विष्णुश्च सोऽप्यजः। कपिलोऽन्ये तदंशाश्च नरनारायणावृषी॥५०॥
सर्वेषां तेजसां राशिर्मूर्तिमानागतः किमु। तं वसुं दर्शयित्वा च शिशुरूपो बभूव ह॥५१॥
सांप्रतं सूतिकागारादाजगाम तवाऽऽलयम्। अयोनिसंभवश्चायमाविर्भूतो महीतले॥५२॥
वायुपूर्णं मातृगर्भं कृत्वा च मायया हरिः। आविर्भूय वसुं मूर्तिं दर्शयित्वा जगाम ह॥५३॥
युगे युगे वर्णभेदो नामभेदोऽस्य बल्लव। शुक्लः पीतस्तथा रक्त इदानीं कृष्णतां गतः॥५४॥
शुक्लवर्णः सत्ययुगे सुतीव्रतेजसाऽऽवृतः। त्रेतायां रक्तवर्णोऽयं पीतोऽयं द्वापरे विभुः॥५५॥
कृष्णवर्णः कलौ श्रीमांस्तेजसां राशिरेव च। परिपूर्णतमं ब्रह्म तेन कृष्ण इति स्मृतः॥५६॥
ब्रह्मणो वाचकः कोऽयमृकारोऽनन्तवाचकः। शिवस्य वाचकः षश्च नकारो धर्मवाचकः॥५७॥
अकारो विष्णुवचनः श्वेतद्वीपनिवासिनः। नरनारायणार्यस्य विसर्गो वाचकः स्मृतः॥५८॥

कन्या को लेकर मथुरा चले गये थे। इसलिए यहाँ पुत्र वसुदेव का है और जो इससे ज्येष्ठ हैं, वह भी उन्हीं का है। इस बच्चे के अन्नप्राशन और नामकरण करने के लिए गुप्त रूप से उन्होंने मुझे भेजा है। अतः इसके लिए तैयारी करो॥४५-४७॥ यह तुम्हारा बच्चा पूर्ण ब्रह्मस्वरूप है, माया से इस पृथ्वी पर आकर इसका भार उतारने वाला है। ब्रह्मा ने इसकी अराधना की थी, यही गोलोक का स्वामी एवं राधिकापति भगवान् श्रीकृष्ण हैं। यही वैकुण्ठ के निवासी कमलाकांत नारायण हैं। श्वेतद्वीपनिवासी, अजन्मा एवं रक्षक विष्णु भी यही हैं। कपिल तथा इनके अन्यान्य अंश ऋषि नर-नारायण भी इनसे भिन्न नहीं हैं। मानो यह सबके तेजों की राशि के मूर्तिमान् रूप में आया है। वे (श्रीकृष्ण) वसुदेव को अपना रूप दिखाकर शिशुरूप हो गये॥४८-५१॥ इस समय सूतीगृह से आपके घर में आ गये हैं। यह बालक अयोनिज रूप में ही भूतल पर प्रकट हुए हैं। इन्होंने माया द्वारा माता के गर्भ को वायु से पूर्ण कर रखा था। फिर स्वयं प्रकट होकर वसुदेव को अपना स्वरूप दर्शन कराकर वे शिशुरूप में यहाँ आ गये॥५२-५३॥ बल्लव! प्रत्येक युग में इस बालक का वर्ण (रूप-रङ्ग) भेद और नाम-भेद होता रहता है। शुक्ल, पीत और रक्त वर्ण के होकर इस समय ये कृष्ण होकर प्रकट हुए हैं। सत्ययुग में अत्यन्त तीक्ष्ण तेज से आवृत होने के कारण ये श्वेत वर्ण के हो गये थे। त्रेता में इनका वर्ण लाल हुआ। ये द्वापर में पीतवर्ण के हो गये और कलियुग (के आदि में) कृष्ण वर्ण के हो गये थे। त्रेतामें श्रीमान् तेजों की राशि हैं, परिपूर्णतम ब्रह्म हैं, इसी से कृष्ण कहे गये हैं॥५४-५६॥ 'कृष्णः' का ककार ब्रह्मा के अर्थ में, ऋकार अनन्त के अर्थ में, षकार शिव के अर्थ में और णकार धर्म के अर्थ में प्रयुक्त हैं॥५७॥ अन्त का अकार श्वेतद्वीपनिवासी

सर्वेषां तेजसां राशिः सर्वमूर्तिस्वरूपकः। सर्वाधारः सर्वबीजस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥५९॥
कर्मनिर्मूलवचनः कृषिर्नो दास्यवाचकः। अकारो दातृवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥६०॥
कृषिर्निश्चेष्टवचनो नकारो भक्तिवाचकः। अकारः प्राप्तिवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥६१॥
कृषिर्निर्वाणवचनो नकारो मोक्षवाचकः। अकारो दातृवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥६२॥
नाम्ना भगवतो नन्द कोटीनां स्मरणेन यत्। तत्फलं लभते नूनं कृष्णेति स्मरणे नरः ॥६३॥
यद्विधं स्मरणात्पुण्यं वचनाच्छ्रवणात्तथा। कोटिजन्मांहसो नाशो भवेद्यत्स्मरणादिकात् ॥६४॥
विष्णोर्नाम्ना च सर्वेषां सारात्सारं परात्परम्। कृष्णेति सुन्दरं नाम मङ्गलं भक्तिदायकम् ॥६५॥
ककारोच्चारणाद्भक्तः कैवल्यं मृत्युजन्महम्। ऋकाराद्दास्यमतुलं षकाराद्भक्तिमीप्सिताम् ॥६६॥
नकारात्सहवासं च तत्समं कालमेव च। तत्सारूप्यं विसर्गाच्च लभते नात्र संशयः ॥६७॥
ककारोच्चारणादेव वेपन्ते यमकिंकराः। ऋकारोक्तेर्न तिष्ठन्ति षकारात्पातकानि च ॥६८॥
नकारोच्चारणाद्रोगा अकारान्मृत्युरेव च। ध्रुवं सर्वे पलायन्ते नामोच्चारणभीरवः ॥६९॥
स्मृत्युक्तिश्रवणोद्योगात्कृष्णनाम्नो व्रजेश्वर। रथं गृहीत्वा धावन्ति गोलोकात्कृष्णकिंकराः ॥७०॥

विष्णु के अर्थ में और विसर्ग नर-नारायण के अर्थ में प्रयुक्त है ॥५८॥ ये सभी देवों के तेजों की राशि, समस्त मूर्ति स्वरूप, सब के आधार और सब के बीज हैं, अतः कृष्ण कहे गये हैं ॥५९॥ कर्म-निर्मूल करने के अर्थ में 'कृष्' का; दास्य (भक्ति) अर्थ में 'णकार' का और दाता के अर्थ में 'अ' का प्रयोग होता है, इसलिए 'कृष्ण' कहे गये हैं ॥६०॥ 'कृष्' का अर्थ है निश्चेष्ट, 'ण' का अर्थ है भक्ति और अकार का अर्थ है प्राप्ति, इसलिए कृष्ण कहे गये हैं ॥६१॥ निर्वाण अर्थ में 'कृष्' का, मोक्ष के अर्थ में 'णकार' का और दाता के अर्थ में 'अ' का प्रयोग होता है, इससे 'कृष्ण' कहे गये हैं ॥६२॥ नन्द ! भगवान् के करोड़ों नामों के स्मरण से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह फल कृष्ण नाम के स्मरण मात्र से मनुष्य को प्राप्त हो जाता है ॥६३॥ 'कृष्ण' नाम के स्मरण से जैसा पुण्य होता है, उसके कीर्तन और श्रवण से भी वैसा ही पुण्य होता है। कृष्ण के स्मरण आदि से करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट होते हैं ॥६४॥ विष्णु के सभी नामों में 'कृष्ण' नाम ही सबकी अपेक्षा सारतम वस्तु और परात्पर तत्त्व है। 'कृष्ण' यह नाम सुन्दर, मंगलमय तथा भक्तिदायक है॥६५॥ 'ककार' के उच्चारण मात्र से भक्तपुरुष जन्म-मृत्युनाशक मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। ऋकार से अतुलनीय दास्य, 'षकार' के उच्चारण से अभीष्ट भक्ति, 'नकार' के उच्चारण से तत्काल ही भगवान् के साथ सहवास और 'विसर्ग' के उच्चारण से उनका सारूप्य मोक्ष प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं ॥६६-६७॥ 'ककार' के उच्चारण मात्र से यमराज के किंकर काँपने लगते हैं. 'ऋकार' के कहते ही वे ठहरते नहीं, 'षकार' के उच्चारण से पातक, 'नकार' के उच्चारण से रोग और 'अकार' के उच्चारण से मृत्यु ये सब निश्चित ही भाग खड़े होते हैं, क्योंकि नामोच्चारण से डरने वाले वे निश्चित रूप से भाग जाते हैं॥६८-६९॥ व्रजेश्वर ! भगवान् कृष्ण के नाम के स्मरण, कथन या श्रवण मात्र से ही उनके किंकर गोलोक से रथ लेकर दौड़ पड़ते हैं । पृथिवी

पृथिव्या रजसः संख्यां कर्तुं शक्ता विपश्चितः। नाम्नः प्रभावसंख्यानं सन्तो वक्तुं न च क्षमाः ॥७१॥
पुरा शंकरवक्त्रेण नाम्नोऽस्य महिमा श्रुतः। [1]गुणनामप्रभावं च किंचिज्जानाति मद्गुरुः ॥७२॥
ब्रह्माऽनन्तश्च धर्मश्च सुरर्षिमनुमानवाः। वेदाः सन्तो न जानन्ति महिम्नः षोडशीं कलाम् ॥७३॥
इत्येवं कथितो नन्द महिमा ते सुतस्य च। यथामति यथाज्ञानं गुरुवक्त्राद्यथा श्रुतम् ॥७४॥
कृष्णः पीताम्बरः कंसध्वंसी च विष्टरश्रवाः। देवकीनन्दनः श्रीशो यशोदानन्दनो हरिः ॥७५॥
सनातनोऽच्युतोऽनन्तः सर्वेशः सर्वरूपधृक्। सर्वाधारः सर्वगतिः सर्वकारणकारणम् ॥७६॥
राधाबन्धू राधिकात्मा राधिकाजीवनः स्वयम्। राधाप्राणो राधिकेशो राधिकारमणः स्वयम् ॥७७॥
राधिकासहचारी च राधामानसपूरणः। राधाधनो राधिकाङ्गो राधिकासक्तमानसः ॥७८॥
राधिकाचित्तचोरश्च राधाप्राणाधिकः प्रभुः। परिपूर्णतमं ब्रह्म गोविन्दो गरुडध्वजः ॥७९॥
नामान्येतानि कृष्णस्य श्रुतानि मन्मुखाद्धृदि। जन्ममृत्युहराण्येव रक्ष नन्द शुभेक्षण ॥८०॥
कृतं निरूपणं नाम्नां कनिष्ठस्य यथा श्रुतम्। ज्येष्ठस्य हलिनो नाम्नः संकेतं शृणु मन्मुखात् ॥८१॥
गर्भसंकर्षणादेव नाम्ना संकर्षणः स्मृतः। नास्त्यन्तोऽस्यैव वेदेषु तेनानन्त इति स्मृतः ॥८२॥

की धूलि की संख्या विद्वान् किसी प्रकार कर सकते हैं किन्तु भगवान् के नाम के प्रभाव की गणना करने में सन्त पुरुष भी समर्थ नहीं हैं ॥७०-७१॥ पूर्व समय में शंकर के मुख से इस नाम की महिमा मैंने सुनी थी। उनके गुणों और नामों का प्रभाव मेरे गुरु कुछ-कुछ जानते हैं। ब्रह्मा, शेष, धर्म, देवता, ऋषि, मनु, मानव, वेद और सन्त पुरुष (नाम-) महिमा की सोलहवीं कला भी नहीं जानते हैं ॥७२-७३॥ नन्द! मैंने तुम्हारे पुत्र की महिमा का अपनी बुद्धि और ज्ञान के अनुसार वर्णन किया है, जैसा कि गुरु के मुख से मैंने सुना था ॥७४॥ कृष्ण, पीताम्बर, कंसध्वंसी, विष्टरश्रवाः, देवकीनन्दन, श्रीश, यशोदा-नन्दन, हरि, सनातन, अच्युत, अनन्त, सर्वेश, सर्वरूपधारी, सर्वाधार, सर्वगति, सर्वकारण, कारण, राधाबन्धु, राधिकात्मा, राधिका-जीवन, राधाप्राण, राधिकेश, राधिकारमण, राधिका-सहचारी, राधामानसपूरण, राधाधन, राधिकांग, राधिकासक्तमानस, राधिकाचित्तचोर, राधाप्राणाधिक, प्रभु, परिपूर्णतम ब्रह्म, गोविन्द और गरुड़ध्वज ये कृष्ण के नाम, जो तुमने मेरे मुख से सुने हैं, हृदय में धारण करो। शुभेक्षण, नन्द! ये नाम जन्म तथा मृत्यु (के कष्ट) को हर लेने वाले हैं ॥७५-८०॥ इस प्रकार तुम्हारे कनिष्ठ पुत्र के नामों का निरूपण जैसा मैंने सुना था, वैसा कर दिया है अब ज्येष्ठ पुत्र हलधर के नामों का संकेत मेरे मुख से सुनो। गर्भ से संकर्षण होने के कारण वे 'संकर्षण' कहलाये। इनका अंत नहीं है, अतः वेदों में इनको 'अनन्त' कहा गया है। अत्यन्त बली होने के कारण 'बलदेव,'

---

१ ख. गुणान्नाम°।

Funding by IKS-MoE

बलदेवो बलोद्रेकाद्धली च हलधारणात्। शितिवासा नीलवासान्मुसली मुसलायुधात्॥८३॥
रेवत्या सह संभोगाद्रेवतीरमणः स्वयम्। रोहिणीगर्भवासात्तु रौहिणेयो महामतिः॥८४॥
इत्येवं ज्येष्ठपुत्रस्य श्रुतं नाम निवेदितम्। यास्याम्यहं गृहं नन्द सुखं तिष्ठ स्वमन्दिरे॥८५॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा नन्दः स्तब्धो बभूव ह। निश्चेष्टा नन्दपत्नी च जहास बालकः स्वयम्॥८६॥
प्रणम्योवाच नन्दस्तं वाक्यं विनयपूर्वकम्। पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः॥८७॥

नन्द उवाच

गतश्चेत्त्वं तदा कर्म करिष्यत्येव को महान्। स्वयं शुभेक्षणं कृत्वा कुरु नाम्नाऽन्नप्राशनम्॥८८॥
यन्नामौघश्च कथितो राधाप्राणादिको दश। तस्यापि का वा राधेति कन्यका कस्य च ध्रुवम्॥८९॥
नन्दस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुंगवः। निगूढं परमं तत्त्वं रहस्यं कथयामि ते॥९०॥

गर्ग उवाच

शृणु नन्द प्रवक्ष्यामि इतिहासं पुरातनम् ॥९०॥
पुरा गोलोकवृत्तान्तं श्रुतं शंकरवक्त्रतः। श्रीदाम्नो राधया सार्धं बभूव कलहो महान्॥९२॥
श्रीदामशापाद्दैवेन गोपी राधा च गोकुले। वृषभानुसुता सा च माता तस्याः कलावती॥९३॥

हलग्रहण करने से 'हली', नीलवस्त्र पहनने से शितिवासा (नीलाम्बर), मूसल अस्त्र धारण करने से 'मुसली' रेवती के साथ सम्भोग करने से 'रेवतीरमण', रोहिणी के गर्भ में वास करने से इन महाबुद्धिमान् को 'रौहिणेय' कहा गया है। इस प्रकार ज्येष्ठ पुत्र का भी नामकरण मैंने कर दिया जैसा मैंने सुना था। नन्द ! अब मैं घर जाऊँगा, अपने भवन में तुम सुखपूर्वक रहो ॥८१-८५॥ ब्राह्मण की बात सुनकर नन्द अवाक् रह गये, उनकी पत्नी (यशोदा) भी निश्चेष्ट हो गयीं और वह बालक स्वयं हँसने लगा ॥८६॥ तब नन्द ने विनय पूर्वक उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर भक्ति से मस्तक झुकाकर कहा ॥८७॥

नन्द बोले—यदि आप चले जायँगे तो कौन महान् पुरुष इस कर्म को सम्पन्न करायेगा। अतः आप स्वयं ही शुभ मुहूर्त विचार कर नामतः अन्नप्राशन संस्कार करा दें ॥८८॥ राधाप्राण आदि जिन दश नामों को आपने बताया है, उनमें राधा कौन है ? और किसकी कन्या है ? नन्द की यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ गर्ग हँस पड़े और बोले—मैं तुम्हें परम निगूढ़ तत्त्व एवं रहस्य की बात बता रहा हूँ, सुनो ॥८९-९०॥

गर्ग बोले—हे नन्द ! सुनो, तुम्हें प्राचीन इतिहास बता रहा हूँ। पूर्वकाल में गोलोक का वृतान्त शिव के मुख से मैंने सुना था। राधा के साथ श्रीदामा का महान् कलह हुआ। उसके कारण श्रीदामा के शाप से दैववश राधा गोकुल में गोपी हुई हैं। वे वृषभानु की पुत्री हैं, उनकी माता का नाम कलावती है

कृष्णस्यार्धाङ्गसंभूता नाथस्य सदृशी सती। गोलोकवासिनी सेयमत्र कृष्णाज्ञयाऽधुना ॥९४॥
अयोनिसंभवा देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी। मातुर्गर्भं वायुपूर्णं कृत्वा च मायया सती ॥९५॥
वायुनिःसरणे काले धृत्वा च शिशुविग्रहम्। आविर्बभूव मायेयं पृथ्व्यां कृष्णोपदेशतः ॥९६॥
वर्धते सा व्रजे राधा शुक्ले चन्द्रकला यथा। श्रीकृष्णतेजसोऽर्धेन सा च मूर्तिमती सती ॥९७॥
एका मूर्तिर्द्विधाभूता भेदो वेदे निरूपितः। इयं स्त्री सा पुमान् किंवा सा वा कान्ता पुमानयम् ॥९८॥
द्वे रूपे तेजसा तुल्ये रूपेण च गुणेन च। पराक्रमेण बुद्धया वा ज्ञानेन संपदाऽपि च ॥९९॥
पुरतो गमनेनैव किं तु सा वयसाऽधिका। ध्यायते तामयं शश्वदिमं सा स्मरति प्रियम् ॥१००॥
रचिता साऽस्य प्राणैश्च तत्प्राणैर्मूर्तिमानयम्। अस्य राधानुसारेण गोकुलागमनं परम् ॥१०१॥
स्वीकारं सार्थकं कर्तुं गोलोके यत्कृतं पुरा। कंसभीतिच्छलेनैव गोकुलागमनं हरेः ॥१०२॥
प्रतिज्ञापालनार्थाय भयेशस्य भयं कुतः। राधाशब्दस्य व्युत्पत्तिः सामवेदे निरूपिता ॥१०३॥
नारायणस्तामुवाच ब्रह्माणं नाभिपङ्कजे। ब्रह्मा तां कथयामास ब्रह्मलोके च शंकरम् ॥१०४॥
पुरा कैलासशिखरे मामुवाच महेश्वरः। देवानां दुर्लभां नन्द निशामय वदामि ते ॥१०५॥
सुरासुरमुनीन्द्राणां वाञ्छितां मुक्तिदां पराम्। रेफो हि कोटिजन्माघं कर्मभोगं शुभाशुभम् ॥१०६॥

॥९१-९३॥ वे सती भगवान् श्रीकृष्ण की अर्द्धांगिनी तथा उन्हीं के समान हैं। वे कृष्ण की आज्ञा से गोलोकवासिनी होती हुई भी इस समय यहाँ अयोनिसंभवा होकर प्रकट हुई हैं। वे ही मूलप्रकृति ईश्वरी हैं। उस सती ने वायु द्वारा अपनी माता का गर्भ पूरा किया था और वे वायु के निकलने पर भगवान् कृष्ण के उपदेश से माया द्वारा अपना शिशु रूप बनाकर प्रकट हो गयी थीं ॥९४-९६॥ वही राधा व्रज में बढ़ रही हैं, जैसे शुक्ल पक्ष में चन्द्रकला बढ़ती है। श्रीकृष्ण के तेज के अर्ध भाग से वे मूर्तिमती हुई हैं ॥९७॥ यह एक ही मूर्ति दो रूपों में प्रकट है, इसका भेद वेद में बताया गया है। ये स्त्री हैं, वे पुरुष हैं अथवा वे ही स्त्री हैं तथा ये पुरुष हैं ॥९८॥ ये दोनों रूप समान तेज वाले हैं और गुण रूप में समान हैं। उसी प्रकार पराक्रम, बुद्धि, ज्ञान और सम्पत्ति में भी समान हैं ॥९९॥ किन्तु वे पहले आने के कारण श्रीकृष्ण से आयु में बड़ी हैं। श्रीकृष्ण निरन्तर उनका ध्यान करते हैं और वे कृष्ण की सतत स्मरण करती रहती हैं ॥१००॥ राधा कृष्ण के प्राणों से रची गई हैं और कृष्ण राधा के प्राणों से मूर्तिमान् हुए हैं। राधा का अनुसरण करने के लिए ही इनका गोकुल में आगमन हुआ है ॥१०१॥ पूर्वकाल में गोलोक में जो स्वीकार किया था उसी को पूरा करने के लिए कंस के भय के बहाने भगवान् गोकुल में आये हैं ॥१०२॥ प्रतिज्ञा के पालनार्थं ही इन्होंने ऐसा किया है नहीं तो भयेश को भय कहाँ? राधा शब्द की व्युत्पत्ति सामवेद में बतायी गयी है ॥१०३॥ पहले नारायण ने नाभिकमलस्थित ब्रह्मा को वह व्युत्पत्ति बतायी थी और ब्रह्मा ने ब्रह्मलोक में शिव को उसका उपदेश दिया था ॥१०४॥ पूर्वकाल में कैलास शिखर पर महेश्वर ने मुझे बताया था। नन्द! वह देवदुर्लभ व्युत्पत्ति बता रहा हूँ, सुनो। 'राधा' शब्द की व्युत्पत्ति देवों, असुरों एवं मुनीन्द्रों को अभीष्ट है तथा वह सबसे उत्कृष्ट एवं मोक्षदायिनी है। 'राधा' का रेफ करोड़ों जन्मों के पाप

Funding by IKS-MoE

आकारो गर्भवासं च मृत्युं च रोगमुत्सृजेत्। धकार आयुषो हानिमाकारो भवबन्धनम् ॥१०७॥
श्रवणस्मरणोक्तिभ्यः न प्रणश्यति संशयः। रेफो हि निश्चलां भक्तिं दास्यं कृष्णपदाम्बुजे ॥१०८॥
सर्वेप्सितं सदानन्दं सर्वसिद्धौघमीश्वरम्। धकारः सहवासं च तत्तुल्यकालमेव च ॥१०९॥
ददाति सार्ष्टिसारूप्यं तत्त्वज्ञानं हरेः[1] समम्। आकारस्तेजसां राशिं दानशक्तिं हरौ यथा ॥११०॥
योगशक्तिं योगमतिं सर्वकालं हरिस्मृतिम्। श्रुत्युक्तिस्मरणाद्योगान्मोहजालं च किल्विषम्।
॥१११॥
रोगशोकमृत्युयमा वेपन्ते नात्र संशयः
राधामाधवयोः किंचिद्व्याख्यानं च यतः श्रुतम्। तदुक्तं च यथाज्ञानं साकल्यं वक्तुमक्षमः ॥११२॥
आराद्वृन्दावने नन्द विवाहो भविताऽनयोः। पुरोहितो जगद्धाता कृत्वाऽग्निं साक्षिणं मुदा ॥११३॥
कुबेरपुत्रमोक्षं च गव्यस्याऽऽहृत्य भक्षणम्। हिंसनं धेनुकस्यैव कानने तालभोजनम् ॥११४॥
बककेशिप्रलम्बानां हिंसनं चाऽथ लीलया। मोक्षणं द्विजपत्नीनां मिष्टान्नपानभोजनम् ॥११५॥
भञ्जनं शक्रयागस्य शक्राद्गोकुलरक्षणम्। गोपीनां वस्त्रहरणं व्रतसंपादनं तथा ॥११६॥
ताभ्यः पुनर्वस्त्रदानं वरदानं यथेप्सितम्। चेतसां हरणं तासामयं वश्याः करिष्यति ॥११७॥

तथा शुभाशुभ कर्मभोग से छुटकारा दिलाता है ॥१०५-१०६॥ (आकार) गर्भवास, मृत्यु एवं रोग का विनाश करता है। 'धकार' आयु की हानि से और 'आकार' संसार-बन्धन से मुक्ति दिलाता है ॥१०७॥ राधा के स्मरण, श्रवण और कीर्तन द्वारा सभी दोष नष्ट हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं। (राधा नाम का) 'रकार' भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल की निश्चित भक्ति और दास्य प्रदान करता है ॥१०८॥ 'आकार' सकल कामना, सदा आनन्द, समस्त-सिद्धि-समूह एवं ईश्वर की प्राप्ति कराने वाला है। 'धकार' हरि के साथ उन्हीं के समान काल तक सहवास, समान ऐश्वर्य, सारूप्य और तत्त्वज्ञान प्रदान करता है। 'अकार' भगवान् के समान तेजोराशि, दानशक्ति योग-शक्ति, योगबुद्धि और सर्वदा हरि की स्मृति का स्मरण कराता है। राधा नाम के श्रवण, कथन और स्मरण के सुयोग से मोहजाल, पाप, रोग, शोक, मृत्यु और यम काँपने लगते हैं, इसमें संशय नहीं ॥१०९-१११॥ राधा-माधव के नाम की जो कुछ व्याख्या सुनी थी, वह अपने ज्ञान के अनुसार तुम्हें बता दी। सम्पूर्ण कहने की मुझमें शक्ति नहीं है ॥११२॥ नन्द ! यहाँ पास ही वृन्दावन में इन दोनों का विवाह होगा। जगत् के धाता ब्रह्मा पुरोहित हो अग्नि को साक्षी बनाकर प्रसन्नतापूर्वक विवाह करायेंगे ॥११३॥ (कृष्णलीला में ये बातें होंगी) कुबेर के पुत्र (यमलार्जुन) का मोक्ष, माखन चुराकर उसका भक्षण, वन में धेनुकासुर का वध और ताल-फल-भोजन, इन्द्र-याग-विध्वंसन, इन्द्र से गोकुल की रक्षा, गोपियों का चीर हरण, उनके व्रत का सम्पादन, पुनः उन्हें वस्त्र प्रदान कर लेंगे। तदनन्तर स्त्रियों एवं अभीष्ट वरदान देते हुए श्रीकृष्ण उनके चित्त का हरण कर उन्हें अपने अधीन

---

[1] क. स्वयम्।

Funding by IKS-MoE

रासोत्सवं महारम्यं सर्वेषां हर्षवर्धनम्। पूर्णचन्द्रोदये नवतं वसन्ते रासमण्डले ॥११८॥
गोपीनां नवसंभोगात्कृत्वा पूर्णं मनोरथम्। ताभिः सह जलक्रीडां करिष्यति कुतूहलात् ॥११९॥
विच्छेदोऽस्य वर्षशतं श्रीदामशापहेतुकम्। गोपालैर्गोपिकाभिश्च भविता राधया सह ॥१२०॥
मथुरागमनं तत्र गोपीनां शोकवर्धनम्। पुनः प्रबोधनं तासां दानमाध्यात्मिकस्य च ॥१२१॥
स्यन्दनाक्रूरयो रक्षां सद्यस्ताभ्यां करिष्यति। रथमारोहणं कृत्वा मथुरागमनं पुनः ॥१२२॥
पितृभ्रातृव्रजैः सार्धं विलङ्घ्य यमुनां व्रजे। अक्रूराय ज्ञानदानं दर्शयित्वा स्वकं जले ॥१२३॥
कौतुकेन च सायाह्ने नगरात्सर्वदर्शनम्। मालाकारतन्तुवायकुब्जानां बन्धमोक्षणम् ॥१२४॥
धनुर्भङ्गं शंकरस्य यागस्थानप्रदर्शनम्। हिंसनं गजमल्लानां दर्शनं नृपतेः [२]पुरः ॥१२५॥
कंसस्य हिंसनं सद्यः पित्रोर्निगडमोक्षणम्। प्रबोधनं च युष्माकमुग्रसेनाभिषेचनम् ॥१२६॥
तस्य तस्य वधूनां च ज्ञानाच्छोकापनोदनम्। भ्रातुः स्वस्योपनयनं विद्यादानं गुरोर्मुखात् ॥१२७
गुरुपुत्रप्रदानं च पुनरागमनं गृहे। छलनं नृपसैन्यानां यवनस्य दुरात्मनः ॥१२८॥
निर्माणं द्वारकायाश्च मुचुकुन्दस्य मोक्षणम्। द्वारकागमनं चैव यादवैः सह कौतुकात् ॥१२९॥

के हर्ष वृद्ध्यर्थ उनके साथ रास-क्रीड़ा करेंगे। वसंत की रात में पूर्ण चन्द्र के उदय होने पर गोपियों के साथ नूतन संभोग से उनका मनोरथ पूर्ण करके कुतूहलवश उनके साथ जल-विहार करेंगे ॥११४-११९॥ पश्चात् श्रीदामा के शापवश गोप, गोपियों और राधिका से उनका सौ वर्ष का वियोग होगा ॥१२०॥ उस समय ये मथुरा चले जायँगे, जिससे गोपियों का शोक बढ़ जायेगा। पुनः ये आकर गोपियों को समझायेंगे और आध्यात्मिक ज्ञान देंगे ॥१२१॥ उस प्रबोधन तथा आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा ये रथ तथा अक्रूर की रक्षा करेंगे। पुनः रथ पर बैठ कर पिता, भ्राता एवं व्रजवासियों के साथ व्रज में यमुना को लाँघ कर मथुरा को जायेंगे। वहाँ यमुना-जल में अक्रूर को अपने स्वरूप का दर्शन कराकर उन्हें ज्ञान देंगे ॥१२२-१२३॥ फिर सायंकाल मथुरा पहुँचकर कौतूहलवश नगर में घूम-घूम कर सबको दर्शन देंगे। माली, दरजी और कुब्जा को भाव-बन्धन से मुक्त करेंगे ॥१२४॥ शिव-धनुष का भंग करके यज्ञ-स्थान को देखेंगे। फिर कुवलयापीड हाथी और मल्लों का वध करके सामने राजा कंस का दर्शन करेंगे ॥१२५॥ वहाँ तत्काल कंस का वध करके माता-पिता को बंधन से मुक्त करेंगे। अनन्तर तुम लोगों को समझा-बुझाकर उग्रसेन का राजतिलक करेंगे ॥१२६॥ स्त्रियों के शोक का ज्ञान द्वारा नाश करके भ्राता समेत अपना उपनयन संस्कार कराकर गुरु के मुख से विद्याध्ययन करेंगे ॥१२७॥ अनन्तर गुरु को उनका मृत पुत्र लाकर देंगे और लौट आयेंगे। इसके बाद राजसैनिकों को चकमा देकर दुष्ट यवन का वध, द्वारका पुरी का निर्माण, मुचुकुंद का मोक्ष, कौतुकवश यादवों समेत द्वारकापुरी गमन

---

[२] क. सभाम्।

स्त्रीसंघानां विहरणं ताभिः सार्धं च क्रीडनम् । सौभाग्यवर्धनं तासां पुत्रपौत्रादिकस्य च ॥१३०॥
मणिसंबन्धिनो मिथ्याकलङ्कस्य च मोक्षणम् । साहाय्यं पाण्डवानां च भारावतरणादिकम् ॥१३१॥
निष्पन्नं राजसूयस्य धर्मपुत्रस्य लीलया । पारिजातस्य हरणं शक्राहंकारमर्दनम् ॥१३२॥
व्रतपूर्णं च सत्याया बाणस्य भुजकृन्तनम् । मर्दनं शिवसैन्यानां हरस्य जृम्भणं परम् ॥१३३॥
हरणं बाणपुत्र्याश्चैवानिरुद्धस्य मोक्षणम् । वाराणस्याश्च दहनं विप्रदारिद्र्यभञ्जनम् ॥१३४॥
विप्रपुत्रप्रदानं च दुष्टानां दमनादिकम् । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन युष्माभिः सह दर्शनम् ॥१३५॥
कृत्वा च राधया सार्धं व्रजमागमिता पुनः । प्रस्थापयित्वा द्वारां च परं नारायणांशकम् ॥१३६॥
सर्वं निष्पादनं कृत्वा गोलोकं राधया सह । गमिष्यत्येव गोलोकं नाथोऽयं जगतां पतिः ॥१३७॥
नारायणश्च वैकुण्ठं गमिता स्म त्वया सह । धर्मगेहमृषी द्वौ च विष्णुः क्षीरोदमेव च ॥१३८॥
इत्येवं कथितं नन्द भविष्यं वेदनिर्णयम् । श्रूयतां सांप्रतं कर्म यदर्थं गमनं मम ॥१३९॥
माघशुक्लचतुर्दश्यां कुरु कर्म शुभे क्षणे । गुरुवारे च रेवत्यां विशुद्धे चन्द्रतारके ॥१४०॥
चन्द्रस्थे मीनलग्ने च लग्नेशपूर्णदर्शने । वणिजे करणोत्कृष्टे शुभयोगे मनोहरे ॥१४१॥
सुदुर्लभे दिने तत्र सर्वोत्कृष्टोपयोगिके । आलोच्य पण्डितैः सार्धं कुरु कर्म मुदाऽन्वितः ॥१४२॥

और स्त्री-समूहों के साथ विहार और क्रीड़ा करेंगे । उनका और उनके पुत्र-पौत्र आदि के सौभाग्य की वृद्धि करेंगे ॥१२८-१३०॥ मणि सम्बन्धी मिथ्या कलंक का मार्जन, पाण्डवों की सहायता, भूभार-हरण, धर्मपुत्र युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का लीला पूर्वक सम्पादन, पारिजात का अपहरण और इन्द्र के अहंकार का मर्दन करेंगे ॥१३१-१३२॥ फिर सत्यभामा के व्रत की पूर्ति, बाणासुर की भुजाओं का छेदन, शिव-सैनिकों का मर्दन और जृम्भण, वाण-पुत्री (उषा) का हरण एवं अनिरुद्ध की वन्धन से मुक्ति, वाराणसी नगरी का दहन, ब्राह्मण का दारिद्र्य-दूरीकरण, एक ब्राह्मण को मृतक पुत्र लाकर प्रदान, दुष्टों का दमन और तीर्थ-यात्रा के प्रसंग में तुम लोंगों से मिलेंगे ॥१३३-१३५॥ तदन्तर रावा के साथ पुनः व्रज में आयेंगे । फिर अपने परम नारायणांश को द्वारका भेज कर ये जगत्पति प्रभु सव कार्यों को सुसपन्न करके पुंनः राधा के साथ गोलोक में पधारेंगे । नारायण भी तुम्हारे साथ वैकुण्ठ को चले जायेंगे । दोनों नर-नारायण ऋषि धर्म के घर और विष्णु क्षीर-सागर को चले जायँगे ॥१३६-१३८॥ नन्द! इस प्रकार वेद द्वारा निर्णीत भविष्य की वातें मैंने वता दीं । सम्प्रति जिस कर्म के लिए मैं आया हूँ, उस कार्य को अव सुनो । माघ-शुक्ल-चर्तुदशी के शुभ मुहूर्त में इन वालकों का संस्कार करो । उस दिन गुरुवार, रेवती नक्षत्र, चन्द्र और तारा विशुद्ध हैं ॥१३९-१४०॥ फिर मीन का चन्द्रमा है । उस पर लग्नेश की पूर्ण दृष्टि है । उत्तम वणिज नामक करण है और मनोहर शुभ योग हैं । वह दिन परम दुर्लभ है । उसमें सभी उत्कृष्ट एवं उपयोगी योगों का उदय हुआ है । अतः पण्डितों के साथ विचार-परामर्श करके प्रसन्न मन से इस कर्म को सुसम्पन्न करो

इत्युक्त्वा बहिरागत्य स उवास मुनीश्वरः। हृष्टो नन्दो यशोदा च कर्मोद्योगं चकार ह ॥१४३॥
एतस्मिन्नन्तरे द्रष्टुं गर्गं गोपाश्च गोपिकाः। बालका बालिकाश्चैव ह्याजग्मुर्नन्दमन्दिरम् ॥१४४॥
ददृशुस्ते मुनिश्रेष्ठं ग्रीष्ममध्याह्नभास्करम्। शिष्यसंघैः परिवृतं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥१४५॥
गूढयोगं प्रवोचन्तं सिद्धाय पृच्छते मुदा। पश्यन्तं सस्मितं नन्दभवनानां परिच्छदम् ॥१४६॥
स्वर्णसिंहासनस्थं च योगमुद्राधरं वरम्। भूतं भव्यं भविष्यं च पश्यन्तं ज्ञानचक्षुषा ॥१४७॥
हृदीश्वरं प्रपश्यन्तं सिद्धं मन्त्रप्रभावतः। बहिर्यशोदाक्रोडस्थं तादृशं सस्मितं शिशुम् ॥१४८॥
महेशदत्तध्यानेन यद्रूपं च निरूपितम्। तं दृष्ट्वा परमप्रीत्या पूर्णभूतमनोरथम् ॥१४९॥
साश्रुनेत्रं पुलकितं निमग्नं भक्तिसागरे। हृदि पूजां प्रणामं च कुर्वन्तं योगचर्यया ॥१५०॥
मूर्ध्ना प्रणेमुस्ते तं च स च तानाशिषं ददौ। आसनस्थो मुनिस्तस्थौ ते जग्मुः स्वालयं मुदा ॥१५१॥
नन्दः स्वानन्दयुक्तश्च बन्धून्मङ्गलपत्रिकाः। प्रस्थापयामास शीघ्रमाराद्दूरस्थितान्मुदा ॥१५२॥
दधिकुल्यां दुग्धकुल्यां घृतकुल्यां प्रपूरिताम्। गुडकुल्यां तैलकुल्यां मधुकुल्यां च विस्तृताम् ॥१५३॥
नवनीतकुल्यां पूर्णां च तक्रकुल्यां यदृच्छया। शर्करोदककुल्यां च परिपूर्णां च लीलया ॥१५४॥
तण्डुलानां च शालीनामुच्चैश्च शतपर्वतान्। पृथुकानां शैलशतं लवणानां च सप्त च ॥१५५॥

॥१४१-१४२॥ इतना कहकर वे मुनीश्वर बाहर आकर बैठ गये। तब नन्द और यशोदा हर्षित होकर उस कार्य के लिए उद्योग करने लगे ॥१४३॥ उसी बीच गर्ग को देखने के लिए गोप-गोपियाँ, बालक और बालिकायें नन्द के भवन में आये ॥१४४॥ उन लोगों ने उन्हें देखा कि गर्ग ग्रीष्मकाल के मध्याह्नकालीन सूर्य के समान चमक रहे हैं और वे शिष्य-समूहों से घिरे, ब्रह्मतेज से देदीप्यमान हैं। सिद्धों के पूछने पर उन्हें प्रसन्न मन से वे गूढ़ योग बता रहे हैं तथा नंद के भवन की एक-एक सामग्री को मुसकराते हुए देख रहे हैं। वे योग मुद्रा धारण किये सुवर्ण-सिंहासन पर बैठे हैं। वे ज्ञानचक्षु से भूत, वर्तमान और भविष्य को भी देख रहे हैं तथा मंत्र के प्रभाववश परमात्मा के जिस सिद्ध स्वरूप को देखते हैं, उसी को मुसकराते हुए बाहर यशोदा की गोद में देख रहे हैं। शिव के बताये ध्यान द्वारा जिस रूप का उन्हें साक्षात्कार हुआ था, उसी पूर्णकाम परमात्मस्वरूप का अत्यन्त प्रेम से दर्शन करके वे अश्रुपूरितनेत्र, रोमाञ्चित शरीर और भक्तिसागर में निमग्न हो गये। वे योगचर्या द्वारा हृदय में पूजा और प्रणाम कर रहे हैं ॥१४५-१५०॥ ऐसे आचार्य को सभी लोगों ने शिर से प्रणाम किया, उन्होंने भी उन सबको शुभ आशिष प्रदान किया। फिर मुनिवर्य गर्ग आसन पर अवस्थित रहे और वे लोग-प्रसन्नता पूर्वक अपने-अपने घर चले गये ॥१५१॥ आनन्दयुक्त नन्द ने अपने समीपस्थ तथा दूरवर्ती बन्धुओं के पास शीघ्र मंगल निमंत्रण भेज दिया ॥१५२॥ इसके पश्चात् उन्होंने दही, दूध, घी, गुड़, तेल, मधु, मक्खन, मट्ठा, चीनी, और जल की नहरें लीला पूर्वक तैयार करायीं। फिर साठी चावल के ऊँचे सौ पर्वत, चिउरा के सौ पर्वत, नमक

Funding by IKS-MoE

सप्त शैलाञ्छर्करानां लड्डुकानां च सप्त च। परिपक्वफलानां च तत्र षोडश पर्वतान् ॥१५६॥
यवगोधूमचूर्णानां पक्वलड्डुकपिण्डकान्। मोदकानां च शैलं च स्वस्तिकानां च पर्वतान् ॥१५७॥
कपर्दकानामत्युच्चैः शैलान्सप्त च नारद। कर्पूरादिकयुक्तानां ताम्बूलानां च मन्दिरम् ॥१५८॥
विस्तृतं द्वारहीनं च वासितोदकसंयुतम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङकुमेन समन्वितम् ॥१५९॥
नानाविधानि रत्नानि स्वर्णानि विविधानि च। मुक्ताफलानि रम्याणि प्रवालानि मुदाऽन्वितः ॥१६०॥
नानाविधानि चारूणि वासांसि भूषणानि च। पुत्रान्नप्राशने नन्दः कारयामास कौतुकात् ॥१६१॥
संस्कारयुक्तं रुचिरं चन्दनद्रवचर्चितम्। प्राङ्गणं कदलीस्तभं रसालनवपल्लवैः ॥१६२॥
ग्रथितैः सूक्ष्मवस्त्रेण वेष्टयामास कौतुकात्। युक्तं मङ्गलकुम्भैश्च फलपल्लवसंयुतैः ॥१६३॥
चन्दनागुरुकस्तूरीपुष्पमालाविराजितैः। माल्यानां वरवस्त्राणां राशिभिश्च विराजितम् ॥१६४॥
गवां च मधुपर्काणामासनानां च नारद। फलानां जलकुम्भानां समूहैश्च समन्वितम् ॥१६५॥
नानाप्रकारैर्वाद्यैश्च दुर्लभैः सुमनोहरैः। ढक्कानां दुन्दुभीनां च पटहानां तथैव च ॥१६६॥
मृदङ्गमुरजादीनामानकानां समूहकैः। वंशीसंनहनीकांस्यशरयन्त्रैश्च शब्दितम् ॥१६७॥
विद्याधरीणां नृत्येन भृङ्गिमाभ्रमणेन च। गन्धर्वनायकानां च संगीतैर्मूर्च्छनायुतैः ॥१६८॥
स्वर्णसिहासनानां च रथानां निःस्वनैर्युतम्। एतस्मिन्नन्तरे नन्दमुवाच वाचको मुदा ॥१६९॥

के सात पर्वत, शक्कर के सात, लड्डू के सात, परिपक्व फलों के सोलह पर्वत, जवा और गेहूँ के आटे के पके हुए लड्डुक, पिण्ड, मोदक तथा स्वस्तिक के अनेक पर्वत तैयार कराये ॥१५३-१५७॥ नारद ! कपर्दकों (कौड़ियों ?) के भी अति ऊँचे सात पर्वत बनवाये। कपूर आदि से युक्त ताम्बूलों का घर बनवाया, जो विस्तृत और द्वारहीन था। वहाँ सुवासित जल का घर भी था, जिसमें चन्दन, अगुरु, कस्तूरी एवं कुंकुम मिलाये गये थे ॥१५८-१५९॥ विविध प्रकार के रत्न समेत सुवर्ण मोती, मूँगे, अनेक प्रकार के सुन्दर वस्त्र और आभूषणों को नन्द ने अपने पुत्र के अन्नप्राशन संस्कार के लिए कुतूहल से एकत्र किया ॥१६०-१६१॥ आँगन को सफाई-रँगाई आदि द्वारा सुन्दर बनाया गया। उसमें चन्दन मिश्रित जल का छिड़काव किया गया। केले के खम्भों और आम के नवीन पल्लवों की वन्दनवारों से सुसज्जित कराकर सूक्ष्म वस्त्र से कौतुकवश घेर दिया गया। यथास्थान मंगल-कलश स्थापित किये गयें। उन्हें फलों और पल्लवों से युक्त, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा पुष्पमाला से विभूषित किया गया। मालाओं और उच्च वस्त्रों की राशिओं से आँगन को सुशोभित किया गया। नारद ! उसमें गौएँ, मधुपर्क, आसन, फल, और जलकलशों के समूह रखे गये। वहाँ विविध भाँति के दुर्लभ एवं अति मनोहर वाद्यों, डमरू, नगाड़, ढोल, मृदंग, मुरज, आनक आदि के समूहों तथा वंशी, सन्नहनी और झांझ के शब्द हो रहे थे ॥१६२-१६७॥ विद्याधरियों के नृत्य, भावभंगी तथा भ्रमण से और गन्धर्व-नायकों के मूर्च्छना युक्त संगीतों से तथा सुवर्ण-सिहासनों एवं रथों के सम्मिलित शब्दों से नन्द-प्रांगण की अपूर्व शोभा हो रही थी। उसी बीच

आजग्मुर्बल्लवेन्द्राश्च बान्धवा बल्लवास्तथा। अश्वस्थाश्च गजस्थाश्च रथस्थाश्चेति सत्वरम् ॥१७०॥
आजग्मू राजपुत्राश्च रत्नालंकारभूषिताः। आगतो गिरिभानुश्च सस्त्रीकश्च सकिंकरः ॥१७१॥
रथानां च चतुर्लक्षं गजानां च तथैव च। तुरंगमाणां कोटिश्च शिबिकानां तथैव च ॥१७२॥
ऋषीन्द्राणां मुनीन्द्राणां विप्राणां च विपश्चिताम्। बन्दिनां भिक्षुकाणां च समूहैश्च समीपतः ॥१७३॥
गोपानां गोपिकानां च संख्यां कर्तुं च कः क्षमः। पश्याऽगत्य बहिर्भूयेत्युवाच प्राङ्गणे स्थितः ॥१७४॥
श्रुत्वैवं तानुपव्रज्य समानीय व्रजेश्वरः। प्राङ्गणे वासयामास पूजयामास सत्वरम् ॥१७५॥
ऋष्यादिकसमूहं च प्रणम्य शिरसा भुवि। पाद्यादिकं च तेभ्यश्च प्रददौ सुसमाहितः ॥१७६॥
वस्तुभिर्बन्धुभिः पूर्णं बभूव नन्दगोकुलम्। न कोऽपि कस्य शब्दं च श्रोतुं शक्तश्च तत्र वै ॥१७७॥
त्रिमुहूर्तं कुबेरश्च श्रीकृष्णप्रीतये मुदा। चकार स्वर्णवृष्ट्या च परिपूर्णं च गोकुलम् ॥१७८॥
कौतुकापह्नवं चक्रुर्बन्धुवर्गाश्च क्रीडया। आनम्रकंधराः सर्वे दृष्ट्वा नन्दस्य संपदम् ॥१७९॥
नन्दः कृताह्निकः पूतो धृत्वा धौते च वाससी। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेनैव भूषितः ॥१८०॥
उवास पादौ प्रक्षाल्य स्वर्णपीठे मनोहरे। गर्गस्य च मुनीन्द्राणां गृहीत्वाऽऽज्ञां व्रजेश्वरः ॥१८१॥
संस्मृत्य विष्णुमाचान्तः स्वस्तिवाचनपूर्वकम्। कृत्वा कर्म च वेदोक्तं भोजयामास बालकम् ॥१८२॥

प्रसन्न होकर संदेशवाहक से नन्द ने कहा ॥१६८-१६९॥ आपके भाई-बन्धु वल्लवराजगण तथा गोपगण पधारे हैं। उनमें से कुछ लोग घोड़ों पर, कुछ हाथियों पर और कुछ रथों पर चढ़कर शीघ्रतापूर्वक आये हैं। रत्नों के आभूषणों से विभूषित कितने राजपुत्रों का भी आगमन हुआ है ॥१७०-१७१॥ पत्नी और सेवक समेत गिरिभानु भी आ गये हैं। चार लाख रथ, चार लाख हाथी, एक करोड़ घोड़े, एक करोड़ पालकी तथा ऋषीन्द्रगण, मुनिगण, विद्वान् ब्राह्मण, बन्दीजन और भिक्षुकों के समूह भी निकट आ गये हैं। गोपों और गोपियों की संख्या बताने में कौन समर्थ हो सकता है? आप प्रांगण से बाहर चल कर स्वयं देख लें। ऐसी बात आंगन में खड़े हुए दूत ने कही ॥१७२-१७४॥ यह सुन कर व्रजेश्वर नन्द ने स्वयं उनके समीप जाकर उन्हें आँगन में लाकर बिठाया और तुरन्त उनकी पूजा की ॥१७५॥ ऋषि आदि के वृन्दों को शिर से भूमि में प्रणाम कर सावधान मन से उन्हें पाद्य आदि समर्पित किये ॥१७६॥ उस समय नन्द का गोकुल वस्तुओं और बन्धुओं से इतना परिपूर्ण हो गया कि––वहाँ कोई किसी का शब्द नहीं सुन सकता था। कुबेर ने भी श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए तीन घड़ी तक सुवर्ण की वर्षा से समस्त गोकुल को भर दिया ॥१७७-१७८॥ अत्यन्त कौतुक प्रदर्शित किया। नन्द की सम्पत्ति को देखकर बन्धुवर्गों ने कन्धे झुका लिये और क्रीड़ा द्वारा कुतूहल को छिपा लिया ॥१७९॥ नन्द ने नित्य कर्म के उपरान्त पवित्र होकर दो धुले वस्त्र धारण किये। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी एव कुंकुम से भूषित होकर पैरों को धोकर सुन्दर सुवर्ण-पीठ पर गर्ग और मुनीन्द्रों की आज्ञा से बैठ गये ॥१८०-१८१॥ भगवान् विष्णु का स्मरण करके आचमन किया और स्वस्तिवाचन पूर्वक वेदोक्त कर्म सम्पन्न करके बालक को

Funding by IKS-MoE

गर्गवाक्यानुसारेण बालकस्य मुदाऽन्वितः। कृष्णेति मङ्गलं नाम ररक्ष च शुभे क्षणे ॥१८३॥
सघृतं भोजयित्वा च कृत्वा नाम जगत्पतेः। वाद्यानि वादयामास कारयामास मङ्गलम् ॥१८४॥
नानाविधानि स्वर्णानि धनानि विविधानि च। भक्ष्यद्रव्याणि वासांसि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥१८५॥
बन्दिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च सुवर्णं विपुलं ददौ। भाराक्रान्ताश्च ते सर्वे न शक्ता गन्तुमेव च ॥१८६॥
ब्राह्मणान्बन्धुवर्गांश्च भिक्षुकांश्च विशेषतः। मिष्टान्नं भोजयामास परिपूर्णं मनोहरम् ॥१८७॥
दीयतां दीयतां चैव खाद्यतां खाद्यतामिति। बभूव शब्दोऽत्युच्चैश्च सततं नन्दगोकुले ॥१८८॥
रत्नानि परिपूर्णानि वासांसि भूषणानि च। प्रवालानि सुवर्णानि मणिसाराणि यानि च ॥१८९॥
चारूणि स्वर्णपात्राणि कृतानि विश्वकर्मणा। गत्वा गर्गाय विनयं चकार व्रजपुंगवः ॥१९०॥
शिष्येभ्यः स्वर्णभाराणि प्रददौ विनयान्वितः। द्विजेभ्योऽप्यवशिष्टेभ्यः परिपूर्णानि नारद ॥१९१॥

नारायण उवाच

गृहीत्वा श्रीहरिं गर्गो जगाम निभृतं मुदा। तुष्टाव परया भक्त्या प्रणम्य च तमीश्वरम् ॥१९२॥
साश्रुनेत्रः सपुलको भक्तिनम्रात्मकंधरः। पुटाञ्जलियुतो भूत्वोवाच कृष्णपदाम्बुजे ॥१९३॥

गर्ग उवाच

हे कृष्ण जगतां नाथ भक्तानां भयभञ्जन। प्रसन्नो भव मामीश देहि दास्यं पदाम्बुजे ॥१९४॥

भोजन कराया। गर्ग के कथनानुसार शुभमुहूर्त में सुप्रसन्न मन से बालक का 'कृष्ण' यह शुभ नाम रखा ॥१८२-१८३॥ जगत्पति भगवान् के नामकरण के बाद घृत सहित भोजन कराया, बाजे बजवाये और मङ्गल कृत्य करवाया ॥१८४॥ अनेक भाँति के धन, सुवर्ण, भक्ष्य वस्तु और वस्त्र ब्राह्मणों को सहर्ष समर्पित किये ॥१८५॥ बन्दियों और भिक्षुकों को इतना अधिक सुवर्ण प्रदान किया कि—वे लोग भार से दबकर उसे ले जाने में असमर्थ रहे ॥१८६॥ ब्राह्मणों, बन्धुओं और भिक्षुकों को मनोहर एवं परिपूर्ण मिष्टान्न भोजन कराया ॥१८७॥ उस समय नन्द के गोकुल में 'दो और दो' तथा 'खाओ खाओ' इस प्रकार बड़े जोर से शब्द हो रहा था ॥१८८॥ रत्नों की परिपूर्ण राशि, वस्त्र, भूषण, मूंगे, सुवर्ण, मणियों के सार भाग की राशि तथा विश्वकर्मा के बनाये हुए सुवर्ण-पात्र व्रजराज नन्द ने गर्ग को विनयपूर्वक अर्पित किये ॥१८९—१९०॥ नारद ! विनय के साथ ही उन्होंने सुवर्ण के भार उनके शिष्यों को तथा शेष ब्राह्मणों को प्रचुरता से समर्पित किये ॥१९१॥

नारायण बोले—गर्ग श्रीहरि को लेकर प्रसन्नता से एकान्त में गये और बड़ी भक्ति से उन ईश्वर को प्रणाम करके स्तुति की। उस समय उनके नेत्रों से आँसू बह रहे थे, शरीर में रोमाञ्च हो आया था। मस्तक भक्ति-भाव से झुक गया था और श्रीकृष्ण के पादारविन्द में हाथ जोड़कर वे बोले ॥१९२-१९३॥

गर्ग बोले—हे कृष्ण ! हे जगत् के स्वामी ! हे भक्तों के भय-विनाशक ! हे ईश ! मुझे अपने चरण

गत्वा गर्गाय (दत्वा गर्गाय)

Funding by IKS-MoE

त्वत्पित्रा मे धनं दत्तं तेन मे कि प्रयोजनम्। देहि मे निश्चलां भक्तिं भक्तानामभयप्रद ॥१९५॥
अणिमादिकसिद्धिषु योगेषु मुक्तिषु प्रभो। ज्ञानतत्त्वेऽमरत्वे वा किंचिन्नास्ति स्पृहा मम ॥१९६॥
इन्द्रत्वे वा मनुत्वे वा स्वर्गलोकफले चिरम्। नास्ति मे मनसो वाञ्छा त्वत्पादसेवनं विना ॥१९७॥
सालोक्यं सार्ष्टिसारूप्ये सामीप्यैकत्वमीप्सितम्। नाहं गृहणामि ते ब्रह्मंस्त्वत्पादसेवनं विना ॥१९८॥
गोलोके वाऽपि पाताले वासे नास्ति मनोरथः। किन्तु ते चरणाम्भोजे संततं स्मृतिरस्तु मे ॥१९९॥
त्वन्मन्त्रं शंकरात्प्राप्य दीनबन्धो पदाम्बुजे। रक्ष मामभयं दत्त्वा मृत्युर्मे किं करिष्यति ॥२०१॥
सर्वेषामीश्वरः सर्वस्त्वत्पादाम्भोजसेवया। मृत्युंजयोऽन्तकालश्च बभूव योगिनां गुरुः ॥२०२॥
ब्रह्मा विधाता जगतां त्वत्पादाम्भोजसेवया। यस्यैकदिवसे ब्रह्मन्पतन्तीन्द्राश्चतुर्दश ॥२०३॥
त्वत्पादसेवया धर्मः साक्षी च सर्वकर्मणाम्। पाता च फलदाता च जित्वा कालं सुदुर्जयम् ॥२०४॥
सहस्रवदनः शेषो यत्पादाम्बुजसेवया। धत्ते सिद्धार्थवद्विश्वं शिवः कण्ठे विषं यथा ॥२०५॥
सर्वसंपद्विधात्री या देवीनां च परात्परा। करोति सततं लक्ष्मीः केशैस्त्वत्पादमार्जनम् ॥२०६॥
प्रकृतिर्बीजरूपा सा सर्वेषां शक्तिरूपिणी। स्मारं स्मारं त्वत्पदाब्जं बभूव तत्परा वरा ॥२०७॥

कमल का दास्य प्रदान करो ॥ १९४॥ हे भक्तों को अभय देने वाले ! यद्यपि आपके पिता ने मुझे धन अर्पित किया है, किन्तु उससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है, आप मुझे अपनी निश्चल भक्ति प्रदान करें ॥१९५॥ हे प्रभो ! अणिमा आदि सिद्धियों, योगों, मुक्तियों तथा ज्ञानतत्त्व या अमरत्व की मुझे कुछ भी इच्छा नहीं है ॥१९६॥ तुम्हारे चरण की सेवा बिना इन्द्रत्व, मनुत्व और स्वर्ग लोक में चिर निवास की इच्छा भी मेरे मनमें नहीं है ॥१९७॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे चरण की सेवा के विना मैं सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य, सामीप्य और एकत्व मुक्ति का ग्रहण भी नहीं कर सकता हूँ ॥१९८॥ गोलोक एवं पाताल में वास करने की मेरी इच्छा नहीं है, किन्तु तुम्हारे चरण-कमल का स्मरण मुझे निरन्तर होता रहे ॥१९९॥ कितने जन्मों के पुण्यफल का उदय होने पर मैंने शिवजी से तुम्हारा मंत्र प्राप्त किया है, जिससे मैं सर्वज्ञाता तथा सर्वदर्शी हो गया हूँ और सर्वत्र मेरी गति है ॥२००॥ कृपासिन्धो ! दीनबन्धो ! कृपा करो। मुझे अभय देकर अपने चरणकमल में रख लो। फिर मृत्यु मेरा क्या करेगा ? ॥२०१॥ तुम्हारे चरणकमल की सेवा द्वारा शिव सबके ईश्वर, मृत्युञ्जय, कालान्तक एवं योगियों के गुरु हो गये हैं ॥२०२॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे चरणकमल की सेवा करके ब्रह्मा जगत् के विधाता हुए हैं जिनके एक दिन में चौदह इन्द्र समाप्त हो जाते हैं ॥२०३॥ तुम्हारे चरण की सेवावश धर्म समस्त कर्मों के साक्षी तथा अति दुर्जेयकाल को जीतकर सभी के रक्षक एवं फलदाता हुए हैं ॥२०४॥ आपके चरणकमल की सेवावश सहस्रमुख वाले शेष राई के समान समस्त विश्व को उसी तरह धारण करते हैं जैसे शिव अपने कण्ठ में विष धारण करते हैं। ॥२०५॥ जो लक्ष्मी सम्पूर्ण सम्पदाओं की सृष्टि करने वाली तथा देवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं, वे अपने केशों द्वारा आपके चरणों को पोंछती हैं ॥२०६॥ जो सभी की बीजरूपा हैं, वे शक्तिरूपिणी प्रकृति आपके चरण-कमलों का बार-बार

पार्वती सर्वरूपा सा सर्वेषां बुद्धिरूपिणी। त्वत्पादसेवया कान्तं ललाभ शिवमीश्वरम् ॥२०८॥
विद्याधिष्ठात्री देवी या ज्ञानमाता सरस्वती। पूज्या बभूव सर्वेषां सम्पूज्य त्वत्पदाम्बुजम् ॥२०९॥
सावित्री वेदजननी पुनाति भुवनत्रयम्। ब्रह्मणो ब्राह्मणानां च गतिस्त्वत्पादसेवया ॥२१०॥
क्षमा जगद्विभर्तुं च रत्नगर्भा वसुंधरा। प्रसूतिः सर्वसस्यानां त्वत्पादपद्मसेवया ॥२११॥
राधा ममांशसंभूता तव तुल्या च तेजसा। स्थित्वा वक्षसि ते पादं सेवतेऽन्यस्य का कथा ॥२१२॥
यथा शर्वादयो देवा देव्यः पद्मादयो यथा। सनाथं कुरु मामीश ईश्वरस्य समा कृपा ॥२१३॥
न यास्यामि गृहं नाथ न गृह्णामि धनं तव। कृत्वा मां रक्ष पादाब्जसेवायां सेवकं रतम् ॥२१४॥
इति स्तुत्वा साश्रुनेत्रः पपात चरणे हरेः। रुरोद च भृशं भक्त्या पुलकाञ्चितविग्रहः ॥२१५॥
गर्गस्य वचनं श्रुत्वा जहास भक्तवत्सलः। उवाच तं स्वयं कृष्णो मयि ते भक्तिरस्त्विति ॥२१६॥
इदं गर्गकृतं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। दृढां भक्तिं हरेर्दास्यं स्मृतिं च लभते ध्रुवम् ॥२१७॥
जन्ममृत्युजरारोगशोकमोहादिसंकटात्। तीर्णो भवति श्रीकृष्णदाससेवनतत्परः ॥२१८॥
कृष्णस्य सहकालं च कृष्णसार्धं च मोदते। कदाचिन्न भवेत्तस्य विच्छेदो हरिणा सह ॥२१९॥

स्मरण करके उन्हीं में तत्पर हो गई हैं ॥२०७॥ सब की बुद्धिस्वरूपा एवं सर्वरूपा पार्वती ने अपके चरणों की सेवा से ईश्वर शिव को पति रूप में प्राप्त किया है ॥२०८॥ विद्या की अधिष्ठात्री देवी एवं ज्ञानमाता सरस्वती आपके चरण-कमलों की अर्चना करके सब की पूजनीया हुई हैं ॥२०९॥ ब्रह्मा और ब्राह्मणों की एकमात्र गति वेदजननी सावित्री आपके चरणों की सेवा से तीनों लोकों को पवित्र करती हैं ॥२१०॥ आपके चरण-कमल की सेवा करके वसुन्धरा, रत्नगर्भा, समस्त जगत् को धारण करने में समर्थ और समस्त धान्यों को उत्पन्न करने वाली हुई हैं ॥२११॥ आपके अंश से उत्पन्न तथा तेज में आपके ही समान राधा आपके वक्षःस्थल पर स्थित होकर भी आपके चरणों की सेवा करती हैं, तो अन्य की बात ही क्या है ॥२१२॥ हे ईश ! जिस प्रकार शिव आदि देवों और लक्ष्मी आदि देवियों को आपने सनाथ किया है, उसी भाँति मुझे भी सनाथ करें, क्योंकि ईश्वर की कृपा सब पर समान होती है ॥२१३॥ हे नाथ ! न मैं घर जाऊँगा और न आप का धन ही ग्रहण करूँगा, मुझे अपने चरण-कमलों की सेवा में निरत सेवक बनाकर मेरी रक्षा करें ॥२१४॥ इस प्रकार स्तुति करके सजलनेत्र होकर गर्ग भगवान् के चरण पर गिर पड़े और बहुत रोये। उस समय उनका शरीर भक्ति से रोमाञ्चित हो गया ॥२१५॥ गर्ग की बात सुनकर भक्तवत्सल भगवान् हँस पड़े और स्वयं कृष्ण ने कहा--मुझ में तुम्हारी भक्ति हो ॥२१६॥ जो मनुष्य गर्ग के इस स्तोत्र का तीनों संध्याओं में पाठ करता है, उसे हरि की दृढ़ भक्ति, दास्य और स्मरण निश्चित ही प्राप्त होता है ॥२१७॥ श्रीकृष्ण के दास की सेवा करने से मनुष्य जन्म, मृत्यु, जरा, रोग, शोक एवं मोह आदि के संकट से पार हो जाता है। वह श्रीकृष्ण के साथ उनके समान काल तक आनन्द-मग्न रहता है, भगवान् से उसका कभी भी वियोग नहीं होता है ॥२१८-२१९॥

Funding by IKS-MoE

नारायण उवाच

हरिं मुनिः स्तवं कृत्वा ददौ नन्दाय तं मुदा। उवाच तं गृहं यामि कुर्वाज्ञामिति बल्लव ॥२२०॥
अहो विचित्रः संसारो मोहजालेन वेष्टितः। संमीलनं च विरहो नराणां सिन्धुफेनवत् ॥२२१॥
गर्गस्य वचनं श्रुत्वा रुरोद नन्द एव च। सद्विच्छेदो हि साधूनां मरणादतिरिच्यते ॥२२२॥
सर्वशिष्यैः परिवृतं मुनीन्द्रं गन्तुमुद्यतम्। सर्वे नन्दादयो गोपा रुदन्तो गोपिकास्तदा ॥२२३॥
प्रणेमुः परमप्रीत्या चक्रुस्तं विनयं मुने। दत्त्वाऽऽशिषं मुनिश्रेष्ठो जगाम मथुरां मुदा ॥२२४॥
ऋषयो मुनयश्चैव बन्धुवर्गाश्च बल्लवाः। सर्वे जग्मुर्धनैः पूर्णाः स्वालयं हृष्टमानसाः ॥२२५॥
प्रजग्मुर्बन्दिनः सर्वे परिपूर्णमनोरथाः। मिष्टद्रव्यांशुकोत्कृष्टतुरगस्वर्णभूषणैः ॥२२६॥
आकण्ठपूर्णा भुक्त्या च भिक्षुका गन्तुमक्षमाः। स्वर्णवस्त्रभरोद्रेकपरिश्रान्ता मुदाऽन्वताः ॥२२७॥
सुमन्दगामिनः केचित्केचिद्भूमौ च शेरते। केचिद्वर्त्मनि तिष्ठन्तश्चोत्तिष्ठन्तश्च केचन ॥२२८॥
केचिद्दूषुः प्रमुदिता हसन्तस्तत्र केचन। कपर्दकानां वस्तूनां शेषांश्चोर्वरितान्बहून् ॥२२९॥
केचित्तानाददुः स्थित्वा दर्शयन्तश्च केचन। केचिन्नृत्यं प्रकुर्वन्तो गायन्तस्तत्र केचन ॥२३०॥

नारायण बोले—गर्ग मुनि ने भगवान् की स्तुति करने के उपरान्त उन्हें नन्द को दे दिया और कहा—हे गोप ! आज्ञा दीजिये, मैं अब घर जाना चाहता हूँ ॥२२०॥ अहो ! मोह जाल में फँसा हुआ यह संसार कितना विचित्र है—यहाँ मनुष्यों का मिलन और वियोग नदी और उसके फेन के समान है ॥२२१॥ गर्ग की बात सुनकर नन्द रोदन करने लगे, क्योंकि साधुओं के लिए सज्जनों का वियोग मरण से भी अधिक दुःखप्रद होता है ॥२२२॥ समस्त शिष्यों समेत मुनीन्द्र गर्ग को जाने के लिए तैयार देखकर रोते हुए नन्द आदि गोप और गोपियों ने विनीत भाव से उन्हें अत्यन्त प्रीतिपूर्वक प्रणाम किया। मुनिवर्य गर्ग उन लोगों को शुभाशिष देकर हर्ष-पूर्वक मथुरा चले गये। ॥२२३-२२४॥ अन्य ऋषिगण, मुनिवर्ग, बन्धुवर्ग और वल्लवगण सभी लोग धनों से परिपूर्ण एवं प्रसन्नचित्त होकर अपने घर को गये ॥२२५॥ मिष्टान्न, द्रव्य, वस्त्र एवं उत्तम घोड़े और सुवर्ण के आभूषणों से परिपूर्णमनोरथ होकर सभी बन्दीगण भी अपने घर को लौट गये ॥२२६॥ कण्ठ तक भोजन और सुवर्ण, वस्त्र, के अधिक भार से परिक्लान्त भिक्षुकगण भी चलने में असमर्थ थे ॥२२७॥ कोई भिक्षुक हर्षान्वित हो अत्यन्त मन्दगति से चल रहे थे, कोई भूमि पर सो जाते, कोई मार्ग में उठते-बैठते जाते थे ॥२२८॥ कोई आनन्दमग्न होकर वहीं ठहर गये थे। कोई हँस रहे थे। कोई कपर्दकों तथा अन्य वस्तुओं के जो बहुत-से शेष भाग बच गये थे, उन्हें ले रहे थे। कोई दिखा रहे थे। कोई नाच रहे थे। कोई गा रहे थे ॥२२९-२३०॥ कोई नाना प्रकार की प्राचीन गाथायें कहते थे—राजा मरुत, श्वेत, सगर, मांधाता, उत्तानपाद, नहुष और नल आदि राजाओं

Funding by IKS-MoE

केचिद्बहुविधा गाथाः कथयन्तः पुरातनाः । मरुत्तश्वेतसगरमांधातॄणां च भूभृताम् ॥२३१॥
उत्तानपादनहुषनलादीनां च याः कथाः। श्रीरामस्याश्वमेधस्य रन्तिदेवस्य कर्मणाम् ॥२३२॥
येषां येषां नृपाणां च श्रुता वृद्धमुखात्कथाः। कथयन्तश्च ताः केचिच्छ्रुतवन्तश्च केचन ॥२३३॥
स्थायं स्थायं गताः केचित्स्वापं स्वापं च केचन। एवं सर्वे प्रमुदिताः प्रजग्मुः स्वालयं व्रजात् ॥३३४॥
हृष्टो नन्दो यशोदा च बालं कृत्वा च वक्षसि। तस्थौ स्वमन्दिरे रम्ये कुबेरभवनोपमे ॥२३५॥
एवं प्रवर्धितौ बालौ शुक्लचन्द्रकलोपमौ। गवां पुच्छं च भित्तिं च धृत्वा चोत्तस्थतुर्मुदा ॥२३६॥
शब्दार्धं वा तदर्धं वा क्षमौ वक्तुं दिन दिने। पित्रोर्हर्षं च वर्धन्तौ गच्छन्तौ प्राङ्गणे मुने ॥२३७॥
बालो द्विपादं पादं वा गन्तुं शक्तो बभूव ह। गन्तुं शक्तो हि जानुभ्यां प्राङ्गणे वा गृहे हरः ॥२३८॥
वर्षाधिको हि वयसा कृष्णात्संकर्षणः स्वयम्। ततो मुदं वर्धयन्तौ वर्धितौ च दिने दिने ॥२३९॥
व्रजन्तौ गोकुले बालौ प्रहृष्टौ गमने क्षमौ। उक्तवन्तौ स्फुटं वाक्यं मायाबालकविग्रहौ ॥२४०॥
गर्गो जगाम मथुरां वसुदेवाश्रमं मुने। स तं ननाम पप्रच्छ पुत्रयोः कुशलं तयोः ॥२४१॥
मुनिस्तं कथयामास कुशलं सुमहोत्सवम् । आनन्दाश्रुनिमग्नश्च श्रुतमात्राद्बभूव ह ॥२४२॥
देवकी परमप्रीत्या पप्रच्छ च पुनः पुनः। आनन्दाश्रुनिमग्ना सा रुरोद च मुहुर्मुहुः ॥२४३॥

की कथायें कह रहे थे—और भगवान् श्रीरामचन्द्र के अश्वमेध यज्ञ तथा राजा रन्तिदेव के कर्मों की चर्चा कर रहे थे ॥२३१-२३२॥ वृद्धों के मुख से जिन लोगों की कथायें सुन चुके थे, उन्हें कुछ लोग कह रहे थे और कुछ सुन रहे थे ॥२३३॥ कोई ठहर-ठहर कर और कोई सो-सोकर यात्रा करते थे। इस प्रकार सभी लोग आनन्दमग्न होकर व्रज से अपने-अपने घर गये ॥२३४॥ केवल नन्द-यशोदा हर्षित होकर बालक को गोद में लिये कुबेर-भवन के समान रमणीक अपने भवन में रह गये ॥२३५॥ इस भाँति वे दोनों बालक शुक्ल पक्ष की चन्द्रकला के समान बढ़ने लगे। वे गौओं की पूँछ और दीवाल पकड़ कर हर्ष से खड़े होने लगे ॥२३६॥ प्रतिदिन आधा शब्द या चौथाई शब्द बोल पाते थे। मुने ! आँगन में चलते हुए वे दोनों भाई माता-पिता का हर्ष बढ़ाने लगे ॥२३७॥ बालक (राम) दो पग या एक पग चलने लगे। श्रीकृष्ण घुटनों के बल आँगन में या घर में चलने में समर्थ हुए ॥२३८॥ संकर्षण भगवान् से एक वर्ष के बड़े थे। वे दोनों भाई (माता-पिता की) आनन्द-वृद्धि करते हुए दिन-दिन बढ़ने लगे ॥२३९॥ माया से बालक बने हुए दोनों गोकुल में प्रसन्नता से घूमने-फिरने लगे और अब वे स्पष्ट उच्चारण भी करने लगे ॥२४०॥ मुने ! गर्ग मथुरा पहुँचकर वसुदेव के घर गये। उन्होंने उन्हें नमस्कार करके दोनों पुत्रों का कुशल पूछा ॥२४१॥ मुनि ने कुशल समेत उस महोत्सव को भी बताया जिसे सुनते ही वसुदेव आनन्द का आँसू बहाने लगे ॥२४३॥ देवकी परम प्रेम से उनसे बार-बार पूछने लगीं और आनन्द का आँसू बहाती हुई बार-बार रोदन करती जा रही थीं ॥२४३॥ अनन्तर गर्ग

Funding by IKS-MoE

गर्गस्तावाशिषं दत्त्वा जगाम स्वालयं मुदा। स्वगृहे तस्थतुस्तौ च कुबेरभवनोपमे ॥२४४॥

नारायण उवाच

यत्र कल्पे कथा चेयं तत्र त्वमुपबर्हणः । पञ्चाशत्कामिनीनां च पतिर्गन्धर्वपुंगवः ॥२४५॥
तासां प्राणाधिकस्त्वं च शृङ्गारनिपुणो युवा । ततोऽभूद्ब्रह्मणः शापाद्दासीपुत्रो द्विजस्य च ॥२४६॥
ततोऽधुना ब्रह्मपुत्रो वैष्णवोच्छिष्टभोजनात्। सर्वदर्शी च सर्वज्ञः स्मारको हरिसेवया ॥२४७॥
कथितं कृष्णचरितं नामान्नप्राशनादिकम् । जन्ममृत्युजरातिघ्नमपरं कथयामि ते ॥२४८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० कृष्णान्नप्राशननामकरणप्रस्तावो नाम

त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

सुप्रसन्न मन से उन्हें आशीर्वाद देकर अपने घर चले गये और वे दोनों कुबेर-भवन के समान अपने घर में रहे ॥२४४॥

नारायण बोले—जिस कल्प की यह कथा है उस समय तुम पचास कामिनियों के पति उपवर्हण नामक गन्धर्वराज थे ॥२४५॥ तुम उनके प्राणों से भी अधिक प्रिय, शृङ्गारनिपुण और युवा थे । पश्चात् ब्रह्मा के शापवश एक ब्राह्मण की दासी के पुत्र हुए ॥२४६॥ और इस समय वैष्णवों के उच्छिष्ट भोजन करने के कारण ब्रह्मा के पुत्र हुए हो। भगवान् की सेवा से सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ और जातिस्मर हुए हो ॥२४७॥ मैंने भगवान् श्रीकृष्ण का चरित—उनके नामकरण और अन्न-प्राशन आदि बता दिये, जो जन्म, मृत्यु एवं जरा के विनाशक हैं। अब अन्य वृत्तान्त भी तुम्हें सुना रहा हूँ ॥२४८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद के संवाद में कृष्ण का अन्नप्राशन-वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥१३॥

Funding by IKS-MoE

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

नारायण उवाच

एकदा नन्दपत्नी च स्नानार्थं यमुनां ययौ। गव्यपूर्णं गृहं दृष्ट्वा जहास मधुसूदनः ॥१॥
दधिदुग्धाज्यतक्रं च नवनीतं मनोरमम्। गृहस्थितं च यत्किंचिच्चखाद मधुसूदनः ॥२॥
मधु हैयंगवीनं यत्स्वस्तिकं शकटस्थितम्। भुक्त्वा पीत्वांऽशुकैर्वक्त्रसंस्कारं कर्तुमुद्यतम् ॥३॥
ददर्श बालकं गोपी स्नात्वाऽऽगत्य स्वमन्दिरम्। गव्यशून्यं भग्नभाण्डं मध्वादिरिक्तभाजनम् ॥४॥
दृष्टा पप्रच्छ बालांश्च अहो कर्मेदमद्भुतम्। यूयं वदत सत्यं च कृतं केन सुदारुणम् ॥५॥
यशोदावचनं श्रुत्वा सर्वमूचुश्च बालकाः। चखाद सत्यं बालस्ते नास्मभ्यं दत्तमेव च ॥६॥
बालानां वचनं श्रुत्वा चुकोप नन्दगेहिनी। वेत्रं गृहीत्वा दुद्राव रक्तपङ्कजलोचना ॥७॥
पलायमानं गोविन्दं ग्रहीतुं न शशाक ह। ध्यानासाध्यं शिवादीनां दुरापमपि योगिनाम् ॥८॥
यशोदा भ्रमणं कृत्वा विश्रान्ता धर्मसंयुता। तस्थौ कोपपरीतात्मा शुष्ककण्ठौष्ठतालुका ॥९॥
विश्रान्तां मातरं दृष्ट्वा कृपालुः पुरुषोत्तमः। संतस्थौ पुरतो मातुः सस्मितो जगदीश्वरः ॥१०॥

अध्याय १४

अर्जुन वृक्ष का भञ्जन

नारायण बोले—एक बार नन्द-पत्नी यशोदा यमुना-स्नान के लिए चलीं; उस समय भगवान् मधुसूदन (कृष्ण) दूध, दही से भरा घट देखकर हँस पड़े और दही, दूध, घी, मट्ठा, मनोहर मक्खन, आदि घर में जो कुछ स्थित था, सब खा गये ॥१-२॥ गाड़ी पर रखे हुए मधु, मक्खन, स्वस्तिक (जलेबी) आदि को भी खा-पीकर वस्त्र से मुख पोंछ रहे थे कि उसी समय यशोदा स्नान करके अपने घर आ गयीं; दूध, दही आदि से शून्य घर और मधु आदि सभी के टूटे फूटे बर्तन देखकर उन्होंने वहाँ स्थित अन्य बालकों से पूछा—बच्चों ! सत्य-सत्य बताओ ! यह अद्भुत और भयंकर कर्म किसने किया है ? ॥३-५॥ यशोदा की बात सुन कर बालकों ने कहा—'हम लोग सत्य कह रहे हैं, यही तुम्हारा बालक सब खा गया है, हम लोगों को कुछ नहीं दिया है ॥६॥ बालकों की बात सुनकर नन्द-गृहिणी यशोदा क्रुद्ध होकर लाल कमल की भाँति आँखें किये हाथ में बेंत लेकर दौड़ीं। गोविन्द भाग गये। यशोदा उन्हें न पकड़ सकीं। जो शिव आदि के लिए भी ध्यानासाध्य एवं योगियों के लिए भी दुर्लभ हैं, उन्हें वे कैसे पकड़ पातीं ? ॥७-८॥ यशोदा इधर-उधर घूमकर धूप लगने से श्रान्त होकर खड़ी हो गयीं और क्रोध के नाते उनका कण्ठ, ओंठ एवं तालू सूख गये ॥९॥ माता को श्रान्त देखकर पुरुषोत्तम कृपालु जगदीश्वर हँसते हुए उनके सामने आकर खड़े हो गये ॥१०॥ अनन्तर देवी उनके दोनों हाथ

Funding by IKS-MoE

करे धृत्वा च तं देवी समानीय स्वमालयम्। बद्ध्वा वस्त्रेण वृक्षे च तताड मधुसूदनम् ॥११॥
बद्ध्वा कृष्णं यशोदा सा जगाम स्वालयं प्रति। हरिस्तस्थौ वृक्षमूले जगतां पतिरीश्वरः ॥१२॥
श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण सहसा तत्र नारद। पपात वृक्षः शैलाभः शब्दं कृत्वा भयानकम् ॥१३॥
सुवेषः पुरुषो दिव्यो वृक्षादाविर्बभूव ह। दिव्यस्यन्दनमारुह्य जगाम स्वालयं पुरः ॥१४॥
प्रणम्य जगतीनाथं शातकौम्भपरिच्छदम्। किशोरः सस्मितो गौरो रत्नालंकारभूषितः ॥१५॥
सा वृक्षपतनं दृष्ट्वा भिया त्रस्ता व्रजेश्वरी। क्रोडे चकार बालं तं रुदन्तं श्यामसुन्दरम् ॥१६॥
आजग्मुर्गोकुलस्थाश्च गोपा गोप्यश्च तद्गृहम्। यशोदां भर्त्सयामासुः शान्तिं चक्रुः शिशोर्मुदा ॥१७॥
अत्यन्तस्थविरे काले तनयोऽयं बभूव ह। धनं धान्यं च रत्नं वा तत्सर्वं पुत्रहेतुकम् ॥१८॥
सुमतिर्नास्ति ते सत्यं ज्ञातं नन्दव्रजेश्वरि। न भक्षितं यत्पुत्रेण तत्सर्वं निष्फलं भुवि ॥१९॥
पुत्रं बद्ध्वा गव्यहेतोर्वृक्षमूले च निष्ठुरे। गृहकर्मणि व्यग्रायां दैवाद्वृक्षः पपात ह ॥२०॥
वृक्षस्य पतनाद्गोपीभाग्याद्बालोऽपि जीवितः। प्रनष्टे बालके मूढे वस्तूनां किं प्रयोजनम् ॥२१॥
आशिषं युयुजुर्विप्रा बन्दिनश्च शुभावहाम्। द्विजेन कारयामासुर्नामसंकीर्तनं हरेः ॥२२॥
एवं कृत्वा जनाः सर्वे प्रययुर्निजमन्दिरम्। उवाच पत्नीं नन्दश्च रक्तपङ्कजलोचनः ॥२३॥

पकड़ कर अपने घर ले आयीं और वस्त्र से वृक्ष में बाँध कर मधुसूदन को पीटने लगीं ॥११॥ फिर यशोदा कृष्ण को बाँध कर अपने घर चली गयीं और जगत्पति ईश्वर कृष्ण उसी वृक्ष के मूल में खड़े रहे ॥१२॥ नारद ! भगवान् श्रीकृष्ण के स्पर्श करते ही वह पर्वताकार वृक्ष एकाएक भयानक शब्द करते हुए गिर पड़ा ॥१३॥ उस वृक्ष से उत्तम वेषधारी एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ। वह रत्नों के अलंकारों से भूषित, गौरवर्ण तथा किशोर अवस्था का था। सुवर्णमय पोशाक से युक्त जगन्नाथ श्रीकृष्ण को प्रणाम करके वह दिव्य पुरुष मुसकराता हुआ दिव्य रथ पर आरूढ़ हुआ और अपने घर को चला गया ॥१४-१५॥ वृक्ष का पतन देखकर वह व्रजेश्वरी भय से घबड़ा गयीं। उन्होंने रोदन करते श्यामसुन्दर को शीघ्रता से उठाकर गोद में ले लिया ॥१६॥ इतने में उनके घर गोकुल की गोप-गोपियाँ भी आ गयीं और यशोदा की भर्त्सना की तथा हर्ष से बच्चे की शान्ति की ॥१७॥ पश्चात् उन लोगों ने कहा—अत्यन्त वृद्धावस्था में तुम्हें वह पुत्र मिला है और धन, धान्य एवं रत्न आदि सभी कुछ पुत्रके ही लिए हैं ॥१८॥ हे नन्द-व्रज की अधीश्वरी ! हमें यह सत्य मालूम हुआ है कि तुम्हें सुमति नहीं है। जिस वस्तु का भक्षण पुत्र न करे वह सब भूतल पर निष्फल है ॥१९॥ दूध, दही के वास्ते तुमने पुत्र को वृक्ष के कठोर मूल में बाँध दिया और स्वयं घर के कार्य में लग गईं। दैवसंयोग से वृक्ष गिर पड़ा ॥२०॥ किंतु गोपियों के भाग्य से वृक्ष के गिरने पर भी बालक बच गया। अरी मूढ़े ! यदि बालक नष्ट हो जाता तो वस्तुओं की क्या आवश्यकता होती ? ॥२१॥ अनन्तर ब्राह्मणों और वन्दिजनों ने बालक को शुभाशिष् प्रदान किया और ब्राह्मण द्वारा भगवान् का संकीर्तन करवाया ॥२२॥ ऐसा करके सभी लोग अपने-अपने घर चले गये। उसी समय नन्द ने भी लाल-लाल नेत्र किये अपनी स्त्री से कहा ॥२३॥

नन्द उवाच

यास्यामि तीर्थमद्यैव कण्ठे कृत्वा तु बालकम्। अथवा त्वं गृहाद्गच्छ त्वया मे किं प्रयोजनम् ॥२४॥
शतकूपाधिका वापी शतवापीसमं सरः। सरःशताधिको यज्ञः पुत्रो यज्ञशताधिकः ॥२५॥
तपोदानोद्भवं पुण्यं जन्मान्तरसुखप्रदम्। सुखप्रदोऽपि सत्पुत्र [1]इहैव च परत्र च ॥२६॥
पुत्रादपि परो बन्धुर्न भूतो न भविष्यति। एवमुक्त्वा स्वभार्यां च तस्थौ नन्दः स्वमन्दिरे ॥
यशोदा रोहिणी चैव नियुक्ता गृहकर्मणि ॥२७॥

नारद उवाच

सुवेषः पुरुषः को वा वृक्षरूपी च गोकुले। भगवन्हेतुना केन वृक्षत्वं समवाप ह ॥२८॥

नारायण उवाच

कुबेरतनयः श्रीमान्नाम्ना यो नलकूबरः। जगाम नन्दनवनं क्रीडार्थं सह रम्भया ॥२९॥
निर्जने सरसस्तीरे पुष्पोद्याने मनोहरे। वटवृक्षसमीपे च सौरभे पुष्पवायुना ॥३०॥
विधाय पुष्पशयनं रत्नदीपैश्च दीपितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम् ॥३१॥

नन्द बोले—मैं बालक को अपने गले में बाँधकर आज ही तीर्थ को चला जाऊँगा। अथवा तुम ही घर से अन्यत्र चली जाओ। तुमसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। सौ कूप से अधिक बावली होती है, सौ बावलियों के समान तालाब, सौ तालाबों से अधिक यज्ञ होता है और सौ यज्ञों से अधिक पुत्र होता है ॥२४-२५॥ तप और दान से उत्पन्न पुण्य जन्मान्तर में सुखप्रद होता है। और सत्पुत्र इहलोक तथा परलोक दोनों में सुखप्रद होता है ॥२६॥ इसलिए पुत्र से बढ़कर कोई बन्धु न हुआ है और न होगा। अपनी पत्नी को इतना कहकर नन्द अपने भवन में चले गये और यशोदा एवं रोहिणी घर के कामों में लग गईं ॥२७॥

नारद बोले—भगवन्! वह उत्तम वेषधारी पुरुष कौन था, जो गोकुल में वृक्ष बना हुआ था? और किस कारण उसे वृक्ष होना पड़ा? ॥२८॥

नारायण बोले—एक बार कुबेर-पुत्र श्रीमान् नलकूबर रम्भा के साथ क्रीड़ा करने के लिए नन्दन वन में पहुँचा ॥२९॥ वहाँ तालाब के किनारे मनोहर पुष्पवाटिका में वट वृक्ष के समीप पुष्पों के वायु से सुगन्धित स्थान में पुष्प-शय्या बनाई। उसको रत्न के दीपों से प्रकाशित किया तथा चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम आदि

---

[1] क. प्राणेभ्योऽपि सुनिश्चितम्।

परितः पुष्पमाल्यैश्च क्षौमवस्त्रैश्च वेष्टितम्। तत्र रम्भां समानीय विजहार यथेच्छया ॥३२॥
शृङ्गाराष्टप्रकारं च विपरीतादिकं सुखम्। चुम्बनं षट्प्रकारं च यथास्थानं निरूपितम् ॥३३॥
अङ्गप्रत्यङ्गसंयोगत्रिविधाश्लेषणं मुदा। नखदन्तकरक्रीडां चकार रसिकेश्वरः ॥३४॥
जलात्स्थले स्थलात्तोये कामशास्त्रविशारदः। रतिभोगं प्रकुर्वन्तं ददर्श देवलो मुनिः ॥३५॥
नग्नां रम्भां मुक्तकेशीं पीनश्रोणिपयोधराम्। नखदन्तक्षताङ्गीं च पुलकाञ्चितविग्रहाम् ॥३६॥
पश्यन्तीं प्राणनाथं च पश्यन्तं सस्मितं मुदा। वक्रभ्रूभङ्गसंयुक्तां कामुकीं च ददर्श ताम् ॥३७॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम्। विचित्ररत्नमाल्यैश्च पुष्पमाल्यैश्च भूषिताम् ॥३८॥
किङ्किणीजालसंयुक्तां सिन्दूरबिन्दुसंयुताम्। तया युक्तं पुलकितं नोत्तिष्ठन्तं [1]स्मरान्वितम् ॥३९॥
वृक्षत्वं याहि पापिष्ठेत्युवाच मुनिपुंगवः। शशाप रम्भां कामार्तां मानुषी त्वं भवेति च ॥४०॥
जन्मेजयस्य [2]सुभगा भविता कामिनीति च। त्वमेव गोकुलं गच्छ वृक्षरूपी भवेति च ॥४१॥
श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण पुनरायास्यसि गृहम्। रम्भे [3]त्वमिन्द्रसंयोगात्पुनरायास्यसि [4]ध्रुवम् ॥४२॥
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्जगाम निजमन्दिरम्। कुबेरतनयः श्रीमान्स जगाम निजालयम् ॥४३॥

द्रव पदार्थों से तर कर चारों ओर पुष्पों की माला और रेशमी वस्त्र से घेर दिया। उसी पर रम्भा को लाकर यथेच्छ विहार किया। विपरीत आदि आठ प्रकार के शृङ्गार-सुखों का उपभोग किया। छह प्रकार के चुम्बन लिये, अङ्ग-प्रत्यङ्ग को सटाते हुए तीन प्रकार से हर्षपूर्वक आलिंगन किया। उस रसिकेश्वर ने नखों, दाँतों और हाथों द्वारा क्रीड़ा की ॥३०-३४॥ उस काम-शास्त्र-विशारद ने जल से स्थल में और स्थल से जल में उसके साथ रतिभोग किया। उस समय देवल मुनि ने उसे और रम्भा को देख लिया। नग्न, केश खोले, स्थूल नितम्ब और कुचों वाली, नखों और दाँतों द्वारा कटे अङ्ग वाली तथा रोमाञ्चित शरीर वाली रम्भा अपने प्राणनाथ नलकूबर को देख रही थी और वह हर्ष से उसे देख रहा था। टेढ़ी भौहों से युक्त, रत्नों के युगल कुण्डलों से सुशोभित गण्डस्थल वाली, विचित्र रत्नों की मालाओं और पुष्पों की मालाओं से विभूषित, किंकिणियों के समूह से युक्त एवं सिन्दूर की बिन्दी से सुशोभित रम्भा को मुनि ने देख लिया। ऐसी कामिनी से युक्त, कामासक्त, पुलकित एवं मुनि को देखकर भी न उठते हुए नलकूबर को मुनिबर ने शाप दे दिया कि—पापिष्ठ ! तू वृक्ष हो जा।' फिर कामिनी रम्भा को भी शाप दिया कि—तू मनुष्य के यहाँ उत्पन्न होकर राजा जनमेजय की सौभाग्यशालिनी पत्नी बनेगी। और उस नलकूबर से कहा—तुम गोकुल में जाकर वृक्ष रूप धारण करो। श्रीकृष्ण के स्पर्श मात्र से पुनः अपने घर आओगे। रम्भे ! तुम इन्द्र के संयोग से पुनः निश्चित रूप से स्वर्ग आयेगी ॥३५-४२॥ ऐसा कहकर मुनि अपने घर चले गये और कुबेरपुत्र वह श्रीमान् नलकूबर अपने

---

१ क. °रातुरम्। २ क. सौभाग्या। ३ क. °संभोगात्पु°। ४ क. व्रजम्।

Funding by IKS-MoE

इत्येवं कथितं विप्र रम्भाख्यानं वदामि ते। सुचन्द्रस्य गृहे रम्भा ललाभ जन्म भारते ।।४४।।
कन्या लक्ष्मीस्वरूपा च बभूव सुन्दरी वरा। तां च सालंकृतां कृत्वा सुचन्द्रो नृपतीश्वरः ।।४५।।
नानाकौतुकसंयुक्तां ददौ जन्मेजयाय च। जन्मेजयस्य सुभगा बभूव महिषी वरा ।।४६।।
स्थाने स्थाने निर्जने च राजा रेमे तया सह। एकदा नृपतिश्रेष्ठश्चाश्वमेधेन दीक्षितः ।।४७।।
अश्वसंगोपनं कृत्वा तस्थौ शक्रश्च मन्दिरे। यज्ञाश्वं रुचिरं मत्वा कौतुकेन च सुन्दरी ।।४८।।
द्रष्टुं जगाम सा साध्वी चाश्वमेकाकिनी मुदा। शक्रोऽश्वनिकटे भूत्वा धर्षयामास तां सतीम् ।।४९।।
तया निवार्यमाणश्च रेमे तत्र तया सह। मूर्च्छामवाप शक्रश्च बुबुधे न दिवानिशम् ।।५०।।
सा च संभोगमात्रेण देहं तत्याज योगतः। नृपस्य लज्जया भीत्या शक्रः स्वर्गं जगाम ह ।।५१।।
राजा श्रुत्वा मृतां दृष्ट्वा विललाप भृशं मुहुः। यज्ञं समाप्य विप्रेभ्यो ददौ पूर्णां च दक्षिणाम् ।।५२।।
रम्भा च मानवं देहं त्यक्त्वा स्वर्गं जगाम ह। इत्येवं कथितं सर्वं वृक्षार्जुनविभञ्जनम् ।।५३।।
नलकूबरमोक्षश्च रम्भायाश्च महामुने। पुण्यदं कृष्णचरितं जन्ममृत्युजरापहम्
इत्येवं कथितं सर्वमपरं कथयामि ते ।।५४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० वृक्षार्जुनभञ्जनो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

घर पहुँचा ।।४३।। विप्र ! इतना तो मैंने बता दिया, अब रम्भा का आख्यान तुम्हें बता रहा हूँ। भारतवर्ष में राजा सुचन्द्र के घर रम्भा ने जन्म ग्रहण किया। वह कन्या लक्ष्मी स्वरूपा तथा अत्यन्त सुन्दरी थी। (योग्य होने पर) महाराज सुचन्द्र उसे अलकृत करके अनेक प्रकार की दहेज की वस्तुओं के साथ जनमेजय को समर्पित कर दिया। वह राजा जनमेजय की सौभाग्यवती एवं श्रेष्ठ रानी हुई ।।४४-४६।। राजा ने जगह-जगह निर्जन स्थान में उसके साथ रमण किया। एक बार राजा अश्वमेध यज्ञ में दीक्षित हुआ। उस समय इन्द्र उस अश्व को छिपाकर राजभवन में अवस्थित रहे। उस यज्ञिय अश्व को मनोहर जानकर वह सुन्दरी सती रानी कौतुकवश उसे देखने के लिए अकेले ही गयी। घोड़े के पास पहुँचने पर इन्द्र ने उस सती के साथ बलात्कार किया। उसके मना करने पर भी रमण कर लिया। (कामोपभोग से) इन्द्र मूर्च्छित हो गये, उन्हें दिन-रात का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा। उस सुन्दरी ने संभोग मात्र से योग द्वारा (अपना) शरीर त्याग दिया। राजा के भय से इन्द्र स्वर्ग को चले गये ।।४७-५१।। राजा ने उसे मृतक सुनकर बार-बार विलाप किया। यज्ञ समाप्त करके ब्राह्मणों को पूर्ण दक्षिण प्रदान की ।।५२।। रम्भा मानव-देह त्याग कर स्वर्ग चली गयी। इस प्रकार वृक्षार्जुन का भंग होना तुम्हें बता दिया। महामुने ! नलकूबर और रम्भा का मोक्ष और जन्म, मृन्यु एवं जरा का विनाशक एवं पुण्यप्रद कृष्णचरित सब तुम्हें बता दिया, अब दूसरा बता रहा हूँ ।५३-५४।।

श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में वृक्षार्जुन-भञ्जन नामक चौदहवाँ **अध्याय समाप्त ।।१४।।**

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

नारायण उवाच

एकदा कृष्णसहितो नन्दो वृन्दावनं ययौ। तत्रोपवनभाण्डीरे चारयामास गोधनम् ॥१॥
सरःसु स्वादु तोयं च पाययामास तत्पपौ। उवास वृक्षमूले च बालं कृत्वा स्ववक्षसि ॥२॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो मायामानुषविग्रहः। चकार माययाऽकस्मान्मेघाच्छन्नं नभो मुने ॥३॥
मेघावृतं नभो दृष्ट्वा श्यामलं काननान्तरम्। झञ्झावातं मेघशब्दं वज्रशब्दं च दारुणम् ॥४॥
वृष्टिधारामतिस्थूलां कम्पमानांश्च पादपान्। दृष्ट्वैवं पतितस्कन्धान्नन्दो भयमवाप ह ॥५॥
कथं यास्यामि गोवत्सान्विहाय स्वाश्रमं बत। गृहं यदि न यास्यामि भविता बालकस्य किम् ॥६॥
एवं नन्दे प्रवदति रुरोद श्रीहरिस्तदा। [1]पयोभिया हरिश्चैव पितुः कण्ठं दधार सः ॥७॥
एतस्मिन्नन्तरे राधा जगाम कृष्णसंनिधिम्। गमनं कुर्वती राजहंसखञ्जनगञ्जनम् ॥८॥
शरत्पार्वणचन्द्राभामुष्टवक्त्रमनोहरा। शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचना ॥९॥

अध्याय १५

राधा-कृष्ण-विवाह

नारायण बोले—एक बार कृष्ण को साथ लिए नन्द वृन्दावन में गये। वहाँ भाण्डीर नामक उपवन में उन्होंने गौओं को चराया ॥१॥ वहाँ सरोवर में स्वादिष्ठ जल उन्हें पिलाया और स्वयं भी पिया। फिर बालक को अपनी छाती से चिपकाकर एक वृक्ष के मूल में बैठ गये ॥२॥ मुने ! इसी बीच माया द्वारा मानव-शरीर धारण करने वाले श्रीकृष्ण ने माया से एकाएक आकाश को मेघाच्छन्न कर दिया ॥३॥ आकाश मेघों से ढक गया। वन का भीतरी भाग और भी श्यामल हो गया। वर्षा के साथ जोर-जोर से वायु चलने लगा। बादल गरजने लगा। वज्र का दारुण शब्द सुनाई देता था ॥४॥ मूसलधार वर्षा हो रही थी और वृक्ष काँप रहे थे। उनकी डालियाँ काँप रही थीं। ऐसा देखकर नन्द भयभीत हो गये ॥५॥ वे सोचने लगे कि—गौओं और बछड़ों को छोड़कर मैं कैसे अपने घर जाऊँगा और यदि घर न जाऊँ तो, यहाँ बालक का क्या होगा ? ॥६॥ इस प्रकार नन्द के सोच-विचार करते समय भगवान् कृष्ण रोदन करने लगे और वर्षा के भय से पिता का कण्ठ पकड़ लिया ॥७॥ इसी बीच कृष्ग के समीप राधा आ गयीं। वे अपनी गति से राजहंस एवं खञ्जन के गर्व को चूर कर रही थीं ॥८॥ शारदीय पूर्णिका के चन्द्रमा की कान्ति को चुराने वाला उनका मनोहर मुख था। शरद्ऋतु के मध्याह्न में विकसित

---

[1] क. मायाभिया भयेभ्यश्च पि॰ ।

Funding by IKS-MoE

परितस्तारकापक्ष्मविचित्रकज्जलोज्ज्वला । [1]खगेन्द्रचञ्चुचारुश्रीशंसानाशकनासिका ॥१०॥
तन्मध्यस्थलशोभार्हस्थूलमुक्ताफलोज्ज्वला । कबरीवेषसंयुक्ता मालतीमाल्यवेष्टिता ॥११॥
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभामुष्टककुण्डला । पक्वबिम्बफलानां च श्रीमुष्टाधरयुग्मका ॥१२॥
मुक्तापङ्क्तिप्रभातैकदन्तपङ्क्तिसमुज्ज्वला । ईषत्प्रफुल्लकुन्दानां सुप्रभानाशकस्मिता ॥१३॥
कस्तूरीबिन्दुसंयुक्तसिन्दूरबिन्दुभूषिता । कपालं मल्लिकायुक्तं बिभ्रती श्रीयुतं सती ॥१४॥
सुचारुवर्तुलाकारकपोलपुलकान्विता । मणिरत्नेन्द्रसाराणां हारोरःस्थलभूषिता ॥१५॥
सुचारुश्रीफलयुगकठिनस्तनसंगता । पत्रावलीश्रियायुक्ता दीप्ता सद्रत्नतेजसा ॥१६॥
सुचारुवर्तुलाकारमुदरं सुमनोहरम् । विचित्रत्रिवलीयुक्तं निम्ननाभि च बिभ्रती ॥१७॥
सद्रत्नसाररचितमेखलाजालभूषिता । कामास्त्रसारभ्रूभङ्गयोगीन्द्रचित्तमोहिनी ॥१८॥
कठिनश्रोणियुगलं [2]धरणीधरनिन्दितम् । स्थलपद्मप्रभामृष्टचरणं दधती मुदा ॥१९॥
रत्नभूषणसंयुक्तं यावकद्रवसंयुतम् । मणीन्द्रशोभासंमुष्टसालक्तकपुनर्भवम् ॥२०॥

कमल की शोभा को चुराने वाले नेत्र थे ॥९॥ दोनों आँखों में तारा, बरौनी तथा अञ्जन से विचित्र शोभा हो रही थी। उनकी नासिका गरुड़ की चोंच की सुन्दर श्री को लज्जित करने वाली थी। ॥१०॥ नासिका के मध्य में शोभनीय एवं स्थूल मोती से उज्ज्वल आभा छिटक रही थी। मालती की माला से बँधा हुआ सुन्दर केशपाश था ॥११॥ ग्रीष्मऋतु में मध्याह्नकालिक सूर्य की प्रभा को चुराने वाले कुण्डल थे। पके बिम्बा-फल की शोभा को चुराने वाले दोनों ओंठ थे ॥१२॥ मोती की पंक्तियों के समान दाँतों की पंक्तियों से मुख उज्ज्वल था। मन्द मुस्कान कुन्द की अर्धविकसित कली की शोभा को तिरस्कृत करने वाली थी ॥१३॥ कस्तूरी की बिन्दु के साथ मिली हुई सिंदूर की बेंदी से भूषित सती राधा शोभाशाली कपाल पर मल्लिकापुष्प धारण किये हुई थी ॥१४॥ सुन्दर एवं गोलाकार कपोल पर रोमाञ्च हो आया था। वक्षःस्थल मणिरत्नेन्द्र के सारभाग से बने हार से सुशोभित था ॥१५॥ अत्यन्त सुन्दर एवं बेल के आकार के दोनों कठोर स्तन मिले हुए थे। वे पत्ररचना की शोभा से सम्पन्न और उत्तम रत्नों के तेज से प्रदीप्त थीं ॥१६॥ उनका उदर सुन्दर, गोलाकार, अतिमनोहर एवं विचित्र त्रिवली से युक्त था। नाभि गहरी थी ॥१७॥ कटिप्रदेश उत्तम रत्नों के सार भाग की बनी करधनी की लरों से भूषित था। टेढ़ी भौंहें कामदेव के अस्त्र की सारभूत थीं, जिनसे वे योगीन्द्रों के मन को भी मोहित करने में समर्थ थीं ॥१८॥ दोनों कठोर नितम्ब पर्वत की विशालता को निन्दित करने वाले थे। वे हर्ष से स्थलकमल की कान्ति को चुराने वाले चरण धारण किये हुई थीं। वे चरण रत्नों के आभूषणों से विभूषित थे। उनमें महावर लगा हुआ था। उत्तम मणियों की शोभा चुराने

१क. °श्रीसंघना°। २ क. करिणीकरनि°।

सद्रत्नसाररचितक्वणन्मञ्जीररञ्जितम्। रत्नकङ्कणकेयूरचारुशङ्खविभूषिता ॥२१॥
रत्नाङ्गुलीयनिकरवह्निशुद्धांशुकोज्ज्वला । चारुचम्पकपुष्पाणां प्रभामुष्टकलेवरा: ॥२२॥
सहस्रदलसंयुक्तक्रीडाकमलमुज्ज्वलम्। श्रीमुखश्रीदर्शनार्थं बिभ्रती रत्नदर्पणम् ॥२३॥
दृष्ट्वा तां निर्जने नन्दो विस्मयं परमं ययौ। चन्द्रकोटिप्रभामुष्टां भासयन्ती दिशो दश ॥२४॥
ननाम[1] तां साश्रुनेत्रो भक्तिनम्रात्मकंधरः । जानामि त्वां गर्गमुखात्पद्माधिकप्रियां हरेः ॥२५॥
जानामीमं महाविष्णोः परं निर्गुणमच्युतम्। तथाऽपि मोहितोऽहं च मानवो विष्णुमायया ॥२६॥
गृहाण प्राणनाथं च गच्छ भद्रे यथासुखम्। पश्चाद्दास्यसि मत्पुत्रं कृत्वा पूर्णमनोरथम् ॥२७॥
इत्युक्त्वा प्रददौ तस्यै रुदन्तं बालकं भिया। जग्राह बालकं राधा जहास मधुरं सुखात् ॥२८॥
उवाच नन्दं सा यत्नान्न प्रकाश्यं रहस्यकम् । अहं दृष्टा त्वया नन्द कतिजन्मफलोदयात् ॥२९॥
प्राज्ञस्त्वं गर्गवचनात्सर्वं जानासि कारणम्। अकथ्यमावयोर्गोप्यं चरितं गोकुले व्रज ॥३०॥
वरं वृणु व्रजेश त्वं यत्ते मनसि वाञ्छितम्। ददामि लीलया तुभ्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥३१॥

वाले लाक्षारागरञ्जित नखों से उन चरणों की अपूर्व शोभा हो रही थी। उत्तम रत्नों के सारभाग से सुरचित एवं ध्वनि करेते हुए नूपुर से वे चरण अनुरञ्जित थे। उनकी भुजायें रत्नों के कङ्कण, केयूर तथा शंख की सुन्दर चूड़ियों से विभूषित थीं ॥१९-२१॥ रत्नों की अंगूठियों और अग्नि की भाँति विशुद्ध वस्त्र से वे उदभासित हो रही थीं। सुन्दर चम्पा-पुष्पों की प्रभा को चुराने वाली उनकी अंग-कान्ति थी ॥२२॥ उनके एक हाथ में सहस्र दलों से युक्त उज्ज्वल क्रीडाकमल सुशोभित था और वे अपने श्रीमुख की शोभा देखने के लिए हाथ में रत्नमय दर्पण लिए हुई थीं ॥२३॥ उस निर्जन स्थान में उन्हें देखकर नन्द को महान् आश्चर्य हुआ। क्योंकि वे करोड़ों चन्द्रमा की छवि को चुराने वाली अपनी कान्ति से दशो दिशाओं को प्रकाशित कर रही थीं ॥२४॥ सजल नेत्र एवं भक्ति से कन्धे झुकाये उन्होंने राधा को नमस्कार किया और कहा कि—गर्ग के मुख से तुम्हारे बारे में सुन चुका हूँ, तुम हरि की लक्ष्मी से भी अधिक प्रेयसी हो ॥२५॥ और इन्हें भी जानता हूँ, जो महाविष्णु से भी श्रेष्ठ, निर्गुण एवं अच्युत हैं, किन्तु मनुष्य होने के नाते विष्णु की माया से मैं मोहित हूँ ॥२६॥ भद्रे ! अपने इन प्राणनाथ को ग्रहण करो और सुखपूर्वक जाओ। मेरे पुत्र को पूर्णमनोरथ करके पश्चात् मुझे लौटा देना ॥२७॥ इतना कहकर भयवश उन्हें रोदन करते हुए बालक को सौंप दिया। बालक को लेकर राधा ने सुख से मधुर हास किया ॥२८॥ उन्होंने नन्द से कहा—नन्द ! अनेक जन्मों के (पुण्य) फल का उदय होने से तुमने मुझे देखा है। इस रहस्य को प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना, कहीं प्रकाशित न होने पाये ॥२९॥ गर्ग के कहने से तुम ज्ञाता हो गये हो, सारे कारणों को जानते हो। हम दोनों का गुप्त चरित कहीं कहना नहीं। अब तुम गोकुल में जाओ ॥३०॥ ब्रजेश ! तुम्हारे मन में जो हो, वह वर मांग लो वह देव-दुर्लभ पर भी

---

[1] क उवाच तां।

राधिकावचनं श्रुत्वा तामुवाच व्रजेश्वरः। युवयोश्चरणे भक्तिं देहि नान्यत्र मे स्पृहा ॥३२॥
युवयोः संनिधौ वासं दास्यसि त्वं सुदुर्लभम्। आवाभ्यां देहि जगतामम्बिके परमेश्वरि ॥३३॥
श्रुत्वा नन्दस्य वचनमुवाच परमेश्वरी। दास्यामि दास्यमतुलमिदानीं भक्तिरस्तु ते ॥३४॥
आवयोश्चरणाम्भोजे युवयोश्च दिवानिशम्। प्रफुल्लहृदये शश्वत्स्मृतिरस्तु सुदुर्लभा ॥३५॥
माया युवां च प्रच्छन्नौ न करिष्यति मद्वरात्। गोलोके यास्यथान्ते च विहाय मानवीं तनुम् ॥३६॥
एवमुक्त्वा तु सानन्दं कृत्वा कृष्णं स्ववक्षसि। दूरं निनाय श्रीकृष्णं बाहुभ्यां च यथेप्सितम् ॥३७॥
कृत्वा वक्षसि तं कामाच्छ्लेषं श्लेषं चुचुम्ब च। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी सस्मार रासमण्डलम् ॥३८॥
एतस्मिन्नन्तरे राधा मायासद्रत्नमण्डपम्। ददर्श रत्नकलशशतेन च समन्वितम् ॥३९॥
नानाविचित्रचित्राढ्यं चित्रकाननशोभितम्। सिन्दूराकारमणिभिः स्तम्भसंघैर्विराजितम् ॥४०॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवयुक्तया। संयुक्तं मालतीमालासमूहपुष्पशय्यया ॥४१॥
नानाभोगसमायुक्तं दिव्यदर्पणसंयुतम्। मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यमालाजालैर्विभूषितम् ॥४२॥
मणीन्द्रसाररचितकपाटेन समन्वितम्। भूषितं भूषितैर्वस्त्रैः पताकानिकरैर्वरैः ॥४३॥

मैं अनायास तुम्हें दे दूँगी ॥३१॥ राधिका की बात सुनकर व्रजेश्वर ने कहा—तुम दोनों के चरणों में मेरी भक्ति हो, यही प्रदान करो। दूसरी मेरी इच्छा नहीं है। परमेश्वरि ! जगदम्बिके ! तुम दोनो के समीप (गोलोक में) अतिदुर्लभ निवास हम दोनों (पति-पत्नी) के लिए प्रदान करो ॥३२-३३॥ नन्द की बात सुनकर परमेश्वरी राधा ने कहा—वह अतुलनीय दास्य-पद तुम्हें प्रदान करूँगी। इस समय हम दोनों के चरण-कमल में तुम दोनों की रात दिन भक्ति बनी रहे और प्रफुल्लित हृदय में हम दोनों का अतिदुर्लभ स्मरण निरन्तर हुआ करे ॥३४-३५॥ मेरे वर प्रदान के प्रभाव से माया तुम दोनों पर आवरण नहीं कर सकेगी और अन्त में मानव-देह को छोड़कर गोलोक चले जाओगे ॥३६॥ इतना कहकर वे कृष्ण को सानन्द अपने दोनों हाथों से गोद में लेकर अपनी रुचि के अनुसार दूर ले गयीं ॥३७॥ कामवश उन्हें अपने वक्षःस्थल से चिपका-चिपकाकर चुम्बन करने लगीं। उस समय उनका सर्वाङ्ग पुलकित हो उठा और उन्होंने रास-मण्डल का स्मरण किया ॥३८॥ इसी बीच राधा को माया द्वारा उत्तम रत्नों का बना मण्डप दिखायी पड़ा, जो सौ रत्नों के कलशों से युक्त, नाना प्रकार के विचित्र चित्रों से सम्पन्न, वन से भूषित, सिन्दूर के समान मणियों के खम्भों से सुशोभित, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम के द्रव से युक्त और मालती-मालाओं के समूहों से सुसज्जित पुष्प-शय्या से संयुक्त, विविध भाँति के भोग पदार्थ, दिव्यदर्पण, मणीन्द्र, मुक्ता और माणिक्य के मालाजाल से भूषित, मणीन्द्र के सारभाग से बने किवाड़ों से युक्त, बेल-बूटों से विभूषिन वस्त्रों तथा पताका-समूहों से सुसज्जित और कुंकुमाकार मणियों की बनी सात सीढ़ियों से युक्त था और भौंरों से गुंजित एवं

कुङ्कुमत्कारमणिभिः सप्तसोपानसंयुतम्। युक्तं षट्पदसंयुक्तैः पुष्पोद्यानं च पुष्पितैः ॥४४॥
सा देवी मण्डपं दृष्ट्वा जगामाभ्यन्तरं मुदा। ददर्श तत्र ताम्बूलं [1]कर्पूरादिसमन्वितम् ॥४५॥
जलं च रत्नकुम्भस्थं स्वच्छं शीतं मनोहरम्। सुधामधुभ्यां पूर्णानि रत्नकुम्भानि नारद ॥४६॥
पुरुषं कमनीयं च किशोरं श्यामसुन्दरम्। कोटिकन्दर्पलीलाभं चन्दनेन विभूषितम् ॥४७॥
शयानं पुष्पशय्यायां सस्मितं सुमनोहरम्। पीतवस्त्रपरीधानं प्रसन्नवदनेक्षणम् ॥४८॥
मणीन्द्रसारनिर्माणं क्वणन्मञ्जीररञ्जितम्। सद्रत्नसारनिर्माणकेयूरवलयान्वितम् ॥४९॥
मणीन्द्रकुण्डलाभ्यां च गण्डस्थलविराजितम्। कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् ॥५०॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यप्रभामुष्टमुखोज्ज्वलम्। शरत्प्रफुल्लकमलप्रभामोचनलोचनम् ॥५१॥
मालतीमाल्यसंश्लिष्टशिखिपिच्छसुशोभितम्। त्रिवङ्कचूडां बिभ्रन्तं पश्यन्तं रत्नमन्दिरम् ॥५२॥
क्रोडं बालकशून्यं च दृष्ट्वा तं नवयौवनम्। सर्वस्मृतिस्वरूपा सा तथाऽपि विस्मयं ययौ ॥५३॥
रूपं रासेश्वरी दृष्ट्वा मुमोह सुमनोहरम्। कामाच्चक्षुश्चकोराभ्यां मुखचन्द्रं पपौ मुदा ॥५४॥
निमेषरहिता राधा नवसंगमलालसा। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी सस्मिता मदनातुरा ॥५५॥

खिले पुष्पों की वाटिका से सुशोभित था। उसे देख कर देवी प्रसन्नता से उसके भीतर चली गयीं ॥३९-४४॥ वहाँ कपूर आदि से सुवासित ताम्बूल और रत्न के कलश में स्वच्छ, शीतल एवं मनोहर जल रखा हुआ देखा ॥४५॥ नारद ! अमृत और मधु से पूर्ण रत्नों के कलश भी वहाँ थे। भवन के भीतर पुष्पशय्या पर एक किशोरावस्था का श्यामसुन्दर और कमनीय पुरुष सो रहा था, जो करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर, चन्दन-चर्चित, अति मनोहर एवं मन्दहास कर रहा था। वह पीताम्बरधारी, प्रसन्नमुख एव नेत्रों वाला, मणीन्द्र के सारभाग के बने हुए नूपुर की झनकार से युक्त, उत्तमरत्नों के सारभाग से सुरचित केयूर और कङ्कण से संयुक्त, मणीन्द्र के बने युगल कुण्डलों से सुशोभित गण्डस्थल वाला, मणीन्द्र कौस्तुभ से समुज्ज्वल वक्षःस्थल वाला, शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमुख की प्रभा को चुराने वाले मुख से समुद्भासित, शरत्कालीन अति विकसितकमल की शोभा को चुराने वाले नेत्रों से युक्त, मालती पुष्पों की माला से संश्लिष्ट मोरपंख से सुशोभित और त्रिभंग चूड़ा (चोटी) धारण किये उस रत्न-मण्डप को निहार रहा था। अपनी गोद में बालक को न देखकर और उधर उस नवयुवक को देख कर सर्वस्मृतिस्वरूपा होने पर भी राधा को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥४६-५३॥ रासेश्वरी उस अति मनोहर रूप को देखकर मुग्ध हो गयीं। वे हर्ष से कामवश अपने नयन-चकोर से उनके मुखचन्द्र का पान करने लगीं ॥५४॥ उनकी पलकें नहीं गिरती थीं। राधा नवसंगम की लालसा से युक्त हो गईं। उनके सर्वाङ्ग में रोमाञ्च हो गया और वे मन्दमुसुकान करती हुई कामातुर हो गईं।

---

[1] क. °दिसुवासितम् ।

Funding by IKS-MoE

तामुवाच हरिस्तत्र स्मेराननसरोरुहाम् । नवसंगमयोग्यां च पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा ।।५६।।

श्रीकृष्ण उवाच

राधे स्मरसि गोलोकवृत्तान्तं सुरसंसदि । अद्य पूर्णं करिष्यामि स्वीकृतं यत्पुरा प्रिये ।।५७।।
त्वं मे प्राणाधिका राधे प्रेयसी च वरानने । यथा त्वं च तथाऽहं च भेदो हि नाऽऽवयोर्ध्रुवम् ।५८।।
यथा क्षीरे च धावल्यं यथाऽग्नौ दाहिका सति । यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाऽहं त्वयि संततम् ।।५९।।
विना मृदा घटं कर्तुं विना स्वर्णेन कुण्डलम् । कुलालः स्वर्णकारश्च न हि शक्तः कदाचन ।।६०।।
तथा त्वया विना सृष्टिमहं कर्तुं न च क्षमः । सृष्टेराधारभूता त्वं बीजरूपोऽहमच्युतः ।।६१।।
आगच्छ शयने साध्वि कुरु वक्षःस्थले हि माम् । त्वं मे शोभास्वरूपाऽसि देहस्य भूषणं यथा ।।६२।।
कृष्णं वदन्ति मां लोकास्त्वयैव रहितं यदा । श्रीकृष्णं च तदा तेऽपि त्वयैव सहितं परम् ।।६३।।
त्वं च श्रीस्त्वं च संपत्तिस्त्वमाधारस्वरूपिणी । त्वं स्त्री पुमानहं राधे इति वेदेषु निर्णयः ।।६४।।
सर्वशक्तिस्वरूपाऽसि सर्वरूपोऽहमक्षरः ।।६५।।
यदा तेजः स्वरूपोऽहं तेजोरूपाऽसि त्वं तदा । न शरीरी यदाऽहं च तदा त्वमशरीरिणी ।।६६।।
सर्वबीजस्वरूपोऽहं सदा योगेन सुन्दरि । त्वं च शक्तिस्वरूपा च सर्वस्त्रीरूपधारिणी ।।६७।।

तब तिरछी चितवन से देखती हुई, नवीन संगम के योग्य तथा मुसकराते हुए मुखकमल वाली उन (राधा) से श्रीकृष्ण ने कहा ।।५५-५६।।

कृष्ण बोले——प्रिये, राधे ! गोलोक में देव-सभा के मध्य जो वृत्तान्त घटित हुआ था, उसका स्मरण करती हो ? पूर्वकाल में मैंने जो स्वीकार किया था, उसे आज पूरा करूँगा ।।५७।। सुमुखी राधे ! तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो । जैसी तुम हो, वैसा मैं हूँ, निश्चय ही हम दोनों में भेद नहीं है । जैसे दूध में धवलता, अग्नि में दाहिका शक्ति और पृथ्वी में गन्ध है, उसी भाँति मैं निरन्तर तुम में हूँ । जिस प्रकार कुम्हार बिना मिट्टी के घड़ा बनाने में समर्थ नहीं हो सकता और स्वर्णकार बिना सुवर्ण के कुण्डल बनाने में कदापि समर्थ नहीं हो सकता, उसी प्रकार मैं तुम्हारे बिना सृष्टि करने में समर्थ नहीं हूँ । तुम सृष्टि की आधारभूता हो और मैं अच्युत बीज रूप हूँ ।।५८-६१।। प्रतिव्रते ! शय्या पर आओ और मुझे अपने वक्षःस्थल से लगा लो । जैसे आभूषण शरीर की शोभा का हेतु है, उसी प्रकार तुम मेरी शोभा हो ।।६२।। जब मैं तुम से अलग रहता हूँ, तब लोग मुझे 'कृष्ण' कहते हैं और जब तुम साथ हो जाती हो तो वे ही लोग मुझे श्रीकृष्ण की संज्ञा देते हैं। तुम्हीं श्री हो, तुम्हीं सम्पत्ति हो और तुम्हीं आधारस्वरूपिणी हो । तुम समस्त शक्तिस्वरूपा हो तथा मैं अविनाशी सर्वरूप हूँ ।।६३-६५।। जब मैं तेजः स्वरूप रहता हूँ, तब तुम भी तेजःस्वरूपा रहती हो, जब मैं शरीररहित होता हूँ, तब तुम भी शरीररहित हो जाती हो । सुन्दरि ! मैं सदा तुम्हारे संयोग द्वारा समस्त बीज स्वरूप होता हूँ । तुम शक्तिस्वरूपा तथा समस्त स्त्रियों का रूप धारण करने वाली हो ।।६६-६७।। मेरे अंगस्वरूप

ममाङ्गांशस्वरूपा त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी। शक्त्या बुद्धया च ज्ञानेन मया तुल्या वरानने ॥६८॥
आवयोर्भेदबुद्धिं च यः करोति नराधमः । तस्य वासः कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥६९॥
पूर्वान्सप्त परान्सप्त पुरुषान्पातयत्यधः । ॥७०-७१॥
राशब्दं कुर्वतस्त्रस्तो ददामि भक्तिमुत्तमाम्। धाशब्दं कुर्वतः पश्चाद्यामि श्रवणलोभतः ॥७२॥
ये सेवन्ते च दत्त्वा मामुपचाराश्च षोडश। यावज्जीवनपर्यन्तं या प्रीतिर्जायते मम ॥७३॥
सा प्रीतिर्मम जायेत राधाशब्दात्ततोऽधिका। प्रिया न मे तथा राधे राधावक्ता ततोऽधिकः ॥७४॥
ब्रह्माऽनन्तः शिवो धर्मो नरनारायणावृषी । कपिलश्च गणेशश्च कार्तिकेयश्च मत्प्रियः ॥७५॥
लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा सावित्री प्रकृतिस्तथा। मम प्रियाश्च देवाश्च तास्तथाऽपि न तत्समाः ॥७६॥
ते सर्वे प्राणतुल्या मे त्वं मे प्राणाधिका सती। भिन्नस्थानस्थितास्ते च त्वं च वक्षः स्थले स्थिता ॥७७॥
या मे चतुर्भुजा मूर्तिर्बिभर्ति वक्षसि प्रियाम्। सोऽहं कृष्णस्वरूपस्त्वां विवहामि स्वयं सदा[1] ॥७८॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णस्तस्थौ तल्पे मनोरमे। उवाच राधिका नाथं भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥७९॥

तुम ईश्वरी मूल प्रकृति हो। वरानने ! शक्ति, बुद्धि और ज्ञान में तुम मेरे ही समान हो। जो नराधम हम दोनों में भेद-भावना करता है, वह कालसूत्र नामक नरक में चन्द्रमा और सूर्य के नियत काल तक वास करता है। वह अपने पहले और बाद की सात-सात पीढ़ियों को नरक में गिरा देता है। उसका करोड़ों जन्मों का पुण्य निश्चित ही नष्ट हो जाता है ॥६८-७०॥ जो नराधम अज्ञान वश हम दोनों की निन्दा करते हैं, वे घोर नरक में तब तक पकाये जाते हैं जब तक चन्द्रमा और सूर्य की सत्ता है ॥७१॥ 'रा' शब्द का उच्चारण करने वाले को मैं त्रस्त होकर उत्तम भक्ति प्रदान करता हूँ और पश्चात् 'धा' शब्द का उच्चारण करने वाले के पीछे इस लिए जाता हूँ कि 'राधा' शब्द सुनने का लोभ रहता है। जो जीवन पर्यन्त षोडश उपचार अर्पित करते हुए मेरी सेवा करते हैं और उन पर जो मेरी प्रीति होती है, वही प्रीति राधा शब्द के उच्चारण से होती है। राधे ! मुझे तुम उतनी अधिक प्रिय नहीं हो जितना कि राधा शब्द कहने वाला प्रिय है ॥७२-७४॥ ब्रह्मा, अनन्त, शिव, धर्म, नर-नारायण ऋषि, कपिल, गणेश और कार्तिकेय मेरे प्रिय हैं, तथा लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, प्रकृति, और देवगण भी मेरे प्रिय हैं किन्तु ये राधा नाम का उच्चारण करने वाले के समान प्रिय नहीं हैं ॥७५-७६॥ वे सब मेरे प्राण के समान हैं और सती राधे ! तुम मेरे प्राणों से भी अधिक हो। वे सब भिन्न-भिन्न स्थानों में रहते हैं और तुम मेरे वक्षःस्थल में विराजमान हो। मेरी चार भुजा वाली मूर्ति अपनी प्रिया को वक्षःस्थल पर धारण करती है और मैं स्वयं कृष्णस्वरूप होकर सदा तुम्हारा भार वहन करता हूं। इस प्रकार कहकर श्रीकृष्ण मनोरम शय्या पर विराजमान हुए, तब राधिका ने भक्ति से सिर झुकाकर स्वामी से कहा ॥७७-७९॥

---

[1] क. मुदा।

Funding by IKS-MoE

राधिकोवाच

स्मरामि सर्वं जानामि विस्मरामि कथं विभो। यत्त्वं वदसि सर्वाऽहं त्वत्पादाब्जप्रसादतः ॥८०॥
ईश्वरस्याप्रियाः केचित्प्रियाश्च कुत्र केचन। ये यथा मां न स्मरन्ति तथा तेषु तवाकृपा ॥८१॥
तृणं च पर्वतं कर्तुं समर्थः पर्वतं तृणम्। तथाऽपि योग्यायोग्ये च संपत्तौ च समा कृपा ॥८२॥
तिष्ठत्यहं शयानस्त्वं कथाभिर्यत्क्षणं गतम्। तत्क्षणं च युगसमं नाहं प्रापयितुं क्षमा ॥८३॥
वक्षःस्थले च शिरसि देहि ते चरणाम्बुजम्। दुनोति मन्मनः सद्यस्त्वदीयविरहानलात् ॥८४॥
पुरः पपात मे दृष्टिस्त्वदीयचरणाम्बुजे। नीता मया न हि क्लेशाद्द्रष्टुमन्यत्कलेवरम् ॥८५॥
प्रत्येकमङ्गं दृष्ट्वैव दत्ता शान्ते मुखाम्बुजे। दृष्ट्वा मुखारविन्दं च नान्यं गन्तुं च सा क्षमा ॥८६॥
राधिकावचनं श्रुत्वा जहास पुरुषोत्तमः। तामुवाच हितं तथ्यं श्रुतिस्मृतिनिरूपितम् ॥८७॥

श्रीकृष्ण उवाच

न खण्डनीयं तत्तत्र मया पूर्वं निरूपितम्। तिष्ठ भद्रे क्षणं भद्रं करिष्यामि तव प्रिये ॥८८॥
त्वन्मनोरथपूर्णस्य स्वयं कालः समागतः ॥८९॥

राधिका बोलीं–विभो ! मुझे ! स्मरण है, मैं सब जानती हूँ, भूलूंगी कैसे ? आपके चरण-कमलों के प्रसाद से मैं सब कुछ हूँ, जो आप कह रहे हैं ॥८०॥ ईश्वर के कुछ लोग अप्रिय होते हैं और कहीं कुछ प्रिय भी होते हैं जैसे जो लोग मेरा स्मरण नहीं करते हैं, उन पर आपकी कृपा नहीं रहती ॥८१॥ तुम तृण को पर्वत और पर्वत को तृण करने में समर्थ हो, तथापि योग्य-अयोग्य में और सम्पत्ति तथा विपत्ति में भी समान कृपा होती है ॥८२॥ मैं खड़ी हूँ और तुम सोये हो, इस समय बातचीत में जो क्षण निकल गया, वह क्षण युग के समान था उसे मैं लौटा नहीं सकती ॥८३॥ अतः मेरे वक्षस्थल और शिर पर अपना चरण-कमल रखने की कृपा करो। तुम्हारे विरहाग्नि से मेरा मन सद्यः जल रहा है ॥८४॥ सामने तुम्हारे चरण-कमल पर जब मेरी दृष्टि पड़ी तो मैं अन्य अंग देखने के लिए क्लेश उठाकर भी उसे नहीं हटाया। फिर प्रत्येक अंग को देखकर ही मैंने उसे नहीं हटाया। फिर प्रत्येक अंग को देखकर ही मैंने उसे तुम्हारे शान्त मुख-कमल पर डाला। किन्तु मुख-कमल को देखकर मेरी दृष्टि अन्यत्र जाने में असमर्थ है ॥८५-८६॥

राधिका की बात सुनकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हँस पड़े और उन्होंने राधा से हितकर, सत्य और श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित वचन कहा ॥८७॥

श्रीकृष्ण बोले–भद्रे, प्रिये ! पूर्वकाल में मैंने वहाँ जो कहा था उसका खंडन नहीं होना चाहिये। क्षणमात्र ठहरो, मैं तुम्हारा कल्याण करूँगा ॥८८॥ तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होने का समय स्वयं आ गया है। राधे ! मैंने पहले

यस्य यल्लिखितं पूर्वं यत्र काले निरूपितम्। तदेव खण्डितुं राधे क्षमो नाहं च को विधिः ॥९०॥
विधातुश्च विधाताऽहं येषां यल्लेखनं कृतम्। ब्रह्मादीनां च क्षुद्राणां न तत्खण्डचं कदाचन ॥९१॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्माऽऽजगाम पुरतो हरेः। मालाकमण्डलुकर ईषत्स्मेरचतुर्मुखः ॥९२॥
गत्वा ननाम तं कृष्णं प्रतुष्टाव यथागमम्। साश्रुनेत्रः पुलकितो भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥९३॥
स्तुत्वा नत्वा जगद्धाता जगाम हरिसंनिधिम्। पुनर्नत्वा प्रभुं भक्त्या जगाम राधिकान्तिकम् ॥९४॥
मूर्ध्ना ननाम भक्त्या च मातुस्तच्चरणाम्बुजे। चकार संभ्रमेणैव जटाजालेन वेष्टितम् ॥९५॥
कमण्डलुजलेनैव शीघ्रं प्रक्षालितं मुदा। यथागमं प्रतुष्टाव पुटाञ्जलियुतः पुनः ॥९६॥

ब्रह्मोवाच

हे मातस्त्वत्पदाम्भोजं दृष्टं कृष्णप्रसादतः। सुदुर्लभं च सर्वेषां भारते च विशेषतः ॥९७॥
षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तप्तं पुरा मया। भास्करे पुष्करे तीर्थे कृष्णस्य परमात्मनः ॥९८॥
आजगाम वरं दातुं वरदाता हरिः स्वयम्। वरं वृणीष्वेत्युक्ते च स्वाभीष्टं च वृतं मुदा ॥९९॥
राधिकाचरणाम्भोजं सर्वेषामपि दुर्लभम्। हे गुणातीत मे शीघ्रमधुनैव प्रदर्शय ॥१००॥

जिसके लिये जो कुछ लिख दिया है, उसका खण्डन मैं स्वयं नहीं कर सकता, फिर विधाता की क्या बिसात है? मैं ब्रह्मा का भी ब्रह्मा हूँ, अतः जिसका जो कुछ लिख दिया है, उसका क्षुद्र ब्रह्मा आदि भी खंडन कभी नहीं कर सकते ॥८९-९१॥ इसी बीच भगवान् के सामने ब्रह्मा जी आ गये उनके हाथ में माला-कमण्डलु थे। वे अपने चारों मुख से मन्द हास कर रहे थे। आकर उन्होंने कृष्ण को नमस्कार किया और आगम के अनुसार उनकी स्तुति की। जगत् के विधाता ब्रह्मा सजल नेत्र, पुलकायमान शरीर और भक्ति से कन्धे झुकाये स्तुति-नमस्कार करके हरि के समीप पहुँचे। भक्ति से पुनः भगवान् को नमस्कार करके राधिका के समीप चले गये॥९२-९४॥ माता के चरण-कमल में भक्तिपूर्वक शिर से नमस्कार किया। जटा-जाल से आच्छन्न शिर से चरणारविन्द को वेष्टित करके उन्होंने अपने कमण्डलु-जल से सहर्ष शीघ्रता पूर्वक उनका प्रक्षालन किया और हाथ जोड़कर वेदानुसार स्तुति की ॥९५-९६॥

ब्रह्मा बोले—हे मातः! श्रीकृष्ण की कृपा से तुम्हारे चरण-कमल का दर्शन किया है जो सभी के लिए अत्यन्त दुर्लभ है, विशेषकर भारतवर्ष में पूर्व समय में पुष्कर तीर्थ में मैंने सूर्य के प्रकाश में परमात्मा श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए साठ सहस्र वर्षों तक तप किया। अनन्तर वरदायक भगवान् वर देने के लिए स्वयं आये। 'वर माँगो' उनके ऐसा कहने पर मैंने अपना अभीष्ट वर माँगा कि राधिका के चरणकमल का दर्शन करना चाहता हूँ, जो सबके लिये अति दुर्लभ है। हे गुणातीत! मुझे अभी शीघ्र दर्शन कराइये। मेरे कहने पर भगवान् ने मुझ तपस्वी से कहा—हे वत्स! अवसर आने पर दर्शन करा दूँगा, इस समय क्षमा करो

मयेत्युक्तो हरिरयमुवाच मां तपस्विनम्। दर्शयिष्यामि काले च वत्सेदानीं क्षमेति च ॥१०१॥
नहीश्वराज्ञा विफला तेन दृष्टं पदाम्बुजम्। सर्वेषां वाञ्छितं मातर्गोलोके भारतेऽधुना ॥१०२॥
सर्वा देव्यः प्रकृत्यंशा जन्याः प्राकृतिका ध्रुवम्। त्वं कृष्णाङ्गार्धसंभूता तुल्या कृष्णेन सर्वतः ॥१०३॥
श्रीकृष्णस्त्वमयं राधा त्वं राधा वा हरिः स्वयम्। न हि वेदेषु मे दृष्ट इति केन निरूपितम् ॥१०४॥
ब्रह्माण्डाद्बहिरूर्ध्वं च गोलोकोऽस्ति यथाऽम्बिके। वैकुण्ठश्चाप्यजन्यश्च त्वमजन्या तथाऽम्बिके
॥१०५॥
यथा समस्तब्रह्माण्डे श्रीकृष्णांशांशजीविनः। तथा शक्तिस्वरूपा त्वं तेषु सर्वेषु संस्थिता ॥१०६॥
पुरुषाश्च हरेरंशास्त्वदंशा निखिलाः स्त्रियः। [1]आत्मना देहरूपा त्वमस्याऽऽधारस्त्वमेव हि ॥१०७॥
अस्यान्प्राणैस्त्वं मातस्त्वत्प्राणैरयमीश्वरः। किमहो निर्मितः केन हेतुना शिल्पकारिणा ॥१०८॥
नित्योऽयं च तथा कृष्णस्त्वं च नित्या तथाऽम्बिके। अस्यांशा त्वं त्वदंशो वाऽप्ययं केन निरूपितः ॥१०९
अहं विधाता जगतां देवानां जनकः स्वयम्। तं पठित्वा गुरुमुखाद्भवन्त्येव बुधा जनाः ॥११०॥
गुणानां वास्तवानां ते शतांशं वक्तुमक्षमः। वेदो वा पण्डितो वाऽन्यः को वा त्वां स्तोतुमीश्वरः ॥१११॥
स्तवानां जनकं ज्ञानं बुद्धिर्ज्ञानाम्बिका सदा। त्वं बुद्धेर्जननी मातः को वा त्वां स्तोतुमीश्वरः ॥११२॥

॥९७-१०१॥ भगवान् की आज्ञा विफल नहीं होती है, इसीलिए आज इस चरण-कमल का दर्शन हुआ है। हे मातः ! तुम गोलोक में तथा भारत में भी इस समय सबकी अभीष्ट हो ॥१०२॥

देवियाँ प्रकृति के अंश से उत्पन्न होने के कारण जन्य तथा प्राकृतिक हैं। किन्तु तुम भगवान् श्री कृष्ण के अर्द्धाङ्ग से उत्पन्न होने के कारण सब प्रकार से उन्हीं के समान हो ॥१०३॥ तुम भगवान् श्री कृष्ण हो और ये राधा हैं या तुम राधा हो और ये स्वयं भगवान् हैं, इसका निश्चय कहीं वेदों में भी मैंने नहीं देखा है। किसी ने भी इसका निरूपण नहीं किया है ॥१०४॥ हे अम्बिके ! जिस प्रकार गोलोक ब्रह्माण्ड से बाहर और ऊपर है उसी तरह वैकुण्ठ भी अजन्य है, और तुम भी अजन्य हो ॥१०५॥ जिस प्रकार उन समस्त ब्रह्माण्ड में श्रीकृष्ण के अंशांश जीवगण स्थित हैं, उसी प्रकार तुम जीवों में शक्ति स्वरूप होकर स्थित हो। समस्त पुरुष हरि के अंश हैं, और समस्त स्त्रियाँ तुम्हारे अंग से उत्पन्न हैं। तुम शरीर से देहरूपा हो, अतः तुम्हीं इनकी आधारभूता हो ॥१०६-१०७॥ माता ! इनके प्राणों से तुम प्राणवती हो और तुम्हारे प्राणों से ये ईश्वर प्रावणान् हैं। अहो ! क्या किसी हेतु से किसी शिल्पी ने इनका निर्माण किया है ? नहीं। अम्बिके ! ये कृष्ण नित्य हैं और तुम नित्या हो। तुम इनकी अंशस्वरूपा हो या ये ही तुम्हारे अंश हैं, यह कौन बता सकता है ? ॥१०८-१०९॥ मैं जगत् का विधाता और वेदों का स्वयं स्रष्टा हूँ। उन (वेदों) को गुरुमुख से पढ़कर लोग पण्डित हो जाते हैं, किन्तु वे विद्वान् तुम्हारे वास्तविक गुणों का शतांश भी कहने में असमर्थ हैं ॥११०-१११ वेद, पण्डित या अन्य कौन तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ हो सकता है ? क्योंकि स्तुति का जनक है ज्ञान और

---

[1] क. आत्माऽहं दे॰।

यद्वस्तु दृष्टं सर्वेषां तद्धि वक्तुं बुधः क्षमः । यददृष्टाश्रुतं वस्तु तन्निर्वक्तुं च कः क्षमः ॥११३॥
अहं महेशोऽनन्तश्च स्तोतुं त्वां कोऽपि न क्षमः । सरस्वती च वेदाश्च क्षमः कः स्तोतुमीश्वरः ॥११४॥
यथागमं यथोक्तं च न मां निन्दितुमर्हसि । ईश्वराणामीश्वरस्य योग्यायोग्ये समा कृपा ॥११५॥
जनस्य प्रतिपाल्यस्य क्षणे दोषः क्षणे गुणः । जननी जनको यो वा सर्वं क्षमति स्नेहतः ॥११६॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता तस्थौ च पुरतस्तयोः । प्रणम्य चरणाम्भोजं सर्वेषां वन्द्यमीप्सितम् ॥११७॥
ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । राधामाधवयोः पादे भक्तिर्दास्यं लभेद्ध्रुवम् ॥११८॥
कर्मनिर्मूलनं कृत्वा मृत्युं जित्वा सुदुर्जयम् । विलङ्घ्य सर्वलोकांश्च याति गोलोकमुत्तमम् ॥११९॥

नारायण उवाच

ब्रह्मणः स्तवनं श्रुत्वा तमुवाच ह राधिका । वरं वृणु विधातस्त्वं यत्ते मनसि वर्तते ॥१२०॥
राधिकावचनं श्रुत्वा तामुवाच जगद्विधिः । वरं च युवयोः पादपद्मभक्तिं च देहि मे ॥१२१॥
इत्युक्ते विधिना राधा तूर्णमोमित्युवाच ह । पुनर्ननाम तां भक्त्या विधाता जगतां पतिः ॥१२२॥

ज्ञान की जननी है बुद्धि । और माता ! तुम बुद्धि की भी जननी हो, इसलिए कौन तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ हो सकता है ? जिस वस्तु को सभी लोग देखते हैं, उसका वर्णन करने में विद्वान् समर्थ होता है और जो वस्तु सभी के लिए अदृष्ट और अश्रुत है उसका वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है ? मैं, महेश्वर और अनन्त इनमें कोई भी तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ नहीं है । सरस्वती और वेद भी तुम्हारी स्तुति करने में असमर्थ हैं । फिर कौन तुम्हारी स्तुति कर सकता है ? ॥११२-११४॥ मैंने आगमों का अनुसरण करके तुम्हारे विषय में जो कुछ कहा है, उसके लिए तुम मेरी निन्दा न करना जो ईश्वर के भी ईश्वर परमात्मा हैं, उनकी योग्य और अयोग्य पर भी समान कृपा होती है ॥११५॥ जो पालन के योग्य संतान है, उसका क्षण-क्षण में दोष और गुण प्रकट होता रहता है, परन्तु माता-पिता उसके सारे दोषों को स्नेहवश क्षमा करते हैं ॥११६॥ इतना कह कर जगत् के विधाता ब्रह्मा राधा और कृष्ण के सर्ववन्द्य और सर्ववाञ्छित चरणकमलों को प्रणाम करके उनके आगे खड़े हो गये ।११७॥ ब्रह्मा द्वारा सुरक्षित इस स्तोत्र का जो तीनों संध्याओं में पाठ करता है, उसे राधामाधव के चरण-कमल की भक्ति एवं उनका दास्य निश्चित प्राप्त होता है । वह अपने समस्त कर्मों का उन्मूलन करके अति दुर्जेय मृत्यु को जीत कर और समस्त लोकों को पार कर परमोत्तम गोलोक को चला जाता है ॥११८-११९॥

नारायण बोले—ब्रह्मा की स्तुति सुनकर राधिका ने उनसे कहा—'हे विधाता ? अपना इच्छित वरदान मांगो ।' राधिका की बात सुनकर जगत् के विधाता ने कहा—'अपने दोनों व्यक्तियों के चरण-कमल की भक्ति मुझे देने की कृपा करें ।' ब्रह्मा के ऐसा करने पर राधिका ने उसे शीघ्र स्वीकार किया । अनन्तर जगत्पति

तदा ब्रह्मा तयोर्मध्ये प्रज्वाल्य च हुताशनम्। हरिं संस्मृत्य हवनं चकार विधिना विधिः ॥१२३॥
उत्थाय शयनात्कृष्ण उवास वह्निसंनिधौ। ब्रह्मणोक्तेन विधिना चकार हवनं स्वयम् ॥१२४॥
प्रणमय्य पुनः कृष्णं राधां तां जनकः स्वयम्। कौतुकं कारयामास सप्तधा च प्रदक्षिणाम् ॥१२५॥
पुनः प्रदक्षिणां राधां कारयित्वा हुताशनम्। प्रणमय्य ततः कृष्णं वासयामास तं विधिः ॥१२६॥
तस्या हस्तं च श्रीकृष्णं ग्राहयामास तं विधिः। वेदोक्तसप्तमन्त्रांश्च पाठयामास माधवम् ॥१२७॥
संस्थाप्य राधिकाहस्तं हरेर्वक्षसि वेदवित्। श्रीकृष्णहस्तं राधायाः पृष्ठदेशे प्रजापतिः ॥१२८॥
स्थापयामास मन्त्रांस्त्रीन्पाठयामास राधिकाम्। पारिजातप्रसूनानां मालां जानुविलम्बिताम् ॥१२९॥
श्रीकृष्णस्य गले ब्रह्मा राधाद्वारा ददौ मुदा। प्रणमय्य पुनः कृष्णं राधां च कमलोद्भवः ॥१३०॥
राधागले हरिद्वारा ददौ मालां मनोहराम्। पुनश्च वासयामास श्रीकृणं कमलोद्भवः ॥१३१॥
तद्वामपार्श्वे राधां च सस्मितां कृष्णचेतसम्। पुटाञ्जलिं कारयित्वा माधवं राधिकां विधिः ॥१३२॥
पाठयामास वेदोक्तान्पञ्च मन्त्रांश्च नारद। प्रणमय्य पुनः कृष्णं समर्प्य राधिकां विधिः ॥१३३॥
कन्यकां च यथा तातो भक्त्या तस्थौ हरेः पुरः। एतस्मिन्नन्तरे देवाःसानन्दपुलकोद्गमाः ॥१३४॥
दुन्दुभिं वादयामासुश्चाऽऽनकं मुरजादिकम् ॥१३५॥

ब्रह्मा ने भक्ति से राधा को पुनः नमस्कार करके उन दोनों के बीच में अग्नि प्रज्वलित किया और भगवान् के स्मरण पूर्वक सविधान हवन सुसम्पन्न किया। उसी समय भगवान् कृष्ण स्वयं शय्या से उठकर अग्नि के समीप आये और ब्रह्मा के बताये विधान द्वारा हवन कार्य सुसम्पन्न किया। अनन्तर ब्रह्मा ने राधा द्वारा कृष्ण को प्रणाम कराया, फिर स्वयं पिता के कर्तव्य का पालन करते हुए उन दोनों से कौतुक (वैवाहिक मंगल कृत्य) कराया और सात बार अग्निदेव की परिक्रमा करायी। उसके बाद राधा से पुनः अग्नि की प्रदक्षिणा तथा प्रणाम करवाकर राधा को श्रीकृष्ण के पास बैठाया ॥१२०-१२६॥ फिर श्रीकृष्ण से राधा का हाथ ग्रहण कराया और हरि से सात वैदिक मन्त्र पढ़वाये। अनन्तर ब्रह्मा ने राधिका का हाथ भगवान् के हाथ पर और श्रीकृष्ण का हाथ राधा के पृष्ठ प्रदेश पर रखा कर तीन मन्त्र राधा से पढ़वाये। पश्चात् ब्रह्मा ने पारिजात पुष्पों की आजानुलम्बिनी माला भगवान् श्रीकृष्ण के गले में राधा से डलवायी और श्रीकृष्ण को प्रणाम करवाया ॥१२७-१३०॥ फिर भगवान् द्वारा अति मनोहर माला राधा के गले में पहनवायी। पश्चात् श्रीकृष्ण को बैठाकर उनके वामभाग में राधा को बैठाया, जो श्रीकृष्ण को चित्त में धारण किये मन्द-मन्द मुसकरा रही थीं। तब ब्रह्मा ने राधा-माधव को हाथ जोड़कर उनसे वेदों के पाँच मन्त्रों का पाठ कराया और प्रणाम करवा कर राधा को श्रीकृष्ण के हाथ में भक्ति पूर्वक उसी प्रकार सौंप दिया जैसे पिता अपनी पुत्री का दान करता है। फिर वे भगवान् के सामने खड़े हो गये। उसी समय आनन्दित एवं पुलकित देवों ने नगाड़े, आनक और मृदङ्ग

पारिजातप्रसूनानां पुष्पवृष्टिर्बभूव ह। जगुर्गन्धर्वप्रवरा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥१३६॥
तुष्टाव श्रीहरिं ब्रह्मा तमुवाच ह सस्मितः। युवयोश्चरणाम्भोजे भक्तिं मे देहि दक्षिणाम् ॥१३७॥
ब्रह्मणे वचनं श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम्। मदीयचरणाम्भोजे सुदृढा भक्तिरस्तु ते ॥१३८॥
स्वस्थानं गच्छ भद्रं ते भविता नात्र संशयः। मया नियोजितं कर्म कुरु वत्स ममाऽऽज्ञया ॥१३९॥

नारायण उवाच

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा विधाता जगतां मुने। प्रणम्य राधां कृष्णं च जगाम स्वालयं मुदा ॥१४०॥
गते ब्रह्मणि सा देवी सस्मिता वक्रचक्षुषा। सा ददर्श हरेर्वक्त्रं चच्छाद व्रीडया मुखम् ॥१४१॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी कामबाणप्रपीडिता। प्रणम्य श्रीहरिं भक्त्या जगाम शयनं हरेः ॥१४२॥
चन्दनागुरुपङ्कं च कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्। ललाटे तिलकं कृत्वा ददौ कृष्णस्य वक्षसि ॥१४३॥
सुधापूर्णं रत्नपात्रं मधुपूर्णं मनोहरम्। प्रददौ हरये भक्त्या बुभुजे जगतीपतिः ॥१४४॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्। ददौ कृष्णाय सा राधा सादरं बुभुजे हरिः ॥१४५॥
चखाद सस्मिता राधा हरिदत्तं सुधारसम्। ताम्बूलं तेन दत्तं च बुभुजे पुरतो हरेः ॥१४६॥
कृष्णश्चर्विततताम्बूलं राधिकायै मुदा ददौ। चखाद परया भक्त्या पपौ तन्मुखपंकजम् ॥१४७॥

आदि बाजे बजाये, पुष्पों की वर्षा हुई, गन्धर्वश्रेष्ठ गान करने लगे, अप्सरायें नृत्य करने लगीं ॥१३१-१३६॥ ब्रह्मा ने राधा-माधव की स्तुति की और मन्दहास करते हुए उनसे कहा—'आप दोनों के चरण-कमल में मेरी भक्ति हो, यही दक्षिणा मुझे प्रदान करने की कृपा करें'। ब्रह्मा की बात सुनकर भगवान् ने स्वयं उनसे कहा—मेरे चरण-कमल में तुम्हारी अतिशय दृढ़ भक्ति हो, अब अपने स्थान को जाओ, तुम्हारा कल्याण अवश्य होगा। हे वत्स! मेरी आज्ञा से मेरे आयोजित कार्य को सम्पन्न करो ॥१३७-१३९॥

नारायण बोले—मुने! भगवान् श्रीकृष्ण की बातें सुनकर जगत्-विधाता ब्रह्मा राधा-कृष्ण को सप्रेम प्रणाम करके अपने लोक को चले गये। ब्रह्मा के चले जाने पर देवी राधा ने भगवान् के मुख की ओर अपनी तिरछी चितवन डाली और लज्जा से अपना मुख ढक लिया ॥१४०-१४१॥ उस समय उनका सर्वांग पुलकित हो उठा। वे काम के बाणों से अत्यन्त पीड़ित हो गयीं। अनन्तर भक्ति-पूर्वक भगवान् को प्रणाम कर उनकी शय्या पर गयीं। उनके भाल में चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसर की तिलक लगायी और उनके वक्षःस्थल पर लेप किया ॥१४२-१४३॥ पश्चात् सुधा और मधु से पूर्ण मनोहर रत्नपात्र उन्हें समर्पित किया। जगत्पति भगवान् ने उसका पान किया ॥१४४॥ राधा ने भगवान् को कपूर आदि से सुवासित उत्तम ताम्बूल दिया, जिसे हरि ने आदर के साथ खाया ॥१४५॥ भगवान् के दिये हुए अमृत रस को मन्द मुसकाती राधा ने भी पान किया ओर उनके दिये ताम्बूल को भी उन्होंने उनके सामने ही खाया ॥१४६॥ कृष्ण ने अपना चबाया हुआ पान राधा को सहर्ष दिया जिसे राधा परा भक्ति से खाकर उनके मुख कमल का पान करने

Funding by IKS-MoE

राधाचर्वितताम्बूलं ययाचे मधुसूदनः। जहास न ददौ राधा क्षमेत्युक्तं तया मुदा ॥१४८॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवमुत्तमम्। राधिकायाश्च सर्वाङ्गे प्रददौ माधवः स्वयम् ॥१४९॥
यः कामो ध्यायते नित्यं यस्यैकचरणाम्बुजम्। बभूव तस्य स वशो राधासंतोषकारणात् ॥१५०॥
यद्भृत्यभृत्यैर्मदनो जितः सर्वक्षणं मुने। स्वेच्छामयो हि भगवाञ्जितस्तेन कुतूहलात् ॥१५१॥
करे धृत्वा च तां कृष्णः स्थापयामास वक्षसि। चकार शिथिलं वस्त्रं चुम्बनं च चतुर्विधम् ॥१५२॥
बभूव रतियुद्धेन विच्छिन्ना क्षुद्रघण्टिका। चुम्बनेनौष्ठरागश्च ह्याश्लेषेण च पत्रकम् ॥१५३॥
शृङ्गारेणैव कबरी सिन्दूरतिलकं मुने। जगामालक्तकाङ्कश्च विपरीतादिकेन च ॥१५४॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी बभूव नवसंगमात्। मूर्च्छामवाप सा राधा बुबुधे न दिवानिशम् ॥१५५॥
प्रत्यङ्गेनैव प्रत्यङ्गमङ्गेनाङ्गं समाश्लिषत्। [1]शृङ्गाराष्टविधं कृष्णश्चकार कामशास्त्रवित् ॥१५६॥
पुनस्तां च समाश्लिष्य सस्मितां वक्रलोचनाम्। क्षतविक्षतसर्वाङ्गीं नखदन्तैश्चकार ह ॥१५७॥
कङ्कणानां किङ्किणीनां मञ्जीराणां मनोहरः। बभूव शब्दस्तत्रैव शृङ्गारसमरोद्भवः ॥१५८॥

लगीं ॥१४७॥ राधा के चवाये पान की मधुसूदन भगवान् ने भी याचना की; किन्तु राधा ने हँस कर कहा—‘क्षमा कीजिये।’ और उसे नहीं दिया ॥१४८॥ अनन्तर माधव ने स्वयं राधिका के सर्वांग में चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसर का द्रव लगाया ॥१४९॥ जो कामदेव जिनके चरण-कमल का ध्यान नित्य करता था, उसी के वश में वे राधा-सन्तोष के हेतु हो गये ॥१५०॥ मुने! जिनके सेवक के सेवकों ने कामदेव को सदैव के लिए जीत लिया, वे स्वेच्छामय भगवान् आज कौतूहल वश उसी के अधीन हो गये ॥१५१॥ अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने राधा का कर-कमल पकड़कर उन्हें अपने हृदय से लगा लिया और उनके वस्त्र को ढीला करके उनका चार प्रकार से चुम्वन लिया ॥१५२॥ रति-युद्ध होने से राधा की करधनी में लगे हुए घुंघरू टूट गये, चुम्वन से अधर की लालिमा और आलिगन से (वक्षः स्थल की पत्र-रचना) बिगड़ गयी ॥१५३॥ हे मुने! सम्भोग में केशपाश, सिन्दूर-तिलक और विपरीत आदि उपभोग में अलक्तक के चिह्न छूट गये ॥१५४॥ नव सङ्ग-म से राधा के सर्वांग में रोमाञ्च हो आया, वे मूर्च्छित हो गयीं, उन्हें दिनरात का कुछ भी ज्ञान न रहा ॥१५५॥ कामशास्त्र के वेत्ता श्रीकृष्ण ने अपने प्रत्येक अंग से उनके प्रत्येक अंग का संयोग किया। इस भाँति उन्होंने आठ प्रकार का शृंगार (संभोग) किया। पश्चात् पुनः मन्द मुसकान समेत कटाक्षों से देखती हुई राधा का आलिगन करके नखों और दाँतों से उनके सभी अंगों को क्षत-विक्षत कर दिया ॥१५६-१५७॥ उस रति-समर में राधा के कंकण, करधनी एवं नूपुरों का मनोहर शब्द हो रहा था। अनन्तर उस निर्जन स्थान में कामशास्त्र-वेत्ता कृष्ण ने कौतुकवश राधा को पकड़ कर शय्या पर बैठा लिया और उनका जूड़ा खोल दिया और निर्वस्त्र कर दिया, राधा ने भी कृष्ण की

---

[1] क. °विधिं।

Funding by IKS-MoE

पुनस्तां च समाकृष्य शय्यायां च निवेश्य च । चकार रहितां राधां कबरीबन्धवाससा ॥१५९॥
निर्जने कौतुकात्कृष्णः कामशास्त्रविशारदः । चूडावेषांशुकैर्हीनं चकार तं च राधिका ॥१६०॥
न कस्य कस्माद्धानिश्च तौ द्वौ कार्यविशारदौ । जग्राह राधाहस्तात्तु माधवो रत्नदर्पणम् ॥१६१॥
मुरली माधवकराज्जग्राह राधिका बलात् । चित्तापहारं राधायाश्चकार माधवो बलात् ॥१६२॥
जहार राधिका रासान्माधवस्यापि मानसम् । निवृत्ते कामयुद्धे च सस्मिता वक्रलोचना ॥१६३॥
प्रददौ मुरलीं प्रीत्या श्रीकृष्णाय महात्मने । प्रददौ दर्पणं कृष्णः क्रीडाकमलमुज्ज्वलम् ॥१६४॥
चकार कबरीं रम्यां सिन्दूरतिलकं ददौ । विचित्रपत्रकं वेषं चकारैवंविधं हरिः ॥१६५॥
विश्वकर्मा न जानाति सखीनामपि का कथा । वेषं विधातुं कृष्णस्य यदा राधा समुद्यता ॥१६६॥
बभूव शिशुरूपं च कैशोरं च विहाय च । ददर्श बालरूपं तं रुदन्तं पीडितं क्षुधा ॥१६७॥
यादृशं प्रददौ नन्दो भीतं तादृशमच्युतम् । विनिःश्वस्य च सा राधा हृदयेन विदूयता ॥१६८॥
इतस्ततस्तं पश्यन्ती शोकार्ता विरहातुरा । उवाच कृष्णमुद्दिश्य काकूक्तिमिति कातरा ॥१६९॥
मायां करोषि मायेश किंकरी कथमीदृशीम् । इत्येवमुक्त्वा सा राधा पपात च रुरोद च ॥१७०॥
रुरोद कृष्णस्तत्रैव वाग्बभूवाशरीरिणी । कथं रोदिषि राधे त्वं स्मर कृष्णपदाम्बुजम् ॥१७१॥

चूड़ा खोलकर वस्त्र-रहित कर दिया ॥१५८-१६०॥ उसमें किसी के द्वारा किसी की कुछ हानि नहीं हो रही थी, क्योंकि वे दोनों कार्य-कुशल व्यक्ति थे। अनन्तर माधव ने राधा के हाथ से उनका रत्न-दर्पण ले लिया, राधिका ने भी बल-प्रयोग द्वारा माधव के हाथ से मुरली छीन ली। पश्चात् माधव ने राधा के मन का बलात् अपहरण किया। और राधा ने भी हठात् माधव का मन हरण कर लिया। काम-युद्ध समाप्त होने पर मन्द मुसकाती तथा तिरछी आँखों से देखती हुई राधा ने महात्मा कृष्ण को प्रेम से मुरली प्रदान की और भगवान् ने भी उनका दर्पण तथा समुज्ज्वल क्रीडा-कमल उन्हें लौटा दिया। उनके केशों की सुन्दर वेणी बाँध दी और भाल देश में सिन्दूर का तिलक लगाया, विचित्र पत्र-रचना से युक्त सुन्दर वेष सँवारा। उन्होंने जैसी वेष-रचना की, उसे विश्वकर्मा भी नहीं जानते, फिर सखियों की तो बात ही क्या है ? ॥१६१-१६५ १/२॥ जब राधा श्रीकृष्ण की वेष-रचना करने को उद्यत हुईं तब वे किशोरावस्था का रूप त्याग कर पुनः शिशुरूप हो गये। राधा ने देखा, बालरूप श्रीकृष्ण क्षुधा से पीड़ित हो रहे हैं। नन्द ने जैसे भयभीत अच्युत को दिया था, उसी रूप में वे इस समय दिखाई दिये। राधा व्यथित हृदय से लंबी साँस खींचकर इधर-उधर उस नव तरुण श्री कृष्ण को देखने और ढूँढ़ने लगीं। वे शोक से पीड़ित और विरह से व्याकुल हो उठीं। उन्होंने कातर भाव से श्रीकृष्ण के उद्देश्य से यह दीनतापूर्ण बात कही—'हे मायेश ! अपनी किंकर (दासी) के साथ ऐसी माया क्यों कर रहे हो ?' इतना कहकर राधा गिर पड़ीं और रोदन करने लगीं। कृष्ण भी रोदन कर रहे थे; इसी बीच आकाशवाणी हुई—'हे राधे !' भगवान् कृष्ण के चरण-कमल का स्मरण करो, रोदन क्यों कर रही हो ? ॥१६६-१७१॥ अब से रास-मण्डल के समय तक नित्य रात्रि में भगवान्

Funding by IKS-MoE

आरासमण्डलं यावन्नक्तमत्राऽऽगमिष्यति । करिष्यसि रतिं नित्यं हरिणा सार्धमीप्सिताम् ॥१७२॥
छायां विधाय स्वगृहे स्वयमागत्य मा रुद । कृत्वा क्रोडे च प्राणेशं मायेशं बालरूपिणम् ॥१७३॥
त्यज शोकं गृहं गच्छ सुन्दरीत्थं प्रबोधिता । श्रुत्वैवं वचनं राधा कृत्वा क्रोडे च बालकम् ॥१७४॥
ददर्श पुष्पोद्यानं च वनं सद्रत्नमण्डपम् । तूर्णं वृन्दावनाद्राधा जगाम नन्दमन्दिरम् ॥१७५॥
सा मनोयायिनी देवी निमिषार्धेन नारद । संसिक्तस्निग्धमधुररसना रक्तलोचना ॥१७६॥
यशोदायै शिशुं दातुमुद्यता सेत्युवाच ह । गृहीत्वैवं शिशुं स्थूलं रुदन्तं च क्षुधातुरम् ॥१७७॥
गोष्ठे त्वत्स्वामिना दत्तं प्राप्नोमि यातनां पथि । संसिक्तं वसनं वत्से मेघाच्छन्नेऽतिदुर्दिने ॥१७८॥
पिच्छिले कर्दमोद्रेके यशोदे वोढुमक्षमा । गृहाण बालकं भद्रे स्तनं दत्त्वा प्रबोधय ॥१७९॥
गृहं चिरं परित्यक्तं यामि तिष्ठ सुखं सति । इत्युक्त्वा बालकं दत्त्वा जगाम स्वगृहं प्रति ॥१८०॥
यशोदा बालकं नीत्वा चुचुम्ब च स्तनं ददौ । बहिर्निविष्टा सा राधा स्वगृहे गृहकर्मणि ॥१८१॥
नित्यं नक्तं रतिं तत्र चकार हरिणा सह । इत्येवं कथितं वत्स श्रीकृष्णचरितं शुभम् ॥१८२॥
सुखदं मोक्षदं पुण्यमपरं कथयामि ते ॥१८३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाकृष्णविवाहनवसंगमप्रस्तावो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१८५॥

यहाँ आयेंगे, और तुम अपने घर में अपनी छाया छोड़कर यहाँ आकर नित्य उनके साथ मनभावन रति करोगी, रोदन न करो। अपने प्राणनाथ को, जो मायेश एवं बालरूप हो गये हैं, गोद में लेकर घर जाओ।' इस प्रकार आकाशवाणी ने उस सुन्दरी को समझाया। ऐसी बात सुनकर राधा ने बालक को अपनी गोद में लेकर पुष्प-वाटिका, वन तथा उत्तम रत्नों के बने मण्डप की ओर देखा। फिर वृन्दावन से शीघ्र नन्द के भवन में आ पहुँची ॥१७२-१७५॥ हे नारद! मन की भाँति वेग से चलने वाली देवी राधा आधे निमेष में वहाँ पहुँच गयीं। उनकी वाणी स्निग्ध एवं मधुर थी। आँखें लाल हो गई थीं। वे यशोदा जी को बालक देने के लिए उद्यत होकर बोलीं—'व्रज में आपके स्वामी ने मुझे यह बालक घर पहुँचाने के लिए दिया था। किन्तु मोटे, भूखे और रोते हुए इस शिशु को लेकर मैं रास्ते भर यातना भोग रही हूँ। मेरा भीगा हुआ वस्त्र इस बच्चे के शरीर में सट गया है। आकाश बादलों से घिरा हुआ है। अत्यन्त दुर्दिन हो रहा है, मार्ग में फिसलन हो रही है। कीच बढ़ गयी है। यशोदे! मैं अब इसका बोझ ढोने में असमर्थ हो गई हूँ। भद्रे! बालक को ले लो और स्तन देकर शान्त करो। मैंने बड़ी देर से घर छोड़ रखा है, अतः जाती हूँ। सती! तुम सुखी रहो।' ऐसा कहकर बालक देकर राधा अपने घर को चली गईं ॥१७६-१७७॥ यशोदा ने बालक को लेकर चूमा और स्तन पिलाया। उधर राधा अपने घर में रहकर बाह्य रूप से गृह-कर्म में तत्पर दिखाई देती थीं, परन्तु रात्रि में नित्य वहाँ (वृन्दावन में) श्रीकृष्ण के साथ रति करती थीं। वत्स! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण का चरित, जो शुभ, सुख दायक, मोक्षप्रद एवं पुण्यस्वरूप हैं, तुम्हें सुना दिया। अब दूसरा कह रहा हूँ ॥१७८-१८३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में राधाकृष्ण के विवाह और नव-संगम-वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१५॥

Funding by IKS-MoE

अथ षोडशोऽध्यायः

नारायण उवाच

माधवो बालकैः सार्धमेकदा हलिना सह। भुक्त्वा पीत्वा च क्रीडार्थं जगाम श्रीवनं मुने ॥१॥
तत्र नानाविधां क्रीडां चकार मधुसूदनः। कृत्वा तां शिशुभिः सार्धं चालयामास गोधनम् ॥२॥
ययौ मधुवनं तस्माच्छ्रीकृष्णो गोधनैः सह। तत्र स्वादु जलं पीत्वा वने च स महाबलः ॥३॥
तत्रैकदैत्यो बलवाञ्छ्वेतवर्णो भयंकरः। विकृताकारवदनो बकाकारश्च शैलवत् ॥४॥
दृष्ट्वा च गोकुलं गोष्ठे शिशुभिर्बलकेशवौ। यथा ह्यगस्त्यो वातापिं सर्वं जग्रास लीलया ॥५॥
बकग्रस्तं हरिं दृष्ट्वा सर्वे देवा भयान्विताः। चक्रुर्हाहेति संत्रस्ता धावन्तः शस्त्रपाणयः ॥६॥
शक्रश्चिक्षेप वज्रं च मुनेरस्थिविनिर्मितम्। न ममार बकस्तस्मात्पक्षमेकं ददाह च ॥७॥
नीहारास्त्रं शशधरः शीतार्तस्तेन दानवः। यमदण्डं सूर्यपुत्रस्तेन कुण्ठो बभूव ह ॥८॥
वायव्यास्त्रं च वायुश्च तेन स्थानान्तरं ययौ। वरुणश्च शिलावृष्टिं चकार तेन पीडितः ॥९॥
हुताशनश्च वाह्नेन पक्षांश्चैव ददाह सः। कुबेरस्यार्धचन्द्रेण छिन्नपादो बभूव ह ॥१०॥

अध्याय १६

बकासुर, प्रलम्बासुर तथा केशी का वध

नारायण बोले--एक बार कृष्ण गोप-बालकों और बलभद्र के साथ खा-पीकर खेलने के लिए श्रीवन में गये ॥१॥ वहाँ बालकों के साथ विविध खेल करके मधुसूदन ने उनके साथ गौवों को आगे बढ़ाया ॥२॥ बालकों समेत गौवों को साथ लिये भगवान् श्रीकृष्ण मधुवन में पहुँचे। महाबली भगवान् ने वहाँ उस वन में सुस्वादु जल का पान किया और एक बलवान्, श्वेतवर्ण तथा भयंकर दैत्य को देखा, जो विकृताकार मुख किये बगुले के आकार में पर्वत की भाँति खड़ा था। ॥३-४॥ उसने गोष्ठ में गौवों एवं बालकों समेत कृष्ण-बलभद्र को देखकर सबको लीलापूर्वक उसी तरह लील लिया जैसे अगस्त्य ने वातापि को उदरस्थ कर लिया था ॥५॥ भगवान् को बकग्रस्त देख कर सभी देवगण भयभीत होकर 'हाय-हाय' करके चिल्लाने लगे और हाथ में शस्त्र लेकर दौड़ पड़े ॥६॥ इन्द्र ने उस पर वज्र चलाया, जो (दधीचि) मुनि की अस्थि से बना था। उससे बक तो न मरा किन्तु उसका एक पंख जल गया ॥७॥ चन्द्रमा ने अपना नीहार (हिम) अस्त्र चलाया; जिससे दानव शीत-पीड़ित होने लगा, सूर्य-पुत्र यम ने यमदण्ड चलाया, जिससे वह कुण्ठित होकर हिलने-डुलने में असमर्थ हो गया ॥८॥ वायु ने अपना वायव्य अस्त्र चलाया, जिससे वह दूसरे स्थान में चला गया। वरुण ने पत्थर बरसाये जिससे वह पीड़ित हुआ ॥९॥ अग्नि ने अपने आग्नेय अस्त्र से उसका पंख जला दिया। कुवेर के अर्द्धचन्द्र (बाण) से

ईशानस्य च शूलेन बभूव मूर्च्छितोऽसुरः । ऋषयो मुनयश्चैव कृष्णं चक्रुर्भियाऽऽशिषम् ॥११॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा । ददाह दैत्यसर्वाङ्गं बाह्याभ्यन्तरमीश्वरः ॥१२॥
तत्सर्वं वमनं कृत्वा प्राणांस्तत्याज दानवः ॥१३॥
बकं निहत्य बलवाञ्छिशुभिर्गोधनैः सह । ययौ केलिकदम्बानां काननं सुमनोहरम् ॥१४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वृषरूपधरोऽसुरः। नाम्ना प्रलम्बो बलवान्महाधूर्तश्च शैलवत् ॥१५॥
शृङ्गाभ्यां च हरिं धृत्वा भ्रामयामास तत्र वै । दुद्रुवुर्बालकाः सर्वे रुरुदुश्च भयातुराः ॥१६॥
बलो जहास बलवाञ्ज्ञात्वा भ्रातरमीश्वरम् । बालकान्बोधयामास भयं किमित्युवाच ह ॥१७॥
तद्विषाणं गृहीत्वा च स्वयं श्रीमधुसूदनः । भ्रामयित्वा च गगने पातयामास भूतले ॥१८॥
प्राणांस्तत्याज दैत्येन्द्रो निपत्य च महीतलम्। जहसुर्बालकाः सर्वे ननृतुश्च जगुर्मुदा ॥१९॥
हत्वा प्रलम्बं श्रीकृष्णो बलेन सह सत्वरम्। गोधनं चारयामास ययौ भाण्डीरमीश्वरः॥२०॥
गच्छन्तं माधवं दृष्ट्वा केशी दैत्येश्वरो बली। वेष्टयामास तं शीघ्रं खुरेण विलिखन्महीम्॥२१॥
मूर्ध्नि कृत्वा हरिं तुष्टो गगनं शतयोजनम्। उत्पात्य भ्रामयामास पपात च महीतले॥२२॥
जग्राह स हरिं पापी चर्वयामास कोपतः। स भग्नदन्तो दैत्यश्च वज्राङ्गचर्वणादहो॥२३॥

उसका चरण कट गया ॥१०॥ शिव के शूल से वह राक्षस मूर्च्छित हो गया । ऋषियों-मुनियों ने भयभीत होकर भगवान् कृष्ण को आशीर्वाद दिया ॥११॥ उसी बीच भगवान् कृष्ण ने अपने ब्रह्मतेज से प्रज्वलित होकर दैत्य का वाहर-भीतर सर्वांग जला दिया, जिससे उस दानव ने निगले हुए सभी लोगों को वमन कर निकाल दिया और अपने प्राणों को भी त्याग दिया ॥१२-१३॥ वली भगवान् ने वकासुर का हनन करके बालकों और गौवों को साथ लेकर केलि-कदम्बों के मनोहर वन में चले गये । उसी बीच वहाँ वृष (वैल) रूप धारण किये प्रलम्बासुर आ पहुँचा । वह वलवान्, महाधूर्त तथा पर्वताकार था । वह दोनों सींगों से कृष्ण को पकड़कर घुमाने लगा । सभी बालक भयभीत होकर रोदन करने लगे; किन्तु वली वलभद्र अपने भ्राता (कृष्ण) को ईश्वर जानकर हँस रहे थे और बालकों को समझा रहे थे कि तुम लोग डरते क्यों हो ? ॥१४-१६॥ इधर मधुसूदन ने स्वयं उसके सींग पकड़कर आकाश में उसे घुमाया और पृथ्वी पर पटक दिया, जिससे भूतल पर गिरते ही उस दैत्येन्द्र के प्राण निकल गये। उसे देखकर सभी बालक हँसने, नाचने और गानें लगे। श्रीकृष्ण प्रलम्वासुर को मारकर शीघ्रता से वलभद्र के साथ गौ चराते हुए भाण्डीर वन में जा पहुँचे। मार्ग में जाते हुए माधव को देखकर वली एवं दैत्येश्वर केशी ने उन्हें शीघ्र घेर लिया। पृथ्वी को खुर से खोदता हुआ वह प्रसन्नता से भगवान् को अपने शिर पर बैठा कर सौ योजन आकाश में उड़ गया । वहाँ चारों ओर उन्हें घुमा कर भूतल पर गिर पड़ा। उस पापी ने क्रोध से भगवान् को पकड़ कर चवाना प्रारंभ किया। किन्तु भगवान् की उस वज्रांग देह को चवाने से उसके सभी दांत टूट गये । अनन्तर श्रीकृष्ण के तेज से दग्ध होकर उसने प्राण छोड़ दिये । स्वर्ग में नगाड़े वजने लगे

श्रीकृष्णतेजसा दग्धः प्राणांस्तत्याज भूतले। स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥२४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र पार्षदा दिव्यरूपिणः। तत्राऽऽजग्मुः स्यन्दनस्था द्विभुजा पीतवाससः ॥२५॥
किरीटिनः कुण्डलिनो वनमालाविभूषिताः। विनोदमुरलीहस्ताः क्वणन्मञ्जीररञ्जिताः ॥२६॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गा गोपवेषधरा वराः। ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकारकाः ॥२७॥
प्रदीप्तं रथमास्थाय रत्नसारविनिर्मितम्। भाण्डीरवनमाजग्मुर्यत्र संनिहितो हरिः ॥२८॥
दिव्यवस्त्रपरीधाना रत्नालंकारभूषिताः। प्रणमय्य हरिं स्तुत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ॥२९॥
मुक्त्वा देहं परित्यज्य वैष्णवाः पुरुषास्त्रयः। संप्राप्य दानवीं योनिं बभुवुः कृष्णपार्षदाः ॥३०॥

नारद उवाच

के ते च दिव्यपुरुषा वैष्णवा दैत्यरूपिणः। कथयस्व महाभाग श्रुतं किं परमाद्भुतम् ॥३१॥

नारायण उवाच

शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। श्रुतं महेशवदनात्सूर्यपर्वणि पुष्करे ॥३२॥
हरेर्गुणप्रसङ्गेन कथयामास शंकरः। संपृष्टो मुनिसंघैश्च मया धर्मेण ब्रह्मणा ॥३३॥
ब्रह्मपुत्र महाभाग कथां भुवनपावनीम्। कथयामास विस्तार्य सावधानं निशामय ॥३४॥

और पुष्प वृष्टि आरंभ हो गई ॥१७-२४॥ उसी बीच दिव्यरूपधारी पार्षदगण रथ पर बैठ कर वहाँ आये। उन सबके दो भुजाएँ थीं। वे पीताम्बरधारी, किरीट, कुण्डल और वनमाला से विभूषित, विनोदार्थ हाथ में मुरली रखे हुए, झंकार करते हुए, नूपुरों से सुशोभित, चन्दन-चर्चित सर्वांग वाले, उत्तम गोपवेष धारण करने वाले, मन्दहास समेत प्रसन्नमुख और भक्तों पर अनुग्रह करने वाले थे ॥२५-२७॥ वे रत्नों के सार भाग के बने हुए प्रदीप्त रथ पर बैठ कर उस भाण्डीर वन में आये, जहाँ भगवान् विराजमान थे। दिव्य वस्त्र पहने और रत्नों के अलंकारों से भूषित वे पार्षदगण भगवान् की सप्रणाम स्तुति करके गोलोक चले गये। वे तीनों पहले के वैष्णव पुरुष थे, जो देह त्यागकर दानवी योनि को प्राप्त हुए थे। वे ही इस समय आकर श्रीकृष्ण के पार्षद हो गये। ॥२५-३०॥

नारद बोले--महाभाग! वे वैष्णव दिव्य पुरुष, जो दैत्यरूप हो गये थे, कौन थे? इस बात को बताइए। यह कैसी अद्भुत बात सुनने को मिली है? ॥३१॥

नारायण बोले--ब्रह्मन्! मैं इस विषय में एक प्राचीन इतिहास कह रहा हूँ, जिसे सूर्यग्रहण के अवसर पर पुष्कर क्षेत्र में शंकर जी के मुख से सुना था, सुनो! भगवान् के गुण-वर्णन-प्रसंग में शिव ने उस समय कहा था, जब मुनि-वृन्दों, धर्मराज, ब्रह्मा और मेरे द्वारा वे पूछे गये थे ॥३२-३३॥ ब्रह्मपुत्र! महाभाग! उन्होंने संसार को पवित्र करने वाली कथा विस्तार से कही थी। तुम सावधान होकर सुनो! गन्धमादन पर्वत

गन्धर्वेशो गन्धवाहः पर्वते गन्धमादने। महांस्तपस्विप्रवरो हरिसेवनतत्परः ॥३५॥
पुत्रा बभूवुश्चत्वारो गन्धर्वप्रवरा मुने। सस्मरुः कृष्णपादाब्जं स्वप्ने ज्ञाने दिवानिशम् ॥३६॥
ते च दुर्वाससः शिष्याः श्रीकृष्णार्चनतत्पराः। नित्यं दत्त्वा च कमलं संपूज्य तं पपुर्जलम् ॥३७॥
वसुदेवः सुहोत्रश्च सुदर्शनसुपार्श्वकौ। चत्वारो वैष्णवश्रेष्ठास्तेपुस्ते पुष्करे तपः ॥३८॥
चिरकालं तपस्तप्त्वा बभूवुः सिद्धमन्त्रिणः। ज्येष्ठो दुर्वाससो योगं संप्राप्य योगिनां वरः ॥३९॥
सिद्धश्चाकृतदारश्च प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। सद्यो देहं परित्यज्य बभूव कृष्णपार्षदः ॥४०॥
एकदा भ्रातरस्ते च जग्मुश्चित्रसरोवरम्। पद्मानि कृष्णपूजार्थमाहर्तुमुदये रवेः ॥४१॥
पद्मानां चयनं कृत्वा गच्छतो वैष्णवान्मुने। दृष्ट्वा निबध्य संजग्मुः सर्वे शंकरकिंकराः ॥४२॥
बलिष्ठा दुर्बलान्धृत्वा जग्मुः शंकरसंनिधिम्। ते सर्वे शंकरं दृष्ट्वा प्रणेमुः शिरसा भुवि ॥४३॥
तानुवाच शिवः शीघ्रं प्रयुज्याऽऽशिषमुत्तमाम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकारकः ॥४४॥

शिव उवाच

के यूयं पद्महर्तारः पार्वत्याश्च सरोवरे। लक्षयक्षै रक्षणीयं पार्वतीव्रतहेतवे ॥४५॥
नित्यं सहस्रकमलं ददाति हरये सती। व्रते त्रैमासिके भक्त्या पतिसौभाग्यवर्धने ॥४६॥

पर गन्धर्वों के अधीश्वर 'गन्धवाह' रहते थे, जो महान् तपस्विश्रेष्ठ एवं भगवान् की सेवा में सदैव लगे रहते थे ॥३४-३५॥ मुने ! उनके चार गन्धर्वश्रेष्ठ पुत्र हुए, जो शयन करते या जागते समय रात-दिन श्री कृष्ण के चरण-कमल का चिन्तन करते थे ॥३६॥ वे दुर्वासा मुनि के शिष्य होकर श्रीकृष्ण की अर्चना करने लगे। वे नित्य भगवान् को कमल पुष्प समर्पित करके पूजनोपरान्त जल पीते थे ॥३७॥ वसुदेव, सुहोत्र, सुदर्शन और सुपार्श्वक उनके नाम थे। ये चारों वैष्णवश्रेष्ठ पुष्कर क्षेत्र में तप करते थे ॥३८॥ वे चिरकाल तक तप करके मंत्रसिद्ध हो गये। ज्येष्ठ वसुदेव, जो योगियों में श्रेष्ठ था, दुर्वासा मुनि द्वारा योग प्राप्त कर सिद्ध हो गया था। उसने विवाह नहीं किया, ब्रह्म-तेज से प्रज्वलित वह सद्यः अपनी देह त्याग कर भगवान् कृष्ण का पार्षद हो गया ॥३९-४०॥ एक बार वे सब भ्रातृगण सूर्योदय होने पर भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा के निमित्त कमल लेने के लिए चित्र सरोवर को गये। मुने ! वहाँ कमलों का संचय करके जाते समय शिव के किंकरो ने उन्हें देखकर उन वैष्णवों को बाँध दिया ॥४१-४२॥ उन बलिष्ठ सेवकों ने उन दुर्बलों को पकड़कर शिव के पास पहुँचा दिया। उन लोगों ने शिव को देखकर उन्हें सिर से भूमि में प्रणाम किया। मन्दहास समेत प्रसन्नमुख और भक्तों पर कृपा करने वाले शिव ने उन्हें शीघ्र उत्तम आशिष देकर उनसे कहा ॥४३-४४॥

शिव बोले—पार्वती के उस सरोवर में कमल का अपहरण करने वाले तुम लोग कौन हो? पार्वती के व्रत की पूर्ति के लिए एक लाख यक्ष उसकी रक्षा करते हैं। पति-सौभाग्य-वृद्धि के लिए अपने त्रैमासिक व्रत में

Funding by IKS-MoE

शिवस्य वचनं श्रुत्वा तमूचुर्वैष्णवा भिया । पुटाञ्जलियुताः सर्वे भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥४७॥

गन्धर्वा ऊचुः

वयं गन्धर्वप्रवरा गन्धवाहसुता विभो। हरये कमलं दत्त्वा पिबामो जलमीश्वर ॥४८॥
वयं न विद्मो हे नाथ पार्वत्या रक्षितं सरः । गृहाण कमलं सर्वं युष्माकं च फलं कुरु ॥४९॥
न दास्यामोऽद्य कमलं पास्यामोऽद्य जलं हर । किंवा कथं न पास्यामस्तुभ्यं दत्तानि तानि च ॥५०॥
नित्यं ध्यात्वा यत्पदाब्जं पद्मेन पूजयामहे । साक्षात्तस्मै प्रदत्त्वा च पद्मं पूता वयं प्रभो ॥५१॥
एकं ब्रह्म ह्यद्वितीयं क्व देहः क्व च रूपवान् । भक्तानुग्रहतो देहो रूपभेदश्च मायया ॥५२॥
किं तु गृहाण पद्मानि त्वमेव मत्प्रभुः प्रभो । यतो नो मानसं पूर्णं तद्रूपं दर्शयाच्युत ॥५३॥
द्विभुजं कमनीयं च किशोरं श्यामसुन्दरम् । विनोदमुरलीहस्तं पीताम्बरधरं परम् ॥५४॥
एकवक्त्रं द्विनयनं चन्दनागुरुचर्चितम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं रत्नालंकारभूषितम् ॥५५॥
कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् । मयूरपिच्छचूडं च मालतीमाल्यभूषितम् ॥५६॥
पारिजातप्रसूनानां मालाराजिविभूषितम् । कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाममनोहरम् ॥५७॥

सती पार्वती नित्य एक सहस्र कमल श्री हरि को भक्तिभाव से समर्पित करती हैं ॥४५-४६॥ शिव की बात सुनकर भयभीत वैष्णवों ने हाथ जोड़े और भक्ति से कन्धे झुका कर कहा ॥४७॥

गन्धर्व बोले—विभो ! हम लोग गन्धर्वश्रेष्ठ एवं गन्धवाह के पुत्र हैं। ईश्वर ! हम लोग भगवान् को कमल पुष्प अर्पित करने के उपरान्त जल ग्रहण करते हैं। हे नाथ ! यह हमें नहीं मालूम था कि यह सरोवर पार्वती द्वारा सुरक्षित है। हे हर ! आप यह सभी कमल ग्रहण करें और अपने व्रत को सफल बनायें ॥४८-४९॥ आज हम लोग कमल अर्पित नहीं करेंगे, वैसे ही जल पी लेंगे। अथवा तुम्हें उन कमलों को तो अर्पित कर ही रहे हैं, इससे जलपान क्यों नहीं कर सकेंगे ? ॥५०॥ प्रभो ! जिसके चरण-कमल का नित्य ध्यान कर कमल द्वारा पूजन करते हैं, उसे साक्षात् कमल समर्पित करके हम लोग पवित्र हो गये हैं ॥५१॥ ब्रह्म तो एक और अद्वितीय है, अतः उसका शरीर और रूप कहाँ ? भक्तों पर कृपा करने के लिए वह देह धारण करता है और माया द्वारा उसका रूप-भेद होता है। अतः हे प्रभो ! इन कमलों को ग्रहण करें, क्योंकि तुम्हीं हमारे स्वामी हो। हे अच्युत ! जिससे हमारा मन परिपूर्ण हो, उस रूप को दिखा दो, जो दो भुजाओं से युक्त, कमनीय, किशोर अवस्था का, साँवले रंग का, सुन्दर, विनोद के लिए हाथों में मुरली लिये हुए, पीताम्बरधारी, एक मुख वाला, दो नेत्रों वाला, चन्दन अगर के लेप से युक्त, हँसमुख, रत्नों के आभूषणों से युक्त, मणिराज कौस्तुभ की कान्ति से अत्यन्त उज्ज्वल वक्षःस्थल वाला, मोरपंख से युक्त चूड़ा वाला, मालती की माला से विभूषित, पारिजात के पुष्पों की मालाओं से सुशोभित, करोड़ों कन्दर्पों के लावण्य का मनोहर लीलाधाम, मन्द मुसकान और बाँकी चितवन द्वारा गोपियों के समूह से देखा जाने वाला, नवीन यौवन से सम्पन्न, राधा के वक्षःस्थल पर विराजमान,

Funding by IKS-MoE

कातरम् कारकम् वा ?

गोपीसंघैर्दृश्यमानं सस्मितैर्वक्रलोचनैः । नवयौवनसंपन्नं राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥५८॥
ब्रह्मादिभिः स्तूयमानं वन्द्यं ध्येयमभीप्सितम् । स्वात्मारामं पूर्णकामं भक्तानुग्रहकातरम् ॥५९॥
इत्युक्त्वा पुरतः शंभोस्तस्थुर्गन्धर्वपुंगवाः । श्रीकृष्णरूपश्रवणात्पुलकाङ्कितविग्रहः ॥६०॥
गन्धर्वाणां वचः श्रुत्वा शिवस्तानित्युवाच ह । श्रीकृष्णरूपश्रवणात्साश्रुपूर्णविलोचनः ॥६१॥
मयैव यूयं विज्ञाता वैष्णवप्रवरा महीम् । पूतां कर्तुं च भ्रमथ चरणाम्भोजरेणुना ॥६२॥
अहं वाञ्छा करोम्येव श्रीकृष्णभक्तदर्शने । समागमो हि साधूनां त्रिषु लोकेषु दुर्लभः ॥६३॥
पार्वत्याश्च सुराणां च सदा यूयं मम प्रियाः । आत्मनश्चाऽऽत्मभक्तेभ्यो वैष्णवाश्च प्रियाश्च नः॥६४॥
किंतु मोघं च न भवेन्मया यत्स्वीकृतं पुरा । तच्छ्रूयतां महाभागाः पार्वतीव्रतकर्मणि ॥६५॥
सरसश्चैव पद्मानि यैर्हृतानि व्रतान्तरे । ते तूर्णमासुरीं योनिं गमिष्यन्ति न संशयः ॥६६॥
न हि श्रीकृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् । संप्राप्य मानवीं योनिं गोलोकं यास्यथ ध्रुवम् ॥६७॥
यूयं श्रीकृष्णरूपं च प्रत्यक्ष द्रष्टुमुत्सुकाः । ध्रुवं द्रक्ष्यथ भो वत्सा वृन्दारण्ये च भारते ॥६८॥
दृष्ट्वा कृष्णं ततो मृत्युं संप्राप्य वैष्णवोत्तमाः । दिव्यं स्यन्दनमारुह्य गमिष्यथ हरेर्गृहम् ॥६९॥
अधुना वाञ्छनीयं च रूपं द्रष्टुमिहोत्सुकाः । तत्सर्वं पश्यतेत्युक्त्वा दर्शयामास तच्छिवः ॥७०॥
रूपं दृष्ट्वा साश्रुनेत्राः प्रणम्य सर्वरूपिणम् । आजग्मुर्दानवीं योनिमिति ते दानवेश्वराः ॥७१॥

ब्रह्मा आदि के द्वारा स्तुति किया जाने वाला, वन्दनीय, चिन्तनीय, वाञ्छनीय स्वात्माराम, पूर्णकाम और भक्तों पर अनुग्रह के लिए कातर रहने वाला है ॥५२-५९॥ ऐसा कहकर वे श्रेष्ठ गन्धर्व शंकर के सामने खड़े हो गये। श्री कृष्ण के रूप का वर्णन सुनकर शिव के शरीर में रोमांच हो आया। उनके नेत्रों में आँसू भर आये। उन्होंने कहा—'मैंने यह जान लिया था कि तुम लोग श्रेष्ठ वैष्णव हो और अपने चरण-कमल की धूलि से पृथ्वी को पवित्र करने के लिए भ्रमण कर रहे हो।' मैं भी भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त को देखने के लिए लालायित रहता हूँ। साधु पुरुषों का समागम तीनों लोकों में दुर्लभ है ॥६०-६३॥ तुम लोग मुझे पार्वती और देवों से भी बढ़कर सदा प्रिय हो। यद्यपि मुझे वैष्णव लोग अपने और अपने भक्तों से अधिक प्रिय हैं; किन्तु मैंने पहले जो प्रतिज्ञा की है वह निष्फल नहीं हो सकेगी। महाभागो ! इसे सुनिये, मैंने कह रखा है कि पार्वती के इस व्रतानुष्ठान में इस सरोवर के कमल का जो अपहरण करेंगे, वे शीघ्र आसुरी योनि में चले जायंगे, इसमें संशय नहीं। श्रीकृष्ण के भक्तों का कहीं भी अशुभ नहीं होता है, अतः मनुष्य-योनि प्राप्त करके तुम लोग निश्चित रूप से गोलोक चले जाओगे। तुम लोग भगवान् श्री कृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहते हो। वत्स ! भारत के वृन्दावन में उत्तम वैष्णव होने के नाते तुम लोग कृष्ण को देखकर मृत्यु प्राप्त करोगे और दिव्य रथ पर बैठ कर भगवान् के घर चले जाओगे ॥६४-६९॥ सम्प्रति तुम लोग अपने जिस अभीष्ट रूप का दर्शन करना चाहते हो, वह सब देखो। इतना कहकर शिव ने उन्हें उस (कृष्ण) रूप का दर्शन कराया, जिसे देखकर गन्धर्वों के नेत्र में प्रेमाश्रु भर

Funding by IKS-MoE

वसुदेवः पुरा मुक्तः सुहोत्रश्च बकासुरः । सुदर्शनः प्रलम्बोऽयं स्वयं केशी सुपार्श्वकः ॥७२॥
हरस्य वरदानेन दृष्ट्वा रूपमनुत्तमम्। मृत्युं संप्राप्य श्रीकृष्णाज्जग्मुस्ते कृष्णमन्दिरम् ॥७३॥
इत्येवं कथितं विप्र हरेश्चरितमद्भुतम् । बककेशिप्रलम्बानां मोक्षणं मोक्षकारकम् ॥७४॥

नारद उवाच

श्रुतं सर्वं महाभाग त्वत्प्रसादाद्यदद्भुतम् । अधुना श्रोतुमिच्छामि पार्वत्या किं कृतं व्रतम् ॥७५॥
को वाऽऽराध्यो व्रतस्यास्य किं फलं नियमश्च कः । कानि द्रव्याणि भगवन्व्रतोपयोगिकानि च ॥७६॥
कतिकालं व्रतं किं वा प्रतिष्ठायां निरूपणम् । सुविचार्यं वद विभो श्रोतुं कौतूहलं मम ॥७७॥

नारायण उवाच

व्रतं त्रैमासिकं नाम पतिसौभाग्यवर्धनम् । आराध्यो भगवान्कृष्णो राधिकासहितो मुने ॥७८॥
विषुवे च समारम्भः समाप्तिर्दक्षिणायने । संयम्य पूर्वदिवसे कृत्वाऽवश्यं हविष्यकम् ॥७९॥
स्नात्वा वैशाखसंक्रान्त्यां संकल्प्य जाह्नवीतटे । घटे मणौ शालग्रामे जले वा पूजयेद्व्रती ॥८०॥

आया। अनन्तर सर्वरूपी भगवान् को प्रणाम करके वे गन्धर्व दानवी योनि में चले गये और दानवों के अधीश्वर हुए। इस प्रकार वसुदेव पहले ही मुक्त हो गया था, सुहोत्र वकासुर था, सुदर्शन प्रलम्ब और स्वयं केशी सुपार्श्वक था। ये सभी शिव के वरदान द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण का परमोत्तम रूप देखकर उन्हीं के द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुए और कृष्ण के लोक को चले गये। हे विप्र ! इस प्रकार भगवान् का अद्भुत चरित, जिसमें बक, केशी और प्रलम्ब को मोक्ष मिला है तथा सबके लिए मोक्षप्रद है, कह दिया ॥७०-७४॥

नारद बोले—महाभाग ! तुम्हारी कृपा से मैंने जो कुछ अद्भुत था सब सुन लिया, सम्प्रति मुझे यह सुनने की इच्छा है कि—पार्वती ने कौन-सा व्रत किया था। उस व्रत के आराध्य देव कौन हैं ? उसका फल क्या है ? और नियम क्या है ? भगवन् ? उस व्रत के लिए उपयोगी द्रव्य कौन-से हैं ? व्रत का समय क्या है ? तथा उसकी प्रतिष्ठा का निरूपण करें। विभो ! भली-भाँति विचार करके बतायें, मुझे सुनने के लिए कुतूहल हो रहा है ॥७५-७७॥

नारायण बोले—मुने ? यह त्रैमासिक नामक व्रत है, जो पतिविषयक सौभाग्य की वृद्धि करता है। इसके राधिका सहित भगवान् श्रीकृष्ण आराध्य देव हैं। उत्तरायण के विषुव काल में इसका आरम्भ होता है और दक्षिणायन सूर्य में इसकी समाप्ति होती है। (व्रतारम्भ के) पूर्व दिन संयम पूर्वक रहते हुए निश्चय ही हविष्य का भोजन करें और दूसरे दिन—वैशाख की संक्रान्ति में गंगा में स्नान करके गंगातट पर व्रतारम्भ का संकल्प

Funding by IKS-MoE

ध्यायेद्भक्त्या च राधेशं संपूज्य पञ्च देवताः । ध्यानं च सामवेदोक्तं निबोध कथयामि ते ॥८१॥
नवीननीरदश्यामं पीतकौशेयवाससम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यसमन्वितम् ॥८२॥
शरत्प्रफुल्लपद्माक्षं मञ्जुलाञ्जनरञ्जितम् । मानसं गोपिकानां च मोहयन्तं मुहुर्मुहुः ॥८३॥
राधया दृश्यमानं च राधावक्षःस्थल स्थितम् । ब्रह्मानन्तेशधर्माद्यैः स्तूयमानमहं भजे ॥८४॥
ध्यात्वा कृष्णं च ध्यानेन तमावाह्य व्रती मुदा । ध्यायेत्तदा राधिकां च ध्यानं मध्यंदिनेर(रि)तम् ॥८५॥
राधां रासेश्वरीं रम्यां रासोल्लासरसोत्सुकाम् । रासमण्डलमध्यस्थां रासाधिष्ठातृदेवताम् ॥८६॥
रासेश्वरोरः स्थलस्थां रसिकां रसिकप्रियाम् । रसिकप्रवरां रम्यां रमां च रमणोत्सुकाम् ॥८७॥
शरद्राजीवराजीनां प्रभामोचनलोचनाम् । वक्रभ्रूभङ्गसंमु(यु)क्तां मञ्जीरेणेव रञ्जिताम् ॥८८॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यामीषद्धास्यमनोहराम् । चारुचम्पकवर्णाभां चन्दनेन विभूषिताम् ॥८९॥
कस्तूरीबिन्दुना सार्धं सिन्दूरबिन्दुना युताम् । चारुपत्रावलीयुक्तां वह्निशुद्धांशुकोज्ज्वलाम् ॥९०॥
सद्रत्नकुण्डलाभ्यां च सुकपोलस्थलोज्ज्वलाम् । रत्नेन्द्रसारहारेण वक्षःस्थलविराजिताम् ॥९१॥
रत्नकङ्कणकेयूरकिङ्किणीरत्नरञ्जिताम् । सद्रत्नसाररचितक्वणन्मञ्जीररञ्जिताम् ॥९२॥
ब्रह्मादिभिश्च सेव्येन श्रीकृष्णेनैव सेविताम् । सर्वेशेन स्तूयमानां सर्वबीजां भजाम्यहम् ॥९३॥

करें । पुनः व्रती को चाहिए कि—कलश, मणि, शालग्राम या जल में पूजन करे । पाँचों देवों के पूजनोपरान्त राधेश भगवान् की भक्ति से ध्यान करे । उनका सामवेदोक्त ध्यान तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥७८-८१॥ वे नूतन जलधर के समान श्याम हैं; पीताम्बरधारी हैं; उनका शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति मन्दमुसुकान युक्त मुख है; शरत्कालीन विकसित कमल की भाँति नेत्र हैं; उनमें सुन्दर अंजन लगा है; वे गोपियों के मन को बार-बार मोहित करते हैं; राधा उनकी ओर देख रही हैं; वे राधा के वक्षः स्थल पर विराजमान हैं; ब्रह्मा, अनन्त, शिव और धर्म आदि देवता उनकी स्तुति करते हैं । मैं उनका ध्यान कर रहा हूँ ॥८२-८४॥ इस प्रकार व्रती ध्यान द्वारा कृष्ण का ध्यान करके प्रसन्नता से उनका आवाहन करे, अनन्तर राधिका का ध्यान करे । वह ध्यान यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा में वर्णित है । राधा रासेश्वरी, रमणीय, रासोल्लास-रसके लिए उत्सुक, रासमण्डल के मध्य में अवस्थित, रास की अधिष्ठात्री देवी, रासेश्वर (कृष्ण) के हृदय पर स्थित, रसिक, रसिक की प्रिया, रसिकों में श्रेष्ठ, रम्य रमा, और रमण (प्रियतम) के लिए उत्सुक हैं ॥८५-८७॥ उनके नेत्र शारदीय कमल-पंक्तियों की कान्ति को चुराने वाले हैं । वे टेढ़ी भौंहों की भंगिमा से युक्त तथा नूपुरों से सुशोभित हैं । शरद पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान उनका मुख मन्द मुसकान के कारण मनोहर है । उनकी (शरीर) कान्ति मनोहर चम्पा के समान है । चन्दन कस्तूरी की बेंदी तथा सिन्दूर-बिन्दु से उनका श्रृङ्गार किया गया है । (कपोलों पर) मनोहर पत्रावली की रचना से युक्त हैं । अग्निविशुद्ध वस्त्र से समुज्ज्वल हैं । उत्तम रत्नों के कुण्डलों से उनका कपोल प्रकाशित हो रहा है । रत्नेन्द्र के सार भाग से सुरचित हार से उनका वक्षःस्थल उद्भासित हो रहा है । रत्नों के बने कंकण, केयूर तथा किंकणी रत्न से उनके अंगों की शोभा हो रही है । उत्तम रत्नों के सार भाग से सुरचित एवं

इति ध्यात्वा च कृष्णेन सहितां तां च पूजयेत् । भक्त्या दत्त्वा प्रतिदिनमुपचारांश्च षोडश ॥९४॥
प्रत्येकं च पृथक्कृत्वा सर्वं दद्याद्व्रती मुदा । सहस्रकमलं दिव्यं शतमष्टोत्तरं मुने ॥९५॥
होमं कुर्याद्व्रती नित्यमष्टोत्तरशताहुतीः । दद्याद्भक्त्या च कृष्णाय स्वाहेत्युच्चार्य यत्नतः ॥९६॥
रसालस्य कदल्याश्च ह्यामं वा पक्वमेव च । नित्यमष्टोत्तरशतं दद्याद्भक्त्याऽक्षतैः फलम् ॥९७॥
नित्यं च भोजयेद्भक्त्या ब्राह्मणानां शतं मुने । होमं कुर्याद्व्रती नित्यमष्टोत्तरशताहुतीः ॥९८॥
दद्याद्भक्त्या च कृष्णाय राधिकासहिताय च । तिलेन हवनं कुर्यादाज्यमिश्रेण नारद ॥९९॥
वाद्यं च वादयेन्नित्यं कारयेद्धरिकीर्तनम् । एवं मासत्रयं कृत्वा प्रतिष्ठां तदनन्तरम् ॥१००॥
प्रतिष्ठादिवसे तत्र विधानं शृणु नारद । कमलानां च नवतिसहस्राण्यक्षतानि च ॥१०१॥
ब्राह्मणानां सहस्राणि नव विप्रेन्द्र यत्नतः । भोजयेत्परमान्नानि स्वादूनि मिष्टकानि च ॥१०२॥
फलं विशाधिकं सप्तशतं नवसहस्रकम् । दद्यान्नानाविधं द्रव्यं नैवेद्यं सुमनोहरम् ॥१०३॥
संस्कृताग्निं च संस्थाप्य होमं कुर्याद्विचक्षणः । नवतिं च सहस्राणि हुत्वाऽऽज्येन तिलेन च ॥१०४॥
सवस्त्रं च सभोज्यं च यज्ञसूत्रफलान्वितम् । गन्धपुष्पार्चितान्भक्त्या दद्यान्नवतिलड्डुकान् ॥१०५॥
दद्यान्नवतिकुम्भांश्च शीततोयप्रपूरितान् । एवंविधं व्रतं कृत्वा दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥१०६॥

झंकार करते हुए केयूरों से उनके चरण सुशोभित हैं। ब्रह्मा आदि देवों के सुसेव्य श्रीकृष्ण स्वयं ही उनकी सेवा करते हैं। सर्वेश्वर के द्वारा उनकी स्तुति की जाती है तथा वे सबकी कारणस्वरूपा हैं। ऐसी राधा का भजन करता हूँ ॥८८-९३ इस प्रकार ध्यान करके श्रीकृष्ण के साथ उनकी अर्चना करे। प्रति-दिन भक्तिभाव से सोलह उपचार चढ़ाकर पूजा करे। व्रती पुरुष प्रत्येक उपचार को पृथक्-पृथक् करके सबको प्रसन्नता पूर्वक अर्पित करे। दिव्य सहस्र कमल लेकर उनकी एक सौ आठ आहुतियाँ दे। भक्तिभाव से 'कृष्णाय स्वाहा' कहकर यत्नपूर्वक आहुतियाँ देनी चाहिए ॥९४-९६॥ आम और केले के कच्चे या पके फल को लेकर उसकी एक सौ आठ आहुतियाँ भक्तिभाव से दे। फल अखण्ड होने चाहिए ॥९७॥ मुने ! एक सौ आठ ब्राह्मणों को नित्य भोजन कराना चाहिए। व्रती को नित्य एक सौ आठ आहुतियों का हवन करना चाहिए ॥९८॥ वे आहुतियाँ राधा सहित कृष्ण को भक्पिूर्वक देनी चाहिए। नारद ! घृत मिश्रित तिल से हवन करे ॥९९॥ नित्य बाजे बजावे और हरिकीर्तन करावे। इस प्रकार तीन मास तक करने के पश्चात् व्रत की प्रतिष्ठा करे ॥१००॥ नारद! उसका विधान मैं बता रहा हूँ, सुनो। नब्बे सहस्र अखण्ड कमल-पुष्पों की आहुति दे और यत्नपूर्वक नौ हजार ब्राह्मणों को उत्तम स्वादिष्ठ एवं मीठे अन्न का भोजन करावे ॥१०१-१०२॥ नव सहस्र सात सौ बीस फल, अनेक भाँति के द्रव्य, अति मनोहर नैवेद्य प्रदान करे। संस्कार युक्त अग्नि के स्थापन पूर्वक हवन करे—-घृत-तिल की नब्बे सहस्र आहुति डाल कर ब्राह्मणों को भक्ति से वस्त्र, भोजन, फल समेत यज्ञोपवीत और गन्ध, पुष्प से शोभित नब्बे लड्डू और शीतल जल से पूर्ण नब्बे कलश समर्पित करे। इस विधान से व्रत समाप्त कर ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करे। दक्षिणा का परिमाण वही

Funding by IKS-MoE

दक्षिणायाः परिमितं वेदेषु यन्निरूपितम् । वृषेन्द्राणां सहस्र च स्वर्णशृङ्गसमन्वितम् ॥१०७॥
इत्येवं कथितं विप्र कृतं त्रैमासिकव्रतम् । विशिष्टसंततिकरं पतिसौभाग्यवर्धनम् ॥१०८॥
व्रतस्यास्य प्रभावेण सौभाग्यं शतजन्मनि । सत्पुत्रजननी सा च भवेज्जन्मशतं ध्रुवम् ॥१०९॥
कदाऽपि न भवेत्तस्या भेदश्च पतिपुत्रयोः । दासतुल्यो भवेत्पुत्रो भर्ता च स्ववचस्करः ॥११०॥
अनुक्षणं भवेद्राधाकृष्णभक्तियुता सती । भवेद्व्रतप्रभावेण प्राप्तज्ञानहरिस्मृतिः ॥१११॥
व्रतं च सामवेदोक्तं कृतं पूर्वमथाऽऽवयोः । सर्वेषां च व्रतानां च श्रेष्ठं शृणु वदामि ते ॥११२॥
स्वायंभुवस्य च मनोः शतरूपाभिधा सती । तया कृतं प्रथमतः कृत्वाऽगस्त्यं पुरोहितम् ॥११३॥
तदा कृतं देवहूत्या चाऽऽकूत्या च कृतं तदा । पुरोहितं पुलस्त्यं च कृत्वा श्रुत्युक्तया मुने ॥११४॥
चकार रोहिणी तत्तु क्रतुं कृत्वा पुरोहितम् । रतिश्चकार तद्भक्त्या गौतमस्तत्पुरोहितः ॥११५॥
अकारि तद्व्रतं भक्त्या तारया गुरुकान्तया । महासंभृतसंभारो वसिष्ठस्तत्पुरोहितः ॥११६॥
तद्दृष्ट्वा गुरुपत्न्याश्च शक्रशच्या कृतं व्रतम् । महासंभृतसंभारस्तत्पुरोधा बृहस्पतिः ॥११७॥
व्रतं चकार स्वाहा च सर्वतोऽपि विलक्षणम् । अतिसंभृतसंभारो मरीचिस्तुत्पुरोहितः ॥११८॥
तद्दृष्ट्वा पार्वती ब्रह्मन्नुवाच शंकरं मुदा । पुटाञ्जलियुता देवी भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥११९॥

है जो वेदों में बताया गया है । सुवर्णभूषित सींग वाले एक सहस्र वृष (बैल) देने चाहिए। विप्र ! इस भाँति मैंने त्रैमासिक व्रत तुम्हें बता दिया, जो योग्य सन्तान देने वाला और पति-सौभाग्य की वृद्धि करने वाला है ॥१०३-१०८॥ इस व्रत के प्रभाव से सौ जन्मों तक सौभाग्य प्राप्त होता है, सौ जन्मों तक वह उत्तम पुत्र उत्पन्न करती है और उसे कभी भी पति-पुत्र का वियोग नहीं होता है । पुत्र दास की भाँति आज्ञाकारी होता है, पति उसकी बातों का पालन करता है और स्वयं वह सती प्रतिक्षण राधा-कृष्ण की भक्ति में निमग्न रहती है। व्रत के प्रभाव से उसको ज्ञान तथा भगवान् का स्मरण होता रहता है ॥१०९-१११॥ पूर्व समय में सामवेदोक्त यह व्रत हम दोनों ने किया था। सभी व्रतों में श्रेष्ठ इस व्रत को जिन लोगों ने सम्पन्न किया उनके नाम तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥११२॥ स्वायम्भुव मुनि की पत्नी शतरूपा ने अगस्त्य महर्षि को पुरोहित बनाकर सर्व प्रथम इस व्रत को सुसम्पन्न किया था। पश्चात् देवहूति और आकूति ने पुलस्त्य को पुरोहित बनाकर किया था। मुने ! रोहिणी ने भी क्रतु को पुरोहित बनाकर इसे सम्पन्न किया। रति ने भी गौतम मुनि को पुरोहित बना कर इस व्रतानुष्ठान को भक्तिपूर्वक पूर्ण किया। गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा ने भक्तिभाव से इसे पूरा किया, जिसके महान् आयोजन में वशिष्ठ जी पुरोहित थे । तारा के महान् आयोजन को देख कर इन्द्राणी ने भी बृहस्पति को पुरोहित रखकर बड़े धूम-धाम से इसे सम्पन्न किया । स्वाहा ने इस विलक्षण व्रत को बहुत बड़ी सामग्री से युक्त मरीचि ऋषि को पुरोहित बनाकर सम्पन्न किया। ब्रह्मन् ! उसे देखकर पार्वती देवी शंकर के समक्ष दोनों हाथ जोड़कर भक्ति से कन्धे झुका कर हर्ष से बोलीं ॥११३-११९॥

पार्वत्युवाच

आज्ञां कुरु जगन्नाथ करोमि व्रतमुत्तमम् । आवयोरिष्टदेवस्य व्रतानां च परं व्रतम् ।।१२०।।
हरेराराधनं नाथ सर्वमङ्गलकारणम् । इष्टं दत्तं श्रुतेः पाठं तीर्थं पृथ्व्याः प्रदक्षिणम् ।।१२१।।
हरेराराधनस्यापि कलां नार्हन्ति षोडशीम् । बहिरभ्यन्तरे यस्य हरिस्मृतिरनुक्षणम् ।।१२२।।
जीवन्मुक्तस्य तस्यैव मुक्तिर्भवति दर्शनात् । तस्य पादाब्जरजा सद्यः पूता वसुंधरा ।।१२३।।
तस्य दर्शनमात्रेण पुनाति भुवनत्रयम् । ब्रह्मा विष्णुश्च धर्मश्च शेषस्त्वं च गणेश्वरः ।।१२४।।
ध्यायं ध्यायं यत्पदाब्जं तेजसा तत्समो महान् । यश्च यं संततं ध्यायेत्स तमाप्नोति निश्चितम् ।।१२५।।
गुणेन तेजसा बुद्धया ज्ञानेन तत्समो भवेत् । कृष्णस्य स्मरणाद्धयानात्तपसा तस्य सेवया ।।१२६।।
मया प्राप्तो हि भगवान्स्वामी वा पुत्र एव च । प्रलब्धं लीलया सर्वं पूर्णं मन्मानसं तदा ।।१२७।।
स्वामी मे त्वादृशः पुत्रौ कार्तिकेयगणेश्वरो । पिता हिमाद्रिः कृष्णांशो मम किं दुर्लभं प्रभो ।।१२८।।
पार्वतीवचनं श्रुत्वा सुप्रीतः शंकरः स्वयम् । प्रहस्योवाच मधुरं पुलकाङ्कितविग्रहः ।।१२९।।

महादेव उवाच

महालक्ष्मीस्वरूपाऽसि किमसाध्यं तवेश्वरि । सर्वसंपत्स्वरूपा त्वमनन्तशक्तिरूपिणी ।।१३०।।

पार्वती बोलीं—हे जगन्नाथ ! आप आज्ञा प्रदान करें, मैं भी परमोत्तम व्रत को सुसम्पन्न करना चाहती हूँ, जो हम दोनों के इष्ट देव के सभी व्रतों में परमोत्तम है। हे नाथ ! भगवान् की आराधना समस्त मङ्गलों की कारणरूपा है। क्योंकि यज्ञ, दान, वेदपाठ, तीर्थ-सेवन और पृथिवी की प्रदक्षिणा ये सभी भगवान् की आराधना की सोलहवीं कला के भी समान नहीं है। जिसके बाहर-भीतर प्रतिक्षण भगवान् का स्मरण बना रहता है, उस जीवन्मुक्त पुरुष का दर्शन करने से ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है। उसके चरण-कमल की धूलि से पृथिवी तुरन्त पवित्र हो जाती है ।।१२०-१२३।। उसके दर्शन मात्र करने से तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं। जिसके चरण-कमल का सतत ध्यान करने से ब्रह्मा, विष्णु, धर्म, शेष, तुम और गणेश तेज में उन्हीं के समान हो गये हैं। जो जिसका सतत ध्यान करता है वह उसे निश्चित ही प्राप्त करता है और गुण, तेज, बुद्धि एवं ज्ञान में उसी के समान हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण के स्मरण, ध्यान, तप और उनकी सेवा करने के नाते ही मैंने भगवान् को स्वामी और पुत्र रूप में प्राप्त किया है। लीला की भाँति मुझे सब कुछ मिल गया है। तब मेरा मन परिपूर्ण है। प्रभो ! तुम्हारे समान स्वामी, गणेश और कार्तिकेय जैसे पुत्र तथा कृष्ण के अंशभूत हिमालय जैसे पिता मुझे प्राप्त हैं। अब मुझे दुर्लभ क्या है ? ।।१२४-१२८।। पार्वती की बात सुन कर शिव जी बहुत प्रसन्न हुए, उनके शरीर में रोमाञ्च हो आया। अनन्तर उन्होंने स्वयं हँसते हुए उनसे कहा ।।१२९।।

महादेव बोले—हे ईश्वरि ! तुम महालक्ष्मी स्वरूप हो, तुम्हें असाध्य क्या हो सकता हैं ? तुम समस्त

Funding by IKS-MoE

त्वं च यस्य गृहे देवि स चैश्वर्यस्य भाजनम्। न लक्ष्मीर्यद्गृहे तस्य जीवनान्मरणं वरम् ॥१३१॥
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वयि भक्त्या शुभप्रदे। संहारसृष्टिकाले च त्वत्प्रसादाद्वयं क्षमाः ॥१३२॥
को वा हिमालयः कोऽहं कौ कार्तिकगणेश्वरौ। त्वद्विहीना अशक्ताश्च त्वया च वयमीश्वराः ॥१३३॥
युक्ताः पतिव्रतायाश्च याः पुराऽऽज्ञाः श्रुतौ श्रुताः। गृहीत्वाऽऽज्ञामीश्वरस्य व्रतं कुरु पतिव्रते ॥१३४॥
व्रतमेतत्कृतं याभिस्ताभ्यः कुरु विलक्षणम्। सनत्कुमारो भगवान्व्रते तेऽस्तु पुरोहितः ॥१३५॥
कमलानां ब्राह्मणानां द्रव्याणां दायकोऽप्यहम्। कुबेरं द्रव्यकोशे च रक्षकं कुरु सुन्दरि ॥१३६॥
व्रते च दानाध्यक्षोऽहं धनदात्री च श्रीः स्वयम्। पाठको वह्निदेवश्च वरुणो जलदायकः ॥१३७॥
वस्तूनां वाहका यक्षास्तदध्यक्षः षडाननः। स्थानसंस्कारकर्त्ता च व्रतेऽत्र पवनः स्वयम् ॥१३८॥
परिवेष्टा स्वयं शक्रश्चन्द्रोऽधिष्ठापको व्रते। सूर्यश्च दाननिर्वक्ता योग्याग्यं यथोचितम् ॥१३९॥
व्रतोपयुक्तं यद्द्रव्यं दत्त्वा नियमितं प्रिये। ततोऽधिकं फलं पुष्पं हरये देहि सुन्दरि ॥१४०॥
व्रते नियमितान्विप्रान्भोजयित्वा ततोऽधिकान्। असंख्यान्ब्राह्मणान्देवि भक्त्या कुरु निमन्त्रणम् ॥१४१॥
समाप्तिदिवसे स्वर्णं रत्नं मुक्तां प्रवालकम्। व्रतोक्तां दक्षिणां दत्त्वा सर्वं देहि द्विजातये ॥१४२॥

सम्पत्ति स्वरूप एवं अनन्त शक्ति स्वरूपा हो। देवि! तुम जिसके घर में स्थित रहो, वह ऐश्वर्य का पात्र हो जाता है। जिसके घर में लक्ष्मी नहीं है, उसका जीवित रहने से मरना ही उत्तम है ॥१३०-१३१॥ शुभप्रदे! मैं, ब्रह्मा और त्रिष्णु तुम्हारी ही भक्ति करते हैं और तुम्हारी कृपा से जगत् की सृष्टि, पालन एवं संहार में समर्थ हुए हैं ॥१३२-१३३॥ हिमालय, मैं और कार्तिकेय एवं गणेश्वर आदि क्या हैं? तुम्हारे बिना हम सभी व्यक्ति असमर्थ हैं और तुम्हारे सहयोग से हम सभी समर्थ हैं। अतः हे पतिव्रते! जो पतिव्रता के योग्य है और जो प्राचीन काल से वेद में सुनी गई हैं, वह आज्ञा परमेश्वर की आज्ञा है। इस ईश्वरीय आज्ञा को स्वीकार करके इस व्रत का पालन करो ॥१३४॥ अव तक जिन स्त्रियों ने इस व्रत का पालन किया है, उन सब की अपेक्षा विलक्षण ढंग से तुम इसका अनुष्ठान करो। तुम्हारे इस व्रत में भगवान् सनत्कुमार पुरोहित रहेगे, कमल, ब्राह्मण एवं द्रव्यों का प्रदाता मैं रहूँगा। हे सुन्दरि! धन-कोष का रक्षक कुवेर होंगे। इस व्रत में मैं दानाध्यक्ष रहूँगा। स्वयं लक्ष्मी धन देने वाली रहेंगी। अग्निदेव (वेद का) गाठ करेंगे। वरुण जलदाता होंगे, वस्तुओं को पहुँचाने का कार्य यक्षगण करेंगे। उनके अध्यक्ष षडानन होंगे। इस व्रत में स्थान का संस्कार (सफाई) स्वयं पवन करेंगे। इन्द्र रसोई परोसने का कार्य करेंगे। चन्द्र अधिष्ठाता होंगे। सूर्य दान का निर्वचन करेंगे; यथा योग्य की यथोचित व्याख्या करेंगे। प्रिये! व्रत के लिए जो उपयोगी और नियमित द्रव्य हो, उसे देकर उससे भी अधिक फल-फूल तुम श्री हरि को समर्पित करो। व्रत में जितने ब्राह्मणों को भोजन कराने का नियम है, उतनों को भोजन कराकर तुम उससे भी अधिक असंख्य ब्राह्मणों को भक्तिभाव से भोजन के लिए निमन्त्रित करो ॥१३५-१४१॥ समाप्ति के दिन ब्राह्मण को सुवर्ण, रत्न, मुक्ता, मूंगा, आदि जो कुछ व्रत-विधान में कहा गया है वह दक्षिणा में देकर सारा धन बाँट देना ॥१४२॥ इतना

इत्युक्त्वा शंकरस्तां च कारयामास तद्व्रतम् । व्रतं चकार सा दुर्गा सर्वाभ्यश्च विलक्षणम् ॥१४३॥
इत्येवं कथितं विप्र पार्वत्या यद्व्रतं कृतम् । रत्नं वोढुमशक्ताश्च ब्राह्मणा पार्वतीव्रते ॥१४४॥
इतिहासः श्रुतः सर्वः प्रकृतं शृणु नारद । श्रीकृष्णबालचरितं नूत्नं नूत्नं पदे पदे ॥१४५॥
हत्वा तान्दानवेन्द्रांश्च शिशुभिः सह गोकुले । जगाम स्वगृहं कृष्णः कुबेरभवनोपमम् ॥१४६॥
सर्वेभ्यो वनवार्ता च प्रोक्ता च शिशुभिर्मुदा । श्रुत्वैवं विस्मिताः सर्वे नन्दो भयमवाप ह ॥१४७॥
आनीय वृद्धान्गोपांश्च गोपिकाः स्थविरास्तथा । युक्तिं चकार तैः सार्धमालोच्य समयोचिताम् ॥१४८॥
कृत्वा युक्तिं च गोपेशस्तत्स्थानं त्यक्तुमुद्यतः । गन्तुं वृन्दावनं सर्वानुवाच तत्क्षणं मुने ॥१४९॥
नन्दाज्ञां च समाकर्ण्य ते सर्वे गन्तुमुद्यताः । गोपाश्च गोपिकाश्चैव बालका बालिकास्तथा ॥१५०॥
कृष्णेन हलिना सार्धं प्रययुर्बालका मुदा । संगीतं च प्रगायन्तो नानवेषसमन्विताः ॥१५१॥
वेणुप्रवादकाः केचित्केचिच्छृङ्गप्रवादकाः । करतालकराः केचिद्वीणाहस्ताश्च केचन ॥१५२॥
शरयन्त्रकराः केचिच्छृङ्गहस्ताश्च केचन । नवपल्लवकर्णाश्च केचिद्गोपालबालकाः ॥१५३॥
केचिन्मुकुलकर्णाश्च पुष्पकर्णाश्च केचन । नवमाल्यकराः केचित्केचिदाजानुमालिनः ॥१५४॥
केचित्पल्लवचूडाश्च पुष्पचूडाश्च केचन । गोपालबालकाः सर्वे विप्रेन्द्र नवकोटयः ॥१५५॥

कह कर शिव ने पार्वती से व्रत करवाया । और दुर्गा ने भी सब की अपेक्षा विलक्षण रूप से व्रत सम्पन्न किया । विप्र ! इस प्रकार मैंने पार्वती के किये हुए व्रत को तुम्हें सुना दिया । नारद ! पार्वती के उस व्रत में ब्राह्मण लोग दक्षिणा द्रव्य का भार (अधिकता के नाते) वहन करने में असमर्थ हो गये थे, ऐसा इतिहास मैंने सुना है। अब प्रसंग की बातें सुनो ! भगवान् श्री कृष्ण की बाल-लीला पद-पद में नवीन प्रतीत होगी ॥१४३-१४५॥ उन दानवेन्द्रों के वध करने के अनन्तर भगवान् बालकों के साथ गोकुल में कुबेर-भवन के समान अपने घर को गये । घर पहुँचने पर सभी बालकों ने वन की सभी बातें बड़ी प्रसन्नता से सबसे कह सुनायी । इसे सुनकर सब लोगों को आश्चर्य हुआ और नन्द भयभीत हुए ॥१४६-१४७॥ उन्होंने वृद्ध गोपों और गोपियों को बुलवा कर उनके साथ सामयिक परामर्श किया । उपाय निश्चित करके गोपेश नन्द वह स्थान छोड़ने के लिए तैयार हो गये । मुने ! उस समय उन्होंने वृन्दावन में जाने के लिए सबसे कहा ॥१४८॥ नन्द की आज्ञा सुनकर वे सब जाने के लिए तैयार हो गये । गोप, गोपी और बालक-बालिकाएँ सभी प्रसन्नता से कृष्ण और बलभद्र के साथ वृन्दावन चले गये । वे लोग विविध वेष बनाकर संगीत गा रहे थे; कुछ वेणु बजा रहे थे; कुछ सींग बजा रहे थे; कोई हाथ में करताल लिये हुए थे; कोई हाथों में वीणा लिये थे; किन्हीं के हाथों में शरयंत्र थे, तो किन्हीं के सींगे । कुछ गोपाल बालकों ने अपने कानों में नवीन पल्लव पहन रखे थे ॥१४९-१५३॥ कितनों ने कानों में पुष्पों की कलियों को धारण कर लिया था और कुछ लोगों ने पुष्पों को रख लिया था । कुछ लोगों के हाथों में नवीन मालायें थीं । कुछ बालकों ने आजानुलम्बिनी वनमाला पहन रखी थी । कुछ बालकों ने पल्लवों तथा फूलों

Funding by IKS-MoE

जग्मुर्गोप्यो वयस्याश्च कोटिशः कोटिशो मुदा । वृद्धाश्च कोटिशस्तत्र बृहच्छोण्यश्च
लत्कुचाः ।।९५६।।
राधिकासहचारिण्यो बाला गोपालिका मुने । ताः सुशीलादयो भव्या नानालंकारभूषिताः ।।१५७।।
दिव्यवस्त्रपरीधानाः सस्मितास्ता ययुर्मुदा । काश्चिदारुह्य शिबिकां रथमारुह्य काश्चन ।।१५८।।
राधा स्यन्दनमारुह्य शातकौम्भपरिच्छदम् । ताभिर्युक्ता ययौ देवी रत्नालंकारभूषिता ।।१५९।।
यशोदा रोहिणी चैव रत्नालंकारभूषिता । ययौ स्यन्दनमारुह्य शातकौम्भपरिच्छदम् ।।१६०।।
नन्दः सुनन्दः श्रीदामा गिरिभानुर्विभाकरः । वीरभानुश्चन्द्रभानुर्गजस्थाः प्रययुर्मुदा ।।१६१।।
श्रीकृष्णबलदेवौ तौ रत्नालंकारभूषितौ । स्वर्णस्यन्दनमास्थाय जग्मतुः परया मुदा ।।१६२।।
कोटिशः कोटिशो गोपा वृद्धाश्च यौवनान्विताः । अश्वस्थाश्च गजस्थाश्च रथस्थाश्चैव केचन ।।१६३।।
गोपा ययुर्मुदा युक्ताश्चोद्धता नन्दकिंकराः । वृषस्था गर्दभस्थाश्च संगीततानतत्पराः ।।१६४।।
अपरा राधिकादास्यस्त्रिसप्तशतकोटयः । मुदाऽन्विताः सस्मिताश्च स्वर्णालंकारभूषिताः ।।१६५।।
काश्चित्सिन्दूरहस्ताश्च काश्चित्कज्जलवाहिकाः । काश्चित्कन्दुकहस्ताश्च काश्चित्पुत्तलि-
काकराः ।।१६६।।
भोगद्रव्यकराः काश्चित्क्रीडाद्रव्यकरा वराः । वेषद्रव्यकराः काश्चित्काश्चिन्मालाकरा वराः ।।१६७।।

से अपनी चोटियाँ सजा रखी थीं । विप्रेन्द्र ! नौ करोड़ गोपाल-बालक और विशाल नितम्बों तथा चंचल कुचों वाली करोड़ों गोपियाँ, सखियाँ तथा वृद्धायें प्रसन्नता से जा रही थीं ।।१५४-१५६।। मुने ! राधा की जो सुशीला आदि गोप-बालायें थीं, वे सुन्दरी, अनेक अलंकारों से भूषित और दिव्य वस्त्र धारण किये हुई थीं । वे मुसकराते हुए जा रही थीं । कुछ स्त्रियाँ पालकी पर बैठी हुई जा रही थीं और कुछ रथ पर बैठी हुई थीं ।।१५७-१५८।। रत्नों के आभूषणों से सुभूषित राधा सुवर्णमय उपकरणों से युक्त रथ पर बैठकर उन सबों के साथ में जा रही थीं । यशोदा और रोहिणी भी रत्नों के अलंकारों से सुसज्जित होकर सुवर्ण-भूषित रथ पर बैठी हुई थीं । नन्द, सुनन्द, श्रीदामा, गिरिभानु, विभाकर, वीरभानु और चन्द्रभानु हाथी पर बैठे आनन्द से जा रहे थे ।।१५९-१६१।। भगवान् श्रीकृष्ण और बलभद्र भी रत्नों के भूषणों से भूषित होकर सुवर्णमय रथ पर बैठे हुए बड़ी प्रसन्नता से जा रहे थे । करोड़ों वृद्ध एवं युवा गोपगण घोड़े, हाथी और रथ पर बैठे जा रहे थे । ।।१६२-१६३।। नन्द के उद्दण्ड मृत्यगण भी बैल एवं गधे पर बैठे गाते-बजाते जा रहे थे ।।१६४।। राधा की अन्य २१ अरब दासियाँ भी बड़े हर्ष से जा रही थीं । वे मुसकराहट से युक्त तथा सुवर्ण के आभूषणों से विभूषित थीं । उनमें से कितनों के हाथ में सिन्दूर थे । कोई काजल लिये जा रही थीं । कोई हाथों में कन्दूक (गेंद) लिये हुई थीं तो किन्हीं के हाथों में पुतलियाँ थीं ।।१६५-१६६।। कोई अपने हाथों में भोगद्रव्य और कोई क्रीड़ाद्रव्य लेकर चल रही थीं । किन्हीं के हाथों में वेष-रचना की सामग्री थी तो किन्हीं के हाथों में पुष्पमालायें । कोई हाथों में बाजे लेकर हर्ष से जा रही थीं । कोई अग्निशुद्ध वस्त्रों को पहन कर जा रही थीं । कुछ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम और द्रव पदार्थ को लिए थीं ।

काश्चिद्वाद्यकहस्ताश्च प्रवयुर्गोपिका मुदा । वह्निशुद्धांकानां च वाहिकाश्चैव काश्चन ॥१६८॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रववाहिकाः । काश्चित्संगीतनिरताः काश्चिच्चित्रकथारताः ॥१६९॥
कोटिशः कोटिशो रम्याः प्रययुः शिबिकान्विताः । कोटिशः कोटिशश्चाश्वाः कोटिशः
कोटिशो रथाः ॥१७०॥
कोटिशः कोटिशश्चैव शकटा द्रव्यपूरिताः। कोटिशः कोटिशश्चैव वृषेन्द्रा द्रव्यवाहकाः ॥१७१॥
कोटिशः कोटिशश्चैव दशलक्षाणि हस्तिनाम् । हस्तिपांकुशयुक्तानि ययुर्वृन्दावनं वनम् ॥१७२॥
सर्वे वृन्दावनं गत्वा दृष्ट्वा शून्यगृहं मुने । वृक्षमूले यथास्थानं तस्थुः सर्वे यथोचितम् ॥१७३॥
उवाच गोपाञ्छ्रीकृष्णो गृहांश्चेष्टतमान्व्रजाः । अद्य संतिष्ठतेत्येवं श्रुत्वा श्रीकृष्णभाषितम् ॥१७४॥
कुत्र सन्ति गृहाः कृष्णेत्येवमूचुस्तु गोपकाः । इति तेषां वचः श्रुत्वा श्रीकृष्णो वाक्य-
मब्रवीत् ॥१७५॥

श्रीकृष्ण उवाच

अत्र स्थाने गृहाः सन्ति प्रसन्ना देवनिर्मिताः । देवप्रीतिं विना शक्ता न हि द्रष्टुं च केचन ॥१७६॥
अद्य तिष्ठत गोपालाः संपूज्य वनदेवताः । प्रातर्यूयं गृहान्रम्यान्द्रक्ष्यथाद्य ध्रुवं मुदा ॥१७७॥
धूपदीपादिनैवेद्यैर्बलिभिः पुष्पचन्दनैः । देवीं च वटमूलस्थां पूजां कुरुत चण्डिकाम् ॥१७८॥

कुछ संगीत में मग्न थीं। कुछ चित्र-विचित्र कथाओं में लीन थीं। इस प्रकार करोड़ों-करोड़ों सुन्दरी गोपियाँ पालकी द्वारा वहाँ गयीं। करोड़ों घोड़े, करोड़ों रथ और करोड़ों गाड़ियाँ द्रव्यों से भरी जा रही थीं। करोड़ों बैल द्रव्यों से लदे जा रहे थे, करोंड़ों हाथी थे, जो महावतों और अंकुशों से युक्त थे। वे सब वृन्दावन को जा रहे थे। वृन्दावन में पहुँचकर सब लोग उसे गृह-शून्य देखकर वहीं वृक्षों के मूल में यथोचित रीति से यथा स्थान ठहर गये। उस समय अत्यन्त अभीष्ट गृह तथा गौओं के ठहरने के स्थान बताते हुए श्रीकृष्ण ने गोपों से कहा—'आज अवस्थित हो हो जाओ'। श्रीकृष्ण की ऐसी बात सुनकर गोपों ने कहा—'कृष्ण ! गृह कहाँ हैं ?' उनकी बात सुनकर श्री कृष्ण ने कहा ॥१६७-१७५॥

श्री कृष्ण बोले—इस स्थान पर बहुत से स्वच्छ गृह हैं, जिन्हें देवों ने बनाया है, किन्तु देवों की प्रसन्नता के बिना उन्हें कोई देख नहीं सकते। ॥१७६॥ अतः—'हे गोपालगण ! वनदेवता की पूजा करके आज यहीं निवास किया जाये। प्रातःकाल तुम लोग हर्ष से उन रमणीक घरों को देखोगे। धूप, दीप, नैवेद्य, भेंट, पुष्प एवं चन्दन के द्वारा इस वटवृक्ष के मूल में रहने वाली चण्डिका देवी की सभी लोग अर्चना करो। कृष्ण की बात सुनकर

Funding by IKS-MoE

कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा गोपाः संपूज्य देवताम् । भुक्त्वा भोगान्दिने रात्रौ तत्रैव सुषुपुर्मुदा ॥१७९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० बकप्रलम्बककेशिवधपूर्वकवृन्दावनगमनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१७०॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

नारायण उवाच

सुप्तेषु व्रजनन्देषु नक्तं वृन्दावने वने। सुनिद्रिते च निद्रेशे मातृवक्षःस्थलस्थिते ॥१॥
निद्रितासु च गोपीषु रम्यतल्पस्थितासु च । यूनां च सुखसंयोगानुषक्तमानसासु च ॥२॥
कासुचिच्छिशुयुक्तासु सखीयुक्तासु कासुचित् । कासुचिच्छकटस्थासु स्यन्दनस्थासु कासुचित् ॥३॥
पूर्णेन्दुकौमुदीयुक्ते स्वर्गादपि मनोहरे । नानाप्रकारकुसुमवायुना सुरभीकृते ॥४॥
सर्वप्राणिनि निश्चेष्टे मुहूर्ते पञ्चमे गते । तत्राऽऽजगाम भगवाञ्छिल्पिनां च गुरोर्गुरुः ॥५॥

गोपों ने दिन में देवी की पूजा करके भोजन आदि किये और रात्रि में हर्ष से वहीं शयन किया १७७-१७९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद के संवाद में बक, प्रलम्ब और केशी दैत्य के वधपूर्वक वृन्दावन गमन वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

अध्याय १७

वृन्दावन-वर्णन

नारायण बोले—वृन्दावन में रात्रि के समय व्रजवासी और नन्द के सो जाने पर माता की गोद में निद्रा के स्वामी श्रीकृष्ण के निद्रामग्न होने पर एवं रम्य शय्या पर युवा पुरुषों के सुख-संयोग में आसक्त मन वाली गोपियों के, जिनमें से कोई शिशुओं को गोद में लेकर, कोई सखियों के साथ सटकर, कोई छकड़ों पर और कोई रथों पर स्थित थीं, सो जाने पर और पूर्ण वृन्दावन के चन्द्रिका से युक्त, स्वर्ग से भी मनोहर, नाना प्रकार के पुष्पों से संस्पृष्ट वायु से सुगन्धित हो जाने पर, सभी प्राणियों के निश्चेष्ट हो जाने पर तथा (रात्रिकालिक) पञ्चम मुहूर्त के बीत जाने पर शिल्पियों के गुरु के भी गुरु भगवान् विश्वकर्मा वहाँ आये ॥१-५॥ उन्होंने दिव्य एवं सूक्ष्म

बिभ्रद्दिव्यांशुकं सूक्ष्मं रत्नमाल्यं मनोहरम् । रत्नालंकारमतुलं श्रीमन्मकरकुण्डलम् ।।६।।
ज्ञानेन वयसा वृद्धो दर्शनीयः किशोरवत् । अतीव सुन्दरः श्रीमान्कामदेवसमप्रभः ।।७।।
विशिष्टशिल्पनिपुणैः सार्धं शिल्पित्रिकोटिभिः । मणिरत्नैर्हेमरत्नैर्लौहास्त्रयुतहस्तकैः ।।८।।
आजग्मुर्यक्षनिकराः कुबेरवनकिंकराः । स्फाटिका रत्नवेषाश्च दीर्घस्कन्धाश्च केचन ।।९।।
पद्मरागकराः केचिदिन्द्रनीलकरा वराः । केचित्स्यमन्तककराश्चन्द्रकान्तकरास्तथा ।।१०।।
सूर्यकान्तकराश्चान्ये प्रभाकरकरा वराः । केचित्परशुहस्ताश्च लोहसारकरा वराः ।।११।।
केचिच्च गन्धसाराणां मणीन्द्राणां च वाहकः । केचिच्चामरहस्ताश्च केचिद्दर्पणवाहकाः ।।१२।।
स्वर्णपात्रटघादीनां वाहकाश्चैव केचन । विश्वकर्मा च सामग्रीं दृष्ट्वा तु सुमनोहराम् ।।१३।।
नगरं कर्तुमारेभे ध्यात्वा कृष्णं शुभेक्षणम् । पञ्चयोजनविस्तीर्णं भारते श्रेष्ठमुत्तमम् ।।१४।।
पुण्यक्षेत्रं तीर्थसारमतिप्रियतमं हरेः । तत्रस्थानां मुमुक्षूणां परं निर्वाणकारणम् ।।१५।।
गोलोकस्य च सोपानं सर्वेषां वाञ्छितप्रदम् । चतुष्कोटिचतुःशालं तत्रैवातिमनोहरम् ।।१६।।
कपाटस्तम्भसोपानसहितैः प्रस्तरैर्वरैः । चित्रपुत्तलिकापुष्पकलशोज्ज्वलशेखरम् ।।१७।।

वस्त्र पहन रखा था । वे रत्नों की माला धारण करने से अति मनोहर, रत्नों के आभूषणों से भूषित, अनुपम, श्रीसम्पन्न, मकराकारकुण्डलधारी, ज्ञान-वयोवृद्ध, किशोर के समान दर्शनीय, कामदेव के समान कान्ति वाले, श्रीमान् एवं अत्यन्त सुन्दर थे ।।६-८।। उनके साथ शिल्प का विशेष ज्ञान रखने वाले तीन करोड़ कारीगर थे । उन सबके हाथों में मणिरत्न, हेमरत्न तथा लौह-निर्मित अस्त्र थे । कुवेर-वन के किंकर यक्ष-समुदाय भी वहाँ आ पहुँचे । वे स्फटिकमणि तथा रत्नमय अलंकारों से विभूषित थे । किन्हीं-किन्हीं के कन्धे बहुत बड़े थे । किन्हीं के हाथों में पद्मरागमणि के ढेर थे, तो किन्हीं के हाथों में इन्द्रनीलमणि के । कुछ यक्षों ने अपने हाथों में स्यमन्तक मणि ले रखी थी और कुछ यक्षों ने चन्द्रकान्तमणि । अन्य बहुत-से यक्षों के हाथों में सूर्यकान्तमणि और चन्द्रकान्त मणि के ढेर प्रकाशित हो रहे थे । किन्हीं के हाथों में फरसे थे तो किन्हीं के हाथों में लोहसार । कोई गन्धसार तथा श्रेष्ठमणि लेकर आये थे तो किन्हीं के हाथ में चँवर थे और कुछ लोग दर्पण, स्वर्णपात्र और स्वर्ण-कलश आदि के बोझ लेकर आये थे । विश्वकर्मा ने अत्यन्त मनोहर सामग्री को देखकर सुन्दर नेत्रों वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करके नगर-निर्माण का कार्य प्रारंभ कर दिया । भारतवर्ष का वह सुन्दर और श्रेष्ठ नगर पाँच योजन विस्तृत था । तीर्थों का सारभूत वह पुण्य क्षेत्र श्री हरि को अत्यन्त प्रिय है । वहाँ मोक्षाभिलाषी होकर रहने वालों को वह निर्वाण की प्राप्ति कराने वाला है ।।९-१५।। वह गोलोक के लिए सोपानरूप तथा सभी लोगों को अभीष्ट प्रदान करने वाला है । वहाँ चार-चार कमरे वाले चार करोड़ भवन बनाये गये थे, जिससे वह नगर अत्यन्त रमणीक प्रतीत होता था ।।१६।। उत्तम पत्थरों से बनाया गया वह विशाल नगर किवाड़ों, खंभों और सोपानों से सुशोभित था । चित्रमयी पुत्तलिकाओं, पुष्पों और कलशों से वहाँ के भवनों के शिखर भाग अत्यन्त प्रकाशमान जान पड़ते थे ।।१७।। पर्वतीय

Funding by IKS-MoE

शैलजाश्मविनिर्माणवेदिप्राङ्गणसंयुतम् । शिलाप्राकारसंयुक्तं प्रचकाराथ लीलया ॥१८॥
यथोचितबृहत्क्षुद्रद्वारद्वयसमन्वितम् । स्फाटिकाकारमणिभिर्मुदा युक्तो विनिर्ममे ॥१९॥
सोपानैर्गन्धसारणां स्तम्भैः शङ्कुविनिर्मितैः । कपाटैर्लोहसाराणं राजतैः कलशोज्ज्वलैः ॥२०॥
वज्रसारनिर्माणप्राकारैः परिशोभितम् । कृत्वाऽऽश्रमं बल्लवानां यथास्थानं यथोचितम् ॥२१॥
वृषभान्वालयं रम्यं कर्तुमारब्धवान्पुनः । प्राकारपरिखायुक्तं चतुर्द्वारान्वितं परम् ॥२२॥
चार्ुविंशच्चतुःशालं महामणिविनिर्मितम् । रत्नसारविकारैश्च तूलिकानिकरैर्वरैः ॥२३॥
सुवर्णकारमणिभिरारोहैरतिसुन्दरैः । लोहसारकपाटैश्च शोभितं चित्रकृत्रिमैः ॥२४॥
मन्दिरे मन्दिरे रम्ये सुवर्णकलशोज्ज्वलम् । तदाश्रमैकदेशे च निर्जनेऽतिमनोहरे ॥२५॥
चारुचम्पकवृक्षाणामुद्यानाभ्यन्तरे मुने । संभोगार्थं कलावत्याः स्वामिना सह कौतुकात् ॥२६॥
विशिष्टेन मणीन्द्रेण चकाराट्टालिकालयम् । युक्तं नवभिरारोहैरिन्द्रनीलविनिर्मितैः ॥२७॥
स्थूणाकपाटनिकरैर्गन्धसारविकारजैः । अत्युच्छ्रितं मनोरम्यं सर्वतोऽपि विलक्षणम् ॥२८॥

नारद उवाच

कलावती का भगवन्कस्य पत्नी मनोहरा । यत्नतो यद्गृहं रम्यं निर्ममे सुरकारुणा ॥२९॥

प्रस्तर-खण्डों से निर्मित वेदिकायें और प्रांगण उस नगर के भवनों की शोभा बढ़ा रहे थे । प्रस्तर-खण्डों के परकोटों से सारा नगर घिरा हुआ था । विश्वकर्मा ने खेल-खेल में ही सारे नगर की रचना कर डाली ॥१८॥ प्रत्येक गृह में यथायोग्य बड़े-छोटे दो दरवाजे थे । हर्ष से युक्त विश्वकर्मा ने स्फटिक जैसे मणियों से उस नगर के भवनों का निर्माण किया था ॥१९॥ गन्धसार (चन्दन) निर्मित सोपानों, शंकु-(कील) रचित खंभों, लोहसार (फौलाद की जंजीर) से बने हुए किवाड़ों, चाँदी के समुज्ज्वल कलशों तथा वज्रसार-निर्मित चहारदीवारियों से उस नगर की अपूर्व शोभा हो रही थी । वहाँ गोपों के लिए यथास्थान और यथायोग्य निवास-स्थान का निर्माण करके विश्वकर्मा ने वृषभानु का सुरम्य गृह बनाना आरम्भ किया । उसके चारों ओर चहारदीवारियाँ और खाइयाँ बनी थीं । चारों दिशाओं में चार दरवाजे थे ॥२०-२२॥ चार-चार कमरों से युक्त बीस भव्य भवन बनाये गये थे । उस सम्पूर्ण भवन का निर्माण महामूल्य मणियों से किया गया था । रत्नसार-रचित सुरम्य तूलिकाओं सुवर्णाकार मणियों द्वारा निर्मित अत्यन्त सुन्दर सोपानों, लोहसार के बने हुए किवाड़ों तथा कृत्रिम चित्रों से वृषभानु-भवन की बड़ी शोभा हो रही थी । वहाँ का प्रत्येक सुरम्य मन्दिर सोने के कलशों से दीदीप्यमान था । उस आश्रम के एक अत्यन्त मनोहर निर्जन प्रदेश में, जो मनोहर चम्पा-वृक्षों के उद्यान के भीतर था, पति सहित कलावती के उपभोग के लिए विश्वकर्मा ने कौतूहलवश एक ऐसी अट्टालिका बनायी थी, जिसका निर्माण विशिष्ट श्रेणी के श्रेष्ठ मणियों द्वारा हुआ था । उसमें इन्द्रनीलमणि के बने हुए नौ सोपान थे । गन्धसार निर्मित खम्भों और कपाटों से वह अत्यन्त ऊँचा मनोरम भवन सब ओर से विलक्षण था ॥२३-२८॥

नारद बोले—भगवन् ! यह मनोहारिणी कलावती कौन थी और किसकी धर्मपत्नी थी, जिसके लिए विश्वकर्मा ने यत्नपूर्वक सुन्दर भवन का निर्माण किया ? ॥२९॥

नारायण उवाच

पितृणां मानसी कन्या कमलांशा कलावती । सुन्दरी वृषभानस्य पतिव्रतपरायणा ।।३०।।
यस्याश्च तनया राधा कृष्णप्राणाधिका प्रिया । श्रीकृष्णार्धांशसंभूता तेन तुल्या च तेजसा ।।३१।।
यस्याश्च चरणाम्भोजरजःपूता वसुंधरा । यस्यां च सुदृढां भक्तिं सन्तो वाञ्छन्ति संततम् ।।३२।।

नारद उवाच

पितृणां मानसीं कन्यां व्रजे तिष्ठन्कथं मुने । मानवः केन पुण्येन कथमाप सुदुर्लभाम् ।।३३।।
वृषभानुर्व्रजपतिः पुराऽऽसीत्को महानहो । कस्य वा केन तपसा राधा कन्या बभूव ह ।।३४।।

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा महर्षिर्ज्ञानिनां वरः । प्रहस्योवाच प्रीत्या तमितिहासं पुरातनम् ।।३५।।

नारायण उवाच

बभूवुः कन्यकास्तिस्रः पितृणां मानसात्पुरा । कलावतीरत्नमालामेनकाश्चातिदुर्लभाः ।।३६।।

नारायण बोले—यह कलावती कमला के अंश से उत्पन्न एवं पितरों की मानसी (मन से उत्पन्न) कन्या है, जो पतिव्रत धर्म में लीन तथा वृषभानु की प्रिया है। उसी की पुत्री राधा हैं, जो कृष्ण को प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। वे श्रीकृष्ण के आधे भाग से उत्पन्न हुई हैं और उन्हीं के समान तेजस्विनी हैं। उनके चरण-कमलों के रज से पृथवी पवित्र हो गयी है, और सन्त लोग उनकी सुदृढ़ भक्ति को निरन्तर चाहते हैं ।।३०-३२।।

नारद बोले—मुने ! व्रज में रहने वाले मनुष्य ने उस अति दुर्लभ पितरों की मानसी कन्या को किस पुण्य द्वारा कैसे प्राप्त किया ? महान् व्रज-पति वृषभानु पूर्व जन्म में कौन थे ? किस तप से राधा उनकी कन्या हुईं ? ।।३३-३४।।

सूत बोले—नारद की बात सुनकर ज्ञानिप्रवर महर्षि नारायण हँसे और बड़े प्रेम से उस प्राचीन इतिहास को कहने लगे ।।३५।।

नारायण बोले—पूर्व समय पितरों के मन द्वारा—कलावती, रत्नमाला, और मेनका—नाम की तीन कन्यायें उत्पन्न हुई थीं, जो अत्यन्त दुर्लभ थीं। उनमें से कामुकी रत्नमाला ने (पतिरूप में) राजा जनक का वरण

रत्नमाला च जनकं वरयामास कामुकी । शैलाधिपं हरेरंशं मेनका सा हिमालयम् ॥३७॥
दुहिता रत्नमालाया अयोनिसंभवा सती । श्रीरामपत्नी श्रीः साक्षात्सीता सत्यपरायणा ॥३८॥
कन्यका मेनकायाश्च पार्वती सा पुरा सती । अयोनिसंभवा सा च हरेर्माया सनातनी ॥३९॥
सा लेभे तपसा देवं हरं नारायणात्मकम् । कलावती सुचन्द्रं च मनुवंशसमुद्भवम् ॥४०॥
स च राजा हरेरंशस्तां संप्राप्य कलावतीम् । मेने गुणवतां श्रेष्ठमात्मानमतिसुन्दरम् ॥४१॥
अहो रूपमहो वेषमहो अस्या नवं वयः । सुकोमलाङ्गं ललितं शरच्चन्द्राधिकाननम् ॥४२॥
गमनं दुर्लभमहो गजखञ्जनगञ्जनम् । कटाक्षैर्मोहितुं शक्ता मुनीन्द्राणां च मानसम् ॥४३॥
श्रोणियुग्मं सुललितं रम्भास्तम्भविनिर्मितम् । स्तनद्वयं सुकठिनमतिपीनोन्नतं मुने ॥४४॥
नितम्बयुगलं चारु रथचक्रविनिर्मितम् । हस्तौ पदौ च रक्तौ च पक्वबिम्बफलाधरम् ॥४५॥
पक्वदाडिमबीजाभं दन्तपङ्क्तिमनोहरम् । शरन्मध्याह्नपद्मानां प्रभामोचनलोचनम् ॥४६॥
भूषणैर्भूषितं रूपं कृतं सद्रत्नभूषणम् । इतीव मत्वा दृष्ट्वा च कामबाणप्रपीडितः ॥४७॥
दिव्यं स्यन्दनमारुह्य कामुक्या सह कामुकः । क्रीडां चकार रहसि स्थाने स्थाने मनोहरे ॥४८॥
रम्यायां मलयद्रोण्यां चन्दनागुरुवायुना । चारुचम्पकपुष्पाणां तल्पे रतिसुखावहे ॥४९॥

किया और मेनका ने हरि के अंश से उत्पन्न शैलाधीश्वर हिमालय को पति स्वीकार किया। रत्नमाला की कन्या सत्यपरायणा सीता थीं, जो अयोनिजा, साक्षात् श्री एवं श्रीरामचन्द्र की पत्नी थीं। मेनका की पुत्री सती पार्वती थीं। वह भी अयोनिजा तथा हरि की माया सनातनी थीं। उन्होंने तप करके नारायण स्वरूप भगवान् शिव को पति रूप में प्राप्त किया। कलावती ने मनुवंश में समुत्पन्न राजा सुनन्द को अपना पति बनाया। भगवान् के अंश से उत्पन्न उस राजा ने कलावती को प्राप्त करके अपने को श्रेष्ठ गुणी और अति सुन्दर माना। वे कलावती की प्रशंसा करते हुए मन ही मन कहते थे—इसका रूप अद्भुत है, वेष आश्चर्यजनक है, नयी अवस्था कैसी सुन्दर है। इसके अंग अति कोमल और सुन्दर हैं, शारदीय चन्द्रमा से अधिक सुन्दर इसका मुख है। इसकी दुर्लभ गति (चाल) गजराज और खञ्जन को भी लज्जित करने वाली है। यह अपने कटाक्षों से मुनीन्द्रों के मन को भी मोहित करने में समर्थ है। अति सुन्दर युगल श्रोणीभाग जैसे कदली-स्तम्भों से बना हो। मुने ! इसके दोनों स्तन अति कठोर, अति स्थूल और उन्नत हैं, रथ के चक्के की भाँति सुन्दर नितम्ब हैं, हाथ और चरण रक्तवर्ण हैं, ओष्ठ पके बिम्बाफल के समान हैं, दाँतों की पंक्तियाँ पके अनार दाने की भाँति अति मनोहर हैं। इसके नेत्र शरत्काल के मध्याह्न कमल की कान्ति को चुराने वाले हैं। भूषणों से भूषित इसके रूप ने उत्तम रत्नों को भूषित किया है। ऐसा मानकर और देख कर राजा काम-वाणों से अत्यन्त पीड़ित हो गया ॥३६-४७॥ अनन्तर दिव्य रथ पर बैठ कर उस कामुक राजा ने कामुक कलावती को साथ लिए प्रत्येक मनोहर स्थान में जाकर एकान्त में उसके साथ सम्भोग किया। रमणीक मलयाचल की तलहटी में, जहाँ चन्दन और अगुरु के सुगन्ध से भरा वायु बह रहा था, सुन्दर चम्पा-पुष्पों की रतिसुखदायिनी शय्या पर, मालती एवं मल्लिका के अतिविकसित वाटिका

मालतीमल्लिकानां च पुष्पोद्यानेऽतिपुष्पिते । पुष्पभद्रानदीतीरे निर्जने केतकीवने ॥५०॥
पश्चिमाब्धितटान्तःस्थकानने जन्तुवर्जिते । नन्दने मन्दरद्रोण्यां कावेरीतीरजे वने ॥५१॥
शैले शैले सुरम्ये च नद्यां नद्यां नदे नदे । द्वीपे द्वीपे तु रहसि स रेमे वामया सह ॥५२॥
नवसंगमसंयोगाद्बुबुधे न दिवानिशम् । एवं वर्षसहस्रं तद्गतमेव मुहूर्तवत् ॥५३॥
कृत्वा विहारं सुचिरं स विरक्तो बभूव ह । जगाम तपसे विन्ध्यशैलं तीर्थं तया सह ॥५४॥
भारतेऽतिप्रशस्यं च पुलहाश्रमसुत्तमम् । तपस्तेपे नृपस्तत्र दिव्यवर्षसहस्रकम् ॥५५॥
मोक्षाकाङ्क्षी निःस्पृहश्च निराहारः कृशोदरः । मूर्च्छामाप मुनिश्रेष्ठ ध्यात्वा कृष्णपदाम्बुजम् ॥५६॥
तद्गात्रव्याप्तवल्मीकं साध्वी दूरं चकार सा । निश्चेष्टितं पतिं दृष्ट्वा त्यक्तं प्राणैश्च पञ्चभिः ॥५७॥
मांसशोणितरिक्तं तमस्थिसंसक्तविग्रहम् । उच्चै रुरोद शोकार्ता निर्जने तु कलावती ॥५८॥
हे नाथ नाथेत्युच्चार्य कृत्वा वक्षसि मूर्च्छितम् । विललाप महादीना पतिव्रतपरायणा ॥५९॥
दृष्ट्वा नृपं निराहारं कृशं धमनिसंयुतम् । श्रुत्वा च रोदनं तस्याः कृपया च कृपानिधिः ॥६०॥
आविर्बभूव जगतां विधाता कमलोद्भवः । क्रोडे कृत्वा च तं तूर्णं रुरोद भगवान्विभुः ॥६१॥
ब्रह्मा कमण्डलुजलेनाऽऽसिच्य नृपविग्रहम् । जीवं संचारयामास ब्रह्मज्ञानेन ब्रह्मवित् ॥६२॥

में, पुष्पभद्रा नदी के तट पर, केतकी के निर्जन वन में, पश्चिमसमुद्रतटवर्ती जीव-जन्तु-शून्य बंगाल में, मन्दराचल पर्वत की तलहटी में स्थित नन्दन वन में, कावेरी नदी के तट पर स्थित वन में, इस प्रकार प्रत्येक रमणीक पर्वत पर प्रत्येक नदी और प्रत्येक नद में तथा प्रत्येक द्वीप के एकान्त स्थान में सुन्दरी के साथ सुख-सम्भोग किया ॥४८-५२॥ उस नवीन समागम में उसे दिन-रात का कुछ भी ज्ञान न रहा। इस प्रकार सहस्र वर्ष मुहूर्त (घड़ी) की भाँति बीत गये ॥५३॥ अत्यन्त चिरकाल तक विहार करने के उपरान्त राजा रति-क्रीड़ा करने से विरक्त हो गया और भारत में अति प्रशस्त एवं पुलह ऋषि के परमोत्तम आश्रम से युक्त विन्ध्याचल तीर्थ में तप करने के लिए स्त्री सहित चला गया। वहाँ पहुँचकर राजा ने मोक्ष की अभिलाषा से इच्छारहित, निराहार तथा क्षीणशरीर होकर दिव्य सहस्र वर्ष तक तप किया। मुनिश्रेष्ठ ! भगवान् कृष्ण के चरण-कमल का ध्यान करते हुए उस राजा को मूर्च्छा आ गयी ॥५४-५६॥ उनके शरीर पर जो बाँबी छा गई थी, उसे उनकी पतिव्रता पत्नी ने दूर किया, किन्तु पति को निश्चेष्ट, पाँचों प्राणों से शून्य, मांस-रक्त से रहित तथा केवल अस्थिचर्मावशिष्टमात्र देखकर शोकाकुल कलावती उस निर्जन प्रदेश में ऊँचे स्वर से रोदन करने लगीं ॥५७-५८॥ उस मूर्च्छित राजा को अपनी गोद में रख कर—'हा नाथ ! हा नाथ !' कहती हुई वह महादीना पतिव्रता विलाप करने लगी। राजा आहार छोड़ देने के कारण सूख गये हैं, उनके शरीर की नस-नाड़ियाँ दिखाई देती हैं—यह देख तथा कलावती का विलाप सुनकर कृपानिधान कमलजन्मा जगत्स्रष्टा ब्रह्मा कृपापूर्वक वहाँ प्रकट हो गये। वे राजा को शीघ्र गोद में उठाकर रोदन करने लगे; फिर ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मा ने अपने कमण्डलु-जल से राजा के शरीर को सींचकर ब्रह्मज्ञान द्वारा उसमें जीव का संचार कर दिया। चेतना प्राप्त होने पर राजा ने

नृपेन्द्रश्चेतनां प्राप्य पुरो दृष्ट्वा प्रजापतिम् । प्रणनाम च तं वृष्ट्वा तं च कामसमप्रभम् ॥६३॥
तमुवाचेति संतुष्टो वरं वृणु यथेप्सितम् । स विधेर्वचनं श्रुत्वा वव्रे निर्वाणमीप्सितम् ॥६४॥
दयानिधे त्वं ददया वरं दातुं समुद्यतः । प्रसन्नवदनः श्रीमान्स्मेराननसरोरुहः ॥६५॥
कृत्वाऽनुमानं मनसि शुष्ककण्ठोष्ठतालुका । तमुवाच सती त्रस्ता वरं दातुं समुद्यतम् ॥६६॥

कलावत्युवाच

यदि मुक्तिं नृपेन्द्राय ददासि कमलोद्भव । अतोऽबलाया हे ब्रह्मन्का गतिर्भविता वद ॥६७॥
विना कान्तं च कान्तानां का शोभा चतुरानन । व्रतं पतिव्रतायाश्च पतिरेव श्रुतौ श्रुतम् ॥६८॥
गुरुश्चाभीष्टदेवश्च तपोधर्ममयः पतिः । सर्वेषां च प्रियतरो न बन्धुः स्वामिनः परः ॥६९॥
सर्वधर्मात्परा ब्रह्मन्पतिसेवा सुदुर्लभा । स्वामिसेवाविहीनायाः सर्वं तन्निष्फलं भवेत् ॥७०॥
व्रतं दानं तपः पूजा जपहोमादिकं च यत् । स्नानं च सर्वतीर्थेषु पृथिव्याश्च प्रदक्षिणम् ॥७१॥
दीक्षा च सर्वयज्ञेषु महादानानि यानि च । पठनं सर्ववेदानां सर्वाणि च तपांसि च ॥७२॥
वेदज्ञानां ब्राह्मणानां भोजनं देवसेवनम् । एतानि स्वामिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥७३॥
स्वामिसेवाविहीना या वदन्ति स्वामिने कटुम् । पतन्ति कालसूत्रे च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥७४॥

अपने सामने ब्रह्मा को देखकर उन्हें प्रणाम किया। प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने भी कामदेव के समान सुन्दर उस राजा से कहा––'यथेच्छ वर माँगो'। ब्रह्मा की बात सुनकर राजा ने कहा––'दयानिधे ! आप श्रीमान् और विकसित कमल की भाँति प्रसन्नमुख होकर यदि दयावश मुझे वर प्रदान करने के लिए तैयार हैं, तो मुझे अभीष्ट निर्वाण पद (मोक्ष) प्रदान करने की कृपा करें।' इसका मन ही मन अनुमान करके रानीके कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये। उस पतिव्रता ने भयभीत होकर वर प्रदान के लिए तैयार ब्रह्मा से कहा ॥५९-६६॥

कलावती बोली––हे कमलोद्भव ! हे ब्रह्मन् ! यदि आप राजा को मुक्त करते हैं तो आप बतायें कि मुझ अबला की क्या गति होगी ? हे चतुरानन ! बिना पति की स्त्रियों की क्या शोभा है ? वेद में सुना गया है कि पतिव्रता स्त्रियों का पति ही व्रत है। तपोधर्ममय पति ही उनका गुरु और अभीष्ट देव है। सभी के लिए पति से बढ़ कर कोई प्रिय बन्धु नहीं है, वह सभी लोगों से अत्यन्त प्रिय होता है। ब्रह्मन् ! अत्यन्त दुर्लभ पति-सेवा सभी धर्मों से बढ़ कर है। पति की सेवा से रहित स्त्रियों का सारा कर्म निष्फल होता है ॥६७-७०॥ व्रत, दान, तप, पूजा और जप होमादि जो कुछ है वह तथा समस्त तीर्थों में स्नान, पृथिवी की प्रदक्षिणा, समस्त यज्ञों की दीक्षा, बड़े-बड़े दान, सम्पूर्ण वेदों का पाठ, सभी भाँति के तप, वेद-निपुण ब्राह्मणों को भोजन-दान और देवताओं की सेवा––ये सभी पति-सेवा की सोलहवीं कला के भी समान नहीं हैं ॥७१-७३॥ जो स्त्री अपने पति की सेवा न करके, उल्टे उसे कटुवचन कहती है, वह चन्द्रमा और सूर्य के समय तक कालसूत्र नामक नरक में रहती है। वहाँ

Funding by IKS-MoE

सर्पप्रमाणाः कृमयो दंशन्ति च दिवानिशम्। संततं विपरीतं च कुर्वन्ति शब्दमुल्बणम् ॥७५॥
मूत्रश्लेष्मपुरीषाणां कुर्वन्ति भक्षणं मुदा। मुखे तासां ददत्येवमुल्कां च यमकिंकराः ॥७६॥
भुक्त्वा भोगं च नरके कृमियोनिं प्रयान्ति ताः। भक्षन्ति जन्मशतकं रक्तमांसपुरीषकम् ॥७७॥
श्रुत्वाऽहं विदुषां वक्त्राद्वेदवाक्येषु निश्चितम्। जानामि किंचिदबला त्वं वेदजनको विभुः ॥७८॥
गुरोर्गुरुश्च विदुषां योगिनां ज्ञानिनां तथा। सर्वज्ञमेवंभूतं त्वां बोधयामि किमुच्यते ॥७९॥
प्राणाधिकोऽयं कान्तोऽयं यदि मुक्तो बभूव ह। मम को रक्षिता ब्रह्मन्धर्मस्य यौवनस्य च ॥८०॥
कौमारे रक्षिता तातो दत्त्वा पात्राय सत्कृती। सर्वदा रक्षिता कान्तस्तदभावे च तत्सुतः ॥८१॥
त्रिष्ववस्थासु नारीणां त्रातारश्च त्रयः स्मृताः। याः स्वतन्त्राश्च ता नष्टाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥८२॥
असत्कुलप्रसूतास्ता कुलटा दुष्टमानसाः। शतजन्मकृतं पुण्यं तासां नश्यति पद्मज ॥८३॥
पुत्रस्नेहो यथा बाल्ये तथा युनि च वार्धके। पतिव्रतानां कान्ते च सर्वकाले समा स्पृहा ॥८४॥
सुते स्तनंधये स्नेहो मातॄणां चातिशोभिते। पतिस्नेहस्य साध्वीनां कलां नार्हति षोडशीम् ॥८५॥
स्तनान्धे स्तनदानान्तं मिष्टान्ने भोजनावधि। कान्ते चित्तं सतीनां च स्वप्ने ज्ञाने च संततम् ॥८६॥

उसे सर्प के समान बड़े-बड़े कीड़े दिन-रात काटते हैं और निरन्तर विपरीत तथा भयंकर शब्द किया करते हैं। वहाँ स्त्रियों को मूत्र, कफ एवं विष्ठा का भोजन करना पड़ता है। यम के दूत उसके मुख में जलती लुआठी डालते हैं ॥७४-७६॥ नरक में भोगों के अनुभव करके वे स्त्रियाँ कीड़े की योनि में उत्पन्न होती हैं। वहाँ सैकडों जन्मों तक रक्त, मांस और विष्ठा का भक्षण करती हैं ॥७७॥ विद्वानों के मुख से मैंने वेद की ऐसी बात सुनी है। मैं अबला होने के नाते थोड़ी ही बातें जानती हूँ और आप तो वेद-जनक, विप्र, विद्वान्, योगी, ज्ञानी तथा गुरु के गुरु हैं। हे अच्युत ! आप ऐसे सर्वज्ञ को मैं क्या बता सकती हूँ ॥७८-७९॥ ब्रह्मन् ! यदि मेरे पति, जो मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हैं, मुक्त कर दिये जायँगे, तो मेरे धर्म और इस यौवन की रक्षा कौन करेगा ? ॥८०॥ (स्त्रियों के लिए) कौमार अवस्था में पिता रक्षक रहता है और युवास्था में किसी सुपात्र को दान करने पर पति सदा रक्षक रहता है एवं उसके अभाव में पुत्र रक्षा करता है ॥८१॥ इस प्रकार स्त्रियों की तीनों अवस्थाओं में तीन रक्षक बताये गये हैं। जो स्त्रियाँ स्वतन्त्र हैं, वे समस्त धर्मों से पृथक् होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं ॥८२॥ ऐसी स्त्रियाँ नीच कुल में उत्पन्न 'कुलटा' (व्यभिचारिणी) और दूषित मन की होती हैं। ब्रह्मन् ! उनके सौ जन्मों का किया हुआ पुण्य नष्ट हो जाता है। पुत्र-स्नेह जिस प्रकार बाल्यावस्था में होता है उसी भाँति युवा और वृद्धावस्था में भी रहता है। उसी प्रकार पति में पतिव्रताओं का प्रेम भी सर्वदा समान रूप से रहता है ॥८३-८४॥ दूध पीते बच्चे पर माताओं का अधिक स्नेह देखा जाता है, किन्तु यह स्नेह पतिव्रताओं के पति-स्नेह की सोलहवीं कला के भी समान नहीं होता ॥८५॥ स्तन पीने वाले बच्चे का स्नेह स्तन पीने तक रहता है, मिठाई के प्रति स्नेह उसके खाने तक रहता है, पर पतिव्रताओं का पति के प्रति स्नेह सोते-जागते सभी समय रहता है ॥८६॥ बन्धु

Funding by IKS-MoE

दुःखान्तो बन्धुविच्छेदः पुत्राणां च ततोऽधिकः। सुदारुणः स्वामिनश्च दुःखं नातः परं स्त्रियाः ॥८७॥
अविदग्धा यथा दग्धा ज्वलदग्नौ विषादने। तथा विदग्धा दग्धा स्याद्विदग्धविरहानले ॥८८॥
नान्ने तृष्णा जले तृष्णा साध्वीनां स्वामिनं विना। विरहाग्नौ मनो दग्धं वह्नौ शुष्कतृणं यथा ॥८९॥
नहि कान्तात्परो बन्धुर्नहि कान्तात्परः प्रियः। नहि कान्तात्परो देवो नहि कान्तात्परो गुरुः ॥९०॥
नहि कान्तात्परो धर्मो नहि कान्तात्परं धनम्। नहि कान्तात्पराः प्राणा नहि कान्तात्परः स्त्रियाः ॥९१॥
निमग्नं कृष्णपादाब्जे वैष्णवानां यथा मनः। यथैकपुत्रे मातुश्च यथा स्त्रीषु च कामिनाम् ॥९२॥
धनेषु कृपणानां च चिरकालार्जितेषु च। यथा भयेषु भीतानां शास्त्रेषु विदुषां यथा ॥९३॥
स्तनादाने शिशूनां च शिल्पेषु शिल्पिनां यथा। यथा जारे पुंश्चलीनां साध्वीनां च तथा प्रिये ॥९४॥
तं विना जीवितुं ब्रह्मन्क्षणमेकं न च क्षमम्। मरणं जीवनं तासां जीवनं मरणाधिकम् ॥९५॥
सद्भर्तृ रहितानां च शोकेन हतचेतसाम्। अन्यशोकनिमग्नानां कालेन पानभोजनात् ॥९६॥
विपरीतः कान्तशोको वर्धते भक्षणादहो। कर्म च्छाया शतीनां च संगिनीनां सती वरा ॥९७॥
इतरे भोगदेहान्ते साध्वी जन्मनि जन्मनि। करोषि चेज्जगद्धातारिमं मुक्तं मया विना ॥९८॥

का वियोग दुःखदायी होता है और पुत्र का वियोग उससे भी अधिक दुःखप्रद होता है किन्तु पति का वियोग अत्यन्त दारुण होता है। स्त्रियों के लिए इससे बढ़कर कोई दुःख ही नहीं है ॥८७॥ जिस प्रकार मूर्ख स्त्री प्रज्वलित अग्नि में या विष खाने पर जल जाती है उसी भाँति चतुर नायिका चतुर पति के विरहाग्नि में जलती रहती है ॥८८॥ पति के बिना सती स्त्रियों को अन्न-जल की भी इच्छा नहीं होती है। उसका मन तो प्रज्वलित अग्नि में सूखे तृण की भाँति विरहाग्नि में जल जाता है ॥८९॥ स्त्रियों के पति से बढ़ कर कोई बन्धु, देवता, गुरु, धर्म, धन, प्राण तथा अन्य कुछ भी नहीं होता है ॥९०-९१॥ जिस प्रकार वैष्णवों के मन भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल में निमग्न रहते हैं, एक पुत्र वाली माता का उस पुत्र में, कामी जनों का स्त्रियों में, कृपणों का चिर काल से अर्जित धनों में, भीतजनों का भय में, विद्वानों का शास्त्रों में, बच्चों का स्तन-पान में, कारीगरों का शिल्पों में और व्यभिचारिणी स्त्रियों का जार (उपपति) में लीन रहता है, उसी भाँति पतिव्रताओं का मन अपने प्रियतम में सदा निमग्न रहता है। ब्रह्मन्! उसके बिना वे एक क्षण भी जीवित रहने में असमर्थ रहती हैं। क्योंकि उत्तम पति के वियोग होने पर तज्जनित शोक से आहत होने वाली स्त्रियों का मरण होना उनका जीवन है और जीवित रहना तो मरण से भी अधिक दुःखप्रद होता है ॥९२-९५ १/२॥ अन्य किसी का शोक होने पर कुछ समय में पान-भोजन द्वारा वह नष्ट हो जाता है किन्तु पति का शोक उससे विपरीत होता है। खान-पान से वह और बढ़ता ही है। सती स्त्रियों का कर्म छाया की भाँति पति का अनुगमन करता है। पत्नियों में सती श्रेष्ठ होती है। अन्य स्त्रियाँ भोग-शरीर तक साथ रहती हैं और पतिव्रता जन्म-जन्मान्तर में भी साथ रहती हैं। अतः

त्वां शप्त्वाऽहं त्वयि विभो पश्य दास्यामि स्त्रीवधम् ॥९९॥
श्रुत्वा कलावतीवाक्यमुवाच विस्मितो विधिः। हितं पीयूषसदृशं भयसंविग्नमानसः ॥१००॥

ब्रह्मोवाच

वत्से मुक्तिं न दास्यामि स्वामिनं च त्वया विना। मुक्तं कर्तुं त्वया सार्धं सांप्रतं
नाहमीश्वरः ॥१०१॥
मातर्मुक्तिर्विना भोगाद्दुर्लभा सर्वसंमता। निर्वाणतां समाप्नोति भोगी भोगविकृन्तने ॥१०२॥
कतिवर्षं स्वर्गभोगं कुरुष्व स्वामिना सह। ततस्तु युवयोर्जन्म भविता भारते सति ॥१०३॥
यदा भविष्यति सती कन्या ते राधिका स्वयम्। जीवन्मुक्तौ तया सार्धं गोलोकं च गमिष्यथः ॥१०४॥
कतिकालं नृपश्रेष्ठ भुङ्क्ष्व भोगं स्त्रिया सह। साध्वी वै सत्त्वयुक्ता च मा मां शप्तुं त्वमर्हसि ॥१०५॥
जीवन्मुक्ताः समाः सन्तः कृष्णपादाब्जमानसाः। वाञ्छन्ति हरिदास्यं च दुर्लभं न च
निर्वृतिम् ॥१०६॥
इत्युक्त्वा तौ वरौ दत्त्वा संतस्थौ पुरतस्तयोः। ययतुस्तौ तं प्रणम्य जगाम स्वालयं विधिः ॥१०७॥
आजग्मतुस्तौ कालेन भुक्त्वा भोगं च भारतम्। परं पुण्यप्रदं दिव्यं ब्रह्मादीनां च वाञ्छितम् ॥१०८॥

हे धातः! हे विभो! यदि मेरे बिना इन्हें तुम मुक्त करते हो तो मैं तुम्हें शाप देकर स्त्री-हत्या का पाप चढ़ा दूंगी ॥९६-९९॥ कलावती की बात सुन कर ब्रह्मा को आश्चर्य हुआ। उन्होंने भयभीतचित्त होकर अमृत के समान हितकर वचन कहा ॥१००॥

ब्रह्मा बोले––वत्स! तुम्हारे बिना पति को मैं मुक्ति नहीं दूंगा और सम्प्रति तुम्हारे साथ उसे मुक्त करने के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ ॥१०१॥ माता! बिना कर्म-भोगों का उपभोग किये मुक्ति प्राप्त होना अति दुर्लभ है, यह सर्वसम्मत है। भोगों के नष्ट होने पर प्राणी निर्वाण पद प्राप्त करता है ॥१०२॥ इसलिए हे सती! पति के साथ रहकर कुछ वर्षों तक तुम स्वर्ग के भोगों का उपभोग करो। पश्चात् भारत में तुम दोनों का जन्म होगा ॥१०३॥ जब सती राधा स्वयं तुम्हारी कन्या होकर प्रकट होंगी, तब तुम दोनों जीवन्मुक्त हो जाओगे और राधा के साथ ही गोलोक में पधारोगे ॥१०४॥ नृपश्रेष्ठ! कुछ दिनों तक स्त्री के साथ भोगों का उपभोग करो। सत्त्व वृत्ति वाली यह तुम्हारी पतिव्रता पत्नी मुझे शाप देने योग्य नहीं है १०५॥ भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल में निरन्तर तन्मय रहने वाले सन्त लोग भगवान् का दुर्लभ दास्य ही चाहते हैं, निर्वाण नहीं ॥१०६॥ इतना कहकर उन दोनों को वर देने के उपरान्त ब्रह्मा राजा और रानी के समक्ष स्थित रहे। ब्रह्मा को प्रणाम करके राजा और रानी स्वर्ग को चले गये। फिर ब्रह्मा भी अपने धाम को गये ॥१०७॥ स्वर्ग में चिरकाल तक सुख भोगने के उपरान्त वे दोनों पति-पत्नी समय पाकर भारतवर्ष में आये, जो अत्यन्त पुण्यदायक,

Funding by IKS-MoE

सुचन्द्रो वृषभानुश्च लभाम जन्म गोकुले । पद्मावत्याश्च जठरे सुरभानस्य रेतसा ।।१०९।।
जातिस्मरो हरेरंशः शुक्लपक्षे यथा शशी । ववर्धानुदिनं तत्र व्रजगेहे व्रजाधिपः ।।११०।।
सर्वज्ञश्च महायोगी हरिपादाब्जमानसः । नन्दबन्धुर्वदान्यश्च रूपवान्गुणवान्सुधीः ।।१११।।
कलावती कान्यकुब्जे बभूवायोनिसंभवा । जातिस्मरा महासाध्वी सुन्दरी कमलाकला ।।११२।।
कान्यकुब्जे नृपश्रेष्ठो भनन्दन उरुक्रमः । स तां संप्राप्य यागान्ते यज्ञकुण्डसमुत्थितम् ।।११३।।
नग्नां हसन्तीं रूपाढ्यां स्तनान्धामिव बालिकाम् । तेजसा प्रज्वलन्तीं च प्रतप्तकनकप्रभाम् ।।११४।।
कृत्वा वक्षसि राजेन्द्रः स्वकान्तायै ददौ मुदा । मालावती स्तनं दत्त्वा तां पुपोष प्रहर्षिता ।।११५।।
तदन्नप्राशनदिने सभा मध्ये शुभे क्षणे । नामरक्षणकाले च वाग्बभूवाशरीरिणी ।।११६।।
कलावतीति कन्याया नाम रक्ष नृपेति च ।।११७।।
इत्येवं वचनं श्रुत्वा तच्चकार महीपतिः । विप्रेभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च बन्दिभ्यश्च धनं ददौ ।।११८।।
सर्वेभ्यो भोजयामास चकार सुमहोत्सवम् । कालेन सा रूपवती यौवनस्था बभूव ह ।।११९।।
अतीव सुन्दरी श्यामा मुनिमानसमोहिनी । चारुचम्पकवर्णाभा शरच्चन्द्रनिभानना ।।१२०।।

दिव्य एवं ब्रह्मा आदि देवों को भी अभीष्ट है ।।१०८।। सुचन्द्र ने गोकुल में जन्म लिया और वहाँ उनका नाम वृषभानु हुआ । वे सुरभानु के वीर्य और पद्मावती के गर्भ से उत्पन्न हुए ।।१०९।। उन्हें पूर्व जन्म की बातों का स्मरण था। वे हरि के अंश थे और जैसे शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बढ़ते हैं, उसी प्रकार वहाँ व्रजधाम में वे व्रजपति दिनानुदिन बढ़ने लगे ।।११०।। वे सर्वज्ञ, महायोगी और भगवान् के चरण-कमल में निमग्नचित्त थे । नन्दबन्धु उदार, रूपवान्, गुणवान् तथा विद्वान् थे ।।१११।। कलावती भी कान्यकुब्ज देश में उत्पन्न हुई। वह भी अयोनिजा, पूर्वजन्म की बातों का स्मरण रखने वाली, महापतिव्रता, सुन्दरी तथा लक्ष्मी की कला थी। कान्यकुब्ज देश में भनन्दन नामक महाबली राजा था । उसने यज्ञ के अन्त में यज्ञकुण्ड से प्रकट हुई दूधपीती, नंगी बालिका के रूप में उसे पाया था । वह सुन्दरी बालिका उस कुण्ड से हँसती हुई निकली थी । उसकी अंग-कान्ति तपाये हुए सुवर्ण के समान थी । वह तेज से देदीप्यमान थी। राजेन्द्र (भनन्दन) ने उसे गोद में लेकर अपनी रानी को हर्ष से दे दिया । कलावती अत्यन्त हर्षित होकर अपना स्तन पान कराकर उसका पालन-पोषण करने लगी ।।११२-११५।। उसके अन्न-प्राशन और नामकरण के दिन शुभ वेला में, जब राजा सज्जनों के बीच बैठे हुये थे, आकाशवाणी हुई—'हे नृप ! इस कन्या का 'कलावती' नामकरण करो, ।।११६-११७।। यह सुनकर राजा ने पुत्री का वही नामकरण किया और उसके उपलक्ष में ब्राह्मणों, भिक्षुकों एवं वन्दीजनों को धन देते हुए, सभी लोगों को भोजन कराया। इस भाँति वह उत्तम महोत्सव सम्पन्न हुआ। समयानुसार वह रूपवती कन्या यौवनपूर्ण हुई। वह अत्यन्त सुन्दरी, श्यामा, मुनियों के भी चित्त को मोहित करने वाली, सुन्दर चम्पा पुष्प के समान अंग वाली, शारदीय चन्द्रमा के समान मुख वाली, मन्द मुसुकान समेत प्रसन्न मुख से युक्त, विकसित कमल की भाँति नेत्र वाली;

Funding by IKS-MoE

ईषद्धास्यप्रन्नास्या प्रफुल्लपद्मलोचना । नितम्बश्रोणिभारार्ता स्तनभारनता सती ॥१२१॥
गच्छन्ती राजमार्गेण गजेन्द्रमन्दगामिनी । ददर्श नन्दः पथि तां गच्छन्तीं च मुदाऽन्वितः ॥१२२॥
जितेन्द्रियश्च ज्ञानी च मूर्च्छामाप तथाऽपि च । त्रस्तो लोकान्पथि गतांस्तूर्णं पप्रच्छ सादरम् ॥१२३॥
गच्छन्ती कस्य कन्येयमिति होवाच तं जनः । भनन्दनस्य नृपतेः कन्या नाम्ना कलावती ॥१२४॥
कमलाकलया कन्या संभूता नृपमन्दिरे । कौतुकेन च गच्छन्ती क्रीडार्थं सखिमन्दिरम् ॥१२५॥
व्रजं व्रज व्रजश्रेष्ठेत्युक्त्वा लोको जगाम ह । प्रहृष्टमानसो नन्दो जगाम राजमन्दिरम् ॥१२६॥
अवरुह्य रथात्तूर्णं विवेश नृपतेः सभाम् । उत्थाय राजा संभाष्य स्वर्णसिंहासनं ददौ ॥१२७॥
इष्टालापं बहुतरं चकार च परस्परम् । विनयावनतो नन्दः संबन्धोक्तिं चकार ह ॥१२८॥

नन्द उवाच

श्रृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि विशेषवचनं शुभम् । संबन्धं कुरु कन्याया विशिष्टेन च सांप्रतम् ॥१२९॥
सुरभानुसुतः श्रीमान्वृषभानुर्व्रजाधिपः । नारायणांशो गुणवान्सुन्दरश्च सुपण्डितः ॥१३०॥
स्थिरयौवनयुक्तश्च योगी जातिस्मरो युवा । कन्या तेऽयोनिसंभूता यज्ञकुण्डसमुद्भवा ॥१३१॥

नितम्ब और श्रोणी के भार से श्रान्त एवं स्तन के भार से कुछ झुकी थी ॥११८-१२१॥ गजेन्द्र की भाँति मन्द-मन्द गमन करती हुई उस सुन्दरी को एक बार नन्द ने राजमार्ग पर देख लिया । वे इतने हर्षविभोर हो गये कि जितेन्द्रिय एवं ज्ञानी होते हुए भी उन्हें मूर्च्छा आ गई । तब डरते-डरते उन्होंने मार्ग में जाने वाले लोगों से सादर पूछा कि 'जाती हुई यह कन्या किसकी है ?' लोगों ने उनसे कहा—'राजा भनन्दन की कलावती नामक यह कन्या है ॥१२२-१२४॥ यह कमला (लक्ष्मी) का कला से राजमहल में उत्पन्न हुई है । सखी के साथ खेलने के लिए कौतुक वश उसके भवन में जा रही है । हे व्रजश्रेष्ठ ! (इसके लिए) आप व्रज चले जाँय ।' इतना कह कर लोग चले गये । अत्यन्त हर्षित नन्द ने (भनन्दनके) राजभवन को गये ॥१२५-१२६॥ रथ से उतर कर उन्होंने शीघ्रता से राजा की सभा में प्रवेश किया । राजा उठकर खड़े हो गये और बातचीत करके उन्हें सुवर्ण के सिंहासन पर बैठाया ॥१२७॥ आपस में बहुत-सी अभीष्ट बातें करने के अनन्तर विनम्र नन्द ने उनसे (विवाह-) सम्बन्ध की बात चलायी ॥१२८॥

नन्द बोले—हे राजेन्द्र ! सुनिए, मैं एक विशेष शुभ की बात कह रहा हूँ । सम्प्रति अपनी कन्या का सम्वन्ध आप एक विशिष्ट पुरुष के साथ स्थापित करें ॥१२९॥ सुरभानु के पुत्र एवं व्रजाधीश्वर श्रीमान् वृषमानु इसके लिए बहुत उपयुक्त हैं, जो नारायण के अंश से उत्पन्न, गुणवान्, सुन्दर, महान् पण्डित, स्थिर-यौवन-पूर्ण, योगी, पूर्ण जन्म की बातों का स्मरण करने वाले एक युवा हैं । तुम्हारी कन्या कलावती भी अयोनिजा, यज्ञकुण्ड से प्रकट, तीनो लोकों को मोहित करने वाली, शान्त स्वभाव वाली और लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न हुई है । वह

Funding by IKS-MoE

त्रैलोक्यमोहिनी शान्ता कमलांशा कलावती। स च योग्यस्त्वद्दुहितुस्तद्योग्या ते च कन्यका ॥ १३२॥
विदग्धाया विदग्धेन संबन्धो गुणवान्नृप । इत्येवमुक्त्वा नन्दस्तु विरराम च संसदि ॥
उवाच तं नृपश्रेष्ठो विनयावनतो मुने ॥१३३॥

भनन्दन उवाच

संबन्धो हि विधिवशो न मे साध्यो व्रजाधिप । प्रजापतिर्योगकर्ता जन्मदाताऽहमेव च ॥१३४॥
का कस्य पत्नी कन्या वा वरः को वा ससाधनः । कर्मानुरूपफलदः सर्वेषां कारणं विधिः ॥१३५॥
भवितव्यं कृतं कर्म तदमोघं श्रुतौ श्रुतम्। अन्यथा निष्फलं सर्वमनीशस्योद्यमो यथा ॥१३६॥
वृषभानुप्रिया धात्रा लिखिता चेत्सुता मम। पुरा भूतैव को वाऽहं केनान्येन निवार्यते ॥१३७॥
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रो विनयानतकंधरः । मिष्टान्नं भोजयामास सादरेण च नारद ॥१३८॥
नृपानुज्ञामुपादाय व्रजराजो व्रजं गतः । गत्वा स कथयामास सुरभानस्य संसदि ॥१३९॥
सुरभानुश्च यत्नेन नन्दनेन च सादरम् । संबन्धं योजयामास गर्गद्वारा च सत्वरम् ॥१४०॥
विवाहकाले राजेन्द्रो विपुलं यौतुकं ददौ । गजरत्नमश्वरत्नं रत्नानि मणिभूषणम् ॥१४१॥
वृषभानुर्मुदा युक्तः प्राप्य तां च कलावतीम् । रेमे सुनिर्जने रम्ये बुबुधे न दिवानिशम् ॥१४२॥

(वृषभानु) आपकी पुत्री के योग्य हैं तथा आपकी पुत्री भी उन्हीं के योग्य हैं ॥१३०-१३२॥ राजन् ! चतुर पुरुष के साथ चतुर कन्या का सम्वन्ध अत्यन्त गुणकारी होता है। इतना कहकर नन्द सभा में चुप हो गये। मुने ! राजा ने विनय-विनम्र होकर उनसे कहा ॥१३३॥

भनन्दन बोले—हे व्रजाधिप ! सम्वन्ध होना दैव के अधीन रहता है, वह मेरे वश की वात नहीं है, क्योंकि सम्वन्ध के कर्ता प्रजापति ब्रह्मा हैं और मैं तो केवल जन्म का दाता हूँ। इसलिए कौन किसकी पत्नी या कन्या है, तथा कौन किसका साधन-सम्पन्न पति है ? क्योंकि कर्मों के अनुरूप फल देने वाले विधाता ही सबके कारण हैं। वेद में सुना है कि किया हुआ कर्म अमोघ (व्यर्थ नहीं) होता है अन्यथा अनधिकारी के उद्यम की भाँति सारा कर्म निष्फल हो जाता है ॥१३४-१३६॥ यदि मेरी कन्या को वृषभानु की प्रिया होना ब्रह्मा ने लिख दिया है, तो वह (कार्य) पहले ही हो चुका है, अव मैं कौन हूँ, और उसे कौन रोक सकता है ? हे नारद ! इतना कहकर राजेन्द्र ने विनय से कंधा झुकाकर नन्द को सादर मिष्टान्न भोजन कराया ॥१३७-१३८॥ अनन्तर व्रजराज नन्द राजा से आज्ञा लेकर व्रज को चले गये। सुरभानु की सभा में पहुँचकर उन्होंने समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥१३९॥ सुरभानु ने नन्द और गर्ग के सहयोग से सादर इस सम्वन्ध को जोड़ा ॥१४०॥ विवाह काल में राजेन्द्र ने प्रचुर दहेज दिया। गजरत्न, अश्वरत्न, अन्यान्य रत्न और मणियों के भूषण दिये ॥१४१॥ कलावती को पाकर वृषभानु ने अति निर्जन प्रदेशों में उसके साथ रमण किया। उन्हें उस समय दिन-रात्रि का

चक्षुर्निमेषविरहाद्व्याकुलं स्वामिना विना । व्याकुलो वृषभानश्च क्षणेन च तया विना ॥१४३॥
जातिस्मरा च सा कन्या मायामानुषरूपिणी। जातिस्मरो हरेरंशो वृषभानो मुदाऽन्वितः ॥१४४॥
बवर्ध च तयोः प्रेम नित्यं नित्यं नवं नवम् । सदा सकामा सा प्रौढा स च कामसमो युवा ॥१४५॥
तयोः कन्या च कालेन राधिका सा बभूव ह। दैवात्सुदामशापेन श्रीकृष्णस्याऽऽज्ञया पुरा ॥१४६॥
अयोनिसंभवा सा च कृष्णप्राणाधिका सती । यस्या दर्शनमात्रेण तौ विमुक्तौ बभूवतुः ॥१४७॥
इतिहासश्च कथितः प्रकृतं शृणु सांप्रतम् । पापेन्धनानां दाहे च ज्वलदग्निशिखोपमः ॥१४८॥
वृषभानाश्रमं गत्वा शिल्पिनां प्रवरो मुदा । स्थानान्तरं विश्वकर्मा जगाम स्वगणैः सह ॥१४९॥
क्रोशमात्रं स्थलं चारु मनसाऽऽलोच्य तत्त्ववित्। आश्रमं कर्तुमारेभे नन्दस्य सुमहात्मनः ॥१५०॥
कृत्वाऽनुमानं बुद्ध्या च सर्वतोऽपि विलक्षणम् । परिखाभिर्गभीराभिश्चतुर्भिः संयुतं वरम् ॥१५१॥
दुर्लङ्घ्याभिर्वैरिभिश्च खनिताभिश्च प्रस्तरैः। पुष्पोद्यानैः पुष्पिताभिः पारावारेषु पुष्पितैः ॥१५२॥
चारुचम्पकवृक्षैश्च पुष्पितैः सुमनोहरैः । परितो वासिताभिश्च सुगन्धिवायुना मुने ॥१५३॥
आम्रैर्गुडालैः पनसैः खर्जूरैर्नारिकेलकैः । दाडिमैः श्रीफलैर्भृङ्गैर्जम्बीरैर्नागरङ्गकैः ॥१५४॥
तुङ्गैराम्रातकैर्जम्बुसमूहैश्च फलान्वितैः । कदलीनां केतकीनां कदम्बानां कदम्बकैः ॥१५५॥

ज्ञान नहीं रहा ॥१४२॥ पलक भाँजने मात्र समय तक भी पति का वियोग होने पर कलावती व्याकुल हो जाती थीं और वृषभानु भी उसके विना क्षण मात्र में आकुल हो जाते थे ॥१४३॥ माया से मनुष्य रूप धारण करने वाली वह कलावती कन्या पूर्व जन्म का सदा स्मरण रखती थी। उसी भाँति हरि के अंश से समुत्पन्न वृषभानु भी जन्मान्तरीय स्मरण रखने वाले तथा हर्षयुक्त थे॥१४४॥ उन दोनों—पति-पत्नी का प्रेम नित्य नवीन-नवीन होकर बढ़ रहा था। वह प्रौढ़ा कन्या सदा कामुकी बनी रहती थी और वह युवा भी काम के समान था॥१४५॥ समय बीतने पर उन्हीं दोनों की पुत्री राधिका हुयीं। दैवयोग से सुदामा पार्षद के शाप वश भगवान् श्री कृष्ण की आज्ञा से कृष्णप्राणाधिका सती राधा अयोनिजा के रूप में प्रकट हुईं। उनके दर्शन मात्र से उन दोनों दम्पति को मुक्ति प्राप्त हो गयी ॥१४६-१४७॥ इस प्रकार इतिहास कहा गया; अब प्रसंग की बात सुनो। उक्त इतिहास पाप रूपी ईंधन को जलाने के लिए प्रज्वलित अग्नि की शिखा की भाँति है॥१४८॥ शिल्प-श्रेष्ठ विश्वकर्मा वृषभानु के आश्रम पर जाकर वहाँ से अपने गणों समेत दूसरे स्थान पर गये ॥१४९॥ वहाँ तत्त्ववेत्ता विश्वकर्मा ने मन ही मन एक कोस लंबे-चौड़े एक सुन्दर स्थान का विचार करके महात्मा नन्द का भवन बनाना आरम्भ किया ॥१५०॥ अपनी बुद्धि से अनुमान करके उन्होंने नन्द का भवन सबसे विलक्षण बनाया। उसके चारों ओर गहरी खाइयाँ थीं, जो शत्रुओं से दुर्लङ्घ्य तथा पत्थरों से संयुक्त थीं। दोनों तटों पर पुष्पों के उद्यान थे, जिनके कारण वे पुष्पित लगती थीं और सुन्दर चम्पा के वृक्ष तटों पर खिले हुए थे। उन्हें छूकर बहने वाला वायु उन परिखाओं को सब ओर से सुवासित कर रहा था। तटवर्ती आम, सुपारी, कटहल, खजूर, नारियल, अनार, श्रीफल (वेल), भृङ्ग (इलायची), नीबू, नारङ्गी, ऊँचे आम्रातक (आमड़ा), जामुन, केले, केवड़े और कदम्ब-समूह आदि फूले-फले वृक्षों से वे

Funding by IKS-MoE

सर्वतः शोभिताभिश्च फलैस्तैः पुष्पितैरहो । क्रीडार्हाभिर्निगूढाभिर्वाञ्छिताभिश्च सर्वदा ॥१५६॥
परिखानां रहःस्थाने चकार मार्गमुत्तमम् । दुर्गमं परवर्गाणां स्वानां च सुगमं सदा ॥१५७॥
संकेतेन मणिस्तम्भैश्छादितैः स्वल्पपाथसा । स्तम्भसीमाकृतमहो न संकीर्णं न विस्तृतम् ॥१५८॥
परिखोपरिभागे च प्राकारं सुमनोहरम् । धनुःशतप्रमाणं च चकारातिसमुच्छ्रितम् ॥१५९॥
प्रस्तरस्य प्रमाणं च पञ्चविंशतिहस्तकम् । सिन्दूराकारमणिभिर्निर्मितं चातिसुन्दरम् ॥१६०॥
बाह्ये द्वाभ्यां च संयुक्तमन्तरे सप्तभिस्तथा । द्वार्भिश्च संनिरुद्धाभिर्मणिसारकपाटकैः ॥१६१॥
हरिन्मणीनां कलशैश्चित्रयुक्तैर्विराजितम् । मणिसारविकारैश्च कपाटैश्च सुशोभितम् ॥१६२॥
स्वर्णसारविनिर्माणकलशोज्ज्वलशेखरम् । नन्दालयं विनिर्माय बभ्राम नगरं पुनः ॥१६३॥
राजमार्गांश्च विविधान्स च चारूंश्चकार ह । रक्तभानुविकारैश्च वेदिभिश्च सुपत्तनैः ॥१६४॥
पारावारे च परितो निबद्धांश्च मनोहरान् । वाणिज्यार्हैश्च वणिजां परितो मणिमण्डपैः ॥१६५॥
सर्वतो दक्षिणे वामे ज्वलद्भिश्च विराजितान् । ततो वृन्दावनं गत्वा निर्ममे रासमण्डलम् ॥१६६॥
सुन्दरं मण्डलाकारं मणिप्राकारसंयुतम् । परितो योजनायामं मणिवेदिभिरन्वितम् ॥१६७॥

खाइयाँ चारों ओर सुशोभित थीं। वे सदा वृक्षों से ढकी होने के कारण जल-क्रीडा के योग्य थीं, अतएव वाञ्छनीय थीं ॥१५१-१५६॥ उन खाइयों के एकान्त प्रदेश में उत्तम मार्ग बनाया, जो शत्रुओं के लिए सदा दुर्गम एवं अपने लोगों के लिए सुलभ था।१५७॥ संकेत द्वारा मणियों के स्तम्भों से आच्छादित, स्वल्प जल से सुशोभित एवं स्तम्भों से उस (मार्ग) की सीमा बनी थी, जो न संकुचित और न विस्तृत ही थी ॥१५८॥ परिखा के ऊपरी भाग में अत्यन्त सुन्दर चहारदीवारी बनी थीं, जो सौ धनुष प्रमाण ऊँची थी। उसमें लगा हुआ एक-एक पत्थर पचीस-पचीस हाथ लंबा था। सिन्दूराकार मणियों द्वारा निर्मित वह प्राकार अति सुन्दर दिखाई देता था। ॥१५९-१६०॥ उसके बाहर दो दरवाजे थे और भीतर सात दरवाजे थे। उनमें मणि के सारभाग के बने किवाड़ लगे थे। नन्द के भवन में हरे रंग की मणियों के चित्र-भूषित कलश लगे थे। दरवाजे मणि के सार भाग के बने किवाड़ों से भूषित थे॥१६१-१६२॥ नन्द-भवन का सिखर भाग सुवर्ण के सार भाग से बने कलशों से समुज्ज्वल (चमक रहा) था। ऐसे भवन का निर्माण करके विश्वकर्मा नगर में घूमने लगे ॥१६३॥ उन्होंने नाना प्रकार के मनोहर राजमार्ग बनाये। रक्तभानु मणि की बनी हुई बेदियों तथा सुन्दर पत्तनों से वे मार्ग सुशोभित रहते थे ॥१६४॥ उन्हें आर-पार दोनों ओर से बाँधकर पक्का बनाया गया था, जिससे वे बड़े मनोहर लगते थे। राजमार्ग के दोनों ओर मणिमय मण्डप बने हुए थे, जो वैश्यों के वाणिज्य-व्यवसाय के उपयोग में आने योग्य थे॥१६५॥ वे मण्डप दायें-बायें सब ओर से प्रकाशित हो उन राजमार्गों को भी प्रकाश पहुँचाते थे। अनन्तर वृन्दावन में विश्वकर्मा ने सुन्दर, गोलाकार और मणिमय परकोटों से युक्त रासमण्डल का निर्माण किया, जो सब ओर से एक-एक योजन विस्तृत था। उसमें स्थान-स्थान पर मणिमय वेदिकायें बनी हुई थीं ॥१६६-१६७॥ मणिसार-रचित नौ करोड़ मण्डल उस रास-मण्डल की शोभा

Funding by IKS-MoE

मणिसारविकारैश्च मण्डपैर्नवकोटिभिः । शृङ्गारार्हैश्च चित्राढ्यै रतितल्पसमन्वितैः ॥१६८॥
नानाजातिप्रसूनानां वायुना सुरभीकृतैः । रत्नप्रदीपसंयुक्तैः सुवर्णकलशोज्ज्वलैः ॥१६९॥
पुष्पोद्यानैः पुष्पितैश्च सरोभिश्च सुशोभितम् । रासस्थलं विनिर्माय जगामान्यत्स्थलं पुरः ॥१७०॥
दृष्ट्वा वृन्दावनं रम्यं परितुष्टो बभूव ह। वृन्दावनाभ्यन्तरे च स्थाने स्थाने सुनिर्जने ॥१७१॥
कृत्वा परिमितं बुद्धया मानसाऽऽलोच्य यत्नतः । विलक्षणानि रम्याणि तत्र त्रिंशद्वनानि च ॥१७२॥
राधामाधवयोरेव क्रीडार्थं च विनिर्ममे। ततो मधुवनाभ्याशे निर्जनेऽतिमनोहरे ॥१७३॥
वटमूलसमीपे च सरसः पश्चिमे तटे । चम्पकोद्यानपूर्वायां केतकीवनमध्यतः ॥१७४॥
पुनस्तयोश्च क्रीडार्थं चकार रत्नमण्डपम् । चतुर्भिर्वेदिकाभिश्च परीतमतिसुन्दरम् ॥१७५॥
सद्रत्नसाररचितै राजितं तूलिकाशतैः । अमूल्यरत्नरचितैर्नानाचित्रेण चित्रितैः ॥१७६॥
कपाटैर्नवभिर्युक्तं नवद्वारैर्मनोहरैः । रत्नेन्द्रचित्रकलशैः कृत्रिमैश्च त्रिकोटिभिः ॥१७७॥
परितः परितो भित्त्यामूर्ध्वं च परिशोभितम् । महामणीन्द्रविकृतैरारोहैर्नवभिर्वृतम् ॥१७८॥
सद्रत्नसाररचितकलशोज्ज्वलशेखरम् । पताकातोरणैर्युक्तं शोभितं श्वेतचामरैः ॥१७९॥
सर्वतः पुरतो दीप्तममूल्यरत्नदर्पणैः । धनुःप्रमाणशतकमूर्ध्वमग्निशिखोपमम् ॥१८०॥

बढ़ाते थे। वे शृंगार के योग्य, चित्रों से सुसज्जित और रति-शय्याओं से सम्पन्न थे ॥१६८॥ नाना जाति के पुष्पों का सुगन्ध लेकर बहता हुआ वायु उन मण्डपों को सुवासित करता था। उनमें रत्नमय प्रदीप जलते थे। सुवर्णमय कलश उनकी उज्ज्वलता बढ़ा रहे थे ॥१६९॥ पुष्पों से भरे हुए उद्यानों तथा सरोवरों से शोभित रासस्थल का निर्माण करके विश्वकर्मा दूसरे स्थान को गये ॥१७०॥ रमणीय वृन्दावन को देखकर वे बहुत सन्तुष्ट हुए। वृन्दावन के भीतर जगह-जगह एकान्त स्थान में मन-बुद्धि से विचार और निश्चय करके उन्होंने वहाँ तीस रमणीय एवं विलक्षण वनों का निर्माण किया ॥१७१-१७२॥ वे केवल राधा-माधव की ही क्रीड़ा के लिए बनाये गये थे। पश्चात् मधुवन के भीतर अति मनोहर निर्जन स्थान में वट वृक्ष के मूलभाग के समीप सरोवर के पश्चिम तट पर चम्पापुष्पवाटिका के पूर्व एवं केतकीवन के मध्य भाग में उन दोनों के क्रीडार्थ पुनः एक रत्न-मण्डप बना, जो चार वेदियों से घिरा हुआ और अत्यन्त सुन्दर था ॥१७३-१७५॥ उत्तम रत्नों के सार भाग से सुरचित सैकड़ों तूलिकाओं से विराजित, अमूल्य रत्नों द्वारा रचित अनेक चित्रों से चित्रित नौ जोड़े कपाटों और नौ मनोहर दरवाजों से वह रत्न-मण्डप युक्त था। उसकी दीवारों के दोनों बगल में और ऊपर भी श्रेष्ठ रत्नों द्वारा रचित कृत्रिम चित्रमय तीन करोड़ कलश उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह मणीन्द्रों के नौ सोपानों से सुसज्जित था। उत्तम रत्नों के सार भाग से बने कलशों से मण्डप का शिखर भाग जगमगा रहा था। पताका, तोरण और श्वेत चामरों से वह भूषित था। उसमें सब ओर अमूल्य रत्नमय दर्पण लगे थे, जिनके कारण सबको अपने सामने की ओर से ही वह मण्डप दीप्तिमान् दिखाई देता था। वह सौ धनुष ऊपर तक अग्निशिखा के समान प्रकाश-

Funding by IKS-MoE

शतहस्तप्रमाणं च प्रस्तारं वर्तुलाकृतिम् । शोभितं रत्नतल्पैश्च तदभ्यन्तरमुत्तमम् ॥१८१॥
वह्निशुद्धांशुकैर्वस्त्रैर्मालाजालविचित्रितैः । पारिजातप्रसूनानां माल्योपधानसंयुतैः ॥१८२॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैः सुरभीकृतम् । नवशृङ्गारयोग्यैश्च कामवर्धनकारिभिः ॥१८३॥
मालतीचम्पकानां च पुष्पराजिभिरन्वितम् । सकर्पूरैश्च ताम्बूलैः सद्रत्नपात्रसंस्थितैः ॥१८४॥
वज्रसारेण खचितैर्मुक्ताजालविलम्बिभिः । रत्नसारघटाकीर्णं [1]रत्नपीठैः सुसंयुतम् ॥१८५॥
रत्नसिंहासनैर्युक्तं रत्नचित्रेण चित्रितैः । क्षरितैश्चन्द्रकान्तैश्च सुसिक्तं जलबिन्दुभिः ॥१८६॥
शीतवासिततोयेन संयुक्तं भोगवस्तुभिः । कृत्वा रतिगृहं रम्यं नगरं च पुनर्ययौ ॥१८७॥
यानि येषां मन्दिराणि तन्नामानि लिलेख सः । मुदा युक्तो विश्वकर्मा शिष्यैर्यक्षगणैः सह ॥१८८॥
निद्रेशं निद्रितं नत्वा प्रययौ स्वालयं मुने । सर्वत्रैवं सुकृतिनां समस्तं भगवत्कृपा ॥१८९॥
नेहाऽऽश्चर्यं च नगरं बभूवेशेच्छया भुवि । इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमङ्गलम् ॥
सुखदं पातकहरं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१९०॥

पुञ्ज फैला रहा था । वह सौ हाथ विस्तृत तथा गोलाकार बना था । उसका उत्तम भीतरी भाग रत्नों के पलंगों से शोभित था ॥१७६-१८१॥ उन पलंगों पर अग्नि-विशुद्ध वस्त्र बिछे थे । मालाओं के समूह से सुसज्जित होकर वे विचित्र शोभा धारण करते थे । पारिजात के पुष्पों की मालाओं के बने तकिये उन पर रखे गये थे ॥१८२॥ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से वह भवन सुगन्धित था । उसमें मालती और चम्पा के पुष्पों की मालायें रखी थीं । नूतन शृंगार के योग्य तथा पारस्परिक प्रेम की वृद्धि करने वाले कपूर युक्त ताम्बूल उत्तम रत्नों के पात्र में रखे गये थे ॥१८३-१८४॥ वहाँ रत्नों की बनी हुई बहुत-सी चौकियाँ थीं जिनमें हीरे जड़े थे और मोतियों की झालर लटक रही थीं । रत्नसार निर्मित घटों से भी वह भरा था ॥१८५॥ वह रत्नों के चित्रों से चित्रित रत्न-सिंहासनों से युक्त चन्द्रकान्त मणियों के द्रवीभूत जलबिन्दुओं से सुसिक्त, शीतल-सुगन्धित जल और भोग की वस्तुओं से परिपूर्ण था । इस प्रकार रमणीय रतिगृह का निर्माण करके विश्वकर्मा पुनः नगर में गये ॥१८६-१८७॥ जिन लोगों के जो-जो भवन थे, उनमें उनके नाम उन्होंने लिख दिये । इस कार्य में उनके शिष्य तथा यक्षगण उनकी सहायता करते थे ॥१८८॥ मुने ! उस समय निद्राधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण को निद्रित अवस्था में ही नमस्कार करके विश्वकर्मा अपने घर चले गये । पुण्यात्माओं के लिए इसी भाँति सर्वत्र सुखोपभोग प्रस्तुत रहता है । यह सब भगवत्कृपा है । यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि भगवान् की इच्छा से ही भूतल पर ऐसे नगर का निर्माण हुआ । इस प्रकार मैंने भगवान् का समस्त मङ्गल चरित जो सुखप्रद एवं पातकों का विनाशक है, सुना दिया । अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥१८९-१९०॥

---

[1] क. रत्नाङ्घ्रिपीठ सं० ।

नारद उवाच

कथं वृन्दावनं नाम काननस्यास्य भारते। व्युत्पत्तिरस्य संज्ञा वा तत्त्वं वद सुतत्त्ववित् ॥१९१॥

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा ऋषिर्नारायणो मुदा। प्रहस्योवाच निखिलं तत्त्वमेव पुरातनम् ॥१९२॥

नारायण उवाच

पुरा केदारनृपतिः सप्तद्वीपपतिः स्वयम् । आसीत्सत्ययुगे ब्रह्मन्सत्यधर्मरतः सदा ॥१९३॥
स रेमे सह नारीभिः पुत्रपौत्रगणैः सह । पुत्रानिव प्रजाः सर्वाः पालयामास धार्मिकः ॥१९४॥
कृत्वा क्रतुशतं राजा लेभे नेन्द्रत्वमीप्सितम् । कृत्वा नानाविधं पुण्यं फलकाङ्क्षी न च स्वयम् ॥१९५॥
नित्यं नैमित्तिकं सर्वं श्रीकृष्णप्रीतिपूर्वकम् । केदारतुल्यो राजेन्द्रो न भूतो भविता पुनः ॥१९६॥
पुत्रेषु राज्यं संन्यस्य प्रियां त्रैलोक्यमोहिनीम् । जैगीषव्योपदेशेन जगाम तपसे वनम् ॥१९७॥
हरेरैकान्तिको भक्तो ध्यायते संततं हरिम्। शश्वत्सुदर्शनं चक्रमस्ति यत्संनिधौ मुने ॥१९८॥
चिरं तप्त्वा मुनिश्रेष्ठो गोलोकं च जगाम सः । केदारं नाम तीर्थं च तन्नाम्ना च बभूव ह ॥१९९॥

नारद बोले—हे सुतत्त्वों के वेत्ता ! आप मुझे यह बताने की कृपा करें कि—भारत के इस वन का नाम 'वृन्दावन' क्यों हुआ ? इसकी व्युत्पत्ति एवं संज्ञा क्या है ? ॥१९१॥

सूत बोले—नारद की बात सुनकर नारायण ऋषि ने हर्ष से हँसकर निखिल प्राचीन तत्त्व को बताना आरम्भ किया ॥१९२॥

नारायण बोले—ब्रह्मन् ! पहले सत्य युग में केदार नामक एक राजा था, जो स्वयं सातों द्वीपों का अधीश्वर और सदा सत्य धर्म में निमग्न रहता था। स्त्रियों और पुत्र-पौत्र गण समेत वह अपना सुखी जीवन व्यतीत कर रहा था। धार्मिक राजा पुत्रों के समान प्रजाओं का पालन-पोषण करता था। ॥१९३-१९४॥ राजा ने सौ यज्ञों को सम्पन्न करके भी वाञ्छनीय इन्द्र पद को स्वीकार नहीं किया। यद्यपि वह अनेक भाँति का पुण्योपार्जन करता था, किन्तु स्वयं फल की इच्छा नहीं रखता था ॥१९५॥ श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिए ही उसका सारा नित्य-नैमित्तिक कार्य होता था। राजा केदार के समान कोई भूप न हुआ और न पुनः होगा ॥१९६॥ मुनि जैगीषव्य के उपदेश से वह राजा राज्य और तीनों लोकों को मोहित करने वाली पत्नी (का भार) पुत्रों को सौंपकर वन में तप करने के लिए चला गया ॥१९७॥ भगवान् का अनन्य भक्त राजा निरन्तर भगवान् का ही ध्यान करता रहता था। मुने ! सुदर्शन चक्र निरन्तर उसके पास ही रहता था। वह मुनिवर चिरकाल तक तप करके गोलोक चला गया। उसके नाम पर केदार नामक तीर्थ बन गया, जहाँ आज भी मरे हुए प्राणी को तुरन्त और निश्चित ही मोक्ष मिलता है। उसकी वृन्दा नाम की कन्या लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न एवं तपस्विनी थी। योगशास्त्र में निपुण होने के नाते उस कन्या ने

Funding by IKS-MoE

तत्राद्यापि मृतः प्राणी सद्यो मुक्तो भवेद् ध्रुवम् । कमलांशा तस्य कन्या नाम्ना वृन्दा तपस्विनी॥२००॥
न वव्रे सा वरं कंचिद्योगशास्त्रविशारदा । दत्तो दुर्वाससा तस्यै हरेर्मन्त्रः सुदुर्लभः ॥२०१॥
सा विरक्ता गृहं त्यक्त्वा जगाम तपसे वनम् । षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तेपे सुनिर्जने ॥२०२॥
आविर्बभूव श्रीकृष्णस्तत्पुरो भक्तवत्सलः । प्रसन्नवदनः श्रीमान्वरं वृण्वित्युवाच सः ॥२०३॥
दृष्ट्वा सा राधिकाकान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम् । मूर्च्छां संप्राप सा सद्यः कामबाणप्रपीडिता ॥२०४॥
सा च शीघ्रं वरं वव्रे पतिस्त्वं मे भवेति च । ओमित्युक्त्वा च रहसि चिरं रेमे तया सह ॥२०५॥
सा जगाम च गोलोकं कृष्णेन सह कौतुकात् । राधासमा सा सौभाग्याद्गोपीश्रेष्ठा बभूव ह ॥२०६॥
वृन्दा यत्र तपस्तेपे तत्तु वृन्दावनं स्मृतम् । वृन्दयाऽत्र कृता क्रीडा तेन वा मुनिपुंगव ॥२०७॥
अथान्यं चेतिहासं च शृणुष्व वत्स पुण्यदम् । येन वृन्दावनं नाम निबोध कथयामि ते ॥२०८॥
कुशध्वजस्य कन्ये द्वे धर्मशास्त्रविशारदे । तुलसीवेदवत्यौ च विरक्तं भवकर्मणि ॥२०९॥
तपस्तप्त्वा वेदवती प्राप नारायणं परम् । सीता जनककन्या सा सर्वत्र परिकीर्तिता ॥२१०॥
तुलसी च तपस्तप्त्वा वाञ्छां कृत्वा हरिं प्रति । दैवाद्दुर्वाससः शापात्प्राप्य शङ्खासुरं पतिम् ॥२११॥

किसी भी पुरुष का पति रूप में वरण नहीं किया था । दुर्वासा ने उसे भगवान् का अति दुर्लभ मन्त्र प्रदान किया, जिससे वह विरक्त होकर—गृह आकर वन में तप करने के लिए चली गयी। उस निर्जन प्रदेश में उसने साठ सहस्र वर्ष तक तप किया ॥१९८-२०२॥ अनन्तर भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उसके सामने प्रकट हो गये । प्रसन्नमुख श्रीमान् भगवान् ने कहा—'वरदान माँगो ।' किन्तु सुन्दर शरीर वाले शान्त राधिकाकान्त को देखते ही वह काम के बाणों से अति पीडित होकर तुरन्त मूर्च्छित हो गयी ॥२०३-२०४॥ पश्चात् चेतना प्राप्त होने पर उसने शीघ्रता से कहा 'तुम मेरे पति हो जाओ ।' भगवान् ने इसे स्वीकार कर उसके साथ एकान्त में चिर-काल तक रमण किया । उपरान्त कौतुक वश वह भगवान् श्री कृष्ण के साथ गोलोक चली गयी और राधा के समान श्रेष्ठ सौभाग्यशालिनी गोपी हुई ॥२०५-२०६॥ उसी वृन्दा ने जहाँ तप किया था, वही वृन्दावन कहा जाता है । अथवा मुनिवर ! वृन्दा ने यहाँ क्रीडा की थी, इसलिए इसका 'वृन्दावन' नाम पड़ा है ॥२०७॥ हे वत्स ! इसका एक अन्य भी पुण्यप्रद इतिहास तुम्हें सुना रहा हूँ, जिससे इसका वृन्दावन नाम पड़ा है, सुनो ॥२०८॥ कुशध्वज के तुलसी और वेदमती नामक दो कन्यायें थीं, जो धर्मशास्त्र में निपुण एवं संसार से विरक्त थीं । उसमें वेदवती ने तप करके नारायण को पति रूप में प्राप्त किया । वह जनक-कन्या सीता के नाम से सर्वत्र विख्यात है ॥२०९॥ तुलसी ने भी भगवान् के लिए इच्छुक होकर घोर तप किया, किन्तु दुर्वासा के शाप वश उसे शङ्खासुर को पति रूप में वरण करना पड़ा ॥२०९-२११॥ पश्चात् मनोहर कमलाकान्त भगवान् को पति रूप में

पश्चात्संप्राप्य कमलाकान्तं कान्तं मनोहरम् । सा चैव हरिशापेन वृक्षरूपा सुरेश्वरी ॥२१२॥
तस्याः शापेन च हरिः शालग्रामो बभूव ह । तथा तस्थौ च सततं शिलावक्षसि सुन्दरी ॥२१३॥
विस्तीर्णं कथितं सर्वं तुलसीचरितं च ते । तथाऽपि च प्रसङ्गेन किंचिदुक्तं मुने पुनः ॥२१४॥
तस्याश्च तपसः स्थानं तदिदं च तपोधन । तेन वृन्दावनं नाम प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२१५॥
अथवा ते प्रवक्ष्यामि परं हेत्वन्तरं शृणु । येन वृन्दावनं नाम पुण्यक्षेत्रस्य भारते ॥२१६॥
राधाषोडशनाम्नां च वृन्दानाम श्रुतौ श्रुतम् । तस्याः क्रीडावनं रम्यं तेन वृन्दावनं स्मृतम् ॥२१७॥
गोलोके प्रीतये तस्याः कृष्णेन निर्मितं पुरा । क्रीडार्थं भुवि तन्नाम्ना वनं वृन्दावनं स्मृतम् ॥२१८॥

नारद उवाच

कानि षोडश नमानि राधिकाया जगद्गुरो । तानि मे वद शिष्याय श्रोतुं कौतूहलं मम ॥२१९॥
श्रुतं नाम्नां सहस्रं च सामवेदे निरूपितम् । तथाऽपि श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो नामानि षोडश ॥२२०॥
अभ्यन्तराणि तेषां वा तदन्यान्येव मे विभो । अहो पुण्यस्वरूपाणि भक्तानां वाञ्छितानि च ॥२२१॥
नामानि तेषां व्युत्पत्तिं सर्वेषां दुर्लभानि च । पावनानि जगन्मातुर्जगतामपि कारणम् ॥२२२॥

प्राप्त किया। वह सुरेश्वरी भगवान् के शाप से वृक्ष रूप हो गयी थी और उसके शाप से भगवान् ने शालग्राम का रूप धारण किया। किन्तु वह सुन्दरी शालग्राम भगवान् के वक्षःस्थल पर तुलसी के रूप में निरन्तर रहने लगी ॥२१०-२१३॥ मुने ! तुलसी का विस्तृत चरित्र तुम्हें बता दिया था, यहाँ भी प्रसंगवश कुछ चर्चा कर दी ॥२१४॥ तपोधन ! उसके तप करने का भी यही स्थान है, इससे भी मनीषी लोग इसे 'वृन्दावन' कहते हैं ॥२१५॥ अथवा तुम्हें इसका एक और अन्य कारण बता रहा हुँ, जिससे भारत में इस पुण्य क्षेत्र का वृन्दावन नाम पड़ा है, सुनो ॥२१६॥ राधिका जी के सोलह नामों में से उनका एक नाम वृन्दा भी है, ऐसा वेद में सुना गया है। उन्हीं का यह रमणीक क्रीडा-वन है, इससे यह वृन्दावन कहा जाता है ॥२१७॥ पूर्व काल में भगवान् श्रीकृष्ण ने गोलोक में राधा के प्रसन्नार्थ उसे बनाया था और यहाँ भूतल में भी उनके क्रीडार्थ उसी नाम से वृन्दावन बनाया है, इसलिए भी इसे 'वृन्दावन' कहा जाता है ॥२१८॥

नारद बोले—जगद्गुरो ! राधिका के वे सोलह नाम कौन हैं ? उनके सुनने का मुझे कौतूहल हो रहा है, अतः मुझ शिष्य को बताने की कृपा करें ॥२१९॥ यद्यपि सामवेद में उनके सहस्र नाम सुने हैं तथापि आप से उनके सोलह नाम मैं सुनना चाहता हूँ ॥२२०॥ विभो ! चाहे ये नाम उन नामों के ही अन्तर्गत हों या उनसे भिन्न हों, मुझे अवश्य बतायें, क्योंकि ये नाम पुण्यस्वरूप एवं भक्तों को अति अभीष्ट हैं ॥२२१॥ जगन्माता राधिका के सर्वदुर्लभ उन नामों की व्युत्पत्ति भी बताइए, क्योंकि ये नाम पावन एवं जगत् के कारण हैं ॥२२२॥

Funding by IKS-MoE

नारायण उवाच

राधा रासेश्वरी रासवासिनी रसिकेश्वरी । कृष्णप्राणाधिका कृष्णप्रिया च कृष्णरूपिणी ॥२२३॥
कृष्णवामाङ्गसंभूता परमानन्दरूपिणी । कृष्णा वृन्दावनी वृन्दा वृन्दावनविनोदिनी ॥२२४॥
चन्द्रावती चन्द्रकान्ता शतचन्द्रनिभानना । नामान्येतानि साराणि तेषामभ्यन्तराणि च ॥२२५॥
राधेत्येवं च संसिद्धा राकारो दानवाचकः । स्वयं निर्वाणदात्री या सा राधा परिकीर्तिता ॥२२६॥
रा च रासे च भवनाद्धा एव धारणादहो । हरेरालिङ्गनादारात्तेन राधा प्रकीर्तिता ॥२२७॥
रासेश्वरस्य पत्नीयं तेन रासेश्वरी स्मृता । रासे च वासो यस्याश्च तेन सा रासवासिनी ॥२२८॥
सर्वासां रसिकानां च देवीनामीश्वरी परा । प्रवदन्ति पुरा सन्तस्तेन तां रसिकेश्वरीम् ॥२२९॥
प्राणाधिका प्रेयसी सा कृष्णस्य परमात्मनः । कृष्णप्राणाधिका सा च कृष्णेन परिकीर्तिता ॥२३०॥
कृष्णस्यातिप्रिया कान्ता कृष्णो वाऽस्याः प्रियः सदा । सर्वैर्देवगणैरुक्ता तेन कृष्णप्रिया स्मृता ॥२३१॥
कृष्णरूपं संविधातुं[1] या शक्ता चावलीलया । सर्वांशैः कृष्णसदृशी तेन कृष्णस्वरूपिणी ॥२३२॥
वामाङ्गार्धेन कृष्णस्य या संभूता परा सती । कृष्णवामाङ्गसंभूता तेन कृष्णेन कीर्तिता ॥२३३॥

नारायण बोले—राधा, रासेश्वरी, रासवासिनी, रसिकेश्वरी, कृष्णप्राणाधिका, कृष्णप्रिया, कृष्णस्वरूपिणी, कृष्णवामाङ्गसंभूता, परमानन्दरूपिणी, कृष्णा, वृन्दावनी, वृन्दा, वृन्दावनविनोदिनी, चन्द्रावती, चन्द्रकान्ता और शतचन्द्रनिभानना—ये सारभूत सोलह नाम उन सहस्र नामों के ही अन्तर्गत हैं ॥२२३-२२५॥ 'राधा' नाम में धा का अर्थ है संसिद्धि (निर्वाण) तथा 'रा' दानवाचक है। जो स्वयं निर्वाण (मोक्ष) प्रदान करने वाली हैं, वे 'राधा' कही गई हैं ॥२२६॥ 'रा' रासवाची है, 'धा' धारणवाची है और दूर या समीप से हरि का आलिंगन करने से वे राधा कहलायीं ॥२२७॥ रासेश्वर की पत्नी होने के कारण उन्हें 'रासेश्वरी' कहा गया है। रास में निवास करने के कारण उन्हें 'रासवासिनी' कहते हैं ॥२२८॥ समस्त रसिक देवियों की श्रेष्ठ अधीश्वरी होने के कारण उन्हें पुरातन सन्त 'रसिकेश्वरी' कहते हैं ॥२२९ परमात्मा श्रीकृष्ण के लिए वे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं, अतः कृष्ण ने स्वयं उन्हें 'कृष्णप्राणाधिका' कहा है ॥२३०॥ वे कृष्ण की अति प्रिय कान्ता हैं और उनके कृष्ण सदा प्रिय हैं इसलिए समस्त देवों ने उन्हें 'कृष्णप्रिया' कहा है ॥२३१॥ लीलापूर्वक कृष्णरूप धारण कर लेने और सभी अंशों में कृष्ण के समान होने के कारण उन्हें 'कृष्णस्वरूपिणी' कहा जाता है ॥२३२॥ सर्वश्रेष्ठ पतिव्रता राधा श्रीकृष्ण के बाँयें अर्द्धाङ्ग से उत्पन्न हुई हैं, इसीलिए कृष्ण ने स्वयं उन्हें

---

[1] ख० संनिधा० ।

परमानन्दराशिश्च स्वयं मूर्तिमती सती। श्रुतिभिः कीर्तिता तेन परमानन्दरूपिणी ॥२३४॥
कृषिर्मोक्षार्थवचनो न एवोत्कृष्टवाचकः । आकारो दातृवचनस्तेन कृष्णा प्रकीर्तिता ॥२३५॥
अस्ति वृन्दावनं यस्यास्तेन वृन्दावनी स्मृता । वृन्दावनस्याधिदेवी तेन वाऽथ प्रकीर्तिता ॥२३६॥
संघः सखीनां वृन्दः स्यादकारोऽप्यतिवाचकः । सखिवृन्दोऽस्ति यस्याश्च सा वृन्दा परिकीर्तिता ॥२३७॥
वृन्दावने विनोदश्च सोऽस्या ह्यस्ति च तत्र वै । वेदा वदन्ति तां तेन वृन्दावनविनोदिनीम् ॥२३८॥
नखचन्द्रावलीवक्त्रचन्द्रोऽस्ति यत्र संततम् । तेन चन्द्रावली सा च कृष्णेन परिकीर्तिता ॥२३९॥
कान्तिरस्ति चन्द्रतुल्या सदा यस्या दिवानिशम् । सा चन्द्रकान्ता हर्षेण हरिणा परिकीर्तिता ॥२४०॥
शरच्चन्द्रप्रभा यस्याश्चाऽऽननेऽस्ति दिवानिशम् । मुनिना कीर्तिता तेन शरच्चन्द्रप्रभानना ॥२४१॥
इदं षोडशनामोक्तमर्थव्याख्यानसंयुतम् । नारायणेन यद्दत्तं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे ॥२४२॥
ब्रह्मणा च पुरा दत्तं धर्माय जनकाय मे । धर्मेण कृपया दत्तं मह्यमादित्यपर्वणि ॥२४३॥
पुष्करे च महातीर्थे पुण्याहे देवसंसदि । राधाप्रभावप्रस्तावे सुप्रसन्नेन चेतसा ॥२४४॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं तुभ्यं दत्तं मया मुने । निन्दकायावैष्णवाय न दातव्यं महामुने ॥२४५॥

'कृष्णवामांगसम्भूता' कहा है ॥२३३ सती राधा स्वयं परमानन्द की मूर्तिमती राशि हैं, इसीलिए वेदों ने उन्हें 'परमानन्दरूपिणी' कहा है ॥२३४॥ मोक्ष के अर्थ में 'कृष्' शब्द प्रयुक्त है, 'ण' शब्द उत्कृष्टार्थक है और आकार का अर्थ दाता है, अतः उन्हें 'कृष्णा' कहा गया है ॥२३५॥ वृन्दावन उन्हीं का है अतः उन्हें 'वृन्दावनी,' कहा गया है। अथवा वृन्दावन की अधीश्वरी देवी होने के कारण वे 'वृन्दावनी' कही जाती हैं ॥२३६॥ सखियों का समुदाय वृन्द कहलाता है और अकार का अर्थ है सत्ता। उनके समूह-की-समूह सखियाँ है, अतः 'वृन्दा' कहा जाता है ॥२३७॥ वृन्दावन में उन्हें अधिक विनोद प्राप्त होता है इसलिए वेद उन्हें 'वृन्दावनविनोदिनी' कहते हैं ॥२३८॥ वे सदा मुखचन्द्र तथा नखचन्द्र की अवली (पंक्ति) से युक्त हैं, इस कारण श्रीकृष्ण ने उन्हें 'चन्द्रावली' कहा है ॥२३९॥ उनकी कान्ति चन्द्रमा के समान दिनरात बनी रहती है, अतः हर्षित होकर भगवान् ने उन्हें 'चन्द्रकान्ता' कहा है ॥२४०॥ शारदीय चन्द्रमा के समान कान्ति मुखमण्डल पर दिन रात बनी रहती है, इसी से मुनि ने उन्हें 'शरच्चन्द्रप्रभानना' कहा है ॥२४१॥ इस प्रकार उनके सोलहों नामों की व्याख्या समेत अर्थ कह दिया, जिसे नारायण ने नील कमल पर स्थित ब्रह्मा को बताया था, ब्रह्मा ने पूर्वसमय मेरे पिता धर्म को बताया था और धर्म ने सूर्यग्रहण के समय महातीर्थ पुष्कर क्षेत्र में पुण्य पर्व पर देवसभा में राधा जी के प्रभाव की प्रस्तावना होने पर अत्यन्त प्रसन्न होकर कृपा करके मुझे दिया था ॥२४२-२४४॥ अब यह महापुण्य स्तोत्र मैंने तुम्हें दिया है, जिसे कभी भी किसी निन्दक या अवैष्णव को न देना।

यावज्जीवमिदं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । राधामाधवयोः पादपद्मे भक्तिर्भवेदिह ।।२४६।।
अन्ते लभेत्तयोर्दास्यं शश्वत्सहचरो भवेत् । अणिमादिकसिद्धिं च संप्राप्य नित्यविग्रहम् ।।२४७।।
व्रतदानोपवासैश्च सर्वैर्नियमपूर्वकैः । चतुर्णां चैव वेदानां पाठैः सर्वार्थसंयुतैः ।।२४८।।
सर्वेषां यज्ञतीर्थानां करणैर्विधिबोधितैः । प्रदक्षिणेन भूमेश्च कृत्स्नाया एव सप्तधा ।।२४९।।
शरणागतरक्षायामज्ञानां ज्ञानदानतः । देवानां वैष्णवानां च दर्शनेनापि यत्फलम् ।।२५०।।
तदेव स्तोत्रपाठस्य कलां नार्हति षोडशीम् । स्तोत्रस्यास्य प्रभावेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ।।२५१।।

नारद उवाच

संप्राप्तं परमाश्चर्यं स्तोत्रं सर्वसुदुर्लभम् । कवचं चापि देव्याश्च संसारविजयं प्रभो ।।२५२।।
कृतं स्तोत्रं सुयज्ञेन प्राप्तं तदपि दुर्लभम् । श्रुत्वा कृष्णकथां चित्रां त्वत्पादाब्जप्रसादतः ।।२५३।।
अधुना श्रोतुमिच्छामि यद्रहस्यं च तद्वद । प्रातश्च नगरं दृष्ट्वा किमूचुर्बल्लवा मुने ।।२५४।।

नारायण उवाच

गतायां तत्र यामिन्यां गते च विश्वकर्मणि । अरुणोदयवेलायां जनाः सर्वे जजागरुः ।।२५५।।
उत्थाय दृष्ट्वा नगरं सर्वेभ्योऽपि विलक्षणम् । किमाश्चर्यं किमाश्चर्यमित्यूचुर्व्रजवासिनः ।।२५६।।

महामुने ! इस स्तोत्र का जोआ जीवन तीनों संध्याओं में पाठ करता है, उसे इसी जन्म में राधामाधव के चरण-कमल की भक्ति शीघ्र प्राप्त हो जाती है और अन्त समय में दास्य पद प्राप्त करके वह उन दोनों का निरन्तर सहचारी बन जाता है। अणिमा आदि सिद्धियों समेत उसे नित्य शरीर प्राप्त हो जाता है ।।२४५-२४७।। सम्पूर्ण नियमों समेत व्रत, दान, उपवास, अर्थ समेत चारों वेदों के पाठ, सविधान समस्त यज्ञों के सुसम्पादन, निखिल पृथ्वी की सात बार परिक्रमा, शरणागत की रक्षा, अज्ञानी को ज्ञान-दान और देवों एवं वैष्णवों के दर्शन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह इस स्तोत्र पाठ की सोलहवीं कला की भी समान नहीं है। इस स्तोत्र के प्रभाव से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है ।।२४८-२५१।।

नारद बोले--प्रभो ! यह सर्वदुर्लभ परमाश्चर्यमय स्तोत्र मुझे मिल गया, और राधा देवी का संसार विजय नामक कवच भी मैंने प्राप्त कर लिया। सुयज्ञकृत वह परम दुर्लभ स्तोत्र भी मुझे प्राप्त हो गया है। तुम्हारे चरणकमल की कृपा से भगवान् कृष्ण की चित्र-विचित्र कथायें भी सुन ली हैं, अब मुझे वह रहस्य बताने की कृपा करें कि—प्रातःकाल नगर को देखकर गोपों ने क्या कहा ? ।।२५२-२५४।।

नारायण बोले--जब रात बीत गई, विश्वकर्मा चले गये और अरुणोदय हुआ तब सब लोग जाग उठे ।।२५५।। उठते ही सबसे विलक्षण नगर-रचना देखकर सभी व्रजवासी कहने लगे कि--यह क्या आश्चर्य

Funding by IKS-MoE

कांश्चिद्गोपान्केचिदूचुः कुत एतदभूदिदम् । न जाने केन रूपेण को भूमौ प्रभवेदिति ॥२५७॥
बुबुधे मनसा नन्दो गर्गवाक्यमनुस्मरन् । श्रीहरेरिच्छया सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥२५८॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं यस्य भ्रूभङ्गलीलया । आविर्भूतं तिरोभूतं तस्यासाध्यं च किं कुतः ॥२५९॥
विवरेष्वेव यल्लोम्नां ब्रह्माण्डान्यखिलानि च । ईशस्य तन्महाविष्णोः किमसाध्यं हरेरहो ॥२६०॥
ब्रह्मानन्तेशधर्माश्च ध्यायन्ते यत्पदाम्बुजम् । किमसाध्यं तदीशस्य मायामानुषरूपिणः ॥२६१॥
भ्रामं भ्रामं तन्नगरं दर्शं दर्शं गृहं गृहम् । पाठं पाठं च नामानि सर्वेभ्यो निलयं ददौ ॥२६२॥
कृत्वा शुभक्षणं नन्दो वृषभानश्च कौतुकी । चकार स गणैः सार्धं मुदाऽऽश्रमनिवेशनम् ॥२६३॥
सर्वे वृन्दावनस्थाश्च प्रसन्नवदनेक्षणाः । मुदा प्रवेशनं चक्रुः स्वं स्वमाश्रममुत्तमम् ॥२६४॥
सर्वे मुमुदिरे गोपाः स्वे स्वे स्थाने मनोहरे । बालका बालिकाश्चैव चिक्रीडुश्च प्रहर्षिताः ॥२६५॥
श्रीकृष्णो बलदेवश्च शिशुभिः सह कौतुकात् । क्रीडां चकार तत्रैव स्थाने स्थाने मनोहरे ॥२६६॥
इत्येवं कथितं सर्वं निर्माणं नगरस्य च । अवलानां वने रासमण्डलस्य च नारदः ॥२६७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारद० वृन्दावननगरवर्णनं नाम
सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

है—यह क्या आश्चर्य है ॥२५६॥ कुछ लोगों ने कुछ गोपों से यह कहा कि—यह कैसे हुआ ? न जाने भूतल पर किस रूप से कौन प्रकट हो सकता है ? ॥२५७॥ नन्द गर्ग की बातों का स्मरण करते हुए मन में यह समझ गये कि—'यह भगवान् की इच्छा है ।' क्योंकि उनकी इच्छा से यह समस्त चर-अचर जगत् उत्पन्न होता है और उनके भ्रू-भंग की लीला मात्र से ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त बनता और बिगड़ता है, उनके लिए क्या और कैसे असाध्य हो सकता है ? ॥२५८-२५९॥ अहो ! जिस भगवान् के लोम-विवरों में अखिल ब्रह्माण्ड भरे पड़े हैं, उस महाविष्णु ईश के लिए क्या असाध्य हो सकता है ? ॥२६०॥ ब्रह्मा, अनन्त, शिव और धर्म जिनके चरण-कमल का सतत ध्यान करते रहते हैं, उन माया-मानव-रूपधारी ईश के लिए क्या असाध्य है ? ॥२६१॥ नन्द ने उस नगर के प्रत्येक स्थान में घूम-घूमकर और उसमें लिखित नामों को पढ़कर सबके लिए घरों का वितरण कर दिया ॥२६२॥ नन्द और वृषभानु ने भी कौतुक वश बड़ी प्रसन्नता से शुभ मुहूर्त में गणों समेत अपने-अपने गृह में प्रवेश किया ॥२६३॥ वृन्दावन में रहकर उन सबके मुख और नेत्र प्रसन्नता से खिल उठे । उन सब गोपों ने अपने-अपने उत्तम आश्रम में आनन्द के साथ पदार्पण किया । अपने-अपने मनोहर स्थान में वे सब बड़े प्रसन्न हुए। बालक और बालिकायें हर्षपूर्वक खेलने-कूदने लगीं ॥२६४-२६५॥ श्रीकृष्ण और बलदेव भी कौतुक वश बालकों के साथ वहाँ प्रत्येक मनोहर स्थान पर क्रीड़ा करने लगे ॥२६६॥ नारद ! इस प्रकार मैंने नगर का निर्माण और वन में गोपियों के रासमण्डल की रचना तुम्हें बता दी ॥२६७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारदसंवाद में वृन्दावन-नगर-वर्णन नामक सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥१७॥

Funding by IKS-MoE

अथाष्टादशोऽध्यायः

शौनक उवाच

अहो किमद्भुतं सूत रहस्यं सुमनोहरम् । श्रुतं कृष्णस्य चरितं सुखदं मोक्षदं परम् ॥१॥

सूत उवाच

श्रुत्वा नगरनिर्माणं नारदो मुनिसत्तमः । पप्रच्छ कृष्णचरितमपरं सुमनोहरम् ॥२॥

नारद उवाच

श्रीकृष्णाख्यानचरितं पीयूषमृषित्तम । ज्ञानसिन्धो निगद मां शिष्यं च शरणागतम् ॥३॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा मुदा नारायणः स्वयम् । उवाच परमीशस्य चरितं परमाद्भुतम् ॥४॥

नारायण उवाच

एकदा बालकैः सार्धं बलेन सह माधवः । जगाम श्रीमधुवनं यमुनातीरनीरजम् ॥५॥
बिचेरुर्गोसहस्रैश्च चिक्रीडुर्बालकास्तदा । विश्रान्तास्तृट्परीताश्च क्षुधाऽतिपरिपीडिताः ॥६॥

अध्याय १८

ब्राह्मण-पत्नी का मोक्ष-प्रस्ताव

शौनक बोले—सूत ! अहो ! यह अति मनोहर एवं आश्चर्यमय भगवान् कृष्ण का कैसा रहस्यमय चरित मैंने सुना, जो परम सुखदायक और मोक्षप्रद है ॥१॥

सूत बोले—नगर-निर्माण सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारद ने भगवान् कृष्ण का दूसरा अति मनोहर चरित पूछा ॥२॥

नारद बोले—ऋषिश्रेष्ठ ! ज्ञानसिंधो ! मैं आपकी शरण में आया हूँ और आपका शिष्य हूँ, अतः श्रीकृष्ण के चरित का अमृतमय आख्यान मुझे बतायें ॥३॥ नारद की बात सुनकर नारायण ने स्वयं हर्ष से भगवान् का परमाश्चर्यमय चरित कहना प्रारम्भ किया ॥४॥

नारायण बोले—एक बार माधव ने बलदेव और अन्य बालकों के साथ श्रीमधुवन की यात्रा की, जो यमुना के किनारे जल द्वारा उत्पन्न हुआ था ॥५॥ उस समय सब बालक सहस्रों गौओं के साथ वहाँ विचरने और

Funding by IKS-MoE

तमूचुर्गोपशिशवः श्रीकृष्णं परमेश्वरम् । क्षुदस्मान्बाधते कृष्ण किं कुर्मो ब्रूहि किंकरान् ॥७॥
शिशूनां वचनं श्रुत्वा तानुवाच दयानिधिः। हितं तथ्यं च वचनं प्रसन्नवदनेक्षणः ।८॥

श्रीकृष्ण उवाच

बाला गच्छत विप्राणां यज्ञस्थानं सुखावहम्। अन्नं याचत ताञ्छीघ्रं ब्राह्मणांश्च
क्रतून्मुखान् ॥९॥
विप्रा आङ्गिरसाः सर्वे स्वाश्रमे श्रीवनान्तिके । यज्ञं कुर्वन्ति विप्राश्च श्रुतिस्मृतिविशारदाः ॥१०॥
निःस्पृहा वैष्णवाः सर्वे मां यजन्ति मुमुक्षवः । मायया मां न जानन्ति मायामानुषरूपिणम् ॥११॥
न चेद्ददति युष्मभ्यमन्नं विप्राः क्रतून्मुखाः। तत्कान्ता याचत क्षिप्रं दयायुक्ताः शिशून्प्रति ॥१२॥
श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा ययुर्बालकपुंगवाः । पुरतो ब्राह्मणानां च तस्थुरानम्रकंधराः ॥१३॥
इत्यूचुर्बालकाः शीघ्रमन्नं दत्त द्विजोत्तमाः । न शुश्रुवुर्द्विजाः केचित्केचिच्छ्रुत्वा स्थिराः
स्थिताः ॥१४॥
ते ययू रन्धनागारं ब्राह्मण्यो यत्र पाचिकाः। नत्वा बाला विप्रभार्याः प्रणेमुर्नतकंधराः ॥१५॥
नत्वोचुर्बालकाः सर्वे विप्रभार्याः पतिव्रताः । अन्नं दत्त मातरोऽस्मान्क्षुधार्तान्बालकानपि ॥१६॥

खेलने लगे ॥६॥ थक जाने तथा भूख और प्यास से अतिपीडित हो जाने पर उन बालकों ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा--हे कृष्ण ! हमें भूख बहुत कष्ट दे रही है, हम आपके सेवक हैं, बताइए, क्या करें ? ॥७॥ बच्चों की बात सुनकर प्रसन्न मुख और नेत्र वाले दयानिधान कृष्ण ने सत्य वचन कहा ॥८॥

श्रीकृष्ण बोले--बालको ! तुम सब ब्राह्मणों के सुखदायक यज्ञस्थान में जाओ, और यज्ञ-तत्पर उन ब्राह्मणों से शीघ्र अन्न की याचना करो ॥९॥ श्रुति एवं स्मृति आदि में अत्यन्त निपुण वे अंगिरा गोत्र वाले सभी ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं ॥१०॥ वे सभी वैष्णव हैं और मोक्षार्थ मेरे लिए यज्ञ कर रहे हैं, किन्तु माया के कारण वे माया से मानवरूपधारी मुझे नहीं जान पा रहे हैं ॥११॥ यदि वे यज्ञ करने में तत्पर ब्राह्मणगण तुम्हें अन्न न दे सकें तो तुम लोग उनकी स्त्रियों से शीघ्र याचना करना, क्योंकि वे बच्चों के प्रति अत्यन्त दयालु होती हैं ॥१२॥ भगवान् श्रीकृष्ण की बात सुनकर वे बालकश्रेष्ठ वहाँ पहुँचे और उन ब्राह्मणों के सामने कन्धे झुकाकर खड़े हो गये ॥१३॥ बालकों ने कहा—हे उत्तम ब्राह्मणो ! हमें शीघ्र भोजन दे दीजिये। किन्तु उनमें से कुछ ब्राह्मणों ने उनकी बात सुनी ही नहीं और कुछ लोग सुनकर भी ज्यों के त्यों खड़े रह गये ॥१४॥ अनन्तर बालकों ने पाकशाला में, जहाँ ब्राह्मणियाँ भोजन बना रही थीं, जाकर कन्धे झुकाकर उन्हें प्रणाम किया ॥१५॥ उन पतिव्रता ब्राह्मण-पत्नियों को नमस्कार करके सभी बालकों ने उनसे कहा— माताओ ! हम सभी को क्षुधा

Funding by IKS-MoE

बालानां वचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा तांश्च मनोहरान् । पप्रच्छुः सादरं साध्व्यः स्मेराननसरोरुहाः ॥१७॥

विप्रपत्न्य ऊचुः

के यूयं प्रेषिताः केन कानि नामानि कोविदाः । दास्यामोऽन्नं बहुविधं व्यञ्जनैः सहितं वरम् ॥१८॥
ब्राह्मणीनां वचः श्रुत्वा ता ऊचुस्ते मुदाऽन्विताः । स्निग्धा हसन्तः स्फीताश्च सर्वे गोपालबालकाः ॥१९॥

बाला ऊचुः

प्रेषिता रामकृष्णाभ्यां वयं क्षुत्पीडिता भृशम् । दत्तान्नं मातरोऽस्मभ्यं क्षिप्रं यामस्तदन्तिकम् ॥२०॥
इतो विदूरे भाण्डीरे वनाभ्यन्तरमेव च । वटमूले मधुवने वसन्तौ रामकेशवौ ॥२१॥
विश्रान्तौ क्षुधितौ तौ च याचेतेऽन्नं च मातरः । किमु देयमदेयं वा शीघ्रं वदत नोऽधुना ॥२२॥
गोपानां वचनं श्रुत्वा हृष्टानन्दाश्रुलोचनाः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गास्तत्पादाब्जमनोरथाः ॥२३॥
नानाव्यञ्जनसंयुक्तं शाल्यन्नं सुमनोहरम् । पायसं पिष्टकं स्वादु दधि क्षीरं घृतं मधु ॥२४॥
रौप्ये कांस्ये राजते च पात्रे कृत्वा मुदाऽन्विताः । ताः सर्वा विप्रपत्न्यश्च प्रययुः कृष्णसंनिधिम् ॥२५॥

पीडित कर रही है, अतः हमें भोजन प्रदान करो ॥१६॥ बालकों की बात सुनकर और उन्हें मनोहर देखकर मुसकराहट से युक्त मुखकमल वाली उन पतिव्रताओं ने आदरपूर्वक उनसे पूछा ॥१७॥

ब्राह्मणपत्नियाँ बोलीं––समझदार बालको ! तुम लोग कौन हो ! तुम्हें किसने भेजा है ? तुम्हारे क्या नाम हैं ? हम तुम्हें व्यञ्जन सहित नाना प्रकार का श्रेष्ठ भोजन देंगी । ब्राह्मणियों की बात सुनकर वे सभी स्निग्ध एवं हृष्ट-पुष्ट गोप-बालक हर्ष से हँसते हुए बोले ॥१८-१९॥

बालकगण बोले––माताओ ! राम और कृष्ण ने हमें भेजा है । हम लोग क्षुधा से अत्यन्त पीडित हैं । हमें भोजन दे दो । हम शीघ्र उनके पास चले जायेंगे ॥२०॥ यहाँ से थोड़ी दूर पर भाण्डीर वन के भीतर मधुवन में वट वृक्ष के नीचे बलदेव और कृष्ण बैठे हैं ॥२१॥ माताओ ! वे शान्त और भूखे-प्यासे हैं, भोजन माँग रहे हैं, तुम्हें देना है या नहीं यह हमें शीघ्र बता दो ॥२२॥ उन गोपों की बात सुनकर अति हर्ष के कारण उन स्त्रियों के नेत्र में आँसू आ गये, सर्वाङ्ग में रोमाञ्च हो आया, क्योंकि वे (भगवान् के) चरण-कमल को बहुत दिनों से चाह रही थीं ॥२३॥ सोने, चाँदी तथा फूल की थालियों में प्रसन्नतापूर्वक भाँति-भाँति के व्यञ्जनों से युक्त अत्यन्त मनोहर अगहनी चावल का भात, खीर, स्वादिष्ट पीठा, दही, दूध, घी और मधु रखकर श्रीकृष्ण के

नानामनोरथं कृत्वा मनसा गमनोत्सुकाः । पतिव्रतास्ता धन्याश्च श्रीकृष्णदर्शनोत्सुकाः ॥२६॥
श्रीकृष्णं ददृशुर्गत्वा रामं च सहबालकम् । वटमूले वसन्तं तमुडुमध्ये यथोडुपम् ॥२७॥
श्यामं किशोरवयसं पीतकौशेयवाससम् । सुन्दरं सस्मितं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम् ॥२८॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं रत्नालंकारभूषितम् । रत्नकुण्डलयुग्माभ्यां गण्डस्थलविराजितम् ॥२९॥
रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरभूषितम् । आजानुलम्बितां शुभ्रां बिभ्रतं रत्नमालिकाम् ॥३०॥
मालतीमालया कण्ठवक्षःस्थलविराजितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाञ्चितविग्रहम् ॥३१॥
सुनसं[1] सुकपोलं च पक्वबिम्बाधरं वरम् । पक्वदाडिमबीजाभं बिभ्रतं दन्तमुत्तमम् ॥३२॥
शिखिपिच्छसमायुक्तं बद्धचूडं परात्परम् । कदम्बपुष्पयुग्माभ्यां कर्णमूले विराजितम् ॥३३॥
ध्यानासाध्यं योगिनां च भक्तानुग्रहकारकम् । ब्रह्मेशधर्मशेषेन्द्रैः स्तूयमानं मुनीश्वरैः ॥३४॥
दृष्ट्वैवमीश्वरं भक्त्या प्रणेमुर्द्विजयोषितः । स्वानां ज्ञानानुरूपं च तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥३५॥

विप्रपत्न्य ऊचुः

त्वं ब्रह्म परमं धाम निरीहो निरहंकृतिः । निर्गुणश्च निराकारः साकारः सगुणः स्वयम् ॥३६॥

समीप गयीं ॥२४-२५॥ वे पतिव्रतायें धन्य हैं, जो श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए अत्यन्त उत्सुक होकर मन में अनेक भाँति की इच्छायें करती हुई उनके पास चली जा रही थीं ॥२६॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने बालकों समेत बलराम और श्रीकृष्ण को देखा। वे वट वृक्ष के नीचे बैठे थे, जो तारों के मध्य चन्द्रमा की भाँति सुशोभित हो रहे थे। वे श्यामवर्ण, किशोरावस्था से युक्त, पीत रेशमी वस्त्र पहने सुन्दर, मुसकराते हुए, शान्त, राधा के कान्त एवं मनोहर थे ॥२७-२८॥ शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति उनका मुख था। वे रत्नों के आभूषणों से भूषित थे। उनके गण्डस्थल पर रत्नों के युगल कुण्डल विराजमान थे ॥२९॥ रत्नों के बहूँटा, कङ्कण और रत्नों के नूपुर से वे सुशोभित थे। उन्होंने गले में आजानुलम्बिनी शुभ्र रत्न-माला धारण कर रखी थी। मालती की माला से उनके कण्ठ और वक्षःस्थल दोनों सुशोभित थे। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से उनके श्री अंग चर्चित थे। उनकी नासिका और कपोल सुन्दर थे। ओष्ठ पके बिम्बफल के समान थे। उनकी उत्तम दन्त-पंक्ति परिपक्व अनार के दानों की भाँति थी ॥३०-३२॥ सिर पर मोर पंख का मुकुट शोभा दे रहा था। कानों के मूलभाग में दो कदम्ब-पुष्प विराजमान थे। परात्पर परमात्मा श्रीकृष्ण योगियों के भी ध्यान में नहीं आने वाले हैं। तो भी भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए व्याकुल रहते हैं। ब्रह्मा, शिव, धर्म, शेष, इन्द्र तथा मुनीश्वर उनकी स्तुति करते हैं। ऐसे ईश्वर को देखकर ब्राह्मण-पत्नियों ने उन्हें प्रणाम किया और अपने ज्ञान के अनुरूप मधुसूदन की स्तुति की ॥३३-३५॥

विप्रपत्नियाँ बोलीं—भगवन्! आप ब्रह्म, परम धाम, इच्छा रहित, अहंकार शून्य, गुण रहित, निराकार, साकार, सगुण, साक्षी रूप, निर्लिप्त, परमात्मा, आकार-रहित, प्रकृति-पुरुष हैं। तथा उन दोनों के परम

---

[1] क० सुनखं।

Funding by IKS-MoE

साक्षिरूपश्च निर्लिप्तः परमात्मा निराकृतिः । प्रकृतिः पुरुषस्त्वं च कारणं च तयोः परम् ॥३७॥
सृष्टिस्थित्यन्तविषये ये च देवास्त्रयः स्मृताः । ते त्वदंशाः सर्वबीजा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥३८॥
यस्य लोम्नां च विवरे चाखिलं विश्वमीश्वर । महाविराण्महाविष्णुस्त्वं तस्य जनको विभो ॥३९॥
तेजस्त्वं चापि तेजस्वी ज्ञानं ज्ञानी च तत्परः । वेदेऽनिर्वचनीयस्त्वं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥४०॥
महदादिसृष्टिसूत्रं पञ्चतन्मात्रमेव च । बीजं त्वं सर्वशक्तीनां सर्वशक्तिस्वरूपकः ॥४१॥
सर्वशक्तीश्वरः सर्वः सर्वशक्त्याश्रयः। सदा । त्वमनीहः स्वयंज्योतिः सर्वानन्दः सनातनः ॥४२॥
अहोऽप्याकारहीनस्त्वं सर्वविग्रहवानपि । सर्वेन्द्रियाणां विषयं जानासि नेन्द्रियी भवान् ॥४३॥
सरस्वती जडीभूता यत्स्तोत्रे यन्निरूपणे। जडीभूतो महेशश्च शेषो धर्मो विधिः स्वयम् ॥४४॥
पार्वती कमला राधा सावित्री वेदसूरपि । वेदश्च जडतां याति के वा शक्ता विपश्चितः ॥४५॥
वयं किं स्तवनं कुर्मः स्त्रियः प्राणेश्वरेश्वरः । प्रसन्नो भव नो देव दीनबन्धो कृपां कुरु ॥४६॥
इति पेतुश्च ता विप्रपत्न्यस्तच्चरणाम्बुजे । अभयं प्रददौ ताभ्यः प्रसन्नवदनेक्षणः ॥४७॥
विप्रपत्नीकृतं स्तोत्रं पूजाकाले च यः पठेत् । स गतिं विप्रपत्नीनां लभते नात्र संशयः ॥४८॥

कारण भी हैं ॥३६-३७॥ सृष्टि, पालन और संहार कार्य में नियुक्त जो ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर कहे गये हैं, वे भी आपके ही सर्वबीजमय अंश हैं ॥३८॥ ईश्वर ! जिसके लोम-विवरों में समस्त विश्व स्थित है उस महाविराट्स्वरूप महाविष्णु के आप जनक हैं ॥३९॥ आप तेज, तेजस्वी, ज्ञान और ज्ञानी स्वरूप हैं। इसीलिए आपको वेद में अनिर्वचनीय कहा गया है। भला आपकी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥४०॥ आप महत् आदि सृष्टि के सूत्र स्वरूप, पञ्चतन्मात्रा, समस्त शक्तियों के बीज, समस्त शक्ति स्वरूप, समस्त शक्तियों के अधीश्वर, सर्वरूप और सदा समस्त शक्तियों के आश्रय हैं। आप इच्छा रहित, स्वयं ज्योति, समस्त आनन्द रूप तथा सनातन हैं। अहो ! शरीररहित होने पर भी समस्तशरीरधारी हैं। आप सकल इन्द्रियों के विषय को जानते हुए भी इन्द्रियवान् नहीं हैं ॥४१-४२॥ जिनकी स्तुति करने तथा जिनके तत्त्व का निरूपण करने में सरस्वती भी जड हो जाती हैं; शिव, शेष, धर्म और स्वयं ब्रह्मा भी जड बन जाते हैं; पार्वती, लक्ष्मी, राधा, वेदजननी सावित्री और वेद जडता को प्राप्त कर लेते हैं; फिर दूसरे कौन बुद्धिमान् आपकी स्तुति कर सकते हैं ? ॥४४-४५॥ प्राणेश्वरेश्वर ! हम लोग तो स्त्रियाँ हैं, आपकी क्या स्तुति करेंगी ? दीनबन्धो ! देव ! आप हम पर प्रसन्न हो जायँ, कृपा करें ॥४६॥ इतना कहकर वे स्त्रियाँ उनके चरण-कमल पर गिर पड़ीं। अनन्तर प्रसन्न मुख और नेत्र वाले भगवान् ने उन्हें अभय प्रदान किया ॥४७॥ ब्राह्मण-पत्नियों के इस स्तोत्र का पाठ जो पूजा के समय करता है, वह उनकी गति अवश्य प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं ॥४८॥

नारायण उवाच

ताः पदाम्भोजपतिता दृष्ट्वा श्रीमधुसूदनः । वरं वृणुत कल्याणं भविता चेत्युवाच ह ॥४९॥
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा विप्रपत्न्यो मुदाऽन्विताः । तमूचुर्वचनं भक्त्या भक्तिम्रात्मकंधराः ॥५०॥

द्विजपत्न्य ऊचुः

वरं कृष्ण न गृह्णीमो नः स्पृहा त्वत्पदाम्बुजे । देहि स्वं दास्यमस्मस्यं दृढां भक्तिं सुदुर्लभाम् ॥५१॥
पश्यामोऽनुक्षणं वक्त्रसरोजं तव केशव । अनुग्रहं कुरु विभो न यास्यामो गृहं पुनः ॥५२॥
द्विजपत्नीवचः श्रुत्वा श्रीकृष्णः करुणानिधिः । ओमित्युक्त्वा त्रिलोकेशस्तस्थौ बालकसंसदि ॥५३॥
प्रदत्तं विप्रपत्नीभिर्मिष्टमन्नं सुधोपमम् । बालकान्भोजयित्वा तु स्वयं च बुभुजे विभुः ॥५४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र शातकुम्भं रथं परम् । ददृशुर्विप्रपत्न्यश्च पतन्तं गगनादहो ॥५५॥
रत्नदर्पणसंयुक्तं रत्नसारपरिच्छदम् । रत्नस्तम्भैर्निबद्धं च सद्रत्नकलशोज्ज्वलम् ॥५६॥
श्वेतचामरसंयुक्तं वह्निशुद्धांशुकान्वितम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् ॥५७॥
शतचक्रसमायुक्तं मनोयायि मनोहरम् । वेष्टितं पार्षदैर्दिव्यैर्वनमालाविभूषितैः ॥५८॥

नारायण बोले—उन पत्नियों को अपने चरण-कमल पर गिरी हुई देखकर श्रीमधुसूदन ने उनसे कहा—तुम लोग वरदान माँगों, तुम्हारा कल्याण होगा ॥४९॥ श्रीकृष्ण की बात सुनकर उन ब्राह्मण-पत्नियों ने हर्षित होकर भक्ति से कन्धे झुकाये भक्तिपूर्वक उनसे कहा ॥५०॥

द्विजपत्नियाँ बोलीं—हे कृष्ण! हमें वरदान न चाहिए, हम लोग आपके चरण-कमल की अनुरागिणी हैं, अतः अपना दास्यपद और अति दुर्लभ दृढ़ भक्ति हमें प्रदान करें ॥५१॥ हे केशव ! हम आपके मुख-कमल को प्रतिक्षण देखा करें। विभो! हम पर कृपा करें हम लोग पुनः लौट कर घर नहीं जायेंगी ॥५२॥ तीनों लोकों के अधीश्वर करुणानिधान श्रीकृष्ण ने द्विज-पत्नियों की बात सुनकर कहा—'अच्छा' और वे बालकों की मंडली में बैठ गये ॥ ५३॥ अनन्तर ब्राह्मण-पत्नियों द्वारा समर्पित वह अमृतोपम मीठा भोजन बालकों को भोजन कराकर प्रभु ने स्वयं भी भोजन किया ॥५४॥ इसी बीच वहाँ ब्राह्मण स्त्रियों ने बड़े आश्चर्य से देखा, कि आकाश से एक सुवर्ण का परमोत्तम रथ उतर रहा है। वह रत्नों के दर्पण एवं रत्नों के सारभाग से बने हुए उपकरणों से युक्त, रत्नों के स्तम्भों से बँधा, उत्तम रत्नों के कलशों से समुज्ज्वल, श्वेत चामर, अग्निविशुद्ध वस्त्र, और पारिजात के पुष्पों की मालाओं से सुशोभित था ॥५५-५७॥ सौ चक्कों से संयुक्त, मन की भाँति गमन करने वाला एवं मनोहर वह रथ बनमालाभूषित दिव्य पार्षदों से घिरा हुआ था। वे पार्षद पीताम्बर पहने, रत्नों के अलंकारों से भूषित, नूतन यौवन से सम्पन्न, श्यामल, श्याम कान्ति वाले, अति

Funding by IKS-MoE

पीतवस्त्रपरीधानै रत्नालंकारभूषितैः । नवयौवनसंपन्नैः श्यामलैः सुमनोहरैः ।।५९।।
द्विभुजैर्मुरलीहस्तैर्गोपवेषधरैर्वरैः । शिखिपिच्छगुञ्जमालाबद्धवक्रिमचूडकैः ।।६०।।
अवरुह्य रथात्तूर्णं ते प्रणम्य हरेः पदम् । रथमारोहणं कर्तुमूचुर्ब्राह्मणकामिनीः ।।६१।।
विप्रभार्या हरिं नत्वा जग्मुर्गोलोकमभीप्सितम् । बभूवुर्गोपिकाः सद्यस्त्यक्त्वा मानुषविग्रहान् ।।६२।।
हरिच्छायां विनिर्माय तासां च विष्णुमायया । प्रस्थापयामास गृहान्ब्राह्मणानां स्वयं विभुः ।।६३।।
विप्राश्च भार्या उद्दिश्य परमोद्विग्नमानसाः । अन्वेषणं प्रकुर्वन्तो ददृशुः पथि कामिनीः ।।६४।।
दृष्ट्वोचुर्ब्राह्मणाः सर्वे तास्ते च विनयान्विताः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः प्रसन्नवदनेक्षणाः ।।६५।।

ब्राह्मणा ऊचुः

अहोऽतिधन्या यूयं च दृष्टो युष्माभिरीश्वरः । अस्माकं जीवनं व्यर्थं वेदपाठोऽप्यनर्थकः ।।६६।।
वेदे पुराणे सर्वत्र विद्वद्भिः परिकीर्तिताः । हरेर्विभूतयः सर्वाः सर्वेषां जनको हरिः ।।६७।।
तपो जपो व्रतं ज्ञानं वेदाध्ययनमर्चनम् । तीर्थस्नानमनशनं सर्वेषां फलदो हरिः ।।६८।।
श्रीकृष्णः सेवितो येन किं तस्य तपसां फलैः । प्राप्तः कल्पतरुर्येन किं तस्यान्येन शाखिना ।।६९।।
श्रीकृष्णो हृदये यस्य तस्य किं कर्मभिः कृतैः । किं पीतसागरस्यैव पौरुषं कूपलङ्घने ।।७०।।

मनोहर, दो भुजाओं से युक्त, हाथ में मुरली लिये तथा उत्तम गोपवेष और मोरपंख समेत गुञ्जा की माला से बँधी टेढ़ी चूड़ा धारण किये हुए थे ।।५८-६०।। उन पार्षदों ने रथ से शीघ्र उतर कर भगवान् के चरण में प्रणाम किया और उन ब्राह्मण-पत्नियों से उस रथ पर सुखासीन होने के लिए निर्देश किया ।।६१।। विप्र-पत्नियाँ भगवान् को नमस्कार करके अभीष्ट गोलोक को चली गयीं और वहाँ मनुष्य-शरीर त्याग कर तुरन्त गोपिका के रूप में परिणत हो गयीं ।।६२।। अनन्त भगवान् ने स्वयं माया द्वारा उनकी छाया का निर्माण करके उन्हें उन ब्राह्मणों के घर में भेज दिया ।।६३।। वहाँ ब्राह्मण लोग अत्यन्त खिन्न होकर उन्हें ढूंढ़ रहे थे । मार्ग में स्त्रियों से भेंट हो गयी ।।६४।। उन्हें देखकर ब्राह्मणों के सर्वांग पुलकित हो गये, मुख और नेत्र खिल उठे । उन्होंने विनम्र होकर स्त्रियों से कहा ।।६५।।

ब्राह्मण लोग बोले—अहो ! तुम लोग अत्यन्त धन्य हो, क्योंकि तुमने भगवान् का दर्शन प्राप्त किया है । हम लोगों का जीवन व्यर्थ है, और वेदपाठ भी निरर्थक है । वेद और पुराण में विद्वानों ने कहा है कि—सभी भगवान् की विभूतियाँ हैं और सबके जनक भगवान् ही हैं ।।६६-६७।। तप, जप, व्रत, ज्ञान, वेदाध्ययन, पूजा, तीर्थस्नान और उपवास आदि सभी के फल भगवान् ही प्रदान करते हैं ।।६८।। जिसने श्रीकृष्ण की सेवा की है, उसे तपस्याओं के फलों की क्या आवश्यकता है ? जिसे कल्पवृक्ष प्राप्त हो गया उसे अन्य वृक्ष से क्या प्रयोजन ? ।।६३।। श्रीकृष्ण जिसके हृदय में विराजमान् हैं, उसे कर्मों के अनुष्ठान की क्या आवश्यकता है ? जिसने समुद्र को पी लिया, उसके लिए कुआँ लांघने में क्या पुरुषार्थ है ? ।।७०।। इतना कह कर उन ब्राह्मणों

Funding by IKS-MoE

इत्येवमुक्त्वा विप्राश्च गृहीत्वा कामिनीर्वराः । आजग्मुः स्वगृहं हृष्टास्ताभिः सार्धं च रेमिरे ॥७१॥
तासां ततोऽधिकं प्रेम क्रीडासु सर्वकर्मसु । दाक्षिण्यं मायया शक्त्या ब्राह्मणानामतर्कितम् ॥७२॥
अथ नारायणः सोऽयं बलेन शिशुभिः सह । जगाम स्वालयं तूर्णं पूर्णब्रह्म सनातनः ॥७३॥
इत्येवं कथितं सर्वं हरेर्माहात्म्यमुत्तमम् । पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥७४॥

नारद उवाच

ऋषीन्द्र केन पुण्येन बभूव विप्रयोषिताम् । मुनीन्द्रयोगसिद्धानां दुर्लभा गतिरीश्वरी ॥७५॥
इमाः का वा पुण्यवत्यः पुरा तस्थुर्महीतलम् । आजग्मुः केन दोषेण वद संदेहभञ्जनम् ॥७६॥

नारायण उवाच

सप्तर्षीणां रमण्यश्च रूपेणाप्रतिमाः पराः । गुणवत्यः सुशीलाश्च धर्मिष्ठाश्च पतिव्रताः ॥७७॥
नवीनयौवनाः सर्वाः पीनश्रोणिपयोधराः । दिव्यवस्त्रपरीधाना रत्नालंकारभूषिताः ॥७८॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभाः स्मेराननसरोरुहाः । मुनीनां मोहितुं शक्ता मानसं वक्रचक्षुषा ॥७९॥
दृष्ट्वा तासां स्तनश्रोणिमुखानि सुन्दराणि च । अनलश्चकमे ताश्च मदनानलपीडितः ॥८०॥

ने उन श्रेष्ठ कामिनियों को साथ लेकर बड़ी प्रसन्नता से अपने घर को लौटे और उनके साथ रमण किया ॥७१॥ उनके साथ क्रीड़ा तथा सभी कार्यों के करने में उन ब्राह्मण लोगों का पहले की अपेक्षा अधिक प्रेम तथा उदार-भाव प्रकट होता था, परन्तु माया-शक्ति से प्रभावित होने के कारण ब्राह्मणों को उसका अनुमान नहीं होता था ॥७२॥ अनन्तर सनातन पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण बलभद्र और बालकों समेत अपने घर गये ॥७३॥ इस प्रकार मैंने भगवान् का परमोत्तम माहात्म्य, जिसे मैंने पूर्वकाल में धर्म के मुख से सुना था, तुम्हें बता दिया, और क्या सुनना चाहते हो ? ॥७४॥

नारद बोले—ऋषिवर ! किस पुण्य के प्रभाव से उन ब्राह्मण-पत्नियों को ऐसी गति प्राप्त हुई, जो मुनियों, योगियों और सिद्धों के लिये भी दुर्लभ है ॥७५॥ ये पुण्यवती स्त्रियाँ पूर्व जन्म में कौन थीं और किस अपराध के कारण इस भूतल पर आयी थीं ? मेरा सन्देह निवारण करें ॥७६॥

नारायण बोले—ये सप्तर्षियों की रमणियाँ थीं, जो अनुपम सौन्दर्य से युक्त, श्रेष्ठ, गुणवती, सुशीला, धार्मिक और पतिव्रता थीं ॥७७॥ सभी नव-यौवन-सम्पन्न, स्थूल स्तन और श्रोणी भाग वाली, दिव्य वस्त्र पहने हुई, रत्नों के अलंकारों से भूषित, तपाये सुवर्ण की भाँति क़ान्ति वाली, और विकसित कमल के समान मुख वाली और तिरछी चितवन से मुनियों के भी मन को मोहित करने में समर्थ थीं ॥७८--७९॥ उनके सुन्दर स्तन, नितम्ब और मुख देखकर अग्निदेव ने कामाग्नि से पीड़ित होकर उन्हें चाहा ॥८०॥ तब ज्वाला द्वारा

Funding by IKS-MoE

अग्निस्थानस्थितानां च शिखया सुरतोन्मुखः । स्पृष्ट्वा चाङ्गानि तासां च बभूव हतचेतनः ॥८१॥
पतिव्रता न जानन्ति पतिपादाब्जमानसाः । अग्निरङ्गानि तासां च दर्शं दर्शं मुमोह च ॥८२॥
वह्नेश्च मानसं ज्ञात्वा भगवानङ्गिरा मुनिः । शशाप तं चेत्युवाच सर्वभक्षो भवेति ह ॥८३॥
वह्निः सचेतनो भूत्वा तुष्टाव मुनिपुंगवम् । व्रीडया नम्रवदनश्चकम्पे ब्रह्मतेजसा ॥८४॥
क्रुद्धो मुनिवरः स्पृष्टाः कामिन्यश्च शशाप ह । यात यूयं पापयुक्ता मानुषीं योनिमेव च ॥८५॥
भारते ब्राह्मणानां च गृहे लभत जन्म वै । करिष्यन्ति विवाहं च युष्माकं कुलजा द्विजाः ॥८६॥
श्रुत्वा वाक्यं मुनेस्ताश्च रुरुदुः प्रेमविह्वलाः । पुटाञ्जलियुताः सर्वा ऊचुस्तं विदुषां वरम् ॥८७॥

मुनिपत्न्य ऊचुः

न त्यजास्मान्मुनिश्रेष्ठ निष्पापाश्च पतिव्रताः । अजानन्त्यः परस्पृष्टा न च नस्त्यक्तुमर्हसि ॥८८॥
भक्तानां किंकरीणां च न दण्डं कर्तुमर्हसि । युष्माकं चरणाम्भोजं कदा द्रक्ष्यामहे वयम् ॥८९॥
खड्गच्छेदाद्वज्रपातात्सर्वप्रहरणान्मुने । दारुणः कान्तविच्छेदः साध्वीनां दुःसहः सदा ॥९०॥
ब्रह्मिष्ठानां गुणवतां परान्कान्तान्महामुनीन् । एवंभूतान्कथं त्यक्त्वा यास्यामः पृथिवीतलम् ॥९१॥
यास्यामो यदि विप्रेश कदाऽत्राऽऽगमनं वद । अज्ञानस्पर्शदोषश्च न स्यान्नो विधिबोधितः ॥९२॥

रति करने में प्रवृत्त अग्नि अपने स्थल पर अवस्थित उन रमणियों के अंगों का स्पर्श करके मूर्च्छित हो गये ॥८१॥ पति के चरणारविन्द में चित्त लगाये हुई उन स्त्रियों ने यह नहीं जाना। इधर अग्नि उनके अंगों को देख-देख कर मोहित हो रहे थे ॥८२॥ अग्नि के मनोविकार को जानकर अङ्गिरा मुनि ने अग्नि को शाप दे दिया। कि तुम सर्वभक्षी हो जाओ ॥८३॥ चेतना प्राप्त होने पर अग्नि ने उन मुनिश्रेष्ठ की बड़ी स्तुति की और लज्जित होकर नीचे मुख किये उनके ब्रह्मतेज के भय से काँपने लगे ॥८४॥ क्रुद्ध मुनिवर ने छुई गई स्त्रियों को भी शाप दिया कि पापयुक्त तुम सभी मनुष्य-योनि में जाओ। भारत में ब्राह्मणों के घर में जन्म धारण करो। कुलीन ब्राह्मण तुम लोगों से विवाह करेंगे ॥८५-८६॥ मुनि की बात सुनकर वे स्त्रियाँ प्रेमाकुल होकर रोदन करने लगीं और दोनों हाथ जोड़कर उस श्रेष्ठ विद्वान् से कहने भी लगीं ॥८७॥

मुनिपत्नियाँ बोलीं—मुनिश्रेष्ठ! आप हमारा त्याग न करें, हम निष्पाप और पतिव्रता हैं। बिना जाने दूसरे का स्पर्श हो गया है, अतः हमारा त्याग न करें ॥८८॥ भक्त दासियों को दण्ड देना आप के लिए उचित नहीं है। आप लोगों के चरणकमलों का दर्शन हमें कब होगा? ॥८९॥ मुने! पतिव्रताओं के लिए स्वामी का वियोग तलवार से खण्ड-खण्ड कर देने, वज्र गिरने एवं सभी प्रकार के प्रहार करने से भी कहीं अधिक दुःसह होता है ॥९०॥ ब्रह्मनिष्ठ, गुणवान् एवं श्रेष्ठ पति के रूप में प्राप्त महामुनियों को त्यागकर हम पृथ्वी पर कैसे जायेंगी ॥९१॥ ! विप्रेश! यदि हम भूतल पर चली जायेंगी तो यहाँ पुनः कब आयेंगी? अज्ञानजन्य स्पर्श का दोष हमें नहीं लगेगा, यह विधिसम्मत है ॥९२॥ अहल्या ने इन्द्र से उपभुक्त होने पर भी पुनः स्वामी

अहल्यया पुनः प्राप्तः स्वामीन्द्रस्य प्रधर्षणात् । सा संभोगात्पुनः शुद्धा स्पर्शनाद्वर्जिता वयम् ॥९३॥
विचारं कुरु धर्मिष्ठ वेदवेदाङ्गपारग । विश्वकर्तुश्च[1] पुत्रस्त्वं सर्ववेदविदां वर ॥९४॥
अन्येषां च भयात्कान्ता व्रजन्ति शरणं पतिम् । स्वकान्तभयसंविग्नाः शरणं कं व्रजन्ति ताः ॥९५॥
अभयं देहि धर्मिष्ठ भययुक्ताभ्य एव च । पुत्रे शिष्ये कलत्रे च को दण्डं रक्षितुं क्षमाः ॥९६॥
दुर्बलः सबलो वाऽपि स्ववस्तूनामपीश्वरः । स्वद्रव्यविक्रयं कर्तुं न चान्यो रक्षितुं क्षमः ॥९७॥
कामिनीनां वचः श्रुत्वा दयालुर्मुनिपुंगवः । प्रेम्णा रुरोद तासां च निरीक्ष्य मुखपङ्कजम् ॥९८॥
वेदवेदाङ्गपारज्ञो ज्ञानिनां योगिनां वरः । पत्नीविच्छेदविषये मूर्छां प्राप तथाऽपि सः ॥९९॥
सर्वे बभूवुः शोकार्ता विरहोद्विग्नमानसाः । निरीक्ष्य तासां वक्त्राणि तस्थुः पुत्तलिका यथा ॥१००॥
कृत्वा विलापं सुचिरं सर्ववेदविदां वरः । भ्रातृभिश्च सहाऽऽलोच्य ता उवाच शुचाऽऽतुरः ॥१०१॥

अङ्गिरा उवाच

यूयं शृणुत वक्ष्यामि वचनं सत्यमेव च । स्वकर्मभोगिनां भोगमाकर्माच्च श्रुतौ श्रुतम् ॥१०२॥

(गौतम) को प्राप्त किया था। वह संभोग के बाद भी पुनः शुद्ध हो गई और हम स्पर्श मात्र से त्यागी गई हैं ॥९३॥ धर्मिष्ठ ! वेद-वेदांग में पारंगत ! आप विचार करें। हे निखिल वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! आप संसार के रचयिता के पुत्र हैं ॥९४॥ अन्य लोगों से भय उत्पन्न होने पर स्त्रियाँ पति की शरण में जाती हैं और जब अपने पति से ही भय प्राप्त हो तो वे किसकी शरण में जायें ? ॥९५॥ हे धर्मिष्ठ ! भयभीतों को अभय दीजिए। पुत्र, शिष्य और स्त्री को दण्ड देने में कौन असमर्थ है ? ॥९६ अपनी वस्तुओं का स्वामी चाहे दुर्बल हो या सबल, वह अपनी वस्तु का विक्रय कर सकता है, उसे अन्य कोई रक्षित रखने में समर्थ नहीं होता ॥९७॥ कामिनियों की बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ ने उनके मुखकमल को देखा और प्रेमवश रोदन करने लगे ॥९८॥ वेद-वेदांग के पारगामी विद्वान् तथा ज्ञानियों और योगियों में श्रेष्ठ होते हुए भी वे पत्नी-वियोग के सम्बन्ध में मूच्छित हो गये ॥९९॥ सभी लोग विरह से खिन्नमन होकर शोकाकुल हो गये। वे उनके मुख देखकर पुत्तलिका की भाँति (जड़) हो गये ॥१००॥ समस्त वेद-वेत्ताओं में श्रेष्ठ अंगिरा ने विलाप करने के पश्चात् सभी भ्राताओं से विचार-विनिमय करके शोकातुर होकर उन (स्त्रियों) से कहा ॥१०१॥

अङ्गिरा बोले—तुम लोगों को मैं सत्य बात बता रहा हूँ, सुनो। वेद में मैंने सुना है कि—अपने कर्मों के भोग को भोगने वाले प्राणियों को कर्मक्षय पर्यन्त भोग भोगना पड़ता है ॥१०२॥ अब हम लोगों के

---

[1] क० वेदक०।

Funding by IKS-MoE

गतो भोगश्च युष्माकमस्माभिः सह निश्चितम् । गते भोगे पुनर्भोगो न हि वेदे निरूपितः ॥१०३॥
शुभाशुभं च यत्कर्म भारते कृतिभिः सह। नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्मकोटिशतैरपि ॥१०४॥
परभुक्तां च कान्तां च यो भुङ्क्ते स नराधमः । स पच्यते कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥१०५॥
न सा दैवे न सा पैत्र्ये पाकार्हा पापसंयुता । तस्या आलिङ्गने भर्ता भ्रष्टश्रीस्तेजसा हतः ॥१०६॥
देवताः पितरस्तस्य हव्यदाने च तर्पणे । सुखिनो न भवन्त्येवमित्याह कमलोद्भवः ॥१०७॥
तस्माद्यत्नेन भार्याया रक्षणं कुरुते सुधीः । अन्यथा पापभाग्भर्ता निश्चितं नरकं व्रजेत् ॥१०८॥
पदे पदे सावधानः कान्तां रक्षति पण्डितः । न व्रती न स्थली योषा दोषाणां च करण्डिका ॥१०९॥
कलत्रं पाकपात्रं च सदा रक्षितुमर्हति । परस्पर्शादशुद्धां च शुद्धां स्वस्पर्शने सदा ॥११०॥
स्वकान्तंच परित्यज्य परं गच्छति याऽधमा । कुम्भीपाकं सा प्रयाति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥१११॥
तामेव यमदूताश्च संस्थाप्य नरकान्तरे। उत्तिष्ठति विदूराच्चेत्कुर्वन्ति दण्डताडनाम् ॥११२॥
सर्पप्रमाणाः कीटाश्च तीक्ष्णदंष्ट्राः सुदारुणाः । दशन्ति पुंश्चलीं तत्र सततं च दिवानिशम् ॥११३॥
विकृताकारशब्दं च करोति शाश्वतं भिया। न ममार प्रहारेण सूक्ष्मदेहविधारिणी ॥११४॥

साथ तुम लोगों का भोग समाप्त हो चुका है, यह निश्चित है। भोग समाप्त होने पर पुनः भोग नहीं करना पड़ता है, ऐसा वेद में कहा गया है ॥१०३॥ भारत में क्रियाओं द्वारा जो शुभाशुभ कर्म होते हैं वे बिना भोग किये नष्ट नहीं होते हैं; चाहे सैकड़ों जन्म क्यों न बीत जायँ ॥१०४॥ दूसरे पुरुष द्वारा उपभोग की हुई स्त्री का जो उपभोग करता है, वह नराधम है। वह चन्द्रमा-सूर्य के समय तक 'काल सूत्र' नामक नरक में पकाया जाता रहता है ॥१०५॥ वह पापिनी न देय कार्य और न पितृ-कार्य में भोजन बनाने योग्य रहती है। उसका आलिंगन करने पर उसका पति श्री से भ्रष्ट होकर निस्तेज हो जाता है ॥१०६॥ उसके हव्य-कव्य प्रदान करने और तर्पण करने पर देवता एवं पितर सुखी नहीं होते हैं, ऐसा ब्रह्मा ने कहा ॥१०७॥ इसलिए विद्वान् प्रयत्नपूर्वक अपनी भार्या की रक्षा करता है, अन्यथा पति को पापभागी होकर निश्चित ही नरक में जाना पड़ता है ॥१०८॥ बुद्धिमान् व्यक्ति सावधान होकर पग-पग पर अपनी पत्नी की रक्षा करता है, क्योंकि स्त्री दोषों की पिटारी है जो न कोई व्रत जाने और न कोई स्थल ॥१०९॥ अतः स्त्री और भोजन बनाने के पात्र की सदा रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि वह दूसरे के स्पर्श करने पर अशुद्ध और अपने स्पर्श करने पर सदा शुद्ध रहती है ॥११० जो अधम स्त्री अपने पति का त्याग कर दूसरे पुरुष के पास जाती है वह चन्द्रमा-सूर्य के समय तक कुम्भीपाक नरक में पड़ी रहती है ॥१११॥ यमदूत-गण उसी को दूसरे नरक में डाल देते हैं। यदि वह उसमें से निकलने का प्रयत्न करती है, तो वे उसे दण्ड से ताडना देते हैं ॥११२॥ सांप के बराबर तीक्ष्ण दंष्ट्रा (दाढ़) वाले और अत्यन्त भयंकर कीड़े रात-दिन उस पुंश्चली स्त्री को निरंतर काटते रहते हैं ॥११३॥ वह स्त्री भय से निरन्तर विकृताकार शब्द करती है, किन्तु सूक्ष्म देह धारण करने के कारण प्रहार करने पर भी वह मरती नहीं है ॥११४॥ घड़ी भर के सुख लिए वह लोक में अपने वश को नष्ट करके

मुहूर्तार्धं सुखं भुक्त्वा लोकेऽत्र यशसा हता । पतिता परलोके च गतिमेतादृशीं लभेत् ।। ११५।।
परस्पृष्टा च वै नारी या स्पृहां कुरुते परम् । साऽपि दुष्टा परित्याज्या चेत्याह कमलोद्भवः ।।११६।।
तस्मान्नारी परैर्यत्नाददृष्टा कृतिभिः कृता । असूर्यंपश्या या दाराः शुद्धास्ताश्च पतिव्रताः ।।११७।।
स्वचछन्दगामिनी या च स्वतन्त्रा सूकरीसमा । अन्तर्दुष्टा सदा सैव निश्चितं परगामिनी ।।११८।।
स्वामिसाध्या च या नारी कुलधर्मभिया स्थिता । कान्तेन सार्धं सा कान्ता वैकुण्ठं याति निश्चितम् ।।११९।।
यात यूयं च पृथिवीं मानुषीं योनिमीप्सिताम् । कृष्णदर्शनमात्रेण गोलोकं यास्यथ ध्रुवम् ।।१२०।।
हरिणा निर्मिताश्छाया युष्माकं योगमायया । ता विप्रमन्दिरे स्थित्वा चाऽऽगमिष्यन्ति नो ध्रुवम् ।।१२१।।
पुनरंशेन नः पत्न्यो भविष्यथ न संशयः । युष्माकं मम शापश्च बभूव च वराधिकः ।।१२२।।
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्विरराम शुचाऽन्वितः । ता आगत्य महीं शापाद्बभूवुर्विप्रयोषितः ।।१२३।।
दत्त्वाऽन्नं हरये भक्त्या प्रजग्मुर्हरिमन्दिरम् । बभूव निश्चितं तासां शापश्च संपदोऽधिकः ।।१२४।।
निन्द्या नीचाच्च संपत्तिर्विपत्तिर्महतो वरा । अहो सद्यः सतां कोपश्चोपकाराय कल्पते ।।१२५।।

पतित होकर परलोक में ऐसी दशा को प्राप्त होती है ।।११५।। दूसरे पुरुष से स्पर्श की गई जो नारी अन्य पुरुष की इच्छा करती है, उस दुष्टा का भी त्याग कर देना चाहिए, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ।।११६।। इसीलिए विद्वानों ने स्त्रियों को प्रयत्नपूर्वक दूसरे से अदृष्ट रखने को बताया है। जो सूर्य को भी परदे के कारण न देख सकें, वही स्त्री शुद्ध एवं पतिव्रता होती हैं ।।११७।। जो स्वतन्त्र होकर स्वच्छन्द गमन करती है, वह सूकरी के समान है । परपुरुषगामिनी स्त्री निश्चित ही सदा भीतर से दुष्ट होती है ।।११८।। जो अपने कुलधर्म के भय से स्वामी के वश में रहती है, वह अपने पति के साथ निश्चित रूप से वैकुण्ठ जाती है ।।११९।। तुम लोग पृथ्वी पर मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण करो और भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन मात्र से तुम्हें निश्चित ही गोलोक की प्राप्ति होगी ।।१२०।। भगवान् योगमाया द्वारा तुम लोगों की छाया का निर्माण करके निश्चित रूप से ब्राह्मणों के घर भेज देंगे, वे निश्चय ही वहाँ रहने के बाद हमारे पास चली आयेंगी ।।१२१।। पुनः अंश मात्र से हम लोगों की पत्नी हो जाओगी, इसमें संशय नहीं। हमारा शाप तुम लोगों के लिए वरदान से भी अधिक लाभप्रद सिद्ध होगा ।।१२२।। इतना कहकर वे मुनि शोकमग्न होकर मौन हो गये और वे स्त्रियाँ भूतल पर आकर शापवश ब्राह्मणों की पत्नियाँ हुईं ।।१२३।। भगवान् को भोजन समर्पित करके उनके लोक पहुँच गयीं, इसीलिए उनका शाप वरदान से भी अधिक लाभप्रद हुआ है ।।१२४।। नीच व्यक्ति से सम्पत्ति मिलना भी निन्दनीय है और महान् से विपत्ति मिलना भी श्रेष्ठ है। अहा ! सज्जन का क्रोध भी तुरन्त उपकार का साधन बन जाता है ।।१२५।। भूतल पर बिना विपत्ति का अनुभव किये

Funding by IKS-MoE

विना विपत्तेर्महिमा कुतः कस्य भवेद्भुवि। भूताः कान्तपरित्यागान्मुक्ता ब्राह्मणयोषितः ।।१२६।।
इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमुत्तमम् । अहो पुण्यवतीनां च मोक्षाख्यानं मनोहरम् ।।१२७।।
श्रीकृष्णाख्यानं विप्रेन्द्र नूतनं नूतनं पदे पदे। नहि तृप्तिः श्रुतवतां केन श्रेयसि तृप्यते ।।१२८।।
यावद्रम्यं तत्कथितं यच्छ्रुतं गुरुवक्त्रतः । वद मां वाञ्छितं यत्ते किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।१२९।।

नारद उवाच

यद्यच्छ्रुतं त्वया पूर्वं गुरुवक्त्रात्कृपानिधे । मंगलं कृष्णचरितं तन्मे ब्रूहि जगद्गुरो ।।१३०।।

सूत उवाच

श्रुत्वा देवर्षिवचनमृषिर्नारायणः स्वयम् । अपरं कृष्णमाहात्म्यं प्रवक्तुमुपचक्रमे ।।१३१।।
इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० विप्रपत्नीमोक्षणप्रस्तावो
नामाष्टादशोऽध्यायः ।। १८ ।।

किसे बड़ाई प्राप्त हुई है ? पति द्वारा त्याग करने पर ब्राह्मण-वत्नियाँ मुक्त हो गयीं ।।१२६।। मैंने भगवान् का परमोत्तम चरित, जिसमें पुण्यवती स्त्रियों का मोक्ष सम्बन्धी मनोहर आख्यान सम्मिलित है, बता दिया ।।१२७।। विपेन्द्र श्रीकृष्ण का आख्यान पद-पद पर नवीन प्रतीत होता है, जिससे सुनने वालों को तृप्ति नहीं होती है। भला कल्याण में कौन तृप्त होता है ? ।।१२८।। मैंने गुरु के मुख से जितना सुना था, उतना रमणीक आख्यान बता दिया। अब पुनः तुम क्या सुनना चाहते हो, अपना अभीष्ट कह दो ।।१२९।।

नारद बोले—कृपानिधे, जगद्गुरो ! पहले आप ने गुरु के मुख से जो श्रीकृष्ण का मङ्गल चरित सुना था उसे मुझे बता दें ।।१३०।।

सूत बोले—देवर्षि नारद की बात सुनकर नारायण ऋषि ने स्वयं कृष्ण का अन्य माहात्म्य कहना आरम्भ किया ।।१३१।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में विप्र-पत्नी-मोक्ष-वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।।१८।।

Funding by IKS-MoE

एकोनविंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

एकदा बालकैः सार्धं बलदेवं विना हरिः। जगाम यमुनातीरं यत्र कालियमन्दिरम् ॥१॥
परिपक्वफलं भुक्त्वा यमुनातीरजे वने। स्वेच्छामयस्तृट्परीतः पपौ च निर्मलं जलम् ॥२॥
गोकुलं चारयामास शिशुभिः सह कानने। विजहार च तैः सार्धं स्थापयामास गोकुलम् ॥३॥
क्रीडानिमग्नचित्तोऽयं बालकाश्च मुदाऽन्विताः। भुक्त्वा नवतृणं गावो विषतोयं पपुर्मुने ॥४॥
विषाक्तं च जलं पीत्वा दारुणान्तकचेष्टया[1]। ज्वालाभिः कालकूटानां सद्यः प्राणांश्च तत्यजुः ॥५॥
दृष्ट्वा मृतं गोसमूहं गोपाश्चिन्ताकुला भिया। विषण्णवदनाः सर्वे तमूचुर्मधुसूदनम् ॥६॥
ज्ञात्वा सर्वं जगन्नाथो जीवयामास गोकुलम्। उत्तस्थुस्तत्क्षणं गावो ददृशुः श्रीहरेर्मुखम् ॥७॥
कृष्णः कदम्बमारुह्य यमुनातीरनीरजम्। पपात सर्पभवने नागमध्ये नराकृतिः ॥८॥

अध्याय १९

कालिय-दमन और दावाग्नि-मोक्षण

नारायण बोले—एक बार कृष्ण विना बलदेव के बालकों के साथ यमुना के किनारे गये, जहाँ कालिय नाग रहता था ॥१॥ वहाँ यमुना-तीर वाले वन में पके फल खाकर स्वेच्छामय भगवान् ने प्यास के कारण निर्मल जल का पान किया ॥२॥ उस वन में बालकों के साथ भगवान् ने गौओं को चराया पुनः उन्हें एकत्र रख कर खेलने लगे। भगवान् खेल में निमग्न थे, बालक लोग भी बड़ी प्रसन्नता से उसी में लगे थे। मुने! गौओं ने नयी घास चरकर यमुना के विषव्याप्त जल का पान किया ॥ ३–४॥ भीषण काल की प्रेरणा से गौओं ने उस विषमय जल का पान किया जिससे उस कालकूट की भीषण ज्वाला से सन्तप्त होकर अपने प्राणों का परित्याग कर दिया ॥५॥ गोप-बालकों ने गौओं के समूहों को मृतक देखकर भय और चिन्ता से व्याकुल एवं खिन्नमुख होकर मधुसूदन से कहा ॥६॥ जगन्नाथ ने समस्त वृत्तान्त जानकर समस्त गौओं को जीवित कर दिया, गौएँ उसी समय उठ गईं और हरि के मुख को देखने लगीं ॥७॥ इधर मनुष्याकृति श्रीकृष्ण यमुना-तटवर्ती जल के निकट उत्पन्न हुए कदम्ब पर चढ़कर उस सर्प के भवन में नागों के बीच कूद पड़े ॥८॥ नारद! उस समय यमुना का जल सौ हाथ

---

[1] क. °न्तरजे° ।

Funding by IKS-MoE

शतहस्तप्रमाणं च जलोत्थानं बभूव ह । बाला हर्षं विषादं च मेनिरे तत्र नारद ॥९॥
सर्पो नराकृतिं दृष्ट्वा कालीयः क्रोधविह्वलः । जग्राह श्रीहरिं तूर्णं तप्तलोहं यथा नरः ॥१०॥
दग्धकण्ठोदरो नागश्चोद्विग्नो ब्रह्मतेजसा । प्राणा यान्त्येवमुक्त्वा च चकारोद्वमनं पुनः ॥११॥
भग्नदन्तो रक्तमुखः कृष्णवज्राङ्गचर्वणात् । रक्तवक्त्रस्य भगवानुत्तस्थौ मस्तकोपरि ॥१२॥
नागो विश्वंभराक्रान्तः स प्राणांस्त्यक्तुमुद्यतः । चकार रक्तोद्वमनं पपात मूर्च्छितो मुने ॥१३॥
दृष्ट्वा तं मूर्च्छितं नागा रुरुदुः प्रेमविह्वलाः । केचित्पलायिता भीताः केचित्प्रविविशुर्बिलम् ॥१४॥
मरणाभिमुखं कान्तं दृष्ट्वा सा सुरसा सती । नागिनीभिः सह प्रेम्णा रुरोद पुरतो हरेः ॥१५॥
पुटाञ्जलियुता तूर्णं प्रणम्य श्रीहरिं भिया । धृत्वा पादारविन्दे च तमुवाच भियाऽऽकुला ॥१६॥

सुरसोवाच

हे जगत्कान्त कान्तं मे देहि मानं च मानद । पतिः प्राणाधिकः स्त्रीणां नास्ति बन्धुश्च तत्परः ॥१७॥
सकलभुवननाथ प्राणनाथं मदीयं न कुरु वधमनन्त प्रेमसिन्धो सुबन्धो ।
अखिलभुवनबन्धो राधिकाप्रेमसिन्धो पतिमिह कुरु दानं मे विधातुर्विधातः ॥१८॥

ऊपर उठ आया था। यह देखकर बालकों को हर्ष और विषाद दोनों उत्पन्न हुए ॥९॥ मनुष्य-रूप देखकर कालिय नाग अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और अति संतप्त लोहे को निगलने वाले मनुष्य की भाँति श्रीकृष्ण को बड़ी शीघ्रता से उसने निगल लिया ॥१०॥ किन्तु भगवान् के ब्रह्मतेज से उस नाग का कण्ठ और उदर जलने लगा। उसने खिन्न मन से कहा, अव मेरे प्राण निकल रहे हैं। यह कह कर उसने पुनः उन्हें उगल दिया ॥११॥ श्रीकृष्ण के वज्राङ्ग देह को चबाने से उसके दाँत टूट गये और मुँह लहूलुहान हो गया। भगवान् उस रक्त मुख वाले नाग के मस्तक पर खड़े हो गये ॥१२॥ मुने! विश्वम्भर भगवान् के भार से दवकर वह नाग प्राणत्याग करने लगा—रक्त का वमन करते हुए—मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ॥१३॥ उसे मूर्च्छित देखकर अन्य नाग प्रेमाकुल होकर रोदन करने लगे। कुछ भयभीत होकर पलायन कर गये, कुछ बिल में घुस गये। सती सुरसा अपने कान्त को मरणोन्मुख देखकर भगवान् के सामने नागिनियों के साथ रोदन करने लगी। उसने दोनों हाथ जोड़कर भगवान् को प्रणाम किया और उनके दोनों चरण कमल पकड़ उसने कहा ॥१४-१६॥

सुरसा बोली—हे जगत्कान्त! आप मानप्रद हैं, अतः मुझे मान दें और मेरे पति को मुझे लौटा दें, स्त्रियों को पति प्राणों से भी अधिक प्रिय होता है, अतः उनके लिए पति से बढ़कर कोई अन्य वन्धु नहीं है ॥१७॥ अनन्त! प्रेमसिन्धो सुवन्वो! आप सम्पूर्ण भुवन के स्वामी हैं, अतः मेरे प्राणनाथ का वध न करें। हे समस्त भुवन के वन्धु! आप राधिका जी के लिए प्रेम के सागर हैं और ब्रह्मा के भी ब्रह्मा हैं अतः मुझे पति दान

Funding by IKS-MoE

त्रिनयनविधिशेषाः षण्मुखश्चा[१]ऽऽस्यसंघैः स्तवनविषयजाड्यात्स्तोतुमीशा न वाणी ।
न खलु निखिलवेदाः स्तोतुमन्येऽपि देवाः स्तवनविषयशक्ताः सन्ति सन्तस्तवैव ॥१९॥
कुमतिरहमधिज्ञा योषितां क्वाधमा वा क्व भुवनगतिरीशश्चक्षुषो गोचरो मे ।
विधिहरिहरशेषैः स्तूयमानश्च यस्त्वमतनुमनुजमीशं स्तोतुमिच्छामि तं त्वाम् ॥२०॥
स्तवनविषयभीता पार्वती यस्य पद्मा श्रुतिगणजनयित्री स्तोतुमीशा न यं त्वाम् ।
कलिकलुषनिमग्ना वेदवेदाङ्गशास्त्रश्रवणविषयमूढा स्तोतुमिच्छामि किं त्वाम् ॥२१॥
शयानो रत्नपर्यङ्के रत्नभूषणभूषितः । रत्नभूषणभूषाङ्गी राधावक्षसि संस्थितः ॥२२॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गः स्मेराननसरोरुहः । प्रोद्यप्रेमरसाम्भोधौ निमग्नः सततं सुखात् ॥२३॥
मल्लिकामालमतीमालाजालैः शोभितशेखरः । पारिजातप्रसूनानां गन्धामोदितमानसः ॥२४॥
पुंस्कोकिलकलध्वानैर्भ्रमरध्वनिसंयुतैः । कुसुमेषुविकारेण पुलकाङ्कितविग्रहः ॥२५॥
प्रियाप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवान्यः सदा मुदा । वेदा अशक्ता यं स्तोतुं जडीभूता विचक्षणाः ॥२६॥
तमनिर्वचनीयं च किं स्तौमि नागवल्लभा । वन्देऽहं त्वत्पदाम्भोजं ब्रह्मेशशेषसेवितम् ॥२७॥
लक्ष्मीसरस्वतीदुर्गाजाह्नवीवेदमातृभिः । सेवितं सिद्धसंघैश्च मुनीन्द्रैर्मनुभिः सदा ॥२८॥

करें ॥१८॥ शिव, ब्रह्मा, शेष, षडानन (कार्तिकेय) आप की स्तुति करने में जड़ की भाँति मौन रह जाते हैं, सरस्वती भी आप की स्तुति करने में समर्थ नहीं है। समस्त वेद और अन्य देवगण भी आप की स्तुति नहीं कर सकते हैं, केवल आपके भक्त लोग ही स्तुति करने में समर्थ हैं ॥१९॥ कहाँ तो मैं कुबुद्धि, अज्ञ एवं नारियों में अधम सर्पिणी और कहाँ सम्पूर्ण भुवनों के परम आश्रय तथा किसी के भी दृष्टिपथ में न आने वाले परमेश्वर ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव और शेषनाग जिनकी सतत स्तुति करते हैं, ऐसे शरीररहित एवं मनुष्यरूपधारी आप परमेश्वर की स्तुति मैं करना चाहती हूँ, यह कैसी विडम्बना है? ॥२०॥ पार्वती, लक्ष्मी और वेदजननी सावित्री जिनकी स्तुति से डरती हैं और स्तुति करने में समर्थ नहीं हो पातीं, उन्हीं आप परमेश्वर का स्तवन कलिकलुष में निमग्न तथा वेद-वेदाङ्ग एवं शास्त्रों के श्रवण में मूढ स्त्री मैं क्यों करना चाहती हूँ, यह समझ में नहीं आता ॥२१॥ आप रत्नों के पलङ्ग पर रत्नों के भूषणों से भूषित होकर शयन करते हैं। रत्नालंकारों से अलंकृत अंग वाली राधा के वक्षःस्थल पर विराजमान रहते हैं ॥२२॥ आपका सर्वाङ्ग चन्दन से चर्चित है, मुखारविन्द पर मन्द मुसकान की प्रभा फैली हुई है, और आप उमड़ते हुए प्रेम-रस के सागर में सतत सुख से निमग्न रहते हैं ॥२३॥ आप का मस्तक मल्लिका और मालती की मालाओं से सुशोभित है। आपका मन पारिजात के पुष्पों की सुमन्ध से आमोदित रहता है। कोकिल की मधुर ध्वनि और भौंरों के गुञ्जार से उत्पन्न काम-विकार से आपका शरीर पुलकायमान रहता है। आप प्रिया द्वारा दिये गये ताम्बूल को सदा हर्ष से खाते हैं। वेद भी जिनकी स्तुति करने में असमर्थ हैं और बड़े-बड़े विद्वान् जिनके स्तवन में जड़वत् हो जाते हैं, उन

---

१. क० °श्चान्यसं°

निष्कारणायाखिलकारणाय सर्वेश्वरायापि परात्पराय ।
स्वयंप्रकाशाय परावराय परावराणामधिपाय ते नमः ॥२९॥
हे कृष्ण हे कृष्ण सुरासुरेश ब्रह्मेश शेषेश प्रजापतीश ।
मुनीश मन्वीश चराचरेश सिद्धीश सिद्धेश [1]गणेश पाहि ॥३०॥
धर्मेश धर्मीश शुभाशुभेश वेदेश वेदेष्वनिरूपितश्च ।
सर्वेश सर्वात्मक सर्वबन्धो जीवीश जीवेश्वर पाहि मत्प्रभुम् ॥३१॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरा । विधृत्य चरणाम्भोजं तस्थौ नागेशवल्लभा ॥३२॥
नागपत्नीकृतं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । सर्वपापात्प्रमुक्तस्तु यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् ॥३३॥
इह लोके हरेर्भक्तिमन्ते दास्यं लभेद्ध्रुवम् । लभते पार्षदो भूत्वा सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥३४॥

नारद उवाच

नागपत्नीवचः श्रुत्वा भगवान्सर्वनन्दनः । प्रहृष्टोत्फुल्लनयनः किमुवाच हरिः स्वयम्
कथयस्व महाभाग रहस्यं परमाद्भुतम् ॥३५॥

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा भगवान्सर्वदर्शनः[2] । उवाच परमात्मानं मधुवृन्दं पदे पदे ॥३६॥

अनिर्वचनीय की स्तुति मैं नागवल्लभा क्या कर सकती हूँ ? मैं तो आपके चरण-कमल की केवल वन्दना कर रही हूँ, जिसका सेवन ब्रह्मा, शिव, शेष, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, गंगा, सावित्री, सिद्धों के समूह, मुनीन्द्र और मनु करते हैं ॥२४-२८॥ कारणरहित, समस्त के कारण, सबके ईश्वर, परात्पर, स्वयं प्रकाश, श्रेष्ठ और श्रेष्ठों के अधीश्वर आप को मैं नमस्कार कर रही हूँ ॥२९॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे सुर-असुर के अधीश्वर ! हे ब्रह्मा के ईश ! हे शेष के स्वामी ! हे प्रजापति के ईश ! तथा हे मुनि, मनु, चराचर, सिद्धि, सिद्ध और गणों के ईश ! आप हमारी रक्षा करें ॥३०॥ आप धर्म, धर्मी, शुभ-अशुभ और वेद के अधीश्वर हैं। वेदों में आपका अच्छी तरह निरूपण नहीं हो सका है। हे सर्वेश ! आप सबके आत्मा, सबके बन्धु, देहधारियों तथा जीवों के ईश हैं, अतः मेरे स्वामी की रक्षा कीजिये ॥३१॥ इस भाँति स्तुति करके भक्ति से कन्धे झुकाये वह नागपत्नी भगवान् का चरण-कमल पकड़ कर बैठ गयी ॥३२॥ नाग-पत्नी कृत इस स्तोत्र का जो तीनों संध्याओं में पाठ करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर अन्त में भगवान् के लोक में चला जाता है ॥३३॥ इस लोक में भगवान् की भक्ति, अन्त में दुर्लभ दास्यपद और पार्षद होकर सालोक्य आदि चारों मुक्तियों को प्राप्त कर लेता है ॥३४॥

नारद बोले—नाग-पत्नी की बात सुनकर हर्ष से विकसित नेत्रों वाले सर्वनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं उससे क्या कहा ? महाभाग ! यह परम अद्भुत रहस्य बताइए ॥३५॥

---

[1] क. गुणे° । [2] क. °र्वनन्दनः ।

नारायण उवाच

नागपत्नीवचः श्रुत्वा श्रीकृष्णस्तामुवाच ह। पुटाञ्जलियुतां पादे पतितां भयविह्वलाम् ॥३७॥

श्रीकृष्ण उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ नागेशे वरं वृणु भयं त्यज। गृहाण कान्तं हे मातर्मद्वरादजरामरम् ॥३८॥
कालिन्दीह्रदमुत्सृज्य स्वकीयं भवनं व्रज। भर्त्रा स्वगोष्ठ्या सार्धं च गच्छ वत्से[1] सुखी भव ॥३९॥
अद्यप्रभृति नागेशि भूता कन्या च त्वं मम। त्वत्प्राणाधिक एवायं जामाता च न संशयः ॥४०॥
मत्पादपद्मचिह्नेन गरुडस्त्वत्पतिं शुभे। कृत्वा च स्तवनं भक्त्या प्रणमिष्यति मत्पदम् ॥४१॥
त्यज त्वं गरुडाद्भीतिं शीघ्रं रमणकं व्रज। ह्रदान्निर्गच्छ वत्से त्वं वरं वृणु यथेप्सितम् ॥४२॥
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रसन्नवदनेक्षणा। उवाच साश्रुनेत्रा सा भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥४३॥

सुरसोवाच

वरं दास्यसि चेदानीं वरदेश्वर मेऽपि च। त्वत्पादाब्जे दृढां भक्तिं निश्चलां दातुमर्हसि ॥४४॥

सूत बोले—नारद की बात सुनकर सर्वद्रष्टा भगवान् नारायण पद-पद में मधुराशि परमात्मा के बारे में कहने लगे ।।।३६॥

नारायण बोले—नाग-पत्नी की बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने उससे कहा, जो हाथ जोड़े और भयाकुल होकर उनके चरण-कमल पर पड़ी थी ॥३७॥

श्रीकृष्ण बोले—हे नागेश्वरी ! उठो, उठो, भय त्यागो, वर माँगो। हे मातः ! मेरे वरदान द्वारा अपने अजर-अमर पति को ग्रहण करो ॥३८॥ यमुना का ह्रद (कुण्ड) छोड़कर अपने घर को चली जाओ। वत्से ! अपने पति एवं परिवार को साथ लिये तुम जाओ और सुख से रहो ॥३९॥ हे नागेशि ! आज से तुम मेरी कन्या हुई और तुम्हारा प्राणाधिक प्रिय यह नाग मेरा जामाता हुआ, इसमें संशय नहीं ॥४०॥ शुभे ! मेरे चरण-कमल के चिह्न के कारण गरुड़ तुम्हारे पति से वैर न कर, भक्तिपूर्वक स्तुति करके मेरे चरण को प्रणाम करेंगे, अतः तुम गरुड़ से भय न करो, रमणकद्वीप को चली जाओ। हे वत्से ! इस कुण्ड से निकलकर तुम मनइच्छित वरदान माँगो। श्रीकृष्ण की बात सुनकर प्रसन्नता से उसके मुख और नेत्र विकसित हो गये—उसने सजलनयन होकर और भक्ति से कन्धे झुकाकर कहा ॥४१-४३॥

सुरसा बोली—हे ईश्वर ! यदि मुझे आप वरदान देना चाहते हैं, तो अपने चरण-कमल की निश्चल दृढ़ भक्ति प्रदान करें ॥४४॥ मेरा मन भौंरे की भाँति आपके ही चरण-कमल में निरन्तर भ्रमण किया करे, आपका

---

१. क. 'से स्वभीप्सितम् ।

Funding by IKS-MoE

मन्मनस्त्वत्पदाम्भोजे भ्रमतु भ्रमरो यथा । तव स्मृतेर्विस्मृतिर्मे कदाऽपि न भविष्यति ॥४५॥
स्वकान्ते मम सौभाग्यं कान्तोऽयं ज्ञानिनां वरः । इत्येवं प्रार्थनीयं च परिपूर्णं कुरु प्रभो ॥४६॥
इत्येवमुक्त्वा सर्पस्त्री प्रतस्थौ पुरतो हरेः । शरत्पार्वणचन्द्रास्यं ददर्श श्रीहरेर्मुखम् ॥४७॥
लोचनाभ्यां पपौ वक्त्रं निमेषरहितं सती । सर्वाङ्गपुलकोद्भिन्ना सानन्दाश्रुपरिप्लुता ॥४८॥
सुन्दरं बालकं दृष्ट्वा पुत्रस्नेहं प्रकुर्वती । उवाच पुनरेवेदं भक्त्युद्रेकपरिप्लुता ॥४९॥
न यास्यामि रमणकं तत्र नास्ति प्रयोजनम् । सर्पः करोतु संसारं कुरु मां निजकिंकरीम् ॥५०॥
न वाञ्छा मम हे कृष्ण सालोक्यादिचतुष्टये । त्वत्पदाम्भोजसेवायाः कलां नार्हति षोडशीम् ॥५१॥
विना त्वत्पादसेवां च यो वाञ्छति वरान्तरम् । भारते दुर्लभं जन्म लब्ध्वाऽसौ वञ्चितः स्वयम् ॥५२॥
नागपत्न्या वचः श्रुत्वा स्मेराननसरोरुहः । प्रसन्नमानसः श्रीमानोमित्येवमुवाच ह ॥५३॥
एतस्मिन्नन्तरे दिव्यः सद्रत्नसारनिर्मितः । आजगाम रथस्तूर्णमुद्दीप्तस्तेजसा मुने ॥५४॥
पार्षदप्रवरैर्युक्तो वस्त्रमालापरिच्छदः । शतचक्रो वायुवेगी मनोयायी मनोहरः ॥५५॥
अवरुह्य रथात्तूर्णं श्यामलाः श्यामकिंकराः । प्रणम्य कृष्णं तां नीत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ॥५६॥

स्मरण सदैव बना रहे, उसकी कभी भी विस्मृति न हो ॥४५॥ अपने पति में मेरा यह सौभाग्य हो कि ये ज्ञानिप्रवर हो जायँ। प्रभो ! यही मेरी प्रार्थना है, इसे पूर्ण करें ॥४६॥ इस प्रकार कहकर नागपत्नी भगवान् के सामने खड़ी हो गई। उसने शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा को लज्जित करने वाले श्रीकृष्ण के मुख का दर्शन किया ॥४७॥ उस सती ने अपने दोनों नेत्रों से निमेषरहित होकर हरि के मुख-सौन्दर्य का पान किया। उसका सर्वाङ्ग पुलकित हो गया, आनन्द के आँसू बहने लगे ॥४८॥ भगवान् को सुन्दर बालक के रूप में देखकर उनमें पुत्रोचित स्नेह करने लगी और भक्ति के उद्रेक से आप्लावित होकर पुनः इस प्रकार बोली ॥४९॥ मैं रमणक को नहीं जाऊँगी। वहाँ मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। मेरे पति सर्प संसार चलावे। मुझे आप अपनी दासी बना लें ॥५०॥ हे कृष्ण ! मुझे सालोक्य आदि चारों प्रकार की मुक्तियों की कामना नहीं है, क्योंकि यह आपके चरण-कमल की सेवा की सोलहवीं कला के भी समान नहीं है ॥५१॥ भारतवर्ष में जन्म पाकर जो आपके चरण-कमल की सेवा की याचना न कर अन्य वरदान की इच्छा करता है वह वञ्चित ही रह जाता है ॥५२॥ नागपत्नी की बात सुनकर श्रीकृष्ण के मुखकमल पर मुसकराहट फैल गई। उनका मन प्रसन्न हो गया और श्रीमान् हरि ने 'एवमस्तु' कहकर अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी ॥५३॥ मुने ! इसी बीच एक दिव्य रथ वहाँ आया, जो उत्तम रत्न के सार भाग से सुरचित और तेज से देदीप्यमान् था। वह पार्षद-प्रवरों से युक्त तथा वस्त्र और मालाओं से सुसज्जित था। उसमें सौ पहिए लगे थे। वह वायु की भाँति वेगवान्, मन की भाँति चलने वाला तथा मनोहर था ॥५४-५५॥ उस पर से श्यामसुन्दर के श्याम कान्ति वाले सेवक शीघ्र उतर पड़े, और भगवान को प्रणाम करके उस (नागपत्नी) को लेकर उत्तम गोलोक को चले गये ॥५६॥ भगवान् ने तेज द्वारा उसकी छाया का निर्माण करके

हरिश्छायां विनिर्माय ददौ सर्पाय तेजसा । स च किंचिन्न बुबुधे मोहितो विष्णुमायया ।।५७।।
अवरुह्य सर्पमूर्ध्नः श्रीकृष्णः करुणानिधिः । ददौ हस्तं च कृपया शीघ्रं कालियमस्तके ।।५८।।
संप्राप्य चेतनां सद्यो ददर्श पुरतो हरिम् । पुटाञ्जलियुतां साश्रुपूर्णां च सुरसां सतीम् ।।५९।।
प्रणनाम हरिं सद्यो रुरोद प्रेमविह्वलः । भक्त्युद्रेकात्साश्रुनेत्रां पुलकाङ्कितविग्रहाम् ।।६०।।
तूष्णीभूतां च तां दृष्ट्वा समुवाच कृपानिधिः । यदीश्वरस्य सततं योग्यायोग्ये समा कृपा ।।६१।।

श्रीकृष्ण उवाच

वरं वृणु त्वं कालिय यस्ते मनसि वर्तते । त्वं मे प्राणाधिको वत्स सुखं तिष्ठ भयं त्यज ।।६२।।
तस्याहमनुगृह्णामि योऽतिभक्तो ममांशजः । किंचित्तद्दमनं कृत्वा तत्प्रसादं करोम्यहम् ।।६३।।
त्वद्वंशजातान्सर्पांश्च हन्ति यो मानवाधमः । ब्रह्महत्यासमं पापं भविता तस्य निश्चितम् ।।६४।।
मत्पादपद्मचिह्ने यः करोति दण्डताडनम् । द्विगुणं ब्रह्महत्याया भविता तस्य किल्बिषम् ।। ६५।।
लक्ष्मीर्यास्यति तद्गेहाच्छापं दत्त्वा सुदारुणम् । वंशायुर्यशसां हानिर्भविता तस्य निश्चितम् ।।६६।।
ध्रुवं वर्षशतं कालसूत्रे यास्यति मद्गिरा । त्वत्प्रमाणा कीटसंघा दंशिष्यन्ति च संततम् ।।६७।।

सर्प (कालिय) को दे दिया। विष्णु की माया से मोहित होने से कारण वह (सर्प) कुछ समझ न सका ।।५७।। करुणानिधान श्रीकृष्ण कालिय के शिर पर से उतर पड़े और कृपा करके मस्तक पर शीघ्र अपना हाथ रख दिया ।।५८।। हाथ रखते ही उसके शरीर में चेतना लौट आयी। उसने अपने सामने भगवान् को और हाथ जोड़े तथा आँखों में आँसू भरे पतिव्रता सुरसा को भी देखा ।।५९।। उसने तुरन्त भगवान् को प्रणाम किया और प्रेमविभोर होकर रोदन करने लगा। भक्ति के उद्रेक से अश्रुपूर्ण नेत्र वाली तथा रोमाञ्चित शरीर वाली सुरसा को चुप देखकर दयानिधि श्रीकृष्ण स्वयं बोले। क्योंकि योग्य-अयोग्य प्राणी पर भी भगवान् की कृपा सदा समान रूप से ही रहती है ।।६०-६१।।

श्रीकृष्ण बोले--हे कालिय ! अपना मन इच्छित वरदान माँगो। वत्स ! तुम मुझे प्राण से भी अधिक प्रिय हो, अतः भय छोड़कर सुख से रहो। ।।६२।। क्योंकि जो मेरे अंश से समुत्पन्न एवं अतिभक्त होता है उस पर मैं विशेष कृपा करता हूँ। उसका कुछ दमन करके मैं उस पर पुनः अनुग्रह करता हूँ ।।६३।। जो नराधम तुम्हारे वंशज सर्पों का हनन करेगा, उसे निश्चित रूप से ब्रह्महत्या के समान पाप का भागी होना पड़ेगा ।।६४।। मेरे चरण-कमल के चिह्न पर जो दण्डाघात करेगा, वह ब्रह्महत्या के दुगुने पाप का भागी होगा ।।६५।। उसके घर से लक्ष्मी अतिदारुण शाप देकर चली जाएगी और उसके वंश, आयु और यश की निश्चित ही हानि होगी ।।६६।। मेरे वचनानुसार वह कालसूत्र नरक में सौ वर्षों तक निश्चित पड़ा रहेगा। तुम्हारे प्रमाण के कीड़े उसे निरन्तर डँसा करेंगे ।।६७।। वहाँ भोग करने के उपरान्त भूतल पर जन्म होने पर उसके

भोगान्ते जन्म लब्ध्वा च तन्मृत्युस्तस्य दंशनात् । तस्य वंशोद्भवानां च त्वद्वंशाद्भविता भयम् ॥६८॥
ये च त्वद्वंशजान्दृष्ट्वा सुपदाङ्कं मदीयकम् । प्रणमिष्यन्ति भक्त्या ते मुच्यन्ते सर्वपातकात् ॥६९॥
गच्छ शीघ्रं रमणकं त्यज भीतिं खगाधिपात् । मत्पदाङ्कं मूर्ध्नि दृष्ट्वा त्वां भक्त्या प्रणमिष्यति ॥७०॥
तव त्वद्वंशजानां च गरुडान्न भयं क्वचित् । सर्वेषां ज्ञातिसर्पाणां वरोऽद्य भव मद्वरात् ॥७१॥
वरं किमपरं वत्स वाञ्छितं वरयाधुना । भयं त्यक्त्वा कथय मां त्वदीयं दुःखभञ्जनम् ॥७२॥
श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा कालियः कम्पितो भिया । पुटाञ्जलियुतो भूत्वा तमुवाच भुजंगमः ॥७३॥

कालिय उवाच

वरेऽन्यस्मिन्मम विभो वाञ्छा नास्ति वरप्रद । भक्तिं स्मृतिं त्वत्पदाब्जे देहि जन्मनि जन्मनि ॥७४॥
जन्म ब्रह्मकुले वाऽपि तिर्यग्योनिषु वा समम् । तद्भवेत्सफलं यत्र स्मृतिस्त्वच्चरणाम्बुजे ॥७५॥
तन्निष्फलः स्वर्गवासो नास्ति चेत्त्वत्पदस्मृतिः । त्वत्पादध्यानयुक्तस्य यत्तत्स्थानं च तत्परम् ॥७६॥
क्षणं वा कोटिकल्पं वा पुरुषायुः क्षयोऽस्तु वा । यदि त्वत्सेवया याति सफलो निष्फलोऽथवा ॥७७॥

काटने से ही उसकी मृत्यु होगी ॥६८॥ उसके वंशजों को तुम्हारे वंशवालों से सदा भय बना रहेगा। तुम्हारे वंशजों को देखकर, जो मेरे सुन्दर चरण-चिह्नों को भक्तिपूर्वक प्रणाम करेंगे, वे समस्त पातकों से मुक्त हो जायेंगे। इसलिए तुम शीघ्र रमणक चले जाओ और खगाधीश्वर गरुड़ से भय त्याग दो। वह तुम्हारे शिर पर मेरे चरण-चिह्न को देखकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करेगा। अतः तुम्हें और तुम्हारे वंशजों को गरुड़ से भय कहीं नहीं है। आज से मेरा वर पाकर अपनी जाति के सर्पों में तुम सर्वश्रेष्ठ हो जाओ। वत्स ! तुम इस समय और क्या वरदान चाहते हो, कहो। तुम मुझे अपना दुःख-भञ्जन समझकर निर्भय होकर मुझसे कहो। श्रीकृष्ण की बात सुनकर कालिय सर्प डर से कम्पित होकर हाथ जोड़कर बोला ॥६९-७३॥

कालिय ने कहा—वरदाता प्रभो ! मुझे किसी अन्य वर की इच्छा नहीं है, यदि आप देना ही चाहते हैं तो अपने चरण-कमल की भक्ति और उसका स्मरण प्रत्येक जन्म में होता रहे, यही वरदान दें। क्योंकि ब्राह्मण-कुल में जन्म हो या पशुपक्षी आदि योनि में, दोनों समान हैं। सफल वही है, जिसमें आपके चरण-कमल का निरन्तर स्मरण होता रहे। यदि आपके चरण-कमल का स्मरण न हुआ, तो स्वर्ग का निवास भी व्यर्थ है। आपके चरण के ध्यान में निमग्न रहने वाले का जो स्थान होता है, वही परमोत्तम स्थान है, चाहे क्षण मात्र के लिए हो या करोड़ों कल्पों के लिए। उसकी आयु का क्षय ही क्यों न हो जाय, यदि वह आपकी सेवा में बीत

तेषां चाऽऽयुर्व्ययो नास्ति ये त्वत्पादाब्जसेवकाः। न सन्ति जन्ममरणरोगशोकार्तिभीतयः ॥७८॥
इन्द्रत्वे वाऽमरत्वे वा ब्रह्मत्वे चातिदुर्लभे। वाञ्छा नास्त्येव भक्तानां त्वत्पादसेवनं विना ॥७९॥
सुजीर्णपटखण्डस्य समं नूतनमेव च । पश्यन्ति भक्ता किं चान्यत्सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥८०॥
संप्राप्तस्त्वन्मनुर्ब्रह्मन्ननन्ताद्यावदेव हि । तावत्त्वद्भावनेनैव त्वद्वर्णोऽहमनुग्रहात् ॥८१॥
मां च भक्तमपक्वं वा विज्ञाय गरुडः स्वयम् । देशाद्दूरं च न्यक्कारं चकार दृढभक्तिमान् ॥८२॥
भवता च दृढां भक्तिं दत्त्वा मे वरदेश्वर। स च उक्तश्च भक्तोऽहं न मां त्यक्तुं क्षमोऽधुना ॥८३॥
त्वत्पादपद्मचिह्नाक्तं दृष्ट्वा श्रीमस्तकं मम। सदोषं गुणयुक्तं मां सोऽधुना त्यक्तुमक्षमः ॥८४॥
ममाऽऽराध्याश्च नागेन्द्रा न तद्बाध्योऽहमीश्वर । भयं न केभ्यः सर्वत्र तमनन्तं गुरुं विना ॥८५॥
यं देवेन्द्राश्च देवाश्च मुनयो मनवो नराः । स्वप्ने ध्यानं न पश्यन्ति चक्षुषोर्गोचरः समे ॥८६॥
भक्तानुरोधात्साकारः कुतस्ते विग्रहो विभो। सगुणस्त्वं च साकारो निराकारश्च निर्गुणः ॥८७॥
स्वेच्छामयः सर्वधाम सर्वबीजं सनातनम् । सर्वेषामीश्वरः साक्षी सर्वात्मा सर्वरूपधृक् ॥८८॥
ब्रह्मेशशेषधर्मेन्द्रवेदवेदाङ्गपारगाः । स्तोतुं यमीशं ते जाड्याः सर्पः स्तोष्यति तं विभुम् ॥८९॥

रही है तो सफल है, अन्यथा उसका कोई फल नहीं है, वह व्यर्थ है। आपके चरण-कमल की सेवा करने वालों की आयु का कभी व्यय नहीं होता है। उन्हें जन्म, मरण, रोग शोक, दुःख और भय कभी नहीं होते हैं ॥७४-७८॥ आपके चरणों की सेवा किये बिना भक्तों को कभी इन्द्रत्व, अमरत्व एवं दुर्लभ ब्रह्मत्व के पद के लिए भी इच्छा नहीं होती है । और क्या ? भक्त लोग जीर्ण-शीर्ण (फटे-पुराने) वस्त्र के टुकड़े के समान ही नूतन सालोक्य आदि चारो मोक्षों को भी देखते हैं ॥७९-८०॥ ब्रह्मन् ! अनन्त देव से आपका मन्त्र प्राप्त कर मैं आपकी भावना में निमग्न रहा। इसी कारण अनुग्रहवश आपका वर्ण भी मुझे प्राप्त हो गया है। गरुड़ ने उस समय मुझे अपरिपक्व भक्त समझ कर धिक्कारते हुए देश से दूर निकाल दिया था, किन्तु हे वरदेश्वर ! आपने मुझे सुदृढ़ भक्ति प्रदान कर उन (गरुड़) से कह दिया कि मैं भी (आपका) भक्त हूँ, अतः इस समय मेरा त्याग आपके लिए उचित नहीं है ॥८१-८३॥ आपके चरणारविन्दों के चिह्न से भूषित मेरे श्रीयुत मस्तक को देखकर गरुड़ मुझे सदोष होने पर भी गुणवान् मानेंगे, अतः इस समय मेरा त्याग नहीं कर सकेंगे ॥८४॥ अब तो वे यह मानकर कि नागेन्द्रगण हमारे आराध्य हैं, मुझे कष्ट नहीं देंगे। हे ईश्वर ! अब मैं उनका वध्य नहीं रहा। उन गुरुदेव अनन्त के बिना मुझे कहीं किसी से भी भय नहीं है ॥८५॥ देवेन्द्रगण, देवगण, मुनिवृन्द, मनु और मानव-समूह स्वप्न और ध्यान में जिन्हें नहीं देख पाते हैं, वे मेरे नेत्रों के सामने स्थित हैं ॥८६॥ विभो ! आपके शरीर कहाँ ? आप तो भक्तों के अनुरोध से साकार होते हैं। आप सगुण साकार तथा निर्गुण-निराकार, स्वेच्छामय, समस्त के धाम, सर्ववीज, सनातन, सभी के ईश्वर, साक्षी, सबके आत्मा और समस्त रूपधारी हैं ॥८७-८८॥ ब्रह्मा, शिव, शेष, धर्म और इन्द्र तथा वेद वेदाङ्ग के पारगामी विद्वान् जिन प्रभु की स्तुति करने में जड़ की भाँति मूक रह जाते हैं, उन विभु की स्तुति एक (तुच्छ) सर्प क्या कर सकता है ? हे नाथ ! हे करुणासिंधो !

Funding by IKS-MoE

हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो [1]क्षमाधमम् । खलस्वभावादज्ञानात्कृष्ण त्वं चर्वितो मया ॥९०॥
नास्त्रलक्ष्यो यथाऽऽकाशो न दृश्यान्तो न लङ्घ्यकः । न स्पृश्यो हि न चाऽऽवर्यस्तथा
तेजस्त्वमेव च ॥९१॥
इत्येवमुक्त्वा नागेन्द्रः पपात चरणाम्बुजे । ओमित्युक्त्वा हरिस्तुष्टः सर्वं तस्मै वरं ददौ ॥ ९२॥
नागराजकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् । तद्वंश्यानां च तस्यैव नागेभ्यो न भयं भवेत् ॥९३॥
स नागशय्यां कृत्वैव स्वप्तुं शक्तः सदा भुवि । विषपीयूषयोर्भेदो नास्त्येव तस्य भक्षणे ॥९४॥
नागग्रस्ते नागघाते प्राणान्ते विषभोजनात् । स्तोत्रस्मरणमात्रेण सुस्थो भवति मानवः ॥९५॥
भूर्जे कृत्वा स्तोत्रमिदं कण्ठे वा दक्षिणे करे । बिभर्ति यो भक्तियुक्तो नागेभ्योऽपि न तद्भयम् ॥९६॥
यत्र गेहे स्तोत्रमिदं नागस्तत्र न तिष्ठति । विषाग्निवज्रभीतिश्च न भवेत्तत्र निश्चितम् ॥९७॥
इह लोके हरेर्भक्ति स्मृतिं च सततं लभेत् । अन्ते च स्वकुलं पूत्वा दास्यं च लभते ध्रुवम् ॥९८॥

नारायण उवाच

नागेन्द्राय वरं दत्त्वा पुनस्तं जगदीश्वरः । उवाच मधुरं वाक्यं परिणामसुखावहम् ॥९९॥

हे दीनबन्धो ! मुझ अधम को क्षमा करें । हे कृष्ण ! मैंने दुष्ट स्वभाव और अज्ञान वश आपको चबा डाला ; किन्तु जैसे आकाश अस्त्र का लक्ष्य नहीं हो सकता है, न उसका अंत दिखायी देता है और न (किसी भाँति) उसे लांघा जा सकता है, न उसका स्पर्श किया जा सकता और न उस पर आवरण डाला जा सकता है, उसी प्रकार आप हैं, आप ही प्रकाश हैं ॥८९-९१॥ इस प्रकार कहकर वह नागेन्द्र भगवान् के चरण-कमल पर गिर पड़ा । भगवान् उस पर सन्तुष्ट हो गये । उन्होंने 'एवमस्तु' कहकर उसे सम्पूर्ण वर प्रदान कर दिया ॥९२॥ नागराज कृत इस स्तोत्र का जो प्रातःकाल उठकर पाठ करेगा, उसे और उसके वंशजों को कभी नागों से भय नहीं होगा । वह भूतल पर नाग की शय्या बनाकर शयन कर सकता है । उसके विष और अमृत भक्षण करने में कोई भेद नहीं रह जाएगा ॥९३-९४॥ नाग द्वारा ग्रस्त होने पर, उसके द्वारा आघात किये जाने पर तथा विष-भोजन से प्राणान्त उपस्थित होने पर इस स्तोत्र के स्मरण मात्र से मनुष्य स्वस्थ हो जाता है ॥९५॥ इस स्तोत्र को भोजपत्र पर लिखकर कण्ठ या दाहिने बाहु में जो भक्तिपूर्वक धारण करता है, उसे नागों से कभी भी भय नहीं होता और जिसके घर में यह स्तोत्र रहता है वहाँ सर्प नहीं ठहर सकता है । वहाँ विष, अग्नि और वज्र से निश्चित ही कभी भय नहीं प्राप्त होता है । उसे इस लोक में भगवान् की भक्ति और स्मरण निरन्तर बना रहता है और अन्त समय अपने कुल को पवित्र करते हुए वह निश्चय ही भगवान् का दास्य भाव प्राप्त कर लेता है ॥९६-९८॥

नारायण बोले—जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने नागेन्द्र को वर प्रदान करके पुनः उससे मधुर वचन कहा, जो भविष्य में सुखप्रद था ॥९९॥

---

१ क. °माक्षमम् ।

श्रीकृष्ण उवाच

गच्छ त्वं च रमणकं यथेन्द्रनगरं परम् । सार्धं स्वगोष्ठ्या नागेन्द्र यमुनाजलवर्त्मना ॥१००॥
श्रुत्वा नागो हरेराज्ञां रुरोद प्रेमविह्वलः । कदा द्रक्ष्यामि त्वत्पादपद्मं नाथेत्युवाच ह ॥१०१॥
प्रणम्य शतकृत्वश्च स्त्रिया गोष्ठ्या सहेश्वरम् । जगाम जलमार्गेण नागेन्द्रो विरहातुरः ॥१०२॥
यमुनाह्रदतोयं च बभूवामृतकल्पकम् । प्रसन्ना जन्तवः सर्वे बभूवुस्तेन नारद ॥१०३॥
गत्वा ददर्श भवनं यथेन्द्रनगरं परम् । आज्ञया च कृपासिन्धोर्निर्मितं विश्वकर्मणा ॥१०४॥
तत्र तस्थौ च नागेन्द्रः स्त्रिया पुत्रगणैः सह । निःशङ्को हर्षयुक्तश्च हरिभावनतत्परः ॥१०५॥
इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमद्भुतम् । सुखदं मोक्षदं सारं परं किं श्रोतुमिच्छसि ॥१०६॥

सूत उवाच

महर्षेर्वचनं श्रुत्वा नारदो हर्षविह्वलः । ऋषिं पप्रच्छ संदेहं सर्वसंदेहभञ्जनम् ॥१०७॥

नारद उवाच

कथं विहाय कालीयः स्वपूर्वभवनं परम् । जगाम यमुनातीरं तन्मे ब्रूहि जगद्गुरो ॥१०८॥

श्रीकृष्ण बोले—हे नागेन्द्र ! तुम इसी यमुना-जल के मार्ग से स्त्री और समस्त परिवार लेकर इन्द्रनगर के समान उत्तम रमणक द्वीप को चले जाओ। भगवान् की ऐसी आज्ञा सुनकर नाग प्रेमाकुल होकर रोदन करने लगा—हे नाथ ! आपके चरण-कमल का दर्शन अब कब प्राप्त होगा ॥१००-१०१॥ विरह से व्याकुल वह नागेन्द्र भगवान् को सैकड़ों बार प्रणाम करके स्त्री-परिवार के साथ यमुना-जलमार्ग से चला गया ॥१०२॥ उस यमुना-कुण्ड का जल अमृत के समान मधुर हो गया । इससे सभी जीव-जन्तुओं को प्रसन्नता हुई ॥१०३॥ रमणक पहुँचकर उसने इन्द्र-भवन के समान अपने भवन को देखा । कृपासिन्धु भगवान् की आज्ञा से विश्वकर्मा ने उसका निर्माण किया था ॥१०४॥ अपने स्त्री-पुत्र आदि परिवार समेत वह भगवान् के प्रेम में निर्भय होकर वहाँ निःशंक और सहर्ष रहने लगा ॥१०५॥ इस प्रकार मैंने भगवान् का अद्भुत चरित कह दिया, जो सुखप्रद, मोक्षदायक और सारभूत है । अब और क्या सुनना चाहते हो ?॥१०६॥

सूत बोले—महर्षि कीबात सुनकर नारद प्रेममग्न हो गये और समस्त सन्देह भञ्जन करने वाले ऋषि से उन्होंने अपना सन्देह पूछा ॥१०७॥

नारद बोले—जगद्गुरो ! कालिय नाग अपने पहले के भवन को छोड़कर यमुना-कुण्ड में क्यों चला गया था ? वह मुझे बतायें ॥१०८॥

Funding by IKS-MoE

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रान्मे मलये सूर्यपर्वणि ॥१०९॥
कृष्णाख्यानप्रसङ्गेन सुप्रभापश्चिमे तटे । पप्रच्छ धर्मं पुलहः कथितं मुनिसंसदि ॥११०॥
इदमाख्यानमाश्चर्यमुवाच तं कृपानिधिः । तत्र श्रुतं मया विप्र निबोध कथयामि ते ॥१११॥
शेषाज्ञया नागगणाः प्रतिसंवत्सरं भिया । कार्तिकीपूर्णिमायां तु कुर्वन्ति गरुडार्चनम् ॥११२॥
पुष्पैर्धूपैश्च दीपैश्च नैवेद्यैर्बलिभिर्मुदा । पुष्करे च महातीर्थे सुस्नातो भक्तिसंयुतः ॥११३॥
तस्य पूजां च कालीयो न चकारात्यहंकृतः । नागपूजोपकरणं बलाद्भक्षितुमुद्यतः ॥११४॥
चक्रुर्निवारणं नागा नीतिमूचुर्मदोद्धतम् ।न शक्ता वारणे ते चेत्याविर्भूतः खगेश्वरः ॥११५॥
दृष्ट्वा खगेश्वरं नागा कालीयप्राणरक्षया । प्राणशक्त्या च युयुधुर्यावत्सूर्योदयं मुने ॥११६॥
पक्षीन्द्रतेजसा सर्वे समुद्विग्नाः पलायिताः । अनन्तं शरणं जग्मुः सर्वेषामभयप्रदम् ॥११७॥
पलायनपरान्दृष्ट्वा नागांश्च करुणानिधिः। तत्र तस्थौ च निःशङ्कः कालीयस्तं ददर्श ह ॥११८॥
स्मृत्वा हरिपदाम्भोजं कालीयो युयुधे मुने । मुहूर्तं च तयोर्युद्धं बभूवातीव दारुणम् ॥११९॥
पराजितश्च नागेन्द्रस्तेजसा गरुडस्य च । भिया पलायनं कृत्वा जगाम यमुनाह्रदम् ॥१२०॥

नारायण बोले—नारद ! मैं एक प्राचीन इतिहास कह रहा हूँ, जो सूर्यग्रहण के समय मलयपर्वत पर सुप्रभा के पश्चिम किनारे श्रीकृष्ण की कथा के प्रसङ्ग में धर्म ने बताया था, सुनो। वहाँ महर्षियों की सभा में पुलह ऋषि ने धर्म से पूछा, तो कृपानिधान धर्म ने उनसे यही आश्चर्यमय आख्यान कहा था। वहीं मैंने सुना था, विप्र ! वह मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥१११॥ भगवान् शेष की आज्ञा से नागगण भयभीत होकर प्रतिवर्ष कार्तिक में पूर्णिमा के दिन पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, और विविध उपहार-सामग्री अर्पित करके प्रसन्नतापूर्वक गरुड़ की अर्चना करते थे। (एक बार) महातीर्थ पुष्कर में भक्तिपूर्वक भली भाँति स्नान करके कालिय ने अहंकार वश उक्त तिथि को गरुड़ की पूजा नहीं की, प्रत्युत नाग-पूजा की सामग्री बलात् खाने के लिए तैयार हो गया ॥११२-११४॥ नागों ने उसे मना किया और उस मदमत्त से कहा—'हम लोग तुम्हें रोकने में असमर्थ हैं।' उसी समय वहाँ पक्षिराज गरुड़ आ गये ॥११५॥ उन्हें देखकर नागों ने कालिय के प्राण रक्षार्थ अपने प्राणों की बाजी लगाकर सूर्योदय तक गरुड़ से युद्ध किया। अन्त में पक्षिराज गरुड़ के तेज से आहत होकर सब व्याकुल होकर भाग निकले। सब लोग अनन्त की शरण में जा पहुँचे, जो सबके लिए अभयदाता हैं ॥११६-११७॥ सभी नागों को भागने में तत्पर देखकर करुणानिधि कालीय निर्भय होकर वहाँ खड़ा हो गया और गरुड़ की ओर ताकने लगा ॥११८॥ मुने ! वह श्रीकृष्ण के चरण-कमल का स्मरण करके युद्ध करने लगा। एक मुहूर्त (दो घड़ी) तक दोनों में अति भयंकर युद्ध हुआ ॥११९॥ उपरान्त गरुड़ के तेज से नागेन्द्र कालिय पराजित हो गया और भयभीत होकर यमुनाकुण्ड में भाग गया ॥१२०॥ वहाँ सौभरि महर्षि के शाप वश गरुड़ नहीं जाते थे।

Funding by IKS-MoE

न तं सौभरिशापेन खगेन्द्रो गन्तुमीश्वरः। तत्र तस्थौ भिया नागो जग्मुः पश्चाच्च तद्गणाः ॥१२१॥

नारद उवाच

कथं तु सौभरेः शापो बभूव गरुडाय वै । कथं न शक्तो गन्तुं तं ह्रदमीश्वरवाहनः ॥१२२॥

नारायण उवाच

दिव्यं वर्षसहस्रं च वर्षाणां तत्र सौभरिः । तपस्तप्त्वा महासिद्धो दध्यौ कृष्णपदाम्बुजम् ॥१२३॥
समीपे ध्यायमानस्य कूले च यमुनाजले । गणेन सार्धं निःशङ्कः करोति भ्रमणं मुदा ॥१२४॥
पुच्छमुत्फाल्य बहुधा प्रेरितः परमेच्छया । मुनिं प्रदक्षिणीकृत्य यात्यायाति मुदाऽन्वितः ॥१२५॥
सुकुलं सुमहात्मानं दर्शं दर्शं खगाधिपः । जग्राह चञ्चुना मीनं मुनीन्द्रस्य समीपतः ॥१२६॥
गच्छन्तं तं मीनमुखं ददर्श कोपचक्षुषा । प्रकम्पितो मुनेर्दृष्ट्या मीनस्तोये पपात ह ॥१२७॥
तमुवाच मुनीन्द्रश्च पुनरादातुमुद्यतम् । मीनश्च गरुडत्रासात्तस्थौ मुनिसमीपतः ॥१२८॥

सौभरिरुवाच

गच्छ दूरं गच्छ दूरं खगेन्द्र मत्समीपतः । का योग्यता मत्पुरस्ते ग्रहीतुं जीवमुल्बणम् ॥१२९॥
श्रीकृष्णवाहनं ज्ञात्वा चाऽऽत्मानं बहु मन्यसे । त्वद्विधान्कोटिशः कृष्णः स्रष्टुं शक्तश्च वाहकान् ॥१३०॥

नाग वहाँ भय से रहने लगा और उसके पीछे उसके गण भी वहाँ पहुँच गये ॥१२१॥

नारद बोले—गरुड़ को सौभरि ऋषि का शाप कैसे हो गया और ईश्वर-वाहन (गरुड़) वहाँ जाने में समर्थ क्यों नहीं हुए ? ॥१२२॥

नारायण बोले—सौभरि ऋषि वहाँ एक सहस्र दिव्य वर्षों तक कठिन तप करके महासिद्ध हो श्रीकृष्ण के चरण-कमल का ध्यान करते थे। उन ध्यानपरायण मुनि के समीप पक्षिराज गरुड़ यमुना के जल में तथा तट पर भी अपने गण के साथ प्रसन्नतापूर्वक निःशंक विचरा करते थे। वे अपनी उत्कृष्ट इच्छा से प्रेरित होकर बहुधा पूंछ (अथवा पंख) ऊपर को उठाकर मुनि की सानन्द परिक्रमा करते हुए आते-जाते थे ॥१२३-१२६॥ कुलीन एवं उत्तम महात्मा को देखकर पक्षिराज ने मुनीन्द्र के निकट से ही एक मछली को चोंच से पकड़ लिया ॥१२६॥ मछली को मुँह में दबाये जाते हुए गरुड़ को मुनि ने रोष भरी दृष्टि से देखा। मुनि की उस दृष्टि से गरुड़ कांप उठे और वह मछली जल में गिर पड़ी ॥१२७॥ गरुड़ ने उसे पुनः पकड़ना चाहा कि वह मछली गरुड़ के भय से मुनि के समीप चली गयी, यह देखकर मुनि ने उनसे कहा ॥१२८॥

सौभरि बोले—पक्षिराज ! मेर पास से दूर हटो, दूर हटो। मेरे सामने से विशाल जीवों को पकड़ने की तुममें क्या योग्यता है ? ॥१२९॥ क्या श्रीकृष्ण का वाहन समझकर अपने को बहुत लगाते हो ? श्रीकृष्ण

Funding by IKS-MoE

करोमि भस्मसात्तूर्णं त्वां च भ्रूभङ्गलीलया । वाहनं च त्वमीशस्य न वयं तव किंकराः ॥१३१॥
अद्यप्रभृति पक्षीन्द्र यद्यागच्छसि मे ह्रदम् । मदीयशापात्तूर्णं च भस्मसाद्भविता ध्रुवम् ॥१३२॥
मुनीन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रचचाल खगेश्वरः । स्मारं स्मारं कृष्णपादं तं प्रणम्य जगाम ह ॥१३३॥
अद्यप्रभृति विप्रेन्द्र पतगेन्द्रस्य संततम् । ह्रदस्य श्रुतिमात्रेण कम्पो भवति निश्चितम् ॥१३४॥
इतिहासश्च कथितो यः श्रुतो धर्मवक्त्रतः । सरहस्यं श्रुतिसुखं प्रकृतं शृणु मङ्गलम् ॥१३५॥
विज्ञाय सुचिरं बाला नोत्तस्थौ तज्जलाद्धरिः । चक्रुर्विषादं मोहाच्च रुरुदुर्यमुनातटे ॥१३६॥
स्ववक्षोघातनं चक्रुः केचिद्बालाः शुचाऽऽकुलाः । केचिन्निपत्य भूमौ च मूर्च्छां प्रापुर्हरिं विना ॥१३७॥
ह्रदं प्रवेष्टुं केचिच्च विरहेण समन्विताः । केचिद्गोपालबालाश्च चक्रुश्च तन्निवारणम् ॥१३८॥
कृत्वा विलापं केचिच्च प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यताः । तेषां केचिज्ज्ञानवन्तो रक्षां चक्रुः प्रयत्नतः ॥१३९॥
केचिदूचुश्च हाहेति कृष्ण कृष्णेति केचन । केचिद्वक्तुं प्रवृत्तिं च प्रययुर्नन्दसंनिधिम् ॥१४०॥
केचित्संमीलितास्तत्र शोकमोहभयातुराः । इत्यूचुः किं करिष्यामः कुतोऽस्माकं गतो हरिः ॥१४१॥
हे नन्दसूनो हे कृष्ण प्राणेभ्योऽप्यधिकप्रिय । हे बन्धो दर्शनं देहीत्यूचुः प्राणाः प्रयान्ति हि[1] ॥१४२॥

तुम्हारे ऐसे करोड़ों वाहनों को बनाने में समर्थ हैं ॥१३०॥ मैं तुम्हें भौंह टेढ़ी करने मात्र से भस्म कर सकता हूँ। तुम ईश्वर के वाहन हो तो हम तुम्हारे नौकर नहीं हैं ॥१३१॥ पक्षीन्द्र ! यदि आज से मेरे कुण्ड में तुम पुनः कभी आओगे तो, मेरे शाप से निश्चित भस्म हो जाओगे ॥१३२॥ मुनीन्द्र की बात सुनकर खगेश्वर गरुड़ विचलित हो गये। कृष्ण के चरण-कमल का स्मरण करते-करते मुनि को प्रणाम करके चले गये ॥१३३॥ विप्रेन्द्र ! आज भी उस कुण्ड का नाम सुनने पर निश्चित ही गरुड़ की देह निरन्तर काँपने लगती है ॥१३४॥ वह इतिहास कह दिया, जिसे मैंने धर्म के मुख से सुना था। अब श्रवण-सुखद, मंगलमय (भगवच्चरित) रहस्य के साथ सुनो ॥१३५॥ यमुना-तट पर खड़े हुए बालकों ने जाना कि समय अधिक बीत गया है, भगवान् जल से बाहर नहीं निकले। अतः मोह वश उन्हें बहुत विषाद हुआ। वे रोने लगे। कुछ बालक शोक के कारण अपनी छाती पीटने लगे। कुछ लोग भगवान् के वियोग में मूच्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े। कोई उनके वियोग में उसी कुण्ड में कूदने जा रहा था, जिन्हें कुछ बालकों ने किसी भाँति वहाँ से हटा दिया। कुछ विलाप करते हुए प्राण देने को तैयार हो गये, जिन्हें कुछ ज्ञानियों ने बड़े प्रयत्न से सुरक्षित रखा ॥१३६-१३९॥ कुछ लोग हा-हा-कार कर रहे थे और कुछ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! की रट लगा रहे थे। कोई यह समाचार बताने के लिए नन्द के यहाँ चले गये ॥४०॥ कोई शोक, मोह एवं भय से व्याकुल होकर यह कहने लगे कि—अब हमलोग क्या करें, हमारे हरि कहाँ चले गये ॥१४१॥ हे नन्द-सूनो ! हे प्राणों से अधिक प्रिय कृष्ण ! हे बन्धो ! हमें शीघ्र दर्शन प्रदान करो, नहीं तो ये प्राण अब जा रहे हैं। ॥१४२॥ इसी बीच कुछ बालक नन्द के पास पहुँच गये, जो अति चञ्चल तथा

---

[1] क. मः।

एतस्मिन्नन्तरे केचिद्बालका नन्दसंनिधिम् । संप्रापुरतिलोलाश्च रुदन्तः शोकविह्वलाः ॥१४३॥
प्रवृत्तिमूचुस्तं शीघ्रं यशोदां मूलतो बलम् । गोपान्गोपालिकाश्चैव रक्तपङ्कजलोचनाः ॥१४४॥
श्रुत्वा वार्तां च ते सर्वे शीघ्रं जग्मुः शुचाऽन्विताः । कलिन्दनन्दिनीतीरं रुरुदुर्बालकैर्युताः ॥१४५॥
गत्वा संमीलिताः सर्वे रुरुदुः शोकमूर्च्छिताः । ह्रदं विशन्तीमम्बां तां केचिच्चक्रुर्निवारणम् ॥१४६॥
गोपा गोपालिकाश्चैव जघ्नुरङ्गानि शोकतः । केचिद्विललपुस्तत्र मूर्च्छां पापुश्च केचन ॥१४७॥
ह्रदं विशन्तीं तां राधां वारयामास काचन । मूर्च्छां च प्राप सा शोकान्मृतेव च सरित्तटे ॥१४८॥
विलप्यातिभृशं नन्दो मूर्च्छां प्राप पुनः पुनः । भूयोऽपि रोदनं कृत्वा भूयो मूर्च्छामवाप ह ॥१४९॥
विलपन्तं भृशं नन्दं यशोदां शोककर्शिताम् । गोपाश्च गोपिकाश्चैव राधिकामतिमूर्च्छिताम् ॥१५०॥
रुदतो बालकान्सर्वान्बालिकाश्च शुचाऽन्विताः । सर्वांश्च बोधयामास बलश्च ज्ञानिनां वरः ॥१५१

बलदेव उवाच

गोपा गोपालिका बालाः सर्वे शृणुत मद्वचः । हे नन्द ज्ञानिनां श्रेष्ठ गर्गवाक्यस्मृतिं कुरु ॥१५२॥
जगद्बिभर्तुः शेषस्य संहर्तुः शंकरस्य च । विधातुः संविधातुश्च भुवि कस्मात्पराजयः ॥१५३॥
परमाणुः परो व्यूहः स्थुलात्स्थूलः परात्परः । विद्यमानोऽप्यदृश्यश्च संयोगो योगिनामपि ॥१५४॥

शोकाकुल होकर रोदन कर रहे थे ॥१४३॥ उन्होंने शीघ्र ही समस्त वृत्तान्त यशोदा को और उनके पास बैठे हुए बलभद्र को तथा अन्यान्य गोपों और लाल कमल के समान नेत्रों वाली गोपांगनाओं को यह समाचार बताया। समाचार सुनकर वे सबके सब शोक से व्याकुल हो शीघ्रता से यमुना-तट पर जा पहुँचे और बालकों के साथ रोने लगे ॥१४४-४५॥ सभी लोग एकत्र हो रोते-रोते शोक से मूर्च्छित हो गये । माता यशोदा उस कुण्ड में कूदने लगीं जिन्हें कुछ लोगों ने रोक दिया ॥१४६॥ कुछ गोप-गोपियाँ शोक से अपने अंगों को पीटने लगीं, कोई विलाप कर रहे थे तो कोई मूर्च्छित हो गये ॥१४७॥ राधा को उस कुण्ड में प्रवेश करते हुए कुछ गोपियों ने रोक दिया, किन्तु नदी-तट पर राधा शोक के कारण मृतक की भाँति मूर्च्छित हो गयीं ॥१४८॥ उधर नन्द को भी अति विलाप के कारण बार-बार मूर्च्छा आ रही थी । वे रोदन करके पुनः मूर्च्छित हो गये ॥१४९॥ विलाप करते हुए नन्द, शोककातर यशोदा, गोपों और गोपियों, अतिमूर्च्छित राधिका, रोदन करते हुए बालकों, शोकान्वित बालिकाओं तथा सभी को ज्ञानिप्रवर बलराम ने समझाना आरंभ किया ॥१५०-१५१॥

बलदेव बोले—हे गोपो, गोपियो और बालको ! सभी लोग मेरी बात सुनो ! हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ नन्द ! आप गर्गाचार्य की बात का स्मरण करें—जो जगत् का धारण करने वाले शेष के भी आधारभूत हैं, संहार करने वाले शिव के भी संहारक हैं और विधाता के भी विधाता हैं, उनका भूतल पर किससे पराजय हो सकता है ? वे अणु से भी अणु तथा परम महान् हैं। वे स्थूल से भी स्थूल और परात्पर हैं। वे विद्यमान रहते हुए भी अदृश्य हैं और योगियों के भी सम्यक् योग हैं ॥१५२-१५४॥ दिशाओं का एकत्रीकरण नहीं होता है, आकाश

Funding by IKS-MoE

दिशां नास्ति समाहारः स्पृश्यो नाऽऽकाश एव च। अपि [1]सर्वेश्वरो बाध्य इत्यूचुः श्रुतयः स्फुटम् ॥१५५॥
नाऽऽत्मा दृश्यो नास्त्रलक्ष्यो न वध्यो न हि दृश्यकः। नाग्निग्रस्तो न हिंस्यश्चापीदमाध्यात्मिका विदुः ॥१५६॥
विग्रहोऽस्यैव कृष्णस्य भक्तध्यानार्थमेव च । ज्योतिः स्वरूपस्य विभोर्नाऽऽद्यन्तमध्यमात्मनः ॥१५७॥
जलप्लुते च ब्रह्माण्डे जलशायी जनार्दनः । यन्नाभिपद्मजो ब्रह्मा तस्येशस्य ह्रदे विपत् ॥१५८॥
मशकश्चेत्क्षमो ग्रस्तुं ब्रह्माण्डमखिलं पितः । न तथाऽपि तदीशं तं ग्रस्तुं सर्पः क्षमो भवेत् ॥१५९॥
इत्येवं कथितं सर्वमाध्यात्मिकमनुत्तमम् । निगूढं योगिनां सारं संशयच्छेदकारणम् ॥१६०॥
बलदेववचः श्रुत्वा गर्गवाक्यमनुस्मरन् । तत्याज शोकं नन्दश्च व्रजश्च व्रजयोषितः ॥१६१॥
प्रबोधं मेनिरे सर्वे न यशोदा न राधिका । बन्धुविच्छेदविषये प्रबोधे न स्थितं मनः ॥१६२॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णमुत्पतन्तं जलान्मुने । ददृशुस्तं सुप्रसन्ना व्रजाश्च व्रजयोषितः ॥१६३॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं सस्मितं सुमनोहरम् । अस्निग्धवस्त्रमस्निग्धमलुप्तचन्दनाञ्जनम् ॥१६४॥

का स्पर्श नहीं होता है, उसी भांति सर्वेश्वर किसी से बाध्य नहीं है, इस प्रकार श्रुतियाँ स्पष्ट कहती हैं ॥१५५॥ आत्मा दृश्य नहीं है, न अस्त्रों का ही लक्ष्य है, वह न तो वध के योग्य है और न दृश्य ही है। उसे अग्नि जला नहीं सकता है। वह हिंसा करने योग्य भी नहीं है, ऐसा अध्यात्मवादियों का कहना है ॥१५६॥ कृष्ण की देह जो दिखायी पड़ती है, वह केवल भक्तों के ध्यानार्थ है। ज्योतिः स्वरूप एवं व्यापक परमात्मा का आदि, मध्य और अन्त नहीं है ॥१५७॥ जिस समय निखिल ब्रह्माण्ड जल में विलीन हो जाता है, उस समय भगवान् जनार्दन जल में शयन करते हैं जिसके नाभि-कमल से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं, उस ईश्वर को एक साधारण कुण्ड में क्या विपत्ति घेर सकती है ? ॥१५८॥ हे पिता ! इतना ही नहीं, यदि एक मच्छर समस्त ब्रह्माण्ड को निगल जाने में समर्थ हो जाय तो भी उस प्रभु को ग्रसने के लिए सर्प समर्थ नहीं हो सकता ॥१५९॥ यह मैंने परमोत्तम-आध्यात्मिक ज्ञान की बात कही है, जो योगियों के लिए भी अति गूढ़, तत्त्वस्वरूप, एवं संशय-नाशक है ॥१६०॥ बलदेव की बात सुनकर और गर्गाचार्य की बात का स्मरण करके नन्द, व्रज और व्रज की स्त्रियों ने शोक को त्याग दिया ॥१६१॥ सबने इस प्रबोधन को मान लिया, किन्तु यशोदा और राधिका को उससे सन्तोष नहीं हुआ। प्रियजन के वियोग के विषय में मन किसी प्रकार के प्रबोधन को नहीं मानता ॥१६२॥ मुने ! उसी बीच जल से ऊपर आते हुए भगवान् कृष्ण को बड़ी प्रसन्नता से व्रज और व्रज की स्त्रियों ने देखा ॥१६३॥ उनका शरत्काल की पूर्णिमा के चन्द्र की भांति परम मनोहर मुख मुसकराहट से युक्त था। उनका वस्त्र भीगा नहीं था, शरीर

---

[1] क. बोधेश्वरो बा° ।

Funding by IKS-MoE

सर्वाभरणसंयुक्तं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । मयूरपिच्छचूडं च वंशीवदनमच्युतम् ॥१६५॥
यशोदा बालकं दृष्ट्वा कृत्वा वक्षसि सस्मिता । चुचुम्ब वदनाम्भोजं प्रसन्नवदनेक्षणा ॥१६६॥
क्रोडे चकार नन्दश्च बलश्च रोहिणी मुदा । निमेषरहिताः सर्वे ददृशुः श्रीमुखं हरेः ॥१६७॥
प्रेमान्धा बालकाः सर्वे चक्रुरालिङ्गनं हरेः । पपुश्चक्षुश्चकोरैश्च मुखचन्द्रं च गोपिकाः ॥१६८॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सहसा काननान्तरम् । दावाग्निर्वेष्टयामास तैः सर्वैः सह गोकुलम् ॥१६९॥
दृष्ट्वा शैलप्रमाणाग्निं परितः काननान्तरे । प्रणाशं मेनिरे सर्वे भयमापुश्च संकटे ॥१७०॥
श्रीकृष्णं तुष्टुवुः सर्वे संपुटाञ्जलयो व्रजाः । बाला गोप्यश्च संत्रस्ता भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥१७१॥

बाला ऊचुः

यथा संरक्षितं ब्रह्मन्सर्वापत्स्वेव नः कुलम् । तथा रक्षां कुरु पुनर्दावाग्नेर्मधुसूदन ॥१७२॥
त्वमिष्टदेवताऽस्माकं त्वमेव कुलदेवता । स्रष्टा पाता च संहर्ता जगतां च जगत्पते ॥१७३॥
वह्निर्वा वरुणो वाऽपि चन्द्रो वा सूर्य एव च । यमः कुबेरः पवन ईशानाद्याश्च देवताः ॥१७४॥
ब्रह्मेशशेषधर्मेन्द्रा मुनीन्द्रा मनवः स्मृताः । मानवाश्च तथा दैत्या यक्षराक्षसकिंनराः ॥१७५॥
ये ये चराचराश्चैव सर्वे तव विभूतयः । आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषां च तवेच्छया ॥१७६॥

भी भीगा नहीं था। भाल का चन्दन और आँखों का अञ्जन लुप्त नहीं हुआ था ॥१६४॥ समस्त आभूषणों से भूषित, ब्रह्मतेज से देदीप्यमान, मोरपंख की चूड़ा धारण किये, मुख में वंशी लगाये, अच्युत बालक को देखकर यशोदा छाती से लगाकर मुसकरा उठीं, मुख और नेत्र से प्रसन्नता प्रकट करती हुई वे हरि के मुख-कमल का चुम्बन करने लगीं ॥१६५-१६६॥ नन्द, बलराम और रोहिणी ने भी हर्ष से उन्हें गोद में ले लिया, सभी लोग अपलक (एकटक) नेत्र से हरि के श्रीमुख का दर्शन करने लगे ॥१६७॥ सभी बालकों ने भी प्रेममग्न होकर भगवान् का आलिङ्गन किया। गोपियाँ अपने नयन-चकोर से भगवान् के मुखचन्द्र का पान करने लगीं ॥१६८॥ उसी समय वहाँ सहसा वन के भीतरी भाग को तथा उन सबके साथ गोकुल को दावाग्नि ने घेर लिया ॥१६९॥ लोगों ने देखा—उसकी ज्वाला पर्वत के समान ऊँची उठ रही थी। उस संकट में सब भयभीत हो उठे तथा अपना विनाश मान बैठे ॥१७०॥ तब समस्त व्रजवासी, गोपीजन और ग्वाल-बाल संत्रस्त हो भक्ति से हाथ जोड़े, भक्ति से कन्धे झुकाये श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे ॥१७१॥

बालक बोले—ब्रह्मन्! मधुसूदन! आपने जिस प्रकार सभी संकटों में हमारे कुल-परिवार की रक्षा की है, उसी भाँति इस दावाग्नि से पुनः हमारी रक्षा कीजिये ॥१७२॥ आप ही हमारे इष्टदेव और कुल-देवता हैं। जगत्पते! आप ही जगत् के सृजन, पालन और संहार करने वाले हैं। अग्नि, वरुण, चन्द्र, सूर्य, यम, कुवेर, पवन एवं ईशान आदि देवता तथा ब्रह्मा, शिव, शेष, धर्म, मुनीन्द्र, मनु, मानव, दैत्य, यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि जो-जो चर-अचर हैं, वे सब आपकी विभूतियाँ हैं। उन सबके आविर्भाव और नाश आपकी इच्छा से ही

Funding by IKS-MoE

अभयं देहि गोविन्द वह्निसंहरणं कुरु। वयं त्वां शरणं यामो रक्ष नः शरणागतान् ॥१७७॥
इत्येवमुक्त्वा ते सर्वे तस्थुर्ध्यात्वा पदाम्बुजम् । दूरीभूतस्तु दावाग्निः श्रीकृष्णामृतदृष्टितः ॥१७८॥
दूरीभूते च दावाग्नौ ननृतुस्ते मुदाऽन्विताः । सर्वापदः प्रणश्यन्ति हरिस्मरणमात्रतः ॥१७९॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् । वह्नितो न भवेत्तस्य भयं जन्मनि जन्मनि ॥१८०॥
शत्रुग्रस्ते च दावाग्नौ विपत्तौ प्राणसंकटे । स्तोत्रमेतत्पठित्वा तु मुच्यते नात्र संशयः ॥१८१॥
शत्रुसैन्यं क्षयं याति सर्वत्र विजयी भवेत् । इह लोके हरेर्भक्तिमन्ते दास्यं लभेद् ध्रुवम् ॥१८२॥

नारायण उवाच

दावाग्निमोक्षणं कृत्वा तैः सार्धं शृणु नारद । जगाम श्रीहरिर्गेहं कुबेरभवनोपमम् ॥१८३॥
ब्राह्मणेभ्यो धनं नन्दः परिपूर्णं ददौ मुदा । भोजनं कारयास ज्ञातिवर्गांश्च बान्धवान् ॥१८४॥
नानाविधं मङ्गलं च हरेर्नामानुकीर्तनम् । वेदांश्च पाठयामास विप्रद्वारा मुदाऽन्वितः ॥१८५॥
एवं मुमुदिरे सर्वे वृन्दारण्ये गृहे गृहे । श्रीकृष्णचरणाम्भोजध्यानैकतानमानसाः ॥१८६॥
इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमङ्गलम् । कलिकिल्बिषकाष्ठानां दाहनं दहनोपमम् ॥१८७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० कालीयदमनदावाग्निमोक्षणं
नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

होते हैं। हे गोविन्द ! हमें अभय दीजिए, और अग्नि का संहरण कीजिए। हम लोग आपकी शरण में आये हैं, आप हम शरणागतों की रक्षा करें ॥१७३-१७७॥ यह कहकर सब लोग भगवान् के चरण-कमल का ध्यान करने लगे। श्रीकृष्ण की अमृतमयी दृष्टि पड़ते ही दावाग्नि दूर हो गया ॥१७८॥ दावानल के दूर हो जाने पर वे हर्षित होकर नाचने लगे। भगवान् के स्मरण-मात्र से सभी आपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं ॥१७९॥ जो प्रातः काल उठकर इस परमपुण्यमय स्तोत्र का पाठ करता है, उसे जन्म-जन्मान्तर में कभी भी अग्नि का भय नहीं होता है ॥१८०॥ शत्रुओं से घिर जाने पर, दावाग्नि में आ जाने पर और विपत्ति या प्राण-संकट उपस्थित होने पर इस स्तोत्र का पाठ करके वह निःसन्देह मुक्त हो जाता है ॥१८१॥ (इसके पाठ से) शत्रु सेना नष्ट हो जाती है और वह सर्वत्र विजयी होता है। इस लोक में श्रीकृष्ण की भक्ति और अन्त में दास्यपद को अवश्य पा जाता है ॥१८२॥

नारायण बोले—नारद ! श्रीकृष्ण दावाग्नि से (उन लोगों को) बचाकर उन सब के साथ अपने घर गये, जो कुबेर-भवन के समान था ॥१८३॥ नन्द ने ब्राह्मणों को हर्ष से धन का प्रचुर दान किया और बन्धु-वर्ग के लोगों को तथा बन्धुओं को भोजन कराया ॥१८४॥ उन्होंने नाना भाँति का मङ्गल, भगवान् के नामों का संकीर्तन और वेद-पाठ ब्राह्मणों द्वारा सम्पन्न कराया ॥१८५॥ इस प्रकार वृन्दावन के घर-घर में सभी लोग श्रीकृष्ण के चरण-कमल के ध्यान में एकाग्र होकर रहने लगे ॥१८६॥ इस प्रकार भगवान् का मङ्गल-चरित मैंने तुम्हें सुना दिया जो कलि-कल्मष रूपी काठ के जलाने में अग्नि के समान है ॥१८७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में कालिय-दमन और
दावाग्नि-मोक्ष-वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

अथ विंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

एकदा बालकैः सार्धं बलेन सह माधवः । भुक्त्वा पीत्वाऽनुलिप्तश्च वृन्दारण्यं जगाम ह ॥१॥
क्रीडां चकार भगवान्कौतुकेन च तैः सह । क्रीडानिमग्नचित्तानां दूरं तद्गोकुलं ययौ ॥२॥
तस्य प्रभावं विज्ञातुं विधाता जगतां पतिः । चकार निह्नुतिं गाश्च वत्सांश्च बालकानपि ॥३॥
विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञः सर्वकारकः । पुनश्चकार तत्सर्वं योगीन्द्रो योगमायया ॥४॥
जगाम श्रीहरिर्गेहं कालयित्वा च गोकुलम् । बलेन बालकैः सार्धं क्रीडाकौतुकमानसः ॥५॥
एवं चकार भगवान्वर्षमेकं च प्रत्यहम् । यमुनागमनं गोभिर्बलेन सह बालकैः ॥६॥
ब्रह्मा प्रभावं विज्ञाय लज्जनम्रात्मकंधरः । आजगाम हरेः स्थानं भाण्डीरवटमूलके ॥७॥
ददर्श कृष्णं तत्रैव गोपालगणवेष्टितम् । यथा पार्वणचन्द्रं च विभान्तं स्वगणैः सह ॥८॥
रत्नसिंहासनस्थं च हसन्तं सस्मितं मुदा । पीतवस्त्रपरीधानं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥९॥
रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् । रत्नकुण्डलयुग्माभ्यां स्वकपोलस्थलोज्ज्वलम् ॥१०॥

अध्याय २०

गौओं के बछड़ों और बालकों का अपहरण

नारायण बोले—एक बार माधव बालकों और बलभद्र समेत खा-पीकर एवं चन्दनलिप्त होकर वृन्दावन में गये ॥१॥ भगवान् ने कौतुकवश उन लोगों के साथ बहुत खेल किया । खेल में निमग्नचित्त वाले बालकों की गौएँ बहुत दूर निकल गयीं ॥२॥ उस समय जगत् के विधाता (ब्रह्मा) ने भगवान् का प्रभाव जानने की इच्छा से गौओं, बछड़ों और उन्हें चराने वाले बालकों को छिपा दिया ॥३॥ उनका अभिप्राय जानकर सर्वज्ञाता एवं सर्वस्रष्टा योगीन्द्र हरि ने योगमाया द्वारा उन सब की पुनः सृष्टि कर ली ॥४॥ क्रीडाकौतुक में मन लगाने वाले श्रीकृष्ण गौओं को चराकर बलभद्र और बालकों समेत घर गये ॥५॥ इस प्रकार भगवान् ने एक वर्ष तक यह किया । प्रत्येक दिन वे बलभद्र और गौओं के साथ यमुना जाते और पुनः सायं समय घर लौट आते ॥६॥ भगवान् के इस प्रभाव को समझकर ब्रह्मा लज्जा से कंधे झुकाकर भाण्डीर-वट के मूल में श्रीकृष्ण के स्थान में आये ॥७॥ वहाँ उन्होंने गोपाल बालकों से घिरे श्रीकृष्ण को देखा, मानों नक्षत्रों के साथ पूर्णिमा के चन्द्र प्रकाशित हो रहे हों ॥८॥ वे (श्रीकृष्ण) रत्न-सिंहासन पर सुखासीन होकर प्रसन्नता से मन्द मुसुकान समेत हँस रहे थे, तथा पीताम्बर पहने, ब्रह्म तेज से प्रज्ज्वलित, रत्नों के केयूर, कंगन और मंजीर से सुशोभित थे । रत्नों के युगल कुण्डलों से उनका गण्डस्थल समुद्भासित था । श्यामसुन्दर का श्रीविग्रह करोड़ों कन्दर्पों के समान लावण्ययुक्त था । वे

कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाममनोहरम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमार्चितविग्रहम् ॥११॥
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विभूषितम् । नवीननीरदश्यामं प्रोद्भिन्ननवयौवनम् ॥१२॥
मालतीमाल्यसंयुक्तं मयूरपिच्छचूडकम् । स्वाङ्गसौंदर्यदीप्त्या च कृतभूषणभूषितम् ॥१३॥
शरत्पार्वणचन्द्रस्य प्रभामुष्टास्यसुन्दरम् । पक्वबिम्बाधरौष्ठं च खगेन्द्रचञ्चुनासिकम् ॥१४॥
शरन्मध्याह्नपद्मानां प्रभामोचनलोचनम् । मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिमनोहरम् ॥१५॥
कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् । शान्तं च राधिकाकान्तं परिपूर्णतमं परम् ॥१६॥
एवंभूतं प्रभुं दृष्ट्वा प्रणनामातिविस्मितः । दर्शं दर्शमीश्वरं तं प्रणनाम पुनः पुनः ॥१७॥
यद्दृष्टं हृदयाम्भोजे तद्रूपं बहिरेव च । या मूर्तिः पुरतो दृष्टा सा पश्चात्परितस्ततः ॥१८॥
तत्र वृन्दावने सर्वं दृष्ट्वा कृष्णसमं मुने । ध्यायं ध्यायं च तद्रूपं तत्र तस्थौ जगद्गुरुः ॥१९॥
गावो वत्साश्च बालाश्च लता गुल्माश्च वीरुधः । सर्वं वृन्दावनं ब्रह्मा श्यामरूपं ददर्श ह ॥२०॥
दृष्ट्वैवं परमाश्चर्यं पुनर्ध्यानं चकार ह । ददर्श त्रिजगद्ब्रह्मा नान्यत्कृष्णं विना मुने ॥२१॥

लीला के धाम तथा मन को हरने वाले थे। उनके अंगों में चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा कुंकुम का लेप लगा हुआ था ॥९-११॥ वे पारिजात के पुष्पों की माला से विभूषित थे। उनका शरीर नवीन मेघ के समान श्याम था, जिसमें नव यौवन अंकुरित हो रहा था ॥१२॥ मस्तक पर मोरपंख का मुकुट और उसमें मालती मालाओं का संयोग बड़ा सुन्दर लग रहा था। अपने अंगों की प्रभा से वे आभूषणों को भी भूषित कर रहे थे ॥१३॥ शरद्-ऋतु के चन्द्रमा की कान्ति को चुराने वाले मुख से वे और सुन्दर लग रहे थे। उनके अधरोष्ठ पके बिंबाफल के समान थे और नासिका गरुड़ की चोंच को विनिन्दित करने वाली थी ॥१४॥ उनके नेत्र शरत्काल के मध्याह्न-कालिक कमल की कान्ति को छीन लेने वाले थे। मोतियों की पंक्तियों की शोभा को निन्दित करने वाली दन्त-पंक्ति से वे मनोहर लगते थे। मणिराज-कौस्तुभ की दिव्य दीप्ति से वक्षःस्थल उद्भासित हो रहा था। उन परिपूर्णतम शान्तस्वरूप परमेश्वर राधाकान्त को देखकर ब्रह्मा ने अत्यन्त विस्मित होकर प्रणाम किया। वे बार-बार उन्हें देखने और प्रणाम करने लगे ॥१५-१७॥ उन्होंने अपने हृदय-कमल में जिस रूप को देखा था, वही उन्हें बाहर भी दिखायी दिया। जो मूर्ति सामने थी, वही पीछे और अगल-बगल में भी दृष्टिगोचर हुई ॥१८॥ वहाँ वृन्दावन में सब कुछ श्रीकृष्ण के ही तुल्य देखकर जगद्गुरु ब्रह्मा उसी रूप का ध्यान करते हुए वहाँ बैठ गये ॥१९॥ गौएँ, बछड़े बालक, लताएँ, वृक्ष आदि समेत समस्त वृन्दावन उन्हें श्यामरूप दिखायी देने लगा ॥२०॥ इस प्रकार परम आश्चर्य देखकर ब्रह्मा ने पुनः उनका ध्यान किया। हे मुने ! उस समय ब्रह्मा को तीनों लोक में कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखायी दिया ॥२१॥ अब वृक्ष कहाँ ? पर्वत कहाँ ? पृथिवी कहाँ ?

---

१ क. 'नां दाह' । ।

Funding by IKS-MoE

क्व च वृक्षःक्व वा शैलः क्व मही क्व च सागरः। क्व देवाः क्व च गन्धर्वा मुनीन्द्राः क्व च मानवाः ॥२२॥
क्व चाऽऽत्मा क्व जगद्बीजं क्व स्वर्गः क्वायमेव च। सर्वं च स्वदृशा ब्रह्मा ददर्श मायया हरेः ॥२३॥
क्व कृष्णो जगतां नाथः क्व वा मायाविभूतयः। सर्वं कृष्णमयं दृष्ट्वा किंचिन्निर्वक्तुमक्षमः ॥२४॥
कं स्तौमि किं करोमीति मनसैवं प्रगृह्य च। तत्र स्थित्वा जगद्धाता जपं कर्तुं समुद्यतः ॥२५॥
सुखं योगासनं कृत्वा बभूव संपुटाञ्जलिः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रोऽतिदीनवत् ॥२६॥
इडां सुषुम्नां मध्यां च पिङ्गलां नलिनीं धुराम्। नाडीषट्कं च योगेन निबध्य च प्रयत्नतः ॥२७॥
मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरं मनोहरम्। विशुद्धं परमाज्ञाख्यं षट्चक्रं च निबध्य च ॥२८॥
लङ्घनं कारयित्वा च तत्षट्चक्रं क्रमाद्विधिः। ब्रह्मरन्ध्रं समानीय वायुबन्धं चकार ह ॥२९॥
निबध्य वायुं मध्यां तामानीय हृदयाम्बुजम्। तं वायुं भ्रामयित्वा च योजयामास मध्यया ॥३०॥
एवं कृत्वा तु निष्पन्दो यो दत्तो हरिणा पुरा। जजाप परमं मन्त्रं तस्यैव च दशाक्षरम् ॥३१॥
मुहूर्तं च जपं कृत्वा ध्यायं ध्यायं पदाम्बुजम्। ददर्श हृदयाम्भोजे सर्वतेजोमयं मुने ॥३२॥
तत्तेजसोऽन्तरे रूपमतीव सुमनोहरम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं भूषितं पीतवाससा ॥३३॥
श्रुतिमूलस्थलन्यस्तज्वलन्मकरकुण्डलम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥३४॥

सागर कहाँ ? देव कहाँ ? गन्धर्व कहाँ ? मुनीन्द्र कहाँ ? मानव कहाँ ? आत्मा कहाँ ? जगत् का बीज कहाँ ? स्वर्ग कहाँ ? और वही कहाँ ? भगवान् की माया के कारण उन्हें सब कुछ अपने ही समान दिखायी देने लगा ॥२२-२३॥ इतना ही नहीं, जगत् के स्वामी भगवान् कृष्ण कहाँ ? उनकी माया-विभूतियाँ कहाँ ? अब तो सब कृष्णमय हैं। ऐसा देखकर ब्रह्मा अवाक् रह गये—(कुछ बोलने की शक्ति नहीं रही ॥२४॥ अपने मन में ऐसा सोचने लगे कि–अब मैं किसकी स्तुति करूँ ? क्या करूँ ? फिर वहीं रहकर जगत् के विधाता जप करने को उद्यत हो गये ॥२५॥ सुख से योगासन लगा कर दोनों हाथ जोड़े, रोमाञ्चितसर्वांग, अश्रुपूरितनेत्र एवं अत्यन्त दीन के समान वे हो गये ॥२६॥ उन्होंने इडा, सुषुम्ना, मध्या, पिंगला, नलिनी और धुरा नामक नाड़ियों को योग द्वारा बड़े प्रयत्न से निबद्ध किया ॥२७॥ तत्पश्चात् मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, मनोहर, विशुद्ध और परमाज्ञा नामक चक्र को भी बाँधकर ब्रह्मा ने क्रमशः इन षट्चक्रों का उल्लंघन किया और वायु को ब्रह्मरंध्र में लाकर बाँध दिया। वायु निबद्ध करके पुनः उसे क्रमशः हृदयकमल में मध्यानाड़ी के पास ले आये। उस वायु को घुमाकर विधाता ने मध्या नाड़ी के साथ संयुक्त कर दिया। ऐसा करके वे निष्पन्द (निश्चल) हो गये और पूर्वकाल में श्रीहरि ने जिसका उपदेश दिया था, उस परम उत्तम दशाक्षर मंत्र का जप करने लगे ॥२८३१॥ मुने ! भगवान् कृष्ण के चरण-कमल को ध्यानपूर्वक एक मुहूर्त तक जप करने पर उन्हें हृदय-कमल में सर्वतेजोमय स्वरूप दिखायी पड़ा। उस तेज के भीतर अत्यन्त मनोहर रूप—दो भुजायें, हाथ में मुरली, पीताम्बर भूषित श्रीअंग और मकराकार कुण्डल से समुज्ज्वल कान का मूलभाग था। वे (हरि) मन्दमुसुकान समेत प्रसन्नमुख तथा

Funding by IKS-MoE

यद्दृष्टं ब्रह्मरन्ध्रे च हृदि तद्बहिरेव च। दृष्ट्वा च परमाश्चर्यं तुष्टाव परमेश्वरम् ॥३५॥
यत्स्तोत्रं च पुरा दत्तं हरिणैकार्णवे मुने । तमीशं तेन विधिना भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

सर्वस्वरूपं सर्वेशं सर्वकारणकारणम् । सर्वानिर्वचनीयं तं नमामि शिवरूपिणम् ॥३७॥
नवीनजलदाकारं श्यामसुन्दरविग्रहम् । स्थितं जन्तुषु सर्वेषु निर्लिप्तं साक्षिरूपिणम् ॥३८॥
स्वात्मारामं पूर्णकामं जगद्व्याचापि जगत्परम् । सर्वस्वरूपं सर्वेषां बीजरूपं सनातनम् ॥३९॥
सर्वाधारं सर्ववरं सर्वशक्तिसमन्वितम् । सर्वाराध्यं सर्वगुरुं सर्वमङ्गलकारणम् ॥४०॥
सर्वमन्त्रस्वरूपं च सर्वसंपत्करं वरम् । शक्तियुक्तमयुक्तं च स्तौमि स्वेच्छामयं विभुम् ॥४१॥
शक्तीशं शक्तिबीजं च शक्तिरूपधरं [1]वरम् । संसारसागरे घोरे शक्तिनौकासमन्वितम् ॥४२॥
कृपालुं कर्णधारं च नमामि भक्तवत्सलम् । आत्मस्वरूपमेकान्तं लिप्तं निर्लिप्तमेव च ॥४३॥
सगुणं निर्गुणं ब्रह्म स्तौमि स्वेच्छास्वरूपिणम् । सर्वेन्द्रियादिदेवं तमिन्द्रियालयमेव च ॥४४॥
सर्वेन्द्रियस्वरूपं च विराड्रूपं नमाम्यहम् । वेदं च वेदजनकं सर्ववेदाङ्गरूपिणम् ॥४५॥

भक्तों पर कृपा करने के लिए कातर जान पड़ते थे ॥३२-३४॥ जो रूप उन्हें ब्रह्मरन्ध्र में दिखायी पड़ता था, वही रूप हृदय और वाहर में भी दिखायी देने लगा। ऐसे परमाश्चर्य को देखकर उस परमेश्वर की स्तुति की। मुने! पूर्वकाल में एकार्णव में हरि ने जिस स्तोत्र का उपदेश दिया था, उसी के द्वारा विधाता ने भक्तिभाव से कंधे झुकाकर प्रभु की स्तुति की ॥३५-३६॥

ब्रह्मा बोले—मैं उस सर्वस्वरूप, सब के ईश, समस्त कारणों के कारण, सबके लिए अनिर्वचनीय एवं कल्याण रूपी (श्रीकृष्ण) को नमस्कार करता हूँ। जो नये मेघ के समान श्यामल, श्याम-सुन्दर शरीर, सभी जीवों में स्थित रहने पर भी निर्लिप्त, साक्षीरूप, अपने आत्मा में रमण करने वाले, पूर्णकाम, जगत् में व्याप्त और जगत् से परे रहने वाले, सबके स्वरूप, सबके बीज रूप, सनातन, सर्वाधार, सर्वश्रेष्ठ, समस्त शक्ति सम्पन्न, सबके आराध्यदेव, सबके गुरु, समस्त मङ्गलों के कारण, सम्पूर्ण मंत्र स्वरूप, समस्त सम्पत्तिकारी, शक्ति समेत और रहित भी हैं, उन स्वेच्छामय एवं व्यापक भगवान् की मैं स्तुति करता हूँ ॥३७-४१॥ शक्ति के ईश, शक्ति के बीज, शक्ति रूपधारी, श्रेष्ठ, घोर संसार-सागर में शक्ति रूपी नौका से युक्त, कृपालु, भक्त वत्सल और कर्णधार की मैं स्तुति कर रहा हूँ। आत्मस्वरूप, एकान्त, लिप्त, निर्लिप्त, सगुण एवं निर्गुण ब्रह्म तथा स्वेच्छामय की मैं स्तुति करता हूँ। समस्त इन्द्रियों के आदि देव, इन्द्रियों के आलय, सर्वेन्द्रियस्वरूप तथा विराट् रूप (परमात्मा) को नमस्कार करता हूँ। वेदरूप, वेदजनक, समस्त वेदाङ्गरूप तथा (मन्त्रस्वरूप) परमेश्वर को नमस्कार करता हूँ ॥४२-४५½॥

---

[1] क. परम्।

सर्वमन्त्रस्वरूपं च नमामि परमेश्वरम् । सारात्सारतरं द्रव्यमपूर्वमनिरूपिणम् ॥४६॥
स्वतन्त्रमस्वतन्त्रं च यशोदानन्दनं भजे । सन्तं सर्वशरीरेषु तमदृष्टमनूहकम् ॥४७॥
ध्यानासाध्यं विद्यमानं योगीन्द्राणां गुरुं भजे । रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम् ॥४८॥
गोपीभिः सेव्यमानं च तं धरेशं नमाम्यहम् । सतां सदैव सन्तं तमसन्तमसतामपि ॥४९॥
योगीशं योगसाध्यं च नमामि शिवसेवितम् । मन्त्रबीजं मन्त्रराजं मन्त्रदं फलदं फलम् ॥५०॥
मन्त्रसिद्धस्वरूपं तं नमामि च परात्परम् । सुखं दुःखं च सुखदं दुःखदं पुण्यमेव च ॥५१॥
पुण्यप्रदं च शुभदं शुभबीजं नमाम्यहम् । इत्येवं स्तवनं कृत्वा दत्त्वा गाश्च स बालकान् ॥५२॥
निपत्य दण्डवद्भूमौ रुरोद प्रणनाम च । ददर्श चक्षुरुन्मील्य विधाता जगतां मुने ॥५३॥
ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् । इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् ॥५४॥
लभते दास्यमतुलं स्थानमीश्वरसंनिधौ । लब्ध्वा च कृष्णसांनिध्यं पार्षदप्रवरो भवेत् ॥५५॥

नारायण उवाच

गते जगत्कारणे च ब्रह्मलोके च ब्रह्मणि । श्रीकृष्णो बालकैः सार्धं जगाम स्वालयं विभुः ॥५६॥
गावो वत्साश्च बालाश्च जग्मुर्वर्षान्तिरे गृहम् । श्रीकृष्णमायया सर्वे मेनिरे ते दिनान्तरम् ॥५७॥

सार से भी सारतर द्रव्य रूप, अपूर्व, अनिर्वचनीय स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र यशोदानन्दन का मैं भजन कर रहा हूँ। समस्त शरीरों में रहने वाले, अदृष्ट, तर्क-वितर्क से परे, ध्यान से असाध्य, विद्यमान और योगीन्द्रों के गुरु का मैं भजन करता हूँ। रास-मण्डल के मध्य में स्थित, रासोल्लास के लिए समुत्सुक, गोपियों से सेवित होने वाले तथा धरा के पति को मैं नमस्कार करता हूँ। साधु पुरुषों की दृष्टि में सदैव सत् और असाधु पुरुषों के मत में सदैव असत्, योगियों के ईश, योगसाध्य तथा शिव से सेवित को नमस्कार करता हूँ ॥४६-४९½॥ मन्त्रबीज, मन्त्रराज, मंत्रप्रद, फलदायक, फलस्वरूप, मंत्रसिद्धि स्वरूप और परात्पर को मैं नमस्कार करता हूँ। सुखस्वरूप, दुःखस्वरूप, सुखदुःखप्रदायक, पुण्यस्वरूप, पुण्यप्रद, शुभदायक और शुभ बीज को मैं नमस्कार करता हूँ। इस भाँति जगद्-विधाता ने (श्रीकृष्ण की) स्तुति करके और बालकों को लौटा कर भूमि पर दण्डवत् गिरकर प्रणाम और रोदन किया। फिर हे मुने ! उन्होंने आँखें खोलकर श्रीकृष्ण का दर्शन किया ॥५०-५३॥ ब्रह्मा के बनाये इस स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक नित्य पाठ करता है, वह इस लोक में सुखोपभोग करके अन्त में हरि के धाम को चला जाता है ॥५४॥ वहाँ भगवान् के समीप अतुल दास्यपद प्राप्त कर लेता है, फिर श्रीकृष्ण का सान्निध्य प्राप्त करके पार्षदप्रवर हो जाता है ॥५५॥

नारायण बोले—जगत् के स्रष्टा ब्रह्मा के ब्रह्मलोक चले जाने पर प्रभु श्रीकृष्ण भी बालकों के साथ अपने घर चले गये ॥५६॥ यद्यपि गौएँ, बछड़े और बालक एक वर्ष बाद अपने घर गये, किन्तु श्रीकृष्ण की माया से

गोपा गोपालिकाः किंचित्तत्कर्तुं नक्षमास्तदा । योगिनः कृत्रिमं सर्वं किं नूत्नं वा पुरातनम् ॥५८॥
इत्येवं कथितं सर्वं श्रीकृष्णचरितं शुभम् । सुखदं मोक्षदं पुण्यं सर्वकालसुखावहम् ॥५९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० गोवत्सबालकहरणप्रस्तावो नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

एकदाऽऽनन्दयुक्तश्च नन्दो गोपव्रजे मुने । दुन्दुभिं वादयामास शक्रयागकृतोद्यमः ॥१॥
दधि क्षीरं घृतं तक्रं नवनीतं गुडं मधु । एतान्यादाय शक्रस्य पूजां कुर्वन्त्विति ब्रुवन् ॥२॥
ये ये सन्त्यत्र नगरे गोपा गोप्यश्च बालकाः । बालिकाश्च द्विजा भूयो वैश्याः शूद्राश्च भक्तितः ॥३॥
इत्येवं श्रावयामास स्वयमेव मुदाऽन्वितः । यष्टिमारोपयामास रम्यस्थाने सुविस्तृते ॥४॥
ददौ तत्र क्षौमवस्त्रं मालाजालं मनोहरम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवमेव च ॥५॥

उन सबों ने केवल दिन मात्र का ही अन्तर समझा ॥५७॥ उस समय गोप और गोपियाँ कुछ भी अनुमान न लगा सकीं । योगी के लिए सब कुछ कृत्रिम ही रहता है, नया-या पुराना कुछ नहीं ॥५८॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण का शुभचरित्र, जो सुखद, मोक्षप्रद, पवित्र एवं सभी समय सुखदायक होता है, मैंने तुम्हें बता दिया ॥५९॥

श्रीब्रह्मवर्त महापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में गौओं, वत्सों और बालकों के अपहरण वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२०॥

अध्याय २१

नन्द द्वारा इन्द्रयाग की तैयारी

नारायण बोले--मुने ! एक बार नन्द ने हर्षमग्न होकर इन्द्रयाग के उपलक्ष में गोपव्रज के भीतर ढिंढोरा पिटवाया कि--'इस नगर में जो गोप, गोपी, बालक, बालिका, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र निवास करते हैं, वे भक्तिपूर्वक दही, दूध, घृत, मट्ठा, मक्खन, गुड और मधु आदि सामग्री लेकर इन्द्र की पूजा करें, ॥१-३॥ इस प्रकार घोषणा कराकर सुविस्तृत एवं रम्य स्थान में प्रसन्नतापूर्वक स्वयं ध्वज-दण्ड का आरोपण किया। उसमें रेशमी वस्त्र और मनोहर माला लगवायीं । चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम के द्रव से चर्चित किया ॥४-५॥

स्नातः कृताह्निको भक्त्या धृत्वा धौते च वाससी । उवास स्वर्णपीठे च प्रक्षालितपदाम्बुजः ॥६॥
नानाप्रकारपात्रैश्च ब्राह्मणैश्च पुरोहितैः । गोपालैर्गोपिकाभिश्च बालाभिः सह बालकैः ॥७॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्राऽऽजग्मुर्नगरवासिनः । महासंभृतसंभारा नानोपायनसंयुताः ॥८॥
आजग्मुर्मुनयः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा । सान्ताः शिष्यगणैः सार्धं वेदवेदाङ्गपारगाः ॥९॥
गर्गश्च गालवश्चैव शाकल्यः शाकटायनः । गौतमः करुषः कण्वो वात्स्यः कात्यायनस्तथा ॥१०॥
सौभरिर्वामदेवश्च याज्ञवल्क्यश्च पाणिनिः । ऋष्यशृङ्गो गौरमुखो भरद्वाजश्च वामनः ॥११॥
कृष्णद्वैपायनः शृङ्गी सुमन्तुर्जैमिनिः कचः । पराशरश्च मैत्रेयो वैशम्पायन एव च ॥१२॥
ब्राह्मणाश्च कतिविधा भिक्षुका बन्दिनस्तथा । भूपा वैश्याश्च शूद्राश्च समाजग्मुर्महोत्सवे ॥१३॥
दृष्ट्वा मुनीन्द्रान्नन्दश्च ब्राह्मणान्भूमिपांस्तथा । स्वर्णपीठात्समुत्तस्थौ व्रजाश्चोत्तस्थुरेव च ॥१४॥
प्रणम्य वासयामास मुनीन्द्रान्विप्रभूमिपान् । तेषामनुमतिं प्राप्य तत्रोवास पुनर्मुदा ॥१५॥
पाकं च यष्टिनिकटे कर्तुमाज्ञां चकार ह । पाकप्राज्ञं ब्राह्मणानां शतमानीय सादरम् ॥१६॥
तत्र रत्नप्रदीपाश्च जज्वलुः परितस्तथा । अन्धीभूतं च धूपेन स्थानं तत्सुरभीकृतम् ॥१७॥
नानाविधानि पुष्पाणि माल्यानि विविधानि च । नैवेद्यं च बहुविधमपूर्वं सुमनोहरम् ॥१८॥
तिललड्डुकपूर्णं च मण्डकानां सहस्रकम् । स्वस्तिकैः परिपूर्णं च यष्टिस्थानं च नारद ॥१९॥
कलशानां सहस्रं च पूर्णं शर्करया मुने । यवगोधूमचूर्णानां लड्डुकैर्मधुरैर्वरैः ॥२०॥

स्नान और नित्यकर्म करने के उपरान्त नन्द नूतन दो वस्त्र धारण कर चरण-कमल-प्रक्षालनपूर्वक सुवर्ण-पीठ पर सुखासीन हुए । उस समय नाना प्रकार के पात्रों के साथ ब्राह्मण, पुरोहित, गोप-गोपियाँ, बालिकायें तथा बालक उपस्थित हुए ॥६-७॥ उसी बीच नगर-निवासी लोग बहुत सामान एकत्र करके अनेक भाँति के उपहार लिये वहाँ आ पहुँचे ॥८॥ ब्रह्म-तेज से जाज्वल्यमान, वेद-वेदाङ्ग के पारगामी मुनि गण भी अपने शिष्यों समेत वहाँ आये ॥९॥ गर्ग, गालव, शाकल्य, शाकटायन, गौतम, करुष, कण्व, वात्स्य, कात्यायन, सौभरि, वामदेव; याज्ञवल्क्य, पाणिनि, ऋष्यशृङ्ग, गौरमुख, भरद्वाज, वामन, कृष्ण-द्वैपायन, शृङ्गी, सुमन्तु, जैमिनि, कच, पराशर, मैत्रेय, वैशम्पायन, अनेक भाँति के ब्राह्मण, भिक्षुक, वन्दी, भूप, वैश्य, और शूद्रगण उस महोत्सव में आये ॥१०-१३॥ मुनीन्द्रों, ब्राह्मणों और भूमिपालों को देखकर नन्द स्वर्णपीठ से उठ गये और समस्त व्रजवासी भी उठकर खड़े हो गये ॥१४॥ प्रणाम करके मुनीन्द्रों, ब्राह्मणों और राजाओं को बैठाया और उन लोगों की अनुमति प्राप्त कर स्वयं भी हर्ष से वहाँ बैठ गये ॥१५॥ पाक करने वाले निपुण सौ ब्राह्मणों को आदेश प्रदान किया कि—'ध्वज-दण्ड के समीप आप लोग पाक बनाना आरम्भ करें।' वहाँ चारों ओर रत्नों के प्रदीप जल रहे थे। धूप के कारण वह स्थान अन्धकारमय और अति सुगन्धित हो गया था ॥१६-१७॥ नारद ! अनेक भाँति के पुष्प तथा मालायें और अनेक प्रकार के अपूर्व एवं अति मनोहर नैवेद्य. तिल के लड्डुओं से परिपूर्ण सहस्र मण्डक नामक मिष्टान्न और स्वस्ति- काओं से ध्वजस्थान को भर दिया ॥१८-१९॥ मुने ! वहाँ शक्कर भरे सहस्रों कलश थे। यव, गेहूँ के आटे के बने

Funding by IKS-MoE

घृतपक्वैर्विप्रकृतैः पूर्णानि कलशानि च । वृक्षपक्वानि रम्याणि चारुरम्भाफलानि च ॥२१॥
फलानि परिपक्वानि कालदेशोद्भवानि च । क्षीराणां कुम्भलक्षाणि दध्नां तावन्ति नारद ॥२२॥
मधूनां कुम्भशतकं सर्पिः कुम्भसहस्रकम् । कलशानां त्रिलक्षाणि तक्रपूर्णानि निश्चितम् ॥२३॥
घटानां पञ्चलक्षाणि गुडपूर्णानि निश्चितम् । तिलतैलेन पूर्णं च कलशानां सहस्रकम् ॥२४॥
वृषेन्द्राश्च बहुविधा भोगार्हद्रव्यवाहकाः । नानाविधानि पात्राणि सौवर्णराजतानि च ॥२५॥
स्वर्णपीठानि च ब्रह्मन्नाजग्मुर्यष्टिसंनिधिम् । वस्त्राणि वरणार्हाणि चारूणि भूषणानि च ॥२६॥
नानाविधानि वाद्यानि चारूणि मधुराणि च । वादकाः स्वरयन्त्राणि वादयामासुरुत्सवे ॥२७॥
छागलानां सहस्राणि महिषाणां शतानि च । मेषकाणां च लक्षाणि ह्यानयामास तत्र वै ॥२८॥
शतान्येव गण्डकानामाजग्मुर्यष्टिसंनिधिम् । प्रेक्षितानि च सर्वाणि रक्षितानि च रक्षकैः ॥२९॥
बालकानां बालिकानां वृक्षाणां वृक्षयोषिताम् । यूनां च युवतीनां च संख्यां कर्तुं च कः क्षमः ॥३०॥
गायकानां च संगीतं नर्तकानां च नर्तनम् । श्रुत्वा दृष्ट्वा जनाः सर्वे मुमुहुः सुमहोत्सवे ॥३१॥
रम्भोर्वशी मेनका च घृताची मोहिनी रतिः । प्रभावती भानुमती विप्रचित्तिस्तिलोत्तमा ॥३२॥
चन्द्रप्रभा सुप्रभा च रत्नमाला मदालसा । रेणुका रमणी ब्रह्मन्नेता आजग्मुरुत्सवे ॥३३॥
तासां नृत्येन गीतेन स्तनास्यश्रोणिदर्शनात् । रूपेण वक्रदृष्ट्या च मूर्च्छां प्रापुश्च मानवाः ॥३४॥

मधुर एवं उत्तम लड्डू, जो ब्राह्मणों द्वारा घी में बनाये गये थे, कलशों में भरे पड़े थे । हे नारद ! पेड़ के पके सुन्दर केले और देश-कालानुसार पके फलों की राशि, दूधों के एक लाख घड़े और उतने ही दही के घड़े भरे पड़े थे ॥२०-२२॥ मधु के सौ घड़े, घी के हजार घड़े तथा मट्ठे से भरे तीन लाख घड़े वहाँ सुनिश्चित रखे थे ॥२३॥ पाँच लाख गुड भरे कलश और तिल के तेल से भरे एक सहस्र घड़े सुरक्षित थे ॥२४॥ उपभोग की वस्तुओं के वाहक अनेक भाँति के वृषेन्द्र (बड़े-बड़े बैल) और विविध प्रकार के सुवर्ण-चाँदी के पात्र रखे थे ॥२५॥ ब्रह्मन् ! उस ध्वजदण्ड (देवस्थान) के समीप सुवर्ण के पीठासन, वरण करने योग्य उत्तम वस्त्र एवं सुन्दर आभूषण सुरक्षित थे ॥२६॥ उस उत्सव में बाजा बजाने वाले विविध भाँति के सुन्दर एवं मधुर ध्वनि वाले बाजों और स्वर यन्त्रों को बजा रहे थे ॥२७॥ एक सहस्र बकरे, सौ भैंसे और एक लाख भेंड़े वहाँ लाये गये थे ॥२८॥ ध्वज के समीप सैकड़ों गैंड़े आये । रक्षकों से सुरक्षित दर्शनीय समस्त वस्तुएँ वहाँ लायी गयीं ॥२९॥ बालकों, बालिकाओं, वृक्षों लताओं और युवक-युवतियों की वहाँ संख्या कौन कर सकता था ? ॥३०॥ उस सुन्दर महोत्सव में गायकों के संगीत और नर्तकों के नृत्य देख-सुनकर सभी लोग मुग्ध हो जाते थे ॥३१॥ ब्रह्मन् ! उस उत्सव में राधा, उर्वशी, मेनका, घृताची, मोहिनी, रति, प्रभावती, भानुमती, विप्रचित्ति, तिलोत्तमा, चन्द्रप्रभा, सुप्रभा, रत्नमाला, मदालसा और सुन्दरी रेणुका——ये आयी हुई थीं ॥३२-३३॥ उनके नृत्य, गीत, स्तन, मुख और नितम्ब देखने से तथा रूप-सौन्दर्य एवं तिरछी चितवन से मनुष्य मूर्च्छित हो जाते थे ॥३४॥ उसी बीच गोपाल-बालकों

Funding by IKS-MoE

एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रमाजगाम हरिः स्वयम् । गोपालबालकैः सार्धं बलेन बलशालिना ॥३५॥
दृष्ट्वा तं च जनाः सर्वे संभ्रान्ता हर्षविह्वलाः । उत्तस्थुराराद्भीताश्च पुलकाङ्कितविग्रहाः ॥३६॥
क्रीडास्थानात्समायान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम् । विनोदमुरलीवेणुभृङ्गशब्दसमन्वितम् ॥३७॥
सद्रत्नसारभूषाभिर्भूषितं कौस्तुभेन च । चन्दनागुरुपङ्केन चर्चितं श्यामविग्रहम् ॥३८॥
शरन्मध्याह्नपद्मास्यं पश्यन्तं रत्नदर्पणे । चारुचन्दनचन्द्रेण कस्तूरीबिन्दुना सह ॥३९॥
शशाङ्केन यथाऽऽकाशं भालमध्यविराजितम् । मालतीमालया श्यामकण्ठवक्षःस्थलोज्ज्वलम् ॥४०॥
बकपङ्क्त्या यथाऽऽकाशं शारदीयं सुनिर्मलम् । चारुणा पीतवस्त्रेण शोभितं श्यामविग्रहम् ॥४१॥
विभान्तं विद्युता शश्वन्नवीनं नीरदं यथा । कुन्दप्रसूनैर्गुञ्जाभिर्बद्धवक्रिमचूडकम् ॥४२॥
यथेन्द्रधनुषा भाति विभातं भगणैर्नभः । रत्नकुण्डलदीप्त्या च स्मितवक्त्रसुशोभितम् ॥४३॥
शरत्प्रफुल्लपद्मं च द्युमणेः किरणैर्यथा । विप्रक्षत्रियवैश्याश्च मुनयो बल्लवा मुने ॥४४॥
प्रणम्य वासयामासू रत्नसिंहासने शुभे । उवास रत्नपीठे स तेषां मध्ये जगत्पतिः ॥४५॥

और बलशाली बलभद्र को साथ लिए भगवान् स्वयं वहाँ आ गये। उन्हें देखते ही सभी लोग सहसा हर्षविभोर हो उठकर खड़े हो गये, शरीर में रोमाञ्च हो आया और दूर से भयभीत भी हुए ॥३५-३६॥ श्रीकृष्ण क्रीड़ा-स्थान से आ रहे थे। उनका शान्त सुन्दर विग्रह बड़ा मनोहर था। विनोद की साधनभूत मुरली, वेणु और शृङ्ग नामक वाद्यों की ध्वनि उनके साथ सुनाई देती थी। रत्नों के सारतत्त्व से निर्मित आभूषणों तथा कौस्तुभमणि से वे विभूषित थे। उनका श्याम शरीर चन्दन और अगुरु से चर्चित था ॥३७-३८॥ वे रत्नमय दर्पण में शरदृतु के मध्याह्नकालिक कमल के समान अपने मुख को देख रहे थे। भालदेश में कस्तूरी की बेंदी के साथ पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति मनोहर चन्दन लगा था ॥३९॥ इससे उनका ललाट चन्द्रमा से अलंकृत आकाश के समान शोभा पा रहा था, श्याम कण्ठ और वक्षः स्थल मालती की माला से उज्ज्वल कान्ति धारण कर रहा था, मानो अत्यन्त निर्मल शरत्कालिक आकाश बगुलों की पंक्ति से अलंकृत हुआ हो। मनोहर पीताम्बर से उनके श्याम शरीर की अपूर्व शोभा हो रही थी, मानो नवीन मेघ विद्युत् की कान्ति से निरन्तर उद्भासित हो रहा हो। मस्तक पर एक ओर झुका हुआ टेढ़ा मोरमुकुट कुन्द के फूलों और गुञ्जाओं की माला से आबद्ध था, मानो आकाश नक्षत्रों तथा इन्द्रधनुष से सुशोभित हो रहा हो। उनका मुसकराता हुआ मुख रत्नमय कुण्डलों की दीप्ति से ऐसा दमक रहा था, मानो शरद् ऋतु का खिला हुआ कमल सूर्य की किरणों से उद्दीप्त हो रहा हो ॥४०-४३ १/२॥ मुने ! इस प्रकार उन्हें देखकर ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों एवं गोपों ने प्रणाम किया और सुन्दर रत्न-सिंहासन पर उन्हें सुखासीन कराया। उस रत्न-सिंहासन पर बैठने से जगत्पति भगवान् की उन लोगों के बीच ऐसी शोभा हो रही थी जैसे आकाश में शारदीय चन्द्रमा तारागणों के बीच विभूषित हो रहा हो। अनन्तर देख-सुनकर सभी लोगों ने

Funding by IKS-MoE

यथा बभौ शरच्चन्द्रो ज्योतिषामन्तरे च खे । श्रुत्वा तमूचुस्ते सर्वं जगतामीश्वरं परम् ॥४६॥
स्वेच्छामयं गुणातीतं ज्योतीरूपं सनातनम् । दृष्ट्वा महोत्सवं शीघ्रमुवाच पितरं हरिः ॥
सर्वेषां[1] दुर्लभां नीतिं नीतिशास्त्रविशारदः ॥४७॥

श्रीकृष्ण उवाच

भो भो बल्लवराजेन्द्र किं करोषीह सुव्रत । आराध्यः कश्च का पूजा किंफलं पूजने भवेत् ॥४८॥
फलेन साधनं किं वा कः साध्यः साधनेन च । देवे रुष्टे भवेत्किं वा पूजायाः प्रतिबन्धके ॥४९॥
तुष्टो देवः किं ददाति फलमत्र परत्रकम् । काचिद्ददात्यत्र फलं परत्रेह न काचन ॥५०॥
काचिच्च नोभयत्रापि चोभयत्रापि काचन । अवेदविहिता पूजा सर्वहानिकरण्डिका ॥५१॥
पूजेयमधुना वा ते किमु वा पुरुषक्रमात् । दृष्टो देवस्त्वया कस्मिन्पूजेयं चानुसारिणी ॥५२॥
साक्षात्खादति देवस्ते साक्षात्किं वा न खादति । साक्षाद्भुङ्क्ते च यो देवः सुप्रशस्तं तदर्चनम् ॥५३॥
पृथिव्यां ब्राह्मणा देवा इति वेदे निरूपितम् । सर्वेषां[1] पूजानात्तात सुप्रशस्तं द्विजार्चनम् ॥५४॥

कहा कि—'ये जगत् के महान् ईश्वर, स्वेच्छामय, (तीनों) गुणों से रहित, ज्योति रूप और सनातन हैं।' उस महोत्सव को देखकर नीतिशास्त्र-कुशल श्रीकृष्ण ने अपने पिता से तत्काल ऐसी नीतिपूर्ण बात कही, जो सबके लिए दुर्लभ थी ॥४४-४७॥

श्रीकृष्ण बोले—हे वल्लवों के महाराज ! एवं उत्तम व्रती ! आप यहाँ क्या कर रहे हैं ? आपके आराध्य देव कौन हैं ? इस पूजा का स्वरूप क्या है ? पूजन करने पर कौन-सा फल प्राप्त होगा ? उस फल से कौन साधन सुलभ होगा ? और उस साधन से कौन-सा मनोरथ सिद्ध होगा ? इस पूजा के रोक देने पर देवता के रुष्ट होने से क्या अनिष्ट होता है ? और प्रसन्न होने पर वह देव लोक-परलोक का कौन-सा फल दे देता है? ॥४८-५०॥ कोई पूजा इसी लोक का फल प्रदान करती है, परलोक का नहीं और कोई पूजा दोनों (लोक-परलोक) का कोई फल नहीं प्रदान करती और कोई दोनों लोकों का फल प्रदान करती है ॥५१॥ वेद-विरुद्ध पूजा समस्त हानियों की पिटारी है। क्या यह पूजा आधुनिक है अथवा पुरुषानुक्रम से आ रही है ? ॥५२॥ आपने उस देव को कहाँ देखा है, जिसके अनुसार पूजा करनी है ? क्या आपका देवता प्रत्यक्ष रूप से खाते हैं या अत्यक्ष रूप से ? जो देवता साक्षात् खाते हैं, उनकी पूजा अत्यन्त प्रशस्त है ॥५३॥ पृथिवी पर ब्राह्मण देवता हैं, यह वेद में बताया गया है। पिता जी ! सभी (देवों) के पूजन से ब्राह्मण का पूजन अधिक प्रशस्त

---

[1] क. विदुषां।

साक्षात्खादति नैवेद्यं विप्ररूपी जनार्दनः । ब्राह्मणे परितुष्टे च संतुष्टाः सर्वदेवताः ॥५५॥
किं तस्य देवपूजायां यो नियुक्तो द्विजार्चने। पूजिता ब्राह्मणा येन पूजिताः सर्वदेवताः ॥५६॥
देवाय दत्त्वा नैवेद्यं द्विजाय न प्रयच्छति। भस्मीभूतं च नेवेद्यं पूजनं निष्फलं भवेत् ॥५७॥
विप्राय देवनैवेद्यदानाद् ध्रुवमनन्तकम् । तुष्टो देवो वरं दत्त्वा प्रयाति च स्वमन्दिरम् ॥५८॥
दत्त्वा देवाय नैवेद्यं मूढो भुङक्ते स्वयं यदि । दत्तापहारी देवस्वं भुक्त्वा च नरकं व्रजेत् ॥
देवदत्तं न भोक्तव्यं नैवेद्यं च विना हरेः । प्रशस्तं सर्वदेवेषु विष्णुनैवेद्यभोजनम् ॥५९॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् । सर्वेषां च क्रममिदं ब्राह्मणानां विशेषतः ॥६०॥
न दत्त्वा वस्तु देवाय दत्तं विप्राय चेत्सुधीः । भुक्त्वा विप्रमुखे देवास्तुष्टाः स्वर्गं प्रयान्ति च ॥६१॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विप्राणामर्चनं कुरु । प्रशस्तफलदातॄणामिह लोके परत्र च ॥६२॥
जपस्तपश्च पूजा वा यज्ञो दानं महोत्सवः । सर्वेषां कर्मणां सारा[1] विप्रतुष्टिश्च दक्षिणा ॥६३॥
ब्राह्मणानां शरीरेषु तिष्ठन्ति सर्वदेवताः । पादेषु सर्वतीर्थानि पुण्यानि पादधूलिषु ॥६४॥

है ॥५४॥ ब्राह्मणरूपधारी जनार्दन नैवेद्य को साक्षात् खाते हैं। ब्राह्मण के सन्तुष्ट होने पर सभी देव सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥५५॥ जो ब्राह्मण-पूजन में तत्पर रहता है, उसे देव-पूजन से क्या करना है ? जिसने ब्राह्मणों की पूजा की है, उसने समस्त देवों की पूजा कर ली ॥५६॥ देव को नैवेद्य देकर यदि ब्राह्मण को नहीं दिया जाता है, तो वह नैवेद्य भस्मीभूत हो जाता है और वह पूजन निष्फल होता है ॥५७॥ वह देव-नैवेद्य ब्राह्मण को प्रदान करने पर अनन्त फल की प्राप्ति होती है और देवता प्रसन्न होकर उसे वर देकर अपने धाम को जाते हैं ॥५८॥ यदि कोई मूर्ख देव को नैवेद्य अर्पित करके (ब्राह्मण को बिना दिये) स्वयं खा लेता है, तो उस देवस्व (देवधन) का वह अपहरणकर्ता कहलाता है और खाने के अनन्तर नरक में जाता है। (इसलिए) भगवान् के नैवेद्य को छोड़कर अन्य किसी भी देव का अर्पित नैवेद्य नहीं खाना चाहिए। विष्णु के नैवेद्य का भोजन सभी देवों (के नैवेद्य-भोजन) से प्रशस्त बताया गया है ॥५९॥ जो विष्णु को निवेदन नहीं किया रहता है वह अन्न विष्ठा और जल मूत्र के समान है। यह क्रम सभी लोगों के लिए है किन्तु ब्राह्मणों के लिए विशेष रूप से है ॥६०॥ यदि विद्वान् देव को नैवेद्य न समर्पित कर वह ब्राह्मण को दे देता है, तो उस ब्राह्मण-मुख द्वारा देवता भक्षण करके अति प्रसन्न होकर स्वर्ग को चले जाते हैं ॥६१॥ इसलिए सभी प्रयत्नों से ब्राह्मणों की अर्चना कीजिए, क्योंकि वे इहलोक और परलोक में भी उत्तम फल के दाता हैं ॥६२॥ जप, तप, पूजा, यज्ञ, दान, महोत्सव आदि सभी कार्यों का साररूप ब्राह्मणों की सन्तुष्टि एवं दक्षिणा है ॥६३॥ ब्राह्मणों के शरीरों में सभी देवता रहते हैं, उनके चरणों में समस्त तीर्थ और चरण की धूलियो में समस्त पुण्य रहते

---

[1] ख. सारं।

Funding by IKS-MoE

पादोदके च विप्राणां तीर्थतोयानि सन्ति च । तत्स्पर्शात्सर्वतीर्थेषु स्नानजन्यफलं लभेत् ॥६५॥
नश्यन्ति भक्षणाद्रोगा भक्तिभावेन बल्लव । सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥६६॥
पापं पञ्चविधं कृत्वा यो विप्रं प्रणमेद्बुधः । स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥६७॥
ब्राह्मणस्पर्शमात्रेण मुक्तो भवति पातकी । दर्शनान्मुच्यते पापादिति वेदे निरूपितम् ॥६८॥
अप्राज्ञो वाऽथ प्राज्ञो वा ब्राह्मणो विष्णुविग्रहः । प्रियाः प्राणाधिका विष्णोर्ये विप्रा हरि-सेविनः ॥६९॥
द्विजानां हरिभक्तानां प्रभावो दुर्लभः श्रुतौ । येषां पादाब्जरजसा सद्यः पूता वसुंधरा ॥७०॥
तेषां च पादचिह्नं यत्तीर्थं तत्परिकीर्तितम् । तेषां च स्पर्शमात्रेण तीर्थपापं प्रणश्यति ॥७१॥
आलिङ्गनात्सदालापात्तेषामुच्छिष्टभोजनात् । दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥७२॥
भ्रमणे सर्वतीर्थानां यत्पुण्यं स्नानतो भवेत् । हरिदासस्य विप्रस्य तत्पुण्यं दर्शनाल्लभेत् ॥७३॥
ये विप्रा हरये दत्त्वा नित्यमन्नं च भुञ्जते । उच्छिष्टभोजनात्तेषां हरेर्दास्यं लभेन्नरः ॥७४॥
न दत्त्वा हरये भक्त्या भुञ्जते चेद्भ्रमादपि । पुरीषसदृशं वस्तु जलं मूत्रसमं भवेत् ॥७५॥
शूद्रश्चेद्धरिभक्तश्च नैवेद्यभोजनोत्सुकः । आमान्नं हरये दत्त्वा पाकं कृत्वा च खादति ॥७६॥
विप्रक्षत्रियवैश्यानां शालग्रामशिलार्चने । अधिकारो न शूद्राणां हरेरप्यर्चने तथा ॥७७॥

हैं ॥६४॥ विप्र के चरणोदक में तीर्थों के जल रहते हैं । उसके स्पर्श से सभी तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त होता है ॥६५॥ हे वल्लव ! भक्तिभाव से विप्रोदक का पान करने पर रोग नष्ट होते हैं और सात जन्मों के पापों से वे मुक्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं ॥६६॥ पाँच प्रकार के पापों को करके जो विद्वान् ब्राह्मण को प्रणाम करता है, मानों वह समस्त तीर्थों में स्नान करके समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है ॥६७॥ ब्राह्मण के स्पर्श करने मात्र से पातकी मुक्त हो जाता है और दर्शन करने से पाप से मुक्त होता है, ऐसा वेदों में कहा गया है ॥६८॥ मूर्ख और विद्वान् सभी भाँति के ब्राह्मण विष्णु के शरीर हैं । जो ब्राह्मण भगवान् की सेवा करते हैं, वे विष्णु को प्राणों से भी अधिक प्रिय होते हैं ॥६९॥ भगवद्भक्त ब्राह्मणों का प्रभाव वेद में दुर्लभ बताया गया है । जिनके चरण-कमल की धूलि से यह पृथिवी तुरन्त पवित्र हो जाती है ॥७०॥ उनके चरण-चिह्न को तीर्थ कहा गया है। उनके स्पर्श मात्र से तीर्थों का किया हुआ पाप नष्ट होता है ॥७१॥ उनके आलिङ्गन सत्वार्तालाप, उच्छिष्ट-भोजन, दर्शन एवं स्पर्श करने से प्राणी समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥७२॥ समस्त तीर्थों में भ्रमण करते हुए उसमें स्नान करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, वह हरिभक्त ब्राह्मण के दर्शन मात्र से प्राप्त हो जाती है ॥७३॥ जो ब्राह्मण भगवान् को नित्य-प्रति समर्पित करके भोजन करते हैं, उनके उच्छिष्ट भोजन करने से मनुष्य को भगवान् का दास्यपद प्राप्त होता है ॥७४॥ यदि भ्रमवश भक्ति पूर्वक भगवान् को समर्पित न करके भोजन कर लेते हैं तो वह वस्तु विष्ठा के समान और जल मूत्र के समान हो जाता है ॥७५॥ यदि शूद्र हरिभक्त है और भगवान् का नैवेद्य भोजन करने के लिए उत्सुक रहता है तो वह कच्चा अन्न भगवान् को अर्पित करके पकाकर खाता है ॥७६॥ शालग्राम भगवान् की पूजा करने में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को अधिकार है न कि शूद्रों को । इसी प्रकार हरिपूजन में भी शूद्रों का अधिकार नहीं है ॥७७॥

द्रव्याण्येतानि गोपेन्द्र विप्रेभ्यश्चेन्न दास्यति । भस्मीभूतानि सर्वाणि भविष्यन्ति न संशयः ॥७८॥
अन्नं च सर्वजीवेभ्यः पुण्यार्थं दातुमर्हति । दत्त्वा विशिष्टजीवेभ्यो विशिष्टं फलमाप्नुयात् ॥७९॥
अतो दत्त्वा मानुषेभ्यो लभतेऽष्टगुणं फलम् । ततो विशिष्टशूद्रेभ्यो दत्त्वा तद्द्विगुणं फलम् ॥८०॥
दत्त्वाऽन्नं वैश्यजातिभ्यस्ततश्चाष्टगुणं फलम् । शूद्राणां द्विगुणं पुण्यं वैश्येभ्योऽन्नं प्रदाय च ॥८१॥
दत्त्वाऽन्नं क्षत्रियेभ्योऽपि वैश्यानां द्विगुणं भवेत् । क्षत्रियाणां शतगुणं विप्रेभ्योऽन्नं प्रदाय च ॥८२॥
विप्राणां च शतगुणं शास्त्रज्ञे ब्राह्मणे फलम् । शास्त्रज्ञानां शतगुणं भक्ते विप्रे लभेद्ध्रुवम् ॥
स चान्नं हरये दत्त्वा भुङ्क्ते भक्त्या च सादरम् ॥८३॥
विष्णवे विप्रभक्ताय दत्त्वा दातुश्च यत्फलम् । तत्फलं लभते नूनं भक्तब्राह्मणभोजने ॥८४॥
भक्ते तुष्टे हरिस्तुष्टो हरौ तुष्टे च देवताः । भवन्ति सिक्ताः शाखाश्च यथा मूलनिषेचनात् ॥८५॥
द्रव्याण्येतानि देवाय यद्येकस्मै प्रयच्छति । सर्वे देवाश्च रुष्टाश्चेद्देवैः कः किं करिष्यति ॥८६॥
अथवाऽर्धं च वस्तूनां देहि गोवर्धनाय च । गा वर्धयति नित्यं यस्तेन गोवर्धनः स्मृतः ॥८७॥
गोवर्धनसमस्तात पुण्यवान्न महीतले । नित्यं ददाति गोभ्यो यो नवीनानि तृणानि च ॥८८॥
तीर्थस्थानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने । सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च ॥८९॥

॥७७॥ हे गोपेन्द्र ! यदि ये सभी पदार्थ ब्राह्मणों को नहीं दिये जाते हैं तो सब भस्मीभूत हो जायँगे, इसमें संशय नहीं ॥७८॥ अन्न तो सभी जीवों को पुण्यार्थ दिया जा सकता है, किन्तु विशिष्ट जीवों को समर्पित करने से विशिष्ट फल की प्राप्ति होती है ॥७९॥ इसलिए मनुष्यों को अन्न प्रदान करने से आठ गुने फल की प्राप्ति होती है। विशिष्ट शूद्रों को समर्पित करने से उससे दूना फल मिलता है ॥८०॥ वैश्य जाति के लोगों को अन्न प्रदान करने से उससे अठगुना फल मिलता है। शूद्रों की अपेक्षा वैश्यों को अन्न देने से दुगुना फल मिलता है ॥८१॥ वैश्यों की अपेक्षा क्षत्रियों को अन्न देने से दूना फल मिलता है। क्षत्रियों की अपेक्षा ब्राह्मणों को अन्न देने से सौगुना फल मिलता है ॥८२॥ ब्राह्मणों की अपेक्षा शास्त्रज्ञाता ब्राह्मण को देने से सौ गुना फल प्राप्त होता है। शास्त्रज्ञों की अपेक्षा भक्त ब्राह्मण को देने से सौ गुना फल निश्चित रूप से मिलता है। हरि को भक्तिपूर्वक अन्न समर्पित करके आदरके साथ खाना चाहिए ॥८३॥ ब्राह्मण के भक्त विष्णु को वस्तु दान करने से दाता को जो फल मिलता है वह भक्त ब्राह्मण को भोजन कराने से निश्चय ही प्राप्त होता है ॥८४॥ भक्त के सन्तुष्ट होने पर हरि प्रसन्न होते हैं और हरि के प्रसन्न होने पर समस्त देवता उसी तरह प्रसन्न होते हैं जैसे वृक्ष की जड़ सींचने से उसकी शाखायें भी पुष्ट होती हैं ॥८५॥ यदि यह समस्त भक्ष्य भोज्य पदार्थ किसी एक ही देव को अर्पित किया जाये, तो अन्य समस्त देवता रुष्ट हो जायँगे, और उन देवों का अकेला कोई (देवता) क्या कर सकेगा ? ॥८६॥ अथवा प्रस्तुत वस्तुओं का आधा भाग गोवर्धन को दे दीजिये। गौओं की नित्य अभिवृद्धि करने के कारण इन्हें गोवर्धन कहा जाता है ॥८७॥ पिताजी ! भूतल पर गोवर्धन के समान कोई अन्य पुण्यवान् नहीं है। क्योंकि वह गौओं को नित्य नवीन तृण (हरी घास) प्रदान करते हैं ॥८८॥ तीर्थस्थान, ब्राह्मण-भोजन, समस्त व्रतों के उपवास,

Funding by IKS-MoE

यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने । भुवः पर्यटने यत्तु सत्यवाक्येषु यद्भवेत् ॥९०॥
यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु दीक्षायां च लभेन्नरः । तत्पुण्यं लभते प्राज्ञो गोभ्यो दत्त्वा तृणानि च ॥९१॥
भुक्तवन्तीं तृणं यश्च गां वारयति कामतः । ब्रह्महत्या भवेत्तस्य प्रायश्चित्ताद्विशुध्यति ॥९२॥
सर्वे देवा गवामङ्गे तीर्थानि तत्पदेषु च । तद्गुह्येषु स्वयं लक्ष्मीस्तिष्ठत्येव सदा पितः ॥९३॥
गोष्पदाक्तमृदा यो हि तिलकं कुरुते नरः । तीर्थस्नातो भवेत्सद्यो जयस्तस्य पदे पदे ॥९४॥
गावस्तिष्ठन्ति यत्रैव तत्तीर्थं परिकीर्तितम् । प्राणांस्त्यक्त्वा नरस्तत्र सद्यो मुक्तो भवे-
द्ध्रुवम् ॥९५॥
ब्राह्मणानां गवामङ्गं यो हन्ति मानवाधमः । ब्रह्महत्यासमं पापं भवेत्तस्य न संशयः ॥९६॥
नारायणांशान्विप्रांश्च गाश्च ये घ्नन्ति मानवाः । कालसूत्रं च ते यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥९७॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो विरराम च नारद । आनन्दयुक्तो नन्दश्च तमुवाच स्मिताननः ॥९८॥

नन्द उवाच

पौर्वापरीयं पूजेति महेन्द्रस्य महात्मनः । सुवृष्टिसाधनी साध्यं सर्वसस्यं मनोहरम् ॥९९॥
सस्यानि प्राणिनां प्राणाः सस्याज्जीवन्ति जीविनः । पूजयन्ति व्रजस्थाश्च महेन्द्रं पुरुषक्रमात् ॥
॥१००॥
महोत्सवं वत्सरान्ते निर्विघ्नाय शिवाय च

समस्त तप, महादान, भगवत्सेवा, पृथ्वी की परिक्रमा, सत्य वाक्य और समस्त यज्ञों की दीक्षा में मनुष्यों को जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, वह पुण्य केवल गौओं को हरी घास प्रदान करने से प्राप्त होता है ॥८९-९१॥ जो किसी कामनावश घास खाती हुई गौ को रोक देता है, उसे ब्रह्महत्या के पाप का भागी होना पड़ता है। प्रायश्चित्त करने पर ही वह शुद्ध होता है ॥९२॥ पिताजी ! गौओं के अंगों में समस्त देवता निवास करते हैं, उनके चरणों में समस्त तीर्थ और उनके गुह्य स्थानों में स्वयं लक्ष्मी निवास करती है ॥९३॥ गौओं के खुर की धूल का जो मस्तक में तिलक लगाता है, वह तुरन्त समस्त तीर्थों में स्नान करने का फल पाता है और पग-पग पर उसकी जय होती है ॥९४॥ गौएँ जहाँ रखी जाती हैं वह भूमि तीर्थस्वरूप होती है। वहाँ प्राणत्याग करके मनुष्य तत्काल मुक्त हो जाता है ॥९५॥ ब्राह्मणों और गौओं के अंग पर जो नराधम आघात करता है, उसे ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है, इसमें संशय नहीं ॥९६॥ क्योंकि नारायण के अंश स्वरूप ब्राह्मणों और गौओं का जो मानव वध करते हैं, उन्हें चन्द्रमा और सूर्य के समय तक काल सूत्र नामक नरक में रहना पड़ता है ॥९७॥ नारद ! भगवान् श्रीकृष्ण इतना कह कर चुप हो गये। तब आनन्दमग्न नन्द ने मन्द हास करते हुए, उनसे कहा ॥९८॥

नन्द बोले—महात्मा इन्द्र की यह पूजा है, जो परम्परा से होती चली आ रही है। यह सुवृष्टि का साधन है और इससे सब प्रकार के मनोहर शस्यों की उत्पत्ति ही साध्य है ॥९९॥ धान्य ही प्राणियों के प्राण हैं धान्य से ही जीवधारी जीवित रहते हैं। व्रजवासी लोग पूर्वजों की परम्परा से महेन्द्र की पूजा करते चले आ रहे हैं।

इत्येवं वचनं श्रुत्वा बलेन सह माधवः । उच्चैर्जहास स पुनरुवाच पितरं मुदा ।।१०१।।

श्रीकृष्ण उवाच

अहो श्रुतं विचित्रं ते वचनं परमाद्भुतम् । उपहास्यं लोकशास्त्रवेदेष्वेव विगर्हितम् ।।१०२।।
निरूपणं नास्ति कुत्र शक्राद्वृष्टिः प्रजायते । अपूर्वं नीतिवचनं श्रुतमद्य मुखात्तव ।।१०३।।
शृणु नीतिं श्रुतिमतां हे तात नानयं वदेः । वचनं सामवेदोक्तं सन्तो जानन्ति सर्वतः ।।१०४।।
प्रश्नं कुरुष्व मन्त्रांश्च बिबुधानपि[1] संसदि । ब्रुवन्तु परमार्थं च किमिन्द्राद्वृष्टिरेव च ।।१०५।।
सूर्याद्धि जायते तोयं तोयात्सस्यानि शाखिनः । तेभ्योऽन्नानि फलान्येवतेभ्यो जीवन्ति जीविनः ।।१०६।।
सूर्यग्रस्तं च नीरं च काले तस्मात्समुद्भवः । सूर्यो मेघादयः सर्वे विधात्रा ते निरूपिताः ।।१०७।।
यत्राब्दे यो जलधरो गजश्च सागरो मतः । सस्याधिपो नृपो मन्त्री विधात्रा ते निरूपिताः ।।१०८।।
जलादिकानां सस्यानां तृणानां च निरूपितम् । अब्देऽब्देऽस्त्येव तत्सर्वं कल्पे कल्पे युगे युगे ।।१०९।।
हस्ती समुद्रादादाय करेण जलमीप्सितम् । दद्याद्घनाय तद्दद्याद्वातेन प्रेरितो घनः ।।११०।।

यह महोत्सव वर्ष के अन्त में विघ्न दूर करने और कल्याण प्राप्त करने के लिए किया जाता है ।।१००।। यह बात सुनकर बलभद्र समेत भगवान् श्रीकृष्ण उच्चस्वर (बड़े) से हँस पड़े, और पिता से हर्षपूर्वक बोले ।।१०१।।

श्रीकृष्ण बोले—अहो ! आपकी परम अद्भुत एवं विचित्र बात सुनी । यह लोक, शास्त्र एवं वेदों में निन्दित एवं उपहास के योग्य है ।।१०२।। यह कहीं नहीं बताया गया है कि—'इन्द्र से वर्षा होती है ।' केवल आज आपके ही मुख से यह अपूर्व नीति-वचन सुना है ।।१०३।। तात ! ऐसी अनीति मत कहिए, विद्वानों की नीति (विषयक बात) सुनिए । सामवेद का वचन सभी सन्त लोग जानते हैं ।।१०४।। आप सभा में विद्वानों से भी मन्त्रणा और प्रश्न करें कि आप लोग सत्य बतायें कि क्या इन्द्र से वृष्टि होती है ? ।।१०५।। सूर्य से जल उत्पन्न होता है, जल से धान्य तथा वृक्ष आदि उत्पन्न होते हैं । उनसे अन्न एवं फल उत्पन्न होते हैं और उनसे प्राणी जीवन निर्वाह करते हैं ।।९०६।। सूर्य अपनी किरणों द्वारा जो जल सोख लेते हैं, वर्षाकाल में उसी जल का उनसे प्रादुर्भाव होता है । सूर्य और मेघ आदि सबका विधाता द्वारा निरूपण होता है ।।१०७।। जिस वर्ष में जो मेघ गज और सागर माने गये हैं, जो सस्याधिपति राजा और मन्त्री निश्चित किये गये हैं, उन सबका विधाता द्वारा ही निरूपण हुआ है ।।१०८।। प्रत्येक वर्ष में जल, सस्य तथा तृणों की आढ़क संख्या निश्चित की जाती है । उस निश्चय के अनुसार वर्ष-वर्ष में, युग-युग में और कल्प-कल्प में वे सारी बातें घटित होती हैं ।।१०९।। सूर्य किरणों के द्वारा समुद्र से यथेष्ट जल लेकर मेघ को देते हैं और मेघ वायु से प्रेरित होकर

---

[1] ख. °विविधा° ।

स्थाने स्थाने पृथिव्यां च काले काले यथोचितम् । ईशेच्छयाऽऽविर्भूतं च न भवेत्प्रति
बन्धकम् ॥१११॥
भूतं भव्यं भविष्यच्च महत्क्षुद्रं च मध्यमम् । धात्रा निरूपितं कर्म केन तात निवार्यते ॥११२॥
जगच्चराचरं सर्वं कृतं तेनेश्वराज्ञया । आदौ विनिर्मितं भक्ष्यं पश्चाज्जीव इति स्मृतः ॥११३॥
अभ्यासात्स स्वभावो हि स्वभावात्कर्म एव च । जायते कर्मणां भोगो जीविनां सुख-
दुःखयोः ॥११४॥
यातनाजन्ममरणरोगशोकभयानि च । समुत्पत्तिर्विपद्विद्या कविता वा यशोऽयशः ॥११५॥
पुण्यं च स्वर्गवासश्च पापं नरकसंस्थितिः । भुक्तिर्मुक्तिर्हरेर्दास्यं कर्मणा घटते नृणाम् ॥११६॥
सर्वेषां जनको हीशश्चाभ्यासः शीलकर्मणाम् । धातुश्च फलदाता च सर्वं तस्येच्छया भवेत् ॥११७॥
विनिर्मितो विराड्येन तत्त्वानि प्रकृतिर्जगत् । कूर्मश्च शेषधरणी चाऽऽब्रह्मस्तम्ब एव च ॥११८॥
यस्याऽऽज्ञया मरुत्कूर्मं धत्ते शेषं बिभर्ति सः । शेषो वसुंधरां मूर्ध्ना सा च सर्वं चराचरम् ॥११९॥
यस्याऽऽज्ञया सदा याति जगत्प्राणो जगत्त्रये । तपति भ्रमणं कृत्वा भूगोलं सुप्रभाकरः ॥१२०॥
दहत्यग्निः संचरते मृत्युश्च सर्वजन्तुषु । उत्पत्तिः[१] शाखिनां काले पुष्पाणि च फलानि च ॥१२१॥

समय पर पृथ्वी के स्थान-स्थान में यथोचित रूप से बरसता है। ईश्वर की इच्छा से ही जल आदि का आविर्भाव होता है। उसमें कोई बाधा नहीं पड़ती ॥११०-१११॥ हे तात ! भूत, वर्तमान, भविष्य, महान्, नीच और मध्यम कर्मों का विधाता ने निरूपण किया है, उसका कौन निवारण कर सकता है ? ॥११२॥ भगवान् की आज्ञा से ही उन्होंने इस चर-अचरमय समस्त जगत् का निर्माण किया है। पहले भोजन की व्यवस्था होती है, उसके बाद जीव प्रकट होता है। बार-बार ऐसा होने से ही इस नियत व्यवस्था को स्वभाव कहते हैं। स्वभाव से कर्म होता है और कर्म के अनुसार जीवधारियों को सुख-दुःख का भोग प्राप्त होता है ॥११३-११४॥ यातना, जन्म-मरण, रोग, शोक, भय, सम्पत्ति, विपत्ति, विद्या, कविता, यश, अपयश; पुण्य, स्वर्ग में निवास, पाप, नरकवास, भक्ति, मुक्ति तथा भगवान् का दास्यपद––ये सब मनुष्यों के कर्म के अनुसार उपलब्ध होते हैं ॥११५-११६॥ ईश्वर सभी के जनक हैं। शील और कर्मों का अभ्यास विधाता के लिए भी फलदाता होता है। सब कुछ ईश्वर की इच्छा से ही संभव होता है ॥११७॥ जिन्होंने विराट्, समस्त तत्त्व, प्रकृति, जगत्, कच्छप, शेष, पृथ्वी तथा ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त का निर्माण किया है ॥११८॥ जिनकी आज्ञा से वायु कच्छप को, कच्छप शेष को, शेष अपने मस्तक पर पृथ्वी को और पृथ्वी समस्त चराचर जगत् को धारण करती हैं ॥११९॥ जिनकी आज्ञा से जगत् का प्राणस्वरूप वायु तीनों लोकों में बहता है। अति तीक्ष्ण प्रभा वाले सूर्य भूगोल का भ्रमण करते हुए तपते हैं ॥१२०॥ अग्नि जलाता है, सभी प्राणियों में मृत्यु का सञ्चार होता है, वृक्षों की उत्पत्ति होती है और समय पर उसमें फूल-फल लगते हैं ॥१२१॥ जिनकी आज्ञा से समुद्र अपने-अपने

---

[१] क. विपत्तिः ।

स्वे स्वे स्थाने समुद्राश्च तूर्णं मज्जन्त्यधोऽधुना । तमीशं भज भक्त्या च शक्रः किं कर्तुमीश्वरः ॥१२२॥
ब्रह्माण्डं च कतिविधमाविर्भूतं तिरोहितम् । विधयश्च[1] कतिविधा यस्य भ्रूभङ्गलीलया ॥१२३॥
मृत्योर्मृत्युः कालकालो विधातुर्विधिरेव सः । भज तं शरणं तात स ते रक्षां करिष्यति ॥१२४॥
अहोऽष्टाविंशदिन्द्राणां पतने यदहर्निशम् । विधातुरेव जगतामष्टोत्तरशताधिकः[2] ॥१२५॥
निमेषाद्यस्य पतनं निर्गुणस्याऽऽत्मनः प्रभोः । एवंभूते तिष्ठतीशे शक्रपूजा विडम्बनम् ॥१२६॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो विरराम च नारद । प्रशशंसुश्च मुनयो भगवन्तं सभासदः ॥१२७॥
नन्दः सपुलको हृष्टः सभायां साश्रुलोचनः । आनन्दयुक्ता मनुजा यदि पुत्रैः पराजिताः ॥१२८॥
श्रीकृष्णाज्ञां समाज्ञाय चकार स्वस्तिवाचनम् । क्रमेण वरणं तत्र सर्वेषां च चकार ह ॥१२९॥
पर्वतस्य मुनीन्द्राणां चकार पूजनं मुदा । बुधानां ब्राह्मणानां च गवां वह्नेश्च सादरम् ॥१३०॥
तत्र पूजासमाप्तौ च क्रतौ च सुमहोत्सवे । नानाप्रकारवाद्यानां बभूव शब्द उल्वणः ॥१३१॥
जयशब्दः शङ्खशब्दो हरिशब्दो बभूव ह । वेदमङ्गलकाण्डं च पपाठ मुनिपुंगवः ॥१३२॥
बन्दिनां प्रवरो डिण्डी कंसस्य सचिवः प्रियः । उच्चैः पपाठ पुरतो मङ्गलं मङ्गलाष्टकम् ॥१३३॥

स्थान पर विद्यमान रहते और शीघ्र नीचे निमग्न हो जाते हैं। अतः उन्हीं ईश्वर का इस समय भक्तिपूर्वक भजन कीजिए। इन्द्र क्या कर सकता है ? ॥१२२॥ जिनके भौंह टेढ़ी करते ही कितने ही ब्रह्माण्ड लीला की भाँति उत्पन्न हुए एवं विलीन हो गये तथा कितने ब्रह्मा उत्पन्न होकर नष्ट हो गये ॥१२३॥ वे मृत्यु के भी मृत्यु, काल के भी काल एवं ब्रह्मा के भी ब्रह्मा हैं। तात ! उन्हीं की शरण लीजिए। वे ही आपकी रक्षा करेंगे ॥१२४॥ अहो ! अट्ठाइस इन्द्रों के पतन होने पर जिनका एक रात-दिन होता है और उस एक सौ आठ जगन्निर्माता ब्रह्मा के पतन होने पर जिस निर्गुण परमात्मा प्रभु का एक निमेष होता है, उस ईश के रहते इन्द्र की पूजा करना एक विडम्बना मात्र है ॥१२५-१२६॥ नारद ! इतना कहकर श्रीकृष्ण चुप हो गये। मुनियों एवं अन्यसभासदों ने यह सुनकर भगवान् की बड़ी प्रशंसा की ॥१२७॥ नन्द तो हर्षमग्न हो गये, उनके शरीर में रोमाञ्च एवं आँखों में जल भर आया। मनुष्य यदि (अपने) पुत्रों से पराजित होते हैं, तो वे अतिआनन्दमग्न होते हैं ॥१२८॥ नन्द ने भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा मानकर स्वस्तिवाचन किया और वहाँ सबका क्रमशः वरण किया ॥१२९॥ पर्वत और मुनीन्द्रों की पूजा करके विद्वान् ब्राह्मणों, गौओं और अग्नि का सादर समर्थन किया ॥१३०॥ यज्ञ के उस महोत्सव में पूजा की समाप्ति होने पर विविध वाद्यों का तुमुलनाद होने लगा ॥१३१॥ जय-जयकार की ध्वनि, शंख की ध्वनि एवं हरिनामकीर्तन होने लगे। मुनिपुंगव (गर्ग) ने वेदों के मंगल काण्ड का पाठ किया ॥१३२॥ बन्दिजनों में श्रेष्ठ डिण्डी, जो कंस का प्रिय सचिव (मंत्री) था, वहीं सभी के समक्ष उच्च स्वर से मंगलाष्टक का मंगल पाठ करने

---

[1] क. विधेयाश्च । [2] क. °तायुषः ।

Funding by IKS-MoE

कृष्णः शैलान्तिकं गत्वा भिन्नां मूर्तिं विधाय च। वस्तु खादामि शैलोऽस्मि वरं वृण्वित्युवाच ह ॥१३४॥
उवाच नन्दं श्रीकृष्णः पश्य शैलं पितः पुरः । वरं प्रार्थय भद्रं ते भविता चेत्युवाच ह ॥१३५॥
हरेर्दास्यं हरेर्भक्तिं वरं वव्रे स बल्लवः। द्रव्यं भुक्त्वा वरं दत्त्वा सोऽन्तर्धानं चकार ह ॥१३६॥
मुनीन्द्रान्ब्राह्मणांश्चैव भोजयित्वा च गोपपाः। बन्दिभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च मुनिभ्यश्च धनं ददौ ॥१३७॥
मुनिभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽपि दत्त्वा नन्दो मुदाऽन्वितः। रामकृष्णौ पुरस्कृत्य सगणः स्वालयं ययौ ॥१३८॥
रौप्यं वस्त्रं सुवर्णं च वरमश्वं मणिं तथा। भक्ष्यं द्रव्यं बहुविधं बन्दिने डिण्डिने ददौ ॥१३९॥
स्तुत्वा नत्वा रामकृष्णौ मुनयो ब्राह्मणा ययुः। ययुरप्सरसः सर्वा गन्धर्वाः किंनरास्तथा ॥१४०॥
राजानो बल्लवाः सर्वे चाऽऽगता ये महोत्सवे। सर्वे प्रणम्य श्रीकृष्णं ययुः सादरपूर्वकम् ॥१४१॥
एतस्मिन्नन्तरे शक्रः कोपप्रस्फुरिताधरः । मखभङ्गे[१] बहुविधां निन्दां श्रुत्वा सुरेश्वरः ॥१४२॥
मरुद्भिर्वारिदैः सार्धं रथमारुह्य सत्वरम् । जगाम नन्दनगरं वृन्दारण्यं मनोहरम् ॥१४३॥
सर्वे देवा ययुः पश्चाद्युद्धशास्त्रविशारदाः । शस्त्रास्त्रपाणयः कोपाद्रथमारुह्य नारद ॥१४४॥

लगा ॥१३३॥ श्रीकृष्ण ने (गोवर्धन) पर्वत के समीप जाकर दूसरी मूर्ति धारण करके कहा—मैं (गोवर्धन) पर्वत हूँ, (अर्पित) वस्तुओं को खा रहा हूँ, तुम मुझसे माँगो ॥१३४॥ उस समय श्रीकृष्ण ने नन्द से कहा—पिताजी ! सामने पर्वत को देखिये और उससे वरदान की प्रार्थना कीजिए, जिससे आपका कल्याण होगा ॥१३५॥ बल्लवराज नन्द ने उससे प्रार्थना की कि—हमें भगवान् का दास्यपद और उनकी भक्ति प्राप्त हो, भक्ष्यपदार्थ खाकर और वर देकर वह रूप अन्तर्हित हो गया ॥१३६॥ गोपरक्षक नन्द ने मुनीन्द्रों एवं ब्राह्मणों को भोजन कराकर बन्दियों, ब्राह्मणों एवं मुनियों को धन प्रदान किया ॥१३७॥ मुनियों और ब्राह्मणों को भी धन प्रदान करके नन्द अति प्रसन्न हुए और बलराम एवं कृष्ण को आगे करके गण समेत अपने घर गये ॥१३८॥ उस वन्दी को भी उन्होंने चाँदी, वस्त्र, सुवर्ण, सुन्दर अश्व तथा अनेक प्रकार के भक्ष्यपदार्थ प्रदान किये ॥१३९॥ राम-कृष्ण को नमस्कार करके मुनिगण और ब्राह्मण लोग भी चले गये। सभी अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर एवं बल्लवराजगण, जो उस महोत्सव में आये थे, भगवान् श्रीकृष्ण को सादर प्रणाम करके अपने घर चले गये ॥१४०-१४१॥ इसी बीच इन्द्र यज्ञ भंग होने से अपनी अनेक भाँति की निन्दा सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उनके ओंठ फड़कने लगे। वे वायुगण और मेघों को साथ लिए रथ पर बैठ कर नन्दनगर—मनोहर वृन्दावन में गये ॥१४२-१४३॥ नारद ! पश्चात् युद्धशास्त्र निपुण देवों ने भी क्रुद्ध होकर हाथ में शास्त्रास्त्र लिए रथ पर बैठे वहाँ के लिए प्रस्थान किया ॥१४४॥ वायु के शब्द, मेघों की गर्जना और सैनिकों के भया-

---

१ क. °भङ्गं ब°।

वायुशब्दैर्मेघशब्दैः सैन्यशब्दैर्भयानकैः । चकम्पे नगरं सर्वं नन्दो भयमवाप ह ॥१४५॥
भार्यां संबोध्य स्वगणमुवाच शोककातरः । रहःस्थलं समानीय नीतिशास्त्रविशारदः ॥१४६॥

नन्द उवाच

हे यशोदे समागच्छ वचनं शृणु रोहिणि । रामकृष्णौ समादाय व्रज दूरं व्रजात्प्रिये ॥१४७॥
बालका बालिका नार्यो यान्तु दूरं भयाकुलाः । बलवन्तश्च गोपालास्तिष्ठन्तु मत्समीपतः ॥१४८॥
पश्चाच्च निर्गमिष्यामो वयं च प्राणसंकटात् । इत्युक्त्वा बल्लवश्रेष्ठः सस्मार श्रीहरिं भिया ॥१४९॥
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः । काण्वशाखोक्तस्तोत्रेण तुष्टाव ह शचीपतिम् ॥१५०॥

नन्द उवाच

इन्द्रः सुरपतिः शक्रो दितिजः पवनाग्रजः ॥१५१॥
सहस्राक्षो भगाङ्गश्च कश्यपाङ्गज एव च । बिडौजाश्च सुनासीरो मरुत्वान्पाकशासनः ॥१५२॥
जयन्तजनकः श्रीमाञ्छचीशो दैत्यसूदनः । वज्रहस्तः कामसखो गौतमीव्रतनाशनः ॥१५३॥
वृत्रहा वासवश्चैव दधीचिदेहभिक्षुकः । जिष्णुश्च वामनभ्राता पुरुहूतः पुरंदरः ॥१५४॥
दिवस्पतिः शतमखः सुत्रामा गोत्रभिद्विभुः । लेखर्षभो बलारातिर्जम्भभेदी सुराश्रयः ॥१५५॥
संक्रन्दनो दुश्च्यवनस्तुराषाण्मेघवाहनः । आखण्डलो हरिहयो नमुचिप्राणनाशनः ॥१५६॥

नक शब्दों से समस्त नगर काँप उठा तथा नन्द अत्यन्त भयभीत हुए ॥१४५॥ नीतिशास्त्र में अतिकुशल नन्द ने अपनी पत्नी एवं गणों को एकान्त में बुला कर शोक से कातर होकर कहा ॥१४६॥

नन्द बोले——हे यशोदे ! हे रोहिणी ! यहाँ आओ और मेरी बात सुनो ! प्रिये ! राम-कृष्ण को लेकर तुम लोग व्रज से दूर जाओ ॥१४७॥ भयभीत बालक-बालिकायें एवं स्त्रियाँ भी दूर चली जायें केवल बलवान् गोप लोग मेरे समीप रहें ॥१४८॥ जब प्राणों का संकट उपस्थित होगा, तभी हम लोग यहाँ से निकलेंगे। इतना कहकर बल्लवश्रेष्ठ नन्द भय के कारण भगवान् श्रीहरि का स्मरण करने लगे ॥१४९॥ हाथ जोड़े, भक्ति से कन्धे झुकाये काण्वशाखोक्त स्तोत्र द्वारा वे इन्द्र की स्तुति करने लगे ॥१५०॥

नन्द बोले——इन्द्र, सुरपति, शक्र, दितिज, पवनाग्रज, सहस्राक्ष, भगाङ्ग, कश्यपाङ्गज, विडौजा, सुनासीर मरुत्वान्, पाकशासन, जयन्त-जनक, श्रीमान्, शचीश, दैत्यसूदन, वज्रहस्त, कामसखा, गौतमी-व्रत-नाशक, वृत्रहा, वासव, दधीचि-देह-याचक, जिष्णु, वामन-भ्राता, पुरुहूत, पुरन्दर, दिवस्पति, शतमख, सुत्रामा, गोत्रभिद्, विभु, लेखर्षभ, बलाराति, जम्भभेदी, सुराश्रय, संक्रन्दन, दुश्च्यवन, तुराषाट्, मेघवाहन, आखण्डल, हरिहय, नमुचि-

Funding by IKS-MoE

वृद्धश्रवा वृषश्चैव दैत्यदर्पनिषूदनः । षट्चत्वारिंशन्नामानि पापघ्नानि विनिश्चितम् ।।१५७।।
स्तोत्रमेतत्कौथुमोक्तं नित्यं यदि पठेन्नरः । महाविपत्तौ शक्रस्तं वज्रहस्तश्च रक्षति ।।१५८।।
अतिवृष्टिशिलावृष्टिवज्रपाताच्च दारुणात् । कदाचिन्न भयं तस्य रक्षिता वासवः स्वयम् ।।१५९।।
यत्र गेहे स्तोत्रमिदं यश्च जानाति पुण्यवान् । न तत्र वज्रपतनं शिलावृष्टिश्च नारद ।।१६०।।

नारायण उवाच

स्तोत्रं नन्दमुखाच्छ्रुत्वा चुकोप मधुसूदनः । उवाच पितरं नीतिं प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ।।१६१।।
कं स्तौषि भीरो को वेन्द्रस्त्यज भीतिं ममान्तिके । क्षणार्धे भस्मसात्कर्तुं क्षमोऽहमवलीलया ।।१६२।।
गाश्च वत्सांश्च बालांश्च योषितो हि भयातुराः । गोवर्धनस्य कुहरे संस्थाप्य तिष्ठ निर्भयम् ।।१६३।।
बालस्य वचनं श्रुत्वा तच्चकार मुदाऽन्वितः । हरिर्दधार शैलं तं वामहस्तेन दण्डवत् ।।१६४।।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दीप्तोऽपि रत्नतेजसा । अन्धीभूतश्च सहसा बभूव रजसाऽऽवृतः ।।१६५।।
सवातो मेघनिकरश्चच्छाद गमनं मुने । वृन्दावने बभूवातिवृष्टिरेव निरन्तरम् ।।१६६।।
शिलावृष्टिर्वज्रवृष्टिरुल्कापातः सुदारुणः । समस्तं पर्वतस्पर्शात्पतितं दूरतस्ततः ।।१६७।।
विफलस्तत्समारम्भो यथाऽनीशोद्यमो मुने । दृष्ट्वा मोघं च तत्सर्वं सद्यः शक्रश्चुकोप ह ।।१६८।।

प्राण-नाशन, वद्धश्रवा, वृष और दैत्यदर्पहन्ता ये (इन्द्र के) छियालिस नाम निश्चित ही पापनाशक हैं ।।१५१-१५७।। कौथुमशाखीय इस स्तोत्र का जो मनुष्य नित्य पाठ करता है, उसकी महाविपत्ति में भी इन्द्र हाथ में वज्र लिये रक्षा करते हैं ।।१५८।। वासव के स्वयं रक्षक होने के कारण अतिवृष्टि, शिलावृष्टि और भीषण वज्रपात से उसे कभी भी भय नहीं होता है ।।१५९।। नारद ! जिस घर में पुण्यवान् व्यक्ति इस स्तोत्र को जानता है, वहाँ वज्रपात और शिलावृष्टि नहीं होती है ।।१६०।।

नारायण बोले—नन्द के मुख से इस स्तोत्र की बात सुनकर मधुसूदन कुपित हो उठे । ब्रह्मतेज से प्रज्वलित होते हुए उन्होंने अपने पिता से नीति की बात कही—हे भीरु ! यह किसकी स्तुति कर रहे हैं ? वह इन्द्र कौन है ? मेरे समीप भय त्याग दीजिए, मैं आधे ही क्षण में उसे लीला की भाँति भस्म कर सकता हूँ ।।१६१-१६२।। गौओं, बछड़ों, बालकों एवं भयभीत स्त्रियों को गोवर्धन की कन्दरा में रखकर निर्भय हो जाइए ।।१६३।। बालक की बात सुनकर उन्होंने सहर्ष वैसा ही किया । भगवान् ने उस पर्वत को बाँयें हाथ से दण्डे की भाँति ऊपर उठा लिया ।।१६४।। मुने ! इस बीच रत्नों के प्रकाश से प्रकाशित होते हुए भी वह स्थान धूलि से सहसा घनान्धकारमय हो गया, वायु समेत मेघों के समूह ने आकाश को घेर लिया और वृन्दावन में अतिवृष्टि निरन्तर होने लगी ।।१६५-१६६।। शिलावृष्टि, वज्रवृष्टि, अतिदारुण उल्कापात—ये सब-के सब गोवर्धन पर्वत का स्पर्श होते ही दूर जा पड़ते थे ।।१६७।। मुने ! (इन्द्र का) वह समस्त प्रयत्न उसी प्रकार विफल होने लगा, जैसे साधारण व्यक्ति का उद्यम । अपने सभी प्रयत्नों को निष्फल होते देखकर इन्द्र तुरन्त

Funding by IKS-MoE

जग्राहामोघकुलिशं दधीच्यस्थिविनिर्मितम् । दृष्ट्वा तं वज्रहस्तं च जहास मधुसूदनः ॥१६९॥
सहस्तं स्तम्भयामास वज्रमेवातिदारुणम् । सहामरगणं मेघं चकार स्तम्भनं विभुः ॥१७०॥
सर्वे तस्थुर्निश्चलास्ते भित्तौ पुत्तलिका यथा। हरिणा जृम्भितः शक्रः सद्यस्तन्द्रामवाप ह ॥१७१॥
ददर्श सर्वं तन्द्रायां तत्र कृष्णमयं जगत् । द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नालंकारभूषितम् ॥१७२॥
पीतवस्त्रपरीधानं रत्नसिंहासनस्थितम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥१७३॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गमेतत्सर्वं चराचरम् । दृष्ट्वाऽद्भुततमं तत्र सद्यो मूर्च्छामवाप ह ॥१७४॥
जजाप मन्त्रं तत्रैव प्रदत्तं गुरुणा पुरा । सहस्रदलपद्मस्थं ददर्श ज्योतिरुल्बणम् ॥१७५॥
तत्रान्तरे दिव्यरूपमतीव सुमनोहरम् । नवीनजलदोत्कर्षं श्यामसुन्दरविग्रहम् ॥१७६॥
सद्रत्नसारनिर्माणज्वलन्मकरकुण्डलम् । ज्वलन्मणीन्द्रमकरकिरीटोज्ज्वलशेखरम्[१] ॥१७७॥
ज्वलता कौतुभेन्द्रेणकण्ठवक्षः स्थलोज्ज्वलम् । मणिकेयूरवलयमणिमञ्जीररञ्जितम्
अन्तर्बहिः समं दृष्ट्वा तुष्टाव परमेश्वरम् ॥१७८॥

इन्द्र उवाच

अक्षरं परमं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम् । गुणातीतं निराकारं स्वेच्छामयमनन्तकम् ॥१७९॥

क्रुद्ध हो गये ॥१६८॥ दधीचि की अस्थि से बना हुआ अमोघ वज्र हाथ में उठा लिया। इन्द्र को हाथ में वज्र लिए देखकर मधुसूदन हँसने लगे ॥१६९॥ उन्होंने इन्द्र के हाथ समेत अति भीषण वज्र को ही स्तम्भित कर दिया। इतना ही नहीं, प्रभु ने देवों सहित मेघ का भी स्तम्भन कर दिया, जिससे वे सब दीवाल में चित्रित पुतलियों की भाँति एक दम निश्चल खड़े हो गये। भगवान् के द्वारा स्तम्भित होने पर इन्द्र को तुरन्त तन्द्रा आ गयी ॥१७०-१७१॥ उन्होंने तन्द्रा में समस्त जगत् को श्रीकृष्णमय देखा। सब के सब भुजाओं वाले, हाथ में मुरली लिये, रत्नों के अलंकारों से भूषित, पीताम्बर पहने, रत्नसिंहासन पर स्थित, मन्दहास समेत प्रसन्नमुख, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए कातर और चन्दन-चर्चित सर्वाङ्ग थे। समस्त चराचर जगत् को इस परम अद्भुतरूप में देखकर इन्द्र को उसी समय मूर्च्छा आ गयी ॥१७२-१७४॥ वे पूर्वकाल में गुरु द्वारा प्रदत्त मंत्र का वहीं जप करने लगे। उस समय उन्होंने सहस्र दल वाले कमल पर विराजमान उग्र ज्योतिःपुञ्ज देखा ॥१७५॥ उसके बीच में अति मनोहर एवं अति दिव्यरूपधारी, नवीन मेघ के समान उत्कृष्ट श्याम सुन्दर शरीर वाले, उत्तम रत्नों के सार भाग के बने मकराकृति कुण्डलों से अलंकृत, प्रदीप्त मणीन्द्र के मकराकृति मुकुट से उद्भासित शिरोभाग वाले, जाज्वल्यमान उत्तम कौस्तुभमणि से समुज्ज्वल कण्ठ और वक्षःस्थल वाले, मणि के केयूर, कङ्कण, और नूपुर से सुशोभित और बाहर-भीतर समान रूप वाले परमेश्वर को देखकर उन्होंने स्तुति की ॥१७६-१७८॥

इन्द्र बोले—आप अविनाशी, परं ब्रह्म, ज्योतिःस्वरूप, सनातन, गुणों से रहित, निराकार, स्वेच्छामय,

---

१. क० मणीन्द्रसारनिकरकि ।

भक्तध्यानाय सेवायै नानारूपधरं वरम् । शुक्लरक्तपीतश्यामं युगानुक्रमणेन च ॥१८०॥
शुक्लतेजःस्वरूपं च सत्ये सत्यस्वरूपिणम् । त्रेतायां कुङ्कुमाकारं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥१८१॥
द्वापरे पीतवर्णं च शोभितं पीतवाससा । कृष्णवर्णं कलौ कृष्णं परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥१८२॥
नवधाराधरोत्कृष्टश्यामसुन्दरविग्रहम् । नन्दैकनन्दनं वन्दे यशोदानन्दनं प्रभुम् ॥१८३॥
गोपिकाचेतनहरं राधाप्राणाधिकं परम् । विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कौतुकेन च ॥१८४॥
रूपेणाप्रतिमेनैव रत्नभूषणभूषितम् । कन्दर्पकोटिसौन्दर्यं बिभ्रतं शान्तमीश्वरम् ॥१८५॥
क्रीडन्तं राधया सार्धं वृन्दारण्ये च कुत्रचित् । कुत्रचिन्निर्जनेऽरण्ये राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥१८६॥
जलक्रीडां प्रकुर्वन्तं राधया सह कुत्रचित् । राधिकाकबरीभारं कुर्वन्तं कुत्रचिद्वने ॥१८७॥
कुत्रचिद्राधिकापादे दत्तवन्तमलक्तकम् । राधाचर्वितताम्बूलं गृह्णन्तं कुत्रचिन्मुदा ॥१८८॥
पश्यन्तं कुत्रचिद्राधां पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा । दत्तवन्तं च राधायै कृत्वा मालां च कुत्रचित् ॥१८९॥
कुत्रचिद्राधया सार्धं गच्छन्तं रासमण्डलम् । राधादत्तां गले मालां धृतवन्तं च कुत्रचित् ॥१९०॥
सार्धं गोपालिकाभिश्च विहरन्तं च कुत्रचित् । राधां गृहीत्वा गच्छन्तं विहाय तां च कुत्रचित् ॥१९१॥
विप्रपत्नीदत्तमन्नं भुक्तवन्तं च कुत्रचित् । भुक्तवन्तं तालफलं बालकैः सह कुत्रचित् ॥१९२॥

अनन्त, भक्तों के ध्यान और सेवा के लिए अनेक रूप धारण करने वाले तथा युग के अनुक्रम से शुक्ल, रक्त, पीत और श्यामवर्ण वाले हैं ॥१७९-१८०॥ सत्ययुग में शुक्ल तेजः स्वरूप और सत्य स्वरूप, त्रेता में ब्रह्मतेज से प्रज्वलित कुंकुम के समान, द्वापर में पीतवर्ण और पीताम्बर से सुशोभित तथा कलियुग में कृष्णवर्ण होकर कृष्ण नाम धारण करते हैं। इन सब रूपों में आप एक ही परिपूर्णतम परमात्मा हैं ॥१८१-१८२॥ आपका श्रीविग्रह नूतन जलधर के समान अत्यन्त श्याम एवं सुन्दर है। नन्दनन्दन यशोदाकुमार प्रभु की मैं वन्दना करता हूँ ॥१८३॥ आप गोपियों का चित्त चुराने वाले हैं, तथा राधा के लिए प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। आप कौतूहलवश विनोद के लिए मुरली की ध्वनि का विस्तार करते रहते हैं ॥१८४॥ आपका रूप अप्रतिम है। आप रत्नों के भूषणों से भूषित, करोड़ों काम से (अधिक) सुन्दर, शान्त, ईश्वर, वृन्दावन में कहीं राधा के साथ क्रीड़ा करने वाले कहीं निर्जन वन में राधा के वक्षःस्थल पर स्थित रहने वाले, कहीं राधा के साथ जलक्रीड़ा करने वाले, कहीं वन में राधिका का केशपाश सँवारने वाले, कहीं वन में राधिका के चरणों में अलक्तक (महावर) लगाने वाले, और कहीं राधा के चबाये हुए पान को प्रसन्नता से ग्रहण करने वाले हैं ॥१८५-१८८॥ कहीं कटाक्षों से देखने वाली राधा को देख रहे हैं, कहीं अपने हाथों से माला बनाकर राधा को दे रहे हैं ॥१८९॥ कहीं राधा के साथ रास-मण्डल में जाते हैं, कहीं राधाप्रदत्त माला को पहन रहे हैं ॥१९०॥ कहीं गोपियों के साथ विहार करते हैं, कहीं राधा को साथ लेकर चल देते हैं और कहीं उन्हें छोड़कर अकेले चल पड़ते हैं ॥१९१॥ कहीं ब्राह्मण-पत्नियों द्वारा दिये गये अन्न को खाते हैं, कहीं बालकों के साथ ताड़-फल खाते हैं ॥१९२॥ कहीं हर्ष से गोपियों

वस्त्रं गोपालिकानां च हरन्तं कुत्रचिन्मुदा । गवां गणं व्याहरन्तं कुत्रचिद्बालकैः सह ॥१९३॥
कालीयमूर्ध्नि पादाब्जं दत्तवन्तं च कुत्रचित् । विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कुत्रचिन्मुदा ॥१९४॥
गायन्तं रम्यसंगीतं कुत्रचिद्बालकैः सह । स्तुत्वा शक्रः स्तवेन्द्रेण प्रणनाम हरिं भिया ॥१९५॥
पुरा दत्तेन गुरुणा रणे वृत्रासुरेण च । कृष्णेन दत्तं कृपया ब्रह्मणे च तपस्यते ॥१९६॥
एकादशाक्षरो मन्त्रः कवचं सर्वलक्षणम् । दत्तमेतत्कुमाराय पुष्करे ब्रह्मणा पुरा ॥१९७॥
कुमारोऽङ्गिरसे दत्तं गुरवेऽङ्गिरसा मुने ॥१९८॥
इदमिन्द्रकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् । स हि प्राप्य दृढां भक्तिमन्ते दास्यं ॥१९९॥
लभेद्ध्रुवम्
जन्ममृत्युजराव्याधिशोकेभ्यो मुच्यते नरः । न हि पश्यति स्वप्नेऽपि यमदूतं यमालयम् ॥२००॥

नारायण उवाच

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रसन्नः श्रीनिकेतनः । प्रीत्या तस्मै वरं दत्त्वा स्थापयामास पर्वतम् ॥२०१॥
प्रणम्य च हरिं शक्रः प्रययौ स्वगणैः सह । गह्वरस्था जनाः सर्वे प्रजग्मुर्गह्वराद्गृहम् ॥२०२॥
ते सर्वे मेनिरे कृष्णं परिपूर्णतमं विभुम् । पुरस्कृत्य व्रजस्थांश्च प्रययौ स्वालयं हरिः ॥२०३॥
तुष्टाव नन्दः पुत्रं तं पूर्णब्रह्म सनातनम् । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो भक्तिपूर्णाश्रुलोचनः ॥२०४॥

के वस्त्रों को चुरा लेते हैं, कहीं बालकों के साथ गौओं को बुलाते हैं ॥१९३॥ कहीं कालिय नाग के शिर पर चरण-कमल रखते हैं, कहीं प्रसन्नता से विनोद भरी मुरली बजाते हैं और कहीं बालकों के साथ सुन्दर गीत गाते हैं। इस प्रकार उत्तम स्तोत्र द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करके भय से प्रणाम किया ॥१९४-१९५॥ पूर्वकाल में वृत्रासुर के साथ युद्ध के समय बृहस्पति ने इन्द्र को यह स्तोत्र दिया था। सबसे पहले श्रीकृष्ण नें तपस्या करते हुए ब्रह्मा को कृपापूर्वक एकादशाक्षर मन्त्र, सब लक्षणों से युक्त कवच और यह स्तोत्र दिया था। फिर ब्रह्मा ने पुष्कर में कुमार को, कुमार ने अंगिरा को और अंगिरा ने बृहस्पति को इसका उपदेश दिया था ॥१९६-१९८॥ अतः इस इन्द्र कृत स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक नित्यपाठ करता है, उसे दृढ़ भक्ति एवं अन्त में भगवान् का दास्यपद अवश्य प्राप्त होता है। वह मनुष्य जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि एवं शोक से मुक्त हो जाता है। वह स्वप्न में भी कभी यमदूत और यमपुरी का दर्शन नहीं करता है ॥१९९-२००॥

नारायण बोले——इन्द्र का वचन सुनकर भगवान् लक्ष्मीनिवास प्रसन्न हो गये। उन्होंने प्रेम से इन्द्र को वर देकर पर्वत को स्थापित कर दिया ॥२०१॥ श्रीकृष्ण को प्रणाम करके इन्द्र अपने गणों के साथ चले गये। तत्पश्चात् पर्वत के कन्दरे से निकलकर सभी लोग अपने घर को गये ॥२०२॥ सबने कृष्ण को परिपूर्णतम परमात्मा समझा। भगवान् भी व्रजनिवासियों को आगे करके अपने घर गये। नन्द के सर्वाङ्ग में रोमांच और भक्ति से आँखों में जल भर आया। उन्होंने हर्ष-विभोर होकर पूर्ण ब्रह्म एवं सनातन रूप अपने पुत्र की स्तुति की ॥२०३-२०४॥

Funding by IKS-MoE

नारद उवाच

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥२०५॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्मणे परमात्मने । अनन्तकोटिब्रह्माण्डधामधाम्ने नमोऽस्तु ते ॥२०६॥
नमो वत्सादिरूपाणां जीवरूपाय साक्षिणे । निर्लिप्ताय निर्गुणाय निराकाराय ते नमः ॥२०७॥
अतिसूक्ष्मस्वरूपाय स्थूलात्स्थूलतमाय च । सर्वेश्वराय सर्वाय तेजोरूप नमोऽस्तु ते ॥२०८॥
अतिप्रत्यक्षरूपाय ध्यानासाध्याय योगिनाम् । ब्रह्मविष्णुमहेशानां वन्द्याय नित्यरूपिणे ॥२०९॥
धाम्ने चतुर्णां वर्णानां युगेष्वेव चतुर्षु च । शुक्लरक्तपीतश्यामाभिधानगुणशालिने ॥२१०॥
योगिने योगरूपाय गुरवे योगिनामपि । सिद्धेश्वराय सिद्धाय सिद्धानां गुरवे नमः ॥२११॥
यं स्तोतुमक्षमो ब्रह्मा विष्णुर्यं स्तोतुमक्षमः । यं स्तोतुमक्षमो रुद्रः शेषो यं स्तोतुमक्षमः ॥२१२॥
यं स्तोतुमक्षमो धर्मो यं स्तोतुमक्षमो रविः । यं स्तोतुमक्षमो लम्बोदरश्चापि षडाननः ॥२१३॥
यं स्तोतुमक्षमाः सर्वे[1] मुनयः सनकादयः । कपिलो न क्षमः स्तोतुं सिद्धेन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥२१४॥
न शक्तौ स्तवनं कर्तुं नरनारायणावृषी । अन्ये जडधियः के वा स्तोतुं शक्ताः परात्परम् ॥२१५॥
वेदा न शक्ता नो वाणी न च लक्ष्मीः सरस्वती । न राधा स्तवने शक्ता किं स्तुवन्ति
विपश्चितः ॥२१६॥

नन्द बोले--ब्राह्मणों के हितकारी, गौ और ब्राह्मण के हितैषी तथा संसार का भला चाहने वाले कृष्ण गोविन्द को बार-बार नमस्कार है ॥२०५॥ ब्राह्मणों का प्रिय करने वाले, ब्रह्मस्वरूप, परमात्मा तथा अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड धामों के भी धाम रूप आपको नमस्कार है ॥२०६॥ वत्स आदि रूपों के जीवरूप, साक्षी, निर्लिप्त, निर्गुण और निराकार रूप आपको नमस्कार है ॥२०७॥ अति सूक्ष्म स्वरूप, स्थूल से भी अत्यन्त स्थूल, सर्वाधीश्वर, समस्त रूप एवं तेजोरूप आपको नमस्कार है ॥२०८॥ अतिप्रत्यक्षरूप, योगियों के ध्यान में भी असाध्य, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के वन्द्य, नित्यरूप, चारों युगों में वर्णों के धामस्वरूप, शुक्ल, रक्त, पीत, श्याम नामक गुण से शोभित, योगी रूप, योगस्वरूप, योगियों के भी गुरु, सिद्धेश्वर, सिद्धरूप और सिद्धों के गुरु आपको नमस्कार है ॥२०९–२११॥ जिनकी स्तुति करने में ब्रह्मा और विष्णु भी समर्थ नहीं हैं, जिनकी स्तुति करने में रुद्र, शेष, धर्म, सूर्य, गणेश, कार्तिकेय और समस्त सनकादि मुनिगण असमर्थ रहते हैं, जिनकी स्तुति करने में सिद्धेन्द्रों के गुरु के गुरु कपिल समर्थ नहीं हैं और नर-नारायण ऋषि भी जिनकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं, उन परात्पर की स्तुति करने में दूसरे जड़बुद्धि कौन समर्थ हो सकते हैं ? ॥२१२–२१५॥ जिनकी स्तुति करने में वेद, वाणी, लक्ष्मी, सरस्वती एवं स्वयं राधा भी असमर्थ हैं, उनकी स्तुति विद्वान् लोग क्या करेंगे ? ॥२१६॥

---

[1] क. ब्रह्मऋषयः ।

क्षमस्व निखिलं ब्रह्मन्नपराधं क्षणे क्षणे । रक्ष मां करुणासिन्धो दीनबन्धो भवार्णवे ॥२१७॥
पुरा तीर्थे तपस्तप्त्वा पुत्रः प्राप्तः सनातनः । स्वकीयचरणाम्भोजे भक्तिं दास्यं च देहि मे ॥२१८॥
ब्रह्मत्वममरत्वं वा सालोक्यादिकमेव वा । त्वत्पदाम्भोजदास्यस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥२१९॥
इन्द्रत्वं वा सुरत्वं वा संप्राप्तिं सिद्धिस्वर्गयोः । राजत्वं चिरजीवित्वं सुधियो गणयन्ति किम् ॥२२०॥
एतद्यत्कथितं सर्वं ब्रह्मत्वादिकमीश्वर । भक्तसङ्गक्षणार्धस्य नोपमा ते किमर्हति ॥२२१॥
त्वद्भक्तो यस्त्वत्सदृशः कस्त्वां तर्कितुमीश्वरः । क्षणार्धालापमात्रेण पारं कर्तुं स चेश्वरः ॥२२२॥
भक्तसङ्गाद्भवत्येव भक्तिं कर्तुमनेकधा । त्वद्भक्तजलदालापजलसेकेन वर्धते ॥२२३॥
अभक्तालापतापात्तु शुष्कतां याति तत्क्षणम् । त्वद्गुणस्मृतिसेकाच्च वर्धते तत्क्षणे स्फुटम् ॥२२४॥
त्वद्भक्त्यङ्कुरमुद्भूतं स्फीतं मानसजं परम् । न नश्यं वर्धनीयं च नित्यं नित्यं क्षणे क्षणे ॥२२५॥
ततः संप्राप्य ब्रह्मत्वं[1] भक्तस्य जीवनाय च । ददात्येव फलं तस्मै हरिदास्यमनुत्तमम् ॥२२६॥
संप्राप्य दुर्लभं दास्यं यदि दासो बभूव ह । सुनिश्चयेन तेनैव जितं सर्वं भयादिकम् ॥२२७॥

हे ब्रह्मन् ! मुझसे क्षण-क्षण में जो अपराध वन रहा है, उसको आप क्षमा करें। करुणासिन्धो ! दीनबन्धो ! संसार-सागर में मेरी रक्षा करें। पूर्वकाल में मैंने तीर्थ में तप करके आप सनातन को पुत्ररूप में प्राप्त किया है मुझे अपने चरण-कमल की भक्ति और दास्य प्रदान करें ॥२१७–२१९॥ ब्रह्मत्व, अमरत्व एवं सालोक्य आदि मुक्ति मी आपके चरण-कमल के दास्यपद की सोलहवीं कला के भी समान नहीं है। फिर इन्द्रत्व, देवत्व, या सिद्धि, तथा स्वर्ग की प्राप्ति एवं राजत्व और चिरजीवित्व की गणना विद्वान् लोग क्या करें ?॥२२०॥ यह ब्रह्मत्वादिक आदि जो कुछ मैंने कहा है, वह सब (आपके) भक्त के साथ सत्संग होने के क्षणार्ध मात्र के भी समान नही है ॥२२१॥ क्योंकि जो आपका भक्त है, वह मी आपके समान हो जाता है। फिर आपके महत्त्व का अनुमान कौन लगा सकता है ? आपके भक्त के साथ क्षण के आधे समय तक भी वार्तालाप करना मनुष्य को भवसागर से पार कर देता है ॥२२२॥ आपके भक्तों के संग से भक्ति का विविध अंकुर अवश्य उत्पन्न होता है। आपके हरिभक्त रूप मेघों के द्वारा की गई वार्तालाप रूपी जल की वर्षा से सींचा जाकर भक्ति का वह अंकुर बढ़ता है ॥२२३॥ जो भगवान् के भक्त नहीं हैं, उनके आलापरूपी ताप से वह अंकुर तत्काल सूख जाता है और भक्त एवं भगवान् के गुणों की स्मृतिरूपी जलसे सींचने पर वह उसी क्षण स्पष्ट रूप से बढ़ने लगता है ॥२२४॥ मन में उत्पन्न आपकी भक्ति का अंकुर जब प्रकट होकर भली-भाँति बढ़ जाता है, तब वह नष्ट नहीं होता। उसे प्रतिदिन और प्रतिक्षण बढ़ाते रहना चाहिए॥२२५॥ तदनन्तर उस भक्त को ब्रह्मप्रद की प्राप्ति कराकर भी उसके जीवन के लिए भगवान् उसे अवश्य ही परम उत्तम दास्यरूप फल प्रदान करते हैं ॥२२६॥ यदि कोई दुर्लभ दास्यभाव को पाकर भगवान् का दास हो गया तो निश्चय ही

---

[1] क. वृक्षत्वं।

इत्येवमुक्त्वा भक्त्या च नन्दस्तस्थौ हरेः पुरः । प्रसन्नवदनः कृष्णो ददौ तस्मै तदीप्सितम् ।।२२८।।
एवं नन्दकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् । सुदृढां भक्तिमाप्नोति सद्यो दास्यं लभेद्धरेः ।।२२९।।
तपस्तप्त्वा यदा द्रोणस्तीर्थे च धरया सह । स्तोत्रं तस्मै पुरा दत्तं ब्रह्मणा तत्सुदुर्लभम् ।।२३०।।
हरेः षडक्षरो मन्त्रः कवचं सर्वरक्षणम् । इह सौभरिणा दत्तं तस्मै तुष्टेन पुष्करे ।।२३१।।
तदेव कवचं स्तोत्रं स च मन्त्रः सुदुर्लभः । ब्रह्मणोंऽशेन मुनिना नन्दाय च तपस्यते ।।२३२।।
मन्त्रः स्तोत्रं च कवचमिष्टदेवो गुरुस्तथा । या यस्य विद्या प्राचीना न तां त्यजति निश्चितम् ।।२३३।।
इत्येवं कथितं स्तोत्रं श्रीकृष्णाख्यानमद्भुतम् । सुखदं मोक्षदं सारं भवबन्धविमोचनम् ।।२३४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० इन्द्रयागभञ्जननन्दस्तोत्रप्रस्तावैकविंशोऽध्यायः ।।२१।।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

एकदा राधिकानाथो बलेन सह बालकैः । जगाम तत्तालवनं परिपक्वफलान्वितम् ।।१।।

उसी ने समस्त भय आदि को जीता है ।।२२७।। भक्तिपूर्वक इतना कहकर नन्द भगवान् के सामने भक्तिभाव से खड़े हो गये । तब प्रसन्नमुखश्री कृष्ण ने उन्हें उनका अभीष्ट वर प्रदान किया ।।२२८।। इस प्रकार नन्द द्वारा किये गये स्तोत्र का जो भक्ति पूर्वक नित्य पाठ करता है, वह दृढ़ भक्ति समेत भगवान् का दास्यपद शीघ्र प्राप्त कर लेता है ।।२२९।।पूर्वकाल में (पुष्कर) तीर्थ में धरा के साथ द्रोण तप कर रहे थे, उसी समय ब्रह्मा ने उन्हें यह अतिदुर्लभ स्तोत्र प्रदान किया था । इस लोक में सौभरि ऋषि ने अति प्रसन्न होकर ब्रह्मा को हरि का षडक्षर मंत्र तथा सर्वरक्षण कवच प्रदान किया था । वही कवच, वही स्तोत्र और वही अत्यन्त दुर्लभ मंत्र ब्रह्मा के अंशभूत गर्ग मुनि ने तपस्या में लगे हुए नन्द को दिया था । पूर्वकाल में जिसके लिए जो मंत्र, स्तोत्र, कवच, इष्टदेव, गुरु और विद्या प्राप्त होती है, वह पुरुष उस मंत्र आदि तथा विद्या को निश्चय ही नहीं छोड़ता है । इस प्रकार श्रीकृष्ण का अद्भुत आख्यान और स्तोत्र कहा गया, जो सुखद, मोक्षदायक, सारभूत और संसार-बन्धन से मुक्ति दिलाने वाला है ।।२–२३५।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में इन्द्रयागभञ्जन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२१।।

अध्याय २२

धेनुकवधवर्णन

नारायण बोले—एक बार राधिकानाथ श्रीकृष्ण बलभद्र और बालकों को साथ लिए उस तालवन

वृक्षाणां रक्षिता दैत्यः खररूपी च धेनुकः । कोटिसिंहसमबलो देवानां दर्पनाशनः ॥२॥
शरीरं पर्वतसमं कूपतुल्ये च लोचने । ईषापङ्क्तिसमा दन्तास्तुण्डं पर्वतगह्वरम् ॥३॥
शतहस्तपरिमिता जिह्वा लोला भयानका । कासारसदृशी नाभिः शब्दस्तस्य भयानकः ॥४॥
दृष्ट्वा तालवनं बाला हर्षमापुरनिन्दिताः । कौतुकात्कृष्णमूचुस्ते स्मेराननसरोरुहाः ॥५॥

बाला ऊचुः

हे कृष्ण करुणासिन्धो दीनबन्धो जगत्पते । महाबल बलभ्रातः समस्तबलिनां वर ॥६॥
अवधानं कुरु विभो क्षणार्धं नो निवेदने । क्षुधितानां शिशूनां च भक्तानां भक्तवत्सल ॥७॥
स्वादूनि सुन्दराण्येव पश्य तालफलानि च । भङ्क्तुं चालयितुं वृक्षान्पातितुं च फलानि च ॥८॥
नानावर्णानि पुष्पाणि पक्वानि दुर्लभानि च । आज्ञां करोषि चेत्कृष्ण चेष्टां कर्तुं वयं क्षमाः ॥९॥
किं त्वत्र दैत्यो बलवान्खररूपी च धेनुकः । अजितस्त्रिदशैः सर्वैर्महाबलपराक्रमः ॥१०॥
दुर्निवार्यश्च सर्वेषां कंसस्य सचिवो महान् । हिंसकः सर्वजन्तूनां वनानामस्ति रक्षिता ॥११॥
सुविचार्य जगत्कान्त वद नो वदतां वर । युक्तं कार्यमयुक्तं वा कर्तव्यमथवा न वा ॥१२॥
बालकानां वचः श्रुत्वा भगवान्मधुसूदनः । उवाच मधुरं बालान्वचनं तत्सुखावहम् ॥१३॥

में गये, जो पके फलों से भरा पड़ा था ॥१॥ वहाँ उन वृक्षों की रक्षा के लिए गधे के रूप में धेनुकासुर रहता था, जो करोड़ों सिंहों के समान बली एवं देवों का दर्प दलन करने वाला था ॥२॥ उसका शरीर पर्वत के समान और दोनों नेत्र कूप के समान थे। उसके दाँत हरिस की पाँत के समान और मुख पर्वत की कन्दरा के सदृश था। उसकी चंचल एवं भयानक जिह्वा सौ हाथ लम्बी थी। नाभि तालाब की भाँति जान पड़ती थी। उसका शब्द भयानक होता था ॥३–४॥ उस तालवन को देख कर बालकों को बड़ा हर्ष हुआ। उनके मुखारविन्द पर मुसकराहट छा गई। वे कौतुकवश श्रीकृष्ण से बोले ॥५॥

बालकों ने कहा—हे कृष्ण ! करुणासिन्धो ! दीनबन्धो ! जगत्पते ! महाबली ! बलभद्र के भ्राता ! एवं समस्त बलवानों में श्रेष्ठ ! विभो ! आधे क्षण के लिए हमारे निवेदन पर ध्यान दें। भक्तवत्सल ! आपके भक्त शिशुगण क्षुधा से पीड़ित हो रहे हैं ॥६–७॥ (सामने इन) स्वादिष्ठ एवं सुन्दर तालफलों को देखिए। हम इन फलों को तोड़ने के लिए वृक्षों को हिलाना और नाना रंगों के फूलों तथा दुर्लभ पके फलों को गिराना चाहते हैं। श्रीकृष्ण ! यदि आज्ञा दें तो हम ऐसी चेष्टा कर सकते हैं ॥८–९॥ किन्तु महाबली धेनुक दैत्य गधा बन कर इसके रक्षार्थ रह रहा है जो समस्त देवों से भी अजेय, महाबलपराक्रमी, सभी के लिए दुर्निवार (न रोकने योग्य) कंस का महामंत्री एवं समस्त जन्तुओं का हिंसक है ॥१०–११॥ हे जगत्पते ! वक्ताओं में श्रेष्ठ ! आप भलीभाँति विचार कर हमसे कहिए। यह कार्य उचित है या अनुचित ? (हमें) करना चाहिए अथवा नहीं करना चाहिए ? ॥१२॥ बालकों की बात सुनकर भगवान् मधुसूदन ने बालकों से मधुर एवं सुखद वचन कहा ॥१३॥

Funding by IKS-MoE

श्रीकृष्ण उवाच

किं वो दैत्याद्भयं बाला यूयं मत्सहचारिणः । वृक्षान्भङ्क्त्वा चालयित्वा फलानि खादताभयम् ॥१४॥
श्रीकृष्णाज्ञां समादाय बालका बलशालिनः । उत्पेतुर्वृक्षशिखरं क्षुधितांश्च फलार्थिनः ॥१५॥
नानाप्रकारवर्णानि स्वादूनि सुन्दराणि च । फलानि पातयामासुः परिपक्वानि नारद ॥१६॥
केचिद्बभञ्जुर्वृक्षांश्च चालयामासुरेव च । केचित्कोलाहलं चक्रुर्ननृतुस्तत्र केचन ॥१७॥
अवरुह्य तरुभ्यश्च बालका बलशालिनः । फलान्यादाय गच्छन्तो ददृशुर्दैत्यपुंगवम् ॥१८॥
महाबलं महाकायं घोरं गर्दभरूपिणम् । आगच्छन्तं महावेगात्कुर्वन्तं शब्दमुल्बणम् ॥१९॥
तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वे फलानि तत्यजुर्भिया । कृष्ण कृष्णेति शब्दं च प्रचक्रुर्बहुधा भृशम् ॥२०॥
अस्मान्रक्ष समागच्छ हे कृष्ण करुणानिधे । हे संकर्षण नो रक्ष प्राणा नो यान्ति दानवात् ॥२१॥

हे कृष्ण हे कृष्ण हरे मुरारे गोविन्द दामोदर दीनबन्धो ।
गोपीश गोपेश भवार्णवेऽस्माननन्त नारायण रक्ष रक्ष ॥२२॥
भयेऽभये वाऽथ शुभेऽशुभे वा सुखेषु दुःखेषु च दीननाथ ।
त्वया विनाऽन्यं शरणं भवार्णवे न नोऽस्ति हे माधव रक्ष रक्ष ॥२३॥

श्रीकृष्ण बोले—बालको ! तुम लोग हमारे साथ के रहने वाले हो, तुम्हें दैत्य से क्या भय है ? जाओ, वृक्षों को हिलाकर, तोड़-ताड़कर बेखटके फल खाओ ॥१४॥ श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर वे बलशाली बालक क्षुधित होने के कारण फलों के लिए वृक्षों के ऊपरी भाग पर चढ़ गये ॥१५॥ नारद ! अनेक प्रकार के स्वादु, सुन्दर और पके फलों को तोड़कर गिराने लगे ॥१६॥ कुछ बालकों ने वृक्षों को तोड़ दिया, कितनों ने उन्हें खूब झकझोरा, कोई कोलाहल (शोर) करने लगे और कोई नाचने लगे ॥१७॥ जब बलशाली बालक वृक्षों से उतर कर फलों को लेकर चलने लगे तब उन्होंने गर्दभरूपधारी, महाबली, महाकाय एवं भयानक शब्द करते हुए दैत्यराज को बड़े वेग से आते हुए देखा ॥१८–१९॥ उसे देखते ही सभी बालक रोदन करने लगे, भय के कारण फलों को छोड़ दिया और बार-बार कृष्ण ! कृष्ण! कहकर चिल्लाने लगे ॥२०॥ हे कृष्ण ! हे करुणानिधे ! शीघ्र आओ, हमें बचाओ। हे सङ्कर्षण ! हमारी रक्षो करो, अन्यथा दानव द्वारा हमारे प्राण जा रहे हैं ॥२१॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हरे, मुरारे, गोविन्द, दामोदर, दीनबन्धो, गोपीश, गोपेश, अनन्त, नारायण ! इस संसार-सागर में हमारी रक्षा करो, रक्षा करो ॥२२॥ हे दीननाथ ! हे माधव ! भय-अभय में अथवा शुभ-अशुभ में अथवा सुख-दुख में तुम्हारे सिवा दूसरा कोई हमें शरण देने वाला नहीं है, अतः इस संसार-सागर में हमें बचाओ, बचाओ

जय जय गुणसिन्धो कृष्ण भक्तैकबन्धो बहुतरभययुक्तान्बालकान्रक्ष रक्ष
जहि दनुजकुलानामीशमस्माकमन्तं सुरकुलबलदर्पं वर्धयेमं निहत्य ॥२४॥
बालानां विक्लवं दृष्ट्वा बलेन सह माधवः। आजगाम शिशुस्थानं भयहा भक्तवत्सलः ॥२५॥
भयं नास्ति भयं नास्तीत्युक्त्वा दुद्राव सत्वरम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो निर्भयं दत्तवाञ्छिशून् ॥२६॥
दृष्ट्वा कृष्णं बलं बाला ननृतुर्विजहुर्भयम्। हरिस्मृतिश्चाभयदा सर्वमङ्गलदायिका ॥२७॥
श्रीकृष्णो दानवं दृष्ट्वा ग्रसन्तं पुरतः शिशून्। बलं संबोध्य बलिनमुवाच मधुसूदनः ॥२८॥

श्रीकृष्ण उवाच

दानवो बलिपुत्रोऽयं नाम्ना साहसिको बली। गर्दभो ब्रह्मशापेन शप्तो दुर्वाससा पुरा ॥२९॥
पापिष्ठो मम वध्योऽयं महाबलपराक्रमः। अहमेनं वधिष्यामि त्वं रक्ष बालकान्बल ॥३०॥
आदाय बालकान्सर्वान्दूरं गच्छेत्युवाच ह। तान्गृहीत्वा बलः शीघ्रं जगाम त्वरयाऽऽज्ञया ॥३१॥
दृष्ट्वा कृष्णं दानवेन्द्रो महाबलपराक्रमः। जग्रास[1] लीलया कोपाज्ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥३२॥
बभूवातिदाहयुक्तो मर्तुकामोऽतितेजसा। उज्जग्रास[2] पुनर्दैत्यो विभुं तेजस्विनं भिया ॥३३॥

बचाओ ॥२३॥ हे गुणसिन्धो ! हे कृष्ण ! आपकी जय हो, आप भक्तों के एकमात्र बन्धु हैं, अतः अत्यन्त भयभीत हम बालकों की रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। यह दानवकुल का स्वामी हमारा काल है। इसको मारकर आप देवताओं का बलाभिमान बढ़ाइये ॥२४॥ बालकों को व्याकुल देखकर भयहारी एवं भक्तवत्सल कृष्ण बलभद्र को साथ लिए बच्चों के समीप आ पहुँचे ॥२५॥ मन्दहास करते हुए शीघ्रतापूर्वक उनके पास दौड़े आये, और मन्द मुसकान से युक्त प्रसन्न मुख द्वारा उन्होंने उन बालकों को अभयदान दिया ॥२६॥ कृष्ण और बलभद्र को देखकर बालकों ने भय त्याग दिया। वे नृत्य करने लगे। क्योंकि भगवान् का स्मरण करना, अभयप्रद एवं सम्पूर्ण मङ्गल-दायक होता है ॥२७॥ श्रीकृष्ण ने सामने बच्चों को ग्रसते हुए दैत्य को देखकर बली बलभद्र को सम्बोधित करके कहा ॥२८॥

श्रीकृष्ण बोले—यह साहसिक नामक बली दैत्य बलि का पुत्र है। पूर्वकाल में दुर्वासा ने इसे शाप दिया था। उस ब्रह्मशाप से यह गधा हुआ है ॥२९॥ हे बल ! यह बड़ा पापी महाबलपराक्रमी है। अतः मेरे द्वारा वध करने योग्य है। मैं इसका वध करूँगा। तुम इन बालकों की रक्षा करो ॥३०॥ सब बालकों को लेकर दूर चले जाओ। अनन्तर बलभद्र बालकों को लेकर श्रीकृष्ण की आज्ञा से शीघ्र ही दूर चले गये ॥३१॥ महाबल-पराक्रमी उस दानवेन्द्र ने कृष्ण को देखकर क्रोध से प्रज्वलित अग्नि की शिखा की भाँति उन्हें निगल लिया ॥३२॥ किन्तु उसके भीतर दाह होने लगा—अत्यन्त तेज के कारण जब वह मरने लगा, तो भय वश उन तेजस्वी एवं व्यापक भगवान् को दैत्य ने पुनः बाहर निकाल दिया ॥३३॥ भगवान् को निकालते हुए उसने उन्हें देखा, जो

---

[1] क. °ग्राह। [2] क. °ग्राह।

उज्झितं सन्तमीशं च दृष्ट्वा दैत्यो मुमोच ह । अतीव सुन्दरं शान्तं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥३४॥
कृष्णदर्शनमात्रेण बभूवास्य पुरास्मृति: । आत्मानं बुबुधे कृष्णं जगतां कारणं परम् ॥३५॥
तेज:स्वरूपमीशं तं दृष्ट्वा तुष्टाव दानव: । यथागमं यथाजन्म गुणातीतं श्रुते: परम् ॥३६॥

दानव उवाच

वामनोऽसि त्वमंशेन मत्पितुर्यज्ञभिक्षुक: । राज्यहर्ता च श्रीहर्ता सुतलस्थलदायक: ॥३७॥
बलिभक्तिवशो वीर: सर्वेशो भक्तवत्सल: । शीघ्रं त्वं हिन्धि मां पापं शापाद्गर्दभरूपिणम् ॥३८॥
मुनेर्दुर्वाससः शापादीदृशं जन्म कुत्सितम् । मृत्युरुक्तश्च मुनिना त्वत्तो मम जगत्पते ॥३९॥
षोडशारेण चक्रेण सुतीक्ष्णेनातितेजसा । जहि मां जगतां नाथ सद्भक्ति[1] कुरु मोक्षद ॥४०॥
त्वमंशेन वराहश्च समुद्धतुं वसुंधराम् । वेदानं रक्षिता नाथ हिरण्याक्षनिषूदन: ॥४१॥
त्वं नृसिंह: स्वयं पूर्णो हिरण्यकशिपोर्वधे । प्रह्लादानुग्रहार्थाय[2] देवानां रक्षणाय च ॥४२॥
त्वं च वेदोद्धारकर्ता मीनांशेन दयानिधे । नृपस्य ज्ञानदानाय रक्षायै सुरविप्रयो: ॥४३॥
शेषाधारश्च कूर्मस्त्वमंशेन सृष्टिहेतवे । विश्वाधारश्च विश्वस्त्वमंशेनापि सहस्रधृत् ॥४४॥

अत्यन्त सुन्दर, शान्त और ब्रह्मतेज से प्रज्वलित थे। श्रीकृष्ण को देखते ही उसे पूर्वजन्म की स्मृति हो आयी । उसने अपने-आपको तथा जगत् के परम कारण श्रीकृष्ण को भी पहचान लिया। उस तेज:स्वरूप ईश्वर को देखकर शास्त्र के अनुसार श्रुति से परे गुणातीत प्रभु की जन्मानुसार स्तुति की ॥३४-३६॥

दानव बोला--आप अंश से वामनरूपधारी हैं, जो हमारे पिता के यज्ञ में भिक्षुक बने थे। उनके राज्य के अपहारी एवं श्री के हर्ता आपने उन्हें सुतल लोक प्रदान किया था ॥३७॥ आप बलि की भक्ति के अधीन, वीर, सर्वात्रीश्वर और भक्तवत्सल हैं, अत: मुझ पापी के शापवश प्राप्त इस गधे के रूप को शीघ्र दूर करने की कृपा करें ॥३८॥ जगत्पते ! दुर्वासा मुनि के शाप से मुझे इस प्रकार निन्दित जन्म प्राप्त हुआ है तथा उन्होंने मृत्यु भी आपही के हाथों बताया है ॥३९॥ हे जगत् के नाथ ! हे मोक्षप्रद ! आप अत्यन्त तीखे और अतिशय तेजस्वी पोडशार चक्र से मेरा हनन करके मुझे सद्भक्ति प्रदान करें ॥४०॥ हे नाथ ! आपही ने अंशत: वराहावतार धारण करके इस पृथ्वी का उद्धार किया, वेदों की रक्षा की और हिरण्याक्ष का वध किया था ॥४१॥ आप पूर्ण परमात्मा स्वयं ही हिरण्यकशिपु के वध, प्रह्लाद पर कृपा और देवों की रक्षा के निमित्त नृसिंह रूप हुए थे ॥४२॥ हे दयानिधि ! अपने अंश से मछली का रूप धारण कर आपही ने वेदों का उद्धार किया था और राजा को ज्ञान देकर देवता एवं ब्राह्मणों की रक्षा की थी ॥४३॥ आप ही अपने अंश से सृष्टि के लिए शेष के आधारभूत कच्छप हुये थे । आपही अंशत: शेष के रूप में प्रकट हुये हैं और सम्पूर्ण विश्व का भार वहन करते हैं ॥४४॥ जानकी के उद्धारार्थं आप

१क. सद्गति । २क. प्रहलादा° ।

रामो दाशरथिस्त्वं च जानक्यूद्धारहेतवे । दशकंधरहन्ता च सिन्धौ सेतुविधायकः ॥४५॥
कलया परशुरामश्च जमदग्निसुतो महान् । त्रिःसप्तकृत्वो भूपानां निहन्ता जगतीपते ॥४६॥
अंशेन कपिलस्त्वं च सिद्धानां च गुरोर्गुरुः । मातृज्ञानप्रदाता च योगशास्त्रविधायकः ॥४७॥
अंशेन ज्ञानिनां श्रेष्ठौ नरनारायणावृषी । त्वं च धर्मसुतो भूत्वा लोकविस्तारकारकः ॥४८॥
अधुना कृष्णरूपस्त्वं परिपूर्णतमः स्वयम् । सर्वेषामवताराणां बीजरूपः सनातनः ॥४९॥
यशोदाजीवनो नित्यो नन्दैकानन्दवर्धनः । प्राणाधिदेवो गोपीनां राधाप्राणाधिकप्रियः ॥५०॥
वसुदेवसुतः शान्तो देवकीदुःखभञ्जनः । अयोनिसंभवः श्रीमान्पृथिवीभारहारकः ॥५१॥
पूतनायै मातृगतिं प्रदाता च कृपानिधिः । बककेशिप्रलम्बानां ममापि मोक्षकारकः ॥५२॥
स्वेच्छामय गुणातीत भक्तानां भयभञ्जन । प्रसीद राधिकानाथ प्रसीद कुरु मोक्षणम् ॥५३॥
हे नाथ गार्दभीयोनेः समुद्धर भवार्णवात् । मूर्खस्त्वद्भक्तपुत्रोऽहं मामुद्धर्तुं त्वमर्हसि ॥५४॥
वेदा ब्रह्मादयो यं च मुनीन्द्राः स्तोतुमक्षमाः । किं स्तौमि तं गुणातीतं पुरा दैत्योऽधुना खरः ॥५५॥
एवं कुरु कृपासिन्धो येन मे न भवेज्जनुः । दृष्ट्वा पादारविन्दं ते कः पुनर्भवनं व्रजेत् ॥५६॥
ब्रह्मा स्तोता खरः स्तोता नोपहासितुमर्हसि । सदीश्वरस्य विज्ञस्य योग्यायोग्ये समा कृपा ॥५७॥
इत्येवमुक्त्वा दैत्येन्द्रस्तस्थौ च पुरतो हरेः । प्रसन्नवदनः श्रीमानतितुष्टो बभूव ह ॥५८॥

ही दशरथ पुत्र राम हुये थे । सागर में सेतु बांधकर दशमुख रावण का वध आपही ने किया ॥४५॥ हे जगत्पते ! आप ही अपनी कला से जमदग्नि पुत्र परशुराम हुये थे, जिन्होंने इक्कीस वार राजाओं का हनन किया था ।४६॥ आपही अंश से कपिल हुए, जो सिद्धों के गुरु के गुरु, माता को ज्ञान देने वाले एवं योगशास्त्र के रचयिता थे ।।४७॥ ज्ञानिश्रेष्ठ नर-नारायण ऋषि भी अंशतः आपही हुए थे । आपने धर्मपुत्र होकर लोकों का विस्तार किया है ॥४८॥ इस समय आप स्वयं परिपूर्णतम परमात्मा ही श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुए हैं और सभी अवतारों के सनातन बीजरूप हैं ॥४९॥ आप यशोदा के जीवन, नित्य, नन्द के एकमात्र आनन्दवर्धक, गोपियों के प्राणाधीश्वर और राधा के प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं ॥५०॥ आप वसुदेव-पुत्र, शान्त, देवकीदुःखहन्ता, अयोनिज, श्रीसम्पन्न, पृथ्वी के भारहारी, पूतना को माता के समान गति देने वाले, कृपालु, एवं वक, केशो, प्रलम्ब और मुझे भी मोक्ष देने वाले हैं ॥५१-५२॥ स्वेच्छामय ! गुणों से परे ! भक्तों के भयहारी ! राधिकानाथ ! प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइये और मुझे मुक्त कीजिए ॥५३॥ हे नाथ ! संसार-सागर और गार्दभी योनि से मेरा उद्धार कीजिए । मैं आपके भक्त का मूर्ख पुत्र हूँ, मेरा उद्धार कीजिए ॥५४॥ वेद, ब्रह्मादि देवता और मुनीन्द्र लोग जिनकी स्तुति करने में असमर्थ रहते हैं उन गुणातीत की स्तुति मुझ जैसा पुरुष क्या करेगा ? जो पहले दैत्य था और अब गधा है ॥५५॥ कृपासिन्धो ! अब ऐसा करें, जिससे मुझे जन्म न लेना पड़े । आपके चरण-कमल का दर्शन करने पर कौन पुनः घर को लौटे ? ॥५६॥ ब्रह्मा जिनकी स्तुति करते हैं, उनकी स्तुति एक गधा कर रहा है, यह उपहास की बात नहीं है, क्योंकि सदीश्वर एवं परमेश्वर की योग्यायोग्य पर समान कृपा होती है ॥५७॥ इतना कहकर वह दैत्यराज भगवान् के सामने खड़ा हो गया । उसके मुख पर प्रसन्नता छा रही थी,वह श्री-सम्पन्न एवं अत्यन्त सन्तुष्ट जान पड़ता था ॥५८॥

Funding by IKS-MoE

इदं दैत्यकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् । सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यं लीलया लभते हरेः ॥५९॥
इह लोके हरेर्भक्तिमन्ते दास्यं सुदुर्लभम् । विद्यां श्रियं सुकवितां पुत्रपौत्रान्यशो लभेत् ॥६०॥

नारायण उवाच

श्रुत्वाऽनुमेने दैत्येन्द्रस्तवनं करुणानिधिः । कथं करोमि संहारमीदृशं भक्तमित्यहो ॥६१॥
अनुमन्य स्मृतिं तस्य संजहार हरिः स्वयम् । न हि युक्तो वधः स्तोतुर्दुर्वक्तुर्विधिरीश्वरात् ॥६२॥
दानवो मायया विष्णोर्विसस्मार पुनः स्वकम् । दुरुक्तिस्तत्कण्ठदेशे ह्यधिष्ठानं चकार ह ॥६३॥
उवाच श्रीहरिं दैत्यः कोपात्प्रस्फुरिताधरः । मुने सद्यो मर्तुकामो दैवग्रस्तो विचेतनः ॥६४॥

दैत्य उवाच

ध्रुवं त्वं मर्तुकामोऽसि दुर्बुद्धे मानवार्भक । अद्य प्रस्थापयिष्यामि त्वामहं यममन्दिरम् ॥६५॥
आयासि जीवनाकाङक्षी मम तालवनं शिशो । न यास्यसि पुनर्गेहं बान्धवं न हि द्रक्ष्यसि ॥६६॥
न कंसो न जरासंधो नरको न समो मम । देवाः कम्पन्ति मे नित्यं के चान्ये मत्समा भुवि ॥६७॥
न हि संहारकर्त्ता च मां संहर्तुं क्षमः शिवः । न च ब्रह्मा न विष्णुश्च न मृत्युः काल एव च ॥६८॥
मम तालतरूनभङक्त्वा पातयित्वा फलानि च । अहंकरोषि सहसा किमहो कस्य तेजसा ॥६९॥

दैत्य-कृत इस स्तोत्र का जो नित्य पाठ करता है । वह अनायास ही हरि का लोक, ऐश्वर्य और सामीप्य प्राप्त कर लेता है ॥५९॥ इस लोक में उसे भगवान् की भक्ति और अन्त में हरि का दुर्लभ दास्यपद तथा विद्या, श्री, उत्तम कविता, पुत्र-पौत्र और यश की प्राप्ति होती है ॥६०॥

नारायण बोले—करुणानिधान भगवान् दैत्यराज की स्तुति सुनकर अपने मन में सोचने लगे कि—ऐसे भक्त का संहार मैं कैसे करूँ ?॥६१॥ ऐसा सोचकर भगवान् ने स्वयं उसकी स्मृति का हरण कर लिया, क्योंकि स्तुति करने वाले का वध नहीं किया जाता है, कटुभाषी को ही स्वामी मारता है, ऐसा विधान है ॥६२॥ वह दानव विष्णु की मायावश पुनः अपने को भूल गया और कटूक्तियाँ उसके कण्ठ में बस गयीं ॥६३॥ मुने ! जिससे शीघ्र मृत्यु चाहने वाला दैवग्रस्त एवं चेतनाहीन वह दैत्य क्रोध से अधरोष्ठ फड़काते हुए, हरि से कहने लगा ॥६४॥

दैत्य बोला—मनुष्य के बच्चे ! दुर्बुद्धे ! तू निश्चय ही मरना चाहता है । आज मैं तुम्हें यमपुरी भेज दूंगा ॥६५॥ बच्चे ! तू मेरे इस ताड़वन में आकर पुनः जीवन की अभिलाषा करता है, अब तू न घर जा सकेगा और न बन्धु को देखेगा ॥६६॥ कंस, जरासन्ध. एवं नरक आदि कोई भी मेरे समान नहीं हैं, देवलोग नित्य मुझसे काँपते हैं । भूतल पर मेरे समान कौन है ?॥६७॥ संहारकर्ता शिव भी मेरा संहार नहीं कर सकते तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं काल भी समर्थ नहीं है ॥६८॥ मेरे ताड़ वृक्षों को तोड़कर और फलों को गिराकर तू किसके बल

कस्त्वं वद बटो सत्यं कमनीयोऽतिसुन्दरः । दुर्लभं जीवनं दातुं मह्यं कथमिहागतः ।।७०।।
इत्युक्त्वा मस्तके कृत्वा प्रेरयित्वा तु तं बली । दूरतः पातयामास श्रीकृष्णं मरणोन्मुखः ।।७१।।
पातयित्वा च तं भूमौ विषाणाभ्यां जघान सः । कृष्णाङ्गस्पर्शमात्रेण तद्विषाणे बभञ्जतुः ।।७२।।
दैत्यो भग्नविषाणश्च तमीशं कोपयन्मुने । जग्रास[1] चर्वणं कर्तुं भग्नदन्तो बभूव ह ।।७३।।
तेजसा दग्धवक्त्रश्च तमुज्जग्राह तत्क्षणे । जज्वाल व्यथितः कोपाद्ददार खुरतो महीम् ।।७४।।
घूर्णयित्वा तु लाङ्गूलं शब्दं कृत्वा भयानकम् । स जगाम शिशुस्थानं दुद्रुवुर्बालका भिया ।।७५।।
बलं च प्रेरयामास मस्तकेन महाबली । बलो मुष्टिं ददौ तस्मै मूर्च्छामाप ततोऽसुरः ।।७६।।
क्षणेन चेतनां प्राप्य जगाम हरिसंनिधिम् । बलमुष्ट्या[2] च व्यथितः पुनर्मूर्च्छामवाप सः ।।७७।।
पुनश्च चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ व्यथाकुलः । उत्ससर्ज बृहल्लेण्डं मूत्रं च भयमाप ह ।।७८।।
क्षणात्संधिक्षणं प्राप्य महाबलपराक्रमः । कृत्वा शिरसि गोविन्दं घूर्णयामास दानवः ।।७९।।
पातयामास भूमौ तं घूर्णयित्वा पुनः पुनः । उत्पाट्य तालवृक्षं तं ताडयामास माधवः ।।८०।।
यथा[3] केशप्रहारेण दानवस्य भवेद्व्यथा । तथा बभूव दैत्यस्य तालवृक्षस्य ताडनात् ।।८१।।

से सहसा ऐसा अभिमान कर रहा है ।।६९।। बेटे ! सत्य कहो, तुम कौन हो ? तुम अति मनोरम एवं सुन्दर हो । मुझे (अपना) दुर्लभ जीवन देने के लिए यहाँ क्यों आये हो ? ।।७०।। इतना कहकर उस बली एवं मरणोन्मुख दैत्य ने कृष्ण को अपने मस्तक पर उठाकर दूर फेंक दिया ।।७१।। उन्हें पृथ्वी पर गिरा कर अपने सींगों से मारा । किन्तु श्रीकृष्ण के अंग-स्पर्श मात्र से उसके सींग टूट गये ।।७२।। मुने ! सींग टूटे दैत्य ने उन भगवान् को कुपित करते हुए उन्हें चबाने के लिए पकड़ लिया, किन्तु उसके दाँत टूट गये ।।७३।। (श्रीकृष्ण के) तेज से उसका मुख जल गया । उसी क्षण उनको उगल दिया । वह क्रोध से जलने लगा । वह खुरों से पृथ्वी को खोदने लगा ।।७४।। पूंछ को घुमाकर एवं भयानक शब्द करके वह बालकों के स्थान पर गया । बालक भय से भागने लगे ।।७५।। उस महाबली ने अपने मस्तक सें बलभद्र को धक्का दिया । बलभद्र ने उसी समय उस पर मुष्टि प्रहार किया, जिससे वह राक्षस मूर्च्छित हो गया ।।७६।। क्षण भर में चेतना प्राप्त करके वह भगवान् के समीप गया और बल की मुष्टिका के आघात से वह पुनः मूर्च्छित हो गया ।।७७।। पुनः चेतना प्राप्त होने पर वह व्यथा से व्याकुल होते हुए उठा और भयभीत होने के कारण मूत्र और लेंड़ करने लगा ।।७८।। क्षण मात्र विश्राम करने के उपरान्त महाबली पराक्रमी दानव गोविन्द को अपने शिर पर उठाकर घुमाने लगा ।।७९।। बार-बार घुमाकर भूमि पर पटक दिया । तब माधव ने ताड़वृक्ष को उखाड़ कर उसी से उस पर प्रहार किया ।।८०।। केश के प्रहार से दानव को पीड़ा जितनी होती, उतनी ही पीड़ा ताड़वृक्ष के आघात से उसे हुई ।।८१।। भगवान् ने

---

[1] क. ग्राह° । [2] क. ज्ञ° । [3] ख. खड्गप्र° ।

Funding by IKS-MoE

गोवर्धनं समुत्पाट्य घातयामास तं विभुः । पपात वेगाच्छैलेन्द्रस्तस्योपरि महामुने ॥८२॥
पर्वतस्य प्रहारेण मूर्च्छामाप महाबलः । बभूव जर्जराङ्गश्च रुधिरं च समुद्वमन् ॥८३॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ रुषासुरः । गृहीत्वा पर्वतश्रेष्ठं प्रेरयामास माधवम् ॥८४॥
दृष्ट्वा शैलमुत्पतन्तं वेगेन मधुसूदनः । जग्राह दक्षिणकरे यथेक्षुदण्डवत्प्रभुः ॥८५॥
पूर्वस्थाने पर्वतं तं स्थापयामास कौतुकात् । गृहीत्वा दैत्यकर्णाग्रं पातयामास दूरतः ॥८६॥
उत्पत्य च महावेगाच्चकार वेष्टनं हरेः । पृथिवीं धर्षयामास तीक्ष्णाग्रेण खुरेण च ॥८७॥
प्रगृह्य श्रीहरिं वेगात्कृत्वा मूर्ध्नि महासुरः । उत्पपात मनोयायी लीलया लक्षयोजनम् ॥८८॥
प्रहरं च तयोर्युद्धं निर्लक्षे च बभूव ह । ततो गृहीत्वा श्रीकृष्णं पपात धरणीतले ॥८९॥
पुनर्मुहूर्तं युद्धं च बभूव भूतले तयोः । मुदा हरिः प्रशशंस प्रहस्य दानवेश्वरम् ॥९०॥
मद्भक्तस्य बलेः पुत्रं धन्यं तज्जीवनं परम् । स्वस्त्यस्तु ते दानवेन्द्र वत्स निर्वाणतां व्रज ॥९१॥
मद्दर्शनं स्वस्तिबीजं परं निर्वाणकारणम् । सर्वाधिकं सर्वपरं लभ स्थानं मनोहरम् ॥९२॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णः सस्मार चक्रमुत्तमम् । सूर्यकोटिसमं दीप्त्या जग्राह तत्सुदर्शनम् ॥९३॥
चिक्षेप भ्रामयित्वा च षोडशारमनुत्तमम् । चिच्छेद लीलयाऽवध्यं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥९४॥

गोवर्धन पर्वत को उखाड़ कर उस पर आघात किया, महामुने ! वह शैलराज उस पर बड़े वेग से गिरा ॥८२॥ पर्वत के प्रहार से उस महाबली को मूर्च्छा आ गयी। उसके अंग जर्जर हो गये और वह रुधिर वमन करने लगा ॥८३॥ क्षण में चैतन्य होने पर वह असुर क्रोध से उठ पड़ा और उसने पर्वतश्रेष्ठ को उठाकर माधव पर चला दिया ॥८४॥ मधुसूदन वेग से आते हुए उस पर्वत को देखकर ईख के डंडे की भाँति दाहिने हाथ से पकड़ लिया ॥८५॥ फिर कौतुक से पर्वत को यथास्थान रख दिया और दैत्य के कान का अग्रभाग पकड़ कर दूर फेंक दिया ॥८६॥ उस दैत्य ने बड़े वेग से उछल कर भगवान् को घेर लिया और वह तीक्ष्ण अग्रभाग वाले खुर से भूमि को खोदने लगा ॥८७॥ उस महासुर ने वेग से भगवान् को पकड़कर अपने सिर पर रख लिया और मन के समान जाने वाला वह लीलापूर्वक एक लाख योजन ऊपर उछल गया ॥८८॥ उस निर्लक्ष स्थान में उन दोनों का एक प्रहर तक युद्ध हुआ। पश्चात् श्रीकृष्ण को पकड़ कर वह भूतल पर आ गया ॥८९॥ फिर पृथ्वी पर उन दोनों का एक मुहूर्त तक युद्ध हुआ। अन्त में भगवान् ने प्रसन्नता से हँस कर उस दानवेश्वर की प्रशंसा की ॥९०॥ उन्होंने कहा––"हे दानवेन्द्र ! वत्स ! तुम मेरे भक्त बलि के पुत्र हो, तुम्हारा जीवन धन्य एवं श्रेष्ठ है। अतः तुम्हारा कल्याण हो, तुम मोक्ष प्राप्त करो ॥९१॥ मेरा दर्शक कल्याण का बीज और निर्वाण का परम कारण है। तुम सबसे अधिक और सबसे परे उत्तम स्थान को प्राप्त करो" ॥९२॥ इस प्रकार कह कर श्रीकृष्ण ने उत्तम चक्र का स्मरण किया, जो करोड़ों सूर्य के समान दीप्तिमान् था। उस सुदर्शन (चक्र) को पकड़ लिया। उसमें सोलह अरे थे। उस परमोत्तम अस्त्र को घुमाकर श्रीकृष्ण ने उसकी ओर फेंका तथा जिसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी नहीं मार सकते थे, उसे लीला से ही काट डाला ॥९३-९४॥ उस महात्मा दानव का मस्तक पृथ्वी पर गिर पड़ा जिसमें से

पपात मस्तकं भूमौ दानवस्य महात्मनः । तेजःसमूह उत्तस्थौ शतसूर्यसमप्रभः ॥९५॥
विलोक्य हरिलोकं संश्लिष्टं कृष्णपदाम्बुजे । संप्राप्य (प) परमं मोक्षमहो दानवपुंगवः ॥९६॥
गगनस्थाः सुराः सर्वे मुनयश्च भृशं मुदा । पारिजातप्रसूनानां चक्रुस्ते तत्र वर्षणम् ॥९७॥
नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे ननृतुश्चाप्सरोगणाः । जगुर्गन्धर्वनिकरास्तुष्टुवुर्मुनयो मुदा ॥९८॥
स्तुत्वा जग्मुः सुराः सर्वे मुनयो हर्षविह्वलाः । धेनुकस्य वधं दृष्ट्वा तत्राऽऽजग्मुश्च बालकः ॥९९॥
बलश्च बलिनां श्रेष्ठस्तुष्टाव पुरुषोत्तमम् । तुष्टुवुर्बालकाः सर्वे ननृतुश्च मुदाऽन्विताः ॥१००॥
दत्त्वा कृष्णबलाभ्यां च प्रपक्वानि फलानि च । सर्वाणि भक्षयामासुर्बालाः प्रहृष्टमानसाः ॥१०१॥
भुक्त्वा पीत्वा हरिः शीघ्रं बलेन बालकैः सह । जगाम स्वालयं ब्रह्मन्निहत्य दानवेश्वरम् ॥१०२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० धेनुकवधो नाम
द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

सैकडों सूर्य के समान तेजःपुञ्ज निकला ॥९५॥ श्रीकृष्ण के चरण-कमल में हरि-लोक देखकर वह तेज उसी में विलीन हो गया । अहो ! उस दानवश्रेष्ठ ने परममोक्ष प्राप्त कर लिया ॥९६॥ उस समय आकाश स्थित देवता और मुनियों ने सुप्रसन्न होकर वहाँ पारिजात पुष्पों की बहुत वर्षा की ॥९७॥स्वर्ग में दुन्दुभियाँ बजने लगीं, असप्रायें नृत्य करने लगीं, गन्धर्व-गण गान करने लगे और मुनियों ने हर्ष से स्तुति की ॥९८॥ हर्षविभोर देवलोक और मुनिगण स्तुति करके चले गये। धेनुक का वध देखकर वहाँ मभी बालक आ गये ॥९९॥ बलवानों में श्रेष्ठ बलराम पुरुषोत्तम की स्तुति करने लगे। सभी बालकों ने भी स्तुति की और वे प्रसन्नता से नाचने लगे ॥१००॥ अत्यन्त प्रमुदित हुए बालकगण बलराम और कृष्ण को सुन्दर पके फल देकर स्वयं भी भक्षण करने लगे ॥१०१॥ ब्रह्मन् ? दानवराज को मारकर श्रीकृष्ण खा-पीकर बलराम एवं बालकों के साथ अपने घर चले गये ॥१०२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में धेनुकवधवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

केन पापेन बलिजो गर्दभत्वमवाप ह । दुर्वासाः केन दोषेण शशाप दानवेश्वरम् ॥१॥
केन पुण्येन वा नाथ बलिजः[1] श्रीहरेः पदम् । सहसैकत्वमुक्तिं च संप्राप दानवाधिपः ॥२॥
मुने सर्वं सुविस्तार्य वद संदेहभञ्जन । अहो कविमुखे काव्यं नूत्नं नूत्नं पदे पदे ॥३॥

नारायण उवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात्पर्वते गन्धमादने ॥४॥
पाद्मकल्पं च वृत्तान्तं विचित्रं सुमनोहरम् । नारायणकथोपेतं कर्णपीयूषमुत्तमम् ॥५॥
यत्र कल्पे कथा चेयं तत्र त्वमुपबर्हणः । आकल्पजीवी सश्रीकः सुन्दरः स्थिरयौवनः ॥६॥
पञ्चाशत्कामिनीनां च पतिः शृङ्गारतत्परः । वरेण ब्रह्मणस्त्वं च सुकण्ठो स्थिरयौवनः ॥७॥

अध्याय २३

तिलोत्तमा और बलिपुत्र को ब्रह्मशाप

नारद बोले---किस पाप के कारण बलि के पुत्र को गर्दभ (गधा) होना पड़ा और दुर्वासा ने उस दानवेश्वर को किस दोष के कारण शाप दिया ? ॥१॥ हे नाथ ! उस बलिपुत्र दानवाधीश्वर ने किस पुण्य द्वारा श्रीकृष्ण का पद--ऐक्यमोक्ष सहसा प्राप्त कर लिया ॥२॥ मुने ! संदेहनाशक ! इन सब बातों का बहुत विस्तार करके मुझे बताने की कृपा करें । अहा ! कवि के मुख में काव्य, पद-पद पर नवीन प्रतीत होता है ॥३॥

नारायण बोले---वत्स ! सुनो, इस विषय में मैं तुम्हें एक पुरातन इतिहास कहूँगा, जिसे पूर्व समय में गंधमादन पर्वत पर धर्म के मुख से मैंने सुना था ॥४॥ यह विचित्र एवं अति मनोहर वृत्तान्त पाद्मकल्प का है, जो नारायण को कथा से युक्त एवं कानों के लिए उत्तम अमृत है ॥५॥ जिस कल्प की यह कथा है, उसमें तुम उपबर्हण नामक गन्धर्व थे । तुम्हारी आयु एक कल्प की थी । तुम श्री-सम्पन्न, सुन्दर और स्थिरयौवनयुक्त थे । ॥६॥ पचास सुन्दरी स्त्रियों के पति होकर सर्वदा शृङ्गार में तत्पर रहते थे । ब्रह्मा के वरदान से सुकण्ठ (उत्तम गला) मिला था और तुम गायकों के राजा थे ॥७॥ कामबाण से अतिपीडित सभी,कामिनियाँ तुम्हारे

---

[1] क॰ संलीय ।

अनुक्षणं पपुस्तास्ते सुन्दरं मुखपङ्कजम् । निमेषरहिताः सर्वाः कामबाणप्रपीडिताः ॥८॥
तासां प्राणैश्च घटितो विधिना त्वमिव श्रुतम् । दिवानिशं सहचरा न जीवन्ति त्वया विना ॥९॥
पुष्पोद्याने च रहसि स्थाने स्थाने मनोरमे । गह्वरेषु च शैलानां कन्दरेषु नदीषु च ॥१०॥
काननेषु च रम्येषु श्मशाने जन्तुर्वाजिते । यथामनोरथं ताश्च क्रीडां चक्रुस्त्वया सह ॥११॥
तदा दैवाद्विधेः शापाद्भूत्वा दासीसुतो भवान् । अधुना ब्रह्मणः पुत्रो वैष्णवोच्छिष्टभोजनात् ॥१२॥
असंख्यकल्पजीवी च वैष्णवप्रवरो महान् । ज्ञानदृष्टया सर्वदर्शी प्रियशिष्यश्च धूर्जटेः ॥१३॥
तस्य कल्पश्च वृत्तान्तं मुने मत्तो निशामय । विस्तार्य दैत्यवृत्तान्तं कथयामि सुधोपमम् ॥१४॥
एकदैव बलेः पुत्रो नाम्ना साहसिको बली । स्वतेजसा सुराञ्जित्वा प्रतस्थे गन्धमादनम् ॥१५॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो रत्नभूषणभूषितः । रत्नसिंहासनस्थश्च बहुसैन्यसमन्वितः ॥१६॥
एतस्मिन्नन्तरे तेन यथा याति तिलोत्तमा । रूपेणाप्सरसां श्रेष्ठा नानावेषविधायिनी ॥१७॥
चारुचम्पकवर्णाभा रत्नाभरणभूषिता । नवयौवनसंपन्ना कामबाणप्रपीडिता ॥१८॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या दिव्यवस्त्रं सुबिभ्रती । वक्रभ्रूभङ्गयुक्ता सा गजेन्द्रमन्दगामिनी ॥१९॥
स्तनमूरुं मुखेन्दुं च दृष्ट्वा साहसिको युवा । वायुना मुक्तवस्त्रायास्तस्या मूर्च्छामवाप ह ॥२०॥

सुन्दर मुख कमल का प्रतिक्षण एक टक पान करती थीं ॥८॥ दैव ने उनके प्राणों से तुम्हें इस प्रकार अभिन्न बनाया था, जिसका उदाहरण तुम्हीं हो अन्य नहीं। दिनरात साथ रहने वाली वे तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकती थीं ॥९॥ एकान्त पुष्पवाटिकाओं, मनोरम स्थानों, पर्वत की गुफाओं, कन्दराओं, नदियों, सुन्दर जंगलों और जन्तुहीन श्मशान में वे तुम्हारे साथ यथेच्छ क्रीडा करती थीं ॥१०-११॥ उन्हीं दिनों दैववश ब्रह्मा के शाप से तुम्हें दासीपुत्र होना पड़ा और वैष्णवों के उच्छिष्ट भोजन करने के कारण इस समय ब्रह्मा के पुत्र हो ॥१२॥ अब तो तुम असंख्य कल्पों तक जीवित रहने वाले महान् वैष्णवश्रेष्ठ, ज्ञानदृष्टि से सर्व द्रष्टा और शिव के प्रिय शिष्य हो ॥१३॥ मुने ! उस कल्प का वृत्तान्त मुझसे सुनो। मैं अमृतोपम दैत्यवृत्तान्त विस्तार करके बता रहा हूँ ॥१४॥ एक बार साहसिक नामक बलवान् बलिपुत्र ने अपने तेज से देवों को जीत कर गन्धमादन पर्वत की यात्रा की ॥१५॥ उसके सम्पूर्ण अंग चन्दन से चर्चित थे। वह रत्नों के भूषणों से भूषित होकर रत्नसिंहासन पर सुखासीन था। उसके साथ बहुत बड़ी सेना थी ॥१६॥ इसी बीच उसी मार्ग से तिलोत्तमा जा रही थी, जो अतिरूपवती, अप्सराओं में श्रेष्ठ, अनेक भांति के वेष धारण करने वाली, चारु चम्पा के समान रूपरंग वाली, रत्नों के भूषणों से भूषित, नवीन यौवन से युक्त एवं कामबाण से अति पीडित थीं ॥१७-१८॥ वह मन्दास समेत प्रसन्नमुख, दिव्य वस्त्र धारण किये, बलखाये भौंह को टेढ़ी किये, मतवाले गजेन्द्र की भाँति मन्द-मन्द जा रही थी ॥१९॥ उस समय वह युवा साहसिक वायु के कारण उसके वस्त्र हट जाने से उसके स्तन, जङ्घा और मुख चन्द्र देखते

Funding by IKS-MoE

सा ददर्श बलेः पुत्रमतीव सुमनोहरम् । प्रफुल्लमालतीमालां बिभ्रतं नवयौवनम् ॥२१॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं सुस्मितं सुमनोहरम् । दृष्ट्वा तं विस्मिता कामात्कटाक्षं च चकार सा ॥२२॥
क्रीडायै चन्द्रलोकं च गच्छन्ती चन्द्रकामुकी । तस्थौ केन च्छलेनैव मत्ता शृङ्गारलालसा ॥२३॥
दर्शं दर्शं च तस्यास्यं प्रहस्य वक्रचक्षुषा । मुखस्याऽऽच्छादनं चक्रे वाससा सा पुनः पुनः ॥२४॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गं धर्मकर्मसमन्वितम् । बभूव काममत्ताया योनौ कण्डूयनं जलम् ॥२५॥
विसस्मार शशधरं बलिपुत्रमनोरथा । अहो को वेद भुवने दुर्ज्ञेयं पुंश्चलीमनः ॥२६॥
पुंश्चल्यां यो हि विश्वस्तो विधिना स विडम्बितः । बहिष्कृतश्च यशसा धर्मेण स्वकुलेन च ॥२७॥
वाञ्छितं नूतनं प्राप्य विनश्यति पुरातनम् । तदा[1] स्वकर्मसाध्या सा को वा तस्याः प्रियोऽप्रियः ॥२८॥
दैवे कर्मणि पैत्र्ये च पुत्रे बन्धौ न भर्तरि । दारुणं पुंश्चलीचित्तं सदा शृङ्गारकर्मणि ॥२९॥
प्राणाधिकं रतिज्ञं साऽमृतदृष्ट्या च पुंश्चली । रत्नप्रदं रत्नविज्ञं विषदृष्ट्या हि पश्यति ॥३०॥
सर्वेषां स्थलमस्त्येव पुंश्चलीनां न कुत्रचित् । दारुणा पुंश्चली जातिर्नरघातिभ्य एव च ॥३१॥

ही मूर्च्छित हो गया ॥२०॥ उस सुन्दरी ने उस युवा वलिपुत्र को देखा, जो अत्यन्त सुन्दर, प्रफुल्ल मालती पुष्पों की माला पहने, नवीन यौवन से सम्पन्न, शारदीय पूर्णिमा के समान मुख वाला, मन्दहास युक्त, एवं अति मनोहर था । उसे देखकर वह कामिनी आश्चर्यचकित होकर कामवश कटाक्षों से देखने लगी ॥२१-२२॥ वह चन्द्रमा की कामुकी होकर उनके साथ क्रीडा करने के लिए उनके लोक को जा रही थी, किन्तु वह मतवाली संभोग की लालसावश किसी वहाने कनखी से उस (साहसिक) का मुख देख-देखकर हँसकर बार-बार वस्त्र से (अपना) मुँह ढक लेती थी ॥२३-२४॥ धर्म-कर्म से युक्त उस (साहसिक) के सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो आया और काम से मतवाली (उस अप्सरा) की योनि में खुजलाहट होने लगी और जल भी आ गया ॥२५॥ वलिपुत्र की चाह होने के कारण अव चन्द्रमा उसे भूल गये । अहो ! संसार में पुंश्चली स्त्री के दुर्ज्ञेय मन को कौन जानता है ? ॥२६॥ जिसने पुंश्चली पर विश्वास किया, उसे विधि द्वारा वञ्चित समझना चाहिए । वह यश, धर्म एवं अपने कुल से बहिष्कृत हो जाता है ॥२७॥ मनचाहे नूतन पुरुष को पाकर वह प्राचीन प्रेमी को भूल जाती है । तब वह अपने कर्म से साध्य होती है । उसका कौन प्रिय वा अप्रिय होता है ? (अर्थात् कोई नहीं) ॥२८॥ पुंश्चली स्त्री का चित्त देव-कर्म, पितृ-कर्म, पुत्र, बन्धु एवं पति में नहीं लगता है । वह वड़ा कठोर होता है, सदा श्रृंगार-कर्म में ही लगा रहता है । ॥२९॥ वह पुंश्चली रतिविशेषज्ञ को प्राणों से भी अधिक मानकर अमृतदृष्टि से देखती है और रत्न देने वाले रत्नविशेषज्ञ को विष की दृष्टि से देखती है ॥३०॥ सभी लोगों का कुछ न कुछ स्थान होता है (जहाँ वे अपने पाप से हिचकते हैं) । किन्तु पुंश्चली स्त्रियों का कहीं भी स्थान नहीं होता है । पुंश्चली नरघातियों

१क. सदा ।

Funding by IKS-MoE

निष्कृतिः [2]सर्वभोगान्ते सर्वेषामस्ति निश्चितम् । न पुंश्चलीनां विप्रेन्द्र यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥३२॥
अन्यासां कामिनीनां च कीटं हन्तुं च या दया । सा नास्ति पुंश्चलीनां तु कान्तं हन्तुं पुरातनम् ॥३३॥
कान्तं दृष्ट्वा हिनस्त्येव सोपायेनावलीलया । रतिज्ञं नूतनं प्राप्य विषतुल्यं पुरातनम् ॥३४॥
पृथिव्यां यानि पापानि पुंश्चलीष्वेव भारते । तिष्ठन्ति ताभ्यो न पराः पापिष्ठाः सन्ति केचन ॥३५॥
पुंश्चलीपरिपक्वान्नं सर्वपातकमिश्रितम् । दैवे कर्मणि पैत्र्ये च न देयं च तथा जलम् ॥३६॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं पुंश्चलीनां च निश्चितम् । दत्त्वा पितृभ्यो देवेभ्यो भुक्त्वा च नरकं व्रजेत् ॥३७॥
शतवर्षं कालसूत्रे पचत्येव सुदारुणे । घोरान्धकारे कृमयस्तं दशन्ति दिवानिशम् ॥३८॥
पुंश्चल्यन्नं च यो भुङ्क्ते दैवाद्यदि नराधमः । सप्तजन्मकृतं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम् ॥३९॥
आयुः श्रीयशसां हानिरिह लोके परत्र च । तस्माद्यत्नाद्रक्षणीयं पाकपात्रं कलत्रकम् ॥४०॥
पुश्चलीदर्शने पुण्यं यात्रासिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् । स्पर्शने च महापापं तीर्थस्नानाद्विशुध्यति ॥४१॥
स्नानं दानं व्रतं चैव जपश्च देवपूजनम् । निष्फलं पुंश्चलीनां च भारते जीवनं वृथा ॥४२॥
कथितं कुलटाख्यानं दुर्ज्ञेयं च यथागमम् । संवादं च तयोस्तत्र प्रकृतं शृणु नारद ॥४३॥

से भी दारुण होती है ॥३१॥ विप्रेन्द्र ! सब प्रकार के भोगों के अन्त में सबका उद्धार निश्चित होता है, किन्तु पुंश्चलियों का उद्धार तब तक नहीं होता है जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं ॥३२॥ अन्य स्त्रियों को कीड़े मारते के समय जो कुछ दया हो जाती है, उतनी भी दया पुंश्चली स्त्रियों को अपने पुराने प्रेमी की हत्या के समय नहीं होती है ॥३३॥ वह रतिदक्ष नूतन प्रेमी पाकर पुराने को विष तुल्य समझती है और उपाय करके बात-बात में उसे मार डालती है ॥३४॥ पृथिवी पर जो पाप हैं, वे भारत में पुंश्चलियों में ही निवास करते हैं। उनसे बढ़कर कोई भी बड़े पापी नहीं हैं ॥३५॥ पुंश्चली का बनाया हुआ भोजन समस्त पातकों से मिश्रित रहता है। इसलिए देव-पितर-कर्मों में वह देने योग्य नहीं है तथा उसका जल भी देय नहीं होता है ॥३६॥ पुंश्चली स्त्रियों का अन्न विष्ठा और जल मूत्र के समान होता है। उसे देव-पितर को देने और भक्षण करने से नरक जाना पड़ता है ॥३७॥ वहाँ भीषण कालसूत्र नामक नरक में सौ वर्ष तक पकना पड़ता है। घोर अन्धकार में वहाँ रातदिन उसे कीड़े काट-काट कर खाते हैं ॥३८॥ इसलिए दैवसंयोग से जो नराधम पुंश्चली का अन्न खाता है, उसके सात जन्मों का पुण्य निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है ॥३९॥ आयु, यश की भी हानि, लोक-परलोक दोनों में होती है। अतः प्रयत्नपूर्वक पाक-पात्र और स्त्री को बचाकर रखना चाहिए ॥४०॥ यात्रा के समय पुंश्चली स्त्री का दर्शन पुण्यप्रद होता है और यात्रा निश्चित सफल होती है। किन्तु स्पर्श करने से महापाप होता है, जो तीर्थ स्नान से ही शुद्ध हो सकता है ॥४१॥ पुंश्चली स्त्री का स्नान, दान, व्रत, जप, देव-पूजन और भारत में उनका जीवन भी व्यर्थ होता है ॥४२॥ नारद ! इस प्रकार मैंने कुलटा स्त्री का दुर्ज्ञेय आख्यान शास्त्रानुसार

---

[2] क. कर्म°।

Funding by IKS-MoE

स पुनश्चेतनां प्राप्य तां दृष्ट्वैव बलेः सुतः । कामातुरः प्रमत्तश्च जगाम कुलटान्तिकम् ।।४४।।
उवाच कुटिलापाङ्गीं पीनश्रोणिपयोधराम् । व्रीडया वाससा वक्त्रमाच्छन्नं कुर्वतीं मुदा ।।४५।।

साहसिक उवाच

कासि त्वं कस्य कन्याऽसि कस्य कान्ताऽसि कामिनि । स्वयं क्व यासि कं सुभ्रूः पुण्यवन्तं मनोहरम् ।।४६।।
कल्पान्ते तपसा पूतं भोक्तुं त्वामेव सुन्दरि । यं तं यासि याहि सा त्वं भृत्यं मां कर्तुमर्हसि ।।४७।।
क्रीणीहि रतिपुण्येन मां भृत्यं रतिलोलुपम् । शृङ्गारलोलुपा त्वं च शृङ्गारं देहि कामुकि ।।४८।।
त्वया सह ममाऽऽश्लेषो विधिना च विनिर्मितः । निरूपितं यत्तेनैव वार्यते केन तत्प्रिये ।।४९।।
वाक्यं पीयूषसदृशं सस्मितं वद सुन्दरि । शीघ्रं भुजलतापाशैर्बन्धनं कुरु निर्जने ।।५०।।
आसनं देहि कल्याणि स्वोरुं कनकसंनिभम् । स्तनमण्डलकुम्भं च [1]पात्रयोग्यं प्रदर्शय ।।५१।।
तीक्ष्णास्त्रेण कटाक्षेण जर्जरं कुरु भामिनि । कामसर्पक्षतं पादस्पर्शनेनारुजं कुरु ।।५२।।
अधरोष्ठामृतं स्वादु देहि मे क्षुधिताय च । पक्वदाडिमबीजाभं दन्तं दर्शय सुन्दरम् ।।५३।।
गम्भीरनाभिं त्रिवलीं द्रष्टुमिच्छामि सुन्दरि । नीवीप्रमोक्षणं कर्तुमिच्छा मे वर्तते सदा ।।५४।।

कह दिया, अब प्रकृत में उन दोनों का संवाद सुनो ।।४३।। वह बलिपुत्र पुनः चेतना प्राप्त होने पर उसे देखते ही कामातुर और प्रमत्त होकर उस कुलटा के समीप गया ।।४४।। तिरछी चितवन वाली, स्थूल नितम्ब और कुचों वाली तथा लज्जावश वस्त्र से हर्षपूर्वक मुख को ढकती हुई उस कुलटा से उसने कहा ।।४५।।

साहसिक बोला—कामिनि ! तुम कौन हो ? किसकी कन्या, और किसकी प्रिया हो ? सुन्दर भौंह वाली किस पुण्यवान् सुन्दर (पुरुष) के पास तुम स्वयं जा रही हो ?।।४६।। कल्पान्त में तपस्या से पवित्र हुए जिस किसी से भोग करने के लिए तुम जा रही हो, जाओ, पर मुझे अपना सेवक बना सकती हो ।।४७।। रति पुण्य द्वारा मुझ रतिलोलुप को खरीद लो। कामुकि ! तुम श्रृङ्गार (उपभोग) की लोभी हो, मुझे अपना उपभोग प्रदान करो ।।४८।। प्रिये ! तुम्हारे साथ हमारा मिलन ब्रह्मा ने पहले ही लिख दिया है, अतः अब उसे कौन रोक सकता है ? ।।४९।। हे सुन्दरी ! अब मन्दहास समेत अमृत तुल्य वाणी सुनाओ। इस निर्जन प्रदेश में अपने भुजलता-पाश से मुझे बांध लो ।।५०।। कल्याणि ! सुवर्ण के समान अपनी जङ्घा-रूप आसन मुझे प्रदान करो और घट सदृश अपना कुचमण्डल पात्र के योग्य प्रदर्शित करो ।।५१।। भामिनि ! अपने कटाक्ष-रूपी तीक्ष्ण अस्त्र से मुझे जर्जर करो, और कामरूपी सर्प द्वारा किये गये घाव को अपने चरणस्पर्श से नीरोग करो ।।५२।। मुझ भूखे को अपने अधरामृत का आस्वादन कराओ तथा पके अनारदाने के समान अपने सुन्दर दांतों को दिखाओ ।।५३।। सुन्दरि ! मैं तुम्हारी गम्भीर नाभि और त्रिवली देखना चाहता हूं, तुम्हारी नीवी खोलने की

---

[1] क. यात्रायों ।

श्रोणीं पश्यामि ललितं मुनिमानसमोहिनीम्। शरन्मध्याह्नपद्मानां प्रभामोचनलोचनाम् ॥५५॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं प्रसन्नं च प्रदर्शय। सा च तद्वचनं श्रुत्वा तमुवाच स्मरातुरा ॥
दृष्ट्वाऽऽर्तं कामबाणेन मानसंक्षयकामिनी ॥५६॥

तिलोत्तमोवाच

पतिस्त्वत्सदृशो नाथ कामिनीनां मनीषितः। बलिपुत्रोऽसि धर्मिष्ठो रूपवान्गुणवान्युवा ॥५७॥
शृङ्गारनिपुणः कान्तः[1] कामशास्त्रविशारदः। सदा मनोज्ञः स्त्रीणां त्वं सुवेषश्च स्वभावतः ॥५८॥
सुवेशं सुन्दरं शान्तं कान्तं दान्तमरोगिणम्। शृङ्गारज्ञं गुणज्ञं त्वां युवानं रसिकं शुचिम् ॥५९॥
स्त्रीमनोज्ञं दयालुं च बलिष्ठं सन्तमीश्वरम्। दातारमनुरक्तं च कान्तमिच्छति कामिनी ॥६०॥
एते सर्वे गुणाः कान्त सन्ति कान्ते त्वयि ध्रुवम्। त्वां न वाञ्छन्ति याः कान्तास्ता अविज्ञाश्च वञ्चिताः ॥६१॥
संतोषं ते करिष्यामि समागस्य विधोर्गृहात्। वेषं कृत्वा तु चन्द्रार्थं यात्राऽद्य तस्य कामिनी ॥६२॥
अन्याश्लेषणमात्रेण भविता धर्मलङ्घना। याश्च धर्मान्न रक्षन्ति तासां च जीवनं वृथा ॥६३॥
चन्द्राश्लेषं न जानन्ति यास्ता मूढाः प्रकीर्तिताः। ता एव मातृगर्भस्था न प्राज्ञाः पौरुषै रसैः ॥६४॥

सदा मेरी इच्छा रहती है ॥५४॥ मुनियों के भी मन को मोहित करने वाले तुम्हारे सुन्दर नितम्ब को तथा शरत्काल के मध्याह्नकालिक कमल की कान्ति को चुराने वाले नेत्रों को मैं देख रहा हूँ ॥५५॥ तुम शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान अपने प्रसन्न मुख को दिखाओ। मान को नष्ट करने वाली उस कामपीडित कामिनी ने उसकी बात सुनकर तथा उसे कामबाण से पीडित देखकर उससे कहा ॥५६॥

तिलोत्तमा बोली--नाथ! तुम्हारे ही समान पति कामिनियों को प्रिय होता है। तुम बलि-पुत्र, धर्मात्मा, रूपवान्, गुणी, युवा, श्रृङ्गार-निपुण, सुन्दर और कामशास्त्र में चतुर हो। तुम स्त्रियों के लिए सदा सुन्दर और स्वभावतः उत्तम वेषधारी हो ॥५७-५८॥ कामिनी ऐसा ही पति चाहती है, जो उत्तम वेषधारी, सुन्दर, शान्त, कान्त, दान्त, नीरोग, श्रृङ्गारज्ञाता, गुणज्ञ, युवा, रसिक, पवित्र, स्त्रियों के लिए मनोज्ञ, दयालु, बलिष्ठ, अधीश्वर, दाता और अनुरागी हो ॥५९-६०॥ हे कान्त! तुम्हारे ऐसे पति में ये समस्त गुण विद्यमान हैं। जो स्त्रियाँ तुम्हें नहीं चाहती हैं, वे अनभिज्ञ और वञ्चित हैं ॥६१॥ चन्द्रमा के घर से लौटने पर मैं तुम्हें सन्तुष्ट करूँगी, आज यह वेष मैंने चन्द्रमा के लिए बनाया है और उन्हीं के यहाँ जा रही हूँ ॥६२॥ आज अन्य के साथ आलिङ्गन करने से धर्मच्युत होने का भय है। क्योंकि जो स्त्रियाँ धर्म की रक्षा नहीं करती हैं उनका जीवन व्यर्थ है ॥६३॥ जो चन्द्रमा का आलिङ्गन-रस नहीं जानती हैं, वे मूढ़ कही गयी हैं। वे मानो माता के गर्भ में ही स्थित

---

[1] क. शान्तः।

Funding by IKS-MoE

स्वर्वैद्यौ मदनश्चन्द्रो मरुत्वान्नलकूबरः । एभिर्नाऽऽलिङ्गिता यास्ता वञ्चिता रतिकर्मभिः ॥६५॥
दिवानिशं मानसं मे तेषां क्रीडां च चिन्तयेत् । विशेषतः कामदेवो निपुणो रतिकर्मणि ॥६६॥
चन्द्रशृङ्गारमाश्लेषमालापममृताधिकम् । अद्य तस्य रतिदिनं तेन तच्चिन्तयेन्मनः ॥
तिलोत्तमावचः श्रुत्वा जहास बलिनन्दनः । सकामश्च सपुलकस्तामुवाच रहःस्थले ॥६७॥

साहसिक उवाच

ब्रह्मणा निर्मिता त्वं च कौतुकेन तिलोत्तमे । [१]अतो वरा चाप्सरसां विदग्धरसिकेश्वरी ॥६८॥
सुन्दोपसुन्दयोर्नाशनिमित्तेन प्रयत्नतः । सर्वरूपगुणाधारा विधिना च कृता पुरा ॥६९॥
सर्वं जानासि सर्वज्ञे विज्ञे सुरतकर्मणि । हर्षेण श्रोतुमिच्छामि वद वो मानसं वचः ॥७०॥
अतिप्रियश्च को वा च कः स्वभावो वरानने । अकथ्यं गोपनीयं च श्रोतुमिच्छामि सुन्दरि ॥७१॥
गन्धर्वाणां सुराणां च राज्ञां पुण्यवतामपि । सर्वेषां प्राणतुल्या त्वमेषु ते कः परः प्रियः ॥७२॥
असुरस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य सा तिलोत्तमा । मुखमाच्छादनं चक्रे विलोक्य वक्रचक्षुषा ॥७३॥
सत्यं सारमन्तरस्थमव्यक्तमतिगोपनम् । उवाच मानसं वाक्यमज्ञातं विदुषामपि ॥७४॥

हैं, पुरुषत्व-रस से परिचित नहीं हैं ॥६४॥ अश्विनीकुमार, कामदेव, चन्द्रमा, वायु और नलकूबर का आलिङ्गन जिन स्त्रियों ने नहीं किया, वे रति-कर्म से वञ्चित ही रहीं ॥६५॥ मेरा मन उन लोगों की काम-क्रीड़ा का रात-दिन स्मरण करता रहता है, विशेषकर कामदेव रति में निपुण हैं। चन्द्रमा का आलिङ्गन, शृङ्गार और वार्तालाप अमृत से भी मधुर होता है, आज उन्हीं के साथ रति करने का दिन है, अतः मेरा मन उसी चिन्तन में निमग्न है ॥६६॥ तिलोत्तमा की बात सुनकर वलिपुत्र हँस पड़ा। काम और रोमाञ्च से युक्त उस (वलिपुत्र) ने एकान्त में उससे कहा ॥६७॥

साहसिक बोला--तिलोत्तमे ! ब्रह्मा ने तुम्हें कौतुक से बनाया है, इसलिए तुम अप्सराओं में श्रेष्ठ, चतुर एवं रसिकेश्वरी हो ॥६८॥ पूर्व समय में सुन्द और उपसुन्द के नाश के निमित्त ब्रह्मा ने बड़े प्रयत्न से समस्त गुणों की आधार तुम्हें बनाया था ॥६२॥ सर्वज्ञे ! तुम सब कुछ जानती हो और सुखकर्म में अति चतुर हो, तुम अपने लोगों के मन की बात कहो, मैं हर्ष से सुनना चाहता हूँ ॥७०॥ वरानने ! तुम्हें अति प्रिय कौन है ? रुचि क्या है ? सुन्दरि ! मैं अकथनीय एवं गोपनीय बात सुनना चाहता हूँ ॥७१॥ गन्धर्व, देव और पुण्यवान् राजा---सबकी तुम प्राण के समान हो। इनमें कौन तुम्हारा अत्यन्त प्रिय है ? ॥७२॥ असुर की ऐसी बात सुनकर उस तिलोत्तमा ने हँसकर तिरछी चितवन से उसे देखा और वस्त्र से मुख ढाँप लिया। उसने अपने मन की बात कहना आरम्भ किया, जो सत्य, साररूप, अन्तःस्थित, अप्रकट, अति गुप्त और विद्वानों को भी अज्ञात था ॥७३-७४॥

---

[१] क. त्वत्तो मह्वा नाप्सरसो वि॰ ।

तिलोत्तमोवाच

कथनीयं साहसिक पुंश्चलीनां मनोवचः । स्त्रीजातीनां च सर्वासामुपहासकरं परम् ॥७५॥
सर्वेषामपि दुर्ज्ञेयं चरितं योषितामपि । विशेषतोऽपि दुर्ज्ञेयं पुंश्चलीनां मनोवचः ॥७६॥
वेदवेदाङ्गशास्त्रान्तं सर्वं जानाति पण्डितः । कान्त नान्तं विजानाति दिशामाकाशयोषितम् ॥७७॥
विषादप्यप्रियो वृद्धो रत्नदोऽपि च योषिताम् । युवा सर्वस्वहर्ता चेत्प्राणेभ्योऽपि परः प्रियः ॥७८॥
युवानं सुन्दरं दृष्ट्वा ह्यार्ता भवति पुंश्चली । विशेषतः सुवेषं च दृष्ट्वैव हतचेतना ॥७९॥
निमेषरहिता तस्य लोचनाभ्यां पिबेन्मुखम् । योनौ जलं क्षरेत्तस्याः सद्यः कण्डूयनं भवेत् ॥८०॥
मनोऽतिलोलमस्थैर्यं सर्वाङ्गानि चकम्पिरे । जडीभूतं शरीरं च प्रदग्धं मदनानलात् ॥८१॥
संप्राप्य तं चेद्रहसि[1] साऽऽलापं कुरुते स्फुटम् । सकटाक्षं स्मेरवक्त्रं दर्शयित्वा पुनः पुनः ॥८२॥
तथा यदि वशं कर्तुं न शशाक जितेन्द्रियम् । स्वमङ्गं दर्शयित्वा तमन्तर्वाक्यं स्फुटं वदेत् ॥८३॥
दुःसाध्ये नायके दुःखं भवेदाजन्मजन्मनि । तत्तुल्यं तत्परं प्राप्य तं विस्मरति पुंश्चली ॥८४॥
पुंश्चलीनामप्रियः कः कः प्रियो वा महीतले । योऽतिशृङ्गारनिपुणः स च प्राणाधिकः प्रियः ॥८५॥

तिलोत्तमा बोली—साहसिक ! पुंश्चली स्त्रियों के मन की बात कहना, स्त्री जाति का महान् उपहास करना है ॥७५॥ क्योंकि सभी का चरित्र दुर्ज्ञेय होता है, स्त्रियों का तो और भी अधिक होता है, फिर पुंश्चली स्त्रियों के मन की बात तो विशेष रूप से दुर्ज्ञेय होती है ॥७६॥ हे कान्त ! पण्डित लोग वेद-वेदाङ्ग-शास्त्र के अन्त को तो जानते हैं, किन्तु दिशा, आकाश, और स्त्रियों के अन्त को नहीं जान पाते ॥७७॥ स्त्रियों को रत्न देने वाला भी वृद्ध पुरुष विष से भी अधिक अप्रिय होता है, और युवा यदि सर्वस्व का अपहरण करने वाला भी हो तो भी वह प्राणों से भी उन्हें अधिक प्रिय होता है ॥७८॥ युवा और सुन्दर पुरुष को देख कर पुंश्चली स्त्री आर्त हो जाती है और विशेषकर उत्तम वेष वाले को देखकर तो वह चेतना खो बैठती है ॥७९॥ अपने नेत्रों से वह उसके मुख को एक निमेष काल भी देखती है तो उसकी योनि में जल आ जाता है और तुरन्त खुजलाहट पैदा होती है ॥८०॥ उसका मन अति चञ्चल हो जाता है, उसमें स्थिरता नहीं रहती, सर्वाङ्ग काँपने लगते हैं और जड़ीभूत शरीर कामाग्नि से जलने लगता है ॥८१॥ यदि एकान्त में वह उसे प्राप्त कर लेती है तो कटाक्षों से देखती हुई बार-बार अपने मुसकराते हुए मुख को दिखाकर उससे खुलकर वार्तालाप करती है ॥८२॥ यदि इतने पर भी वह उस जितेन्द्रिय को अपने अधीन न कर सकी, तो अपने अङ्गों को दिखाकर भीतरी बात स्पष्ट कह देती है ॥८३॥ और किसी भी तरह वश में न आने वाले नायक के मिलने पर उसे जन्म-जन्मान्तर का दुःख होता है, फिर उसी के समान किसी दूसरे को पाकर वह उसे (पहले को) भूल जाती है ॥८४॥ पृथिवी पर पुंश्चली स्त्रियों को कौन प्रिय है और कौन अप्रिय, यह कहना कठिन है। किन्तु जो शृङ्गार में अति निपुण होता है वह उन्हें प्राणों से भी अधिक

---

[1] क. संला° ।

Funding by IKS-MoE

पूर्वंजारं पतिं पुत्रं भ्रातरं पितरं प्रसूम् । विशिष्टं नूतनं प्राप्य सर्वं त्यजति लीलया ॥८६॥
न दानेन न मानेन सत्येन स्तवनेन वा । नोपकारेण प्रीत्या वा सा साध्या सुरतिं विना ॥८७॥
शयने भोजने चापि स्वप्ने ज्ञाने दिवानिशम् । नित्यं सत्पुरुषाश्लेषं स्मरन्ति कुलटाः स्त्रियाः ॥८८॥
शृङ्गारनिपुणानां च ध्यानसाध्या[1] चिरं परम् । दारुणा पुंश्चलीजातिः प्रार्थयन्ती नवं नवम् ॥८९॥
सर्वासां कुलटानां च चरितं कथितं मया । अकथ्यं गोपनीयं च मम हृद्वचनं शृणु ॥९०॥
मम सन्ति प्रियतरा गन्धर्वेषु सुरेषु च । युवानो रतिशूराश्च कामशास्त्रविशारदाः ॥९१॥
विशेषतः शशधरे स्नेहो मे विद्यते परः । ततोऽतिरिक्तः सर्वस्मादपि कामः प्रियो मम ॥९२॥
प्रियो मे कामसदृशो न भूतो न भविष्यति । स्मरस्य स्मरणात्तूर्णं सुस्निग्धं मानसं मम ॥९३॥
इत्येवं कथितं सर्वमात्मनो योषितामपि । आज्ञां कुरु महाराज यास्यामि चन्द्रसंनिधिम् ॥९४॥
चन्द्रस्थानात्तव स्थानं समागत्य सुनिश्चितम् । संतोषं तव दैत्येन्द्र करिष्यामि न संशयः ॥९५॥
श्रुत्वैवं बलिपुत्रश्च जहासोच्चैः पुनः पुनः । सा वक्रचक्षुषाऽऽलोक्य तं जहास स्मरातुरा ॥९६॥
छलेन दर्शयामास कठिनं स्तनयोर्युगम् । चारुचम्पकवर्णाभं वर्तुलं पीनमुच्छ्रितम् ॥९७॥

प्रिय होता है। ॥८५॥ नये विशिष्ट जार को पाकर वह पहले के जार, पति, पुत्र, भ्राता, पिता और माता को भी अनायास छोड़ देती है ॥८६॥ बिना सुरति के वह दान, मान, सत्य स्तुति, उपकार और प्रेम करने से भी वश में नहीं आती है ॥८७॥ कुलटा स्त्रियाँ शयन, भोजन, स्वप्न और जागरण में रात-दिन सत्पुरुषों के आलिङ्गन का नित्य स्मरण करती रहती हैं ॥८८॥ ध्यान मात्र से वे चिरकाल के लिए शृङ्गार निपुण पुरुषों के वश में हो जाती हैं। नये-नये पुरुष को चाहती हुई पुंश्चली की जाति दारुण होती है ॥८९॥ मैंने समस्त कुलटा स्त्रियों का चरित तुम्हें बता दिया, अब अकथनीय और गोपनीय मेरे हृदय की बात सुनो ॥९०॥ मुझे गन्धर्वों और देवों में वे ही अत्यन्त प्रिय हैं, जो युवा, रतिशूर और कामशास्त्र में निपुण हैं ॥९१॥ किन्तु चन्द्रमा में मेरा विशेष स्नेह रहता है और उनके बाद कामदेव मुझे सबसे अधिक प्रिय हैं ॥९२॥ काम के समान प्रिय मुझे न कोई हुआ और न होगा। काम का स्मरण होते ही मेरा मन अत्यन्त स्निग्ध हो जाता है ॥९३॥ इस प्रकार मैंने अपना और समस्त स्त्रियों का मर्म तुम्हें बता दिया। हे महाराज ! अब आप आज्ञा प्रदान करें, मैं चन्द्रमा के पास जाऊँगी ॥९४॥ हे दैत्येन्द्र ! चन्द्रमा के यहाँ से लौट कर तुम्हारे पास अवश्य आऊँगी और तब तुम्हें सन्तुष्ट करूँगी, इसमें संशय नहीं ॥९५॥ यह सुन कर वह बलिपुत्र बार-बार ठठाकर हँसने लगा और वह कामिनी भी कामातुर होकर तिरछी आँखों से उसे देख-देख कर हँसने लगी ॥९६॥ फिर व्याज से अपने दोनों कठोर स्तन दिखलाये, जो सुन्दर चम्पापुष्प के समान कान्ति वाले, गोल, और स्थूल एवं उन्नत थे। तथा अत्यन्त कठोर एवं रमणीक अपना श्रोणी भाग दिखाया, जो कदलीस्तभ को

---

[1] क. मान°।

श्रोणी सुकठिनां रम्यां रम्भास्तम्भविनिन्दिनीम् । सकटाक्षं स्मेरमुखं कपोलं पुलकाञ्चितम् ॥९८॥
रहःस्थानं समासाद्य कामेन हतचेतना । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी लोचनाभ्यां पपौ मुखम् ॥९९॥
तस्य रूपं च वेषं च दर्शं दर्शं पुनः पुनः । मुखस्याऽऽच्छादनं भावात्कुर्वती सूक्ष्मवाससा ॥१००॥
अतिकामातुरां दृष्ट्वा सुप्राज्ञो बलिनन्दनः । पप्रच्छ कामिनां कामी भावं विज्ञातुमुत्सुकः ॥१०१॥

साहसिक उवाच

किं करिष्यसि मां सत्यं वद पङ्कजलोचने । कार्यान्तरं करिष्यामि सुचिरं स्थातुमक्षमः ॥१०२॥
कामिनीषु बलात्कारो न धर्मो धर्मिणां प्रिये । विशेषतोऽतिविदुषां नास्माकं स्वकुलोचितः ॥१०३॥
शृङ्गारं देहि वा गच्छ रतिं कर्तुं सुरान्तिके । कः क्षमो वा वशीकर्तुं पुंश्चलीं बहुगामिनीम् ॥१०४॥
दानवस्य वचः श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका । आत्मानमधमंमन्या भिद्यमाना स्मरास्त्रतः ॥१०५॥

तिलोत्तमोवाच

कथमेवं ब्रूहि(षि)त्वं मे कान्तः प्राणाधिकः प्रियः । कथं वा कोपयुक्तोऽसि कुरु कार्यं
मनोषितम् ॥१०६॥
त्वामेव विमुखं कृत्वा यामि चन्द्रान्तिकं यदि । तवाभिशापात्तत्रैव सद्यो विघ्नो भविष्यति ॥१०७॥

विनिन्दित करने वाला था । फिर सकटाक्ष मुसकराता हुआ मुख एवं रोमाञ्चित कपोल दिखलाया ॥९७-९८॥ तब एकान्त स्थान पाकर काम से नष्ट चेतना वाली वह कामिनी, जिसके सर्वाङ्ग में रोमाञ्च हो आया था, अपने नेत्रों से मुख (सौंदर्य) को पीने लगी ॥९९॥ उसके रूप एवं वेष को बार-बार देखती हुई उसने कामभाव से अपने मुख को सूक्ष्मवस्त्र से ढक लिया ॥१००॥ उसे अति कामातुर देखकर अति बुद्धिमान् एवं कामियों का भाव जानने को उत्सुक बलिपुत्र ने उससे पूछा ॥१०१॥

साहसिक बोला—हे कमलनयने ! तुम क्या करोगी ? यह मुझसे सत्य बताओ । दूसरा कार्य करूँगा। बहुत देर तक ठहरने में असमर्थ हूँ ॥१०२॥ प्रिये ! कामिनियों के साथ वलप्रयोग करना धर्मात्माओं का धर्म नहीं है। विशेषकर हम जैसे अति विद्वानों के अपने कुल के योग्य नहीं है ॥१०३॥ या तो मेरे साथ उपभोग करो या रति करने के लिए देव (चन्द्रमा) के पास जाओ, क्योंकि बहुतों के पास आने-जाने वाली पुंश्चली को कौन अपने वश में कर सकता है ? ॥१०४॥ दानव की बात सुनकर उसके कण्ठ और तालु सूख गये। काम के बाणों से आहत होती हुई वह अपने को अधम समझने लगी ॥१०५॥

तिलोत्तमा बोली—तुम ऐसा क्यों कह रहे हो ? तुम तो प्राणों से भी अधिक मुझे प्रिय हो। क्यों क्रोध कर रहे हो ? मनचाहा कार्य करो ॥१०६॥ यदि मैं तुम्हें इस प्रकार विमुख करके चन्द्रमा के पास जाती हूँ, तो, तुम्हारे शाप से वहीं तुरन्त विघ्न हो जायेगा ॥१०७॥ तुम रमण करो, भगवान् स्वयं तुम्हारा कल्याण

विहारं कुरु भद्रं ते करिष्यति हरिः स्वयम् । पदे पदे शुभं तस्य यः स्त्रीमानं च रक्षति ॥१०८॥
अवमन्य स्त्रियं मूढो यो याति पुरुषाधमः । पदे पदे तदशुभं करोति पार्वती सती ॥१०९॥
तिलोत्तमावचः श्रुत्वा जहास बलिनन्दनः । कामशास्त्रेषु निष्णातस्तद्भावं बुबुधे सुधीः ॥११०॥
भावं विज्ञाय भावज्ञः कामशास्त्रविशारदः । करे धृत्वा समाश्लिष्य चुचुम्ब मुखपङ्कजम् ॥१११॥
जगाम च तया सार्धं गन्धमादनगह्वरम् । ददर्श तत्र गत्वा च स्थानं जन्तुविवर्जितम् ॥११२॥
संस्थाप्य रत्नदीपांश्च धूपं च सुमनोहरम् । शय्यां रतिकरीं कृत्वा सुष्वाप च तया सह ॥११३॥
नानाप्रकारश्शृङ्गारं चकार काममोहितः । तिलोत्तमा तं बुबुधे सुरादपि विचक्षणम् ॥११४॥
विपरीतरतौ तुष्टा बभूव रसिकेश्वरी । दिवानिशं न बुबुधे नवसंगममूर्च्छिता ॥११५॥
तिलोत्तमा कामभावाद्बलिपुत्रमुवाच ह । कृत्वा वक्षसि प्राणेशं स्तनयोरन्तरे मुदा ॥११६॥

तिलोत्तमोवाच

कदा द्रक्ष्याम्यहं कान्त मुखचन्द्रं मनोहरम् । एवंभूतं शुभदिनं कदा मे भविता पुनः ॥११७॥
अयि किं रूपमाश्चर्यं गुणो वा तव दानव । ध्रुवं शृङ्गारनिपुणस्त्वत्परो नास्ति कश्चन ॥११८॥
मां विस्मरसि कालेन पुरुषः षट्पदो यथा । स्त्रीणां सत्पुरुषाश्लेष आजीवं मनसि स्थितः ॥११९॥

करेंगे । जो सभी के मान की रक्षा करता है, उसका पग-पग पर शुभ होता है ॥१०८॥ जो नराधम स्त्री की अवमानना करके जाता है, सती पार्वती पग-पग पर उसका अशुभ करती हैं ॥१०९॥ तिलोत्तमा की बात सुनकर कामशास्त्र में निष्णात वलिपुत्र हँस पड़ा । उस विद्वान् ने उसका भाव ताड़ लिया ॥११०॥ भावों के ज्ञाता एवं काम-शास्त्र के पण्डित उस दैत्य ने तिलोत्तमा का हाथ पकड़ कर आलिंगन करके उसके मुख-कमल का चुम्बन लिया । फिर उसे साथ लेकर गन्धमादन पर्वत की जन्तुशून्य गुफा में चला गया, वहाँ रत्नों का दीपक, अतिमनोहर धूप तथा रति करने के उपयुक्त उत्तम शय्या स्थापित करके उसके साथ शयन किया ॥१११-११३॥ काममोहित होकर उस दैत्य ने उसके साथ अनेक प्रकार का शृङ्गार (कामोपभोग) किया । तिलोत्तमा उसे देवता से भी अधिक बुद्धिमान् समझने लगी ॥११४॥ वह रसिकेश्वरी उसके साथ विपरीत रति करने में सन्तुष्ट हो गयी । उस नव समागम में मूर्च्छित होने के कारण उसे दिन-रात का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा ॥११५॥ अनन्तर तिलोत्तमा ने कामवश प्राणेश्वर (वलिपुत्र) को हर्ष से अपने स्तनों के बीच में करके उससे कहा ॥११६॥

तिलोत्तमा बोली—हे कान्त ! तुम्हारा मुखचन्द्र मैं अब पुनः कब देखूंगी ? ऐसा मेरा शुभ दिन पुनः कब आयेगा ॥ ११७॥ हे दानव ! आश्चर्यचकित करने वाला यह तुम्हारा कैसा रूप एवं गुण है ? तुम कामोपभोग में निपुण हो, तुमसे बढ़कर निश्चय ही कोई नहीं है ॥११८॥ भौंरों की भांति तुम समय बीतने पर मुझे भूल जाओगे । किन्तु सत्पुरुष का समागम स्त्रियों के मन में आजीवन स्थित रहता है ॥११९॥ शुभ दिन में

Funding by IKS-MoE

सत्संगमः शुभदिने पुण्यात्पुण्यवतां भवेत् । सद्विच्छेदो दुःखहेतुर्मरणादतिरिच्यते ॥१२०॥
पीयूषभोजनात्स्वर्गवासादपि च दुर्लभः । सत्संगमः सुखमयोऽप्यसत्संगो विषाधिकः ॥१२१॥
क्षणं तिष्ठ महाराज पुनरालिङ्गनं कुरु । त्वया सार्धं मम प्राणा यास्यन्ति चेतसा सह ॥१२२॥
इत्येवमुक्त्वा कुलटा कृत्वा वक्षसि सादरम् । पुमङ्गसङ्गोत्पुलका मूर्च्छामाप सुखेन च ॥१२३॥
कुलटालिङ्गनालापात्सोऽतिकामी बभूव ह । यथा दीप्तः कृष्णवर्त्मा वर्धते हविषाऽधिकम् ॥१२४॥
पुनश्चकार शृङ्गारमसुरोऽष्टविधं मुने । चुम्बनं च नवविधं यथास्थाने यथोचितम् ॥१२५॥
नखदन्तकरैः क्रीडां चकार विविधां पुनः । किङ्किणीनां कङ्कणानां बभूव शब्द उल्बणः ॥१२६॥
मुनेर्दुर्वाससस्तेन ध्यानभङ्गो बभूव ह । अदृष्टस्य तयोस्तत्र वल्मीकाच्छादितस्य च ॥१२७॥
योगासनं कुर्वतश्च गन्धमादनगह्वरे । ध्यायतश्चरणाम्भोजं कृष्णस्य परमात्मनः ॥१२८॥
न पपात तयोर्दृष्टिः समीपस्थे महामुनौ । कामात्मनोर्न हि ज्ञानं कामेन हतचेतसोः ॥१२९॥
सहसा चेतना प्राप्य प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा । ददर्श पुरतस्तौ तु मुनिरुन्मील्य लोचने ॥१३०॥
दिवानिशं न जानन्तौ संयुक्तौ काममोहितौ । दृष्ट्वा चुकोप तेजस्वी रुद्रांशो भगवान्विभुः ॥१३१॥
उवाच तौ विहारान्ते रक्तपङ्कजलोचनः । ध्यानप्राप्तपदाम्भोजविच्छेदोद्विग्निमानसः ॥१३२॥

सत्पुरुषों का संग पुण्यवानों को पुण्य से प्राप्त होता है। सज्जन का वियोग दुःख का कारण है और मृत्यु से भी बढ़कर होता है ॥१२०॥ सत्संग अमृत-भोजन एवं स्वर्ग-निवास से मी दुर्लभ तथा सुखमय होता है, और असज्जन का साथ विष से भी अधिक होता है ॥१२१॥ महाराज ! क्षण भर रुको और पुनः मेरा आलिङ्गन करो—तुम्हारे साथ मेरे प्राण चित्त समेत चले जायेंगे ॥१२२॥ इतना कह कर उस कुलटा ने उन्हें फिर अपने हृदय से लगा लिया। उस पुरुष के अंग-मंयोग से पुलकित होने वाली वह कामिनी सुख से मूर्च्छित हो गयी ॥१२३॥ कुलटा के आलिङ्गन एवं वार्तालाप से वह उसी प्रकार अतिकामी हो गया जिस प्रकार हवि डालने पर अग्नि अधिक प्रदीप्त हो जाता है ॥१२४॥ मुने ! उस दैत्य ने पुनः उसके साथ आठ प्रकार का संभोग और नौ प्रकार का चुम्बन यथोचित स्थान में यथोचित रीति से किया ॥१२५॥ नखों, दाँतों और हाथों से विविध प्रकार की क्रीड़ा की। उस समय किंकिणियों और कंकणों का तीव्र शब्द हुआ ॥१२६॥ उससे मुनि दुर्वासा का ध्यान-भंग हो गया। उन दोनों ने मुनि को नहीं देखा, क्योंकि वे वल्मीक (बाँबी) से ढके हुए थे ॥१२७॥ वे गन्धमादन पर्वत की गुफा में योगासन से विराजमान होकर परमात्मा कृष्ण के चरण-कमल के ध्यान में निमग्न थे ॥१२८॥ समीप में रहते हुए भी उन महामुनि को उन दोनों ने नहीं देखा, कारण कि कामी प्राणी काम के द्वारा नष्टचित्त होने पर ज्ञान नहीं रखता है ॥१२९॥ सहसा ध्यान भंग होने पर ब्रह्मतेज से प्रज्वलित मुनि ने आँखें खोलीं तो उन दोनों को सामने देखा ॥१३०॥ काम से मोहित होकर जुड़े हुए वे दोनों दिन-रात को नहीं जानते थे। उन्हें देखकर रुद्र के अंश से उत्पन्न तेजस्वी भगवान् दुर्वासा कुपित हो गये। ध्यान में प्राप्त श्रीकृष्ण के चरण-कमल के वियोग से उद्विग्न चित्त वाले तथा रक्त कमल के समान नेत्र वाले मुनि ने विहार करने के अन्त में उन दोनों से कहा ॥१३१-१३२॥

Funding by IKS-MoE

दुर्वासा उवाच

उत्तिष्ठ गर्दभाकार निर्लज्ज पुरुषाधम । भक्तप्रधानस्य बलेः पुत्रः पशुसमप्रभः ।।१३३।।
देवो वा मानवो वाऽपि दैत्यगन्धर्वराक्षसाः । लज्जां कुर्वन्ति सततं स्वजातौ च पशून्विना ।।१३४।।
ज्ञानलज्जाविहीना च खरजातिर्विशेषतः । तस्मात्त्वं दानवश्रेष्ठ खरयोनिं व्रजाधुना ।।१३५।।
तिलोत्तमे त्वमुत्तिष्ठ लज्जाहीना च पुंश्चली । एतादृशी स्पृहा दैत्ये व्रज योनिं च दानवीम् ।।१३६।।
इत्येवमुक्त्वा स मुनिस्तस्थौ तत्र रुषा ज्वलन् । तौ च तुष्टुवतुर्भीतावुत्थाय व्रीडितौ मुनिम् ।।१३७।।

साहसिक उवाच

त्वं ब्रह्मा त्वं च विष्णुश्च त्वं च साक्षान्महेश्वरः । हुताशनस्त्वं सूर्यश्च सृष्टिस्थित्यन्तकारकः ।।१३८।।
क्षमापराधं भगवन्कृपां कुरु कृपानिधे । मूढापराधं सततं यः क्षमेत्स सदीश्वरः ।।१३९।।
इत्येवमुक्त्वा दैत्येन्द्रो रुरोदोच्चैः पुरो मुनेः । कृत्वा तृणानि दशने पपात चरणाम्बुजे ।।१४०।।

तिलोत्तमोवाच

हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो कृपां कुरु । विधिसृष्टौ च सर्वेषां मूढा स्त्रीजातिरेव च ।।१४१।।
ततोऽतिमत्ता कुलटा सदा कामतुरा परा । लज्जा भीतिश्चेतना च न सन्ति कामुके विभो ।।१४२।।

दुर्वासा बोले—ओ गधे के समान आकार वाले निर्लज्ज नराधम ! उठ। भक्तों में प्रधान बलि का पुत्र होकर भी तू पशु के समान आचरण कर रहा है ।।१३३।। पशुओं को छोड़कर देव, मानव, दैत्य, गन्धर्व और राक्षस लोग भी अपनी-अपनी जाति में निरन्तर लज्जा करते हैं ।।१३४।। विशेषतः गधे की जाति ज्ञान और लज्जा से हीन होती है। पुनः दानवश्रेष्ठ ! तू इस समय गधे की योनि में जा ।।१३५।। तिलोत्तमे ! तू भी उठ, तू निर्लज्जा पुंश्चली है। दैत्य में तेरी ऐसी इच्छा है तो तू दानवी योनि में जन्म ग्रहण कर। क्रोध से प्रज्वलित मुनि इतना कह कर चुप हो गये और वे दोनों लज्जित होते हुए उठ कर मुनि की स्तुति करने लगे ।।१३६-१३७।।

साहसिक बोला—आप ब्रह्मा, विष्णु और साक्षात् महेश्वर हैं। आप अग्नि, सूर्य और सृष्टि के पालक एवं विनाशक भी हैं ।।१३८।। भगवन् ! मेरा अपराध क्षमा करें। दयालो ! दया करें। मूढ के अपराध को जो निरन्तर क्षमा करता रहता है, वह सच्चा ईश्वर है ।।१३९।। इस प्रकार कहकर वह दैत्येन्द्र मुनि के सामने ऊँचे स्वर से रोदन करने लगा और दाँतों के नीचे तृण रख कर उनके चरण-कमल पर गिर पड़ा ।।१४०।।

तिलोत्तमा बोली—नाथ ! करुणासिन्धो ! दीनबन्धो ! कृपा करो। ब्रह्मा की सृष्टि में सबसे मूढ़ स्त्री जाति ही होती है ।।१४१।। विभो ! उसमें भी पुंश्चली स्त्री अत्यन्त मतवाली और सदा अत्यधिक कामातुर रहने वाली होती है। कामुक जन में लज्जा, भय एवं चेतना नहीं रहती है ।।१४२।। यह कहकर रोदन करके

इत्युक्त्वा रोदनं कृत्वा जगाम शरणं मुनेः । विना विपत्तौ केषांचिज्ज्ञानं भवति भूतले ॥
तयोर्दृष्ट्वा च वैकल्यं बभूव करुणा मुनेः ॥१४३॥

दुर्वासा उवाच

अतिशापः प्रसादो वा भवेद्दैवेन दानव । सत्कीर्तिरपकीर्तिर्वा प्राक्तनप्रभवा ध्रुवम् ॥१४४॥
विष्णुभक्तबलेः पुत्रः सद्वंशप्रभवो जनः । जनकाद्विष्णुभक्तोऽसि जानामि त्वां सुनिश्चितम् ॥१४५॥
जनकस्य स्वभावो हि जन्ये तिष्ठति निश्चितम् । यथा श्रीकृष्णपादाङ्कः कालीयवंशमस्तके ॥१४६॥
संप्राप्य गार्दभीं योनिं वत्स निर्वाणतां व्रज । पूर्वं कृष्णार्चनफलं न हि लुप्तं सतां चिरात् ॥१४७॥
बृन्दारण्यं तालवनं व्रज शीघ्रं व्रजान्तिकम् । प्राणांस्त्यक्त्वा हरेश्चक्रान्मुक्तिं प्राप्स्यसि
निश्चितम् ॥१४८॥
तिलोत्तमे भारते त्वं बाणपुत्री भविष्यसि । श्रीकृष्णपौत्राश्लेषेण पुनः पूता भविष्यसि ॥१४९॥
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्विरराम महामुने । तौ जग्मतुर्यथास्थानं प्रणम्य मुनिपुंगवम् ॥१५०॥
इत्युक्तं सर्ववृत्तान्तं दैत्यस्य खरजन्मनः । तिलोत्तमा बाणपुत्री ह्युषाऽनिरुद्धकामिनी ॥१५१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० तिलोत्तमावलिपुत्रयो-
र्ब्रह्मशापप्रस्तावो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

वह मुनि की शरण में गयी। पृथ्वी पर बिना विपत्ति के किसे ज्ञान प्राप्त होता है ? उन दोनों की विकलता देख कर मुनि को करुणा आ गयी ॥१४३॥

दुर्वासा बोले—दानव ! महान् शाप या अनुग्रह दैव संयोग से ही होता है। और उत्तम यश या अपयश निश्चित ही पुराने कर्मों के अनुसार होते हैं ॥१४४॥ तुम विष्णु के भक्त बलि के पुत्र हो, उत्तम बंश में जन्म है, पिता के संबंध से विष्णुभक्त हो, मैं तुम्हें भलीभाँति जानता हूँ ॥१४५॥ पिता का स्वभाव पुत्र में अवश्य आता है, जैसे श्रीकृष्ण के चरण-चिह्न कालिय नाग के बंशजों के मस्तक पर अङ्कित रहता है ॥१४६॥ वत्स ! गधे की योनि में उत्पन्न होकर निर्वाण पद प्राप्त करो ! सज्जनों का पूर्वजन्मार्जित कृष्णोपासना का फल चिर काल होने पर भी लुप्त नहीं होता ॥१४७॥ व्रज के समीप वृन्दावन के तालवन में जाओ। श्रीकृष्ण के चक्र द्वारा प्राण परित्याग करके निश्चित रूप से मुक्ति प्राप्त करोगे ॥१४८॥ तिलोत्तमे ! तू भारत में वाणासुर की पुत्री (उषा) होकर जन्म ग्रहण करेगी और वहाँ श्रीकृष्ण के पौत्र (अनिरुद्ध) के संयोग से पुनः पवित्र हो जायगी ॥१४९॥ महामुने ! इस प्रकार कहकर मुनि चुप हो गये और वे दोनों मुनिश्रेष्ठ को प्रणाम करके यथास्थान चले गये ॥१५०॥ इस प्रकार दैत्य का गर्दभ-योनि में जन्म लेने का समस्त वृत्तान्त मैंने तुमसे कह दिया, जिसमें तिलोत्तमा बाण-पुत्री उषा होकर अनिरुद्ध की पत्नी हुई ॥१५१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्म-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में तिलोत्तमा और बलिपुत्र के ब्रह्मशापवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३॥

Funding by IKS-MoE

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

निगूढं शृणु वृत्तान्तं मुनेर्दुर्वाससो मुने । अहोऽस्य दारसंयोगः कथं तदूर्ध्वरेतसः ॥१॥
दृष्ट्वा तयोश्च शृङ्गारं मुनिः कामी बभव ह । जितेन्द्रियोऽसत्संसर्गाद्दोषः सांसर्गिको भवेत् ॥२॥
सहसा तस्य हृदये बभूव सुरते स्पृहा । तपस्तप्त्वा तत्र दध्यौ कामिनी मदनातुरः ॥३॥
एतस्मिन्नन्तरे येन पथा याति मुनीश्वरः । प्रार्थयन्त्या पति सन्तमौर्वश्च सुतया सह ॥४॥
ऊरूद्भवो ब्रह्मणश्च पुरा कल्पे तपस्यतः । ऊर्ध्वरेताश्च योगीन्द्र और्वस्तेन इति स्मृतः ॥५॥
तस्य जानूद्भवा कन्या कन्दली नाम विश्रुता । दुर्वाससं प्रार्थयन्ती नान्यं मनसि रोचते ॥६॥
ससुतो हि मुनिश्रेष्ठो मुनेदुर्वाससः पुरः । तस्थौ महाप्रसन्नश्च ज्वलदग्निशिखोपमः ॥७॥
मुनीन्द्रोऽपि मुनीन्द्रं तं पुरो दृष्ट्वा ससंभ्रमः । प्रजवेन समुत्तस्थौ ननाम च मुदाऽन्वितः ॥८॥
और्वो दुर्वाससं तत्र समाश्लिष्य मुदाऽन्वितः। उवाच मुनये सर्वं कन्यकाया मनोरथम् ॥९॥

अध्याय २४

तालफल भक्षण के प्रसंग में बलिपुत्र का मोक्ष

नारायण बोले—मुने ! दुर्वासा मुनि का निगूढ़ वृत्तान्त सुनो। आश्चर्य की बात है कि उन ऊर्ध्वरेता को स्त्री का संयोग कैसे प्राप्त हुआ ॥१॥ उन दोनों का शृङ्गार (रति-क्रीडा) देखकर जितेन्द्रिय मुनि भी काम-युक्त हो गये क्योंकि असत् पुरुष के संसर्ग से सांसर्गिक दोष अपने में आ जाता है ॥२॥ सहसा उनके हृदय में सुरति करने की अभिलाषा उत्पन्न हो गयी, तप करके मुनि ने वहाँ कामातुर होकर कामिनी का ध्यान किया ॥३॥ इसी बीच मुनीश्वर और्व उसी मार्ग से जा रहे थे। उनके साथ उनकी पुत्री भी थी, जो पति का वरण करना चाहती थी ॥४॥ पूर्व कल्प में तप करते हुए ब्रह्मा के ऊरु प्रदेश से उत्पन्न होने के कारण उन्हें 'और्व' कहा गया है, जो ऊर्ध्वरेता एवं योगीन्द्र थे ॥५॥ उनके ऊरु प्रदेश से उत्पन्न होने वाली उस कन्या का नाम कन्दली था, जो दुर्वासा को ही चाहती थी दूसरे को पसन्द नहीं करती थी ॥६॥ मुनिश्रेष्ठ और्व जो महाप्रसन्न एवं प्रज्वलित अग्निशिखा की भाँति प्रदीप्त थे, अपनी पुत्री समेत दुर्वासा मुनि के सामने आकर उपस्थित हो गये ॥७॥ मुनीन्द्र दुर्वासा उन मुनिश्रेष्ठ को सामने देखकर घवड़ा गये और वेग से प्रसन्नता पूर्वक उठकर खड़े हो गये और नमस्कार करने लगे। और्व ने दुर्वासा का आलिंगन करके हर्षान्वित होकर अपनी कन्या की अभिलाषा उनसे कह दी ॥८-९॥

Funding by IKS-MoE

और्व उवाच

विख्याता कन्दली नाम मम कन्या मनोहरा । प्रौढा त्वामेव ध्यायन्ती श्रुत्वा वाचिकवक्त्रतः ॥१०॥
अयोनिसंभवा कन्या त्रैलोक्यं मोहितुं क्षमा । सर्वरूपगुणाधारा दोषेणैकेन संयुता ॥११॥
अतीव कलहाविष्टा कोपेन कटुभाषिणी । नानागुणयुतं द्रव्यं न त्यजेदेकदोषतः ॥१२॥
और्वस्य वचनं श्रुत्वा हर्षशोकान्वितो मुनिः । ददर्श कन्यां पुरतो गुणरूपसमन्विताम् ॥१३॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां पीनश्रोणिपयोधराम् ॥१४॥
नवयौवनसंयुक्तां पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा । रत्नालंकारशोभाढ्यां वह्निशुद्धांशुकान्विताम् ॥१५॥
मुनिर्मुमोह तां दृष्ट्वा कामबाणप्रपीडितः । उवाच तं मुनिश्रेष्ठं हृदयेन विदूयता ॥१६॥

दुर्वासा उवाच

नारीरूपं त्रिभुवने मुक्तिमार्गनिरोधकम् । व्यवधानं तपस्यायाः संततं मोहकारणम् ॥१७॥
कारागारे च संसारे दुर्वहं निगडं परम् । अच्छेद्यं ज्ञानखड्गैश्च महद्भिः शंकरादिभिः ॥१८॥
सङ्गिच्छायातिरिक्तं च कर्मभोगात्परात्परम् । इन्द्रियादिन्द्रियाधाराद्विद्यायाश्च मतेरपि ॥१९॥

और्व बोले--कन्दली नाम से विख्यात मेरी सुन्दरी तथा प्रौढ़ कन्या संदेशवाहकों के मुख से सुनकर नित्य तुम्हारा ही ध्यान करती रहती है ॥१०॥ यह कन्या अयोनिजा है और तीनों लोकों को मोहित करने में समर्थ है। वैसे तो यह सकल गुणों की आधार है, किन्तु इसमें एक दोष भी है ॥११॥ यह अत्यन्त झगड़ालू तथा कोप से कटु भाषण करने वाली है । पर, अनेक गुण युक्त वस्तु का एक दोष के कारण त्याग नहीं किया जाता ॥१२॥ और्व मुनि की बात सुनकर दुर्वासा को हर्ष और शोक दोनों उत्पन्न हुए। उन्होंने गुण-रूपयुक्त कन्या को सामने देखा। उसका मुख शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान था, नेत्र शरद् ऋतु के कमल के सदृश थे, मुख मुसकराहट से युक्त था, नितम्ब और कुच स्थूल थे। वह नवयौवन से सम्पन्न थी तथा तिरछी चितवन डाल रही थी। वह रत्नों के आभूषण तथा श्री से सम्पन्न और अग्निशुद्ध वस्त्र धारण किये हुई थी ॥१३-१५॥ दुर्वासा मुनि उसे देखते ही मुग्ध होकर कामवाणों से अति पीडित होने लगे। हार्दिक वेदना का अनुभव करते हुए उन्होंने और्व ऋषि से कहा ॥१६॥

दुर्वासा बोले--तीनों लोकों में स्त्रीरूप मुक्ति-मार्ग का अवरोधक है, तपस्या में व्यवधान डालने वाला है और निरन्तर मोह का कारण है ॥१७॥ इस संसार रूपी कारागार (जेल) में बड़ी भारी बेड़ी है, जिसका वहन करना कठिन है और जिसे शंकर आदि महापुरुष भी ज्ञानरूपी खड्ग से काट नहीं सकते ॥१८॥ नारी सदा साथ देने वाली छाया से भी अधिक सहगामिनी है। वह कर्मभोग, इन्द्रियाधार, विद्या और बुद्धि से भी अधिक

Funding by IKS-MoE

आदेहं सङ्गिनी छाया भोगान्तं भोग एव च। देहेन्द्रियाणि जीवान्तं विद्या चैवावशीलिनम् ॥२०॥
मतिश्चैवावशीलान्ता सुस्त्री जन्मनि जन्मनि। यावज्जीवी च सुस्त्रीको न तावज्जन्मखण्डनम् ॥२१॥
यावच्च जीविकाजन्म तावदभोगः सुखावहः। परं मुनीन्द्र सर्वस्माद्धरिपादाब्जसेवनम् ॥२२॥
ध्यायतः कृष्णपादाब्जं मम विघ्नो बभूव ह। न जाने कर्मदोषेण केन वा पूर्वजन्मनः ॥२३॥
पुंश्चल्या सह शृङ्गारं दृष्ट्वा दैत्यस्य मन्मनः। बभूव कामसंयुक्तं दत्तं धात्रा च तत्फलम् ॥२४॥
किं त्वहं तव कन्यायाः कटूक्तिशतकं मुने। ध्रुवं क्षमां करिष्यामि दास्यामि च ततः फलम् ॥२५॥
सर्वतोऽपि परा निन्दा स्त्रीकटूक्तिसहिष्णुता। अतीव निन्दितः सत्सु स्त्रीजितो भुवनत्रये ॥२६॥
तवाऽऽज्ञां मस्तके कृत्वा ग्रहीष्यामि सुतां तव। उपेतां कामिनीं त्यक्त्वा कालसूत्रं व्रजेन्नरः ॥२७॥
रहस्युपस्थितां कामात्पुंश्चलीं चेज्जितेन्द्रियः। परित्यजेद्धर्मभयादधर्मान्नरकं व्रजेत् ॥२८॥
इत्येवमुक्त्वा दुर्वासा विरराम मुनेः पुरः। मुनिर्वेदोक्तविधिना ददौ तस्मै सुतां मुने ॥२९॥
स्वस्तीत्युवाच दुर्वासा मुनिश्च यौतुकं ददौ। कन्यासमर्पणं कृत्वा मोहाच्चैव रुरोद ह ॥३०॥
मूर्च्छामवाप स मुनिः स्वकन्याविरहातुरः। अपत्यभेदशोकौघः स्वात्मारामं न मुञ्चति ॥३१॥

बांधने वाली है ॥१९॥ छाया शरीर के रहने तक ही साथ देती है; भोग तभी तक साथ रहते हैं जब तक उनकी समाप्ति न हो जाय; देह और इन्द्रियाँ जीवनपर्यन्त ही साथ रहती हैं; विद्या जब तक उसका अनुशीलन होता है तभी तक साथ देती है ॥२०॥ यही दशा बुद्धि की भी है; परन्तु उत्तम स्त्री जन्म-जन्म में मनुष्य को बन्धन में डाले रहती है। उत्तम स्त्री वाला पुरुष जब तक जीता है तब तक जन्म-मरण का निवारण नहीं कर सकता ॥२१॥ जब तक प्राणी का जन्म होता रहता है तब तक भोग उसे सुखदायक जान पड़ता है। परन्तु मुनीन्द्र ! सबसे अधिक सुखदायिनी है श्रीहरि के चरण-कमलों की सेवा ॥२२॥ मैं श्रीकृष्ण के चरण-कमल का ध्यान कर रहा था, यह विघ्न उपस्थित हो गया। न जाने पूर्वजन्म के किस कर्मदोष से यह आया है। पुंश्चली के साथ दैत्य का रति-विलास देख कर मेरा मन कामयुक्त हो गया, ब्रह्मा ने उसका फल मुझे दे दिया ॥२३-२४॥ किंतु, मुने ! तुम्हारी कन्या की सौ कटूक्तियों (कड़वी बातों) को मैं अवश्य क्षमा करूँगा, पश्चात् (कटूक्ति कहने पर) उसका फल दूंगा ॥२५॥ स्त्री की कड़वी बातों का सहन करते रहना (पुरुष के लिए) सबसे बड़ी निन्दा की बात है और तीनों लोकों में सज्जनों के बीच स्त्रीजित पुरुष अत्यन्त निन्दित होता है ॥२६॥ आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके मैं आपकी कन्या का ग्रहण करूँगा, क्योंकि प्राप्त कामिनी का त्याग करने से मनुष्य कालसूत्र नामक नरक में जाता है ॥२७॥ कामवश पुंश्चली के भी एकान्त में उपस्थित होने पर यदि जितेन्द्रिय भी धर्मभय से उसका त्याग करता है, तो उस अधर्म से उसे नरक में जाना पड़ता है ॥२८॥ मुनि के सामने इतना कहकर दुर्वासा चुप हो गये। मुने ! तब और्व ने वेदोक्त विधि से उन्हें अपनी कन्या दे दी ॥२९॥ दुर्वासा ने 'स्वस्ति' कह कर स्वीकार किया। मुनि ने दहेज दिया। कन्या समर्पण करने के उपरान्त मुनि मोह वश रोदन करने लगे। अपनी कन्या के वियोग में उन्हें मूर्च्छा आ गयी। क्योंकि सन्तान-वियोग-जनित

Funding by IKS-MoE

क्षणेन चेतनां प्राप्य बोधयामास कन्यकाम् । मूर्छितां तातविच्छेदाद्रुदन्तीं शोकसंयुताम् ॥३२॥

और्व उवाच

शृणु वत्से प्रवक्ष्यामि नीतिसारं सुदुर्लभम् । हितं सत्यं च वेदोक्तं परिणामसुखावहम् ॥३३॥
स्वकान्तश्च परो बन्धुरिह लोके परत्र च । न हि कान्तात्परः प्रेयान् कुलस्त्रीणां परो गुरुः ॥३४॥
देवपूजा व्रतं दानं तपश्चानशनं जपः । स्नानं च सर्वतीर्थेषु दीक्षा सर्वमखेषु च ॥३५॥
प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्च ब्राह्मणातिथिसेवनम् । सर्वाणि पतिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३६॥
किमेतैः पतिभक्तायाः अभक्तायाश्च भारते । यदा दुःखी सुखारम्भे साकाङक्षः प्रथमो भवेत् ॥
पतिसेवापरो: धर्मः सर्वशास्त्रेषु पठ्यते । स्वप्रज्ञानेन सततं कान्तं नारायणाधिकम् ॥३७॥
दृष्ट्वा तच्चरणाम्भोजसेवां नित्यं करिष्यति । परिहासेन कोपेन भ्रमेणावज्ञया सुते ॥३८॥
कटूक्ति स्वामिनः साक्षात्परोक्षान्न करिष्यति । स्त्रिया वाग्योनिदुष्टायाः कामतो भारते भुवि ॥३९॥
प्रायश्चित्तं श्रुतौ नास्ति नरकं ब्रह्मणः शतम् । सर्वधर्मपरीता या कटूक्ति कुरुते पतिम् ॥४०॥
शतजन्मकृतं पुण्यं तस्या नश्यति निश्चितम् । दत्त्वा कन्यां बोधयित्वा जगाम मुनिपुंगवः ॥४१॥

शोक स्वात्माराम को भी नहीं छोड़ता है ॥३०-३१॥ क्षण में चेतना प्राप्त होने पर उन्होंने कन्या को समझाना प्रारम्भ किया, जो पिता से अलग होने के कारण रोती हुई शोकान्वित हो रही थी ॥३२॥

और्व बोले—वत्से ! मैं तुम्हें अतिदुर्लभ नीति-तत्त्व बता रहा हूँ जो हितकारक, सत्य वेदोक्त, और परिणाम में सुखप्रद होगा ॥३३॥ नारी के लिए अपना पति ही इहलोक और परलोक में सबसे बडा बन्धु है। कुलाङ्गनाओं के लिए कान्त से बढ़कर कोई प्रिय नहीं है, पति ही उनका श्रेष्ठ गुरु है ॥३४॥ देव-पूजा, व्रत, दान, उपवास, जप, सभी तीर्थों में स्नान, समस्त यज्ञों में दीक्षा, पृथ्वी की प्रदक्षिणा, ब्राह्मण अतिथि की सेवा ये सभी पति-सेवा की सोलहवीं कला के समान भी नहीं हैं ॥३५-३६॥ भारत में पतिभक्ता या अभक्ता सभी को इन सबसे प्रयोजन ही क्या है, जब सुखारम्भ में पहले-पहल साकांक्ष होने पर पति दुःखी हो जाय ? सभी शास्त्रों में बताया गया है कि पति-सेवा महान् धर्म है। अपनी बुद्धि से सदैव पति को नारायण से भी अधिक समझना चाहिए ॥३७॥ उसके चरण-कमल की नित्य सेवा करनी चाहिये। हे सुते ! परिहास (मजाक) कोप या भ्रम वश अथवा अवहेलना से भी अपने स्वामी के लिए उसके सामने या परोक्ष में भी कभी कटु वचन नहीं बोलना चाहिए। भारत वर्ष की भूमि पर जो स्त्री स्वेच्छानुसार कटु वचन बोलती अथवा दुराचार में प्रवृत्त होती है, उसकी शुद्धि के लिए वेद में कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है। उसे सौ ब्रह्मा के समय तक नरक में रहना पड़ता है। जो स्त्री समस्त धर्मों से सम्पन्न होने पर भी पति के प्रति कटुवचन बोलती है, उसका सौ जन्मों का किया हुआ पुण्य निश्चित ही नष्ट हो जाता है। इस प्रकार मुनि-पुङ्गव और्व अपनी कन्या को उद्बोधन देकर चले गये

Funding by IKS-MoE

स्वात्मारामः स्वाश्रमे च तस्थौ स्त्रीसहितो मुदा । संभोगेच्छावृते चित्ते कामी संप्राप कामिनीम् ॥४२॥
अहो सुकृतिनां कामो वाञ्छामात्रेण सिध्यति । शय्यां रतिकरीं कृत्वा मुनिश्रेष्ठो महामुने ॥४३॥
शुभे क्षणे गृहीत्वा तां सुष्वाप निर्जने प्रियाम् । नारीरसानभिज्ञः स्यादाजन्म मुनिपुंगवः ॥४४॥
तथाऽपि सुरतौ विज्ञः कामशास्त्रविशारदः । नानाप्रकारं शृङ्गारं चकार विधिपूर्वकम् ॥४५॥
नवसंगममात्रेण मूर्च्छां संप्राप कन्दली । मूर्च्छां प्राप मुनिश्रेष्ठो बुबुधे न दिवानिशम् ॥४६॥
एवं प्रतिदिनं तत्र चकार सुरतिं मुने । विदग्धाया विदग्धेन बभूव संगमः समः ॥४७॥
संबभूव गृहासक्तस्तपस्त्यक्त्वा मुनीश्वरः । करोति कलहं नित्यं कन्दली स्वामिना सह ॥४८॥
मुनीन्द्रो बोधयामास नीतिवाक्येन कामिनीम् । सा तन्न बुबुधे किंचित्करोति कलहे स्पृहाम् ॥४९॥
तातप्रदत्तज्ञानेन सा न शान्ता बभूव ह । न हीयते प्रबोधेन स्वभावो दुरतिक्रमः ॥५०॥
नित्यं कटूक्तिं कान्तं सा करोति हेतुना विना । जगत्प्रकम्पितं येन तया कोपात्स कम्पितः ॥५१॥
तया कृतां कटूक्तिं च क्षमासंस्थां चकार ह । बोधयामास तां नित्यं सद्यो मोहाद्दयानिधिः ॥५२॥
कटूक्तिशतकं पूर्णं तत्कालेन बभूव ह । क्षमां चकार कृपया कटूक्तिं च शताधिकाम् ॥५३॥
पत्नीकटूक्त्या नियतं प्रदग्धं मानसं मुने । तस्याः कटूक्तिकारिण्याः कर्म पूर्णं बभूव ह ॥५४॥

और स्वात्माराम दुर्वासा स्त्री के साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रम में रहने लगे। मन में सम्भोग की इच्छा होते ही कामी मुनि को कामिनी मिल गयी ॥३८-४२॥ अहो ! पुण्यात्माओं का काम इच्छामात्र से सिद्ध हो जाता है। हे महामुने ! अनन्तर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा ने शुभ मूहूर्त में रति के उपयुक्त शय्या बनाकर उस निर्जन प्रदेश में अपनी प्रिया के साथ शयन किया। यद्यपि मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा नारी-रस से आजीवन अनभिज्ञ रहे, तथापि कामशास्त्र में निपुण और सुरति करने में विलक्षण थे। उन्होंने विधिपूर्वक अनेक प्रकार का शृङ्गार किया ॥४३-४५॥ नवसगम मात्र से कन्दली को मूर्च्छा आ गयी। और मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा को भी मूर्च्छित रहने के कारण उस समय दिन-रात का कुछ ज्ञान नहीं रहा ॥४६॥ मुने ! इस प्रकार वे प्रतिदिन सुरति करने लगे। चतुर पुरुष का चतुरा स्त्री के साथ योग्य समागम हुआ ॥४७॥ अब मुनीश्वर दुर्वासा तपस्या त्यागकर घर-गृहस्थी में आसक्त हो गये। कन्दली पति से नित्य कलह (झगड़ा) करने लगी, किन्तु मुनीन्द्र दुर्वासा उस कामिनी को नीति की बातों से समझाते थे। (किन्तु) वह उनकी बातों को कुछ भी नहीं समझती थी--नित्य कलह (झगड़ा) ही करती थी और पिता के दिये ज्ञान से भी वह शान्त न हो सकी। (क्योंकि) स्वभाव दुर्लङ्घ्य होता है, वह समझाने से कम नहीं होता है ॥४२-५०॥ वह अकारण पति को नित्य कड़वी बातें सुनाती थी, जिससे सारा जगत् कम्पित होता था, वही पत्नी के कोप से कम्पित हो गये ॥५१॥ दयानिधान मुनि उसकी कटूक्तियों को चुपचाप सह लेते थे और मोहवश उसे तुरन्त समझाने लगते थे ॥५२॥ (इस प्रकार) उसकी सौ कटूक्तियाँ तत्काल पूरी हो गयीं, किन्तु महर्षिने कृपया सौ से अधिक कटूक्तियों को सहन किया ॥५३॥ उसकी कटूक्तियों से मुनि का मन दग्ध होता रहता था और उस कटूक्तिकारिणी के अपराध पूरे हो गये ॥५४॥

Funding by IKS-MoE

स्वात्मारामो दयालुश्च कोपं त्यक्तुं न स क्षमः । शशाप कामिनीं मोहाद्भस्मराशिर्भवेति च ॥५५।
मुनेरिङ्गितमात्रेण भस्मसात्सा बभूव ह । एवमत्युच्छ्रितानां च न कल्याणं जगत्त्रये ॥५६॥
शरीरे भस्मसाद्भूते प्रतिबिम्बः स चाऽऽत्मनः । जीवस्तत्रान्तरिक्षस्थो ह्युवाच विनयात्प्रभुम् ॥५७॥

जीव उवाच

हे नाथ सर्वदर्शी त्वं सततं ज्ञानचक्षुषा । सर्वं जानासि सर्वज्ञः किमहं बोधयामि ते ॥५८॥
सदुक्तिर्वा कटूक्तिर्वा कोपः संताप एव च । लोभो मोहश्च कामश्च क्षुत्पिपासादिकं च यत् ॥५९॥
स्थौल्यं कार्श्यं च नाशश्च दृश्यादृश्यं समुद्भवम् । सर्वं शरीरधर्मं च न जीवस्य न चाऽऽत्मनः ॥६०॥
सत्त्वं रजस्तम इति शरीरं त्रिगुणात्मकम् । तच्च नानाप्रकारं च निबोध कथयामि ते ॥६१॥
किंचित्सत्त्वातिरिक्तं च किंचिदेव रजोधिकम् । तमोऽतिरिक्तं किंचिच्च न समं कुत्रचिन्मुने ॥६२॥
सत्त्वोदयाच्च मुक्तीच्छा कर्मेच्छा च रजोगुणात् । तमोगुणाज्जीवहिंसा कोपोऽहंकार एव च ॥६३॥
कोपात्कटूक्तिर्नियतं कटूक्त्या शत्रुता भवेत् । तया चाप्रियता सद्यः शत्रुः कः कस्य भूतले ॥६४॥
को वा प्रियोऽप्रियः को वा किं मित्रं को[1]रिपुर्भवेत् । इन्द्रियाणि च बीजानि सर्वत्र शत्रुमित्रयोः ॥६५॥

स्वात्माराम एवं दयालु होते हुए भी मुनि अपने कोप का त्याग न कर सके थे। उन्होंने मोहवश पत्नी को शाप दे दिया--"तू राख का ढेर हो जा।" मुनि के संकेत मात्र से वह भस्मसात् हो गयी। ऐसी उच्छृंखल स्त्रियों का तीनों (लोक) में कल्याण नहीं होता है ॥५४-५६॥ शरीर के जल जाने पर आत्मा का प्रतिविम्ब रूप जीव अन्तरिक्ष में स्थित होकर मुनि से सविनय बोला ॥५७॥

जीव ने कहा--हे नाय ! तुम अपने ज्ञाननेत्र से निरन्तर सब कुछ देखते हो और सर्वज्ञ होने के नाते सब कुछ जानते हो; मैं तुम्हें क्या समझाऊँ। उत्तम वचन, कटुवचन, कोप, सन्ताप, लोभ, मोह, काम, क्षुधा, पिपासा आदि और स्थूलता, दुर्बलता, नाश, दृश्य, अदृश्य और उत्पन्न होना—ये सब शरीर के धर्म हैं, न जीव के और न आत्मा के ॥५८-६०॥ सत्त्व, रज और तप से निर्मित होने के कारण यह शरीर त्रिगुणात्मक है। वह भी अनेक प्रकार का है, सुनो मैं कह रहा हूँ ॥६१॥ मुने ! किसी शरीर में सत्त्वगुण अधिक होता है, किसी में रज और किसी में तम की अधिकता होती है। कहीं भी शरीर सम गुणों वाला नहीं है ॥६२॥ शरीर में सत्त्व के उद्रेक होने से जीव को मुक्ति की इच्छा होती है, रजोगुण के उदय होने पर (सांसारिक) कर्म करने की इच्छा होती है और तमोगुण से जीवों की हिंसा, क्रोध, और अहंकार उत्पन्न होते हैं ॥६३॥ कोप से कटूक्ति निश्चय ही बोली जाती है, कटूक्ति से शत्रुता होती है और शत्रुता से तुरन्त अप्रियता आ जाती है—नहीं तो पृथिवी पर कौन किसका शत्रु है ? कौन प्रिय है और कौन अप्रिय ? कौन मित्र है और कौन शत्रु ? सर्वत्र शत्रु-मित्र

---

[1] क. °पुर्भुवि।

Funding by IKS-MoE

प्राणाधिकः प्रियः स्त्रीणां भर्तुः प्राणाधिका प्रिया । बभूव शत्रुता सद्यो दुरुक्त्या च क्षणाद्द्वयोः ॥६६॥
यद्गतं तद्गतं सर्वं कामदोषेण वै प्रभो । क्षमापराधं निखिलं किं कर्तव्यं वदाधुना ॥६७॥
किं करोमि क्व यामीति भविता कुत्र जन्म मे । तव नान्यस्य जायाऽहं भविष्यामि जगत्त्रये ॥६८॥
इत्येवमुक्त्वा जीवश्च मौनीभूतो बभूव ह । मूर्च्छामवाप स मुनिः शोकेन हतचेतनः ॥६९॥
स्वात्मारामो महाज्ञानी जहार चेतनामहो । स्त्रीविच्छेदो विदग्धानां सर्वशोकात्परात्परः ॥७०॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः । तत्र योगासनं कृत्वा चकार वायुधारणम् ॥७१॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र जगाम ब्राह्मणोऽर्भकः । दण्डी छत्री रक्तवासा बिभ्रत्तिलकमुत्तमम् ॥७२॥
सस्मितः श्यामवर्णश्च प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा । वयसाऽतिशिशुः शान्तो ज्ञानी वेदविदां वरः ॥७३॥
दृष्ट्वा तं संभ्रमेणैव दुर्वासाः प्रणनाम ह । वासयामास तत्रैव पूजयामास भक्तितः ॥७४॥
उवाच ब्राह्मणवटुर्दत्त्वा तस्मै सदाशिषम् । तद्दर्शनादाशिषा च सर्वं दुःखं गतं मुनेः ॥७५॥
शिशुरूपं क्षणं स्थित्वा तमुवाच विचक्षणः । पीयूषतुल्यं नीत्योथं[1] नीतिशास्त्रविशारदः ॥७६॥

होने में इन्द्रियाँ ही कारण होती हैं ॥६४-६५॥ स्त्रियों को पति प्राण से भी अधिक प्रिय होता है और पति को पत्नी प्राण से अधिक प्रिय होती है, फिर भी दुर्वचन के कारण एक क्षण में हम दोनों के बीच तुरन्त शत्रुता पैदा हो गई ॥६६॥ प्रभो ! कामदोषवश जो कुछ हुआ—सो हुआ, अब मेरे समस्त अपराधों को क्षमा कर दें और क्या करना चाहिए, वह बताएँ।॥६७॥ मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कहाँ मेरा जन्म होगा ? मैं तीनों लोकों में आपके सिवा किसी दूसरे की भार्या नहीं होऊँगी ॥६८॥ इतना कहकर वह जीव चुप हो गया और मुनि शोक से चेतनाहीन होकर मूर्च्छित हो गये ॥६९॥ आश्चर्य है कि स्वात्माराम और महाज्ञानी होते हुए भी मुनि चेतना खो बैठे। चतुर पुरुषों के लिए स्त्री-वियोग समस्त शोकों से बढ़कर होता है ॥७०॥ एक ही क्षण में चेतना प्राप्त होने पर वे प्राण-त्याग करने के लिए तैयार हो गये। वहाँ योगासन लगा कर वायु-धारणा आरंभ की ॥७१॥ इसी बीच एक ब्राह्मण-बालक वहाँ आ गया, जो दण्ड और छत्र लिए, रक्त वस्त्र पहने, उत्तम तिलक से भूषित, मुसकराहट से युक्त, श्याम वर्ण, ब्रह्मतेज से प्रज्वलित अवस्था से अतिशिशु, शान्त, ज्ञानी और वेद-वेत्ताओं में श्रेष्ठ था ॥७२-७३॥ उसे देखते ही दुर्वासा ने सहसा प्रणाम किया और आसन पर बैठाकर भक्तिपूर्वक उसकी पूजा की ॥७४॥ उस ब्राह्मण-बटु ने उन्हें शुभाशीर्वाद प्रदान करके वार्तालाप आरंभ किया। उसके दर्शन और आशीर्वाद से मुनि का समस्त दुःख नष्ट हो गया ॥७५॥ शिशु रूप में क्षण भर रहकर वह नीति-शास्त्रकुशल एवं बुद्धिमान् बालक अमृततुल्य नीतिपूर्ण वचन बोला ॥७६॥

---

[1] ख. नित्योवं ।

Funding by IKS-MoE

शिशुरुवाच

सर्वं जानासि सर्वज्ञ गुरोर्मन्त्रप्रसादतः । किं तत्त्वं त्वामहं विप्र पृच्छामि शोककातरम् ॥७७॥
ब्राह्मणानां तपो धर्मस्तपः साध्यं जगत्त्रयम् । स्वधर्मं वै परित्यज्य किमिदानीं करोषि भोः ॥७८॥
का कस्य पत्नी कः कान्तः कस्या वा भुवनत्रये । मूर्खाणां वञ्चनां कर्तुं करोति मायया हरिः ॥७९॥
मिथ्या पत्नी तवेयं च क्षणात्तेन गताऽधुना । न हि सत्यमदृश्यं च मिथ्या यत्राचिरस्थितिः ॥८०॥
एकाऽनंशा च भगिनी वसुदेवसुता हरेः । पार्वत्यंशसमुद्भूता सुशीला चिरजीविनी ॥८१॥
कल्पे कल्पे सुन्दरी सा तव पत्नी भविष्यति । मनो देहि तपस्यायां मुदा कतिपयं दिनम् ॥८२॥
कन्दली कदलीजातिर्भविष्यति महीतले । शुभदा फलदा कान्ता सकृत्सूता सुदुर्लभा ॥८३॥
कल्पान्तरे शान्तरूपा तव पत्नी भविष्यति । अत्युच्छृतस्य दमनमुचितं च श्रुतौ श्रुतम् ॥८४॥
इत्येवमुक्त्वा शीघ्रं च विप्ररूपी जनार्दनः । दत्त्वा ज्ञानं च विप्राय सोऽन्तर्धानं चकार ह ॥८५॥
मुनिः सर्वं भ्रमं त्यक्त्वा तपस्यायां मनो दधे । कन्दली कदलीजातिर्बभूव धरणीतले ॥८६॥
दैत्यस्तालवनं गत्वा बभूव गर्दभाकृतिः । तिलोत्तमा बाणपुत्री बभूव समये मुने ॥८७॥
दैत्येन्द्रो विष्णुचक्रेण प्राणांस्त्यक्त्वा सुवाञ्छितम् । संप्राप्य चरणाम्भोजं मुनेरपि सुदुर्लभम् ॥८८॥

शिशु ने कहा—हे सर्वज्ञ विप्र ! गुरुमन्त्र के प्रसाद से तुम सब कुछ जानते हो, फिर भी शोक से कातर हो रहे हो, अतः मैं पूछता हूँ, इसका यथार्थ रहस्य क्या है ? ब्राह्मणों का धर्म तप है। तप से तीनों लोकों को वश में किया जा सकता है। इस समय तुम अपने धर्म को छोड़कर क्या कर रहे हो ? ॥७७-७८॥ तीनों लोकों में कौन किसकी पत्नी है और कौन किसका पति है ? केवल मूर्खों को बहलाने के लिए भगवान् हरि माया द्वारा यह सब करते हैं ॥७९॥ यह (कन्दली) तुम्हारी मिथ्या पत्नी थी। इसीलिए अभी क्षणमात्र में चली गयी। जो सत्य है, वह कभी तिरोहित नहीं होता। मिथ्या वही है, जिसकी चिरकाल तक स्थिति न रहे ॥८०॥ वसुदेव की पुत्री एकानंशा, जो श्रीकृष्ण की बहन है, पार्वती के अंश से उत्पन्न हुई है। वह सुशीला और चिरजीविनी है ॥८१॥ वह सुन्दरी प्रत्येक कल्प में तुम्हारी पत्नी होगी; इसलिए तुम कुछ दिन प्रसन्नता से तपस्या में मन लगाओ ॥८२॥ कन्दली भूतल पर कदली जाति होकर उत्पन्न होगी। वह कल्पान्तर में शुभदा, फलदायिनी, मनोहर, संतान देने वाली, परम दुर्लभा तथा शान्तरूपा स्त्री होकर तुम्हारी पत्नी होगी। जो अत्यन्त उच्छृंखल हो, उसका दमन करना उचित है, ऐसा वेद में सुना गया है ॥८३-८४॥ इतना कहकर एवं ब्राह्मण को ज्ञान प्रदान करके ब्राह्मणरूपधारी हरि तुरन्त अन्तर्हित हो गये ॥८५॥ मुनि ने समस्त भ्रमों को त्याग कर तपस्या में मन को लगाया और कन्दली पृथिवी पर कदली जाति होकर उत्पन्न हुई ॥८६॥ मुने ! वह दैत्य तालवन जाकर गर्दभ के रूप में परिणत हो गया और तिलोत्तमा समय पाकर बाणासुर की पुत्री (उषा) हुई ॥८७॥ उस दैत्य ने भगवान् विष्णु के चक्र द्वारा प्राणों को छोड़कर अपना अभीष्ट भगवान् का चरण-कमल प्राप्त किया, जो मुनियों को भी अति दुर्लभ है ॥८८॥

Funding by IKS-MoE

काले तिलोत्तमा भूत्वा जगाम स्वालयं पुनः । कृष्णपौत्रालिङ्गनेन परिपूर्णमनोरथा ॥८९॥
इत्येवं कथितं [1]श्रुत्वा श्रीकृष्णाख्यानमुत्तमम् । पदे पदे सुन्दरं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥९०॥

इति ब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० तालफलभक्षणप्रसङ्गे
बलिपुत्रमोक्षो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

श्रुतं किमद्भुतं ब्रह्मन् हरेश्चरितमङ्गलम् । विशेषतस्तव मुखे ह्यतीव सुमनोहरम् ॥१॥
मृतायां मुनिकन्यायां शापाद्दुर्वाससो मुनेः । किं चकार समागत्य तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥२॥

समय पर वह भी श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के आलिङ्गन से परिपूर्ण मनोरथ होकर पुनः तिलोत्तमा होकर अपने निवास-स्थान स्वर्ग को चली गई ॥८९॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण के उत्तम आख्यान को सुनकर तुमसे कह दिया। यह पद-पद पर सुन्दर है। अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥९०॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारदसंवाद में तालफलभक्षण के प्रसङ्ग में बलिपुत्र-मोक्ष-वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४॥

अध्याय २५

दुर्वासा का सुदर्शनचक्र से छुटकारा

नारद बोले—ब्रह्मन् ! भगवान् का कितना अद्भुत एवं मंगलमय चरित मैंने सुना है; विशेषकर आपके मुख से (वह चरित) अत्यन्त मनोहर लग रहा था ॥१॥ तपोधन ! दुर्वासा मुनि के शापवश मुनिकन्या के मृतक हो जाने पर—उसके पिता और्व ऋषि ने आकर क्या किया, यह बतादें ॥२॥

---

[1] क. ब्रह्मन् ।

नारायण उवाच

सरस्वतीनदीतीरे तपस्यां कुर्वतो मुनेः। पपात धौतमूर्ध्वाच्च धार्यमाणं च वायुना ॥३॥
पृथिव्यां पतिते वस्त्रे तपस्त्यक्त्वा मुनीश्वरः। ध्यानेन बुबुधे सर्वं कन्यासंबन्धिसंकटम् ॥४॥
जगाम शोकाविष्टोऽपि तूर्णं जामातुराश्रमम्। सिषेच पृथिवीरेणूञ्छश्वन्नयनबिन्दुना ॥५॥
गत्वाऽऽलयसमीपं च विप्रः कातरमानसः। हे वत्से कन्दलीत्येवमुवाच च पुनः पुनः ॥६॥
श्वशुरस्य स्वरं ज्ञात्वा दुर्वासा भयविह्वलः। बहिर्बभूव शीघ्रं च पपात चरणाम्बुजे ॥७॥
प्रणम्य श्वशुरं शोकाद्विललाप भृशं पुनः। प्रवृत्तिं कथयामास मूलतो मुनिसत्तमम् ॥८॥
श्रुत्वा वार्तां शुचाऽविष्टः पपात धरणीतले। मूर्च्छामाप महाज्ञानी निश्चेष्टो हि यथा मृतः ॥९॥
मृतं दृष्ट्वा स दुर्वासा मेने मनसि संकटम्। चेतनां कारयामास प्रयत्नेन महामुनेः ॥१०॥
संप्राप्य चेतनां शीघ्रमुवाच तं पुरःस्थितम्। जामातरं शोकयुतं भीतं प्रणतकंधरम् ॥११॥
महाशोकादश्रुपूर्णं रक्तपङ्कलोचनम्। कोपात्कम्पितवाञ्छश्वत्संत्रस्तः स्फुरिताधरः ॥१२॥

और्व उवाच

अये ब्रह्मन्नत्रिवंश पौत्रस्त्वं जगतीपतेः। स्वल्पदोषे बहुतरः कृतो दण्डस्त्वया कथम् ॥१३॥

नारायण बोले—उस समय और्व ऋषि सरस्वती नदो के किनारे तप कर रहे थे, कन्या का धौतवस्त्र (धोती) वायु द्वारा उड़ते हुए ऊपर से वहीं आकर गिरा ॥३॥ पृथिवी पर वस्त्र के गिरने पर मुनि ने तप छोड़कर ध्यान द्वारा कन्या संबंधी सारी विपत्ति को जान लिया ॥४॥ तब वे शोकाकुल होकर शीघ्र जामाता दुर्वासा के आश्रम में गये और अपनी आँखों के आँसुओं की बूंदों से पृथिवी के धूलकणों को सींचने लगे ॥५॥ अत्यन्त कातर होकर और्व ब्राह्मण उनकी कुटी के समीप पहुंचे और 'हे वत्से कन्दली !' इस प्रकार बार-बार कहने लगे ॥६॥ अपने श्वशुर का स्वर पहचान कर दुर्वासा भय से आकुल हो गये और बाहर निकल कर उनके चरण-कमल पर शीघ्रता से गिर पड़े ॥७॥ श्वशुर को प्रणाम करके शोक से बाराबार विलाप करने लगे। उस मुनिश्रेष्ठ से आदि से अन्त तक का—समस्त वृत्तान्त कहकर सुना दिया। उसे सुनकर और्वऋषि शोक के कारण पृथिवी पर गिर पड़े। महाज्ञानी होते हुये भी वे निश्चेष्ट मृतक की भाँति मूर्च्छित पड़े रहे ॥८-९॥ उन्हें मृतक देखकर दुर्वासा के मन में सङ्कट उत्पन्न हुआ। वे प्रयत्न से महामुनि को चेतना में लाये ॥१०॥ चेतना प्राप्त होने पर उन्होंने सामने स्थित, शोकग्रस्त, भीत एवं कन्धे को झुकाये तथा महाशोक के कारण आँसू भरे रक्त कमल के समान नेत्र वाले जामाता से कहा। उस समय और्वऋषि क्रोध से काँप रहे थे, निरन्तर संत्रस्त हो रहे थे और ओठ फड़फड़ा रहे थे ॥११-१२॥

और्व बोले—ब्रह्मन् ! तुम अत्रिवंश में उत्पन्न हो और जगत्पति (ब्रह्मा) के पौत्र हो। तुमने स्वल्प दोष पर बहुत बड़ा दण्ड कैसे दे दिया ? ॥१३॥ शिव के अंश से तुम्हारा जन्म हुआ है, और उन्हीं जगद्गुरु

Funding by IKS-MoE

त्वज्जन्म शंकरांशेन शिष्यस्तस्य जगद्गुरोः । वेदवेदाङ्गविज्ञश्च सर्वज्ञो गुणवान्स्वयम् ॥१४॥
अनसूया महासाध्वी कमलांशा तव प्रसूः । न जाने केन दोषेण तव चैतादृशी मतिः ॥१५॥
गुणवाञ्जनको यस्य माता गुणवती सती । तयोः पुत्रो दयाहीनो गतिः सूक्ष्मा श्रुतेरहो ॥१६॥
मम प्राणाधिका कन्या मुदा त्वयि समर्पिता । महागुणान्विता स्वल्पदोषेण परिमिश्रिता ॥१७॥
वाग्दुष्टायाश्च दण्डो हि परित्यागः श्रुतौ श्रुतः । त्वया क्रोधाद्यदि त्यक्ता पिता यत्नेन पालिता ॥१८॥
मदपत्यं स्वल्पदोषे यतो भस्मीकृतं त्वया । पराभवस्तव महान्भविष्यति न संशयः ॥१९॥
महतां क्षूद्रजन्तूनां सर्वेषां जीविनां सदा । स्रष्टा पाता च शास्ता च भगवान्करुणानिधिः ॥२०॥
इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो विलप्य च पुनः पुनः । हेऽम्ब वत्से ह्ययीत्युक्त्वा जगाम स्वालयं रुषा ॥२१॥
गते मुनीन्द्रे दुर्वासा विललाप भृशं पुनः । ज्ञानेन विस्मृतः शोको बभूव द्विगुणः पुनः ॥२२॥
शोकानलो हि कालेन विच्छिन्नो ज्ञानभस्मना । बन्धुदर्शनशुष्केन्धदानेन वर्धते पुनः ॥२३॥
स्मारं स्मारं प्रियां तत्र विलप्य च पुनः पुनः । बोधयित्वा स्वमात्मानं तपस्यायां मनो दधौ ॥२४॥
इत्येवं कथितं सर्वं मुनेः शापस्य कारणम् । बभूव तस्य कालेन दुःसहश्च पराभवः ॥२५॥

(शिव) के शिष्य भी हो। स्वयं भी वेद-वेदाङ्ग के वेत्ता, सर्वज्ञ और गुणवान् हो ॥१४॥ कमला (लक्ष्मी) की अंशभूता एवं महासाध्वी अनसूया तुम्हारी जननी है। मैं नहीं जानता कि किस दोष से तुम्हारी ऐसी बुद्धि है ॥१५॥ जिसका पिता गुणवान् हो और माता महासती एवं गुणवती हो, उसका पुत्र निर्दय हो, यह वेद की कैसी सूक्ष्म गति है ? ॥१६॥ मैंने अपनी प्राणप्यारी पुत्री को तुम्हें बड़े प्रेम से समर्पित किया था, जो महागुणवती एवं स्वल्प-दोष-युक्त थी ॥१७॥ वेद में भी वाग्दुष्टा (कटुवादिनी) स्त्री का परित्याग करना ही दण्ड बताया गया है। यदि तुम क्रोधवश उसे त्याग देते तो पिता उसका पालन-पोषण करता ॥१८॥ जिसलिए स्वल्प दोष होने पर भी तुमने मेरी सन्तान को भस्म कर दिया, इसलिए तुम्हारा महान् पराभव (अपमान) होगा, इसमें संशय नहीं ॥१९॥ बड़े-छोटे सभी जीवों का सदा सर्जन, पालन और शासन करुणानिधान भगवान् ही करते हैं ॥२०॥ इतना कहकर वे मुनिश्रेष्ठ बार-बार विलाप करने लगे और हे अम्ब ! अयि वत्से ! ऐसा कहकर क्रोध-मुद्रा में अपने घर चले गये ॥२१॥ मुनीन्द्र और्व के चले जाने पर दुर्वासा ने बार-बार विलाप किया। ज्ञान से भूला हुआ उनका शोक पुनः दुगुना हो गया। ॥२२॥ शोकरूपी अग्नि समय पाकर ज्ञानरूपी भस्म से विच्छिन्न हो जाता है, किन्तु बन्धुदर्शनरूपी सूखे इन्धन के देने से वह पुनः बढ़ जाता है ॥२३॥ अपनी प्रिया का बार-बार स्मरण करके उन्होंने बार-बार विलाप किया। फिर अपने आपको समझा-बुझाकर तपस्या में मन को लगा दिया ॥२४॥ इस प्रकार मुनि के शाप का कारण मैंने तुम्हें भलीभाँति बता दिया। समय आने पर उनका दुःसह अपमान हुआ था ॥२५॥

नारद उवाच

दुर्वासाः शंकरस्यांशः शिवतुल्यश्च तेजसा । तेजस्वी को महानेव चकार तत्पराभवम् ॥२६॥

नारायण उवाच

अम्बरीषो हि राजेन्द्रः सूर्यवंशसमुद्भवः । श्रीकृष्णचरणाम्भोजे तन्मनाः संततं मुने ॥२७॥
न राज्येषु न भार्यासु न पुत्रेषु प्रजासु च । न संपत्सु क्षणं चित्तं पुण्यकर्मार्जितासु च ॥२८॥
ध्यायतेऽहर्निशं धर्मी स्वप्ने ज्ञाने हरिं मुदा । महाजितेन्द्रियः शान्तो विष्णुव्रतपरायणः ॥२९॥
एकादशीव्रतरतः कृष्णपूजासु तत्परः । सर्वकर्मस्वलिप्तश्च कर्ता कृष्णार्पितेषु च ॥३०॥
सुतीक्ष्णं षोडशारं च हरेश्चक्रं सुदर्शनम् । तेजसा हरितुल्यं च सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥३१॥
ब्रह्मादिभिः स्तूयमानं पूजितं च सुरासुरैः । प्रभुणा रक्षितं शश्वद्रक्षायै नृपसंनिधौ ॥३२॥
एकादशीव्रतं कृत्वा द्वादशीदिवसे सति । स्नात्वा विधाय पूजां च कालेन विधिपूर्वकम् ॥३३॥
दत्त्वा दानं ब्राह्मणेभ्यः सुवर्णरजतादिकम् । ब्राह्मणान्भोजयित्वा च भोजनार्थमुवास ह ॥३४॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्रस्तपस्वी क्षुधितो मुने । दण्डी छत्री शुक्लवासा बिभ्रत्तिलकमुत्तमम् ॥३५॥
जटिलोऽतिकृशस्त्रस्तः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । तत्राऽऽजगाम भगवान्दुर्वासा नृपतेः पुरः ॥३६॥
स च दृष्ट्वा मुनीन्द्रं तमुत्थाय च प्रणम्य च । दत्त्वा पाद्यं च संप्रीत्या स्वर्णसिंहासनं ददौ ॥३७॥

नारद बोले—दुर्वासा तो शङ्कर के अंश एवं शिव के समान तेजस्वी थे । फिर किस महातेजस्वी ने उनका भी पराभव कर दिया ? ॥२६॥

नारायण बोले—मुने ! सूर्य-वंश में महाराज अम्बरीष उत्पन्न हुए थे । वे श्रीकृष्ण के चरण-कमल में अपने मन को निरन्तर लगाये रहते थे ॥२७॥ वस्तुओं—राज्य, स्त्री, पुत्र, प्रजाओं और पुण्य कर्मों से प्राप्त होने वाली सम्पत्तियों में भी उनका चित्त क्षणमात्र भी नहीं लगता था ॥२८॥ वे दिनरात—सोते-जागते भगवान् का सहर्ष स्मरण किया करते थे और महाजितेन्द्रिय, शान्त एवं भगवान् विष्णु सम्बन्धी व्रतों के पालन में तत्पर रहते थे ॥२९॥ वे एकादशीव्रत में निमग्न, श्रीकृष्ण की पूजा में तत्पर तथा कृष्णार्पण किये हुए सभी कर्मों में अलिप्त थे ॥३०॥ श्रीकृष्ण का सुदर्शन चक्र सोलह अरों से युक्त, हरि के समान तेजस्वी, करोड़ों सूर्यों के समान चमकने वाला, ब्रह्मा आदि से स्तुत और सुरों एवं असुरों से पूजित हैं । भगवान् ने निरन्तर रक्षा के लिए उस चक्र को राजा के पास ही रख दिया था ॥३१-३२॥ एक बार एकादशी व्रत करके द्वादशी के दिन स्नान, समय पर सविधि पूजा, ब्राह्मणों को सुवर्ण-चाँदी के दान और भोजन कराकर स्वयं भोजन के लिए बैठे । इसी बीच राजा के सामने तपस्वी ब्राह्मण भगवान् दुर्वासा आगये, जो क्षुधित, दण्ड-छत्रधारी, शुक्ल वस्त्र पहने, उत्तम तिलक लगाये, जटा-युक्त, अत्यन्त क्षीण और त्रस्त थे । उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे ॥३३-३६॥ मुने ! राजा ने उस मुनीन्द्र को देखकर उठकर प्रणाम किया और अति प्रेम से पैर धोने के लिए जल प्रस्तुत करके उन्हें सुवर्ण का सिंहासन दिया

Funding by IKS-MoE

तस्मै दत्त्वाऽऽशिषं विप्रः समुवास सुखासने। प्रपच्छ राजा तं प्रीतः काऽऽज्ञा ते वद कामितम् ॥३८॥
नृपेन्द्रवचनं श्रुत्वा तमुवाच महामुनिः । बुभुक्षितस्य मे राजन्देह्यन्नं विधिपूर्वकम् ॥३९॥
किं त्वघमर्षणमन्त्रं जप्त्वाऽऽयाम्यचिरेण वै। क्षणं प्रतीक्षतां राजन्नित्युक्त्वा च गतो मुनिः ॥४०॥
गते विप्रे तु राजर्षिश्चिन्तां प्राप दुरत्ययाम् । विलोक्य विगतप्रायां द्वादशीं भयसंयुतः ॥४१॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र समायान्तं गुरुं मुदा । नत्वा निवेद्य सर्वं तु नृपतिः समुवाच ह ॥४२॥
नाऽऽयाति मुनिशार्दूलः प्रयाति द्वादशी तिथिः। संकटेऽस्मिन्विधेयं च विविच्य विधिपूर्वकम्
शीघ्रं वद मुनिश्रेष्ठ भद्राभद्रं च मामिति ॥४३॥
श्रुत्वा नृपोक्ति त्वरितमुवाच मुनिपुंगवः। हितं तथ्यं च वेदोक्तं परिणामसुखावहम् ॥४४॥

वसिष्ठ उवाच

द्वादश्यां समतीतायां त्रयोदश्यां तु पारणम् । उपवासफलं हत्वा व्रतिनं हन्ति निश्चितम् ॥४५॥
ब्रह्महत्यासमं पापं भवेत्तस्य श्रुतौ श्रुतम् । भक्ष्यद्रव्यं सुरातुल्यमित्याह कमलोद्भवः ॥४६॥
न भोजयित्वा मूढश्चेदतिथिं समुपस्थितम् । स त्रस्तः क्षुधितो भुङ्क्ते कुम्भीपाके व्रजेद्ध्रुवम् ॥४७॥
शतवर्षं तत्र तिष्ठन्नरश्चाण्डालतां व्रजेत् । व्याधियुक्तो दरिद्रश्च भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥४८॥

॥३७॥ ब्राह्मण दुर्वासा भी उन्हें आशिष प्रदान करके उस सिंहासन पर आसीन हुए। तब राजा ने सप्रेम पूछा—आपकी क्या आज्ञा है ? अपनी इच्छा बताएँ ॥३८॥ बात सुनकर महामुनि ने कहा-–राजन् ! मैं क्षुधा-पीड़ित हूँ, मुझे विधिपूर्वक भोजन प्रदान करें ॥३९॥ परन्तु मैं अघमर्षण मन्त्र का जप करके अभी आ रहा हूँ, अतः क्षणभर मेरी प्रतीक्षा करें। इतना कहकर मुनि चले गये। ब्राह्मण के चले जाने पर राजर्षि को बड़ी भारी चिन्ता हुई। द्वादशी तिथि प्रायः बीत चली है, यह देख वे डर गये। इसी बीच उनके गुरु आ गये। राजा ने नमस्कार करके सारी बातें वतायीं और पूछा—हे मुनि श्रेष्ठ ! मुनिवर दुर्वासा अभी तक नहीं आये हैं, द्वादशी तिथि व्यतीत हो रही है—ऐसे सङ्कट के समय क्या करना चाहिए, इसका विवेचन करके जो कुछ शुभाशुभ हो, मुझे शीघ्र वता दें ॥४०-४३॥ राजा की वात सुनकर मुनिश्रेष्ठ ने शीघ्र हितकर, तथ्य, वेदानुसार और परिणाम में सुखदायक बात कही ॥४४॥

वशिष्ठ बोले-–द्वादशी व्यतीत हो जाने पर त्रयोदशी में पारण करने से उपवास का फल नष्ट हो जाता है और व्रती का भी निश्चित रूप से नाश होता है ॥४५॥ उसे ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है, ऐसा वेद में सुना गया है। खाद्य-पदार्थ मदिरा के समान हो जाता है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥४६॥ और यदि उपस्थित अतिथि को विना भोजन कराये वह डर एवं क्षुधावश भोजन कर लेता है, तो उस मूढ़ को कुम्भीपाक नरक में निश्चित रूप से जाना पड़ता है। वहाँ सौ वर्ष रहकर वह मनुष्य चाण्डाल के यहाँ उत्पन्न होता है, फिर प्रत्येक जन्म में रोगी एवं दरिद्र होकर जीवन व्यतीत करता है ॥४७-४८॥ अतः इस परम संकट के समय तुम्हें

Funding by IKS-MoE

अतोऽतिसूक्ष्मं किं ब्रूमोऽधुना परमसंकटे । रक्षां कुरु द्वयोर्धर्मं समालोक्य वदामि ते ॥४९॥
उपवासफलं रक्ष कृष्णस्य चरणोदकम् । भुक्त्वा शीघ्रमपो राजंस्तद्भक्षणमभक्षणम् ॥५०॥
इत्युक्त्वा ब्रह्मणः पुत्रो विरराम महामुने । बुभुजे तज्जलं किंचित्कृष्णपादाम्बुजं स्मरन् ॥५१॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्नाजगाम मुनीश्वरः । चिच्छेद कोपात्सर्वज्ञः स्वजटां नृपतेः पुरः ॥५२॥
ततः समुत्थितः शीघ्रं पुरुषोऽग्निशिखोपमः । खड्गहस्तो महाभीमो राजेन्द्रं हन्तुमुद्यतः ॥५३॥
हरेश्चक्रं च तं दृष्ट्वा सूर्यकोटिसमप्रभम् । चिच्छेद कृत्यापुरुषं ब्राह्मणं छेत्तुमुद्यतम् ॥५४॥
दृष्ट्वा सुदर्शनं विप्रो दुद्राव भयविह्वलः । द्विजः पश्चात्तं ददर्श ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥५५॥
ब्रह्माण्डक्रमणं कृत्वा निर्विण्णोऽतिभयाकुलः । तं च मत्वा जगन्नाथं ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥५६॥
त्राहि त्राहीत्येवमुक्त्वा विवेश ब्रह्मणः सभाम् । उत्थाय ब्रह्मा विप्रेन्द्रं पप्रच्छ कुशलं मुने ॥५७॥
सर्वं स कथयामास वृत्तान्तं मूलतो विधिम् । श्रुत्वा ब्रह्मा निशश्वास तमुवाच भयाकुलः ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

हरिदासं वत्स शप्तुं गतोऽसि कस्य तेजसा । रक्षिता यस्य भगवांस्तं को हन्ता जगत्त्रये ॥५९॥
क्षुद्राणां महतां चैव भक्तानां रक्षणाय च । ररक्ष सततं चक्रं श्रीहरिर्भक्तवत्सलः ॥६०॥

अति सूक्ष्म बात क्या बताऊँ ? दोनों के धर्म की रक्षा करो । यही देखकर मैं तुमसे कहता हूँ ॥४९॥ श्रीकृष्ण के चरणोदक का पान करके उपवास के फल की रक्षा करो । राजन् ! शीघ्र जल का भक्षण (पान) करो । उस (चरणोदक) का भक्षण भक्षण नहीं माना जाता है ॥५०॥ महामुने ! इतना कहकर ब्रह्मपुत्र वशिष्ठ चुप हो गये और राजा ने श्रीकृष्ण के चरण-कमल का स्मरण करते हुए उनका स्वल्प चरणोदक पान कर लिया ॥५१॥ ब्रह्मन् ! इतने में मुनीश्वर दुर्वासा आ गये । उन सर्वज्ञ ने क्रोध से राजा के सामने अपनी जटा तोड़ डाली । उससे शीघ्र ही अग्निशिखा के समान (तेजस्वी) एक पुरुष प्रकट हुआ । वह महाभयंकर तथा खड्गहस्त पुरुष महाराज को मारने के लिए तैयार हो गया ॥५२-५३॥ उसे देखकर करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण हरि के चक ने कृत्या-पुरुष को काट डाला और ब्राह्मण दुर्वासा को मारने के लिए तैयार हो गया ॥५४॥ उस सुदर्शन को देखते ही ब्राह्मण (दुर्वासा) भयाकुल होकर भाग निकले । उन्होंने अपने पीछे-पीछे प्रज्वलित अग्नि-शिखा के समान तेजस्वी चक्र को आते देखा ॥५५॥ वे अत्यन्त व्याकुल हो सारे ब्रह्माण्ड का चक्कर लगाते-लगाते थक गये और ब्रह्मा को जगत् का स्वामी मानकर उनकी शरण में गये ॥५६॥ मुने ! 'बचाइये, बचाइये'—ऐसा कहते हुए उन्होंने ब्रह्मा की सभा में प्रवेश किया । ब्रह्मा ने उठकर विप्रेन्द्र (दुर्घासा) से कुशल-मंगल पूछा ॥५७॥ उन्होंने आदि से अन्त तक का समस्त वृत्तान्त ब्रह्मा से कह दिया । सुनकर ब्रह्मा ने लंबी सांस ली और भय से व्याकुल होकर उनसे कहा ॥५८॥

ब्रह्मा बोले—वत्स ! किसके बल पर तुम हरि के भक्त को शाप देने गये थे ? जिसके रक्षक भगवान् हैं; उसे तीनों लोकों में कौन मार सकता है ? ॥५९॥ भक्तवत्सल श्री हरि ने छोटे-बड़े सभी भक्तों की रक्षा के

Funding by IKS-MoE

यो मूढो वैष्णवं द्वेष्टि विष्णुप्राणसमं द्विज । तस्य संहारकर्तारं संहर्तुमीश्वरो हरिः ॥६१॥
शीघ्रं स्थानान्तरं गच्छ वत्स त्राणं न वाऽधुना । अन्यथा त्वां मया सार्धं हनिष्यति सुदर्शनम् ॥६२॥
किं ब्रह्मलोकं ब्रह्माण्डं दग्धुं शक्तं क्षणेन यत् । तेजसा विष्णुतुल्यं यत्केनान्येन निवार्यते ॥६३॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ततो दुद्राव ब्राह्मणः । त्रस्तो जगाम कैलासं शंकरं शरणं भिया ॥६४॥
कृपानिधान मां रक्षेत्युवाच शंकरं भिया । न हि पप्रच्छ कुशलं सर्वज्ञो ब्राह्मणं शिवः ॥६५॥
उवाच दीनदीनेशः संहर्ता जगतां क्षणात् । स्थिरो भव द्विजश्रेष्ठ मदीयं वचनं शृणु ॥६६॥

शंकर उवाच

पौत्रस्त्वं जगतां धातुरत्रेश्च तनयो मुने । वेदज्ञाताऽसि सर्वज्ञ मूर्खतुल्यं तु कर्म ते ॥६७॥
वेदेषु च पुराणेषु सेतिहासेषु सर्वतः । निरूपितो यः सर्वेशस्तं न जानासि मूढवत् ॥६८॥
अहं ब्रह्मा च इन्द्रश्च[1] आदित्या वसवस्तथा । धर्मेन्द्रौ च सुराः सर्वे मुनीन्द्रा मनवस्तथा ॥६९॥
आविर्भूतास्तिरोभूता यस्य भ्रूभङ्गलीलया । तस्य प्राणाधिकं भक्तं हंसि त्वं कस्य तेजसाः ॥७०॥
अहं ब्रह्मा च कमला दुर्गा वाणी च राधिका । न हि भक्तात्पराः प्रेम्णा भक्ताश्च सर्वतः प्रियाः ॥७१॥

लिए ही चक्र को निरन्तर नियुक्त कर रखा है ॥६०॥ द्विज ! जो मूढ़ विष्णु के प्राणों के समान प्रिय वैष्णवों से द्वेष करता है, उसके संहारकर्ता (बचाने वाले) का भी संहार करने में हरि समर्थ हैं ॥६१॥ वत्स ! इसलिए तुम यहाँ से शीघ्र किसी दूसरे स्थान में जाओ। अब यहाँ तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। अन्यथा (नहीं जाओगे तो) सुदर्शन चक्र मेरे साथ तुम्हें मार डालेगा ॥६२॥ जो ब्रह्मलोक क्या, ब्रह्माण्ड को क्षण भर में भस्म कर सकता है और जो विष्णु के समान तेजस्वी है, उसे दूसरा कौन रोक सकता है ? ॥६३॥ ब्रह्मा की बात सुनकर ब्राह्मण (मुनि) यहाँ से भागे और त्रस्त होकर भय से कैलास पर शंकर की शरण में गये। 'हे कृपानिधान ! मेरी रक्षा कीजिए'—ऐसा भयपूर्वक शंकर से कहा। सर्वज्ञ शिव ने दुर्वासा से कुशल-समाचार नहीं पूछा ॥६४-६५॥ दीन-दुखियों के स्वामी और क्षणभर में लोकों का संहार करने वाले महादेव ने कहा—द्विजवर ! स्थिर हो, मेरी बात सुनो ॥६६॥

शंकर बोले—मुने ! तुम ब्रह्मा के पौत्र और अत्रि मुनि के पुत्र हो। सर्वज्ञ ! तुम वेदों के ज्ञाता हो, पर तुम्हारा कर्म मूर्खों के समान है ॥६७॥ वेदों, पुराणों और इतिहासों में जो सब प्रकार से सर्वाधीश्वर निरूपित किये गये हैं, उन्हें तुम मूर्खों की भाँति नहीं जानते हो ॥६८॥ जिनके भ्रूभंग की लीलामात्र से मैं, ब्रह्मा, इन्द्र, आदित्यगण, वसुगण, धर्मेन्द्र, समस्त देवता, मुनीन्द्र और मनुगण उत्पन्न और लीन होते रहते हैं, उनके प्राणों से भी बढ़कर प्रिय भक्त को तुम किसके तेज से मार रहे थे ? ॥६९-७०॥ मैं, ब्रह्मा, लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती और स्वयं राधिका भी भक्तों से बढ़कर उनके प्रेमपात्र नहीं हैं। भक्त सबसे (अधिक) प्रिय हैं ॥७१॥ इसीलिए

---

[1] क. रुद्राञ्च ।

Funding by IKS-MoE

नियुज्य चक्रं दुर्वार्यं स्वात्मतुल्यं च तेजसा । तथाऽपि न प्रतीतिश्च स्वयं गच्छति रक्षितुम् ॥७३॥
स्वकीयगुणनाम्नां च श्रवणादतिसंभ्रमः । भक्तसङ्गे भ्रमत्येव च्छायेव संततं हरिः ॥७४॥
कान्ता प्राणाधिका शश्वन्न हि कोऽपि ततोऽधिकः। भक्तान्द्वेष्टि स्वयं सा चेत्तूर्णं त्यजति
तां प्रभुः ॥७५॥

सर्वेषां च प्रिया विप्राः स्वशरीरादपि द्विज । ब्राह्मणेभ्यः प्रिया भक्ता प्राणेभ्यश्च हरेरपि ॥७६॥
ईश्वरस्य प्रियः को वाऽप्रियः को वा जगत्त्रये। यः शिष्टस्तं भजेच्छश्वद्ध्यायते सततं सदा ॥७७॥
महति प्रलये ब्रह्मन्ब्रह्माण्डौघे जलप्लुते । न तत्र नाशो भक्तानां सर्वेषां च भविष्यति ॥७८॥
भज ब्राह्मण गोविन्दं स्मर तस्य पदाम्बुजम्। सर्वापदो विनश्यन्ति श्रीहरेः स्मरणादपि ॥७९॥
व्रज शीघ्रं च वैकुण्ठे वैकुण्ठः शरणं तव । दास्यत्येवाभयं तुभ्यं करुणासागरो विभुः ॥८०॥
एतस्मिन्नन्तरे व्याप्तं कैलासं चक्रतेजसा । यथा च सूर्यकिरणैः सुप्रदीप्तं महीतलम् ॥८१॥
दग्धा ज्वालाकरालैश्च सर्वे कैलासवासिनः । त्राहि त्राहीत्येवमुक्त्वा शंकरं शरणं ययुः ॥८२॥
दृष्ट्वा चक्रं दुर्विषहं शंकरः करुणानिधिः । पार्वत्या सह संप्रीत्या ब्राह्मणायाऽऽशिषं ददौ ॥८३॥
तेजः सत्यं तपः सत्यं यदि चेच्चिरसंचितम् । कृतापराधो भीतश्च द्विजो भवतु विज्वरः ॥८४॥
क्षुद्रांश्च महतो भक्ताञ्छश्वद्रक्षति यत्नतः । सर्वान्तरात्मा भगवांश्चक्रेण दुःसहेन च ॥७२॥

सबके अन्तरात्मा भगवान् अपने दुःसह चक्र द्वारा छोटे-बड़े भक्तों की निरन्तर यत्नपूर्वक रक्षा करते रहते हैं।
(रक्षा के लिए) अपने समान तेजस्वी एवं दुर्निवार चक्र को नियुक्त करके भी वे उस पर भरोसा नहीं करते हैं।
उनकी रक्षा के लिए स्वयं जाते हैं ॥७२-७३॥ अपने गुणों और नामों के सुनने से शीघ्रतायुक्त भगवान् भक्त के
साथ छाया की भाँति निरन्तर भ्रमण किया करते हैं ॥७४॥ उनकी प्रिया प्राणों से भी बढ़कर हैं, उनसे अधिक
कोई नहीं है। किन्तु वह भी भक्तों से द्वेष करती हैं, तो प्रभु सहसा उनका भी त्याग कर देते हैं ॥७५॥ द्विज !
प्रभु को सबसे और अपने देह से भी प्रिय ब्राह्मण हैं, ब्राह्मणों से प्रिय भक्त हैं. जो भगवान् को प्राणों से भी बढ़कर
हैं ॥७६॥ तीनों लोकों में भगवान् को कौन प्रिय है और कौन अप्रिय। किन्तु जो शिष्ट व्यक्ति है, उसका वे
निरन्तर भजन-ध्यान करते हैं ॥७७॥ ब्रह्मन् ! महाप्रलय के समय ब्रह्माण्ड-समूह के जल-प्लावित हो जाने पर
उसमें भी सभी भक्तों का नाश नहीं होता है ॥७८॥ ब्राह्मण ! गोविन्द का भजन करो और उनके चरण-कमल का
स्मरण करो। भगवान् का स्मरण करने से सभी आपदायें नष्ट हो जाती हैं ॥७९॥ तुम शीघ्र वैकुण्ठ जाओ।
वैकुण्ठ ही तुम्हारे लिए शरण हैं, करुणासागर भगवान् तुम्हें अभय प्रदान करेंगे ॥८०॥ इस बीच सूर्य की किरणों
द्वारा अत्यन्त प्रकाशित भूतल की भाँति कैलास सुदर्शन-चक्र के तेज से व्याप्त हो गया ॥८१॥ सभी कैलाशवासी
भयंकर ज्वाला से दग्ध होने लगे और 'त्राहि-त्राहि' कहकर शंकर की शरण में पहुँचे ॥८२॥ उस दुःसह-चक्र
को देखकर पार्वती सहित करुणानिधान शंकर ने बहुत प्रेम से ब्राह्मण को आशीर्वाद दिया—"यदि तेज सत्य है और
चिरकाल से संचित तप सत्य है, तो यह अपराध करके डरा हुआ ब्राह्मण ताप से मुक्त हो जाये ॥८३-८४॥

Funding by IKS-MoE

पार्वत्युवाच

यत्प्रभोर्मम पुण्येषु ब्राह्मणः शरणागतः । ममाऽऽशिषा महाभीत्या शीघ्रं भवतु विज्वरः ॥८५॥
इत्येवमुक्त्वा कृपया विरराम शिवा शिवः । मुनिः प्रणम्य देवेशं वैकुण्ठं शरणं ययौ ॥८६॥
गत्वा वैकुण्ठभवनं मनोयायी मुनीश्वरः । दृष्ट्वा सुदर्शनं पश्चाद्विवेशान्तः पुरं हरेः ॥८७॥
ददर्श श्रीहर्रि विप्रो रत्नसिंहासनस्थितम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम् ॥८८॥
श्यामं चतुर्भुजं शान्तं लक्ष्मीकातं मनोहरम् । रत्नालंकारशोभाढ्यं रत्नमालाविभूषितम् ॥८९॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् । सद्रत्नसाररचितकिरीटोज्ज्वलशेखरम् ॥९०॥
पार्षदप्रवरेन्द्रैश्च सेवितं श्वेतचामरैः । पद्मासेवितपादाब्जं सरस्वत्या स्तुतं पुरः ॥९१॥
सुनन्दनन्दकुमुदप्रचण्डादिभिरावृतम् । गुणानुवादं गायन्तं तन्त्रैः[1] पश्यन्तमीप्सितम् ॥९२॥
एवंभूतं प्रभुं दृष्ट्वा दण्डवत्प्रणमाम च[2] । तुष्टाव सामवेदोक्तस्तोत्रेण परमेश्वरम् ॥९३॥

दुर्वासा उवाच

त्राहि मां कमलाकान्त त्राहि मां करुणानिधे । दीनबन्धोऽतिदीनेश करुणासागर प्रभो ॥९४॥

पार्वती बोलीं—जिसलिए यह ब्राह्मण मेरे स्वामी के पुण्य कर्मों के अवसर पर शरण में आया है, इसलिए मेरे आशिष द्वारा यह महान् भय से मुक्त होकर संताप से रहित हो जाय ॥८५॥ कृपापूर्वक ऐसा कहकर पार्वती और शिव चुप हो गये और मुनि देवाधीश्वर शिव को प्रणाम करके वैकुण्ठ की शरण में गये ॥८६॥ मन की भाँति वेग से चलने वाले मुनीश्वर दुर्वासा वैकुण्ठ पहुँचकर सुदर्शन को अपने पीछे आते देख भगवान् के अन्तःपुर में प्रवेश कर गये ॥८७॥ ब्राह्मण ने वहाँ भगवान् श्री हरि को रत्न के सिंहासन पर विराजमान देखा, जो शङ्ख, चक, गदा, पद्म लिये, पीताम्बर पहने, श्यामलवर्ण, चतुर्भुज, शान्त, लक्ष्मीकान्त, मनोहर, रत्नों के आभूषणों से भूषित, रत्नमाला से सुशोभित, मन्दहास समेत प्रसन्न मुख, भक्तों पर अनुग्रह करने वाले, उत्तम रत्नों के सारभाग से सुरचित किरीट से समुज्ज्वल शिरोभाग वाले और श्वेत चामरों से श्रेष्ठ पार्षदों द्वारा सुसेवित थे। लक्ष्मी उनके चरण-कमल की सेवा कर रही थीं, सरस्वती सामने उनकी स्तुति कर रही थीं एवं सुनन्द, नन्द कुमुद और प्रचण्ड आदि गण उनको घेर कर खड़े थे। गुणानुवाद गाते हुए अभीष्ट भक्त को भगवान् तन्त्रों से देख रहे थे ॥८८-९२॥ ऐसे प्रभु को देखकर दुर्वासा ने दण्डवत् प्रणाम किया और सामवेदीय स्तोत्र द्वारा परमेश्वर की स्तुति करना आरम्भ किया ॥९३॥

दुर्वासा बोले—हे कमलाकान्त ! मुझे बचाइए ; हे करुणानिधे ! मेरी रक्षा कीजिए। आप दीनवन्धु, अतिदीनों के ईश, करुणासागर एवं प्रभु हैं। आप वेद-वेदाङ्ग की सृष्टि करने वाले विधाता के भी विधाता हैं,

---

[1] क. यन्त्रैः । [2] क. तम् ।

वेदवेदाङ्गसंस्रष्टुर्विधातुश्च स्वयं विधिः । मृत्योर्मृत्युः कालकाल त्राहि मां संकटार्णवे ॥९५॥
संहारकर्तुः संहारः सर्वेशः सर्वकारणः । महाविष्णुतरोर्बीज रक्ष मां भवसागरे ॥९६॥
शरणागतशोकार्तभयत्राणपरायण । भगवन्नव मां भीतं नारायण नमोऽस्तु ते ॥९७॥
वेदेष्वाद्यं च यद्वस्तु वेदाः स्तोतुं न च क्षमाः। सरस्वती जडीभूता किं स्तुवन्ति विपश्चितः ॥९८॥
शेषः सहस्रवक्त्रेण यं स्तोतुं जडतां व्रजेत्। पञ्चवक्त्रो जडीभूतो जडीभूतश्चतुर्मुखः ॥९९॥
श्रुतयः स्मृतिकर्तारो वाणी चेत्स्तोतुमक्षमा। कोऽहं विप्रश्च वेदज्ञः शिष्यः किं स्तौमि मानद ॥१००॥
मनूनां च महेन्द्राणामष्टाविंशतिमे गते । दिवानिशं यस्य विधेरष्टोत्तरशतायुषः ॥१०१॥
तस्य पातो भवेद्यस्य चक्षुरुन्मीलनेन च ।तमनिर्वचनीयं च किं स्तौमि पाहि मां प्रभो ॥१०२॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा पपात चरणाम्बुजे । नयनाम्बुजनीरेण सिषेच भयविह्वलः ॥१०३॥
दुर्वाससा कृतं स्तोत्रं हरेश्च परमात्मनः । पुण्यदं सामवेदोक्तं जगन्मङ्गलनामकम् ॥१०४॥
यः पठेत्संकटग्रस्तो भक्तियुक्तश्च संयतः । नारायणस्तं कृपया शीघ्रमागत्य रक्षति ॥१०५॥
राजद्वारे श्मशाने च कारागारे भयाकुले । शत्रुग्रस्ते दस्युभीतौ हिंस्रजन्तुसमन्विते ॥१०६॥

मृत्यु के भी मृत्यु हैं और काल के भी काल हैं। इस संकट-सागर से मेरी रक्षा करें ॥९४-९५॥ आप संहारकर्ता के भी संहारक, सब के अधीश्वर और सब के कारण हैं। महाविष्णु रूपी वृक्ष के बीज हैं, इस भवसागर से मेरी रक्षा कीजिये ॥९६॥ हे भगवन् ! आप शरणागत शोक-पीड़ित को भय से बचाने में तत्पर रहते हैं; मुझ भीत की रक्षा करें। नारायण ! आपको बार-बार नमस्कार है ॥९७॥ वेदों में जिन्हें आदिसत्ता कहा गया है, जिनकी स्तुति करने में वेद भी समर्थ नहीं हैं, सरस्वती जड़ की भाँति मूक रह जाती हैं, उनकी स्तुति विद्वान् क्या कर सकते हैं ॥९८॥ शेष अपने सहस्र मुखों द्वारा जिनकी स्तुति करने में जडता को प्राप्त कर लेते हैं, पाँच मुख वाले शिव जड़ीभूत हो जाते हैं, चतुर्मुख ब्रह्मा मौन हो जाते हैं, श्रुतियाँ, स्मृतियों के रचयिता तथा वाणी (सरस्वती) भी जिनकी स्तुति में असमर्थ हैं, उनका स्तवन मुझ जैसा ब्राह्मण कैसे कर सकता है ? मानद ! मैं वेदों का ज्ञाता क्या हूँ, वेदज्ञों का शिष्य हूँ। मुझमें आपकी स्तुति करने की क्या योग्यता है ? ॥९९-१००॥ अट्ठाईसवें मनु और महेन्द्र के समाप्त हो जाने पर जिनका एक दिन-रात का समय पूरा होता है, वे विधाता अपने वर्ष से एक सौ आठ वर्ष तक जीवित रहते हैं ; परन्तु जब उनका भी पतन होता है, तब आपके नेत्रों की एक पलक गिरती है—ऐसे अनिवर्चनीय प्रभु की मैं क्या स्तुति करूँ ? प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिए ॥१०१-१०२॥ इस प्रकार स्तुति करके दुर्वासा भगवान् के चरण-कमल पर गिर पड़े और भयविह्वल होकर आँसू से उसे भिगोने लगे ॥१०३॥ दुर्वासा द्वारा रचित परमात्मा विष्णु का यह स्तोत्र पुण्यप्रद, सामवेदोक्त एवं जगन्मङ्गल नामक है ॥१०४॥ सङ्कटग्रस्त होने पर जो भक्तिपूर्वक और सुसंयत भाव से इसका पान करता है, नारायण कृपया शीघ्र आकर उसकी रक्षा करते हैं ॥१०५॥ राजद्वार में, श्मशान में, कारागार (जेल) में, भयाकुल होने पर, शत्रुग्रस्त होने पर, हिंसक जीवों

Funding by IKS-MoE

वेष्टिते राजसैन्येन मग्ने पोते महार्णवे । स्तोत्रस्मरणमात्रेण मुच्यते नात्र संशयः ।।१०७।।

नारायण उवाच

मुनेश्च स्तवनं श्रुत्वा भगवान्भक्तवत्सलः । प्रहस्योवाच मधुरं पीयूषवृष्टिवन्मुदा ।।१०८।।

श्रीभगवानुवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते भविष्यति वरेण मे । किं तु मे वचनं नित्यं शृणु सत्यं सुखावहम् ।।१०९।।
अन्येषां च भवेज्ज्ञानं श्रुत्वा शास्त्रं सतां मुखात् । स्वमूर्तिमन्ति शास्त्राणि भवे सन्तश्चरन्ति हि ।।११०।
कर्म वेदविरुद्धं च सर्वेषामतिगर्हितम् । करोति विद्वांश्चेज्ज्ञात्वा स च जीवन्मृताधिकः ।।१११।।
पुराणेषु च वेदेषु चेतिहासेषु ब्राह्मण । वैष्णवानां च महिमा श्रुतः सर्वैश्च सर्वतः ।।११२।।
अहं प्राणा वैष्णवानां मम प्राणाश्च वैष्णवाः । तानेव द्वेष्टि यो मूढो ममासूनां च हिंसकः ।।११३।।
पुत्रान्पौत्रान्कलत्रांश्च राज्यं लक्ष्मीं विहाय च । ध्यायन्ते सततं ये मां को मे तेभ्यः परः प्रियः ।।११४।।
परा भक्तान्न मे प्राणा न च लक्ष्मीर्न शंकरः । न भारती न च ब्रह्मा न दुर्गा न गणेश्वरः ।।११५।।
न ब्राह्मणा न वेदाश्च न वेदजननी परा । न गोपी न च गोपाला न राधा प्राणतः प्रिया ।।११६।।
इत्येवं कथितं सर्वं सत्यं सारं च वास्तवम् । न प्रशंसापरं तेषां ते च प्राणाधिकाः प्रियाः ।।११७।।

के सामने, राज-सेनाओं से घिर जाने पर और महासागर में जहाज के डूबते समय इस स्तोत्र के स्मरण मात्र से मनुष्य मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ।।१०६-१०७।।

नारायण बोले—मुनि की स्तुति सुनकर भक्तवत्सल भगवान् हँसकर अमृत-वर्षा के समान मधुर वाणी में कहा ।।१०८।।

भगवान् बोले—उठो, उठो ! मेरे वरदान से तुम्हारा कल्याण होगा; किन्तु मेरा सत्य और सुखप्रद वचन सुनो ।।१०९।। सज्जनों के मुख से शास्त्रों को सुनने पर अन्य लोगों को भी ज्ञान हो जाता है । शास्त्र सन्त के रूप में मूर्तिमान् होकर विचरण किया करते हैं ।।११०।। यदि विद्वान् ज्ञान रखते हुए वेद-विरुद्ध अतिनिन्दित कर्म करता है तो वह जीवित रहते हुए भी मृतक से बढ़कर है ।।१११।। ब्राह्मण ! पुराणों, वेदों और इतिहासों में वैष्णवों की महिमा कही गयी है, उसे सभी ने सब प्रकार से सुना है ।।११२।। मैं वैष्णवों का प्राण हूँ और वैष्णव मेरे प्राण हैं, अतः जो उनसे द्वेष करता है, वह मूढ़ मेरे प्राणों की हिंसा करता है ।।११३।। पुत्रों, पौत्रों, स्त्रियों, राज्य और लक्ष्मी का त्याग कर जो निरन्तर मेरा ध्यान करता है, उससे बढ़कर प्रिय मुझे और कौन हो सकता है ? भक्त से बढ़कर मेरे प्राण नहीं हैं और लक्ष्मी, शंकर, सरस्वती, ब्रह्मा, दुर्गा, गणेश्वर, ब्राह्मण, वेद, वेदमाता सावित्री, गोपी, गोपाल एवं प्राण से अधिक प्रिय राधा भी नहीं हैं ।।११४-११६।। इस प्रकार मैंने सब सच्ची बात कही है। यह वास्तविक सारतत्त्व है । मैंने भक्तों की प्रशंसा के लिए कोई बात बढ़ा-चढ़ाकर

Funding by IKS-MoE

मां द्विषन्ति च ये मूढा ज्ञानहीनाश्च वञ्चिताः। आत्मानं ये न जानन्ति ते यान्ति निरयं चिरम् ॥११८॥
ये द्विषन्ति च मद्भक्तान्प्राणानामधिकं प्रियान्। तेषां शास्ता त्वहं तूर्णं परत्र निरयं चिरम् ॥११९॥
प्रभावोऽहं च सर्वेषामीश्वरः परिपालकः। तथाऽपि[1] न स्वतन्त्रोऽहं भक्ताधीनो दिवानिशम् ॥१२०॥
गोलोके वाऽथ वैकुण्ठे द्विभुजं च चतुर्भुजम्। रूपमात्रमिदं शश्वत्प्राणा मे भक्तसंनिधौ ॥१२१॥
यद्भक्तं भक्तदत्तं च भक्षणीयं च तन्मम। अभक्ष्यं द्रव्यमन्येन दत्तं चेदमृतोपमम् ॥१२२॥
अम्बरीषं नृपश्रेष्ठं निरीहं तमहिंसकम्। कथं हंसि दयाशीलं सर्वप्राणिहिते रतम् ॥१२३॥
दयां कुर्वन्ति ये सन्तः सततं सर्वजन्तुषु। तान्द्विषन्ति च ये मूढास्तेषां हन्ताऽहमेव च ॥१२४॥
भक्तानां हिंसकं शत्रुमहं रक्षितुमक्षमः। अम्बरीषालयं गच्छ स त्वां रक्षितुमीश्वरः ॥१२५॥

नारायण उवाच

इदं वाक्यं च तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणो भयविह्वलः। विषण्णमानसस्तस्थौ स्मरन्कृष्णपदाम्बुजम् ॥१२६॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा भवान्या सह शंकरः। धर्मश्चन्द्रादयो देवा आजग्मुर्मुनिपुंगवाः ॥१२७॥

नहीं कही है। वे मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं ॥११७॥ जो मूर्ख, ज्ञानहीन एवं वञ्चित लोग मुझसे द्वेष करते हैं और जो अपने को नहीं जानते हैं, वे चिरकाल तक नरक में पड़े रहते हैं। जो मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय भक्तों से द्वेष करते हैं, उन्हें मैं अति शीघ्र दण्ड देता हूँ और परलोक में भी उन्हें चिरकाल तक नरक में रहना पड़ता है ॥११८-११९॥ मैं सभी का कारण, ईश्वर और परिपालक हूँ, तो भी मै स्वतन्त्र नहीं हूँ। मैं दिनरात भक्तों के अधीन रहता हूँ ॥१२०॥ गोलोक में मेरा द्विभुज रूप है और वैकुण्ठ में चतुर्भुज। यह (मेरा) रूपमात्र ही उन लोकों में रहता है, किन्तु मेरे प्राण निरन्तर भक्तों के समीप ही रहते हैं ॥१२१॥ भक्त जो कुछ मुझे समर्पित करते हैं वही मेरा भक्ष्य होता है और अभक्त द्वारा दिया गया अमृत भी मेरे लिए अभक्ष्य है ॥१२२॥ नृपश्रेष्ठ राजा अम्बरीष निरीह, अहिंसक, दयाशील और सभी प्राणियों के प्रेमी हैं। ऐसे पुरुष को तुम क्यों मार रहे हो? जो सन्त जीवों पर दया करते हैं, उनसे जो मूर्ख द्वेष रखते हैं, उनका नाशक मैं ही होता हूँ ॥१२३-१२४॥ भक्तों की हिंसा करने वाले शत्रु की रक्षा करने में मैं सर्वदा असमर्थ रहता हूँ, अतः तुम अम्बरीष के घर जाओ, वही तुम्हारी रक्षा कर सकेंगे ॥१२५॥

नारायण बोले—भगवान् का यह वचन सुनकर ब्राह्मण भयाकुल हो गये और खिन्नचित्त होकर भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल का स्मरण करते हुए वहीं खड़े रहे ॥१२६॥ इसी बीच ब्रह्मा, पार्वती समेत शिव, धर्म,

---

[1] ख. न च व्यापी।

१७—२

प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे परमात्मानमीश्वरम् । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गा भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥१२८॥

ब्रह्मोवाच

स्वात्मस्वरूप निर्लिप्त भक्तानुग्रहकारक । भक्तापराधजनकं रक्ष ब्राह्मणपुंगवम् ॥१२९॥

महादेव उवाच

दीनबन्धो जगन्नाथ नायं विप्रो जगद्बहिः । कृतापराधं दीनं च पाहीमं शरणागतम् ॥१३०॥

पार्वत्युवाच

भक्त एवाम्बरीषस्ते न द्विजा न सुरा वयम् । सर्वेषामीश्वरस्त्वं च रक्ष विप्रं कृतागसम् ॥१३१॥

धर्म उवाच

सर्वेषां जनकस्त्वं च पाता दण्डकृदीश्वरः । शिशुहेतोः शिशुं हन्ति पितेत्येवं कुतः प्रभो ॥१३२॥

इन्द्र उवाच

कृपया समता शश्वत्सर्वेषु जीविषु प्रभो । अपराधफलं भूतमधुनां पातुमर्हसि ॥१३३॥

रुद्र उवाच

शान्ति कर्तुं समुचितमुचितं सांप्रतं कुरु । कृतकुण्ठस्य मूढस्य पालनं कर्तुमर्हसि ॥१३४॥

चन्द्रादि देव और मुनिश्रेष्ठ लोग वहाँ आ गये ॥१२७॥ समस्त अंगों में पुलकायमान और भक्ति से कन्धे झुकाये सब लोग परमात्मा ईश्वर को प्रणाम करके स्तुति करने लगे ॥१२८॥

ब्रह्मा बोले—हे स्वात्मस्वरूप ! आप निर्लिप्त हैं और भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए कातर रहा करते हैं। अतः आप भक्त का अपराध करने वाले इस ब्राह्मण-श्रेष्ठ की रक्षा करें ॥१२९॥

महादेव बोले—हे दीनबन्धो ! आप जगत् के स्वामी हैं और यह ब्राह्मण संसार के बाहर नहीं है, अतः आप इस अपराधी, दीन एवं शरणागत की रक्षा करें ॥१३०॥

पार्वती बोलीं—अम्बरीष ही आपके भक्त हैं, ब्राह्मण, देवता और हम लोग (भक्त) नहीं हैं। आप सबके ईश्वर हैं, इस अपराधी ब्राह्मण की रक्षा करें ॥१३१॥

धर्म बोले—प्रभो ! आप सभी के पिता हैं तथा पालक, दण्ड देनेवाले और ईश्वर हैं, किन्तु पिता एक शिशु के कारण दूसरे शिशु की हत्या करे, यह कहाँ का न्याय है ? ॥१३२॥

इन्द्र बोले—प्रभो ! आप कृपया सभी जीवों पर निरन्तर समता का व्यवहार करते हैं। इसे अपराध का फल मिल चुका, अब इसकी रक्षा करें ॥१३३॥

रुद्र बोले—इसको शान्ति प्रदान करने के निमित्त आप इस समय जो कुछ करेंगे वह समुचित ही होगा। अब कुण्ठित किये गये इस मूर्ख का पालन करें ॥१३४॥

Funding by IKS-MoE

दिक्पाल उवाच

कृतापराधं विप्रं च च्छेत्तुमर्हसि न श्रुतौ । अपराधशमं[१] कृत्वा सदा पाति सदीश्वरः ॥१३५॥

ग्रहा ऊचुः

यो द्वेष्टि वैष्णवं मूढस्तं रुष्टाः सर्वदेवताः । पीडां कुर्मो वयं शश्वत्पश्चात्त्वं पातुमर्हसि ॥१३६॥

मुनय ऊचुः

नाथ विप्रे पराभूते सर्वे जीवन्मृता वयम् । दण्डं विधातुमेकस्य भवेल्लज्जा स्वजातिषु ॥१३७॥

अत्रिरुवाच

त्वयैव दत्तः पुत्रो मे क्रोधी त्वत्सेवकः सदा । न कं बिभेति त्रैलोक्ये तेजस्वी तेजसा तव ॥१३८॥

लक्ष्मीरुवाच

क्षमापराधं भगवन् ब्राह्मणं शरणागतम् । स्तुवन्ति देवविप्राश्च न विप्रं हन्तुमर्हसि ॥१३९॥

सरस्वत्युवाच

वोधयिष्यामि देवानां जनकं कामदं श्रुतिम् । भगवन्स्वामी सर्वेषां सर्वांश्च पातुमर्हसि ॥१४०॥

दिक्पाल बोले—अपराध करने वाले ब्राह्मण को आप काट डालें, यह भी वेद में कहीं नहीं सुना गया है, और ईश्वर अपराध को शान्त करके सदा पालन ही करते हैं ॥१३१॥

ग्रहगण बोले—जो वैष्णवों से द्वेष करता है उस मूढ़ पर सभी देव रुष्ट हो जाते हैं, हम लोग उसे निरन्तर पाडित करते रहते हैं, पश्चात् आप उसकी रक्षा करते हैं ॥१३६॥

मुनिगण बोले—हे नाथ ! इस ब्राह्मण के अपमानित होने पर हम लोग जीवित रहते हुए भी मृतक के समान हैं। एक को दण्डित होते देख जाति वालों को लज्जित होना पड़ता है ॥१३७॥

अत्रि बोले—आपने ही मुझे ऐसा पुत्र दिया है, जो क्रोधी है और आपका सदा सेवक है। यह आपके देज से तेजस्वी होने के नाते त्रैलोक्य में किसी से भी नहीं डरता है ॥१३८॥

लक्ष्मी बोलीं—हे भगवन् ! शरणागत ब्राह्मण का अपराध क्षमा करें। देवता और ब्राह्मण लोग आपकी स्तुति कर रहे हैं, आप विप्र-हनन न करें। ॥१३९॥

सरस्वती बोलीं—भगवन् ! देवों के जनक एवं कामपूरक आपको मैं श्रुति बताऊँगी कि आप सब के स्वामी हैं, अतः सभी की रक्षा करें ॥१४०॥

---

[१] क. °फलं ।

Funding by IKS-MoE

पार्षदा ऊचुः

भवतः स्मृतिमात्रेण सर्वेषां सर्वमङ्गलम् । भवत्सर्वापदो यान्ति पाहीमं शरणागतम् ॥१४१॥

नर्तका ऊचुः

दारिद्र्यभञ्जन वयं भिक्षुकास्तव संततम् । भिक्षां नः सांप्रतं देहि परित्राणं द्विजस्य च ॥१४२॥
एतेषां स्तवनं श्रुत्वा प्रभुः शरणवत्सलः । प्रहस्योवाच वचनं सर्वसंतोषकारणम् ॥१४३॥

श्रीभगवानुवाच

सर्वे शृणुत मद्वाक्यं नीतियुक्तं सुखावहम् । विप्ररक्षां करिष्यामि युष्माकमाज्ञया ध्रुवम् ॥१४४॥
किंत्वयं यातु वैकुण्ठादम्बरीषालयं पुनः । करोति पारणं तत्र राज्ञः सुप्रीतये मुनिः ॥१४५॥
विप्रस्तस्यातिथिर्भूत्वा निर्दोष सप्तुमुद्यतः । सुदर्शनं तु तं रक्ष्यं ब्राह्मणं हन्तुमुद्यतम् ॥१४६॥
पूर्णं वर्षभयं भीतो भ्रमत्येव भुवं मुदा । उपवासी स राजेन्द्रः सस्त्रीकश्च शुचाऽन्वितः ॥१४७॥
ततोऽहमुपवासी च भक्तोपवासकारणात् । स्तनान्धं बालकं दृष्ट्वा न भुङ्क्ते जननी यथा ॥१४८॥
ममाऽऽशिषा मुनिश्रेष्ठः सद्यो भवतु विज्वरः । पथि तत्रास्य हिंसां च मच्चक्रं न करिष्यति ॥१४९॥
अहमेवाद्य निश्चिन्तः सुखं भोक्ष्यामि निश्चितम् । भक्तदत्तं च यद्वस्तु प्रीत्या कृत्वा सुधोपमम् ॥१५०॥

पार्षद बोले—आपके स्मरण मात्र से सभी का सर्वमङ्गल होता है, समस्त आपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, अतः आप इस शरणागत की रक्षा करें ॥१४१॥

नर्तक बोले—हे दारिद्र्य का नाश करने वाले ! हम लोग आपके सदैव भिक्षुक रहे हैं, अतः इस ब्राह्मण की रक्षा रूप भिक्षा हमें इस समय प्रदान करें ॥१४२॥ इन सबकी स्तुति सुनकर शरणवत्सल प्रभु ने हँस कर सबके लिए सन्तोष-जनक वचन कहा ॥१४३॥

भगवान् बोले—सभी लोग मेरी नीतियुक्त एवं सुखप्रद वचन सुनें। तुम लोगों की आज्ञा से मैं अब ब्राह्मण की रक्षा करूँगा ॥१४४॥ किन्तु ये मुनि पुनः वैकुण्ठ से अम्बरीष के घर जायें और राजा की प्रसन्नता के लिए उनके यहाँ पारणा करें ॥१४५॥ यह ब्राह्मण उनका अतिथि होकर उन्हें बिना अपराध के ही शाप देने को प्रस्तुत हो गया था, इसीलिए सुदर्शन इस रक्षणीय ब्राह्मण को मारने के लिए तैयार हुआ ॥१४६॥ भयभीत ब्राह्मण को पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए आज पूरा एक वर्ष हो रहा है और तभी से शोकयुक्त महाराज अम्बरीष पत्नी समेत उपवास कर रहें हैं ॥१४७॥ भक्त के उपवास करने के कारण मैं भी उपवासी हो गया हूँ। जैसे माता दूध-पीते वच्चे को उपवास करते देख स्वयं भी भोजन नहीं करती, वही दशा मेरी है ॥१४८॥ मेरे आशीर्वाद से मुनि-श्रेष्ठ शीघ्र ही सन्ताप से मुक्त हो जायँगे। मार्ग में मेरा चक्र इनकी हिंसा नहीं करेगा ॥१४९॥ भक्त की दी हुई जो वस्तु है, उसे अमृतोपम बनाकर मैं भी आज ही निश्चिन्त होकर सुख से भोजन करूँगा ॥१५०॥

Funding by IKS-MoE

लक्ष्मीदत्तं च यद्द्रव्यं न चाहं भोक्तुमीश्वरः। विना भक्तप्रदानेन न च सा दातुमीश्वरी ॥१५१॥
हे मुनीन्द्र महाप्राज्ञ गच्छ वत्स नृपालयम् । सर्वे देवाश्च देव्यश्च गच्छन्तु मुनयो गृहम् ॥१५२॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तूर्णं ययौ स्वान्तःपुरं मुदा। ययुः सर्वे मुदा युक्ताः प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥१५३॥
ब्राह्मणश्च मनोयायी जगाम नृपमन्दिरम् । सुदर्शनं च तच्चक्रं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥१५४॥
उपोष्य वत्सरं राजा शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । सिंहासनस्थो ददर्श पुरतो मुनिपुंगवम् ॥१५५॥
उत्थाय संभ्रमात्सद्यः प्रणम्य सादरं मुदा । भोजयित्वा तु मिष्टान्नं ब्राह्मणं बुभुजे स्वयम् ॥१५६॥
भुक्त्वा तुष्टो द्विजश्रेष्ठो युयुजे परमाशिषम् । जगाम स्वालयं तूर्णं प्रशशंस पुनः पुनः ॥१५७॥
उवाच पथि विप्रेन्द्रो मनसा विस्मयाकुलः। माहात्म्यं दुर्लभमहो वैष्णवानामिति द्विजः ॥१५८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० मुनिमोक्षणप्रस्तावो
नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

(बिना भक्त के दिये) लक्ष्मी प्रदत्त वस्तु को भी मैं खाने में समर्थ नहीं हूँ और लक्ष्मी भी बिना भक्त की दी
हुई वस्तु को देने में समर्थ नहीं है ॥१५१॥ मुनीन्द्र ! महापण्डित ! वत्स ! राजभवन में जाओ और सभी
देव, देवियाँ एवं मुनिगण अपने-अपने घर को पधारें ॥१५२॥ इतना कह कर श्रीहरि प्रसन्नता से शीघ्र अपने
पुर में चले गये और सभी लोग जगदीश्वर को प्रणाम कर हर्ष से अपने-अपने घर को गये ॥१५३॥
मन की भाँति वेग से चलने वाला वह ब्राह्मण राजा के घर पहुँचा और करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण वह चक्र भी
वहाँ गया ॥१५४॥ एक वर्ष तक उपवास करने के कारण राजा का कण्ठ, ओंठ और तालु सूख गये थे, सिंहा-
सन पर बैठे हुए उन्होंने सामने मुनिश्रेष्ठ को देखा ॥१५५॥ सहसा उठकर हर्ष से सद्यः ब्राह्मण को प्रणाम करके
मधुर भोजन कराकर स्वयं भी भोजन किया ॥१५६॥ भोजन करके सन्तुष्ट हुए द्विजवर ने उन्हें उत्तम आशीर्वाद
दिया और उनकी बार-बार प्रशंसा की, फिर शीघ्र अपने आश्रम को चले गये। विप्रवर आश्चर्यचकित होकर
मन ही मन कहने लगे अहो ! वैष्णवों का माहात्म्य दुर्लभ है ॥१५७-१५८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में मुनि-मोक्षण-वर्णन नामक पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२५॥

Funding by IKS-MoE

अथ षड्विंशोऽध्यायः

नारद उवाच

द्वादशीलङ्घने दोषः श्रुतस्त्वन्मुखतो मुने । पराभवो मुनेश्चैव नृपत्राणं हरेरहो ॥१॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि सर्वेषामीप्सितं च मे । एकादशीव्रतस्यास्य विधानं वद निश्चितम् ॥२॥
अहो श्रुतौ श्रुतं किंचिन्मतभेदान्न निश्चितम् । श्रुतीनां कारणमुखाच्छ्रोतुं कौतूहलं मम ॥३॥

नारायण उवाच

एकादशीव्रतमिदं देवानामपि[1] दुर्लभम् । श्रीकृष्णप्रीतिजनकं तपःश्रेष्ठं तपस्विनाम् ॥४॥
देवानां च यथा कृष्णो देवीनां प्रकृतिर्यथा । आश्रमाणां यथा विप्रो वैष्णवानां यथा शिवः ॥५॥
यथा गणेशः पूज्यानां यथा वाणी विपश्चिताम् । शास्त्राणां च यथा वेदास्तीर्थानां जाह्नवी यथा ॥६॥
तैजसानां यथा स्वर्णं प्राणिनां वैष्णवो यथा । धनानां च यथा विद्या सङ्गिनां च यथा प्रिया ॥७॥
प्रमथानां यथा रुद्रः श्रेयसां च यथा मतिः । आत्मा यथेन्द्रियाणां च चञ्चलानां यथा मनः ॥८॥
गुरूणां च यथा माता बन्धूनां च यथा पतिः । बलिष्ठानां यथा दैवं कालः कलयतां यथा ॥९॥
सुशीलं चैव मित्राणां शत्रूणां रुग्यथा मुने । यथा कीर्तिः कीर्तिमतां गृहिणां च यथा गृहम् ॥१०॥

अध्याय २६

एकादशीव्रत का निरूपण

नारद बोले—हे मुने ! आपके मुख से मैंने द्वादशी-लङ्घन करने का दोष सुन लिया है, जिसमें मुनि का पराजय और राजा त्राण निहित है । इस समय मैं सभी लोगों का अभीष्ट सुनना चाहता हूँ । मुझे एकादशी व्रत का निश्चित विधान बता दें ॥१-२॥ अहो ! वेद में सुना हुआ कुछ मतभेद के कारण निश्चित नहीं हो पाता है । अतः श्रुतियों के कारण-मुख से मुझे सुनने का कौतूहल हो रहा है ॥३॥

नारायण बोले—एकादशी व्रत देवों के लिए भी दुर्लभ है, वह श्रीकृष्ण-प्रीति का जनक तथा तपस्वियों का श्रेष्ठ तप है ॥४॥ जिस प्रकार देवों में श्रीकृष्ण, देवियों में प्रकृति, वर्णों में ब्राह्मण, वैष्णवों में शिव, पूज्यों में गणेश, विद्वानों में वाणी, शास्त्रों में वेद, तीर्थों में गङ्गा, तैजस पदार्थों में सुवर्ण, प्राणियों में वैष्णव, धनों में विद्या, साथियों में पत्नी, प्रमथगण में रुद्र, कल्याणों में बुद्धि, इन्द्रियों में आत्मा, चपलों में मन, गुरुजनों में माता, बन्धुओं में पति, बलवानों में दैव, और कलना करने वालों में काल है ॥५-९॥ हे मुने ! (जैसे) मित्रों में सुन्दर स्वभाव, शत्रुओं में रोग, कीर्तिमानों में कीर्ति, गृहस्थों में गृह, हिंसकों में खल, दुष्टों में पुंश्चली,

---

[1] क. व्रतानां दुर्लभं परम् ।

Funding by IKS-MoE

यथा खलो हिंसकानां दुष्टानां चैव पुंश्चली । तेजस्विनां ग्रहेशश्च सहिष्णूनां यथा क्षितिः ॥११॥
यथाऽमृतं भक्षणानां दाहकानां यथाऽनलः । यथा श्रीर्धनदातॄणां सतीनां च यथा सती ॥१२॥
प्रजेशानां यथा ब्रह्मा सरितां सागरो यथा । यथा साम श्रुतीनां च गायत्री छन्दसां यथा ॥१३॥
वृक्षाणां च यथाऽश्वत्थः पुष्पाणां तुलसी यथा । यथा मार्गो हि मासानामृतूनां च यथा मधु ॥१४॥
आदित्यानां यथा सूर्यो रुद्राणां शंकरो यथा । यथा भीष्मो वसूनां च वर्षाणां भारतं यथा ॥१५॥
देवर्षीणां यथा त्वं च ब्रह्मर्षीणां यथा भृगुः । नृपाणां च यथा रामः सिद्धानां कपिलो यथा ॥१६॥
यथा सनत्कुमारश्च योगिनां ज्ञानिनां वरः । ऐरावतो गजेन्द्राणां पशूनां शरभो यथा ॥१७॥
यथा हिमाद्रिः शैलानां मणिनां कौस्तुभो यथा । सरस्वती नदीनां च यथा पुण्यस्वरूपिणी ॥१८॥
गन्धर्वाणां चित्ररथो यथा श्रेष्ठश्च नारद । यथा कुबेरो यक्षाणां सुमाली रक्षसां यथा ॥१९॥
यथा श्रेष्ठा च नारीणां शतरूपा वरा परा । मनूनां च यथा श्रेष्ठः स्वयं स्वायंभुवो मनुः ॥२०॥
सुन्दरीणां यथा रम्भा यथा माया च मायिनाम् । एकदशीव्रतमिदं व्रतानां च वरं तथा ॥२१॥
कर्तव्यं च चतुर्णां च वर्णानां नित्यमेव च । यतीनां वैष्णवानां च ब्राह्मणानां विशेषतः ॥२२॥
सत्यं सर्वाणि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च । सन्त्येवौदनमाश्रित्य श्रीकृष्णव्रतवासरे ॥२३॥
भुक्त्वैतानि च पापानि यो भुङ्क्ते तत्र मन्दधीः । इहातिपातकी सोऽपि यात्यन्ते नरकं ध्रुवम् ॥२४॥
एकादशीप्रमाणानि युगसंख्याकृतानि च । कुम्भीपाके महाघोरे स्थित्वा चाण्डालतां व्रजेत् ॥२५॥

तेजस्वियों में सूर्य, सहिष्णुओं में पृथ्वी, भक्ष्य पदार्थों में अमृत, दाहकों में अग्नि, धन-दाताओं में लक्ष्मी, सतियों में पार्वती, प्रजापतियों में ब्रह्मा, सरिताओं में सागर, वेदों में सामवेद, छन्दों में गायत्री, वृक्षों में पीपल, पुष्पों में तुलसी, मासों में मार्गशीर्ष (अगहन), ऋतुओं में वसन्त, आदित्यों में सूर्य, रुद्रों में शंकर, वसुओं में भीष्म, (नव) वर्षों में भारतवर्ष, देवर्षियों में तुम, ब्रह्मर्षियों में भृगु, राजाओं में रामचन्द्र, सिद्धों में कपिल, योगियों-ज्ञानियों में सनत्कुमार, गजेन्द्रों में ऐरावत, पशुओं में शरभ (सिंह से भी बलवान् आठ पैरों वाला जन्तुविशेष) पर्वतों में हिमालय, मणियों में कौस्तुभ, नदियों में पुण्यरूपिणी सरस्वती हैं ॥१०-१८॥ हे नारद ! (जैसे) गन्धर्वों में चित्ररथ श्रेष्ठ है, यक्षों में कुवेर, राक्षसों में सुमाली, स्त्रियों में सुन्दरी शतरूपा, मनुओं में स्वयं स्वायंभुव, सुन्दरियों में रम्भा, और मायावियों में माया (भगवती) श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार व्रतों में एकादशी व्रत श्रेष्ठ है ॥१९-२१॥ यह व्रत चारों वर्णों को सदा करना चाहिए, यतियों, वैष्णवों और विशेषकर ब्राह्मणों को अवश्य करना चाहिये ॥२२॥ एकादशी को ब्रह्महत्या आदि सभी भाँति के पाप (चावल के) भात में निवास करते हैं ॥२३॥ इसलिए जो मूर्ख उस दिन भात खाता है, वह सभी पापों का भागी होता है—इस लोक में महान् पापी होकर अन्त में निश्चित रूप से नरक में जाता है ॥२४॥ एकादशी प्रमाण युग की संख्याओं तक (अर्थात् ११ युगों तक) वह महाघोर कुम्भीपाक नरक में रहकर अन्त में चाण्डाल होता है ॥२५॥ सात जन्मों तक गलित कुष्ठ का

Funding by IKS-MoE

गलितव्याधियुक्तश्च ततः सप्तसु जन्मसु । पश्चान्मुक्तो भवेत्पापादित्याह कमलोद्भवः ॥२६॥
इत्येवं कथितं ब्रह्मन्यो दोषस्तत्र भोजने । द्वादशीलङ्घने दोषो मयोक्तश्च श्रुतः पुरा ॥२७॥
दशमीलङ्घने दोषं निबोध कथयामि ते । पुरा श्रुतो धर्मवक्त्राद्वेदसारोद्धृतोऽपि च ॥२८॥
दशमीं यः कलामात्रां मूढोऽज्ञानेन लङ्घयेत् । याति श्रीस्तद्गृहात्तूर्णं शापं दत्त्वा तु दारुणम् ॥२९॥
इह तद्वंशहानिश्च यशोहानिर्भवेद्ध्रुवम् । अन्ते मन्वन्तरशतमन्धकूपे वसेद् द्विज ॥३०॥
दशम्येकादशी वाऽपि द्वादशी यत्र वासरे । तत्र भुक्त्वा परदिने उपोष्य व्रतमाचरेत् ॥३१॥
द्वादश्यां च व्रतं कृत्वा त्रयोदश्यां च पारणम् । द्वादशीलङ्घने दोषो व्रतिनां तन्न विद्यते[1] ॥३२॥
संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते किंचिदेव सा । तत्रोपोष्या द्वितीया च परा चेद्यदि वर्धते ॥३३॥
षष्टिदण्डात्मिका यत्र प्रभाते च तिथित्रयम् । कुर्वन्ति गृहिणः पूर्वं नैव यत्यादयस्तथा ॥३४॥
परत्रानशनं कृत्वा नित्यकृत्यं समाचरेत् । व्रते जागरणं सर्वं पूर्वत्रैवाऽऽचरेद्बुधः ॥३५॥
तत्पूर्वदिवसे[2] नित्यं व्रतं कृत्वा परेऽहनि । एकादश्यां व्यतीतायां पारणं तु समाचरेत् ॥३६॥
वैष्णवानां यतीनां च विधवानां तथैव च । सर्वाः समा उपोष्यास्ता भिक्षूणां ब्रह्मचारिणाम् ॥३७॥
शुक्लामेव तु कुर्वन्ति गृहिणो वैष्णवेतराः । न कृष्णलङ्घने दोषस्तेषां वेदेषु नारद ॥३८॥

रोगी होकर पश्चात् पापों से मुक्त होता है, ऐसा कमलभू ब्रह्मा ने कहा है ॥२६॥ ब्रह्मन् ! एकादशी के दिन भोजन करने पर जो दोष होता है, वह तुम्हें सुना दिया और द्वादशी लङ्घन करने का दोष पहले ही कह चुका हूँ, जिसे तुम सुन चुके हो ॥२७॥ अब दशमी लङ्घन करने का दोष तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो। पूर्वकाल में धर्म के मुख से मैंने इसका श्रवण किया था, जिसे उन्होंने वेद का निचोड़ बताया था ।।२८॥ जो मूर्ख अज्ञान वश कलामात्र भी दशमी का लंघन करता है, उसे घोर शाप देकर लक्ष्मी तुरन्त उसके घर से चली जाती हैं ॥२९॥ द्विज ! इस लोक में उसके वंश की हानि तया यश की हानि भी निश्चित होती है। अन्त में सौ मन्वन्तर समय तक वह अन्वकूप नरक में वास करता है ॥३०॥ जिस दिन दशमी, एकादशी तथा द्वादशी भी हो, उस दिन भोजन करके दूसरे दिन व्रत करे ॥३१॥ द्वादशी में व्रत रह कर त्रयोदशी में पारण करना चाहिए। उस दशा में द्वादशी लंघन करने का दोष व्रतियों को नहीं होता है ॥३२॥ सम्पूर्ण एकादशी के रहते हुए भी दूसरे दिन प्रातःकाल यदि थोड़ी भी द्वादशी है, तो दूसरे दिन व्रत रहना चाहिए । यदि परा तिथि बढ़कर साठ दण्ड की हो गई हो और प्रातःकाल तीन तिथियों का स्पर्श हो तो गृहस्थ पूर्व दिन में ही व्रत करते हैं, यति आदि नहीं ॥३३-३४॥ दूसरे दिन उपवास करके नित्य कर्म करना चाहिए। दो दिन एकादशी हो तो भी व्रत में सारा जागरण मम्बन्वी कार्य पहली ही रात में करे। पहले दिन में व्रत करके दूसरे दिन एकादशी बीतने पर पारण करे ॥३५-३६॥ वैष्णवों, यतियों, विधवाओं, भिक्षुओं और ब्रह्मचारियों को सभी एकादशियों में उपवास करना चाहिए ॥३७॥ नारद ! वैष्णव से इतरलोग शुक्ल पक्ष की एकादशी को ही उपवास-व्रत करते हैं। उन्हें कृष्ण-

---

[1] क. तत्र । [2] क. गृही तत्पूर्वदिवसे व्र° ।

शयनीबोधिनीमध्ये या कृष्णैकादशी भवेत् । सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन ॥३९॥
इत्येवं कथितो ब्रह्मन्निर्णयोऽयं श्रुतौ श्रुतः । व्रतस्यास्य विधानं च निबोध कथयामि ते ॥४०॥
कृत्वा हविष्यं पूर्वाह्णे न च भुङ्क्ते पुनर्जलम् । एकाकी कुशशय्यानां नक्तं शयनमाचरेत् ॥४१॥
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय प्रातः कृत्यं विधाय च । नित्यकृत्यं विधायाथ ततः स्नानं समाचरेत् ॥४२॥
व्रतोपवासं संकल्प्य श्रीकृष्णप्रीतिपूर्वकम् । कृत्वा संध्यां तर्पणं च विधायाऽऽह्निकमाचरेत् ॥४३॥
नित्यपूजां दिने कृत्वा व्रतद्रव्यं समाहरेत् । कृत्वा षोडशोपचारं प्रदृष्टं विधिबोधितम् ॥४४॥
आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यं पुष्पानुलेपनम् । धूपं दीपं च नैवेद्यं यज्ञसूत्रं च भूषणम् ॥४५॥
गन्धं स्नानीयताम्बूले मधुपर्कं पुनर्जलम् । एतान्याहृत्य दिवसे व्रतं नक्तं समाचरेत् ॥४६॥
उपविश्याऽऽसने पूतो धृत्वा धौते च वाससी । आचम्य श्रीहरिं नत्वा[1] स्वस्तिवाचनमाचरेत् ॥४७॥
आरोप्य मङ्गलघटं धान्याधारे शुभे क्षणे । फलशाखाचन्दनाक्तं वेदोक्तं मुनिभिर्मुदा ॥४८॥
देवषट्कं समावाह्य पृथग्ध्यानैः समाचरेत् । पूजां पञ्चोपचारैश्च प्रकृष्टैश्च विचक्षणः ॥४९॥
गणेश्वरं दिनकरं वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् । संपूज्यैतान्प्रणम्याथ व्रतं कुर्याद्धरिं स्मरन् ॥५०॥

पक्ष की एकादशी के लंघन करने का दोष वेदों में नहीं बताया गया है ॥३८॥ हरिशयनी और हरिबोधिनी नामक एकादशियों के मध्य में जो कृष्ण एकादशी आती है, उसी में गृहस्थों को उपवास करना चाहिए अन्य कृष्णा एकादशी में नहीं ॥३९॥ ब्रह्मन् ! इस भाँति एकादशी व्रत का निर्णय मैंने तुम्हें बता दिया, जो वेद में प्रसिद्ध है। अब इस व्रत का विधान बता रहा हूँ, सुनो ॥४०॥ दशमी के दिन पूर्वाह्ण में हविष्य भोजन करके पुनः दूसरी बार जल भी न ले, रात में कुश की चटाई पर अकेला शयन करे ॥४१॥ फिर ब्राह्ममूहूर्त में उठकर शरीर शुद्धिपूर्वक नित्यकर्म—स्नान आदि करे और व्रत-उपवास के निमित्त 'भगवान् श्रीकृष्ण के प्रीत्यर्थ' ऐसा संकल्प करे। पश्चात् सन्ध्या-तर्पण आदि दैनिक कर्म समाप्त करके दिन की नैत्यिक पूजन आदि करे। दिन में नैत्यिक पूजन करके व्रत सम्बन्धी आवश्यक सामग्री का संग्रह करे। षोडशोपचार-सामग्री का संग्रह करके शास्त्रोक्त कार्य करे ॥४२-४४॥ (१६ उपचार ये हैं—) आसन, वस्त्र, पाद्य, अर्घ्य, पुष्प, अनुलेप (उबटन), धूप, दीप, नैवेद्य, यज्ञोपवीत, आभूषण, गन्ध, स्नान-जल, ताम्बूल, मधुपर्क, पुनः आचमनीय जल, इन्हें दिन में संचित करके रात्रि में व्रत सम्बन्धी कार्य करे ॥४५-४६॥ आसनासीन होकर पवित्र हो, दो नवीन वस्त्र धारण करके आचमन करे और श्रीहरि को नमस्कार करके स्वस्तिवाचन करे ॥४७॥ शुभमुहूर्त में धान्य के ऊपर मङ्गल कलश स्थापित करके उसके ऊपर फल एवं आम्रपल्लव रखे। कलश में चन्दन का अनुलेप करे और मुनियों द्वारा वेदों में कथित पूजन-विधि का सम्पादन करे ॥४८॥ फिर अलग-अलग (धान्य-पुञ्ज पर) छह देवताओं का आवाहन करके विद्वान् पुरुष उत्कृष्ट पञ्चोपचार-सामग्री द्वारा उनका पूजन करे ॥४९॥ (६ देवता ये हैं) गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वती। इन सबकी अर्चना और प्रणाम करके हरि का स्मरण करते

---

[1] क. स्मृत्वा।

नाऽऽराध्य देवषट्कं च यदि कर्म समाचरेत् । नित्यं नैमित्तिकं चापि तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥५१॥
इत्येवं कथितं सर्वं व्रताङ्गभूतमेव च । कण्वशाखोक्तमिष्टं च व्रतं शृणु महामुने ॥५२॥
सामवेदोक्तध्यानेन ध्यात्वा कृष्णं परात्परम् । पुष्पं च शिरसि न्यस्य पुनर्ध्यानं समाचरेत् ॥५३॥
ध्यानं शृणु निगूढं च सर्वेषामपि वाञ्छितम् । न प्रकाश्यमभक्ताय भक्तप्राणाधिकं परम् ॥५४॥
नवीननीरदो[1] यद्वच्छयामसुन्दरविग्रहम् । शरत्पार्वणचन्द्राभाविनिन्द्यास्यमनुत्तमम् ॥५५॥
शरत्सूर्योदयाब्जानां प्रभामोचनलोचनम् । स्वाङ्गसौन्दर्यशोभाभी रत्नभूषणभूषितम् ॥५६॥
गोपीलोचनकोणैश्च प्रसन्नै रतिसूचकैः । शश्वन्निरीक्ष्यमाणं तत्प्राणैरिव विनिर्मितम् ॥५७॥
रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम् । राधावक्त्रशरच्चन्द्रसुधापानचकोरकम् ॥५८॥
कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् ॥५९॥
सद्रत्नसारनिर्माणं किरीटोज्ज्वलशेखरम् । विनोदमुरलीन्यस्तहस्तं पूज्यं सुरासुरैः ॥६०॥
ध्यानासाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मादीनां च वन्दितम् । कारणं कारणानां यस्तमीश्वरमहं भजे ॥६१॥

हुए व्रत आरम्भ करे ॥५०॥ यदि इन छह देवों की अर्चना बिना किये कोई नित्य और नैमित्तिक कर्म का अनुष्ठान करता है, तो उसका वह सारा कर्म निष्फल हो जाता है ॥५१॥ महामुने ! इस प्रकार मैंने व्रत का अङ्गभूत विधान बता दिया । इसका कण्वशाखा में वर्णन है। अब तुम अभीष्ट व्रत के विषय में सुनो ॥५२॥ सामवेदोक्त ध्यान द्वारा परात्पर श्रीकृष्ण का ध्यान करके मस्तक पर पुष्प रखे और पुनः ध्यान करे। अत्यन्त गूढ ध्यान के बारे में सुनो, जो सबके लिए वांछनीय है । उसे अभक्त के सामने प्रकाशित नहीं करना चाहिए। वह भक्तों को प्राणों से भी अधिक प्रिय है। ५३-५४॥ श्रीकृष्ण का शरीर नूतन मेघ के समान श्यामल और सुन्दर है; उनका मुख शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा की प्रभा को निन्दित करने वाला है। वे सर्वश्रेष्ठ हैं ॥५५॥ उनके नेत्र शरदृतु में सूर्योदय के समय खिलने वाले कमलों की प्रभा को छीन लेते हैं। विभिन्न अंगों में धारित रत्नमय आभूषण उनके अपने ही अंगों की सौन्दर्य-सोभा से विभूषित होते हैं ॥५६॥ गोपियों के प्रसन्न एवं अनुरागसूचक नेत्रकोण उन्हें सतत निहारते रहते है, मानो भगवान् का शरीर उनके प्राणों से ही निर्मित हुआ है ॥५७॥ वे रासमण्डल के मध्यभाग में विराजमान तथा रासोल्लास के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं तथा राधा के मुख रूपी शरच्चन्द्र की सुधा का पान करने के लिए चकोर रूप हो रहे हैं ॥५८॥ उनका वक्षःस्थल मणिराज कौस्तुभ से समुज्ज्वल है और पारिजात पुष्पों की मालाओं से वे सुशोभित हैं। उनका मस्तक उत्तम रत्नों के सारभाग के बने किरीट से जगमगा रहा है। उन्होंने विनोदार्थ मुरली को हाथ में ले रखा है। वे देवों और राक्षसों के पूज्य हैं। वे ध्यान से असाध्य तथा दुराराध्य हैं। ब्रह्मा आदि देव भी उनकी वन्दना करते हैं। वे समस्त कारणों के भी

---

[1] क. °दोद्रिक्तश्याम° ।

Funding by IKS-MoE

ध्यात्वाऽनेन तमावाह्य चोपचाराणि षोडश । दत्त्वा संपूज्येद्भक्त्या मन्त्रैरेभिश्च नारद ।।६२।।
आसनं स्वर्णनिर्माणं रत्नसारपरिच्छदम् । नानाचित्रविचित्राढ्यं गृह्यतां परमेश्वर ।।६३।।
वह्निप्रक्षालितं वस्त्रं निर्मितं विश्वकर्मणा । मूल्यानिर्वचनीयं च गृह्यतां राधिकापते ।।६४।।
पादप्रक्षालनार्हं च सुवर्णपात्रसंस्थितं । सुवासितं शीतलं च गृह्यतां करुणानिधे ।।६५।।
इदमर्घ्यं पवित्रं च शङ्खतोयसमन्वितम् । पुष्पदूर्वाचन्दनाक्तं गृह्यतां भक्तवत्सल ।।६६।।
सुवासितं शुक्लपुष्पं चन्दनागुरुसंयुतम् । सद्यस्ते प्रीतिजनकं गृह्यतां सर्वकारण ।।६७।।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमोशीरमुत्तमम् । सर्वेप्सितमिदं कृष्ण गृह्यतामनुलेपनम् ।।६८।।
रसो वृक्षविशेषस्य नानाद्रव्यसमन्वितः । सुगन्धियुक्तः सुखदो धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।६९।।
दिवानिशं सुप्रदीप्तो रत्नसारविनिर्मितः । पुनर्ध्वान्तनाशबीजं दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।७०।।
नानाविधानि द्रव्याणि स्वादूनि सुरभीणि च । चोष्यादीनि पवित्राणि स्वात्माराम प्रगृह्यताम् ।।७१।।
सावित्रीग्रन्थिसंयुक्तं स्वर्णतन्तुविनिर्मितम् । गृह्यतां देवदेवेश रचितं चारुकारुणा ।।७२।।
अमूल्यरत्नरचितं सर्वावयवभूषणम् । त्विषा जाज्वल्यमानं च गृह्यतां नन्दनन्दन ।।७३।।
प्रधानो वर्णनीयश्च सर्वमङ्गलकर्मणि । प्रगृह्यतां दीनबन्धो गन्धोऽयं मङ्गलप्रदः ।।७४।।
धात्रीश्रीफलपत्रोत्थं विष्णुतैलं मनोहरम् । वाञ्छितं सर्वलोकानां भगवन्प्रतिगृह्यताम् ।।७५।।

कारण हैं उन ईश्वर का मैं भजन करता हूँ ।।५९-६१।। नारद ! इस प्रकार ध्यान समेत उनका आवाहन तथा निम्नांकित मन्त्रों द्वारा भक्तिपूर्वक षोडशोपचार पूजन करे ।।६२।। परमेश्वर ! सुवर्णरचित, रत्नों के सारभाग से जटित और भाँति-भाँति के विचित्र चित्रों से अलंकृत आसन ग्रहण करें ।।६३।। राधिकापते ! अग्नि की भाँति विशुद्ध, विश्वकर्मा द्वारा सुरचित एवं अमूल्य यह वस्त्र ग्रहण करें ।।६४।। करुणानिधे ! आपके चरणों को पखारने के लिए सुवर्णमय पात्र में स्थित, सुवासित और शीतल जल स्वीकार करें ।।६५।। भक्तवत्सल ! शंखपात्र में रखे गए पुष्प, दूर्वा और चन्दन समेत यह पवित्र अर्घ्य ग्रहण करें ।।६६।। सर्वकारण ! चन्दन और अगुरु से युक्त तथा सद्यः आपको प्रसन्न करने वाला यह श्वेत पुष्प गहण करें ।।६७।। कृष्ण ! चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम और खस से बनाया गया यह सर्ववाञ्छनीय अनुलेपन ग्रहण करें ।।६८।। यह धूप, जो वृक्ष-विशेष का रस, विविध द्रव्यों से मिश्रित, सुगन्धित और सुखदायक है, ग्रहण करें ।।६९।। दिन-रात अत्यन्त प्रदीप्त रहने वाला, रत्न के सारभाग से सुरचित, अन्धकार के विनाश का कारण यह दीपक ग्रहण करें ।।७०।। स्वात्मा-राम ! ये अनेक प्रकार के स्वादिष्ठ, सुगन्धित और पवित्र चोष्य आदि नैवेद्य पदार्थ आप ग्रहण करें ।।७१।। देव-देवेश ! गायत्रीमंत्र से दी गई ग्रन्थि से युक्त तथा सुवर्णमय तन्तुओं से निर्मित यह चतुर शिल्पी द्वारा रचित यज्ञोपवीत ग्रहण कर ।।७२।। नन्दनन्दन ! बहुमूल्यक रत्नों से रचित तथा कान्ति से प्रकाशमान इन समस्त अवयवों के आभूषणों को स्वीकार करें ।।७३।। दीनबन्धो ! समस्त मङ्गल-कर्मों में प्रधान, वर्णनीय और मङ्गलदायक इस गन्ध को ग्रहण करें ।।७४।। भगवन् ! आंवले और वेलपत्र द्वारा तैयार किया गया यह मनोहर

वाञ्छनीयं च सर्वेषां कर्पूरादिसुवासितम् । मया निवेदितं नाथ ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥७६॥
सर्वेषां प्रीतिजनकं सुमिष्टं मधुरं मधु । सद्रत्नसारपात्रस्थं गोपीकान्त प्रगृह्यताम् ॥७७॥
निर्मलं जाह्नवीतोयं सुपवित्रं सुवासितम् । पुनराचमनीयं च गृह्यतां मधुसूदन ॥७८॥
इति षोडशोपचारान्दत्त्वा भक्तो मुदाऽन्वितः । मन्त्रेणानेन पुष्पाणि[1] माल्यं दत्त्वा प्रयत्नतः ॥७९॥
नानाप्रकारपुष्पैश्च ग्रथितं शुक्लतन्तुना । प्रवरं भूषणानां च माल्यं च गृह्यतां प्रभो ॥८०॥
इति पुष्पाञ्जलिं दद्यान्मूलमन्त्रेण च व्रती । कुर्यात्ततस्तवनं भक्त्या पुटाञ्जलियुतः सुधीः ॥८१॥

भक्त उवाच

हे कृष्ण राधिकानाथ करुणासागर प्रभो । संसारसागरे घोरे मामुद्धर भयानके ॥८२॥
शतजन्मकृतायासादुद्विग्नस्य मम प्रभो । स्वकर्मपाशनिगडैर्बद्धस्य मोक्षणं कुरु ॥८३॥
प्रणतं पादपद्मे ते पश्य मां शरणागतम् । भवपाशभयाद्भीतं पाहि त्वं शरणागतम् ॥८४॥
भक्तिहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं च वेदतः । वस्तुमन्त्रविहीनं यत्तत्संपूर्णं कुरु प्रभो ॥८५॥
वेदोक्तविहिताज्ञानात्स्वाङ्गहीने च कर्मणि । त्वन्नामोच्चारणेनैव सर्वं पूर्णं भवेद्धरे ॥८६॥

विष्णुतेल, जो सभी लोगों को अभीष्ट है, ग्रहण करें ॥७५॥ नाथ ! कर्पूर आदि से सुवासित ताम्बूल जो सभी को प्रिय है, मैंने अर्पित किया है, ग्रहण करें ॥७६॥ गोपीकान्त ! सभी के लिए प्रीतिजनक, अत्यन्त मीठा, और उत्तम रत्नों के पात्र में रखा हुआ यह मधु ग्रहण करें ॥७७॥ मधुसूदन ! अप्रतिपवित्र और सुवासित निर्मल गङ्गाजल आचमन के लिए स्वीकार करें ॥७८॥ इस प्रकार भक्त पुरुष सप्रेम षोडशोपचार समर्पित करके निम्नांकित मंत्र द्वारा पुष्प और माला अर्पित करे ॥७९॥ श्वेत डोरे में अनेक भांति के पुष्पों से गुंथा हुआ यह पुष्पहार, जो भूषणों में श्रेष्ठ है, ग्रहण करें ॥८०॥ इस प्रकार विद्वान् व्रती मंत्र द्वारा पुष्पाञ्जलि समर्पित कर पुनः हाथ जोड़कर भक्ति पूर्वक स्तुति करें ॥८१॥

भक्त ने कहा—हे कृष्ण ! राधिकानाथ ! प्रभो ! आप करुणासागर हो, अतः इस भयानक संसार-सागर से मेरा उद्धार करो ॥८२॥ प्रभो ! मैं सैकड़ों जन्मों से कष्ट भोगने के कारण उद्विग्न हूँ तथा अपने कर्म रूपी पाश-बन्धनों से बद्ध हूँ, मेरा उद्धार करें ॥८३॥ मैं आपके चरण-कमल पर पड़ा हुआ हूँ, मुझ शरणागत को देखिए, मैं संसार रूपी बन्धनों से जकड़ा हुआ हूँ और आपकी शरण में आया हूँ, मेरी रक्षा करें ॥८४॥ प्रभो ! भक्तिहीन, क्रियारहित, वेदानुसार विधिहीन, वस्तुहीन एवं मंत्रहीन कर्म को परिपूर्ण कर दें ॥८५॥ हरे ! वेदोक्त विधि को न जानने के कारण अंगहीन हुए कर्म में आपके नामोच्चारण से सब न्यूनताओं की पूर्ति हो जाती

---

[1] क. 'ष्पाणां मा' ।

Funding by IKS-MoE

इति स्तुत्वा तं प्रणम्य दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् । महोत्सवं विधायाऽथ कुर्याज्जागरणं व्रती ॥८७॥
कृत्वा व्रतोपवासं च यदि निद्रां निषेवते । पुनरेव जलं भुङक्ते व्रतार्धफलभाग्भवेत् ॥८८॥
यत्नेन च हविष्यान्नं सकृदेव समाचरेत् । मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र श्रीकृष्णचरणं स्मरन् ॥८९॥
हे अन्न प्राणिनां प्राणा ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । देहि मे विष्णुरूप त्वं व्रतोपवासयोः फलम् ॥९०॥
एवं यः कुरुते भक्त्या भारते व्रतमुत्तमम् । पूर्वान्सप्त परान्सप्त स्वात्मानमुद्धरेद्ध्रुवम् ॥९१॥
मातरं भ्रातरं चैव श्वश्रूं च श्वशुरं सुताम् । जामातरं तथा भृत्यमुद्धरेन्निश्चितं नरः ॥९२॥
इत्येव कथितं विप्र श्रीकृष्णचरितव्रतम् । सुखदं मोक्षदं सारमपरं कथयामि ते ॥९३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० एकादशीव्रतनिरूपणं
नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

है ॥८६॥ इस भांति स्तुति और प्रणाम करके ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करे और महोत्सवपूर्वक व्रती रात्रि-जागरण करे ॥८७॥ व्रत-उपवास करके यदि कोई नींद ले ले अथवा पुनः जल पी ले तो उसे व्रत का आधा फल ही प्राप्त होता है ॥८८॥ विप्रेन्द्र ! भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल का स्मरण करते हुए निम्नांकित मंत्र से यत्नपूर्वक एक ही बार हविष्यान्न भक्षण करे ॥८९॥ विष्णुरूप अन्न ! पहले ब्रह्मा द्वारा प्राणियों के प्राण रूप में तुम्हारा निर्माण हुआ है, अतः तुम मुझे व्रत और उपवास का फल प्रदान करो ॥९०॥ इस प्रकार भारतवर्ष में जो इस व्रत को भक्तिपूर्वक सुसम्पन्न करता है, वह अपनी पूर्व की सात और बाद की भी सात पीढ़ियों का अवश्य उद्धार करता है ॥९१॥ व्रती पुरुष माता: भ्राता, सास, ससुर, कन्या, जमाता और सेवक का निश्चित उद्धार करता है ॥९२॥ विप्र ! इस प्रकार मैंने श्रीकृष्ण का सुखप्रद, मोक्षदायक और सारभूत चरित व्रत तुम्हें बता दिया, अब दूसरा चरित्र कहता हूँ ॥९३॥

श्रीब्रह्मवैवर्त्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड में नारायण-नारद संवाद में एकादशी-व्रत-वर्णन नामक छव्वीसवां अध्याय समाप्त ॥२६॥

Funding by IKS-MoE

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि श्रीकृष्णचरितं पुनः । गोपीनां वस्त्रहरणं वरदानं मनीषितम् ॥१॥
हेमन्ते प्रथमे मासि गोपिकाः काममोहिताः । कृत्वा हविष्यं भक्त्या च यावन्मासं सुसंयुताः ॥२॥
स्नात्वा सूर्यसुतातीरे पार्वतीं वालुकामयीम् । कृत्वाऽऽवाह्य च मन्त्रेण पूजां कुर्वन्ति नित्यशः ॥३॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च मनोहरैः । नानाप्रकारपुष्पैश्च माल्यैर्बहुविधैरपि ॥४॥
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्वस्त्रैर्नानाफलैर्मुने । मणिमुक्ताप्रवालैश्च वाद्यैर्नानाविधैरपि ॥५॥
हे देवि जगतां मातः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि । नन्दगोपसुतं कान्तमस्मभ्यं देहि सुव्रते ॥६॥
मन्त्रेणानेन देवेशीं परिहारं विधाय च । ततः कृत्वा तु संकल्पमपूजन्मूलमन्त्रतः ॥७॥
मन्त्रस्तु सामवेदोक्तोऽयातयामः सबीजकः । ॐ श्रीदुर्गायै सर्वविघ्नविनाशिन्यै नम इति ॥८॥
पुष्पं माल्यं च नैवेद्यं धूपं दीपं तथा शुभम् । मन्त्रेणानेन तद्भक्त्या ददुः सर्वा मुदाऽन्विताः ॥९॥
प्रवालमालया भक्त्या चेमं मन्त्रं सहस्रधा । जपं कृत्वा च स्तुत्वा च प्रणेमुः शिरसा भुवि ॥१०॥

अध्याय २७

गोपियों का वस्त्रहरण

नारायण बोले--नारद ! सुनो, मैं पुनः श्रीकृष्ण का चरित कहूँगा, जिममें गोपियों के चीर का हरण किया गया था और उन्हें मनोवांछित वर दिया गया था ॥१॥ हेमन्त ऋतु के पहले मास अगहन में काम-मोहित गोपियाँ प्रति-दिन केवल एक वार हविष्यान्न ग्रहण करके पूर्णतः संयतशील होकर पूरे मास तक भक्त-भाव से व्रत करती रहीं। वे यमुना में स्नान करके उसी के तट पर बालुका की पार्वती की मूर्ति बना कर मंत्र द्वारा आवाहन और पूजन नित्य किया करती थीं ॥२-३॥ मुने ! वे चन्दन अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम, अनेक भाँति के मनोहर पुष्प, विविध प्रकार की मालाएँ, धूप, दीप, नैवेद्य , वस्त्र, अनेक प्रकार के फल, मणि, मोती और मूँगे चढ़ाकर तथा अनेक प्रकार के बाजे वजाकर कहती थीं--'उत्तम व्रत का पालन करने वाली हे देवि ! तुम जगत् की माता हो, सर्जन, पालन और प्रलय करने वाली हो, अतः हमें नन्द गोप के पुत्र (कृष्ण) को कान्त रूप में प्रदान करने की कृपा करो। इस मन्त्र से देवाधीश्वरी की मूर्ति बनाकर संकल्प करके मूल मंत्र से उनका पूजन करे। सामवेदोक्त मूलमन्त्र इस प्रकार है—'ओं श्रीदुर्गायै सर्वविघ्नविनाशिन्यै नमः' इसी मंत्र द्वारा गोपियाँ पुष्प-मालायें, नैवेद्य, धूप, दीप आदि सभी सामग्री भक्तिभाव से चढ़ाती थीं ।।४-९॥ अनन्तर मूँगे की माला से इस मंत्र का भक्तिपूर्वक एक सहस्र जप और स्तुति करके वे पृथ्वी पर माथा टेवकर देवी को प्रणाम करती थीं

Funding by IKS-MoE

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये सर्वकामप्रदे शिवे । देहि मे वाञ्छितं देवि नमस्ते शंकरप्रिये ॥११॥
इत्युक्त्वा च नमस्कारं कृत्वा दत्त्वा च दक्षिणाम् । नैवेद्यानि च सर्वाणि ब्राह्मणेभ्यो ययुर्गृहम् ॥१२॥

नारायण उवाच

स्तवराजं शृणु मुने तुष्टुवुर्येन पार्वतीम् । भक्त्या गोपाङ्गनाः सर्वाः सर्वाभीष्टफलप्रदाम् ॥१३॥
जगत्येकार्णवे घोरे चन्द्रसूर्यविवर्जिते । अञ्जनाकारतोयेन संप्लुते च चराचरे ॥१४॥
दत्तं पुरा ब्रह्मणे च हरिणा जलशायिना । तस्मै दत्त्वा सर्वमिदं निद्रां भेजे जगत्पतिः ॥१५॥
नाभिपद्मे जगत्स्रष्टा मधुना कैटभेन च । पीडितः परितुष्टाव मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

दुर्गे शिवेऽभये माये नारायणि सनातनि । जये मे मङ्गलं देहि नमस्ते सर्वमङ्गले ॥१७॥
दैत्यनाशार्थवचनो दकारः परिकीर्तितः । उकारो विघ्ननाशार्थवाचको वेदसंमतः ॥१८॥
रेफो रोगघ्नवचनो गश्च पापघ्नवाचकः । भयशत्रुघ्नवचनश्चाऽऽकारः परिकीर्तितः ॥१९॥
स्मृत्युक्तिस्मरणाद्यस्या एते नश्यन्ति निश्चितम् । अतो दुर्गा हरेः शक्तिर्हरिणा परिकीर्तिता ॥२०॥
विपत्तिवाचको दुर्गश्चाऽऽकारो नाशवाचकः । दुर्गं नश्यति या नित्यं सा दुर्गा परिकीर्तिता ॥२१॥

और कहती थीं—हे शंकरप्रिये ! हे शिवे ! तुम समस्त मङ्गलों का भी मंगल करने वाली हो और सकल कामनाओं को देने वाली हो । देवि ! तुम्हें नमस्कार है । हमारा मनोरथ सफल करो ॥१०-११॥ इस प्रकार कहकर नमस्कार करके और ब्राह्मणों को वह सब नैवेद्य एवं दक्षिणा प्रदान करके घर चली जाती थीं ॥१२॥

नारायण बोले—मुने ! अब वह स्तवराज सुनो, जिसके द्वारा सभी गोपियाँ समस्त अभीष्टफल प्रदान करने वाली पार्वती की स्तुति करती थीं ॥१३॥ सम्पूर्ण जगत् के एकसागर रूप में जलमग्न हो जाने पर पूर्वकाल में जब चन्द्रमा और सूर्य का भी कहीं पता नहीं था और कज्जल के समान जलराशि ने समस्त चराचर विश्व को आत्मसात् कर लिया था, तब जलशायी विष्णु ने ब्रह्मा को इस स्तोत्र का उपदेश दिया । उपदेश देकर उन जगदीश्वर ने योगनिद्रा का आश्रय लिया ॥१४-१५॥ तदुपरान्त उनके नाभि-कमल में स्थित जगत्स्रष्टा ब्रह्मा ने मधु कैटभ नामक राक्षसों से पीडित होने पर इसी स्तोत्र द्वारा ईश्वरी मूल प्रकृति की स्तुति की ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—दुर्गे ! शिवे, भयरहिते, माये, नारायणि, सनातनि, जये ! मुझे मंगल प्रदान करो । सर्वमङ्गले ! तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥१७॥ दुर्गा का 'दकार' दैत्यनाशरूपी अर्थ का वाचक कहा गया है । 'उकार' विघ्ननाशरूपी अर्थ का बोधक है । उसका यह अर्थ वेदसम्मत है । रेफ रोगनाशक अर्थ को प्रकट करता है । गकार पापनाशक अर्थ का वाचक है और आकार भय तथा शत्रु के नाश का प्रतिपादक कहा गया है ॥१८-१९॥ जिनके स्मरण एवं कथन मात्र से ये (दैत्य आदि) सभी निश्चित ही विनष्ट हो जाते हैं, इसलिए वह दुर्गा, भगवान् की शक्ति हैं, यह स्वयं हरि ने कहा है ॥२०॥ विपत्ति अर्थ में 'दुर्ग' शब्द और नाश अर्थ में 'आकार' प्रयुक्त हैं ।

दुर्गो दैत्येन्द्रवचनोऽप्याकारो नाशवाचकः। तं ननाश पुरा तेन बुधैर्दुर्गा प्रकीर्तिता ॥२२॥
शश्च कल्याणवचन इकारोत्कृष्टवाचकः। समूहवाचकश्चैव वाकारो दातुवाचकः ॥२३॥
श्रेयःसंघोत्कृष्टदात्री शिवा तेन प्रकीर्तिता। शिवराशिर्मूर्तिमती शिवा तेन प्रकीर्तिता ॥२४॥
शिवो हि मोक्षवचनश्चऽऽकारो दातृवाचकः। स्वयं निर्वाणदात्री या सा शिवा परिकीर्तिता ॥२५॥
अभयो भयनाशोक्तश्चऽऽकारो दातृवाचकः। प्रददात्यभयं सद्यः साऽभया परिकीर्तिता ॥२६॥
राज्यश्रीवचनो माश्च याश्च प्रापणवाचकः। तां प्रापयति या नित्यं सा माया परिकीर्तिता ॥२७॥
माश्च मोक्षार्थवचनो याश्च प्रापणवाचकः। तं प्रापयति या सद्यः सा माया परिकीर्तिता ॥२८॥
नारायणार्धाङ्गभूता तेन तुल्या च तेजसा। सदा तस्य शरीरस्था तेन नारायणी स्मृता ॥२९॥
निर्गुणस्य च नित्यस्य वाचकश्च सनातनः। सदा नित्या निर्गुणा या कीर्तिता सा सनातनी ॥३०॥
जयः कल्याणवचनो याकारो दातृवाचकः। जयं ददाति या नित्यं सा जया परिकीर्तिता ॥३१॥
सर्वमङ्गलशब्दश्च संपूर्णैश्वर्यवाचकः। आकारो दातृवचनस्तद्दात्री सर्वमङ्गला ॥३२॥
नामाष्टकमिदं सारं नामार्थसहसंयुतम्। नारायणेन यद्दत्तं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे ॥३३॥

जो नित्य दुर्ग (विपत्ति) का नाश करती हैं, उन्हें 'दुर्गा' कहते हैं ॥२१॥ दैत्येन्द्र अर्थ में 'दुर्ग' शब्द एवं 'आकार' नाश अर्थ में प्रयुक्त हैं। पूर्व काल में देवी ने राक्षसों का नाश किया था, इसीलिए विद्वानों ने उन्हें 'दुर्गा कहा है ॥२२॥ कल्याण अर्थ में 'शकार', उत्कृष्ट अर्थ में 'इकार' तथा समूह और दाता अर्थ में 'वाकार' का प्रयोग हुआ है। वे कल्याणसमूह तथा उत्कर्ष देने वाली हैं, अतः शिवा कही गई हैं। वे शिव अर्थात् कल्याण की मूर्तिमती राशि हैं, इसलिए भी उन्हें 'शिवा' कहा गया है ॥२३-२४॥ मोक्ष अर्थ में शिव शब्द और दाता अर्थ में आकार का प्रयोग हुआ है। वे देवी स्वयं निर्वाणदायिनी हैं, अतः 'शिवा' कहलाती हैं ॥२५॥ भयनाश अर्थ में अभय शब्द और दाता अर्थ में 'आकार' प्रयुक्त हैं। अतः शीघ्र अभयदान देने के कारण उन्हें 'अभया' कहा गया है ॥२६॥ राज्यलक्ष्मी अर्थ में 'मा' शब्द और प्राप्त कराने अर्थ में 'या' शब्द प्रयुक्त हैं, इसलिए राज्यलक्ष्मी को तुरन्त प्राप्त कराने के कारण उन्हें 'माया' कहा गया है। ॥२७॥ अथवा मोक्ष अर्थ में 'मा' शब्द तथा प्राप्त कराने के अर्थ में 'या' शब्द का प्रयोग होता है। उस मोक्ष को वे नित्य प्राप्त कराती हैं, अतः वे 'माया' कही गई हैं ॥२८॥ नारायण का अर्धाङ्ग, तेज में उन्हीं के समान और नित्य उनके शरीर में स्थित रहने के कारण उन्हें 'नारायणी' कहा गया है। निर्गुण और नित्य अर्थ में 'सनातन' शब्द प्रयुक्त है अतः सदा नित्या एवं निर्गुणा रहने के कारण उन्हें 'सनातनी' कहा गया है ॥२९-३०॥ कल्याण अर्थ में 'जय' शब्द एवं दाता अर्थ में 'आकार' प्रयुक्त है इसीलिए नित्य जय प्रदान करने के कारण उन्हें 'जय' कहा गया है ॥३१॥ सर्वमङ्गल शब्द सम्पूर्ण ऐश्वर्यवाचक है और आकार दाता का वाचक है, अतः समस्त ऐश्वर्य देने के करण उन्हें 'सर्वमङ्गला' कहा जाता है ॥३२॥ ये देवी के आठ नाम सारभूत हैं और यह स्तोत्र उन नामों के अर्थ से युक्त है। नारायण ने नाभिकमल पर बैठे हुए

Funding by IKS-MoE

तस्मै दत्त्वा निद्रितश्च बभूव जगतां पतिः । मधुकैटभौ दुर्दान्तौ ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतौ ॥३४॥
स्तोत्रेणानेन स ब्रह्मा स्तुतिं नत्वा चकार ह । साक्षात्स्तुता तदा दुर्गा ब्रह्मणे कवचं ददौ ॥३५॥
श्रीकृष्णकवचं दिव्यं सर्वरक्षणनामकम् । दत्त्वा तस्मै महामाया साऽन्तर्धानं चकार ह ॥३६॥
स्तोत्रं कुर्वन्ति निद्रां च संरक्ष्य कवचेन वै । निद्रानुग्रहतः सद्यः स्तोत्रस्यैव प्रभावतः ॥३७॥
तत्राऽऽजगाम भगवान्वृषरूपी जनार्दनः । शक्त्या च दुर्गया सार्धं शंकरस्य जयाय च ॥३८॥
सरथं शंकरं मूर्ध्नि कृत्वा च निर्भयं ददौ । अत्यूर्ध्वं प्रापयामास जया तस्मै जयं ददौ ॥३९॥
स्तोत्रस्यैव प्रभावेण संप्राप्य कवचं विधिः । वरं च कवचं प्राप्य निर्भयं प्राप निश्चितम् ॥४०॥
ब्रह्मा ददौ महेशाय स्तोत्रं च कवचं वरम् । त्रिपुरस्य च संग्रामे सरथे पतिते हरौ ॥४१॥
ब्रह्मास्त्रं च गृहीत्वा स सनिद्रं श्रीहरिं स्मरन् । स्तोत्रं च कवचं प्राप्य जघान त्रिपुरं हरः ॥४२॥
स्तोत्रेणानेन तां दुर्गां कृत्वा गोपालिकाः स्तुतिम् । लेभिरे श्रीहरिं कान्तं स्तोत्रस्यास्य प्रभावतः ॥४३॥
गोपकन्याकृतं स्तोत्रं सर्वमङ्गलनामकम् । वाञ्छितार्थप्रदं सद्यः सर्वविघ्नविनाशनम् ॥४४॥
त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं भक्तियुक्तश्च मानवः । शैवो वा वैष्णवो वाऽपि शाक्तो दुर्गात्प्रमुच्यते ॥४५॥
राजद्वारे श्मशाने च दावाग्नौ प्राणसंकटे । हिंस्रजन्तुभयग्रस्तो मग्नः पोते महार्णवे ॥४६॥

ब्रह्मा को इसका उपदेश दिया था । उपदेश देने के उपरान्त स्वयं जगन्नाथ निद्रित हो गये । पश्चात् मधु और कैटभ नामक राक्षसों ने ब्रह्मा का हनन करना चाहा ।।३३-३४।। तब ब्रह्मा ने इसी स्तोत्र द्वारा दुर्गा की स्तुति एवं नमस्कार किया । स्तुति की जाने पर साक्षात् दुर्गा ने ब्रह्मा को कवच प्रदान किया ।।३५।। श्रीकृष्ण का सर्व-रक्षण नामक दिव्य कवच उन्हें देकर महामाया अन्तर्हित हो गयीं ।।३६।। कवच के द्वारा निद्रा की रक्षा करके ब्रह्मा स्तुति करने लगे । स्तोत्र के ही प्रभाव से तुरन्त निद्रा देवी की कृपा से वहाँ वृष रूप धारण करके दुर्गा देवी के साथ भगवान् जनार्दन आ गये । शंकर की विजय के लिए भगवान् ने रथ समेत शंकर को अपने शिर से उठा कर उन्हें निर्भय किया और अत्यन्त ऊपर पहुँचा दिया । जया ने उन्हें जय प्रदान किया ।।३७-३९।। इसी स्तोत्र के प्रभाव से ब्रह्मा ने कवच प्राप्त किया और कवच समेत वरदान प्राप्त करके वे निर्भय हो गये ।।४०।। त्रिपुरासुर के संग्राम में रथ समेत शिव के गिर जाने पर ब्रह्मा ने यही स्तोत्र और कवच महेश्वर को दिया था ।।४१।। स्तोत्र एवं कवच प्राप्त होने पर ब्रह्मास्त्र ग्रहण करके निद्रा समेत श्रीहरि का स्मरण करते हुए शिव ने त्रिपुरासुर का वध कर दिया ।।४२।। गोपियों ने इस स्तोत्र द्वारा दुर्गा की स्तुति करके इसके प्रभाव से श्रीहरि को पति रूप में प्राप्त किया ।।४३।। इस प्रकार गोपकन्याओं द्वारा रचित सर्वमङ्गल नामक स्तोत्र का, जो अभीष्ट-प्रद एवं सद्यः समस्त विघ्नों का नाशक है, भक्तिपूर्वक तीनों संध्याओं में पाठ करने से शैव, वैष्णव एवं शाक्त कोई भी क्यों न हो, तुरन्त संकटों से मुक्त हो जाता है ।।४४-४५।। राजदरबार, श्मशान, दावाग्नि, तथा प्राण-संकट में, हिंसक जन्तु से भयग्रस्त होने पर, महासागर में जहाज डूबते समय, युद्ध में शत्रुओं से घिर जाने पर,

शत्रुग्रस्ते च संग्रामे कारागारे विपद्गते । गुरुशापे ब्रह्मशापे बन्दुभेदे च दुस्तरे ॥४७॥
स्थानभ्रष्टे धनभ्रष्टे जातिभ्रष्टे शुचाऽन्विते । पतिभेदे पुत्रभेदे खलसर्पविषान्विते ॥४८॥
स्तोत्रस्मरणमात्रेण सद्यो मुच्येत निर्भयः । वाञ्छितं लभते सद्यः सर्वैश्वर्यमनुत्तमम् ॥४९॥
इह लोके हरेर्भक्तिं दृढां च सततं स्मृतिम् । अन्ते दास्यं च लभते पार्वत्याश्च प्रसादतः ॥५०॥
अनेन स्तवराजेन तुष्टुवुर्नित्यमीश्वरीम् । प्रणेमुः परया भक्त्या यावन्मासं व्रजाङ्गनाः ॥५१॥
एवं पूर्णे च मासे च समाप्तिदिवसे तथा । स्नातुं प्रजग्मुर्गोप्यश्च वस्त्राण्याधाय तत्तटे ॥५२॥
नानाविधानि द्रव्याणि रत्नमूल्यानि नारद । पीतलोहितशुक्लानि चारूणि मिश्रितानि च ॥५३॥
तीरावृतान्यसंख्यानि तैश्च तीरं सुशोभनम् । चन्दनागुरुकस्तूरीवायुना सुरभीकृतम् ॥५४॥
नैवेद्यैश्च बहुविधैः कालदेशोद्भवैः फलैः । धूपैः प्रदीपैः सिन्दूरैः कुङ्कुमैश्च विराजितम् ॥५५॥
जले क्रीडोन्मुखा गोप्यो बभुवुः कौतुकेन च । नग्नाः क्रीडाभिरासक्ताः श्रीकृष्णार्पितमानसाः ॥५६॥
दृष्ट्वा कृष्णश्च वस्त्राणि द्रव्याणि विविधानि च । वासांस्यादाय वस्तूनि चखाद शिशुभिः सह ॥५७॥
गत्वा दूरं च गोपालास्तस्थुः सर्वे मुदाऽन्विताः । वस्त्राणि पुंजीकृत्याऽऽदावूचुः
स्कन्धेऽतिलोलुपाः ॥५८॥
श्रीदामा च सुदामा च वसुदामा तथैव च । सुबलश्च सुपार्श्वश्च शुभाङ्गः सुन्दरस्तथा ॥५९॥

कारागार में, विपत्ति के समय, गुरुशाप, ब्रह्मशाप, दुस्तर बन्धु वियोग में, स्थान से भ्रष्ट, घनहीन, जातिच्युत, शोकमग्न, होने पर, पति-पुत्र वियोग में, दुष्ट और सर्प के विष से पीडित होने पर मनुष्य इस स्तोत्र के स्मरण-मात्र से मुक्त एवं निर्भय हो जाता है और मन इच्छित परमोत्तम ऐश्वर्य तुरन्त प्राप्त कर लेता है ॥४६-४९॥ पार्वती के प्रसाद से वह इस लोक में भगवान् की दृढ भक्ति, निरन्तर स्मरण और अन्त में उनका दास्यपद प्राप्त करता है ॥५०॥ ब्रज की गोपियाँ इसी स्तवराज से ईश्वरी दुर्गा की पराभक्तिपूर्वक नित्य स्तुति और प्रणाम एक मास तक नित्य करती रहीं ॥५१॥ मास समाप्त होते उसके अन्तिम दिन गोपियाँ नित्य की भाँति यमुना तट पर अपने वस्त्र रख कर स्नान के लिए जल में प्रविष्ट हुईं ॥५२॥ नारद ! रत्नों के मोल पर मिलने वाले नाना प्रकार के द्रव्य, लाल, नीले, सफेद और मिश्रित रंग वाले मनोहर वस्त्र यमुना के तट पर छा रहे थे । उनकी गणना नहीं की जा सकती थी । उन सबके द्वारा यमुना के उस तट की बड़ी शोभा हो रही थी । चन्दन, अगुरु और कस्तूरी के वायु से सारा तट प्रान्त सुरभित था । भाँति-भाँति के नैवेद्य, देश-काल के अनुसार प्राप्त होने वाले फल, धूप, सिन्दूर और कुंकुम यमुना के उस तट को सुशोभित कर रहे थे । जल में उतरने पर गोपियाँ कौतूहलवश क्रीडा के लिए उन्मुख हुयीं । उनका मन श्रीकृष्ण को समर्पित था । वे अपने नग्न शरीर से जलक्रीडा में आसक्त हो गयीं । श्रीकृष्ण ने तट पर रखे भाँति-भाँति के द्रव्यों और वस्त्रों को देखा । देखकर वे ग्वाल-बालों के साथ वहाँ गये और सारे वस्त्र लेकर वहाँ रखी हुई खाद्य वस्तुओं को सखाओं के साथ खाने लगे । सभी गोप-बालक प्रमुदित होकर दूर चले गये ॥५३-५७॥ वहाँ अति चंचल बालक वस्त्रों का गट्ठर बाँधकर कंधे पर रखकर बातचीत करने लगे ॥५८॥ श्रीदामा, सुदामा, वसुदामा, सुवल, सुपार्श्व, शुभाङ्ग, सुन्दर, चन्द्रभान, वीरभान, सूर्यभान वसुभान और रत्नभान

चन्द्रभानो वीरभानुः सूर्यभास्तथैव च । वसुभानो रत्नभानो गोपाला द्वादश स्मृताः ।।६०।।
श्रीकृष्णो बलदेवश्च प्रधानाश्च चतुर्दश । गोपाहरेर्वयस्याश्च कोटिशः कोटिशो मुने ।।६१।।
वस्त्राण्यादाय ते सर्वे तस्थुरेकत्र दूरतः । शतशः पुञ्जिकास्तत्र स्थापयामासुरुन्मुखाः ।।६२।।
किंचिद्वस्त्रं समादाय कृत्वा च पुञ्जिकां मुदा । समारुह्य कदम्बाग्रमुवाच गोपिका हरिः ।।६३।।

श्रीकृष्ण उवाच

भो भो गोपालिकाः सर्वा विनष्टा व्रतकर्मणि । कृत्वा विधानं मद्वाक्यं श्रुत्वा क्रीडत मन्मथात् ।।६४।।
संकल्पिते व्रतार्हे च मासे मङ्गलकर्मणि । यूयं नग्नाः कथं तोये व्रताङ्गहानिकारिकाः ।।६५।।
परिधेयानि वासांसि पुष्पमाल्यानि यानि च । व्रतार्हाणि च वस्तूनि केन नीतानि वोऽधुना ।।६६।।
व्रते तु नग्ना या स्नाति तां रुष्टो वरुणः स्वयम् । वरुणानुचराश्चक्रुर्वासोवस्तूपनिर्हृतिम् ।।६७।।
कथं यास्यथ नग्नाश्च व्रतस्य किं भविष्यति । व्राताराध्या कथं सा वो वस्तूनि किं न रक्षति ।।६८।।
चिन्तां कुरुत तां पूज्यां तुष्टां[1] बलिभिरीश्वरीम् । युष्माकमीदृशी देवी न शक्ता वस्तुरक्षणे ।।६९।।
कथं व्रतफलं सा वो दातुं शक्ता सुरेश्वरी । फलं प्रदातुं[2] या शक्ता सा शक्ता सर्वकर्मणि ।।७०।।

ये बारह गोपाल कहे गये हैं ।।।५९-६०।। श्रीकृष्ण और बलभद्र मिलाकर चौदह, प्रधान गोपाल थे । मुने ! वैसे हरि के सखा गोप करोड़ों थे ।।६१।। वे सभी गोपियों के वस्त्र लेकर कुछ दूर पर जाकर समवेत खड़े हुए और उनके वस्त्रों की सैकड़ों गठरियाँ बाँधीं । उपरान्त भगवान् सप्रेम कुछ गठरियाँ लेकर कदम्ब वृक्ष के अग्रभाग पर चढ़ गये और गोपियों से बोले ।।६२-६३।।

श्रीकृष्ण बोले—गोपियो ! तुम सब की सब इस व्रतकर्म में असफल हो गयीं । पहले मेरी बात सुनकर विधि-विधान का पालन करो । इसके वाद मन्मथ से क्रीडा करना ।।६४।। जो मास व्रत करने के योग्य है; जिसमें मंगलकर्म के अनुष्ठान का संकल्प किया गया है; उसी मास में तुम लोग जल के भीतर घुसकर नंगी नहा रही हो; ऐसा क्यों किया ? इस कर्म के द्वारा तुम अपने व्रत को अंगहीन करके उसमें हानि पहुँचा रही हो ।।६५।। तुम्हारे पहनने के वस्त्र, पुष्पमालायें एवं व्रतोपयोगी वस्तुएँ कौन उठा ले गया ? जो स्त्री व्रत के समय नग्न-स्नान करती है उस पर स्वयं वरुण क्रुद्ध हो जाते हैं । वरुण के अनुचर तुम्हारे वस्त्र उठा ले गये ।।६६-६७।। अब तुम लोग नंगी होकर कैसे जाओगी और तुम्हारे व्रत का क्या होगा ? क्या तुम्हारी व्रत की आराध्य देवी तुम्हारी वस्तुओं की रक्षा न कर सकी ? अपनी उस पूज्या अधीश्वरी देवी का तुम लोग स्मरण करो । उसकी स्तुति करके उसे प्रसन्न करो । क्या तुम्हारी यह देवी वस्तु-संरक्षण में समर्थ नहीं है ? यदि ऐसा है तो वह सुरेश्वरी तुम्हें व्रत-फल कैसे प्रदान कर सकेगी ? जो फल-प्रदान में समर्थ होती है वह सभी कर्मों में समर्थ होती

---

[1] ख. तुष्टाव बलिरी° । [2] क. °तुं मा शक्ता साऽशक्ता स° ।

Funding by IKS-MoE

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा चिन्तामापुर्व्रजस्त्रियः । ददृशुर्यमुनातीरं वस्त्रवस्तुविहीनकम् ॥७१॥
चक्रुर्विषादं तोये च नग्नास्ता रुरुदुर्भृशम् । क्व गतानि च वस्त्राणि वस्तूनीत्यूचुरत्र नः ॥७२॥
कृत्वा विषादं तत्रैव तमूचुर्गोपकन्यकाः । पुटाञ्जलियुताः सर्वा भक्त्या विनयपूर्वकम् ॥७३॥

गोपालिका ऊचुः

परिधेयानि वस्त्राणि किंकरीणां सदीश्वर । निबोधयाऽऽत्मानमेव स्पर्शं कर्तुं त्वमर्हसि ॥७४॥
व्रतार्हाणि च वस्तूनि देवस्वानि च सांप्रतम् । अदत्तानि नोचितानि ग्रहीतुं वेदविद्वर ॥७५॥
देहि धौतानि धृत्वा च करिष्यामो व्रतं वयम् । वस्तुनाऽन्येन गोविन्द वस्तूनां भक्षणं कुरु ॥७६॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र श्रीदामा वस्त्रपुञ्जिकाम् । दर्शयित्वा च ताः सर्वा दूरं दुद्राव तत्पुरः ॥७७॥
दृष्ट्वा सवस्त्रं गोपालं सर्वासामीश्वरी परा । सर्वा वयस्याश्चोवाच कोपयुक्ता जलप्लुता ॥७८॥

राधिकोवाच

हे सुशीले शशिकले हे चन्द्रमुखि माधवि । कदम्बपाले हे कुन्ति यमुने सर्वमङ्गले ॥७९॥
हे पद्ममुखि सावित्रि पारिजाते च जाह्नवि । सुधामुखि शुभे पद्मे हे गौरि हे स्वयंप्रभे ॥८०॥
कालिके कमले दुर्गे हे सरस्वति भारति । अपूर्णे रति हे गङ्गे चाम्बिके सति सुन्दरि ॥८१॥

है ॥६८-७०॥ श्रीकृष्ण की बात सुनकर सभी व्रज-गोपियाँ चिन्तित हुई। उन्होंने देखा कि यमुना के तट पर न तो उनके वस्त्र थे और न वस्तुएँ ॥७१॥ वे जल में नंगी खड़ी हो शोक करने लगीं और बहुत रोयीं, फिर बोलीं कि यहाँ से हमारे वस्त्र और अन्य वस्तुएँ कहाँ चली गयीं ॥७२॥ विषाद करके वे गोपकन्यायें हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक विनम्र होकर वहीं कृष्ण से बोलीं ॥७३॥

गोपियों ने कहा—परमेश्वर ! तुम्हीं हम दासियों के श्रेष्ठ स्वामी हो, अतः हमारे पहनने योग्य वस्त्रों को तुम अपनी ही वस्तु समझो। उन्हें स्पर्श करने का तुम्हें पूरा अधिकार है; परन्तु व्रत के उपयोग में आने वाली जो दूसरी वस्तुएँ हैं, वे इस समय आराध्य देवता की सम्पत्ति हैं। उन्हें समर्पित किये बिना उन वस्तुओं को ले लेना उचित नहीं है। वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! हमारी धोतियाँ दे दो, पहनकर हम व्रत करेंगी। गोविन्द ! इनके अतिरिक्त अन्य वस्तुओं को ही अपना आहार बनाओ ॥७४-७६॥ इसी बीच श्रीदामा वहाँ वस्त्रों की गठरी उन सबको दिखाकर उन्हीं के सामने दूर भाग गया ॥७७॥ उस गोपाल को वस्त्र लिए जाते देखकर सब की अधीश्वरी राधिका ने जल के मध्य ही क्रुद्ध होकर अपनी सभी सखियों से कहा ॥७८॥

राधिका बोलीं—हे सुशीले, शशिकले, हे चन्द्रमुखि, हे माधवि, हे कदम्बमाले, हे कुन्ति, हे यमुने, हे सर्वमंगले, हे पद्ममुखि, हे सावित्रि, हे पारिजाते, हे जाह्नवि, हे सुधामुखि, हे शुभे, हे पद्मे ! हे गौरि, हे स्वयं प्रभे ! हे कालिके, हे कमले, हे दुर्गे, सरस्वति, हे भारति, हे अपूर्वे, हे रति, हे गंगे,

Funding by IKS-MoE

कृष्णप्रिये मधुमति चम्पे चन्दननन्दिनि । यूयं सर्वाः समुत्थाय बध्वाऽऽनयत बल्लवम् ॥८२॥
सर्वा राधाज्ञया तूर्णं समुत्थाय जलात्क्रुधा । प्रजग्मुर्गोपिका नग्ना योनिमाच्छाद्य पाणिना ॥८३॥
एतासां सहचारिण्यो गोप्यस्तूर्णं सहस्रशः । प्रजग्मुस्तेन रूपेण कोपादारक्तलोचनाः ॥८४॥
वेगेन दुद्रुवुः सर्वाः श्रीदामानं च बालिकाः । वेगेन च प्रधावन्तं बिभ्रतं वस्त्रपुञ्जिकाम् ॥८५॥
जगाम शीघ्रं श्रीदामा यत्र गोपाः सहांशुकाः । जवेन दुद्रुवुर्गोप्यस्तत्पश्चाद्‌बलसंयुताः ॥८६॥
वस्त्रचोरांश्च गोपांश्च वेष्टयामासुराशु ताः । भिया प्रदुद्रुवुर्बाला यत्र कृष्णः सहांशुकः ॥८७॥
श्रीकृष्णसहितान्बालान्वरयामासुराशु च । गोपिकानां भिया गोपा ददुर्वस्त्राणि माधवम् ॥८८॥
माधवः स्थापयामास स्कन्धे स्कन्धे तरोस्तथा । कदम्बवृक्षः शुशुभे वस्त्रैर्नानाविधैरपि ॥८९॥
वस्त्राणां पुञ्जिकाः सर्वाः स्कन्धेषु विनिधाय च । उवाच गोपिकाः कृष्णः परिहासपरं वचः ॥९०॥

श्रीकृष्ण उवाच

भो भो गोपालिका नग्ना इदानीं किं करिष्यथ । वस्त्रयाच्ञां प्रकर्तुं च कुरुताऽऽशु पुटाञ्जलिम् ॥९१॥
गत्वा वदत युष्माकमीश्वरीमथ राधिकाम् । करोतु शीघ्रं वस्त्राणां याच्ञां कृत्वा पुटाञ्जलिम् ॥९२॥
अन्यथाऽहं न दास्यामि युष्मभ्यमंशुकानि च । युष्माकमीश्वरी राधा किं करिष्यति मेऽधुना ॥९३॥

हे अम्बिके, हे सुन्दरि, हे कृष्णप्रिये, हे मधुमति, हे चम्पे, और हे चन्दननन्दिनि ! तुम सब उठकर गोप को बांधकर ले आओ। राधिका की आज्ञा से सभी गोपियां क्रुद्ध होकर शीघ्र जल से निकलीं और हाथ से अपनी योनि को ढककर नंगी ही दौड़ पड़ीं ॥७९-८३॥ उनके पीछे सहस्रों उनकी सहचारिणी गोपियां भी शीघ्रता से निकल कर कोप से लाल-लाल आंखें किये उन्हीं की भांति दौड़ने लगीं ॥८४॥ वे सभी बालिकायें श्रीदामा के पीछे वेग से दौड़ने लगीं। वह भी वस्त्रों की पोटली लिये वेग से भाग रहा था ॥८५॥ श्रीदामा शीघ्र वहां पहूंच गया जहां गोप-बालक वस्त्र के साथ थे। गोपियां भी बड़े वेग से बलपूर्वक दौड़ती हुई वहां पहुंच गयीं और वस्त्र चुराने वाले उन बालकों को घेर लिया, किन्तु वे सभी बालक भयभीत होकर कृष्ण के पास पहुंच गये, जहां वे साड़ियों को लिये बैठे थे ॥८६-८७॥ गोपियों ने भी शीघ्रता से वहां पहुंचकर श्रीकृष्ण समेत उन बालकों को घेर लिया। गोपियों के भय से बालकों ने सभी वस्त्र माधव को दे दिये और माधव ने वस्त्रों को लेकर वृक्ष के तने पर रख दिया। अनेक भांति के उन वस्त्रों से कदम्ब वृक्ष शोभायमान हो गया ॥८८-८९॥ इस प्रकार वस्त्रों की गठरियों को वृक्षों के तनों पर रखकर श्रीकृष्ण परिहास से दिल्लगी की बात करने लगे ॥९०॥

श्रीकृष्ण बोले—गोपकन्याओ ! अब तुम लोग नग्न होकर क्या करोगी ? वस्त्रों की याचना करने के लिए शीघ्र दोनों हाथ जोड़ो और जाकर अपनी स्वामिनी राधिका से कहो कि शीघ्र हाथ जोड़कर वस्त्रों की याचना करे ॥९१-९२॥ अन्यथा मैं तुम लोगों को नहीं दूंगा। तुम्हारी स्वामिनी राधा इस समय मेरा क्या कर

Funding by IKS-MoE

व्रताराध्या च या देवी सा वा मे किं करिष्यति । इत्येवं कथितं सर्वं ब्रूत यूयं च राधिकाम् ॥९४॥
श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा ताः सर्वा गोपकन्यकाः । वीक्ष्य लोचनकोणेन प्रजग्मू राधिकान्तिकम् ॥९५॥
चक्रुर्निवेदनं गत्वा यदुवाच हरिः स्वयम् । श्रुत्वा जहास सा राधा बभूव कामपीडिता ॥९६॥
श्रुत्वा तासां च वचनं पुलकाञ्चितविग्रहा । न जगाम हरेः स्थानं व्रीडया सस्मिता सती ॥९७॥
जले योगासनं कृत्वा दध्यौ कृष्णपदाम्बुजम् । ब्रह्मेशानन्तधर्माणां वन्द्यमीप्सितदं परम् ॥९८॥
स्मारं स्मारं पदाम्भोजं साश्रुसंपूर्णलोचना । भावातिरेकात्प्राणेशं तुष्टाव निर्गुणं परम्[1] ॥९९॥

राधिकोवाच

गोलोकनाथ गोपीश मदीश प्राणवल्लभ । हे दीनबन्धो दीनेश सर्वेश्वर नमोऽस्तु ते ॥१००॥
गोपेश गोसमूहेश यशोदानन्दवर्धन । नन्दात्मज सदानन्द नित्यानन्द नमोऽस्तु ते ॥१०१॥
शतमन्योर्मन्युभग्न ब्रह्मदर्पविनाशक । कालीयदमन प्राणनाथ कृष्ण नमोऽस्तु ते ॥१०२॥
शिवानन्तेश ब्रह्मेश ब्राह्मणेश परात्पर । ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मबीज नमोऽस्तु ते ॥१०३॥

लेगी ? अथवा तुम्हारे व्रत की जो आराध्या देवी है, वही मेरा क्या कर लेगी ? तुम लोग जाकर यह सब राधिका से कहो ॥९३-९४॥ श्रीकृष्ण की बात सुनकर वे सभी गोपकन्यायें उन पर तिरछी चितवन डालती हुई अपनी स्वामिनी राधिका के पास चली गयीं ॥९५॥ वहाँ पहुँचकर भगवान् ने जो कुछ कहा था, सब निवेदन कर दिया। सुनकर राधिका हँसने लगीं और कामपीडित हो गयीं ॥९६॥ गोपियों की बात सुनकर उनके शरीर में रोमाञ्च हो आया, वे मुसकराती रहीं, पर लज्जा के कारण भगवान् के समीप न जा सकीं ॥९७॥ अनन्तर जल में ही योगासन द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल का, जो ब्रह्मा, महेश, अनन्त और धर्म का वन्दनीय एवं परम अभीष्टप्रद है, ध्यान करने लगीं ॥९८॥ आँखों में आँसू भरे उनके चरण-कमल का बार-बार स्मरण करती रहीं, फिर भाव विभोर होकर परमनिर्गुण प्राणेश्वर की स्तुति करने लगीं ॥९९॥

राधिका बोलीं--गोलोकनाथ ! गोपियों के अधीश्वर, मेरे स्वामी एवं प्राणवल्लभ ! हे दीनबन्धो, दीनों के ईश और सर्वाधीश्वर ! आपको नमस्कार है ॥१००॥ गोपेश ! गौओं के समूह के ईश ! यशोदा के आनन्द बढ़ाने वाले ! नन्दपुत्र ! सदानन्द ! नित्यानन्द ! आपको नमस्कार है ॥१०१॥ इन्द्र के क्रोध को व्यर्थ करने वाले ! ब्रह्मा के अभिमान को चूर्ण करने वाले ! कालिय क दमन करने वाले ! प्राणनाथ ! कृष्ण ! आपको नमस्कार है ॥१०२॥ शिव और अनन्त के भी ईश, ब्रह्मेश, ब्राह्मणेश ! परात्पर ! ब्रह्मस्वरूप, ब्रह्मज्ञ और ब्रह्मबीज ! आपको नमस्कार है ॥१०३॥ चर-अचर रूप वृक्ष के बीज ! गुणों से परे, गुणात्मक, गुणों के

---

[1] क. विभुम् ।

Funding by IKS-MoE

चराचरतरोर्बीज गुणातीत गुणात्मक । गुणबीज गुणाधार गुणेश्वर नमोऽस्तु ते ॥१०४॥
अणिमादिकसिद्धीश सिद्धेः सिद्धिस्वरूपक । तपस्तपस्विंस्तपसां बीजरूप नमोऽस्तु ते ॥१०५॥
यदनिर्वचनीयं च वस्तु निर्वचनीयकम् । तत्स्वरूप तयोर्बीज सर्वबीज नमोऽस्तु ते ॥१०६॥
अहं सरस्वती लक्ष्मीर्दुर्गा गङ्गा श्रुतिप्रसूः । यस्य पादार्चनान्नित्यम् पूज्यास्तस्मै नमो नमः ॥१०७॥
स्पर्शेन यस्य भृत्यानां ध्यानेन च दिवानिशम् । पवित्राणि च तीर्थानि तस्मै भगवते नमः ॥१०८॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी जले संन्यस्य विग्रहम् । मनःप्राणांश्च श्रीकृष्णे तस्थौ स्थाणुसमा सती ॥१०९॥
राधाकृतं हरेः स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । हरिभक्तिं च दास्यं च लभेद्राधागतिं ध्रुवम् ॥११०॥
विपत्तौ यः पठेद्भक्त्या सद्यः संपत्तिमाप्नुयात् । चिरकालगतं द्रव्यं हृतं नष्टं च लभ्यते ॥१११॥
बन्धुवृद्धिर्भवेत्तस्य प्रसन्नं मानसं परम् । चिन्ताग्रस्तः पठेद्भक्त्या परां निर्वृतिमाप्नुयात् ॥११२॥
पतिभेदे पुत्रभेदे मित्रभेदे च संकटे । मासं भक्त्या यदि पठेत्सद्यः संदर्शनं लभेत् ॥११३॥
भक्त्या कुमारी स्तोत्रं च शृणुयाद्वत्सरं यदि । श्रीकृष्णसदृशं कान्तं गुणवन्तं लभेद्ध्रुवम् ॥११४॥
जलस्था राधिका ध्यात्वा श्रीकृष्णचरणाम्बुजम् । स्तुत्वैवं चक्षुरुन्मील्य दृष्ट्वा कृष्णमयं जगत् ॥११५॥
ददर्श यमुनातीरं वस्त्रद्रव्यमयं मुने । दृष्ट्वा तन्द्राऽथवा स्वप्नमिति मेने च राधिका ॥११६॥

वीज ! गुणों के आधार ! गुणों के ईश्वर ! आपको नमस्कार है ॥१०४॥ अणिमा आदि सिद्धियों के ईश, सिद्धि के भी सिद्धि स्वरूप तमोरूप ! तपस्विन् ! तप के बीजरूप आप को नमस्कार है ॥१०५॥ अनिर्वचनीय एवं निर्वचनीय वस्तु के स्वरूप ! उन दोनों के बीज ! सर्वबीज ! आपको नमस्कार है ॥१०६॥ मैं, सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा, गङ्गा एवं सावित्री जिनके चरणों की अर्चना करने से नित्यपूज्या हुई हैं उन्हें बार-बार नमस्कार है ॥१०७॥ जिनके सेवकों के स्पर्श और अहर्निश ध्यान करने से समस्त तीर्थ पवित्र हुए हैं उन भगवान् को नमस्कार है ॥१०८॥ इतना कहकर वह देवी अपने शरीर को जल में और मन-प्राणों को श्रीकृष्ण में लगा कर स्थाणु (ठूंठे काठ) की भाँति अविचलभाव से स्थित हो गईं ॥१०९॥ राधाकृत भगवान् के इस स्तोत्र का जो तीनों संध्याओं में पाठ करता है, उसे भगवान् की भक्ति और दास्य भाव प्राप्त होते हैं तथा वह निश्चय ही राधा की गति प्राप्त कर लेता है ॥११०॥ विपत्ति के समय जो भक्तिपूर्वक इसका पाठ करता है, उसे तुरन्त सम्पत्ति प्राप्त होती है, चिरकाल से खोया हुआ, अपहृत या नष्ट धन प्राप्त हो जाता है ॥१११॥ उसकी बन्धु-वृद्धि होती है, मन अत्यन्त प्रसन्न रहता है। चिन्ताग्रस्त मनुष्य पाठ करने से शान्ति प्राप्त करता है ॥११२॥ पतिवियोग, पुत्रवियोग, मित्र से वियोग और संकट में एक मास तक भक्तिपूर्वक पाठ करने से तुरन्त उसका संदर्शन होता है। कुमारी यदि भक्तिपूर्वक इस स्तोत्र का एक वर्ष तक अनवरत पाठ करे, तो उसे श्रीकृष्ण के समान गुणवान् पति निश्चित रूप से प्राप्त हो जाय ॥११३-११४॥ जल में राधिका ने श्रीकृष्ण के चरण-कमल का इस प्रकार ध्यान और स्तुति करके आँखें खोलीं तो उन्हें समस्त जगत् कृष्णमय दिखायी पड़ा। मुने ! यमुना का तट उन्हें द्रव्य एवं वस्त्रमय दिखायी दिया। उसे देखकर राधिका अपनी तन्द्रा

Funding by IKS-MoE

यत्र स्थाने यदाधारे यद्द्रव्यं संथितं पुरा। वस्त्रैश्च सहितं सर्वं तत्प्रापुर्गोपकन्यकाः ॥११७॥
जलादुत्थाय ताः सर्वा व्रतं कृत्वा मनीषितम् । संप्राप्य च वरं देव्यास्ताः सर्वाः स्वालयं ययुः ॥११८॥

नारद उवाच

व्रतस्य किं विधानं च किं नाम किं फलं प्रभो। कानि द्रव्याणि देयानि का देया तत्र दक्षिणा ॥११९॥
व्रतान्ते किं रहस्यं च बभूव सुमनोहरम् । व्यासं कृत्वा महाभाग वद नारायणीं कथाम् ॥१२०॥

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुंगवः । कथां कथितुमारेभे कवीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥१२१॥

नारायण उवाच

सर्वं व्रतविधानं च मत्तो वत्स निशामय । ख्यातं गौरीव्रतं नाम मार्गे मासि कृतं स्त्रिया ॥१२२॥
पुंसां च धर्मकामार्थमोक्षदं कृष्णभक्तिदम् । देशभेदे प्रसिद्धं च व्रतं पौर्वापरं स्मृतम् ॥१२३॥
कामदं कामुकानां च फलं कान्तनिमित्तकम्। उदोष्य पूर्वदिवसे वस्त्रं प्रक्षाल्य संयता ॥१२४॥
प्रातश्च मार्गसंक्रान्त्यां भक्त्या गत्वा सरित्तटम् । धृत्वा धौते च स्नात्वा च नानाद्रव्येण
कन्यका ॥१२५॥

अथवा स्वप्न देखने का अनुमान करने लगीं। जिस स्थान में जिसके ऊपर जो वस्तु पहले रखी गई थी, वह सब वस्त्रों समेत गोपकन्यायें पा गयीं ॥११५-११७॥ अनन्तर जल से निकलकर वे सभी गोपियाँ अपना अभीष्ट व्रत सुसम्पन्न कर और देवी द्वारा वरदान प्राप्त करके अपने घर को चली गयीं ॥११८॥

नारद बोले—प्रभो ! उस व्रत का क्या विधान है ? क्या नाम है एवं क्या फल है ? उसमें कौन-सी वस्तुएँ और क्या दक्षिणा देनी चाहिए ॥११९॥ महाभाग ! व्रत के अन्त में कौन-सा मनोहर रहस्य प्रकट हुआ ? नारायण की कथा को विस्तार से बताइए ॥१२०॥

सूत बोले—नारद की बाते सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारायण ने, जो कवीन्द्रों के गुरु के गुरु हैं, हँसकर कथा कहना आरम्भ किया ॥१२१॥

नारायण बोले—वत्स ! समस्त व्रत-विधान मुझसे सुनो। उसका नाम गौरीव्रत है। अगहन मास में स्त्रियों ने इसे किया था ॥१२२॥ यह पुरुषों को भी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष एवं कृष्ण की भक्ति प्रदान करने वाला है। भिन्न-भिन्न देशों में इसकी प्रसिद्धि है। यह पूर्व-परम्परा से चला आ रहा है।॥१२३॥ यह कामुकों के लिए कामप्रद है और इससे पतिनिमित्तक फल की प्राप्ति होती है। कुमारी कन्या को चाहिए कि व्रत के पूर्व दिन संयमपूर्वक रहते हुए वस्त्र प्रक्षालन करे और दूसरे दिन प्रातःकाल अगहन की संक्रान्ति में भक्तिपूर्वक नदी के तट पर जाकर

Funding by IKS-MoE

देवषट्कं च संपूज्य कृत्वा चाऽऽवाहनं घटे । गणेशं च दिनेशं च वह्निं नारायणं शिवम् ॥१२६॥
दुर्गां पञ्चोपचारैश्च संपूज्य व्रतमारभेत् । घटाधः पिण्डिकां कृत्वा चतुरस्रां सुविस्तृताम् ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च सुसंस्कृताम् ॥१२७॥
निर्माय वालुकानां च दुर्गां दशभुजां पराम् । धृत्वा कपाले सिन्दूरं तदधश्चन्दनेन्दुकम् ॥१२८॥
तां ध्यात्वाऽऽवाहयेद्देवीं ततो भूत्वा पुटाञ्जलिः । इमं मन्त्रं पठित्वाऽऽदौ ततः पूजां समारभेत् ॥१२९॥
हे गौरि शंकरार्धाङ्गि यथा त्वं शंकरप्रिया । तथा मां कुरु कल्याणि कान्तकान्तां सुदुर्लभाम् ॥१३०॥
इमं मन्त्रं पठित्वा तु ध्यायेद्देवीं जगत्प्रसूम् । ध्यानं तत्सामवेदोक्तं निगूढं सर्वकामदम् ॥१३१॥
शृणु नारदवक्ष्यामि मुनीन्द्राणां च दुर्लभम् । ध्यायन्त्यनेन सिद्धाश्च दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥१३२॥
शिवां शिवप्रियां शैवां शिववक्षःस्थलस्थिताम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् ॥१३३॥
नवयौवनसंपन्नां रत्नाभरणभूषिताम् । रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषिताम् ॥१३४॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम् । मालतीमाल्यसंसक्तकबरीभ्रमरान्विताम् ॥१३५॥
सिन्दूरतिलकं चारुकस्तूरीबिन्दुना सह । वह्निशुद्धांशुकां रत्नकिरीटां सुमनोहराम् ॥१३६॥
मणीन्द्रसारसंसक्तरत्नमालासमुज्ज्वलाम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालानुलम्बिताम् ॥१३७॥

भली-भाँति स्नान करके दो वस्त्र धारण करे ॥१२४-१२५॥ तत्पश्चात् कलश में छः देवों—गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और दुर्गा का आवाहन करके पञ्चोपचार पूजन करे। फिर व्रत आरम्भ करे। कलश के नीचे चौकोर और विस्तृत वेदी बनाकर उसे चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम से संस्कारपूर्ण बनाये ॥१२६-१२७॥ इसके बाद बालुका की दशभुजा वाली दुर्गा-मूर्ति बनाकर ललाट में सिन्दूर लगावे और उसके नीचे चन्दन तथा कर्पूर अर्पित करे ॥१२८॥ अनन्तर ध्यानपूर्वक देवी का आवाहन करके हाथ जोड़कर यह मंत्र पढ़कर उनकी अर्चना आरम्भ करे—'हे गौरि. . . .सुदुर्लभान्' हे शंकर की अर्धाङ्गिनी गौरी ! हे कल्याणि ! जिस प्रकार तुम शंकर की प्रिया हो, उसी प्रकार मुझे भी प्रियतम की अति दुर्लभ प्रेयसी बनाओ ॥१२९-१३०॥ इस मंत्र का उच्चारण करके जगज्जननी देवी का ध्यान करे। हे नारद ! वह सर्वकामनादायक गूढ़ ध्यान सामवेद में वर्णित है ॥१३१॥ नारद ! मुनीन्द्रों के लिए भी दुर्लभ वह ध्यान मैं बताऊँगा। सुनो, इसी ध्यान से सिद्ध लोग भी दुर्गतिनाशिनी दुर्गा का ध्यान करते हैं ॥१३२॥ (भगवती दुर्गा) शिवा (कल्याण रूपा), शिव की प्रिया, शैवा, शिव जी के वक्षःस्थल पर स्थित, मन्द मुसुकान समेत प्रसन्नमुख, सुप्रतिष्ठिता, सुन्दर नेत्रों वाली, नूतन-युवावस्था-सम्पन्न, रत्नों के भूषणों से भूषित, रत्नों के कङ्कण, केयूर और नुपुरों से सुशोभित, रत्नों के युगल कुण्डलों से विभूषित गण्डस्थल वाली, भौंरों से गुञ्जायमान मालती-माला से आवृत जूड़े वाली, मालती की मालाओं से सुन्दर कस्तूरी की बेंदी के साथ सिन्दूर का तिलक लगाये हुई, अग्नि विशुद्ध वस्त्र तथा रत्नों के अति मनोहर किरीट धारण करने वाली, मणीन्द्रों के सार भाग से जटित रत्नों की मालाओं से उद्भासित पारिजात पुष्पों की लम्बी मालाओं से विराजित, अत्यन्त स्थूल एवं कठोर श्रोणी भाग से भूषित, स्तनों के भार से दबी-सी, नवयौवन के भारसमूह से

सुपीनकठिनश्रोणीं बिभ्रतीं च स्तनानताम् । नवयौवनभारौघादीषन्नम्रां मनोहराम् ॥१३८॥
ब्रह्मादिभिः स्तूयमानां सूर्यकोटिसमप्रभाम् । पक्वबिम्बाधरौष्ठीं च चारुचम्पकसंनिभाम् ॥१३९॥
मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तराजिविराजिताम्। मुक्तिकामप्रदां देवीं शरच्चन्द्रमुखीं भजे ॥१४०॥
ध्यात्वैवं मस्तके पुष्पं विन्यस्य च व्रती मुदा। पुष्पं गृहीत्वा भक्त्या च पुनर्ध्यात्वा च पूजयेत् ॥१४१॥
दत्त्वा षोडशोपचारान्प्रहृष्टं तत्र नित्यशः । पूर्वोक्तेनैव मन्त्रेण मुदा भक्त्या व्रते व्रती ॥१४२॥
पूर्वोक्तेनैव स्तोत्रेण स्तुत्वा च प्रणमेत्तदा। कृत्वा प्रणामं भक्त्या च संयतः शृणुयात्कथाम् ॥१४३॥

नारद उवाच

व्रतं व्रतविधानं च फलं च स्तोत्रमद्भुतम् । अधुना श्रोतुमिच्छामि गौरीव्रतकथां शुभाम् ॥१४४॥
व्रतं केन कृतं पूर्वं भूमौ केन प्रकाशितम् । एतत्सर्वं सुविस्तार्य वद संदेहभञ्जन ॥१४५॥

नारायण उवाच

कुशध्वजस्य हि सुता नाम्ना वेदवती सती । तया कृतं व्रतमिदं महातीर्थे च पुष्करे ॥१४६॥
समाप्तिदिवसे साक्षाद्बभूव जगदम्बिका । योगिनीलक्षसंयुक्ता सूर्यकोटिसमप्रभा ॥१४७॥
शातकुम्भविनिर्माणरथस्था परमेश्वरी । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या तामुवाच सुसंयताम् ॥१४८॥

कुछ झुकी-सी एवं मनोहर, ब्रह्मादि देवों से स्तुति की जाती हुई, करोड़ों सूर्य के समान कान्तिपूर्ण, पके विम्बाफल के समान अधरोष्ठ वाली, चारु चम्पा के समान वर्ण वाली, मोती की पंक्तियों को अति निन्दित करने वाली दन्तपंक्ति से सुशोभित, मुक्ति एवं मनः कामना देने वाली एवं शारदीय चन्द्रमा के समान मुख वाली देवी का मैं भजन करता हूँ ॥१३३-१४०॥ इस प्रकार ध्यानपूर्वक व्रती मस्तक पर पुष्प रखकर पुष्प लेकर भक्तिपूर्वक पुनः ध्यान करके पूजन करे ॥१४१॥ व्रत में पूर्वोक्त मंत्र से ही व्रती प्रतिदिन हर्षपूर्वक भक्ति के साथ षोडशोपचार चढ़ावे ॥१४२॥ पश्चात् पूर्वोक्त स्तोत्र द्वारा स्तुति करके उन्हें प्रणाम करे और मन को एकाग्र करके भक्तिपूर्वक गौरी-व्रत की कथा श्रवण करे ॥१४३॥

नारद बोले--व्रत, व्रत का विधान, फल और अद्भुत स्तोत्र मैं सुन चुका; अब मैं गौरीव्रत की शुभ कथा सुनना चाहता हूँ। हे संदेहनाशक! सर्वप्रथम इस व्रत को किसने किया और भूतल पर किसने इसे प्रकाशित किया, यह सब विस्तारपूर्वक मुझे बता दें ॥१४४-१४५॥

नारायण बोले--कुशध्वज की वेदवती नामक कन्या ने इस व्रत को महातीर्थ पुष्कर में सम्पन्न किया था, जिसकी समाप्ति के दिन करोड़ों सूर्य के समान प्रभावाली जगदम्बिका ने एक लाख योगिनियों के साथ उसे साक्षात् दर्शन दिया ॥१४६-१४७॥ सुवर्ण के बने रथ पर स्थित परमेश्वरी ने, जिनके प्रसन्न-मुख पर मुसकराहट फैल रही थी, संयमशीला वेदवती से कहा ॥१४८॥

Funding by IKS-MoE

पार्वत्युवाच

हे वेदवति भद्रं ते वरं वृणु यथेप्सितम् । तव व्रतेन तुष्टाऽहं तुभ्यं दास्यामि वाञ्छितम् ॥१४९॥
पार्वतीवचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा तां हृष्टमानसाम् । पुटाञ्जलियुता साध्वी प्रणम्योवाच नारद ॥१५०॥

वेदवत्युवाच

देवि नारायणं कान्तं मह्यं देहि मनीषितम् । वरेऽन्यस्मिन्स्पृहा नास्ति दृढां भक्तिं च तत्पदे ॥१५१॥
श्रुत्वा वेदवतीवाक्यं प्रहस्य जगदम्बिका । अवरुह्य रथात्तूर्णं तामुवाच हरिप्रियाम् ॥१५२॥

पार्वत्युवाच

ज्ञातं सर्वं जगन्मातस्त्वं च लक्ष्मीः स्वयं सती । भारतं पादरजसा पूतं कर्तुं समागता ॥१५३॥
त्वत्पादरजसा साध्वि सद्यः पूता वसुंधरा । निखिलानि च तीर्थानि पूतानि परमेश्वरि ॥१५४॥
व्रतं ते लोकशिक्षार्थं तपश्चर तपस्विनि । नारायणस्य कान्ता त्वं प्रिया जन्मनि जन्मनि ॥१५५॥
भारावतरणे विष्णुर्वसुधामागमिष्यति । रामो दाशरथिः पूर्णः कर्तुं दस्युविनिग्रहम् ॥१५६॥
ब्रह्मशापाच्च च्युतयोर्मोक्षणाय च भक्तयोः । अयोध्यायां च त्रेतायामाविर्भावो हरेरपि ॥१५७॥

पार्वती बोलीं—वेदवति ! तुम्हारा कल्याण हो, यथेच्छ वर की याचना करो । मैं तुम्हारे व्रत से प्रसन्न हूं, अतः तुम्हें अभीष्ट प्रदान करूँगी ॥१४९॥ नारद ! पार्वती की बात सुनकर और उन्हें प्रसन्नचित्त देखकर सती वेदवती ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करके कहा ॥१५०॥

वेदवती बोली—देवि ! मुझे अभीष्ट पति नारायण को प्रदान करें । अन्य वर की मुझे इच्छा नहीं है । उनके चरण में मुझे दृढ़ भक्ति भी दें ॥१५१॥वेदवती की बात सुनकर जगदम्बिका हँसकर रथ से शीघ्र उतर गईं और उस हरि प्रिया से बोलीं ॥१५२॥

पार्वती ने कहा—जगन्माता ! मैंने सब कुछ जान लिया । तुम साक्षात् सती लक्ष्मी हो, अपने चरण-रज से भारत प्रदेश को पवित्र करने आयी हो। साध्वी ! तुम्हारे चरण-कमल से पृथ्वी तुरन्त पवित्र हो गयी है। हे परमेश्वरी ! समस्ततीर्थ भी पवित्र हो गये हैं। तुम्हारा यह व्रत लोक-शिक्षार्थ है। तपस्विनि ! तुम तप करो। प्रत्येक जन्म में तुम साक्षात् नारायण की वल्लभा हो, उनकी प्रिय पत्नी रहोगी ॥१५३-१५५॥ पृथ्वी का भार उतारने के लिए विष्णु पृथ्वी पर आयेंगे । दस्युभूत राक्षसों को नियन्त्रित करने के लिए पूर्ण परमात्मा दशरथ-पुत्र राम होंगे । उनके दो भक्त जय और विजय ब्राह्मणों के शाप के कारण वैकुण्ठधाम से नीचे गिर गये हैं । उनका उद्धार करने के लिए त्रेतायुग में अयोध्या में हरि प्रकट होंगे ॥१५६-१५७॥ तुम्हीं शिशु-शरीर धारण करके मिथिला

Funding by IKS-MoE

त्वमेव मिथिलां गच्छ विधाय शिशुविग्रहम् । त्वामिमां प्राप्य जनकोऽप्ययोनिसंभवां सुताम् ॥१५८॥
पालयिष्यति यत्नेन सीता त्वं च भविष्यसि । गत्वा रामोऽपि मिथिलां त्वद्विवाहं करिष्यति ॥१५९॥
नारायणस्य कान्ता त्वं कल्पे कल्पे भविष्यसि[1] । इत्युक्त्वा तां समालिङ्ग्य पार्वती स्वालयं ययौ ॥१६०॥
गत्वा सा मिथिलां साध्वी शिशुरूपं विधाय च । लाङ्गलस्य च रेखायां सुप्त्वा तस्थौ च[2] मायया ॥१६१॥
विलोक्य जनकस्तां च नग्नां मुद्रितलोचनाम् । तप्तकाञ्चनवर्णां च रुदन्तीं तेजसाऽन्विताम् ॥१६२॥
दृष्ट्वा तां च गृहीत्वा च कृत्वा वक्षसि नारद । गच्छन्तं प्रति तत्रैव वाग्बभूवाशरीरिणी ॥१६३॥
अयोनिसंभवां कन्यां कमलां ग्रहणं कुरु । नारायणस्ते जामाता भवितेत्येव मे वचः ॥१६४॥
श्रुत्वा तदा देववाणीं गृहीत्वा कन्यकामृषिः । गत्वा ददौ स्वकान्तायै पालनाय मुदाऽन्वितः ॥१६५॥
सा लब्धयौवना प्राप रामं दशरथिं सती । व्रतस्यास्य प्रभावेण कान्तं त्रिजगतां पतिम् ॥१६६॥
प्रकाशितं वसिष्ठेन पृथिव्यां भक्तिभावतः । राधा कृत्वा व्रतमिदं श्रीकृष्णं प्राप वल्लभम् ॥१६७॥
गोपाङ्गनाश्च तं प्रापुर्व्रतस्यास्य प्रभावतः । इत्येवं कथिता विप्र कथा गौरीव्रतस्य च ॥१६८॥

जाओ। वहाँ राजा जनक तुम्हें अयोनिजा कन्या के रूप में प्राप्त करके बड़े यत्न से पालन करेंगे। सीता तुम्हारा नाम होगा। राम भी मिथिला जाकर तुम्हारे साथ विवाह करेंगे ॥१५८-१५९॥ तुम प्रत्येक कल्प में भगवान् की प्रिय पत्नी होओगी। इतना कहकर पार्वती उनका आलिङ्गन करके अपने घर चली गयीं। वह साध्वी वेदवती भी अपना शिशुरूप बनाकर मिथिला में जाकर माया से हल द्वारा भूमि पर की गई रेखा (हराई) में सुखपूर्वक स्थित हो गयीं। राजा जनक ने देखा कि एक नग्न बालिका आँख बंद किये भूमि पर पड़ी है। उसकी अङ्ग-कांति तपाये सुवर्ण के समान है तथा वह तेजस्विनी बालिका रो रही है। उसे देखकर जनक ने उठाकर गोद में चिपका लिया। जब वे जाने लगे तब वहीं आकाशवाणी हुई—"यह अयोनिजा कन्या साक्षात् लक्ष्मी है, इसको ग्रहण करो। नारायण तुम्हारे जामाता होंगें, यही मेरा कथन है" ॥१६०–१६४॥ तब राजा जनक बड़ी प्रसन्नता से उस कन्या को ले जाकर पालन-पोषण के लिए अपनी पत्नी को दे दिया। अनन्तर युवती होने पर उस सती सीता ने इसी व्रत के प्रभाव से तीनों लोक के पति दशरथ-पुत्र राम को पति रूप में प्राप्त कर लिया ॥१६५-१६६॥ महर्षि वशिष्ठ ने बड़े भक्ति-भाव से इस व्रत को भूतल पर प्रकाशित किया। राधिका ने इस व्रत को सम्पन्न कर के श्रीकृष्ण को प्राणवल्लभ रूप में प्राप्त किया और गोपियों ने भी इसी व्रत के द्वारा उन्हें प्राप्त किया। हे विप्र! इस प्रकार

---

[1] क. हरिप्रिये । [2] ख. सुखात्° ।

Funding by IKS-MoE

भारते च व्रतमिदं या करोति कुमारिका । स्वामिनं कृष्णतुल्यं च सा प्राप्नोति न संशयः ॥१६९॥

नारायण उवाच

एवं व्रतं च चक्रुस्ता यावन्मासं च गोपिकाः । पूर्वस्तोत्रेण तां देवीं तुष्टुवुश्च दिने दिने ॥१७०॥
समाप्तिदिवसे गोप्यो व्रतं कृत्वा मुदाऽन्विताः । कण्वशाखोक्तस्तोत्रेण तुष्टुवुः परमेश्वरीम् ॥१७१॥
येन स्तोत्रेण तां स्तुत्वा सीता सत्यपरायणा । सद्यः संप्राप कान्तं च रामं राजीवलोचनम् ॥१७२॥

जानक्युवाच

शक्तिस्वरूपे सर्वेषां सर्वाधारे गुणाश्रये । सदा शंकरयुक्ते च पतिं देहि नमोऽस्तु ते ॥१७३॥
सृष्टिस्थित्यन्तरूपेण सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि । सृष्टिस्थित्यन्तबीजानां बीजरूपे न० ॥१७४॥
हे गौरि पतिमर्मज्ञे पतिव्रतपरायणे । पतिव्रते पतिरते पतिं देहि न० ॥१७५॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये सर्वमङ्गलसंयुते । सर्वमङ्गलबीजे च नमस्ते सर्वमङ्गले ॥१७६॥
सर्वप्रिये सर्वबीजे सर्वाशुभविनाशिनि । सर्वेशे सर्वजनके नमस्ते शंकरप्रिये ॥१७७॥
परमात्मस्वरूपे च नित्यरूपे सनातनि । साकारे च निराकारे सर्वरूपे न० ॥१७८॥

गौरी-व्रत की कथा तुम्हें बता दी ॥१६७-१६८॥ भारत में जो कुमारी यह व्रत करती है, वह श्रीकृष्ण के समान पति प्राप्त करती है, इसमें संशय नहीं ॥१६९॥

नारायण बोले——इस प्रकार उन गोपियों ने एक मास तक व्रत किया। वे पूर्वोक्त स्तोत्र द्वारा प्रतिदिन देवी की स्तुति करती थीं ॥१७०॥ समाप्ति के दिन गोपियों ने बड़ी प्रसन्नता से व्रत करके कण्व शाक्त स्तोत्र द्वारा परमेश्वरी की स्तुति की, जिसके द्वारा स्तवन करके सत्यपरायण सीता ने कमलनयन राम को सद्यः पति रूप में प्राप्त किया था ॥१७१-१७२॥ (वह स्तोत्र इस प्रकार है——)

जानकी बोलीं——हे सभी लोगों की शक्तिस्वरूपे शिवे ! आप सब की आधारभूता हैं। समस्त गुणों की निधि हैं तथा सदा शंकर के संयोग——सुख का अनुभव करने वाली हैं। आपको नमस्कार है। आप मुझे पति दें ॥१७३॥ सृष्टि, पालन और संहार रूप से आप सृष्टि, पालन और संहार करने वाली हैं। सृष्टि, पालन और संहार के जो बीज हैं, उनकी भी बीज रूप आप हैं, आपको नमस्कार है ॥१७४॥ पति के मर्म को जानने वाली ! पतिव्रतपरायणे ! पतिव्रते ! पतिरते ! मुझे पति दें। आपको नसस्कार है ॥१७५॥ आप समस्त मङ्गलों के भी मंगलकारिणी हैं, समस्त मंगलों से युक्त हैं, सब प्रकार के मंगलों की बीजरूपा हैं, सर्वमंगले ! आपको नमस्कार है ॥१७६॥ हे शंकरप्रिये ! आप सर्वप्रिय, सब की बीज रूपिणी, समस्त अशुभों की विनाशिनी, सब की स्वामिनी और सब की जननी हैं; आपको नमस्कार है ॥१७७॥ **परमात्मस्वरूपे !** नित्य-

क्षुत्तृष्णेच्छा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा स्मृतिः क्षमा । एतास्तव कलाः सर्वा नारायणि न० ॥१७९॥
लज्जा मेधा तुष्टिपुष्टी शान्तिसंपत्तिवृद्धयः । एतास्तव कलाः सर्वाः सर्वरूपे न० ॥१८०॥
दृष्टादृष्टास्वरूपे च तयोर्बीजे फलप्रदे । सर्वानिर्वचनीये च महामाये न० ॥१८१॥
शिवे शंकरसौभाग्ययुक्ते सौभाग्यदायिनि । हरिं कान्तं च सौभाग्यं देहि देवि न० ॥१८२॥
स्तोत्रेणानेन याः स्तुत्वा समाप्तिदिवसे शिवाम् । नमन्ति परया भक्त्या ता लभन्ते हरिं
पतिम् ॥१८३॥
इह कान्तसुखं भुक्त्वा पतिं प्राप्य परात्परम् । दिव्यं स्यन्दनमारुह्य यान्त्यन्ते कृष्णसंनिधिम् ॥१८४॥
समाप्तिदिवसे राधा गोपीभिः सह संयुता । देवीं प्रणम्य स्तुत्वा च व्रतं पूर्णं चकार ह ॥१८५॥
गोसहस्रं ब्राह्मणेभ्यः सुवर्णशतकं मुदा । विप्राय दक्षिणां दत्त्वा स्वगृहं गन्तुमुद्यता ॥१८६॥
ब्राह्मणानां सहस्रं च भोजयामास सादरम् । वाद्यानि वादयामास भिक्षुकाय धनं ददौ ॥१८७॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दुर्गा दुर्गतिनाशिनि । आविर्बभूव गगनाज्ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा ॥१८८॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या योगिनीशतसंयुता[1] । सिंहस्था च दशभुजा रत्नालंकारभूषिता ॥१८९॥

रूपे सनातनि ! आप साकार, निराकार और सर्वरूपा हैं; आपको नमस्कार है ॥१७८॥ क्षुधा, तृष्णा, इच्छा, दया, श्रद्धा, निद्रा, तन्द्रा, स्मृति और क्षमा—ये आपकी कलायें हैं। नारायणि ! आपको समस्कार है ॥१७९॥ लज्जा, मेधा, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, सम्पत्ति, बुद्धि—ये आपकी कलायें हैं; सर्वरूपे ! आपको नमस्कार है ॥१८०॥ दृष्ट और अदृष्ट दोनों आपके ही स्वरूप हैं, आप उन्हें बीज और फल प्रदान करती हैं, कोई भी आपका निर्वचन नहीं कर सकता है; महामाये ! आपको नमस्कार है ॥१८१॥ शिवे ! आप शंकर संबंधी सौभाग्य से युक्त हैं तथा सौभाग्य देने वाली हैं। देवि ! श्रीकृष्ण को पति के रूप में मुझे प्रदान करें। आपको नमस्कार है ॥१८२॥ समाप्ति के दिन जो इस स्तोत्र से स्तुति करके परम भक्ति से पार्वती को नमस्कार करते हैं, वे हरि को पति के रूप में प्राप्त करती हैं ॥१८३॥ परात्पर पति प्राप्त होने पर इस लोक में पति का सुख भोग कर अन्त में दिव्य रथ पर बैठकर भगवान् श्रीकृष्ण के समीप पहुँच जाती हैं ॥१८४॥ समाप्ति के दिन राधिका ने भी गोपियों को साथ करके देवी की स्तुति और प्रणाम करके व्रत को पूर्ण किया था ॥१८५ ॥ ब्राह्मणों को एक सहस्र गौऐं और सौ सुवर्ण-मुद्रायें दीं, फिर ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान कर अपने गृह जाने को उद्यत हुईं। उन्होंने एक सहस्र ब्राह्मणों को सादर भोजन कराया, विविध वाद्य बजवाये और भिक्षुकों को धन दिया। इसी बीच दुर्गतिनाशिनी दुर्गा ब्रह्मतेज से प्रकाशित होकर आकाश से प्रकट हुईं ॥१८६-१८८॥ वे मन्दहास समेत प्रसन्न मुख एवं सौ योगिनियों के साथ थीं। वे सिंह पर विराजमान, दस भुजाओं से युक्त तथा रत्नों के आभूषणों से

---

[1] क. °शिव० ।

Funding by IKS-MoE

शातकुम्भमयाद्दिव्याद्रत्नसारपरिच्छदात् । अवरुह्य रथात्तूर्णमालिङ्ग्योरसि राधिकाम् ॥१९०॥
दृष्ट्वा गोपाङ्गना देवीं प्रणेमुश्च मुदाऽन्विताः । आशिषं युयुजे दुर्गा वाञ्छासिद्धिर्भविष्यति ॥१९१॥
गोपिकाभ्यो वरं दत्त्वा ताः संभाष्य च सादरम् । उवाच राधिकां दुर्गा स्मेराननसरोरुहा ॥१९२॥

पार्वत्युवाच

राधे सर्वेश्वरप्राणादधिके जगदम्बिके । व्रतं ते लोकशिक्षार्थं मायामानुषरूपिणि ॥१९३॥
गोलोकनाथं गोलोकं श्रीशैलं विरजातटम् । श्रीरासमण्डलं दिव्यं[1] वृन्दावनमनोहरम् ॥१९४॥
चरितं रतिचोरस्य स्त्रीणां मानसहारकम् । विदुषः कामशास्त्राणां किस्वित्स्मरसि सुन्दरि ॥१९५॥
श्रीकृष्णार्धाङ्गसंभूता कृष्णतुल्या च तेजसा । तवांशकलया देव्यः कथं त्वं मानुषी सती ॥१९६॥
भवती च हरेः प्राणा भवत्याश्च हरिः स्वयम् । वेदे नास्ति द्वयोर्भेदः कथं० ॥१९७॥
षष्टिवर्षसहस्राणि ब्रह्मा तप्त्वा तपः पुरा । न ते ददर्श पादाब्जं कथं० ॥१९८॥
कृष्णाज्ञया च त्वं देवि गोपीरूपं विधाय च । आगतासि महीं शान्ते कथं० ॥१९९॥
सुयज्ञो हि नृपश्रेष्ठो मनुवंशसमुद्भवः । त्वत्तो जगाम गोलोकं कथं० ॥२००॥

भूषित थीं ॥१८९॥ उन्होंने रत्नसारमय उपकरणों से युक्त सुवर्णनिर्मित दिव्य रथ से उतर कर तुरन्त ही
राधिका को अपने हृदय से लगा लिया ॥१९०॥ गोपियों ने देवी को देखकर हर्षान्वित होकर प्रणाम किया
और दुर्गा ने उन्हें आशिष प्रदान किया कि—"तुम सब की इच्छा पूर्ण होगी" ॥१९१॥ गोपियों को वरदान देकर
और उनसे आदरपूर्वक बात-चीत करके मुसकराते हुए मुखकमल वाली दुर्गा ने राधिका से कहा ॥१९२॥

पार्वती बोलीं—राधे ! तुम सर्वेश्वर देव को प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। तुम्हारा यह व्रत लोक-
शिक्षा के लिए है। तुम माया से मनुष्य रूप में प्रकट हुई हो। सुन्दरि ! क्या तुम गोलोकनाथ, गोलोक,
श्रीशैल, विरजा के तटप्रान्त, श्री रासमण्डल और दिव्य मनोहर वृन्द्रावन और कामशास्त्र के विद्वान्, स्त्रियों के
चित्त को अपहरण करने वाले एवं रतिचोर श्रीकृष्ण के चरित्र का स्मरण करती हो ? ॥१९३-१९५॥ तुम श्रीकृष्ण
के अर्द्धाङ्ग से उत्पन्न और तेज में उन्हीं के समान हो। समस्त देवियाँ तुम्हारी अंशकला से प्रकट हुईं हैं। फिर
तुम मानुषी सती कैसे हो ? ॥१९६॥ तुम भगवान् के प्राण हो और स्वयं हरि तुम्हारे प्राण हैं, वेद में तुम दोनों में
कोई भेद नहीं बताया गया है। फिर तुम मानुषी कैसे हो ? ॥१९७॥ पूर्वकाल में ब्रह्मा साठ सहस्र वर्षों तक
तप करके भी तुम्हारे चरण-कमल का दर्शन न पा सके, फिर तुम मानवी कैसे हो ? ॥१९८॥ देवि ! शान्ते !
श्रीकृष्ण की आज्ञा से गोपीरूप धारण करके तुम इस भूतल पर आयी हो, अतः तुम मानुषी कैसे हो ? ॥१९९॥
मनु वंश में उत्पन्न नृपश्रेष्ठ सुयश ने तुम्हारी ही कृपा से गोलोक में गये। फिर तुम मानुषी कैसे हो ? ॥२००॥

---

[1] क. रम्यं ।

Funding by IKS-MoE

त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां चकारपृथिवीं भृगुः । तव मन्त्रेण कवचात्कथं० ॥२०१॥
शंकरात्प्राप्य त्वन्मन्त्रं सिद्धं कृत्वा च पुष्करे । जघान कार्तवीर्यं च कथं० ॥२०२॥
बभञ्ज दर्पाद्दन्तं च गणेशस्य महात्मनः । त्वत्तो नाम भयं चक्रे कथं० ॥२०३॥
मय्युद्धतायां कोपेन भस्मसात्कर्तुमीश्वरि । ररक्षाऽऽगत्य मत्प्रीत्या कथं० ॥२०४॥
कल्पे कल्पे तव पतिः कृष्णो जन्मनि जन्मनि । व्रतं लोकहितार्थाय जगन्मातस्त्वया कृतम् ॥२०५॥
अहो श्रीदामशापेन भारावतरणाय च । भूमौ तवाधिष्ठानं च कथं० ॥२०६॥
अयोनिसंभवा त्वं च जन्ममृत्युजरापहा । कलावतीसुता पुण्या कथं० ॥२०७॥
त्रिषु मासेष्वतीतेषु मधुमासे मनोहरे । निर्जने निर्मले रात्रौ सुयोग्ये रासमण्डले ॥२०८॥
सर्वाभिर्गोपिकाभिश्च सार्धं वृन्दावने वने । हर्षेण हरिणा सार्धं क्रीडा ते भविता सति ॥२०९॥
विधात्रा लिखिता क्रीडा कल्पे कल्पे महीतले । तव श्रीहरिणा सार्धं केन राधे निवार्यते ॥२१०॥
यथा सौभाग्ययुक्ताऽहं हरस्य श्रीहरिप्रिये । तथा सौभाग्ययुक्ता त्वं भव कृष्णस्य सुन्दरि ॥२११॥
यथा क्षीरेषु धावल्यं यथा वह्नौ च दाहिका । भुवि गन्धो जले शैत्यं तथा कृष्णे स्थितिस्तव ॥२१२॥
दबी वा मानुषी वाऽपि गान्धर्वी राक्षसी तथा । त्वत्तः परा च सौभाग्या न भूता न भविष्यति ॥२१३॥

परशुराम ने तुम्हारे ही मंत्र और कवच के प्रभाव से पृथिवी को इक्कीस बार निःक्षत्रिय किया था; अतः तुम मानुषी कैसे हो ? ॥२०१॥ उन्होंने शंकर से तुम्हारा मंत्र प्राप्त कर पुष्कर-क्षेत्र में उसे सिद्ध करके कार्तवीर्य का वध किया था, फिर तुम मानुषी कैसे हो ? ॥२०२॥ उन्होंने अभिमानपूर्वक महात्मा गणेश का दाँत तोड़ दिया था, वे केवल तुम से ही भय मानते थे, फिर तुम मानुषी कैसे हो ? ॥२०३॥ क्रोध से उसे भस्म करने के लिए मेरे उद्धत हो जाने पर, हे ईश्वरि ! मेरे प्रेम से आकर तुमने ही रक्षा की थी, फिर तुम मानुषी कैसे हो ? ॥२०४॥ श्रीकृष्ण प्रत्येक कल्प में तथा जन्म-जन्म में तुम्हारे पति रहें, जगन्माता ! यह व्रत तो केवल लोककल्याण के लिए तुमने किया है ॥२०५॥ अहो ! श्रीदामा के शाप से पृथ्वी का भार उतारने के निमित्त तुम यहाँ भूतल पर आयी हो, फिर तुम मानुषी कैसे हो ? ॥२०६॥ तुम कलावती की अयोनिजा पुत्री तथा पुण्यस्वरूपा और जन्म मृत्यु एवं जरा का अपहरण करने वाली हो, फिर तुम मानुषी कैसे हो ? ॥२०७॥ तीन मास के उपरान्त मनोहर चैत्रमास की रात्रि में जनशून्य, निर्मल एवं अतिशोभन रासमण्डल में वृन्दावन के भीतर श्रीहरि के साथ समस्त गोपिकाओं समेत तुम्हारी रासक्रीड़ा सानन्द सम्पन्न होगी ॥२०८-२०९॥ राधे ! प्रति कल्प में भूतल पर श्रीहरि के साथ तुम्हारी क्रीड़ा ब्रह्मा ने लिख दी है, उसे कौन रोक सकता है ? ॥२१०॥ श्रीहरि की प्रिया ! सुन्दरी ! जैसे मैं शंकर की सौभाग्यशालिनी (पत्नी) हूँ, वैसे तुम श्रीकृष्ण की सौभाग्ययुक्ता वल्लभा हो। ॥२११॥ जिस भाँति दूध में धवलता, अग्नि में दाहिका शक्ति, पृथिवी में गन्ध एवं जल में शीतलता है, उसी भाँति कृष्ण में तुम्हारी स्थिति है ॥२१२ देवी, मानुषी, गान्धर्वी तथा राक्षसी आदि कोई भी तुमसे बढ़

परात्परो गुणातीतो ब्रह्मादीनां च वन्दितः । स्वयं कृष्णस्तवाधीनो मद्वरेण भविष्यति ॥२१४॥
ब्रह्मानन्तशिवाराध्यो भविता त्वद्वशः सति । ध्यानासाध्यो दुराराध्यः सर्वेषामपि योगिनाम् ॥२१५॥
त्वं च भाग्यवती राधे स्त्रीजातिषु न ते परा । कृष्णेन सार्धं पश्चात्त्वं गोलोकं च गमिष्यसि ॥२१६॥
इत्युक्त्वा पार्वती सद्यस्तत्रैवान्तर्दधे मुने । सार्धं गोपालिकाभिश्च राधिका गन्तुमुद्यता ॥२१७॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो जगाम राधिकापुरः । राधा ददर्श श्रीकृष्णं किशोरं श्यामसुन्दरम् ॥२१८॥
पीतवस्त्रपरीधानं रत्नालंकारभूषितम् । आजानुमालतीमालावनमालाविभूषितम् ॥२१९॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥२२०॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् । पक्वदाडिमबीजाभदशनं सुमनोहरम् ॥२२१॥
विनोदमुरलीहस्तन्यस्तलीलासरोरुहम् । कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् ॥२२२॥
गुणातीतं स्तूयमानं ब्रह्मानन्तशिवादिभिः । ब्रह्मस्वरूपं ब्रह्मण्यं श्रुतिभिश्चानिरूपितम् ॥२२३॥
अव्यक्तमक्षरं व्यक्तं ज्योतीरूपं सनातम् । माङ्गल्यं मङ्गलाधारं मङ्गलं मङ्गलप्रदम् ॥२२४॥
दृष्ट्वा तदद्भुतं रूपं संभ्रमात्प्रणनाम तम् । तं दृष्ट्वा मूर्छिता राधा कामबाणप्रपीडिता ॥२२५॥
दर्शं दर्शं मुखाम्भोजं सस्मिता वक्रलोचना । मुखस्याऽऽच्छादनं चक्रे व्रीडया च पुनः पुनः ॥२२६॥

कर सौभाग्यवती न हुई है और न होगी ॥२१३॥ मेरे वरदान द्वारा परात्पर, गुणों से परे, तथा ब्रह्मा आदि देवों से वन्दित श्रीकृष्ण स्वयं तुम्हारे अधीन रहेंगे ॥२१४॥ ब्रह्मा, अनन्त एवं शिव के आराध्य देव कृष्ण तुम्हारे वशीभूत रहेंगे, जो सभी योगियों के भी ध्यान में न आने योग्य हैं तथा जिनकी आराधना दुःसाध्य है। अतः हे राधे ! सभी जाति में तुमसे बढ़कर सौभाग्यवती कोई नहीं है। पश्चात् भगवान् कृष्ण के साथ तुम गोलोक चली जाओगी। ॥२१५-२१६॥ मुने ! इतना कहकर पार्वती तुरन्त अन्तर्हित हो गयीं। तब गोपियों के साथ राधिका भी जाने को उद्यत हुईं ॥२१७॥ इतने में श्रीकृष्ण राधिका के सामने उपस्थित हो गये। राधिका ने श्रीकृष्ण को देखा, जो किशोर, श्यामसुन्दर, पीताम्बर पहने, अनेक भाँति के अलङ्कारों से भूषित, जानु (घुटने) पर्यन्त मालती माला और वनमाला से विभूषित, मन्दहास समेत प्रसन्न मुख, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए कातर, चन्दन-चर्चित सर्वाङ्ग वाले, शारदीय कमल की भाँति नेत्र वाले, शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख वाले, उत्तम रत्न के मुकुट से प्रकाशित, पके अनारदाने के समान दाँत वाले, अत्यन्त मनोहर, विनोद के लिए हाथ में मुरली और लीला कमल लिए हुए, करोड़ों काम के समान सुन्दर, लीलाधाम, मनोहर, गुणों से परे, ब्रह्मा, अनन्त एवं शिव आदि देवों से स्तुति किये जाते हुए, ब्रह्मस्वरूप, ब्राह्मण-हितैषी, श्रुतियों से अनिरूपित, अव्यक्त, अविनाशी, व्यक्त, ज्योतिःस्वरूप, सनातन, मङ्गलकारी, मङ्गल के आधार, मङ्गलमय और मङ्गलदायक हैं ॥२१८-२२४॥ ऐसे अद्भुत रूप को देखकर राधा ने संभ्रमपूर्वक प्रणाम किया। उन्हें देखकर राधिका कामबाण से अत्यन्त पीड़ित होने के कारण मूच्छित हो गईं ॥२२५॥ वे प्रियतम के मुखारविन्द को बाँकी चितवन से देख-देखकर मुसकराने लगीं। और लज्जावश पुनः-पुनः अपना मुख ढक लेती थीं ॥२२६॥ प्रसन्नमुख और नेत्र वाले हरि तब राधा

दृष्ट्वा हरिस्तामुवाच प्रसन्नवदनेक्षणः। गोपालिकासमूहानां सर्वेषां पुरतः स्थितः ॥२२७॥

श्रीकृष्ण उवाच

प्राणाधिके राधिके त्वं वरं वृणु मनीषितम्। भो भो गोपालिकाः सर्वा वरं वृणुत वाञ्छितम् ॥२२८॥
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा वरं वव्रे च राधिका। गोपालिकाः प्रहृष्टाश्च सर्वसंकल्पपादपात् ॥२२९॥

राधिकोवाच

त्वत्पादाब्जे मन्मनोलिः सततं भ्रमतु प्रभो। पातुं भक्तिरसं पद्मे मधुपश्च यथा मधु ॥२३०॥
मदीयप्राणनाथस्त्वं भव जन्मनि जन्मनि। त्वदीयचरणाम्भोजे देहि भक्तिं सुदुर्लभाम् ॥२३१॥
तव स्मृतौ गुणे चित्तं स्वप्ने ज्ञाने दिवानिशम्। भवेन्निमग्नं सततमेतन्मम मनीषितम् ॥२३२॥

गोपालिका ऊचुः

यथा राधा तथा नश्च प्राणबन्धो दिवानिशम्। भविष्यसि प्राणनाथः पास्यसि प्रतिजन्मनि ॥२३३॥
आसां च वचनं श्रुत्वा तथास्त्वेवमुवाच ह। प्रसन्नवदनः श्रीमान्यशोदानन्दवर्धनः ॥२३४॥
क्रीडापद्मं राधिकायै सहस्रदलसंयुतम्। ललितां मालतीमालां ददौ प्रीत्या जगत्पतिः ॥२३५॥

को देखकर सभी गोपियों के समूह के सामने खड़े होकर राधा से बोले ॥२२७॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे प्राणाधिके, राधे ! मन इच्छित वर मांगो और गोपियो ! तुम भी अपना अभीष्ट वर कहो ॥२२८॥ कृष्ण की बात सुनकर राधिका तथा गोप-कन्याओं ने अत्यन्त हर्षित होकर समस्तकामना-कल्पवृक्ष (प्रभु) से वर मांगा ॥२२९॥

राधिका बोलीं—प्रभो ! भक्तिरस का पान करने के लिए मेरा मनरूपी भ्रमर आपके चरण-कमल में निरन्तर भ्रमण किया करे, जैसे मधु पीने के लिए भौंरा कमल पर मँडराता रहता है ॥२३०॥ प्रत्येक जन्म में आप मेरे प्राणनाथ हों, आप अपने चरणकमल की अति दुर्लभ भक्ति प्रदान करें ॥२३१॥ मेरा चित्त, सोते-जागते रात-दिन सभी समय तुम्हारे स्मरण और गुणों के वर्णन में सतत लगा रहे, यही मेरा अभीष्ट है ॥२३२॥

गोपियाँ बोलीं—हे प्राणबन्धो ! प्रत्येक जन्म में जैसे राधा के आप अहर्निश प्राणनाथ और रक्षक होंगे, वैसे हमारे भी हों ॥२३३॥ उनकी बात सुनकर प्रसन्नमुख श्रीमान् यशोदानन्दन ने 'तथास्तु' कहकर स्वीकार किया ॥२३४॥ अनन्तर जगत्पति भगवान् ने बड़े प्रेम से राधिका को सहस्रदल वाला क्रीडाकमल और ललिता

Funding by IKS-MoE

मालासमूहं पुष्पाणि गोपीभ्यो गोपिकापतिः । प्रहस्य परमप्रीत्या प्रददावित्युवाच ह ॥२३६॥

श्रीकृष्ण उवाच

त्रिषु मासेष्वतीतेषु यूयं क्रीडा मया सह । रासमण्डलरम्ये च वृन्दारण्ये करिष्यथ ॥२३७॥
[1]यथाऽहं च तथा यूयं नाहं (यं) भेदः श्रुतौ श्रुतः । प्राणोऽहं चैव युष्माकं यूयं प्राणा मम प्रभोः ॥२३८॥
व्रतं वो लोकरक्षार्थं न हि स्वार्थमिदं प्रियाः । सहाऽऽगताश्च गोलोकाद्गमनं च मया सह ॥२३९॥
गच्छत स्वालयं शीघ्रं वोऽहं जन्मनि जन्मनि । प्राणेभ्योऽपि गरीयस्यो यूयं मे नात्र संशयः ॥२४०॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र तस्थौ सूर्यसुतातटे । तस्थुर्गोपालिकाः सर्वा वीक्ष्य कृष्णं पुनः पुनः ॥२४१॥
सर्वाः प्रहृष्टवदनाः सस्मिता वक्रलोचनाः । प्रीत्या चक्षुश्चकोराभ्यां मुखचन्द्रं पपुर्हरेः ॥२४२॥
ताः शीघ्रं प्रययुर्गेहं जयं दत्त्वा पुनः पुनः । हरिश्च शिशुभिः सार्धं प्रसन्नः स्वालयं ययौ ॥२४३॥
इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमङ्गलम् । गोपीनां वस्त्रहरणं सर्वलोकसुखावहम् ॥२४४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० गोपिकावस्त्रहरणप्रस्तावो
नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

को मालती माला प्रदान की ॥२३५॥ फिर गोपिकापति कृष्ण ने हँसकर अन्य गोपियों को पुष्प तथा मालाओं का समूह परमप्रीतिपूर्वक भेंट किया और कहा ॥२३६॥

श्रीकृष्ण बोले—तीन मास बीत जाने पर वृन्दावन के रमणीक रासमण्डल में तुम लोग मेरे साथ क्रीड़ा करोगी ॥२३७॥ जैसा मैं हूँ, वैसी ही तुम हो। हम में तुम में कोई भेद वेद में नहीं सुना गया है। मैं तुम लोगों का प्राण हूँ और तुम लोग मुझ प्रभु के प्राण हो ॥२३८॥ प्रियागण ! यह तुम्हारा व्रत स्वार्थ के लिए नहीं, अपितु लोकरक्षार्थ हुआ है—गोलोक से तुम लोग मेरे साथ आये हो। और फिर मेरे साथ ही तुम्हें वहाँ जाना है ॥२३९॥ अब शीघ्र अपने घर जाओ। मैं जन्म-जन्म में तुम्हारा ही हूँ। तुम मेरे लिए प्राणों से बढ़ कर हो, इसमें सन्देह नहीं है ॥२४०॥ इतना कहकर श्रीकृष्ण वहीं यमुना-तट पर बैठ गये और गोपियाँ भी भगवान् को बार-बार देखकर बैठ गईं ॥२४१॥ सभी गोपियाँ प्रसन्नमुख, मुसकराती हुईं और तिरछी चितवन डालती हुईं अपने नेत्र चकोरों द्वारा भगवान् के मुखचन्द्र को प्रेम से पीने लगीं ॥२४२॥ अनन्तर भगवान् की बार-बार जय बोलकर वे गोपियाँ शीघ्र अपने-अपने घर चली गयीं और भगवान् भी बालकों के साथ प्रसन्न होकर अपने घर लौटे ॥२४३॥ इस प्रकार मैंने भगवान् का सम्पूर्ण मंगल चरित कह दिया। गोपियों का वस्त्रहरण-प्रसंग सभी लोगों के लिए सुखदायक है ।२४४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में गोपियों के वस्त्रहरण प्रस्ताव
नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२७॥

---

[1] चकोऽहं ।

अष्टाविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

त्रिषु मासेष्वतीतेषु तासधं च हरिणा सह। वद केन प्रकारेण बभूव [1]तनुसंगमः ॥१॥
वृन्दावनं किंप्रकारं किंविधं रासमण्डलम् । हरिरेकस्ताश्च बह्व्यः केन क्रीडा बभूव ह ॥२॥
कुतूहलं भवति म इदं श्रोतुं नवं नवम् । कथयस्व महाभाग पुण्यश्रवणकीर्तन ॥३॥
कथा पुराणसाराणां रासयात्रा हरेरहो । हरिलीलाः पृथिव्यां तु सर्वाः श्रुतिमनोहराः ॥४॥

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा ऋषिर्नारायणः स्वयम् । प्रहस्य सुप्रसन्नास्यः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥५॥

नारायण उवाच

एकदा श्रीहरिर्नक्तं वनं वृन्दावनं ययौ । शुभे शुक्लत्रयोदश्यां पूर्णे चन्द्रोदये मुने ॥६॥
यूथिकामालतीकुन्दमाधवीपुष्पवायुना । वासितं कलनादेन मधुभ्राणां मनोहरम् ॥७॥

अध्याय २८

रासलीला-प्रस्ताव

नारद बोले—तीन मास व्यतीत होने पर उन गोपियों का समागम श्रीकृष्ण के साथ किस प्रकार हुआ, वह बता दें ॥१॥ वह वृन्दावन किस प्रकार का है और रासमण्डल का क्या स्वरूप है ? श्रीकृष्ण तो एक थे और गोपियां अनेक । फिर रासक्रीड़ा कैसे संभव हुइं ॥२॥ महाभाग ! आपके नाम का श्रवण और कीर्तन पवित्र है। यह नया-नया विषय सुनने के लिए मुझे कुतूहल हो रहा है, कहिए ॥३॥ अहो ! हरि की रासलीला पुराणों के तत्त्वों की कथा है। पृथिवी पर (की गइं) हरि की सभी लीलायें सुनने में मनोहर हैं ॥४॥

सूत बोले—नारद की बात सुनकर स्वयं नारायण ऋषि प्रसन्नमुख हो हँसकर कहने लगे ॥५॥

नारायण बोले—मुने ! एक दिन श्रीकृष्ण चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि को पूर्णचन्द्रोदय होने के पश्चात् वृन्दावन गये ॥६॥ उस समय वन जूही, मालती, कुन्द और माधवी लता के पुष्पों से सम्पृक्त

---

[1] क. नव° ।

नवपल्लवसंयुक्तं पुंस्कोकिलरुतश्रुतम् । नवलक्षरासवाससंयुक्तं सुमनोहरम् ॥८॥
चन्दनागुरुकस्तुरीकुङ्कुमेन सुवासितम् । कर्पूरान्विततताम्बूलभोगद्रव्यसमन्वितम् ॥९॥
प्रसूनैश्चम्पकानां च कस्तूरीचन्दनान्वितैः। रतियोग्यैर्विरचितैर्नानातल्पैः सुशोभितम् ॥१०॥
दीप्तं रत्नप्रदीपैश्च धूपेन सुरभीकृतम् । नानापुष्पैश्च रचितं मालाजालैर्विराजितम् ॥११॥
परितो वर्तुलाकारं तत्रैव रासमण्डलम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन सुसंस्कृतम् ॥१२॥
पुष्पोद्यानैः पुष्पितैश्च युक्तं क्रीडासरोवरैः। हंसकारण्डवाकीर्णैर्जलकुक्कुटकूजितैः ॥१३॥
क्रीडनीयैः सुन्दरैश्च सुरतश्रमहारिभिः । शुद्धस्फटिकसंकाशतोयपूर्णैः सुनिर्मलैः ॥१४॥
दधिपूर्णशुक्लधान्यलाजैर्निर्मञ्छनीकृतम्[1] । रम्भास्तम्भसमूहेन सुन्दरेण सुशोभितम् ॥१५॥
आम्रपल्लवयुक्तेन सूत्रबन्धेन चारुणा। भूषितं मङ्गलघटैः सिन्दूरचन्दनान्वितैः ॥१६॥
मालतीमाल्यसंयुक्तैर्नारिकेलफलान्वितैः । स रासमण्डलं दृष्ट्वा जहास मधुसूदनः ॥१७॥
चकार तत्र कुतुकाद्विनोदमुरलीरवम् । गोपीनां कामुकीनां च कामवर्धनकारणम् ॥१८॥
तच्छ्रुत्वा राधिका सद्यो मुमोह मदनातुरा। बभूव स्थाणुवद्देहा ध्यानैकतानमानसा ॥१९॥

वायु से सुवासित और भौंरों के मधुर गुञ्जार से अति मनोहर था ॥७॥ नवीन पल्लवों से संयुक्त, कोकिलों की ध्वनि से मुखरित तथा नौ लाख रास-गृहों से युक्त होने के कारण वृन्दावन और भी मनोहर लग रहा था। ॥८॥ वह चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से सुवासित, कपूर युक्त ताम्बूल तथा भोग द्रव्य से समन्वित था ॥९॥ कस्तूरी एवं चन्दन से चर्चित तथा चम्पा के फूलों से युक्त, रति करने के योग्य सुन्दर शय्याओं से सुशोभित था। ॥१०॥ रत्नों के दीपकों से अत्यन्त प्रकाशित, धूपों से सुगन्धित, अनेक भाँति के पुष्पों से रचित तथा विविध मालाओं से विराजित था ॥११॥ वहीं सब ओर से गोलाकार रासमण्डल बनाया गया था। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से वहाँ संस्कार किया गया था ॥१२॥ वहाँ पुष्पित पुष्पोद्यान तथा क्रीडासरोवर थे, जिनमें हंस, बत्तख भरे पड़े थे, जलमुर्गियाँ कूज रही थीं ॥१३॥ शुद्ध स्फटिक की भाँति अति निर्मल जल उसमें लहरा रहा था। वे क्रीडा करने योग्य, सुन्दर और सुरत श्रम को हरण करने वाले थे ॥१४॥ उस रासमण्डल में दही, अक्षत और लावे छिड़के गये थे। सुन्दर कदली-स्तम्भों के समूह से वह सुशोभित था ॥१५॥ सूत में बँधे हुए आम के पल्लवों की मनोहर बन्दनवारों तथा सिन्दूर, चन्दनयुक्त मंगल-कलशों से उसको सजाया गया था। मंगल-कलशों के साथ मालती की मालायें और नारियल के फल भी थे। रासमण्डल को देखकर वे मधुसूदन हँस पड़े ॥१६-१७॥ उन्होंने कौतुकवश विनोद की साधनभूता मुरली को वहाँ बजाया, जो कामुक गोपियों के काम को बढ़ाने का कारण बना ॥१८॥ वह सुनकर राधिका तुरन्त कामातुर होकर सुध-बुध खो बैठीं। उनका शरीर ठूंठे काठ की तरह निश्चल तथा चित्त ध्यान में एकतान हो गया ॥१९॥ क्षण में चेतना

---

[1] ख. °बलै° ।

Funding by IKS-MoE

क्षणेन चेतनां प्राप्य पुनः शुश्राव सा ध्वनिम् । उत्तास सा समुत्तस्थौ समुद्विग्ना पुनः पुनः ॥२०॥
त्यक्त्वा चाऽऽवश्यकं कर्म निःससार द्रुतं गृहात् । ययौ तदनुसारेण प्रसमीक्ष्य चतुर्दिशम् ॥२१॥
ध्यायन्ती चरणाम्भोजं श्रीकृष्णस्य महात्मनः । तेजसा च द्योतयन्ती सद्रत्नसारभूषणैः ॥२२॥
बहिर्बभूवुस्तास्त्रस्ता रवेण हृतचेतनाः । कुलधर्मं परित्यज्य निःशङ्काः काममोहिताः ॥२३॥
त्रयस्त्रिंशद्वयस्याश्च ताः सुशीलादयः स्मृताः । राधिकायाः प्रियतमा गोपीनां प्रवरा ययुः ॥२४॥
तासां पश्चाद्ययुर्गोप्यस्तासां संख्यां निबोध मे । समा वेषेण वयसा रूपेण च गुणेन च ॥२५॥
ययुः सुशीलासङ्गेन सहस्राणि च षोडश । ययुश्चन्द्रमुखीपश्चात्सहस्राणि च [1]षोडश ॥२६॥
एकादश सहस्राणि माधव्याल्यश्च निर्ययुः । जग्मुः कदम्बमालाल्यः सहस्राणि त्रयोदश ॥२७॥
ययुः कुन्तीवयस्याश्च सहस्राणि दश स्मृताः । चतुर्दश सहस्राणि ययुस्ता यमुनानुगाः ॥२८॥
जाह्नवीसहचारिण्यः सहस्राणि ययुर्नव । ययुर्नव सहस्राणि पद्ममुख्याल्य एव च ॥२९॥
सावित्र्याल्यः पञ्चदश सहस्राणि ययुर्व्रजात् । पारिजातावयस्याश्च सहस्राणि ययुर्दश ॥३०॥
स्वयंप्रभानुगाः सप्त सहस्राणि ययुर्व्रजात् । ययुः सुधामुखीगोप्यः सहस्राणि चतुर्दश ॥३१॥
शुभानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश । पद्मानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश ॥३२॥

प्राप्त होने पर उन्हें पुनः वही ध्वनि सुनायी पड़ी । वे उठ कर खड़ी हो गयीं । अब उन्हें बार-बार उद्वेग होने लगा, वे आवश्यक कर्म छोड़कर शीघ्र घर से निकल पड़ीं । चारों ओर देखकर वंशीध्वनि का अनुसरण करती हुई आगे बढ़ीं ॥२०-२१॥ वे महात्मा श्रीकृष्ण के चरणारविन्द का ध्यान करती हुई जा रही थीं । वे अपने तेज तथा उत्तम रत्नों के सार भाग से बने आभूषणों के तेज से प्रकाश फैला रही थीं ॥२२॥ उनकी सखियाँ भी मुरली की ध्वनि से डरकर सुध-बुध खो बैठीं । काममोहित गोपियों ने निःशंक होकर कुलधर्म का परित्याग कर दिया ॥२३॥ राधा की परम प्रिय तथा गोपियों में श्रेष्ठ तैंतीस सखियाँ सुशीला आदि नामों से प्रसिद्ध थीं, जो उनके साथ जा रही थीं ॥२४॥ उनके पीछे जो गोपियाँ गईं, उनकी संख्या मुझसे सुनो । वे सब वेश, अवस्था, रूप और गुण में एक जैसी थीं ॥२५॥ सुशीला के साथ सोलह सहस्र गोपियाँ जा रही थीं । फिर चन्द्रमुखी के पीछे सोलह सहस्र गोपियाँ जा रही थीं ॥२६॥ माधवी के साथ ग्यारह सहस्र सखियाँ निकल पड़ीं । कदम्बमाला के साथ तेरह सहस्र सखियाँ चल पड़ीं ॥२७॥ कुन्ती के दश सहस्र सखियाँ थीं । यमुना के पीछे चौदह सहस्र सखियाँ जा रही थीं ॥२८॥ जाह्नवी के साथ नव सहस्र तथा चन्द्रमुखी के साथ भी नव सहस्र सखियाँ चल रही थीं ॥२९॥ सावित्री के साथ पन्द्रह सहस्र सखियाँ व्रज से गईं । पारिजाता के साथ दश सहस्र जा रही थीं ॥३०॥ स्वयं-प्रभा के पीछे सात सहस्र सखियाँ व्रज से चल पड़ीं । सुधामुखी के साथ चौदह सहस्र थीं ॥३१॥ शुभा के साथ भी चौदह सहस्र गोपियाँ गईं । पद्मा के पीछे चौदह सहस्र गोपियाँ थीं ॥३२॥ गौरीपद्मा के साथ चौदह सहस्र और सर्व-

---

[1] क. त्रयोदश ।

[1]गौरीपश्चा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश । ययुः सर्वमङ्गलाल्यः सहस्राणि च षोडश ।।३३।।
कालिकाल्यो ययुर्गोप्यः सहस्राणि च[2] षोडश । निर्ययुः कमलाल्यश्च सहस्राणि त्रयोदश ।।३४।।
दुर्गानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि च षोडश । ययुः सरस्वतीपश्चात्सहस्राणि त्रयोदश ।।३५।।
प्रजग्मुर्भारतीपश्चात्सहस्राणि दश व्रजात् । अपर्णासहचारिण्यः सहस्राणि चतुर्दश ।।३६।।
रतिपश्चाद्वयस्याश्च सहस्राणि [3]ययुर्दश । गङ्गावयस्याः प्रययुः सहस्राणि चतुर्दश ।।३७।।
प्रजग्मुरम्बिकापश्चात्सहस्राणि च षोडश । सतीपश्चाद्ययुर्गोप्यः सहस्राणि त्रयोदश ।।३८।।
नन्दिनीसहचारिण्यः सहस्राणि ययुर्दश । प्रययुः सुन्दरीपश्चात्सहस्राणि त्रयोदश ।।३९।।
ययुः कृष्णप्रियापश्चात्सहस्राणि च षोडश । ययुर्मधुमतीपश्चात्सहस्राणि च[4] षोडश ।।४०।।
ययुश्चम्पानुगा गोप्यः सहस्राणि त्रयोदश । चन्दनाल्यो ययुः पश्चात्सहस्राणि च[5] षोडश ।।४१।।
सर्वा बभूवुरेकत्र तत्र तस्थुः पलं मुदा । तत्राऽऽययुर्गोपिकाश्च मालाहस्ताश्च काश्चन ।।४२।।
चारुचन्दनहस्ताश्च काश्चित्तत्राऽऽययुर्व्रजात् । श्वेतचामरहस्ताश्च काश्चित्तत्राऽऽययुर्मुदा ।।४३।।
तत्राऽऽययुर्गोपकन्याः काश्चित्कस्तूरिकाकराः । तत्राऽऽययुर्गोपकन्याः काश्चित्कुङ्कुमवाहिकाः ।।४४।।
काश्चित्तत्राऽऽययुर्गोप्यस्ताम्बूलपात्रवाहिकाः । यावत्काञ्चनवस्त्राणां वाहिका गोपकन्यकाः ।।४५।।

मङ्गला की सोलह सहस्र सखियाँ थीं ।।३३ कालिका की सोलह सहस्र तथा कमला की तेरह सहस्र सखियाँ थीं ।।३४।। दुर्गा के पीछे सोलह सहस्र गोपियाँ गईं और सरस्वती के पीछे तेरह सहस्र ।।३५।। भारती के पीछे दश सहस्र गोपियाँ व्रज से गईं । अपर्णा के साथ जाने वाली चौदह सहस्र गोपियाँ थीं ।।३६।। रति के पीछे दश सहस्र गईं और गङ्गा के साथ चौदह सहस्र ।।३७।। अम्बिका के पीछे सोलह सहस्र गईं और सती के पीछे तेरह सहस्र गोपियाँ थीं ।।३८।। नन्दिनी के साथ चलने वाली दश सहस्र गोपियाँ थीं और सुन्दरी के पीछे तेरह सहस्र जा रही थीं ।।३९।। कृष्णप्रिया के पीछे सोलह सहस्र और मधुमती के पीछे भी सोलह सहस्र ही गईं ।।४०।। चम्पा का अनुगमन करने वाली तेरह हजार गोपियाँ थीं और चन्दना की सखियाँ सोलह हजार ।।४१।। वे सब एकत्र होकर कुछ देर तक प्रसन्नतापूर्वक खड़ी रहीं । वहाँ कुछ गोपियाँ अपने हाथों में माला लिये आयी थीं ।।४२।। कुछ गोपांगनायें व्रज से मनोहर चन्दन हाथ में लेकर पहुँची थीं । कई तो हाथों में श्वेत चँवर लेकर हर्ष से वहाँ आयी थीं ।।४३।। कुछ गोपियाँ हाथ में कस्तूरी लेकर वहाँ आयी थीं । कुछ गोप-कन्यायें केसर लेकर आयी थीं ।।४४।। कुछ गोपियाँ ताम्बूल-पात्र तथा काञ्चन, वस्त्र लिये आयी थीं ।।४५।। कुछ शीघ्रता

---

१ क. चतुर्दश । २ क. चतुर्दश° । ३ क. चतुर्दश । ४ क. चतुर्दश । ५ क. चतुर्दश ।

काश्चित्तत्राऽऽययुः शीघ्रं यत्र चन्द्रावली मुदा । सर्वाश्चैकत्र संभूय सस्मिताश्च मुदाऽन्विता. ॥४६॥
विधाय- राधिकावेषं स्थानाश्च प्रययुर्मुदा । चक्रुः पुनः पुनस्ताश्च हरिशब्दजपं पथि ॥४७॥
प्रापुर्वृन्दावनं रम्यं ददृशू रासमण्डलम् । स्वर्गेभ्यः सुन्दरं दृश्यं राकापतिकरान्वितम् ॥४८॥
सुनिर्जनं कुसुमितं वासितं पुष्पवायुना । नारीणां कामजननं मुनिमोहनकारणम् ॥४९॥
शुश्रुवुस्तत्र ताः सर्वाः पुंस्कोकिलकलध्वनिम् । अतिसूक्ष्मकलं चापि भ्रमराणां मनोहरम् ॥५०॥
प्रसूनमधुमत्तानां भ्रमरीसङ्गसङ्गिनाम् । शुभे क्षणे प्रविवेश राधिका रासमण्डलम् ॥५१॥
सर्वाभिरालिभिः सार्धं ध्यात्वा कृष्णपदाम्बुजम् । राधामारात्तु संवीक्ष्य कृष्णस्तत्र मुदाऽन्वितः ॥५२॥
जगामानुव्रजन्प्रीत्या सस्मितो मदनातुरः । मध्यस्थां सखिसंघानां रत्नालंकारभूषिताम् ॥५३॥
दिव्यवस्त्रपरीधावां सस्मितां वक्रलोचनाम् । गजेन्द्रगामिनीं रम्यां मुनिमानसमोहिनीम् ॥५४॥
नवीनवेषवयसा रूपेणातिमनोहराम् । तल (स्तन) श्रोणिनितम्बानां भारशेषान्वितां पराम् ॥
चारुचम्पकवर्णाभां शरच्चन्द्रनिभाननाम् । बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् ॥५५॥
राधा ददर्श श्रीकृष्णं किशोरं श्यामसुन्दरम् । नवयौवनसंपन्नं रत्नाभरणभूषितम् ॥५६॥

पूर्वक उस स्थान पर आयीं, जहाँ चन्द्रावली (राधा) सानन्द खड़ी थीं। वे सब एकत्र हो, प्रसन्नतापूर्वक मुसकराती हुईं वहाँ राधा की वेश-भूषा सँवार कर बड़े हर्ष के साथ आगे बढीं । मार्ग में वे बार-बार हरि नाम का जप करती हुई वे बृन्दावन पहुँची और वहाँ रमणीक रासमण्डल देखा जहाँ का दृश्य चन्द्र-किरणों से युक्त होकर स्वर्ग से भी सुन्दर था ॥४६-४८॥ वह अत्यन्त निर्जन, पुष्पित, विकसित पुष्प-वायु से सुवासित, नारियों के काम को जगाने वाला, मुनियों को भी मोहित करने वाला था ॥४९॥ वहाँ उन सबों को कोकिल की मधुर ध्वनि सुनायी पड़ी। भौरों का अतिसूक्ष्म और मधुर गुञ्जार भी मनोहर जान पड़ता था ॥५०॥ वे भ्रमर भ्रमरियों के साथ रहकर पुष्पों का मकरन्द-पान करके मतवाले हो गये थे। शुभ-मुहूर्त में राधिका ने समस्त सखियों के साथ श्रीकृष्ण के चरण-कमल का ध्यान करके रासमण्डल में प्रवेश किया । वे राधा को अपने सन्निकट देख कर बड़े प्रसन्न हुए ॥५१-५२॥ वे कामातुर होकर मुसकराते हुए बड़े प्रेम से उनके पीछे-पीछे चलने लगे। राधा सखियों के मध्य में रत्नों के अलङ्कारों से भूषित तथा दिव्यवस्त्र पहने हुई थीं । वे मुसकराती हुईं बाँकी चितवन से प्रियतम को देखती हुईं गजराज की भाँति मन्दगति से चल रही थीं। रमणीय राधा मुनियों के चित्त को भी मोहित करने वाली थीं ॥५३-५४॥ वे नूतन वेष, नवीन अवस्था तथा रम्य से अति मनोहर जान पड़ती थीं। स्तन, श्रोणी तथा नितम्बों के भार से अलसायी हुई, सुन्दर चम्पा के समान अंग-कान्ति वाली, शारदीय चन्द्रमा के समान मुख वाली और मालती माला से युक्त वेणी का भार वहन करने वाली राधा ने किशोरावस्था से युक्त श्यामसुन्दर कृष्ण को देखा। वे नवीन यौवन से सम्पन्न, रत्नों के भूषणों से भूषित तथा करोड़ों कामदेवों

कन्दर्पकोटिलावण्यलीलाधाम मनोहरम् । प्राणाधिकां तां पश्यन्तं पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा ॥५७॥
परमाद्भुतरूपं च सर्वत्रानुपमं परम् । विचित्रवेषं चूडां च बिभ्रतं सस्मितं मुदा ॥५८॥
वक्रलोचनकोणेन दर्शं दर्शं पुनः पुनः । मुखमाच्छादयाञ्चक्रे व्रीडया सस्मिता सती ॥५९॥
मूर्च्छामवाप सा सद्यः कामबाणप्रपीडिता । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी बभूव हतचेतना ॥६०॥
कटाक्षकामबाणैश्च विद्धः क्रीडारसोन्मुखः । मूर्च्छां प्राप्य न पपात तस्थौ स्थाणुसमो हरिः ॥६१॥
पपात मुरली तस्य क्रीडाकमलमुज्ज्वलम् । द्वितीयं पीतवस्त्रं च शिखिपिच्छं शरीरतः ॥६२॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य ययौ राधान्तिकं मुदा । कृत्वा वक्षसि तां प्रीत्या समाश्लिष्य चुचुम्ब सः ॥६३॥
श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण संप्राप्य चेतनां सती । प्राणाधिकं प्राणनाथं समाश्लिष्य चुचुम्ब ह ॥६४॥
मनो जहार राधायाः कृष्णस्तस्य च सा मुने । जगाम राधया सार्धं रसिको रतिमन्दिरम् ॥६५॥
रत्नप्रदीपसंयुक्तं रत्नदर्पणसंयुतम् । चारुचम्पकशय्याभिश्चन्दनाक्ताभी राजितम् ॥६६॥
कर्पूरान्विततताम्बूलैर्भोगद्रव्यैः समन्वितम् । उवास राधया सार्धं कृष्णस्तत्र मुदाऽन्वितः ॥६७॥
राधया दत्तताम्बूलं चखाद मधुसूदनः । रासेश्वरी कृष्णदत्तं ताम्बूलं बुभुजे मुदा ॥६८॥

की लावण्यलीला के मनोहर लीलाधाम थे। वे बाँके नयनों से उनकी ओर निहारती हुई उन प्राणाधिका राधिका को देख रहे थे ॥५५-५७॥ उनके परम अद्भुत रूप की कहीं उपमा नहीं थी। वे विचित्र वेश तथा मुकुट धारण किये सानन्द मुसकरा रहे थे ॥५८॥ बाँके नेत्रों के कोण से बार-बार प्रियतम की ओर देख-देख कर सती राधा लज्जावश मुख को आँचल से ढक लिया ॥५९॥ वे तुरन्त कामबाण से अत्यन्त पीड़ित होने के कारण मूर्च्छित हो गईं। उनके सारे अंग पुलकित हो उठे, वे सुध-बुध खो बैठीं ॥६०॥ क्रीड़ा रस के लिए तैयार हरि कटाक्षों और कामबाणों से आहत होने से मूर्च्छा प्राप्त करके भी गिरे नहीं, बल्कि ठूठ काठ के समान स्थित रहे ॥६१॥ उनके हाथ से मुरली गिर गयी, उज्ज्वल क्रीड़ा कमल भी गिर पड़ा और उनके शरीर से द्वितीय पीताम्बर एवं मोरपंख खिसक गये ॥६२॥ क्षण में चेतना पाकर वे प्रेम से राधिका के समीप गये और उन्हें अपने हृदय से लगाकर प्रेम से आलिङ्गन करके चुम्बन लिया ॥६३॥ श्रीकृष्ण के स्पर्श मात्र से चेतना प्राप्त करके सती राधा ने भी अधिक प्रियतम का गाढालिंगन करके चुम्बन लिया ॥६४॥ कृष्ण ने राधा के मन को चुरा लिया और राधा ने कृष्ण के मन को। अनन्तर रसिक हरि राधा के साथ रति-मन्दिर में गये ॥६५॥ वहाँ रत्न के दीपक जल रहे थे और दर्पण रखे थे। रति-मन्दिर चन्दन-चर्चित सुन्दर चम्पा पुष्पों की शय्याओं से विराजमान था ॥६६॥ वह कर्पूरयुक्त ताम्बूल एवं भोगपदार्थों से समन्वित था। वहाँ श्रीकृष्ण राधा के साथ बैठ गये ॥६७.। राधा के दिये हुए पान को मधुसूदन ने खाया और कृष्ण के दिये हुए पान को रासेश्वरी ने हर्ष से खाया ॥६८॥

दत्तं चर्विततताम्बूलं राधायै प्रभुणा मुदा । चखाद भक्त्या सा तूर्णं प्रहस्य मदनातुरा ॥६९॥
राधाचर्विततताम्बूलं ययाचे माधवो मुदा । न ददौ राधिका भीता पपात चरणाम्बुजे ॥७०॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सकामः सुरतोन्मुखः । सुष्वाप राधया सार्धं रतितल्पे मनोहरे ॥७१॥
शृङ्गाराष्टप्रकारं च विपरीतादिकं विभुः । नखदन्तकराणां च प्रहारं च यथोचितम् ॥७२॥
कामशास्त्रेषु यद्गोप्यं चुम्बनाष्टविधं परम् । कामिनीनां मनोहारि चकार रसिकेश्वरः ॥७३॥
अङ्गैरङ्गानि प्रत्यङ्गैः प्रत्यङ्गानि स्मरातुरः । चकाराऽऽश्लेषणं तत्र कामुकीनां सुखावहम् ॥७४॥
शृङ्गारकुशलौ तौ तु कामशास्त्रसुपण्डितौ । रतियुद्धविरामश्च न बभूव द्वयोरपि ॥७५॥
एवं गृहे गृहे रम्ये नानामूर्तिं विधाय च । रेमे गोपाङ्गनाभिश्च सुरम्ये रासमण्डले ॥७६॥
अभ्यन्तरे रतिं कृत्वा बहिः क्रीडां चकार ह । गोपीगोपसमाश्लिष्टः सर्वत्र रासमण्डले ॥७७॥
गोपीनां नव लक्षाणि गोपानां च तथैव च । लक्षाण्यष्टादश मुने युक्तानि रासमण्डले ॥७८॥
मुक्तकेशानि नग्नानि विच्छिन्नभूषणानि च । वेषोच्छिन्नानि मत्तानि मूर्च्छितानि स्मरेण च ॥७९॥
कङ्कणानां किङ्किणीनां वलयानां च नारद । सद्रत्ननूपुराणां च शब्दयुक्तानि संततम् ॥८०॥
एवं कृत्वा स्थलक्रीडां युयुस्तानि जलं मुदा । कृत्वा तत्र चिरं क्रीडां परिश्रान्तानि सांप्रतम् ॥८१॥
तूर्णं जलात्समुत्थाय वासांसि परिधाय च । ददृशुर्मुखपद्मानि सद्रत्नदर्पणेषु च ॥८२॥

भगवान् ने आनन्दवश अपना चबाया हुआ पान राधा को दिया, जिसे मदनातुरा रासेश्वरी ने हँसकर भक्तिपूर्वक शीघ्र खा लिया ॥६९॥ फिर राधा के चबाये हुए पान को माधव ने हर्ष से माँगा किन्तु राधा ने नहीं दिया, अपितु वे भयभीत होकर उनके चरण-कमल पर गिर पड़ीं ॥७०॥ इस बीच रति करने के लिए उद्यत सकाम कृष्ण राधा के मनोहर रति-शय्या पर लेट गये ॥७१॥ भगवान् ने विपरीत आदि आठ प्रकार के शृङ्गारों का उपभोग किया––नखों, दाँतों और हाथों से यथोचित प्रहार किया ॥७२॥ कामशास्त्रों में कामिनियों के मन को हरण करने वाले जो गोपनीय आठ प्रकार के चुम्बन बताये गये हैं, उन सब को रसिकेश्वर ने किया ॥७३॥ कामातुर हरि ने राधिका के अङ्ग-प्रत्यङ्गों से अपने अंग-प्रत्यंगों को सटाकर कामुकी स्त्रियों के लिए सुखप्रद आलिंगन किया ॥७४॥ वे दोनों शृङ्गार-निपुण और काम-शास्त्र के उत्तम पण्डित थे, अतएव दोनों का रतियुद्ध विराम नहीं ले रहा था ॥७५॥ इसी प्रकार प्रत्येक रमणीय गृह में अनेक शरीर बनाकर हरि ने अत्यन्त रमणीय रासमण्डल में गोपियों के साथ रमण किया ॥७६॥ भीतर (गृह में) रति करके हरि ने बाहर क्रीड़ा की । वे रासमण्डल मेंसर्वत्र गोपियों से आलिंगनबद्ध रहे ॥७७॥ मुने ! उस रासमण्डल में नौ लाख गोपियों और नौ लाख गोपों को मिलाकर अठारह लाख व्यक्ति थे ॥७८॥ वे लोग खुले केश, नग्न, टूटे आभूषण, उच्छिन्न वेश, मतवाले तथा काम से मूर्च्छित हो गये थे ॥७९॥ नारद ! उनके कङ्कणों, किंकिणियों, चूड़ियों तथा उत्तम रत्नों के बने नूपुरों की सतत ध्वनि हो रही थी ॥८०॥ इस प्रकार स्थल-क्रीड़ा करके वे लोग जल में गये । वहाँ चिरकाल तक क्रीड़ा करके थक गये ॥८१॥ तब शीघ्र जल से निकल कर, वस्त्र पहनकर उत्तम

चन्दनागुरुकस्तूरीद्रव्याणि पुष्पमालिकाः । मुदा परिदधुस्तानि संप्रापुश्चेतनानि च ॥८३॥
सकर्पूरं च ताम्बूलं भुक्त्वा सर्वाणि कौतुकात् । ददृशुर्मुखपद्मानि[1] सद्रत्ने दर्पणेऽमले ॥८४॥
काचित्कामातुरा कृष्णं बलादाकृष्य कौतुकात् । हस्ताद्वंशीं निजग्राह वसनं च चकर्ष ह ॥८५॥
काचित्कामप्रमत्ता च नग्नं कृत्वा तु माधवम् । निजग्राह पीतवस्त्रं परिहस्य पुनर्ददौ ॥८६॥
युक्तिं शृण्वित्येवमुक्त्वा काचित्संगृह्य स्वामिनम् । चुचुम्ब गण्डे बिम्बोष्ठे समाश्लिष्य पुनः पुनः ॥८७॥
सस्मितं सकटाक्षं च मुखचन्द्रं स्तनोन्नतम् । काचिच्छ्रोणीं सुललितां दर्शयामास कामतः ॥८८॥
काचित्कान्तं करे कृत्वा संप्राप्य श्रोणिदेशतः । चकार चूडानिर्माणं मालतीमाल्यसंयुतम् ॥८९॥
काचिच्चूडां समाकृष्य मयूरपिच्छकं ददौ । गुञ्जामाल्यं च चूडायां वेष्टयामास काचन ॥९०॥
प्रददौ स्वामिने कामात्प्रेमवर्धनहेतवे । काचित्कांचित्समाकृष्य नग्नां कृत्वा तु कामतः ॥९१॥
प्रेषयामास कृष्णस्य क्रोडे चन्दनचर्चिते । ननृतुश्च जगुः काश्चित्कान्तं कृत्वा तु कामतः ॥९२॥
नर्तनं कारयामास तं च काचिद्बलेन च । कृष्णश्च वस्त्रं कस्याश्च विचकर्ष कुतूहलात् ॥९३॥
कांचित्कृत्वा तु नग्नां च कस्यैचिदंशुकं ददौ । कृष्णो राधां समाकृष्य वासयामास वक्षसि ॥९४॥
तस्याश्च कबरीं रम्यां सुनिर्माणं चकार ह । सिन्दूरं च ददौ भाले कस्तूरीं बिन्दुभिः सह ॥९५॥

रत्नों के दर्पणों में अपने-अपने मुख कमल को देखने लगे ॥८२॥ उपरान्त चन्दन, अगुरु तथा कस्तूरी द्रव्य और पुष्पमालायें धारण कर चेतना प्राप्त की ॥८३॥ अनन्तर सभी गोपियाँ कौतुकवश कपूँर सहित ताम्बूल खाकर उत्तम रत्नों के बने निर्मल दर्पण में मुखकमलों को देखने लगीं ॥८४॥ कोई कामातुर गोपी कौतुकवश कृष्ण को बलपूर्वक खींचकर हाथ से वंशी छीनकर वस्त्र खींचने लगी ।८५॥ काम से मतवाली किसी गोपी ने माधव को नग्न करके उनका पीताम्बर ले लिया और परिहास करके उनका वस्त्र पुनः लौटा दिया ॥८६॥ 'एक युक्ति सुनो'—ऐसा कहकर किसी गोपी ने स्वामी को पकड़कर उनके गाल को तथा बिम्बफल के समान (लाल) ओष्ठ को चूम लिया तथा बार-बार आलिंगन किया ॥८७॥ कोई मुसकान तथा कटाक्ष के साथ (अपना) उन्नत उरोज तथा सुललित नितम्ब दिखाने लगी ॥८८॥ कोई स्वामी को हाथ से पकड़कर अपनी श्रोणी पर बैठाकर मालती माला द्वारा उनकी चूड़ा बनाने लगी ॥८९॥ किसी ने उनकी चूड़ा खींचकर उसमें मोरपंख लगा दिया । किसी ने उनकी चूड़ा में गुञ्जा की माला लपेट दी ॥९०॥ किसी ने प्रेम बढ़ाने के लिए कामवश स्वामी को दिया । किसी ने किसी (गोपी) को खींचकर कामवश नग्न करके कृष्ण के चन्दन-चर्चित गोद में भेज दिया । कोई कामवश कान्त को आगे करके नाचने और गाने लगी ॥९१-९२॥ कोई कृष्ण को भी बलपूर्वक नचाने लगी । कुतूहलवश कृष्ण ने भी किसी गोपी का वस्त्र खींच लिया और किसी को नग्न करके उसका वस्त्र किसी दूसरी को दे दिया । फिर कृष्ण ने राधा को खींचकर छाती पर बैठा लिया ॥९३-९४॥ उनके केश-पाश को सँवाकर

---

[1] क. °चन्द्रांश्च

अतिसूक्ष्मं चन्दनेन्दुं कौतुकात्तदधो ददौ । पत्रावलीं सुललितां सुकपोले चकार ह ॥९६॥
वह्निशुद्धांशुकं चारु परिधार्य प्रयत्नतः । पदोः सद्रत्नमञ्जीरे गृहीत्वा चरणाम्बुजे ॥९७॥
नखनिर्मार्जनं कृत्वा सुन्दरं यावकं ददौ । भूषणैर्भूषितां कृत्वा संप्रलिप्यानुलेपनैः ॥९८॥
दत्त्वा च मालतीमालां चुचुम्ब च पुनः पुनः । चारुलोचनपद्मे च चकाराञ्जनसंयुते ॥९९॥
प्रददौ नासिकामध्ये दुर्लभं गजमौक्तिकम् । श्रोणिदेशे च स्तनयोर्नखच्छिद्रं चकार ह ॥१००॥
चकार दन्तदलनं पक्वबिम्बाधरे वरे । सरसश्च तटे रम्ये पुष्पोद्याने सुनिर्जने ॥१०१॥
कृत्वा क्रीडां पुनरपि जगाम रासमण्डलम् । रासेश्वरः पूर्णरासं चकार रासमण्डले ॥१०२॥
बहिश्चन्द्रोदये रम्ये पुष्पचन्दनचर्चिते । अगुरुचन्दनाक्तेन वायुना सुरभीकृते ॥१०३॥
भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रुते । बहुमूर्तीः संविधाय योगिनां परमो गुरुः ॥१०४॥
पुनश्चकार शृङ्गारं गोपीनां चित्तहारकः। किङ्किणां कङ्कणानां नूपुराणां च नारद ॥१०५॥
शृङ्गारोद्रेकतस्तत्र बभूव सुन्दरो रवः । मूर्च्छामवापुस्ताः सर्वा नवसंगममात्रतः ॥१०६॥
बभूवुरचलास्पन्दाः पुलकाञ्चितविग्रहाः। शृङ्गारविरते भूते संप्रापुश्चेतनां पुनः ॥१०७॥
नखदन्तप्रहारं च प्रचकार परस्परम् । कृष्णः कररुहाघातं ददौ तासां कुचोपरि ॥१०८॥
श्रोणिदेशे सुकठिने नखचिह्नं चकार ह । नीवी विस्रंसिता तासां कबरी क्षुद्रघण्टिकाः ॥१०९॥

चन्दन का अत्यन्त सूक्ष्म चन्द्रमा बना दिया, सुन्दर कपोल पर सुललित पत्र की रचना की ॥९६॥ अग्नि की भांति विशुद्ध वस्त्र प्रयत्नपूर्वक पहनाकर उनके चरणकमलों में उत्तम रत्नों के नूपुर पहनाये ॥९७॥ नखों को शुद्ध करके सुन्दर महावर लगाया। फिर भूषणों से भूषित करके चन्दन का लेप तथा मालती की माला देकर बार-बार चुम्बन किया। सुन्दर नेत्रकमल में अंजन लगामा ॥९८-९९॥ नासिका के मध्य में गजमुक्ता पहना दी। नितम्ब-प्रदेश और स्तनों पर नखच्छेदन किया ॥१००॥ उत्तम एवं पके बिम्ब के समान (लाल) अधर पर दाँत काटा। सरोवर के रमणीय तट पर अत्यन्त निर्जन पुष्पोद्यान में क्रीडा करके पुनः रासेश्वर (कृष्ण) रासमण्डल में गये और उन्होंने पूर्ण रास किया ॥१०१-१०२॥ रमणीय रासमण्डल के, जिसके बाहर चन्द्रोदय हो चुका था, पुष्प-चन्दन से चर्चित अगुरु और चन्दन से सम्पृक्त वायु से सुगन्धित भौंरों के गुंजार तथा कोयलों की कूक से युक्त होने पर योगियों के परम गुरु तथा गोपियों के चितचोर (कृष्ण) ने अनेक शरीर धारण करके पुनः श्रृङ्गार किया। नारद श्रृङ्गार के उद्रेक से घुघरुओं, कंकणों तथा नूपुरों की सुन्दर ध्वनि होने लगी और सभी गोपियाँ नवीन संगम मात्र से मूर्च्छित हो गईं ॥१०३-१०६॥ वे स्पन्दनरहित अचल हो गईं, शरीर में रोमाञ्च हो आया। श्रृङ्गार से विरत होने पर पुनः उनमें चेतना आयी ॥१०७॥ कृष्ण ने परस्पर नखों और दाँतों का प्रहार किया तथा उनके कुचों पर नाखूनों से आघात किया ॥१०८॥ कठोर नितम्ब पर नखचिह्न किया। उन गोपियों की नीवी तथा जूड़े की छोटी घंटियाँ ढीली पड़ गईं ॥१०९॥ सुन्दर वस्त्र तथा अत्यन्त मनोहर वेश अस्त-व्यस्त

दूरीभूतं सुवसनं सुवेषं सुमनोहरम् । आलिङ्गनं नदविधं चुम्बनाष्टविधं मुदा ॥११०॥
शृङ्गारं षोडशविधं चकार रसिकेश्वरः । अङ्गैरङ्गानि प्रत्यङ्गैः प्रत्यङ्गानि च योषिताम् ॥१११॥
चकाराऽऽलिङ्गनं प्रीत्या कामुकीनां च कामुकः । नारीणां षोडश कलाः शृङ्गारस्तत्प्रमाणकः ॥११२॥
कलाभेदेन तद्भेदं कामशास्त्रविदो विदुः । प्राकृतं द्वादशविधं चकार रसिकेश्वरः ॥११३॥
निरूपितं कामशास्त्रे चकारेशस्ततोऽधिकम् । क्रीडारम्भे च मध्ये च विरतौ कर्म योषिताम् ॥११४॥
प्रीत्यर्थमपि कर्तव्यं चकारेशस्ततोऽधिकम् । गोपीकंकणरेखाभिः पादालक्तकचिह्नितः ॥११५॥
शुशुभे कृष्णदेहश्च यथाऽद्रिर्गैरिकेण च । एवंभूते पूर्णरासे संभूते रासमण्डले ॥११६॥
समाजग्मुः सुराः सर्वे सकलत्राश्च सानुगाः । सुवर्णस्यन्दनस्थाश्च कौतुकात्स्वगणावृताः ॥११७॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गाः कामबाणप्रपीडिताः । ऋषयो मुनयश्चैव सिद्धाश्च पितरस्तथा ॥११८॥
विद्याधराश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः । सस्त्रीकाश्च समाजग्मुर्ददृशुश्च मुदाऽन्विताः ॥११९॥
दिव्यस्यन्दनमारुह्य शातकौम्भविनिर्मितम् । सुशोभितं च मणिना रत्नसारपरिच्छदम् ॥१२०॥
वह्निशुद्धांशुकेनैव वेष्टितं सुमनोहरम् । श्वेतचामरसंयुक्तं सद्रत्नचरणाम्बुजम्[1] ॥१२१॥
शतचक्रं चित्रयुक्तं मनोयायि मनोहरम् । सद्ररत्नसारनिर्माणकलशोज्ज्वलशेखरम् ॥१२२॥

हो गया। रसिकेश्वर (कृष्ण) ने हर्ष से उनका नौ प्रकार का आलिगन, आठ प्रकार का चुम्बन तथा सोलह प्रकार का श्रृङ्गार किया। स्त्रियों के अंगों से अपने अंगों को और प्रत्यंगों से अपने प्रत्यंगों को सटाकर कामुक ने कामुकियों का प्रेमपूर्वक आलिगन किया। नारियों की सोलह कलायें होती हैं और उसी प्रकार से शृंगार भी होता है ॥११०-११२॥ कलाभेद से उसके भेद को कामशास्त्र-वेत्ता जानते हैं। रसिकेश्वर ने बारह प्रकार का प्राकृत श्रृङ्गार किया ॥११३॥ कामशास्त्र में जो निरूपण किया गया है, उससे अधिक प्रभु ने किया। क्रीड़ा के आरंभ, मध्य और अन्त में स्त्रियों के प्रीत्यर्थ जितना (श्रृङ्गार) करना चाहिए, उससे भी अधिक प्रभु ने किया। गोपी के कंकण की रेखाओं और पैर के महावर से चिह्नित कृष्ण का शरीर उसी प्रकार सुशोभित हुआ जैसे गैरिक से पर्वत की शोभा होती है। इस प्रकार पूर्ण रास के होने पर रासमण्डल में अनुचरों और परिवारों के साथ सभी देवगण कौतुकवश पहुँचे। वे सोने के रथों पर आसीन तथा अपने गणों से घिरे थे ॥११४-११७॥ वे काम के बाणों से अत्यन्त पीड़ित तथा सर्वाङ्ग में रोमांचित हो गये थे। ऋषिगण, मुनिवृन्द, सिद्ध, पितर, विद्याधर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर लोग भी हर्षान्वित होकर वहाँ आये और देखने लगे ॥११८-११९॥ सुवर्णरचित रथ पर बैठकर पार्वती के साथ भगवान् शंकर भी वहाँ आये। वह रथ मणियों से भूषित, रत्नों के सारभाग के उपकरणों से युक्त, अग्नि विशुद्ध वस्त्रों से परिवेष्टित अत्यंत मनोहर, श्वेत चामर से संयुक्त तथा उत्तम रत्नों के बने चरणकमल से युक्त था। उसमें सौ चक्के लगे थे तथा अनेक चित्र थे। वह मन के समान चलने वाला था। उसका शिखर भाग उत्तम रत्नों के सार भाग के बने कलशों से समुज्ज्वल था। शंकर के वाम भाग में

---

[1] क. °णान्वितम्।

समाजगाम भगवान्पार्वत्या सह शंकरः। वामपार्श्वे महाकालो दक्षिणे नन्दिकेश्वरः ॥१२३॥
पुरतः कार्तिकेयश्च स्वयं देवो गणेश्वरः। पिङ्गलाक्षादयः सर्वे पार्षदाः परितस्तयोः ॥१२४॥
क्षेत्रपालादयः सर्वे तथाऽष्टौ भैरवेश्वराः। वक्षःस्थलस्थिता दुर्गा सस्मिता वक्रलोचना ॥१२५॥
भारत्या सह ब्रह्मा च शातकौम्भरथस्थितः। वामे सप्तर्षयस्तस्य दक्षिणे सनकादयः ॥१२६॥
सुवर्णस्यन्दनस्थश्च धर्मः साक्षी च कर्मणाम्। वक्षःस्थलस्थिता तस्य मूर्तिः स्मेरानना सती ॥१२७॥
पश्यन्ती पूर्णरासं च सकामा वक्रलोचना। परितः पार्षदाः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा ॥१२८॥
शच्या सह महेन्द्रश्च रोहिण्या च कलानिधिः। स्वाहासार्धं स्वयं वह्निः सूर्यश्च संज्ञया सह ॥१२९॥
समाजगाम कामश्च रतिं कृत्वा च वक्षसि। सर्वे ग्रहाश्च दिक्पाला आजग्मुः सकलत्रकाः ॥१३०॥
आकाशस्थाश्च ददृशुः सरासं रासमण्डलम्। केचिच्च मुमुहुस्तत्र मूर्च्छामापुश्च केचन ॥१३१॥
मुहूर्तं च सुराः सर्वे सस्मिताश्च मुदाऽन्विताः। चन्दनद्रववृष्टिं च पुष्पवृष्टिं च चिक्षिपुः ॥१३२॥
कस्तूरीयुक्तमाल्यानां वृष्टिं चक्रुर्मुनीश्वराः। रासं दृष्ट्वा देवपत्न्यः कामबाणप्रपीडिताः ॥१३३॥
स्थले रतिरसं कृत्वा जगाम यमुनाजलम्। राधया सह कृष्णश्च पूर्णब्रह्म सनातनः ॥१३४॥
गोपीभिः सह जग्मुश्च मायाः श्रीकृष्णरूपिकाः। प्रपीडिताः कामबाणैः क्रीडां चक्रुर्जले मुदा ॥१३५॥
जलं ददौ राधिकायै सकामो माधवः स्वयम्। ददौ सा च माधवाय कामार्तायाञ्जलित्रयम् ॥१३६॥

महाकाल थे और दक्षिण में नन्दिकेश्वर ॥१२०-१२३॥ सामने कार्तिकेय और स्वयं गणेश देव थे। उन दोनों के चारों तरफ सभी पिंगलाक्ष आदि पार्षदगण थे ॥१२४॥ सभी क्षेत्रपाल आदि और आठों भैरवेश्वर भी थे। मुसकराती हुई तिरछी चितवन वाली दुर्गा, शंकर के वक्षःस्थल पर स्थित थीं ॥१२५॥ भारती के साथ ब्रह्मा भी सुवर्ण के रथ पर अवस्थित थे। उनके बांयें भाग में सप्तर्षिगण और दाहिने भाग में सनकादि विराजमान थे ॥१२६॥ सुवर्ण के रथ पर कर्मों के साक्षी धर्म स्थित थे। उनके वक्षःस्थल पर मुसकराती हुई सती मूर्ति विराजमान थीं ॥१२७॥ वे कामातुर होकर पूर्णरास को देखती हुई तिरछी चितवन डाल रही थीं। धर्म के चारों ओर ब्रह्म तेज से प्रज्वलित पार्षद गण बैठे थे ॥१२८॥ (उसी प्रकार) इन्द्राणी के साथ इन्द्र, रोहिणी के साथ चन्द्रमा, स्वाहा के साथ अग्नि और संज्ञा के साथ सूर्य विराजमान थे ॥१२९॥ रति को वक्षःस्थल पर लिये कामदेव तथा सभी ग्रह एवं दिक्पाल लोग भी अपनी-अपनी पत्नी समेत आये ॥१३०॥ आकाश में स्थित होकर ये सभी लोग रासक्रीडा समेत रासमण्डल को देख रहे थे। वहां कुछ तो मोहित हो गये और कुछ को मूर्च्छा आ गयी ॥१३१॥ दो घड़ी तक हर्षान्वित होकर समस्त देवगण मुसकराते रहे और चन्दनद्रव तथा पुष्पों की वृष्टि भी करते रहे ॥१३२॥ मुनीश्वरों ने कस्तूरी युक्त मालाओं की वर्षा की। रास को देखकर देवों की पत्नियां कामवाण से अत्यन्त पीड़ित हो गयीं ॥१३३॥इधर पूर्ण ब्रह्म एवं सनातन कृष्ण ने स्थल पर रतिरस का आस्वादन कर लेने के बाद राधा के साथ यमुना-जल में प्रवेश किया ॥१३४॥ श्रीकृष्णरूपधारिणी माया गोपियों के साथ गईं। वे कामवाण से पीड़ित होने के कारण जल में सहर्ष क्रीड़ा करने लगीं ॥१३५॥ सकाम माधव ने स्वयं राधिका को जल दिया और राधिका ने काम-पीड़ित माधव को तीन अंजलि जल दिया ॥१३६॥

वस्त्रं जग्राह तस्याश्च सा च नग्ना बभूव ह । मालां चिच्छेद कबरीं चकार शिथिलां हरिः ॥१३७॥
सिन्दूरपत्रकं लुप्तं वेषं च जलताडनैः । भ्रूविचित्रमोष्ठरागं लुप्तं कज्जललोचनम् ॥१३८॥
तां च नग्नां समाश्लिष्य निममज्ज जले हरिः । प्रकृत्याभ्यन्तरे क्रीडां सुतस्थौ च तया सह ॥१३९॥
तां च नग्नां दर्शयित्वा गोपिकां क्रीडया[1] नताम् । सस्मितां प्रेरयामास दूरतो यमुनाजले ॥१४०॥
सा वेगेन समुत्थाय बलाज्जग्राह माधवम् । गृहीत्वा मुरलीं कोपात्प्रेरयामास दूरतः ॥१४१॥
गृहीत्वा पीतवसनं चकार तं दिगम्बरम् । वनमालां च चिच्छेद ददौ तोयं पुनः पुनः ॥१४२॥
हरिं पुनः समाकृष्य प्रेरयामास पाथसि । गभीरे स्रोतसि मुने निममज्ज जगत्पतिः ॥१४३॥
उत्थाय माधवः शीघ्रं तां गृहीत्वा प्रहस्य च । कृत्वा वक्षसि नग्नां च चुचुम्ब च पुनः पुनः ॥१४४॥
एवं ता मूर्तयः सर्वा गोपीभिः सह कौतुकात् । क्रीडां विचक्रुर्यमुनातीरनीरे मनोहरे ॥१४५॥
तीरं गत्वा तया सार्धं हरिर्नग्नश्च नग्नया । सा तं ययाचे वसनं स च तां सस्मितां सतीम् ॥१४६॥
राधिकायै ददौ वस्त्रं रम्यां मालां च माधवः । प्रददौ हरये वस्त्रं वंशीं रासेश्वरी मुदा[2] ॥१४७॥
चन्दनागुरुकस्तूरीं सर्वाङ्गे कुङ्कुमान्विताम् । कृष्णस्य परया भक्त्या ददौ श्रोणिस्थितस्य च ॥१४८॥
निर्माय चूडां ललितां कामिनीं चित्तमोहिनीम् । शोभनैर्मालतीमाल्यैश्चकार वेष्टनं पुनः ॥१४९॥

अनन्तर भगवान् ने राधिका का वस्त्र लेकर उन्हें नग्न कर दिया, माला तोड़ दी और केशपाश का बन्धन खोल दिया ॥१३७॥ उनके ऊपर इतना जल उछाला कि उनकी सिन्दूर-रचना और वेष लुप्त हो गया। भौंहें विचित्र हो गयीं, ओंठ का राग (रंग) एवं आँखों का काजल लुप्त हो गये ॥१३८॥ भगवान् नग्न राधिका का समालिङ्गन करके जल के नीचे चले गये। भीतर क्रीड़ा करके राधिका के साथ वहीं अवस्थित हो गये ॥१३९॥ क्रीड़ा से झुकी हुई तथा मुसकराती हुई नग्न गोपी (राधिका) को (जल में उनका स्वरूप) दिखाकर दूर यमुना-जल में ले गये। ॥१४०॥ राधिका ने भी बड़े वेग से उठकर कृष्ण को बलपूर्वक पकड़ लिया और उनकी मुरली छीनकर क्रोध से दूर तक खींच ले गयीं ॥१४१॥ उनका पीताम्बर छीनकर उन्हें नग्न कर दिया, उनकी वनमाला तोड़ दी और बार-बार उन पर जल उछालने लगीं ॥१४२॥ पुनः हरि को खींचकर (अधिक) जल में ले गयीं। मुने ! तब जगत्पति (कृष्ण) अथाह जल में डूब गये ॥१४३॥ फिर माधव ने शीघ्र उठकर राधा को पकड़ लिया और हँसकर नग्न राधिका को छाती से लगाकर बार-बार चुम्बन किया ॥१४४॥ इस प्रकार (कृष्ण की) उन सभी मूर्तियों ने गोपियों के साथ कौतुक वश मनोहर यमुना-तीर के नीर में क्रीड़ा की ॥१४५॥ अनन्तर नग्न कृष्ण नग्न राधिका के साथ तट पर गये। वहाँ राधा उनसे वस्त्र माँगने लगीं और वे मुसकराती हुई सती (राधा) से वस्त्र माँगने लगे ॥१४६॥ तब माधव ने राधिका को वस्त्र तथा रमणीय माला दी और रासेश्वरी ने हर्ष से वस्त्र और वंशी हरि को दी ॥१४७॥ और चन्दन, अगुरु तथा केसर युक्त कस्तूरी श्रोणिभाग पर बैठे श्रीकृष्ण के सर्वाङ्ग शरीर में लगाया ॥१४८॥ फिर कामिनियों के चित्त को

---

१ क. व्रीडयाऽन्विताम्। २ ख. तथा।

Funding by IKS-MoE

श्रीकृष्णो राधिकायाश्च कबरीं सुमनोहराम् । कृत्वा कुण्डलसंस्कारं निर्ममे पत्रकावलीम् ॥१५०॥
ददौ ललाटे सिन्दूरं कस्तूरीबिन्दुभिः सह । तदधश्चन्दनेन्दुं च सुसूक्ष्मं सुमनोहरम् ॥१५१॥
नखाङ्कं स्तनयोरूर्वोरुरस्येव घनं मुदा । दत्त्वा तां वासयामस वह्निशुद्धांशुकेन वै ॥१५२॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमानां द्रवेण सः । कृत्वा वक्षसि संलिप्य चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः ॥१५३॥
पुनराश्लेषणं कृत्वा ददौ मालां गले पुनः । भूषणैर्भूषितां कृत्वा मञ्जीरं चरणे ददौ ॥१५४॥
अलक्तकं चरणयोर्नखेषु च ददौ पुनः । एवं गोपश्च गोपीनां विदधौ च पृथक्पृथक् ॥१५५॥
पुनः प्रजग्मुस्ता मत्तः सुन्दरं रासमण्डलम् । पूर्णेन्दुचन्द्रिकायुक्तं रतियोग्यं सुनिर्जनम् ॥१५६॥
माधवीकेतकीकुन्दमालतीनां मनोहरैः । चम्पायूथीमल्लिकानां पुष्पैश्च सुरभीकृतम् ॥१५७॥
दृष्ट्वा च स्फुटितं पुष्पं चयनं कर्तुमीश्वरी । गोपीर्नियोजयामास कौतुकेन च राधिका ॥१५८॥
काश्चिन्नियोजयामास मालानिर्माणकर्मणि । काश्चित्ताम्बूलसज्जेषु काश्चिच्चन्दनघर्षणे ॥१५९॥
मालाचन्दनताम्बूलं गोपीदत्तं च सुन्दरी । ददौ कृष्णाय संप्रीत्या सस्मिता वक्रलोचना ॥१६०॥
काश्चिन्नियोजनं चक्रे कृष्णसंगीतकर्मणि । मृदङ्गमुरजादीनां वादनेषु च काश्चन ॥१६१॥

मोहित करने वाली सुन्दर चूड़ा बनाकर उसे सुन्दर मालती-माला से वेष्टित कर दिया ॥१४९॥ तदुपरांत श्रीकृष्ण ने भी राधिका का अति मनोहर जूड़ा बनाकर कुण्डलों के संस्कारपूर्वक उनके कपोल पर पत्रावली (कामकला) की रचना की ॥१५०॥ उनके भाल में कस्तूरी की बिन्दी समेत सिन्दूर लगाया और उसके नीचे अति सूक्ष्म और अत्यन्त मनोहर चन्दन-चन्द्रमा का निर्माण किया ॥१५१ उनके स्तनों, जंघाओं और छाती पर हर्ष से सघन नख-चिह्न बनाकर उन्हें अग्नि विशुद्ध वस्त्र पहनाया ॥१५२॥ चन्दन, अगरु, कस्तूरी और कुंकुम के द्रव से लेप लगाकर आपने वक्षःस्थल पर लेकर बार-बार चुम्बन किया ॥१५३॥ पुनः आलिङ्गन करके गले में माला पहना दी; फिर आभूषणों से भूषित करके चरणों में नूपुर दे दिया ॥१५४॥ उनके चरणों और नखों में पुनः आलता लगाया। इस प्रकार (भगवान् के रूपान्तर) गोपों ने सभी गोपियों को पृथक्-पृथक् सजाया ॥१५५॥ पुनः वे मतवाली गोपियाँ सुन्दर रास-मण्डल में पहुँचीं, जो (रासमण्डल) पूर्ण चाँदनी से युक्त रतिक्रीड़ा के योग्य और अत्यन्त निर्जन था ॥१५६॥ माधवी, केतकी, कुन्द, मालती, चम्पा, जूही एवं मल्लिका के मनोहर पुष्पों से वह (रासमण्डल) सुगन्धित था ॥१५७॥ वहाँ विकसित पुष्पों को देखकर स्वामिनी राधिका ने उसका संचयन करने के लिये गोपियों को नियुक्त किया ॥१५८॥ कुछ को माला गूथने में, कुछ को ताम्बूल लगाने में तथा कुछ को चन्दन घिसने में नियुक्त किया ॥१५९॥ तिरछी चितवन वाली तथा मुसकराने वाली सुन्दरी (राधिका) ने गोपी प्रदत्त माला, चन्दन और ताम्बूल कृष्ण को बड़े प्रेम से प्रदान किये ॥१६०॥ कुछ गोपियों को कृष्ण के साथ सङ्गीत में लगाया और कुछ को मृदङ्ग आदि वाद्यों को बजाने में ॥१६१॥ इस प्रकार रास-

Funding by IKS-MoE

एवं रासे रतिं कृत्वा लीलया हरिणा सह । विजहार च सर्वत्र निर्जनेषु मनोहरम् ॥१६२॥
पुष्पोद्यानेषु रम्येषु सरसां च तटेषु च । कन्दरे कन्दरे रम्ये नदेषु च नदीषु च ॥१६३॥
अतीव निर्जनस्थाने श्मशाने गिरिगह्वरे । वाञ्छितेषु च नारीणां त्रयस्त्रिंशद्वनेषु च ॥१६४॥
भाण्डीरे श्रीवने रम्ये कदम्बकानने तथा । तुलसीकानने कुन्दवने चम्पककानने ॥१६५॥
निम्बारण्ये मधुवने जम्बीरकानने तथा । नालिकेरवने पूगवने च कदलीवने ॥१६६॥
बदरीकानने बिल्ववने नारिङ्गकानने । अश्वत्थकानने वंशवने दाडिमकानने ॥१६७॥
मन्दारकानने तालवने चूतवने तथा । केतकीकाननेऽशोकवने खर्जूरकानने ॥१६८॥
आम्रातकवने जम्बूगहने शालकानने । कण्टके कानने पद्मवने जातिवने मुने ॥१६९॥
न्यग्रोधगहने घोरे श्रीखण्डकानने तथा । प्रहृष्टकेसरवने सर्वतोऽपि विलक्षणे ॥१७०॥
एवं रेमे कौतुकेन कामार्क्षिशद्दिवानिशम् । तथाऽपि मानसं पूर्णं न च किंचिद्बभूव ह ॥१७१॥
न कामिनीनां कामश्च श्रृङ्गारेण निवर्तते । अधिकं वर्धते शश्वद्यथाऽग्निर्घृतधारया ॥१७२॥
जग्मुर्देवाः स्वगेहं च देव्यश्च मुनयस्तथा । ते सर्वे प्रशशंसुश्च विस्मयं च ययुर्मुदा ॥१७३॥
गेहे गेहे नृपेन्द्राणां लेभिरे जन्म भारते । दग्धाः कामाग्निनांऽशेन देव्यः शृङ्गारलालसाः ॥१७४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० रासक्रीडाप्रस्तावो
नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

मण्डल में श्रीकृष्ण के साथ लीलापूर्वक रतिक्रीड़ा करके निर्जन स्थानों में सर्वत्र मनोहर विहार करने लगीं ॥१६२॥ (जैसे—-) रमणीक पुष्प वाटिकाओं, सरोवरों के तटों, कन्दराओं, रमणीय नदों, नदियों, अत्यन्त निर्जन स्थान, श्मशान, पहाड़ की गुफाओं एवं नारियों के अभीष्ट तैंतीस वनों—भाण्डीर वन, श्रीवन, रम्य कदम्ब वन, तुलसी वन, निम्बारण्य, मधुवन, जम्बीर कानन, नालिकेर वन, पूग वन, कदली वन, बदरी वन, विल्ववन, नारङ्गी वन, अश्वत्थ वन, वंश वन, अनार वन, मन्दार वन, ताल वन, आम्र वन, केतकी वन, अशोक वन, खजूर वन, आम्रातक वन, जम्बू वन, साखू वन, कंटक वन, कमल वन, चमेली वन, सघन वन, श्रीखण्ड वन और सब से विलक्षण एवं अति विकसित केसर वन में भ्रमण कर तीस दिनों तक दिन-रात कौतुक से रमण किया, तो भी मन नहीं भरा ॥१६३-१७१॥ कामिनियों का कामभाव श्रृङ्गार से नहीं अघाता, बल्कि निरन्तर बढ़ता ही रहता है, जैसे घृत की धारा से अग्नि ॥१७२॥ (रास देखकर) सभी देवगण; देवियाँ एवं मुनि वृन्द आश्चर्यचकित होकर रास की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने घर चले गये ॥१७३॥ कामाग्नि के अंश से दग्ध बहुत-सी देवांगनाओं ने (हरि के साथ) श्रृङ्गार की लालसा लेकर भारत में महाराजाओं के घर-घर में जन्म ग्रहण किया ॥१७४॥

श्रीब्रह्मवैवर्त्त महापुराण के श्रीकृष्ण जन्म-खण्ड में नारायण-नारद-संवाद में रासक्रीड़ा वर्णन नामक अठ्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥२८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

अथ गोपाङ्गनाः सर्वाः काममत्ततया मुने । अतिप्रौढाश्च मानिन्यो नेश्वरं मेनिरे पतिम् ॥१॥
काश्चिदूचुरहो कृष्णे सस्मिता वक्रलोचनाः । मालतीपुष्पमुत्तोल्य देहि मे मालिकामिति ॥२॥
काश्चिदूचुरये कृष्ण स्वक्रोडेऽस्मांश्च कुर्विति। गृहीत्वा श्रीहरेः स्कन्धमारुरोह च काचन ॥३॥
उवाच काचिद्दर्पेण प्रमत्ता प्राणवल्लभम् । स्वकीयपीतवसनं परिधापय मामिति ॥४॥
उवाच काचिदीशं तं सिन्दूरं देहि मामिति। उवाच काचित्प्राणेशं शीघ्रमागत्य सांप्रतम् ॥५॥
कृत्वा कुन्तलसंस्कारं कुरु मे कबरीमिति। काश्चित्संप्रेरयामासुः श्रीखण्डं वल्लवाय च ॥६॥
स्वाङ्गवेषविधायिन्यो भूषार्यं श्रुतिमूलयोः। उवाच काचित्कामेन परं संकेतपूर्वकम् ॥७॥
पश्यन्ती तन्मुखाम्भोजं सस्मिता मैथुनाय च। काचिज्जग्राह मुरलीं बलादाकृष्य माधवम् ॥८॥
जहार पीतवसनं कृत्वा नग्नं च कामिनी । कामिन्यः काश्चिदित्यूचुर्मानिन्यो मधुसूदनम् ॥९॥
अलक्तकद्रवं देहि पादयोर्नखरेषु च । उवाच काचित्प्रेम्णा तं गण्डयोः स्तनयोर्मम ॥१०॥

अध्याय २९

अष्टावक्र मुनि का मोक्ष

नारायण बोले—मुने ! काम से मतवाली होने के नाते उन सभी गोपियों ने, जो अत्यन्त प्रौढ़ा एवं मानिनी थीं, पति (श्रीकृष्ण) को ईश्वर नहीं माना ॥१॥ कुछ तिरछी चितवन वाली गोपियों ने मुसकराकर कृष्ण से कहा—‘मालती के फूलों को गूँथकर माला मुझे दो ॥२॥ कुछ ने कहा—‘अये कृष्ण ! हमें गोद में ले लो ।’ कोई कृष्ण का कन्धा पकड़कर (उस पर) चढ़ गई ॥३॥ किसी मतवाली (गोपी) ने प्राणवल्लभ कृष्ण से कहा—‘अपना पीताम्बर मुझे पहना दो ॥४॥ किसी ने प्रभु से कहा—‘मुझे सिन्दूर लगाओ ।’ कोई शीघ्रता से प्राणनाथ के समीप आकर बोली—‘अब मेरे बालों को सँवारकर जूड़ा बना दो ।’ अपने अंगवेष की रचना करानेवाली कुछ ने अपने दोनों कानों के भूषणार्थ वल्लव कृष्ण के पास चन्दन भिजवाया । कोई गोपी मन्दहास करती हुई कामवश कृष्ण से सम्भोग के लिए उनके मुखकमल की ओर देखती हुई संकेतपूर्वक बोली । किसी कामिनी ने माधव को बलपूर्वक खींचकर मुरली छीन ली । किसी कामिनी ने उन्हें नग्न करके पीताम्बर हरण कर लिया । कुछ मानिनी कामिनियों ने मधुसूदन से कहा—‘मेरे चरणों और नखों में महावर लगाओ ।’ कोई उनसे प्रेमपूर्वक बोली—‘मेरे स्तनों और कपोलों पर विचित्र चित्रों से सम्पन्न पत्रावली (कामकला) की रचना करो ।’ माधव उन

Funding by IKS-MoE

नानाचित्रविचित्राढ्यां कुरु पत्रावलीमिति। कृत्वाऽनुमानं मनसा दृष्ट्वा तासां प्रमत्तताम् ॥११॥
माधवो राधया सार्धमन्तर्धानं चकार ह। अतीवनिर्जने स्थाने मुदा स्वेच्छामयो विभुः ॥१२॥
कलामानप्रकारं च शृङ्गारं च चकार ह। पर्वते पर्वते रम्ये द्वीपे द्वीपे सुनिर्जने ॥१३॥
तटे तटे नदीनां च सर्वजन्तुविवर्जिते। श्रीगोष्ठे रत्नशैले च वेलागङ्गातटेऽपि च ॥१४॥
कालिन्दे च पुलिन्दे च मन्दिरे गन्धमादने। मनोहरे कुन्दवने कावेरीतीरनीरजे ॥१५॥
पुष्पभद्रापुलिनजे पुष्पोद्याने सुपुष्पिते। सर्वत्र रमणं कृत्वा राधावेशं विधाय च ॥१६॥
जगाम मलयद्रोणीं रम्यां चन्दनवायुना। शय्यां पुष्पमयीं कृत्वा तत्र रेमे तया सह ॥१७॥
अतीव सुखसंभोगान्मूर्छां संप्राप्य राधिका। कृत्वा वक्षसि गोविन्दं पुलकाञ्चितविग्रहा ॥१८॥
दृष्ट्वा तां मूर्छितां कृष्णो घनश्रोणिपयोधराम्। विलुप्तवेषां कामार्तां नग्नां शिथिलकुन्तलाम् ॥१९॥
चेतनां कारयामास कृत्वा वक्षसि तन्द्रिताम्। वासयामास वसनं राधया मेखलाम्बरम् ॥२०॥
कबरीं रचयामास किंचिद्वामेन वक्रताम्। मालतीमाल्यसंयुक्तां कुन्दपुष्पैश्च वेष्टिताम् ॥२१॥
तस्याः कपाले सिन्दूरतिलकं सुन्दरं ददौ। गण्डयोः स्तनयोश्चित्रां चकार पत्रिकां मुदा ॥२२॥
सालक्तकांश्च नखरांश्चित्रितान्पादपद्मयोः। नखैः कृत्रिमपद्मानि निर्ममे श्रोणिवक्षसोः ॥२३॥
उत्थायाथ तया सार्धं जगाम ह सरोवरम्। नानाप्रकारपद्मानां राजिभिश्च विराजितम् ॥२४॥

लोगों की प्रमत्तता का मन से अनुमान करके राधा के साथ अन्तर्धान हो गये ॥५-११½॥ स्वेच्छामय भगवान् अत्यन्त निर्जन स्थान में कला के मान के अनुसार राधा के साथ संभोग किया। पर्वतों, रमणीक निर्जन द्वीपों, नदियों के अनकूल तटों, श्रीगोष्ठ, रत्नशैल, गङ्गातीर, यमुना के किनारे, मन्दिर, गन्धमादन, मनोहर कुन्दवन, कावेरीतीरवर्ती कमल वन और पुष्पभद्रा के तट पर विकसित पुष्पबाटिका में सर्वत्र रमण करके राधा का वेष बनाया और चन्दन-वायु से रमणीय मलयाचल की घाटी में पहुँच कर पुष्पमयी शय्या बनाकर उनके साथ रमण किया ॥१२-१७॥ मोविन्द को छाती पर लेकर रोमाञ्चित शरीर वाली राधिका अत्यन्त सुख-संभोग से मूर्च्छित हो गयीं ॥१८॥ सघन श्रोणी तथा कुचों वाली, लुप्त वेष वाली, काम से पीड़ित, नग्न और शिथिल सुन्दर बालों वाली राधा को देखकर श्रीकृष्ण ने उन्हें चेतना प्राप्त करायी और तन्द्रावस्था में ही उन्हें छाती पर लेकर वस्त्र तथा करघनी पहनायी ॥१९-२०॥ कुछ वाम भाग की ओर टेढ़ी चोटी निकाली, मालती मालाओं और कुन्द के पुष्पों से उसे आवेष्टित किया ॥२१॥ उनके भाल में सुन्दर सिन्दूर तिलक लगाया, कपोलों और स्तनों पर आनन्द से चित्रमयी पत्रावली की रचना की ॥२२॥ चरणकमलों एवं उनके नाखूनों को आलता-महावर से चित्रित किया। श्रोणी एवं वक्षःस्थल पर अपने नखों से कृत्रिम कमल बनाया ॥२३॥ अनन्तर उठकर उनके साथ सरोबर में प्रवेश किया, जो अनेक भाँति के कमल-पंक्तियों से सुशोभित था ॥२४॥ वह (सरोवर) स्फटिक की भाँति निर्मल जल

निर्मलस्फटिकाकारजलपूर्णं मनोहरम् । हंसकारण्डवाकीर्णं जलकुक्कुटकूजितम् ॥२५॥
मधुलुब्धमधुभ्राणां पद्मस्थानं सुपद्मजम् । चारुणा कलशब्देन शब्दितं शश्वदेव हि ॥२६॥
तत्र स्नात्वा जलक्रीडां चकार ह तया सह । जलं ददौ राधिकायै मुदा सा माधवाय च ॥२७॥
सहस्रदलपद्मे च गृहीत्वा माधवः स्वयम् । एकं ददौ राधिकायै ररक्ष स्वार्थमेककम् ॥२८॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवमीप्सितम् । स्वाङ्गे दत्त्वा राधिकायै लिलेप राधिकेश्वरः ॥२९॥
ततो गच्छंस्तया सार्धं ददर्श पुरतो वटम् । अतीवोत्तुङ्गशाखाग्रमतिविस्तृतमेव च ॥३०॥
मूले योजनपर्यन्तं छायया परिवेष्टितम् । उवास तत्र गोविन्दः केतकीवनसंनिधौ ॥३१॥
पुष्पाक्तेन सुशीतेन वायुना सुरभीकृते । चित्रं रहस्यं सुचिरं पुराणं च पुरातनम् ॥३२॥
प्रहर्षितश्च श्रीकृष्णः कथयामास राधिकाम् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श मुनिपुंगवम् ॥३३॥
आगच्छन्तं च तं दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणम्[1] । न दृष्ट्वा हृदये रूपमीशस्य परमात्मनः ॥३४॥
ध्यानाद्विरतमग्रे च पश्यन्तं बहिरेव तत् । सर्वावयववक्रं च कृष्णं खर्वं दिगम्बरम् ॥३५॥
नाम्नाऽष्टवक्रं जटिलं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । मुखतोऽग्निमुद्गिरन्तंतपोराशिमिवोत्थितम् ॥३६॥

से पूर्ण मनोहर हंसों और बत्तखों से परिपूर्ण और जल कुक्कुटों से शब्दायमान था ॥२५॥ वहाँ मधु के लोभी भौंरे सुन्दर कमलों पर अपनी सुन्दर ध्वनि से निरन्तर गुंजार कर रहे थे ॥२६॥ उसमें स्नान कर राधिका के साथ जलक्रीड़ा की। माधव ने राधिका पर जल उछाला और राधिका ने उन पर ॥२७॥ अनन्तर माधव ने सहस्र दलवाले दो कमल पुष्प लेकर एक राधिका को दिया और दूसरा अपने लिए सुरक्षित रखा ॥२८॥ फिर राधिकेश्वर ने चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम का लेप अपने अंगों में लगाकर राधिका को लेप लगाया ॥२९॥ तदनन्तर राधिका को साथ लिए वहाँ से चले, तो उन्हें सामने वह वटवृक्ष दिखायी पड़ा, जो अत्यन्त ऊँचा, अति विस्तृत और मूल भाग में एक योजन की छाया से चारों ओर आवेष्टित था। वहाँ केतकी वन के समीप गोविन्द बैठ गये। वह स्थान पुष्प सम्पृक्त सुशीतल वायु से सुगन्धित था। हर्ष से भरे हुए श्रीकृष्ण ने वहाँ राधा से चिरकाल तक पुरातन एवं विचित्र रहस्य को बताने वाली कथायें कहीं। उसी समय उन्हें सामने मुनिश्रेष्ठ (अष्टावक्र) दिखायी पड़े ॥३०-३३॥ वे (मुनि) उसी ओर आ रहे थे। उनके मुख, नेत्र सुप्रसन्न थे। परमात्मा को हृदय में न देखकर वे ध्यान से विरत हो गये। अब वे अपने सामने बाहर ही उस रूप का प्रत्यक्ष दर्शन करने लगे थे। उनका शरीर काला था, सारे अवयव टेढ़े-मेढ़े थे और वे नाटे तथा दिगम्बर थे। उनका नाम था अष्टावक्र। वे ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान थे, जटाधारी थे, मुख से अग्नि उगल रहे थे, मानो मुखद्वार से उनकी तपस्याजनित तेजोराशि ही प्रकट हो रही हो ॥३४-३६॥ अथवा वे ऐसे लगते थे, मानो उनके रूप में स्वयं ब्रह्मतेज ही मूर्तिमान्-सा हो गया

---

[1] क. °क्षणः ।

अहो किं वा ब्रह्मतेजो[1] मूर्तिमन्तमिह स्वयम्। नखश्मश्रुसुदीर्घं च शान्तं तेजस्विनं परम् ॥३७॥
पुटाञ्जलियुतं भक्त्या भीतं प्रणतकंधरम्। दृष्ट्वा हसन्तीं राधां तां वारयामास माधवः ॥३८॥
प्रभावं कथयामास मुनीन्द्रस्य महात्मनः। अथ प्रणम्य गोविन्दं तुष्टाव मुनिपुंगवः ॥३९॥
ना
यत्स्तोत्रं च पुरा दत्तं शंकरेण महात्मा ॥३९॥

अष्टावक्र उवाच

गुणातीत गुणाधार गुणबीज गुणात्मक। गुणीश गुणिनां बीज गुणायन नमोऽस्तु ते ॥४०॥
सिद्धिस्वरूप सिद्धयंश सिद्धबीज परात्पर। सिद्धिसिद्ध गुणाधीश सिद्धानां गुरवे नमः ॥४१॥
हे वेदबीज वेदज्ञ वेदिन्वेदविदां वर। वेदज्ञाताऽऽद्यरूपेश वेदज्ञेश न० ॥४२॥
ब्रह्मानन्तेश शेषेन्द्रधर्मादीनामधीश्वर। सर्व सर्वेश शर्वेश बीजरूप न० ॥४३॥
प्रकृते प्राकृत प्रज्ञ प्रकृतीश परात्पर। संसारवृक्ष तद्बीज फलरूप न० ॥४४॥
सृष्टिस्थित्यन्तबीजेश सृष्टिस्थित्यन्तकारण। महाविराट्तरोर्बीज राधिकेश न० ॥४५॥
अहो यस्य त्रयः स्कन्धा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। शाखाप्रशाखा वेदाद्यास्तपांसि कुसुमानि च ॥४६॥

हो। उनके नख और मूँछ-दाढ़ी के बाल बढ़े हुए थे। वे तेजस्वी और परम शान्त थे ॥३७॥ वे भयभीत हो भक्ति-भाव से दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाये हुए थे। उन्हें देख राधा हँसने लगीं, परन्तु हरि ने रोक दिया और महात्मा मुनीन्द्र के प्रभाव का वर्णन किया। मुनिवर ने गोविन्द को प्रणाम करके स्तुति की। पूर्वकाल में महात्मा शंकर ने उन्हें जो स्तोत्र दिया था, उसी को उन्होंने सुनाया॥३८-३९॥

अष्टावक्र बोले--भगवन्! आप गुणों (सत्त्वादिकों) से परे, गुणों के आधार, गुणों के कारण, गुण-स्वरूप, गुणों के ईश, गुणियों के बीज और गुणों के घर हैं, अतः आपको नमस्कार है ॥४०॥ सिद्धि स्वरूप, सिद्धि के अंश, सिद्धि के कारण, परात्पर, सिद्धियों से सिद्ध, गुणों के स्वामी एवं सिद्धों के गुरु को नमस्कार है ॥४१॥ हे वेदों के बीज! वेदों के ज्ञाता, वेदवान्, वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ, वेदों से अज्ञात, आद्यरूप, ईश, वेदज्ञों के प्रभु, आपको नमस्कार है ॥४२॥ ब्रह्मा और अनन्त के ईश, शेष, इन्द्र तथा धर्म आदि के अधीश्वर, सर्वरूप, सब के ईश, शर्व (महादेव) के ईश और बीजरूप आपको नमस्कार है ॥४३॥ प्रकृति स्वरूप, प्राकृत रूप, प्रकृष्ट ज्ञानी, प्रकृति के ईश, परात्पर, संसार-वृक्ष, उसके बीज और फल रूप आपको नमस्कार है ॥४४॥ सर्जन, पालन और प्रलय के बीज, स्वामी, सृष्टि, स्थिति और संहार के कारण, महाविराट् रूपी वृक्ष के बीज और राधिका जी के प्रभु! आपको नमस्कार है ॥४५॥ अहो! ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर जिस (महाविराट्रूपी वृक्ष) की तीन शाखाएँ हैं, वेद आदि शाखा-प्रशाखायें हैं, तप पुष्प हैं, संसार ही विशिष्ट फलरूप हैं और प्रकृति अंकुर है, उस (वृक्ष) के आधार आप

---

[1] क. °ह्यचर्यं।

संसारा[1] विफला एव प्रकृत्यङ्कुरमेत्य[2] च। तदाधार निराधार सर्वाधार न० ॥४७॥
तेजोरूप निराकार प्रत्यक्षानूहमेव च । सर्वाकारातिप्रत्यक्ष स्वेच्छामय न० ॥४८॥
इत्युक्त्वा स मुनिश्रेष्ठो निपत्य चरणाम्बुजे । प्राणांस्तत्याज योगेन तयोः प्रत्यक्ष एव च ॥४९॥
पपात तत्र तद्देहः पादपद्मसमीपतः । तत्तेजश्च समुत्तस्थौ ज्वलदग्निशिखोपम् ॥५०॥
सप्ततालप्रमाणं तु चोत्थाय च पपात ह। भ्रामं भ्रामं च परितो लीनं चाभूत्पदाम्बुजे ॥५१॥
अष्टावक्रकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् । परं निर्वाणमोक्षं च समाप्नोति न संशयः ॥५२॥
प्राणाधिको मुमुक्षूणां स्तोत्रराजश्च नारद । हरिणाऽहो पुरा दत्तो वैकुण्ठे शंकराय च ॥५३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० मुनिमोक्षणप्रस्ताव
एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

ही हैं और आप (स्वयं) निराधार तथा सर्वाधार हैं। आपको नमस्कार है ॥४६-४७॥ तेजोरूप, निराकार, प्रत्यक्ष प्रमाण से परे, समस्ताकार (विराट्‌रूप), अति प्रत्यक्ष, एवं स्वेच्छामय ! आपको नमस्कार है ॥४८॥ इतना कहकर वे मुनिश्रेष्ठ भगवान् के चरण-कमल पर गिर पड़े, और उन दोनों (राधा-माधव) के सामने ही योग द्वारा अपने प्राणों का परित्याग कर दिया ॥४९॥ भगवान् के चरणकमल के समीप उनकी देह गिर गयी और शरीर से प्रज्वलित अग्नि-शिखा की भाँति उनका तेज निकला और सात ताड़ वृक्षों के समान ऊँचे उठकर पुनः गिर पड़ा, पुनः चारों ओर भ्रमण करके भगवान् के चरण-कमल में लीन हो गया ॥५०-५१॥ अष्टावक्र-कृत स्तोत्र का जो प्रातःकाल उठकर पाठ करेगा, उसे निर्वाण-मोक्ष की प्राप्ति होगी, इसमें संशय नहीं ॥५२॥ नारद ! यह स्तोत्रराज मुमुक्षुजनों को प्राणों से भी अधिक (प्रिय) है। अहो ! पूर्वकाल में वैकुण्ठ धाम में श्रीहरि ने शिव को यह प्रदान किया था ॥५३॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में मुनि का मोक्ष वर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२९॥

---

[1] ख. 'सारवि' । [2] ख. 'मेव च ।

Funding by IKS-MoE

अथ त्रिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

महामुने रहस्यं च श्रुतं ब्रह्मन्किमद्भुतम् । मृते मुनौ किं चकार श्रीकृष्णो भक्तवत्सलः ॥१॥

नारायण उवाच

दृष्ट्वा मृतं मुनिं कृष्णः संस्कारं कर्तुमुद्यतः । कृत्वा वक्षसि तद्देहं रुरोदोच्चैर्यथा नरः ॥२॥
बाहुभ्यां च समाश्लिष्य पिपेषोद्रिक्तमोहतः । निर्गतं भस्मनिकरं शवाद्वज्राङ्गघर्षणात् ॥३॥
रक्तमांसास्थिहीनं तच्छरीरं च महात्मनः । षष्टिवर्षसहस्राणि निराहारकृतो मुनेः ॥४॥
दग्धं लोहितमांसास्थि ज्वलता जठराग्निना । बाह्यज्ञानविहीनस्य हरिपादाब्जचेतसः ॥५॥
चितां चन्दनकाष्ठेन निर्माय मधुसूदनः । कृत्वाऽग्निकार्यं तत्रैव स्थापयामास शोकतः ॥६॥
ददौ चितायामग्निं च काष्ठं दत्त्वा शवोपरि । ज्वलितायां चितायां च मूर्च्छामाप क्षणं विभुः ॥७॥
तद्देहे भस्मसाद्भूते नेदुर्दुन्दुभयो दिवि । बभूव पुष्पवृष्टिश्च तत्क्षणाद्गगनादहो ॥८॥

अध्याय ३०

अष्टावक्र को रम्भा का शाप

नारद बोले––ब्रह्मन् ! उन महामुनि का कौन-सा अद्भुत रहस्य सुना गया ? मुनि के मर जाने पर भक्त-वत्सल श्रीकृष्ण ने क्या किया ? ॥१॥

नारायण बोले––मुनि को मृतक देखकर श्रीकृष्ण उनका दाह-संस्कार करने के लिए उद्यत हो गये। उनके शरीर को अपने वक्षःस्थल पर रखकर (साधारण) मनुष्य की तरह उच्च स्वर से रोदन करने लगे ॥२॥ अति मोह के कारण अपनी बाहुओं से उस शव को कसकर पकड़ लिया, जिससे उनके वज्राङ्ग घर्षण से उस शव से भस्म-समूह निकला ॥३॥ उन महात्मा का शरीर रक्तमांस एवं अस्थियों से भी रहित था। महामुने ! साठ सहस्र वर्ष तक निराहार रह कर उन्होंने तप किया था, जिसके कारण जठराग्नि द्वारा उनकी देह का रक्त, मांस और अस्थियाँ जल गयीं थीं। वे सदैव बाह्यज्ञान से रहित होकर केवल भगवान् के चरण-कमल में चित्त को लगाये रहते थे ॥४-५॥ उपरांत मधुसूदन ने चन्दन काष्ठ की चिता बनाकर उसमें अग्नि कार्य (संस्कार) किया और शोक-लीला करते हुए अश्रुपूर्ण नेत्रों से मुनि के शव को उस चिता पर स्थापित कर दिया। तदनन्तर शव के ऊपर भी काष्ठ रखकर चिता में अग्नि लगा दिया। चिता के जल उठने पर क्षण भर के लिए भगवान् को मूर्च्छा आ गई ॥६-७॥ मुनि के शरीर के जल जाने पर आकाश में दुन्दुभियाँ (नगाड़े) बजने लगीं और उसी समय आकाश

एतस्मिन्नन्तरे तत्र रत्नसारविनिर्मितम् । स्यन्दनं च मनोयायि वस्त्रमाल्यपरिच्छदम् ॥९॥
पार्षदप्रवरैर्युक्तं श्रीकृष्णसदृशैर्वरैः । आविर्बभूव गोलोकात्सुन्दरं पुरतो हरेः ॥१०॥
अवरुह्य रथात्तूर्णं पार्षदप्रवरा हरे. । सर्वे समानरूपास्ते प्रणम्य राधिकेश्वरौ ॥११॥
धृतवन्तं सूक्ष्मदेहं प्रणमय्य मुनीश्वरम् । रथे कृत्वा तु तं देहं जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ॥१२॥
गते मुनीन्द्रे गोलोकं वृन्दावनविनोदिनी । बभूव विस्मिता साध्वी पप्रच्छ जगदीश्वरम् ॥१३॥

राधिकोवाच

कोऽयं नाथ मुनिश्रेष्ठः सर्वावयववक्रिमः । अतिखर्वजनाकारस्तेजीयानतिकुत्सितः ॥१४॥
कथं वा निर्गतं भस्म देहादस्य किमद्भुतम् । साक्षाद्विलीनं यत्तेजस्त्वत्पादाब्जेऽनलोपमम् ॥१५॥
रथस्थः पुण्यवान्सद्यो गोलोकं च जगाम ह । स्वात्मारामस्य यद्धेतो रोदनं ते बभूव ह ॥१६॥
त्वया कृतं च सत्कारमश्रुपूर्णेन चक्षुषा । सर्वं विवरणं तूर्णं संव्यस्य कथय प्रभो ॥१७॥
राधिकावचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः । कथां कथितुमारेभे युगान्तरगतामपि ॥१८॥

श्रीकृष्ण उवाच

रहस्यमष्टावक्रीयं विख्यातं सर्वतः प्रिये । पश्चाच्छ्रोष्यसि कालेन प्रसङ्गे विदुषां मुखात् ॥१९॥

से पुष्पों की वृष्टि होने लगी ॥८॥ इसी बीच भगवान् के सामने ही गोलोक से एक परम सुन्दर रथ आया, जो रत्नों के सारभाग से सुरचित, मन की भांति चलने वाला, वस्त्रों और मालाओं से सुसज्जित एवं भगवान् श्रीकृष्ण के समान उत्तम पार्षदों से युक्त था ॥९-१०॥ भगवान् के वे पार्षद-प्रवर रथ से शीघ्र उतर गये। उन सबके आकार श्रीकृष्ण से मिलते-जुलते थे। उन्होंने राधिका और श्रीकृष्ण को प्रणाम किया तथा सूक्ष्म देहधारी उन मुनीश्वर को भी मस्तक झुकाया। अनन्तर उस रथ पर उन्हें बैठाकर उत्तम गोलोक को चले गये ॥११-१२॥ मुनीन्द्र (अष्टावक्र) के गोलोक चले जाने पर वृन्दावनविनोदिनी एवं सती राधिका ने चकित हो जगदीश्वर श्रीकृष्ण से पूछा ॥१३॥

राधिका बोलीं—नाथ ! ये मुनिश्रेष्ठ कौन थे, जिनके सकल अंग टेढ़े-मेढ़े थे ? ये बहुत ही नाटे थे। इनके शरीर का रंग काला था और ये देखने में अत्यन्त कुत्सित होने पर भी बड़े तेजस्वी थे ॥१४॥ इनकी देह से यह अद्भुत भस्म कैसे निकला ? इनका जो अग्नि के समान तेज था, वह साक्षात् आपके चरण-कमल में विलीन हो गया और वे पुण्यात्मा रथ पर बैठकर सद्यः गोलोक को चले गये और उनके कारण स्वात्माराम आपको रोना पड़ा। प्रभो ! आपने अश्रुपूर्ण नेत्र से उनका सत्कार किया था, अतः समस्त विवरण शीघ्र विस्तार से बतायें ॥१५-१७॥ राधिका की बात सुनकर मधुसूदन ने हँसकर युगान्तर की बीती हुई उनकी कथा को कहना आरम्भ किया ॥१८॥

श्रीकृष्ण बोले—प्रिये ! अष्टावक्र का रहस्य सब ओर विख्यात है। बाद में समय पाकर किसी प्रसंग

अष्टावक्रो मुनीन्द्रोऽपि विख्यातो भुवनत्रये। परिपूर्णं यद्यशसा जगन्मातर्जगत्त्रयम् ॥२०॥
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा विमनस्का हरिप्रिया। उवाच मधुरं यत्नाच्छुष्ककण्ठोष्ठतालुका ॥२१॥

राधिकोवाच

यत्तृषालोर्मनः पूर्णं न बभूव सुधाम्बुधौ। स वितृप्तो भवति किं गोष्पदोदकपानतः ॥२२॥
वेदानां वेदवक्तॄणां विधातुर्जनकस्य च। महाविष्णोरीश्वरस्त्वं कोऽन्यो वक्ताऽस्ति त्वत्परः ॥२३॥
राधिकावचनं श्रुत्वा तुष्टः कृष्णो बभूव ह। उवाच गोपनीयं च रहस्यं परमाद्भुतम् ॥२४॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु कान्ते प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। श्रवणात्कथनाद्यस्य सर्वं पापं प्रणश्यति ॥२५॥
महाविष्णोर्नाभिपद्माद्बभूव जगतां विधिः। यमांशश्च मत्कलया जलाकीर्णे जगत्त्रये ॥२६॥
पुत्रा बभूवश्चत्वारो ब्रह्मणो मानसात्पुरा। नारायणपराः सर्वे ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥२७॥
शिशवः पञ्चवर्षीया नग्ना अज्ञानिनो यथा। बाह्यज्ञानविहीनाश्च ब्रह्मतत्त्वविशारदाः ॥२८॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। सनत्कुमारो भगवानेते चत्वार एव च ॥२९॥
तानुवाच जगद्धाता सृष्टिं कुरुत पुत्रकाः। ते न तस्थुः पितुर्वाक्ये प्रययुस्तपसे मम ॥३०॥

में विद्वानों के मुख से सुन लोगी ॥१९॥ मुनीन्द्र अष्टावक्र भी तीनों लोकों में विख्यात थे। जगन्माता! उनके यश से तीनों लोक परिपूर्ण थे ॥२०॥ श्रीकृष्ण की बात सुनकर उनकी प्रेयसी राधिका का मुख उदास हो गया कण्ठ, ओंठ और तालु सूख गये। अनन्तर बड़े प्रयत्न से उन्होंने मधुर वचन कहा ॥२१॥

राधिका बोलीं—जिस प्यासे (मनुष्य) का मन अमृत के समुद्र में नहीं भरा, वह क्या गौ के खुर के प्रमाण जल पीने से परितृप्त हो सकता है? आप वेदों और वेदवेत्ताओं के जनक, ब्रह्मा तथा महा विष्णु के भी आप ईश्वर हैं, अतः आपसे बढ़कर वक्ता दूसरा कौन हो सकता है? ॥२२-२३॥ राधिका की बात सुनकर कृष्ण प्रसन्न हो गये और गोपनीय एवं परम अद्भुत रहस्य को कहना आरम्भ किया ॥२४॥

श्रीकृष्ण बोले—प्रिये! सुनो, मैं तुम्हें बहुत प्राचीन इतिहास बता रहा हूँ, जिसके सुनने और कहने से समस्त पाप विनष्ट हो जाता है ॥२५॥ तीनों लोकों के जलमग्न होने पर महाविष्णु के नाभि-कमल से मेरे अंशभूत ब्रह्मा मेरी कला द्वारा उत्पन्न हुए ॥२६॥ पूर्वकाल में उनके मन द्वारा चार पुत्र उत्पन्न हुए, जो नारायण-परायण तथा ब्रह्मतेज से प्रकाशमान थे ॥२७॥ वे अज्ञानी पाँच वर्ष के बालक के समान नग्न, ब्रह्मज्ञान-शून्य तथा ब्रह्म-तत्त्व में निपुण थे ॥२८॥ सनक, सनन्द, तृतीय सनातन और भगवान् सनत्कुमार—ये ही (क्रमशः) उन चारों के नाम हैं ॥२९॥ ब्रह्मा ने उनसे कहा—पुत्रो! तुम लोग सृष्टि करो! किन्तु वे सब पिता की बात न

Funding by IKS-MoE

विधाता विमनस्कश्च तनयेषु गतेषु च। पितुर्दुःखाय प्रभवेत्पुत्रश्चेदवचस्करः ॥३१॥
ज्ञानेन निर्ममे पुत्रान्स्वाङ्गेषु च तपोधनान्। वेदवेदाङ्गविज्ञांश्च ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥३२॥
अत्रिः पुलस्त्यः पुलहो मरीचिर्भृगुरङ्गिराः। क्रतुर्वसिष्ठो वोढुश्च कपिलाश्चासुरिः कविः ॥३३॥
शङ्कुः शङ्खः पञ्चशिखः प्रचेतास्ते तपोधनाः। बहुकालं तपस्तप्त्वा चक्रुः सृष्टिं तदाज्ञया ॥३४॥
कलत्रवन्तस्ते सर्वे संसारं कर्तुमुन्मुखाः। बभुवुः पुत्रपौत्राश्च सर्वेषां च तपस्विनाम् ॥३५॥
तदस्तु च तथा बह्वी मुनिवंशानुकीर्तनी। चार्वी पुण्यस्वरूपा च प्रकृतं शृणु सुन्दरि ॥३६॥
प्रचेतसः सुतः श्रीमानसितो मुनिपुंगवः। सकलत्रस्तपस्तेपे दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥३७॥
न बभूव सुतस्तस्य प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः। तं संबोद्धुं बभूवाथ सत्या वागशरीरिणी ॥३८॥
कथं त्यजसि प्राणांस्त्वं गच्छ शंकरसंनिधिम्। सिद्धं कुरु गृहीत्वा च मन्त्रं शंकरवक्त्रतः ॥३९॥
मन्त्राधिष्ठातृदेवी ते सद्यः साक्षाद्भविष्यति। वरेणाभीष्टदेव्याश्च पुत्रस्ते भविता ध्रुवम् ॥४०॥
श्रुत्वैतच्चरितं विप्रो जगाम शिवसंनिधिम्। योगिनामप्यगम्यं च शिवलोकं निरामयम् ॥४१॥
सकलत्रो यथा योगी तुष्टाव योगिनां गुरुम्। पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥४२॥

मानकर मेरा तप करने चले गये ॥३०॥ पुत्रों के चले जाने पर ब्रह्मा उदास हो गये, क्योंकि पुत्र यदि आज्ञाकारी न हुआ, तो वह पिता के लिए दुःखप्रद होता है ॥३१॥ अनन्तर उन्होंने ज्ञान द्वारा अपने विभिन्न अङ्गों से पुत्रों को उत्पन्न किया, जो तपस्या के धनी, वेद-वेदाङ्ग के विशेषज्ञ और ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान थे ॥३२॥ अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, मरीचि, भृगु, अंगिरा, क्रतु, वसिष्ठ, वोढु, कपिल, आसुरि, कवि, शङ्कु, शङ्ख, पञ्चशिख और प्रचेता ये उन तपस्वियों के नाम हैं। उन लोगों ने बहुत काल तक तप करने के उपरान्त ब्रह्मा की आज्ञा से सृष्टि करना आरम्भ किया ॥३३-३४॥ वे सबके सब पत्नी समेत रहकर संसार-बृद्धि करने के लिए उद्यत हुए। सभी तपस्वियों के अनेकों पुत्र-पौत्र हुए ॥३५॥ मुनि वंश की परम्परा का कीर्तन करने वाली वह मनोहर एवं पुण्यस्वरूपा कथा बहुत बड़ी है; अतः उसे रहने दो, अब प्रकृत प्रसंग की बात सुनो ॥३६॥ प्रचेता के श्रीमान् एवं मुनिश्रेष्ठ असित नामक पुत्र हुए। असित ने पत्नी समेत दिव्य सहस्र वर्ष तप किया ॥३७॥ तथापि उनके पुत्र न हुआ, तो प्राण-परित्याग करने के लिए तैयार हो गये। उनको समझाने के लिए आकाशवाणी हुई कि––'मुने ! प्राण-परित्याग क्यों कर रहे हो ? शिव के पास जाओ और उनके मुख से मन्त्र ग्रहण करके उसे सिद्ध करो ॥३८-३९॥ उससे मन्त्र की अधिष्ठात्री देवी तुम्हें साक्षात् दर्शन देगी और उसी अभीष्ट देवी के वरदान द्वारा तुम्हें निश्चित रूप से पुत्र-प्राप्ति होगी ॥४०॥ यह सुनकर वह ब्राह्मण शिव के समीप गया, जो योगियों के लिए भी अगम्य है। उस निरामय शिवलोक में पहुँचकर पत्नी सहित ब्राह्मण ने योगी की भाँति हाथ जोड़े एवं भक्ति से कन्धे झुकाये, योगियों के गुरु की स्तुति की ॥४१-४२॥

Funding by IKS-MoE

असित उवाच

जगद्गुरो नमस्तुभ्यं शिवाय शिवदाय च। योगीन्द्राणां च योगीन्द्र गुरूणां गुरवे नमः ॥४३॥
मृत्योर्मृत्युस्वरूपेण मृत्युसंसारखण्डन । मृत्योरीश मृत्युबीज मृत्युंजय नमोऽस्तु ते ॥४४॥
कालरूपं कलयतां कालकालेश कारण । कालादतीत कालस्थ कालकाल न० ॥४५॥
गुणातीत गुणाधार गुणबीज गुणात्मक। गुणीश गुणिनां बीज गुणिनां गुरवे नमः ॥४६॥
ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मभावे च तत्पर । ब्रह्मबीजस्वरूपेण ब्रह्मबीज न० ॥४७॥
इति स्तुत्वा शिवं नत्वा पुरस्तस्थौ मुनीश्वरः । दीनवत्साश्रुनेत्रश्च पुलकाञ्चितविग्रहः ॥४८॥
असितेन कृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्। वर्षमेकं हविष्याशी शंकरस्य महात्मनः ॥४९॥
स लभेद्वैष्णवं पुत्रं ज्ञानिनं चिरजीविनम्। भवेद्धनाढ्यो दुःखी च मूको भवति पण्डितः ॥५०॥
अभार्यो लभते भार्यां सुशीलां च पतिव्रताम्। इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते शिवसंनिधिम् ॥५१॥
इदं स्तोत्रं पुरा दत्तं ब्रह्मणा च प्रचेतसा। प्रचेतसा स्वपुत्रायासिताय दत्तमुत्तमम् ॥५२॥

श्रीकृष्ण उवाच

समाकर्ण्य मुनेः स्तोत्रं भगवाञ्छंकरः स्वयम्। उवाच ब्रह्मणः पुत्रं स्वभक्तं भक्तवत्सलः ॥५३॥

असित बोले—जगद्गुरो ! आपको नमस्कार है, आप शिव (कल्याण) रूप सौर कल्याण के दाता हैं। आप योगीन्द्रों के भी योगीन्द्र तथा गुरुओं के गुरु हैं, आपको नमस्कार है ॥४३॥ आप मृत्यु के भी मृत्यु रूप होकर इस मृत्यु संसार का संहार करते हैं। हे मृत्यु के ईश, मृत्यु के कारण एवं मृत्यु के विजेता ! आपको नमस्कार है ॥४४॥ कालगणना करने वालों के लक्ष्यभूत कालरूप परमेश्वर ! आप काल के भी काल, ईश्वर और कारण हैं तथा काल के लिए भी कालातीत हैं। कालकाल ! आपको नमस्कार है ॥४५॥ गुणों से परे, गुणों के आधार, गुणों के कारण, गुणरूप, गुणवानों के ईश, गुणियों के बीज ! आप गुणवानों के गुरु हैं। आपको नमस्कार है ॥४६॥ ब्रह्मस्वरूप, ब्रह्मज्ञाता, ब्रह्म-चिन्तन-परायण ! आप ब्रह्मबीजस्वरूप से वेदों के बीजरूप हैं, आपको नमस्कार है ॥४७॥ स्तुति करके शिव को प्रणाम करने के पश्चात् मुनीश्वर उन शिव के सामने इस प्रकार खड़े हो गये और दीन की भाँति नेत्रों से आँसू बहाने लगे। उनके सम्पूर्ण शरीर में रोमांच हो आया ॥४८॥ असित द्वारा किये गये महात्मा शंकर के स्तोत्र का जो एक वर्ष तक हविष्य भोजन करके भक्तिपूर्वक पाठ करता है, उसे वैष्णव, ज्ञानी एवं चिरजीवी पुत्र प्राप्त होता है ॥४९॥ दुःखी धनाढ्य होता है, मूक (गूंगा) पण्डित होता है और स्त्री-हीन पुरुष को सुशीला एवं पतिव्रता पत्नी प्राप्त होती है तथा इस लोक में सुखोपभोग करके अन्त में वह भगवान् शिव के समीप चला जाता है ॥५०-५१॥ पूर्व समय यही स्तोत्र ब्रह्मा ने प्रचेता को दिया था और प्रचेता ने अपने पुत्र असित को दिया ॥५२॥

श्रीकृष्ण बोले—मुनि के स्तोत्र को सुनकर भक्तवत्सल भगवान् शिव ने अपने भक्त ब्रह्म-पुत्र से कहा ॥५३॥

शंकर उवाच

स्थिरो भव मुनिश्रेष्ठ जानामि तव वाञ्छितम् । पुत्रस्ते भविता सत्यं मदंशेन च मत्समः ॥५४॥
दास्यामि मन्त्रमतुलं सर्वेषां च सुदुर्लभम्। इत्युक्त्वा च ददौ मन्त्रं तवैव षोडशाक्षरम् ॥५५॥
स्तोत्रं पूजाविधानं च कवचं परमाद्भुतम्। संसारविजयं नाम पुरश्चरणपूर्वकम् ॥५६॥
वरं दातुमिष्टदेवी प्रत्यक्षा भवितेति च । इत्युक्त्वा विरतो रुद्रः स तं नत्वा जगाम ह ॥५७॥
जजाप परमं मन्त्रं सोऽसितः शतवत्सरम् । साक्षाद्भूत्वा वरस्तस्मै त्वया दत्तः पुरा सति ॥५८॥
पुत्रस्ते भविता सत्यं महाज्ञानी सुतेति च। वरं दत्त्वा त्वमगमो गोलोकं मम संनिधिम् ॥५९॥
कालेन च सुतस्तस्य शिवांशेन बभूव ह । ब्रह्मिष्ठो देवलो नाम्ना कन्दर्पसमसुन्दरः ॥६०॥
सुयज्ञनृपतेः कन्यां रत्नमालावतीं मुदा । तां सुन्दरीं विवाहेन जगृहे सर्वमोहिनीम् ॥६१॥
स्थाने स्थाने च रहसि शतवर्षं तया सह। स रेमे निपुणः श्रेष्ठः स्त्रीणां रमणकर्मणि ॥६२॥
कालान्तरे स विरतो बभूव मुनिपुंगवः । सुखं सर्वं परित्यज्य धर्मिष्ठः श्रीहरिं स्मरन् ॥६३॥
उत्थाय रात्रौ शयनाद्विरक्तश्च तपोधनः। स ययौ तपसे कान्ते गन्धमादनगह्वरम् ॥६४॥
निद्रां त्यक्त्वा च तत्कान्ता न दृष्ट्वा स्वामिनं सती । विललाप भूशं शोकात्प्रदग्धा
विरहाग्निना ॥६५॥

शंकर बोले—मुनिश्रेष्ठ ! धैर्य धारण करो, मैं तुम्हारा मनोरथ जानता हूँ—मेरे अंश से मेरे समान ही तुम्हारे पुत्र होगा, यह सत्य है ॥५४॥ मैं तुम्हें अनुपम मंत्र दूंगा, जो सभी लोगों के लिए अति दुर्लभ है। इतना कहकर उन्होंने तुम्हारा ही षोडशाक्षर मंत्र, स्तोत्र, पूजाविधान और पुरश्चरणपूर्वक संसारविजय नामक परम अद्भुत कवच उस ब्राह्मण को प्रदान किया और कहा कि—'वर प्रदान करने के लिए इष्ट देवी तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष होंगी।' यह कहकर रुद्र चुप हो गये और वह ब्राह्मण भी उन्हें नमस्कार करके चला गया ॥५५-५७॥ अनन्तर असित मुनि सौ वर्षों तक उस परम मन्त्र का जप किया, जिससे तुमने साक्षात् होकर पूर्वकाल में ही उन्हें वर दिया कि—'तुम्हें महाज्ञानी पुत्र की प्राप्ति होगी, इसे सत्य जानो।' वर देकर तुम मेरे समीप गोलोक चली आयी ॥५८-५९॥ समय पाकर शिव के अंश से उनके देवल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो ब्रह्मनिष्ठ एवं काम के समान सुन्दर था ॥६०॥ राजा सुयज्ञ की रत्नमालावती नामक सुन्दरी एवं मोहिनी कन्या से उसका पाणिग्रहण संस्कार हुआ ॥६१॥ स्त्रियों के साथ रमण करने में श्रेष्ठ एवं निपुण देवल ने रत्नमालावती के साथ सौ वर्षों तक जगह-जगह एकान्त में स्त्रियों के साथ रमण किया ॥६२॥ कालान्तर में मुनिवर एवं विरक्त तपस्वी को वैराग्य हो गया। तब वे धर्मात्मा सब सुख को त्याग कर श्रीहरि का स्मरण करते हुए रात्रि में शय्या से उठकर तपस्या करने के लिये गन्धमादन पर्वत की गुफा में चले गये ॥६३-६४॥ नींद टूटने पर उनकी सती पत्नी ने अपने स्वामी को न देखकर विरहाग्नि से दग्ध होकर

उत्तिष्ठन्ती निर्विशन्ती रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः। तप्तपात्रे यथा धान्यं बभूव तन्मनस्तदा ॥६६॥
आहारं च परित्यज्य प्राणांस्तत्याज सुन्दरी। चकार तत्सुतस्तस्याः कर्म निर्हरणादिकम् ॥६७॥
तपश्चकार स मुनिर्गन्धमादनगह्वरे। दिव्यं वर्षसहस्रं च मम भक्तो जितेन्द्रियः ॥६८॥
तं ददर्श ह दैवेन रम्भा शृङ्गारलोलुपा। अतीव सुन्दरं शान्तं कन्दर्पमिव सुन्दरम् ॥६९॥
सा च तं कथयामास निर्जने समुपस्थिता। विधाय वेषं यत्नेन त्रैलोक्यचित्तमोहिनी ॥७०॥

रम्भोवाच

निबोध साधो मद्वाक्यं कामिनीनां मनोहरम्। त्यक्त्वा कठोरं रहसि भज मां सुखदायिकाम् ॥७१॥
त्वं वरेषु वरः पृथ्व्यां वरारोहा स्वयंवरा। विदग्धाया विदग्धस्य दुर्लभो नवसंगमः ॥७२॥
यज्ञं कुर्वन्ति भूपाला भारते स्वर्गहेतुकम्। स्वर्गभोगनिमित्तं च भोगसारा वयं मुने ॥७३॥
स्तनयोर्युग्ममूर्वोर्मे सुन्दरं मुखपङ्कजम्। हास्यभ्रूभङ्गसहितं दृष्ट्वा को न लभेत्सुखम्[1] ॥७४॥
स्त्रीरसः सुखसारश्च मुनीनामभिवाञ्छितः। रसिकासुखसंभोगो निर्जने चातिदुर्लभः ॥७५॥

शोक से अत्यन्त विलाप किया ॥६५॥ वह उठकर कभी खड़ी होती और कभी पछाड़ खाकर गिरती थी। रत्नमालावती बार-बार उच्च स्वर से रोने लगी। तपे हुए पात्र में पड़े हुए धान्य की जो दशा होती है, वही दशा उस समय उसके मन की थी ॥६६॥ उस सुन्दरी ने आहार त्याग कर अपने प्राणों का भी त्याग कर दिया। उसके पुत्र ने उसका दाह-संस्कार आदि पारलौकिक कृत्य किया ॥६७॥ जितेन्द्रिय एवं मेरे भक्त उस मुनि ने गन्धमादन पर्वत की गुफा में एक सहस्र दिव्य वर्षों तक तप किया। दैवसंयोग से उसी बीच शृङ्गारलोलुपा रम्भा ने उन्हें देखा, जो अति सुन्दर, शान्त एवं काम के समान सुन्दर थे ॥६८-६९॥ त्रैलोक्य के चित्त को मोहित करने वाली रम्भा ने यत्न से वेष बनाकर निर्जन प्रदेश में उपस्थित होकर उनसे कहा ॥७०॥

रम्भा बोली—साधो ! कामिनियों की मनोहर मेरी बात सुनो—इस कठोर कर्म का त्यागकर एकान्त स्थल में मुझ सुखदायिनी के साथ विहार करो ॥७१॥ क्योंकि तुम श्रेष्ठों में श्रेष्ठ हो और मैं सुन्दरी अप्सरा हूँ। चतुर स्त्री का चतुर पुरुष के साथ नव समागम दुर्लभ भी होता है ॥७२॥ हे मुने ! भारत में राजा लोग स्वर्ग प्राप्ति के निमित्त यज्ञ करते हैं। स्वर्ग-भोग की निमित्तभूत तथा भोग की सारभूत हम ही लोग हैं ॥७३॥ हमारे दोनों स्तनों, जाँघों, सुन्दर मुख-कमल, हँसी तथा भौंह मटकाना देखकर कौन सुख नहीं पायेगा ?॥७४॥ क्योंकि समस्त सुखों का सारभूत स्त्री रस मुनियों को भी अभीष्ट होता है। निर्जन स्थान में रसिक स्त्री के साथ सुख-संभोग अत्यन्त दुर्लभ है ॥७५॥ देव, मानव, गन्धर्व अथवा राक्षस रम्भा की रति से वंचित होने पर

---

[1] क. °त्सुधीः

Funding by IKS-MoE

देवो वा मानवो वाऽपि गन्धर्वो वाऽथ राक्षसः। स्त्रीसुखेष्वप्यविज्ञेयो रम्भाया रतिवञ्चितः ।।७६।।
रहस्युपस्थितां कान्तां न भजेद्यो जितेन्द्रियः। गात्रलोमप्रमाणाब्दं कुम्भीपाके वसेद्ध्रुवम् ।।७७।।
सत्यं तस्याश्च वधभाक्तच्छापेन प्रणश्यति। विधाता मोहिनीशापादपूज्यो भुवनत्रये ।।७८।।
येन त्यक्तोपस्थिता तं यथा पश्यति पुंश्चली। स्वामिपुत्रस्वबन्धूनां न तथा घातकं रुषा ।।७९।।
परं प्रियं च सर्वेषां जारं जानाति पुंश्चली। यदि तेन परित्यक्ता तं हन्तुं सा तु दक्षिणा ।।८०।।
पुंश्चली हिंस्रजन्तुभ्यो नवघातिभ्य एव च। दुष्टा शश्वद्दयाहीना दुरन्ता प्रतिजन्मनि ।।८१।।
त्यज ध्यानं मुनिश्रेष्ठ भुङ्क्ष्वेदं तपसः फलम्। रहस्युपस्थितां मां च गृहीत्वा सुचिरं सुखम् ।।८२।।
स रम्भावचनं श्रुत्वा तामुवाच भयाकुलः। हितं तथ्यं नीतिसारं परिणामसुखावहम् ।।८३।।

देवल उवाच

शृणु रम्भे प्रवक्ष्यामि वेदसारं परं वचः। कुलधर्मोचितं सत्यं ब्राह्मणानां तपस्विनाम् ।।८४।।
धर्मोऽयं युक्तकाले च स्वयोषिति रतो द्विजः। सर्वत्र पूजितः शश्वदिह लोके परत्र च ।।८५।।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो यो रतः परयोषिति। याति तस्यापूजितस्य रुष्टा लक्ष्मीर्गृहादपि ।।८६।।
इहातिनिन्द्यः सर्वत्र नाधिकारी स्वकर्मसु। परत्रैवान्धकूपे च यावद्वर्षशतं वसेत् ।।८७।।

स्त्री-सुख से ही अनभिज्ञ समझा जाना चाहिए ।।७६।। जो जितेन्द्रिय पुरुष एकान्त में उपस्थित रमणी का सेवन नहीं करता है, उसे कुम्भीपाक नरक में शरीर के लोमप्रमाण वर्षों तक निश्चित रूप से रहना पड़ता है ।।७७।। सचमुच वह उस (रमणी) के वध का भागी होता है और उसी के शाप से नष्ट भी हो जाता है। विधाता (ब्रह्मा) मोहिनी के शाप से तीनों लोकों में अपूज्य हो गये हैं ।।७८।। जो पुंश्चली स्त्री का त्याग करता है, उसे वे जिस प्रकार देखती हैं, उस प्रकार अपने पति, पुत्र तथा बन्धुओं के घातक को भी क्रोध से नहीं देखती है ।।७९।। पुंश्चली स्त्री पुरुष को सबसे अधिक प्रिय समझती है। अतः यदि वह पुंश्चली का त्याग करता है, तो वह उसकी हत्या करने पर उतारू हो जाती है ।।८०।। पुंश्चली नये घात करने वाले हिंसक जन्तुओं से भी अत्यन्त दुष्ट, निरन्तर दयाहीन एवं प्रत्येक जन्म में दुःखप्रद परिणाम वाली होती है ।।८१।। मुनिश्रेष्ठ ! ध्यान त्याग दो और एकान्त में उपस्थित मुझे लेकर यह चिरकाल तक सुखोपभोग रूप तपस्या का फल भोगो ।।८२।। रम्भा की बात सुनकर भयभीत मुनि ने उससे हितकर, सत्य, नीतिसार एवं परिणाम में सुखकर वचन कहा ।।८३।।

देवल बोले—रम्भे ! सुनो, मैं तुम्हें वेदों का निष्कर्ष (निचोड़) बताऊँगा, जो सत्य एवं तपस्वी ब्राह्मणों के कुल धर्म के अनुकूल है ।।८४।। यह धर्म है कि ब्राह्मण उपयुक्त समय पर अपनी पत्नी में निरत रहे। ऐसा ब्राह्मण इस लोक में तथा परलोक में भी सर्वत्र पूजित होता है ।।८५।। और जो ब्राह्मण या क्षत्रिय या वैश्य पर-स्त्री में रत रहता है, उस अपूजनीय व्यक्ति के घर से लक्ष्मी रुष्ट होकर चली जाती हैं ।।८६।। वह इस लोक में महानिन्दित होकर अपने (जातिगत) कर्म का अधिकारी नहीं रह जाता है, और मरने पर अन्धकूप नामक नरक

ग्राह्या चोपस्थिता स्त्री च गृहिणा न तपस्विना। त्यागे दोषः कामिनीनां शापभाक्पाप
भाग्गृही ॥८८॥
ब्रह्मा जगद्विधाताऽपि न विरक्तः कलत्रवान्। त्यागे दोषस्तत्कदाचिन्नास्माकं त्यक्तयो
षिताम् ॥८९॥
स्वभार्यां च परित्यज्य यो गृह्णाति परस्त्रियम्। यशोधनायुषां हानिर्भवेज्जीवन्मृतस्य च ॥९०॥
भुवि नास्ति यशो यस्य जीवनं तस्य निष्फलम्। सुसंपदा किं राज्येन सुखेन च तपस्विनः[1] ॥९१॥
निष्कामेन[2] च वृद्धेन मया किं ते प्रयोजनम्। सुवेशं सुन्दरं मातर्युवानं पश्य सुन्दरि ॥९२॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा चुकोपाप्सरसां वरा। उवाच भूयो वाक्यं तं त्रस्ता प्रस्फुरिताधरा ॥९३॥

रम्भोवाच

चारुचम्पकवर्णाभः कन्दर्पसमसुन्दरः। तपः प्रभावात्सश्रीकः सुवेषः संमतः स्त्रियाः ॥९४॥
त्वया विनाऽन्यं कं यामि को वाऽस्ति त्वत्परः पुमान्। पुंश्चली त्वां परित्यज्य का जीवति
स्मरातुरा ॥९५॥
शीघ्रं मां भज विप्रेन्द्र दग्धां कामाग्निना सदा। कामो नश्यति मां त्वत्तो यथा रम्भां मतंगजः ॥९६॥

में सौ वर्षों तक वास करता है॥८७॥ इसलिए उपस्थित होने वाली स्त्री का ग्रहण करना गृहस्थ के लिए उचित है, तपस्वी के लिए नहीं। कामिनियों के त्याग में गृहस्थ को दोष लगता है। वही शाप और पाप का भागी होता है॥८८॥ जगत् के विधाता ब्रह्मा भी पत्नीमान् है, विरक्त नहीं। इसलिए हम स्त्री-त्यागियों को पुंश्चली के त्याग करने में कदाचित् दोष नहीं लगेगा॥८९॥ अपनी स्त्री का त्यागकर के जो पर-स्त्री को ग्रहण करता है, वह जीवित रहते हुए भी मृतक के समान है और उसके यश, धन एवं आयु का नाश हो जाता है॥९०॥ भूतल पर जिसे यश न मिला, उसका जीवन व्यर्थ है। तपस्वी को उत्तम सम्पत्ति, राज्य एवं सुखोपभोग से क्या प्रयोजन है?॥९१॥ माता! मुझ निष्काम एवं वृद्ध से तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? सुन्दरी! किसी उत्तम वेष वाले सुन्दर युवक को देखो॥९२॥ ऐसी बात सुनकर वह श्रेष्ठ अप्सरा क्रुद्ध हो गयी। फिर ओठ फड़काते हुए त्रस्त अप्सरा ने उन (देवल) से कहा॥९३॥

रम्भा बोली--चारु चम्पा पुष्प के समान तुम्हारा रूप रङ्ग है, कामदेव के समान तुम सुन्दर हो, तप के प्रभाव से तुम्हारी उत्तम शोभा हो गयी है एवं तुम्हारा वेष रमणी को प्रिय है॥९४॥ तुम्हें छोड़कर मैं दूसरे किसके पास जाऊँ? तुमसे बढ़कर कौन पुरुष है? कौन कामपीड़ित पुंश्चली तुम्हारा त्याग करके जीवित रह सकती है॥९५॥ अतः हे विप्रेन्द्र! मैं कामाग्नि से अत्यन्त दग्ध हो रही हूँ, मेरे साथ शीघ्र सम्भोग करो। मतवाले

---

[1] क. धनेन च। [2] क. तपस्विना।

न चेच्छापं प्रदायामि वद वेदविदां वर । मां वा दारुणशापं वा सत्वरं ग्रहणं कुरु ॥९७॥
दग्धाः प्राणा मनो दग्धं स्वात्मा वा इति संततम् । नवशृङ्गारपीयूषपाननिर्वाणतां व्रजेत् ॥९८॥
स्वान्तर्दुःखेन दुःखार्तो यो यं शपति निश्चितम् । तं शापं खण्डितुं शक्तो न विधाता जगत्पतिः ॥९९॥
द्विजो रम्भावचः श्रुत्वा बभूव ध्यानतत्परः । नोवाच किंचिन्मौनस्थः सा तं कोपाच्छशाप ह ॥१००॥
हे वक्रचित्त ते विप्र सर्वावियववक्रिमम् । शरीरमञ्जनाकारं रूपयौवनवर्जितम् ॥१०१॥
अतीव विकृताकारं त्रिषु लोकेषु गर्हितम् । पुरातनं तपो नष्टं सद्यो भवतु निश्चितम् ॥१०२॥
इत्युक्त्वा पुंश्चली कामात्कामलोकं जगाम ह । अचिरेण मुनीन्द्रश्च न ददर्श हरेः पदम् ॥१०३॥
पादारविन्दविरहात्समुद्विग्नो बभूव ह । स्वाङ्गं च दृष्ट्वा विकृतं पूर्वपुण्यविवर्जितम् ॥१०४॥
कृत्वाऽग्निकुण्डं शोकेन प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः । मया दृष्टो वरो दत्तो दिव्यज्ञानेन बोधितः ॥१०५॥
आश्वासश्च कृतः प्रीत्या ततः शान्तो बभूव ह । अङ्गान्यष्टौ च वक्राणि दृष्ट्वा तूर्णं महामुनेः ॥१०६॥
अष्टावक्रेति तन्नाम कौतुकेन मया कृतम् । मद्वाक्यान्मलयद्रोणीमयमागम्य सत्वरः ॥१०७॥
षष्टिवर्षसहस्राणि चकार परमं तपः । तपोऽवसाने मद्भक्तो मया मुक्तः कृतः प्रिये ॥१०८॥
सर्वस्मिन्प्रलये नष्टे न मद्भक्तः प्रणश्यति । सुचिरेणैव तपसा ज्वलता जठराग्निना ॥१०९॥

हाथी द्वारा कदली स्तम्भ के नष्ट हो जाने की भाँति मैं भी तुमसे उत्पन्न काम द्वारा विनष्ट हो रही हूँ ॥९६॥ हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! मेरी बात न मानोगे, तो मैं शाप प्रदान करूँगी । अब मुझे या दारुण शाप को शीघ्र ग्रहण करो ॥९७॥ मेरे प्राण, मन और आत्मा निरन्तर दग्ध हो रहे हैं । वे नवीन श्रृङ्गार रूपी अमृत का पान करने से ही शान्त होंगे ॥९८॥ अन्तरात्मा के दुःख से दुःखी होकर जो जिसको शाप देता है, उसके शाप का खण्डन जगत्पति विधाता भी नहीं कर सकते हैं ॥९९॥ रम्भा की ऐसी बात सुनकर ब्राह्मण ध्यान करने लगा । मौन होने पर कुछ भी नहीं बोला । यह देखकर उसने कुपित भाव से शाप दिया—'हे कुटिल चित्त वाले विप्र ! तुम्हारी यह देह समस्त अंगों समेत टेढ़ी अंजन के समान काला और रूप एवं यौवन से रहित हो जाये । तुम्हारा आकार अत्यन्त विकृत तथा तीनों लोकों में अतिनिन्दित हो जाय और तुम्हारा किया हुआ तप निश्चित ही तुरन्त नष्ट हो जाये । ॥१००-१०२॥ यह कहकर पुंश्चली कामवश कामदेव के लोक में चली गयी। अनन्तर मुनि को भगवान् के चरण कमलों का दर्शन नहीं हुआ ॥१०३॥ चरण-कमल के विरह से मुनि उद्विग्न हो गये । अपने अङ्गों को विकृत (टेढ़े-मेढ़े) और पूर्व के पुण्यों का नाश देखकर शोक के कारण वे अग्निकुण्ड में गिरकर प्राण त्याग देने को तैयार हो गये, मैंने देखा, मुनि को वर दिया तथा दिव्यज्ञान से प्रबोधित किया ॥१०४-१०५॥ प्रेमपूर्बक आश्वासन देने पर मुनि शान्त हो गये । महामुनि के आठ अंगों को टेढ़े-मेढ़े, देखकर मैंने कौतुक से उनका 'अष्टावक्र' नामकरण कर दिया । पश्चात् मेरे कहने से वे मलयाचल की घाटी में चले आये और साठ सहस्र वर्षों तक उन्होंने महा तप किया । प्रिये ! तप के अन्त में मैंने अपने भक्त को मुक्त कर दिया ॥१०६-१०८॥ प्रलयकाल में सबके नष्ट हो जाने पर भी मेरे भक्त का नाश नहीं होता है । अति दीर्घकाल तक निराहार तप करते रहने से उनके प्रज्वलित

Funding by IKS-MoE

त्यक्ताहारस्यान्तरं च भस्मपूर्णं ततो मुने। आगतं मलयद्रोणीं मुनिहेतोर्मया प्रिये ।।११०।।
अष्टावक्राच्च मद्भक्तो न भूतो न भविष्यति। एवंभूतस्तपोनिष्ठः प्रपौत्रो ब्रह्मणो मुनिः ।।१११।।
निष्कलः पुंश्चलीशापाद्ब्रह्माऽपूज्यो यथा पुरा। इत्येवं कथितं सर्वं रहस्यं च महात्मनः ।।
सुखदं पुण्यदं गूढं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।११२।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाप्रश्नेऽष्टावक्रं
प्रति रम्भाशापो नाम त्रिंशोऽध्यायः ।।३०।।

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

राधिकोवाच

किमाश्चर्यं श्रुतं नाथ चरितं सुमनोहरम्। अधुना श्रोतुमिच्छामि ब्रह्मणः शापकारणम् ।।१।।
यो विधाता त्रिजगतां तपसां फलदायकः। स कथं कुलटाशापादपूज्यश्च बभूव ह ।।२।।

जठराग्नि ने आहार त्यागे हुए मुनि के शरीर की भीतरी वस्तु को जलाकर भस्म कर दिया था। प्रिये ! मैं मुनि के निमित्त मलय की घाटी में आया था, अष्टावक्र से बढ़कर मेरा भक्त कोई न हुआ और न होगा। ब्रह्मा के प्रपौत्र ये मुनि ऐसे तपोनिष्ठ थे; परन्तु उस पुंश्चली के शाप से उसी तरह हीन अवस्था को पहुँच गये जैसे पूर्व-काल में ब्रह्मा अपूजनीय हो गये थे। इस प्रकार महात्मा का सारा गूढ़ रहस्य मैंने बता दिया, जो सुखद और पुण्यदायक है, अब पुनः तुम क्या सुनना चाहती हो ?।।१०९-११२।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण जन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में राधा के प्रश्न में अष्टावक्र के प्रति रम्भा का शापवर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३०।।

अध्याय ३१

मोहिनी-स्तोत्र-वर्णन

राधिका बोलीं—नाथ ! क्या ही अद्भुत एवं अत्यन्त मनोहर चरित्र मैंने सुना। अब ब्रह्मा के शाप का कारण सुनना चाहती हूँ ।।१।। जो तीनों लोकों के विधाता तथा तप के फलदाता हैं, वे एक कुलटा स्त्री के शाप से अपूज्य कैसे हो गये ?।।२।।

Funding by IKS-MoE

श्रीकृष्ण उवाच

मन्वन्तरे रैवतस्य सुचन्द्रो नृपपुंगवः । तपस्वी वैष्णवः श्रेष्ठो ज्ञानी परमधार्मिकः ॥३॥
स च पूर्वं तपः कुर्वन्नाजगाम मम प्रिये । इमां च मलयद्रोणीं भारतेषु मनोहराम् ॥४॥
तपश्चकार राजेन्द्रो वर्षाणां च सहस्रकम् । जीर्णं तस्य शरीरं च कठोरेण तपस्विनः ॥५॥
वल्मीकाच्छादितं देहं दृष्ट्वा धाता कृपानिधिः । आजगाम वरं दातुं तपःस्थानं सुनिर्जनम् ॥६॥
कमण्डलुजलेनैव मम देहोद्भवेन च । सिषेच तं च मन्त्रेण मया दत्तेन योगवित् ॥७॥
कमण्डलुजलस्पर्शादुत्थाय नृपतिः स्वयम् । ननाम भक्त्या जगतां स्रष्टारं च पुरःस्थितम् ॥८॥
स तं नमन्तं राजानमुवाच कमलोद्भवः । वरं वृण्विति राजेन्द्र यत्ते मनसि वाञ्छितम् ॥९॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वरं वव्रे परात्परम् । ममैव चरणे भक्तिं मदीयं दास्यमेव च ॥१०॥
कृपया च वरं ब्रह्मा दत्तवानभिवाञ्छितम् । स च तत्पुरतस्तस्थौ कामदेवसमप्रभः ॥११॥
एतस्मिन्नन्तरे राजा ददर्श रथमुत्तमम् । आकाशान्निपतन्तं वै शतसूर्यसमप्रभम् ॥१२॥
तेजसाऽऽच्छादितं सर्वं सुप्रदीप्तं दिशो दश । रत्नेन्द्रसारनिर्माणं शतचक्रसमन्वितम् ॥१३॥
अमूल्यरत्नरचितं विचित्रकलशोज्ज्वलम् । मुक्तामाणिक्यहीराणां मालाजालैश्च राजितम् ॥१४॥
सद्रत्नदर्पणैर्दीप्तैरतीव सुमनोहरम् । भूषितं दिव्यवस्त्रैश्च श्वेतचामरकोटिभिः ॥१५॥

श्रीकृष्ण बोले—प्रिये ! रैवत मन्वन्तर में नृपश्रेष्ठ सुचन्द्र तपस्वी, वैष्णव, श्रेष्ठ ज्ञानी एवं परमधार्मिक थे। वे मेरी तपस्या करते हुए भारत में मनोहर इस मलयाचल की घाटी में आये। राजेन्द्र ने यहाँ एक सहस्र वर्षों तक तप किया। कठोर तपस्या से उनकी देह जीर्ण-शीर्ण हो गयी और वल्मीक (बांबी) से आच्छादित देह को देखकर कृपानिधान ब्रह्मा उन्हें वर देने के लिए उस अति निर्जन तपःस्थान में आये ॥३-६॥ योगवेत्ता ब्रह्मा ने कमण्डलु के जल से, जो मेरी देह से उत्पन्न हुआ था, मेरे दिये हुए मंत्र के उच्चारणपूर्वक तपस्वी का सेचन किया ॥७॥ कमण्डलु-जल के स्पर्श से राजा स्वयं उठकर जगत्-रचयिता ब्रह्मा के सामने खड़े हो गये और भक्ति-पूर्वक उन्हें नमस्कार करने लगे ॥८॥ कमल-भू ब्रह्मा ने नमस्कार करते हुए उनसे कहा—“राजेन्द्र ! जैसी तुम्हारी इच्छा हो—वर माँगो” ॥९॥ उनकी बात सुनकर राजा ने सर्वश्रेष्ठ वरदान माँगा कि—‘भगवान् के चरणों में मेरी भक्ति हो और मुझे उनका दास्य-पद प्राप्त हो’ ॥१०॥ ब्रह्मा ने कृपा करके उन्हें अभिलषित वरदान प्रदान किया और कामदेव के समान कान्तिमान् राजा उनके सामने खड़े हो गये ॥११॥ उसी बीच राजा ने देखा कि—एक उत्तम रथ आकाश से नीचे उतर रहा है, जो सैकड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण था ॥१२॥ उसके तेज से दशों दिशाएँ अत्यन्त प्रदीप्त हो उठी थीं। वह रथ रत्नों के सारभाग से निर्मित सौ चक्कों से युक्त, अमूल्य रत्नों से रचित, विचित्र कलशों से समुज्ज्वल, मुक्ता, माणिक्य और हीरों की मालाओं से सुशोभित, उत्तम रत्नों के अति दीप्त दर्पणों से अति मनोहर, दिव्य वस्त्रों एवं करोड़ों श्वेत चामरों से सुशोभित, पारिजात के पुष्पों की

Funding by IKS-MoE

पारिजातप्रसूनानां मालाजालैः सुशोभितम्। मनोयायि महाश्चर्यं नानाचित्रेण चित्रितम् ॥१६॥
वेष्टितं पार्षदैर्दिव्यै रत्नभूषणभूषितैः। चतुर्भुजैः श्यामलैश्च ज्वलद्भिः स्थिरयौवनैः ॥१७॥
पीतवस्त्रपरीधानैश्चन्दनागुरुचर्चितैः । दृष्ट्वा रथस्थान्देवांश्च ननाम नृपतिर्मुदा ॥१८॥
सहसा तस्य शिरसि पुष्पवृष्टिर्बभूव ह। नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे चाऽऽनकाश्च मनोहराः ॥१९॥
ऋषयो मुनयः सिद्धाः प्रकुर्वन्तो मुदाऽऽशिषम्। प्रशशंसुः सुराः सर्वे राजानं हर्षनिर्भराः ॥२०॥
राजा च पार्षदान्ध्यात्वा तद्रूपश्च बभूव ह। पार्षदास्तं रथे कृत्वा नीत्वा जग्मुर्ममालयम् ॥२१॥
मदीयः पार्षदो भूत्वा स च तस्थौ ममान्तिके। ततः स्वमन्दिरं यान्तं ददर्श मोहिनी विधिम् ॥२२॥
पुष्पोद्याने च रम्ये च पुष्पचन्दनवायुना । सद्यो मुमोह तं दृष्ट्वा प्रदग्धा मदनानलैः ॥२३॥
विलोक्य वक्रनयना जुगोप सस्मितं मुखम् । सिन्दूरबिन्दुं दधती कस्तूरीबिन्दुना सह ॥२४॥
चारुचम्पकवर्णाभा सततं स्थिरयौवना । बृहन्नितम्बयुगला पीनश्रोणिपयोधरा ॥२५॥
शरत्पार्वणशुभ्रांशुप्रभामुष्टकरानना । सूक्ष्मवस्त्रपरीधाना रत्नालंकारभूषिता ॥२६॥
त्रैलोक्यं मोहितुं शक्ता कटाक्षैरेव लीलया। अतीव कामिनी शश्वद्गजेन्द्रमन्दगामिनी ॥२७॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी मूर्च्छां संप्राप वर्त्मनि। संनिरीक्ष्य च तां ब्रह्मा जगाम श्रीहरिं स्मरन् ॥२८॥

मालाओं से सुसज्जित, मन की भाँति चलने वामा, अनेक भाँति के चित्रों से चित्रित और महान् अद्भुत था ॥१३-
१६॥ वह रत्न के आभूषणों से भूषित दिव्य पार्षदों से घिरा था। वे पार्षद चतुर्भुज, श्यामल, तेजस्वी, स्थिर
यौवन वाले, पीताम्बर पहने और चन्दन, अगुरु से चर्चित थे। रथ पर विराजमान देवों को देखकर राजा ने उन्हें
सहर्ष प्रणाम किया ॥१७-१८॥ एकाएक उनके सिर पर पुष्पवृष्टि होने लगी, स्वर्ग में दुन्दुभियाँ (नगाड़े) और
मनोहर आनक (ढोल) बजने लगे ॥१९॥ ऋषि, मुनि एवं सिद्धगणों ने बड़ी प्रसन्नता से राजा को आशीर्वाद
दिया। देवों ने विभोर होकर उनकी प्रशंसा की ॥२०॥ राजा ने उन पार्षदों का ध्यान करते हुए उन्हीं के समान
रूप धारण कर लिया। पार्षदों ने उन्हें रथ पर बैठाकर मेरे लोक में पहुँचा दिया ॥२१॥ वह मेरा पार्षद बनकर
मेरे समीप रहने लगा। तदनन्तर अपने मन्दिर को जाते हुए ब्रह्मा को मोहिनी ने देख लिया। पुष्पों के रमणीय
उद्यान में पुष्प-चन्दन-सम्पृक्त वायु के स्पर्श से, ब्रह्मा को देखकर वह कामाग्नि से जलने लगी। तिरछी चितवन
डालकर उसने मुसकराहट सहित मुख को छिपा लिया, जिसमें कस्तूरी के बिन्दु के साथ सिन्दूर का बिन्दु लगा
हुआ था ॥२२-२४॥ मोहिनी के शरीर की कान्ति सुन्दर चम्पापुष्प के समान थी, यौवन सतत स्थिर था, दोनों
नितम्ब विशाल थे। श्रोणिभाग तथा स्तन मोटे थे। उसके मुख की शोभा शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की उज्ज्वल
प्रभा को चुराने वाली थी। वह सूक्ष्म वस्त्रों को पहने हुई तथा रत्नों के आभूषणों से विभूषित थी ॥२५-२६॥
वह कटाक्षों से ही अनायास तीनों लोकों को मोहित करने में समर्थ थी। वह निरन्तर कामभाव में रहने वाली
तथा गजराज के समान मन्द-मन्द चलने वाली थी ॥२७॥ उसके सर्वाङ्ग में रोमाञ्च हो आया। वह मार्ग में ही
मूर्च्छित हो गयी। उसे देखकर ब्रह्मा श्रीहरि का स्मरण करते हुए चले गये ॥२८॥ आत्माराम (आत्मा में रमण

स विकारं न हि प्राप ह्यात्मारामो जितेन्द्रियः । ब्रह्मलोकं च संप्राप ब्रह्मा च जगतां पतिः ।।२९।।
सकामा सा च कुलटा बभूव हतचेतना । दिवानिशं चिन्तयन्ती स्वप्ने ज्ञाने चतुर्मुखम् ।।३०।।
सर्वं जारं विसस्मार तत्याज हरिमीश्वरी । उत्तिष्ठन्ती निवसती शयनं कुर्वती क्षणम् ।।३१।।
तप्तपात्रे यथा सस्यं भ्रमत्येव तथा पथि । एतस्मिन्नन्तरे रम्भा विदग्धाऽप्सरसां वरा ।।३२।।
गच्छन्ती कामलोकं सा सकामा तेन वर्त्मना । दृष्ट्वा सहचरीं तत्र शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाम् ।।३३।।
अभिप्रायेण बुबुधे पप्रच्छ सस्मिता तदा ।।३४।।

रम्भोवाच

कथमेवंविधा त्वं हि त्रैलोक्यचित्तमोहिनि ।।
वद शीघ्रं महाभागे रम्भाऽहं चेतनां कुरु । कमुद्दिश्य सकामा त्वं गच्छ त्वं कान्तमीप्सितम् ।।३५।।
कुलटा सर्वसौभाग्या[1] न वयं कुलपालिकाः । सर्वे व्यग्रा इन्द्रियाणां सुखाय भुवनत्रये ।।३६।।
यान्ति प्राणा यतः काले[2] का लज्जा तत्र जीविनाम् । न चाऽऽत्मनः परः कश्चित्प्रियोऽस्ति भुवनत्रये ।।३७।।
कान्तेऽपत्ये स्वबन्धौ च स्नेहो यः स्वात्महेतुकः । संबन्धः स्वात्मनो यावत्तावत्स्नेहोऽस्ति तत्र वै ।।३८।।

करने वाले) तथा जितेन्द्रिय ब्रह्मा को कुछ भी विकार नहीं उत्पन्न हुआ। जगत्पति ब्रह्मा ब्रह्मलोक में पहुँच गये ।।२९।। कामातुर होने के नाते वह कुलटा चेतनाहीन हो गई। दिन-रात सोते-जागते वह एकमात्र ब्रह्मा का ही चिन्तन करती थी ।।३०।। उसने सभी जारों (उपपतियों) को विस्मृत कर दिया, इन्द्र को भी भुला दिया—उठते-बैठते और शयन करते समय (ब्रह्मा के अतिरिक्त किसी का भी स्मरण नहीं करती थी) ।।३१।। तप्त पात्र में पड़े धान्य की भाँति वह मार्ग में घूमने लगी। उसी बीच अप्सराओं में श्रेष्ठ एवं अति चतुर रम्भा आगयी, जो कामवश उसी मार्ग से कामदेव के यहाँ जा रही थी। उसने अपनी सहचरी (सखी-साथी), को देखा कि—उसके कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये हैं। उसके अभिप्राय से वह समझ गयी, तब मुसकराती हुई उसने पूछा ।।३२-३४।।

रम्भा बोली—हे त्रैलोक्य के चित्त को मोहित करने वाली ! तुम्हारी ऐसी अवस्था क्यों है ? हे महाभागे ! शीघ्र बताओ, मैं रम्भा हूँ, होश में आओ। किसको उद्देश्य करके तुम सकाम हुई हो ? अभीष्ट प्रियतम के पास जाओ ।।३५।। कुलटा सबसे सौभाग्य प्राप्त करने वाली या सबकी भोग्या होती है, हम लोग कुल-मर्यादा का पालन करने वाली नहीं हैं। तीनों लोक में सभी लोग इन्द्रियों के सुखार्थ व्यग्र रहते हैं ।।३६।। जहाँ प्राण-संकट उपस्थित हो, वहाँ जीवों को लज्जा किस बात की ? तीनों लोकों में अपने आत्मा से बढ़कर कोई भी प्रिय नहीं होता है ।।३७।। पति, पुत्र और बन्धुओं में जो अपना स्नेह होता है, वह अपने ही कारण होता है और जब

---

[1] क. °र्वसंयोग्या। [2] क. कान्ते।

येषु यन्मानसं शश्वत्तेषां प्राणास्त एव हि । गच्छन्तीं कामलोकं च सकामां पश्य मां प्रिये ॥३९॥
सह सख्या समालोच्य मनसा गच्छ तं प्रियम् । निबध्य नीवीं केशांश्च कृत्वा वेषमभीप्सितम् ॥४०॥
मुनिमोहनबीजं च तं मोहं कुरु मोहिनि । कथयस्व महाभागे वचनं हृदयंगमम् ॥४१॥
रक्षाऽऽत्मानं प्रभावं च स्त्रीजातीनां जगत्त्रये । स्वाभिप्रायश्च सुरतौ न प्रकाश्यः कदाचन ॥४२॥
स्वान्तं कान्तं स्वानुरक्तमृज्वीं सहचरीं विना । तस्माद्यत्नेन हृद्वाक्यं प्रकाश्यं च प्रिये प्रिये ॥४३॥
अन्यथा चोपहासाय मरणायैव कल्पते । तस्याश्च वचनं श्रुत्वा सस्मित सा सुलज्जिता
हृद्यं च कथयामास यद्धेतोस्तादृशी गतिः ॥४४॥

मोहिन्युवाच

यावद्दृष्टो मया रम्भे निर्जने चतुराननः ॥४५॥
तावन्मनो मेऽतिदग्धं शश्वन्मनसिजानलैः । न दत्तमात्मने भक्ष्यमन्तरे न हि रोचते ॥४६॥
जानामि नाहमुदयं यामिनीशदिनेशयोः । अधुना न हि भेदो मे सततं स्वप्नज्ञानयोः ॥४७॥
मम प्राणाः प्रतीक्षन्ते तस्याऽऽलिङ्गनमेव च । क्षणं विज्ञाय न चिरं यास्यन्ति नान्यथा प्रिये ॥४८॥
कामज्वालाकलापैश्च स्वर्णाकारं कलेवरम् । अनाहारेण चेदानीं बभूव दग्धशैलवत् ॥४९॥

तक उसमें अपने आत्मा का सम्बन्ध रहता है, तभी तक उसमें अपना स्नेह रहता है ॥३८॥ जिनमें जिनका निरन्तर चित्त लगा रहता है, उनके प्राण भी उन्हीं में टिके रहते हैं। प्रिये ! मेरी ओर भी देखो, मैं कामवश कामलोक को जा रही हूँ। तुम सखी के साथ विचार करके मन से उस प्रियतम के पास जाओ। नीवी और बालों को बाँधकर तथा मुनियों को मोहित करने के कारण रूप अभीष्ट वेश बनाकर, हे मोहिनि ! उसे मोहित करो। महाभागे ! हृदय को छूने वाली बात बोलो ॥३९-४०॥ अपनी रक्षा करती हुई, तीनों लोकों में स्त्री जाति के प्रभाव को नष्ट न होने दो। सुरति में अपना अभिप्राय कभी भी प्रकट नहीं करना चाहिए। जब तक कि अनुरक्त एवं आत्मीय कान्त न मिले और निश्छल सखी साथ न रहे। हे प्रिये ! अनुरक्त प्रिय के मिलने पर ही उससे अपना हार्दिक भाव प्रकट करना चाहिए, अन्यथा उपहास होने का भय रहता है और मृत्यु का कारण बनता है। उसकी बात सुनकर वह मन्द मुसकान करती हुई अति लज्जित हुई तथा अपनी हार्दिक बात कहने लगी; जिसके कारण उसकी ऐसी अवस्था हो गयी थी ॥४१-४४॥

मोहिनी बोली––रम्भे ! मैंने जबसे निर्जन प्रदेश में ब्रह्मा को देखा है, तभी से मेरा मन कामाग्नि से निरन्तर जल रहा है। (तबसे) अपने को भोजन नहीं दिया, क्योंकि भीतर रुचता नहीं है ॥४५-४६॥ मैं चन्द्रमा और सूर्य का उदय नहीं जानती। इस समय मुझे निरन्तर स्वप्न और जागरण में भेद नहीं मालूम हो रहा है ॥४७॥ प्रिये ! मेरे प्राण उन्हीं के आलिङ्गन की प्रतीक्षा कर रहे हैं क्षण भर में जानकर (यदि नहीं मिले तो) मेरे प्राण शीघ्र चले जायँगे, यह अन्यथा नहीं होगा ॥४८॥ सुवर्ण के समान मेरी यह देह काम की ज्वालाओं के समूह और अनाहार से इस

गन्तुं स्थातुं न शक्ताऽहं शयनं कर्तुमुद्यता । धिगस्तु पुंश्चलीजातिं मामेव च विशेषतः ॥५०॥
कमुपायं करिष्यामि वद रम्भेऽत्र सांप्रतम् । लज्जां वाऽपि शरीरं वा विसृजामि च किं द्वयोः ॥५१॥
मोहिनीवचनं श्रुत्वा प्रहस्याप्सरसां वरा । तामुवाच हितं नीतमुपायं शुभकारणम् ॥५२॥

रम्भोवाच

एवमेतदहो भद्रे भद्रस्य कारणं तव । सर्वं त्वपनयिष्यामि शृणूपायं भयं त्यज ॥५३॥
कृत्वा वेषमपूर्वं च पूर्वमाराध्य मन्मथम् । तेन सार्धं स्वयं गत्वा त्वं मोहं कुरु भामिनि ॥५४॥
जितेन्द्रियाणां प्रवरं साक्षान्नारायणात्मकम् । विना कामसहायेन का शक्ता जेतुमीश्वरम् ॥५५॥
भज कामं तपः कृत्वा पुष्करे व्रज मोहिनि । सद्यः साक्षात्स भविता दयालुर्योषितां प्रभुः ॥५६॥
इत्युक्त्वा तामप्सरसां प्रवरा काममन्तिकम् । जगामेन्द्रियशान्त्यर्थं सा जगाम च पुष्करम् ॥५७॥
पुष्करे च तपः कृत्वा कामं संप्राप्य मोहिनी । जगाम तेन सार्धं च ब्रह्मलोकमनामयम् ॥५८॥
ददर्श निर्जनस्थं च मोहिनी कमलोद्भवम् । तमेव मोहनं कर्तुं समारेभे पुरःस्थिता ॥५९॥
क्षणं ननर्त सुचिरं सुगानेन क्षणं जगौ । संगीतं मम संबन्धि भक्तानां चित्तमोहनम् ॥६०॥
विधाता जगतां तस्याः श्रुत्वा संगीतमीप्सितम् । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो मुमोह साश्रुलोचनः ॥६१॥

समय जले पहाड़ के समान हो गयी है ॥४९॥ मैं चल-फिर नहीं सकती, न बैठ सकती हूँ, केवल (शय्या पर) पड़ी रहती हूँ। इस पुंश्चली जाति को धिक्कार है और विशेषतया मुझे ॥५०॥ रम्भे ! इस समय कौन-सा उपाय करूँ, बताओ। लज्जा और शरीर इन दोनों में किसका त्याग करूँ ?॥५१॥ मोहिनी की बात सुनकर उस अप्सरा-श्रेष्ठ ने हँस-कर उससे हितकर, नीतियुक्त और शुभकारक उपाय बताया ॥५२॥

रम्भा बोली—भद्रे ! यदि ऐसा ही है, तो, निर्भय होकर सुनो ! मैं तुम्हारे कल्याण का उपाय कह रही हूँ। मैं तुम्हारा सभी दुःख हटा दूंगी ॥५३॥ सुन्दरी ! तुम पहले अपना उत्तम वेष बनाकर काम की उपासना करो और तब उन्हें साथ लेकर ब्रह्मा के पास जाकर उन्हें मोहित करो ॥५४॥ वे जितेन्द्रियों में सर्वश्रेष्ठ तथा साक्षात् नारायणस्वरूप हैं, बिना काम की सहायता के उन ईश्वर को कौन शक्ति जीत सकती है ?॥५५॥ मोहिनि ! पुष्कर क्षेत्र में तपस्या करके काम की सेवा करो, वे दयालु एवं स्त्रियों के स्वामी हैं, तुरन्त तुम्हें दर्शन देंगे ॥५६॥ उससे इतना कह कर वह अप्सरा-श्रेष्ठ रम्भा अपनी इन्द्रिय-शान्ति के लिए काम के यहाँ चली गयी और वह मोहिनी पुष्कर क्षेत्र को गई ॥५७॥ मोहिनी ने पुष्कर में तप करके काम को प्राप्त किया और उसी के साथ वह रोगरहित ब्रह्मलोक को चली गयी ॥५८॥ वहाँ निर्जन स्थान में ब्रह्मा को देखकर मोहिनी ने उन्हें मोहित करने के लिए उनके सामने अपना कार्य आरम्भ किया ॥५९॥ वह क्षण में देर तक नृत्य करती, तो क्षण में उत्तम गाना गाती, मुझसे सम्बन्धित संगीत उसने प्रारम्भ किया, जो भक्तों के चित्त को मुग्ध करने वाला था ॥६०॥ जगद्विधाता (ब्रह्मा) उसका अभीष्ट संगीत सुनकर मुग्ध हो गये, उनके सर्वाङ्ग में रोमाञ्च हो आया और नेत्र सजल हो

Funding by IKS-MoE

दृष्ट्वा मुग्धं चतुर्वक्त्रं मोहिनी हृष्टमानसा । कलाप्रमाणं भावं च चकार तत्र लीलया ।।६२।।
स्वाङ्गं संदर्शयामास स्मेरभ्रूभङ्गपूर्वकम् । का लज्जा तस्य संसारे यः कामहतचेतनः ।।६३।।
विज्ञाय ब्रह्मा तद्भावं नतवक्त्रो बभूव ह । प्रदाय तस्यै दानं च विरतः श्रीहरिं स्मरन् ।।६४।।
विज्ञाय ब्रह्मणो भावं शुष्ककण्ठोष्ठतालुका । हतोद्यमा सा तुष्टाव कामं कामप्रदं वरम् ।।६५।।

मोहिन्युवाच

सर्वेन्द्रियाणां प्रवरं विष्णोरंशं च मानसम् । तदेव[1] कर्मणां वीजं तदुद्भव नमोऽस्तु ते ।।६६।।
स्वयमात्मा हि भगवाञ्ज्ञानरूपो महेश्वरः । नमो ब्रह्मञ्जगत्स्रष्टस्तदुद्भव न० ।।६७।।
स्थितः[2] सर्वशरीरेषु दृष्टिश्च योगिनामपि । जगत्साध्य दुराराध्य दुर्निवार न० ।।६८।।
सर्वाजित जगज्जेतर्जीवजीवमनोहर । रतिबीज रतिस्वामिन्रतिप्रिय न० ।।६९।।
शश्वद्योषिदधिष्ठान योषित्प्राणाधिकप्रिय । योषिद्वाहन योषास्त्र योषिद्बन्धो न० ।।७०।।
पतिसाध्यकराशेषरूपाधार गुणाश्रय । सुगन्धिवातसचिव मधुमित्र न० ।।७१।।
शश्वद्योनिकृताधार स्त्रीसंदर्शनवर्धन । विदग्धानां विरहिणां प्राणान्तक न० ।।७२।।

गये ।।६१।। ब्रह्मा को मुग्ध देखकर मोहिनी बहुत प्रसन्न हुई । उसने वहां कला प्रमाण भाव को लीलापूर्वक व्यक्त किया ।।६२।। मुसकराहट एवं भ्रूभंगिमापूर्वक अपने अंग को प्रदर्शित किया । जिसकी चेतना काम से नष्ट हो गई है, उसे संसार में लज्जा ही क्या ?।।६३।। ब्रह्मा ने उसके भाव को जान कर अपना मुख नीचे कर लिया । उसे उसका पुरस्कार (दान) देकर भगवान् का स्मरण करने लगे और उससे विरत हो गये (मन हटा लिया) ।।६४।। ब्रह्मा के भाव को समझ कर मोहिनी के कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये । अपना प्रयत्न निष्फल समझकर उसने कामनाओं की पूर्ति करने वाले एवं सर्वश्रेष्ठ कामदेव की स्तुति करना आरम्भ किया ।।६५।।

मोहिनी बोली--आप सभी इन्द्रियों में श्रेष्ठ तथा विष्णु के मानस अंश हैं । आप ही कर्मों के बीज तथा उनसे उत्पन्न होने वाले हैं । आपको नमस्कार है ।।६६।। भगवान् स्वयं आत्मा हैं और शिव ज्ञान रूप हैं । ब्रह्मन् ! जगत् के स्रष्टा और उससे उत्पन्न आपको नमस्कार है ।।६७।। आप समस्त शरीरों में स्थित हैं और योगियों की भी दृष्टि हैं । हे संसार के साध्य, दुराराध्य, दुर्निवार ! आपको नकस्कार है ।।६८।। सबसे अजेय ! जगत् के विजेता ! प्रत्येक जीव से मनोहर ! रति के बीज ! रति के स्वामी और रति प्रिय ! आपको नमस्कार है ।।६९।। निरन्तर स्त्रियों के अधिष्ठान स्वरूप ! स्त्रियों के प्राणों से भी अधिक प्रिय ! स्त्रीवाहन ! स्त्री-अस्त्रन एवं स्त्री-बन्धु ! आपको नमस्कार है ।।७०।। पति को साध्य करने वाले ! निखिल रूपों के आधार ! गुणों के आश्रय ! सुगन्धित वायु के सचिव । वसन्त के मित्र ! आपको नमस्कार है ।।७१।। निरन्तर योनि कृत आधार ! स्त्रियों के सम्यक् दर्शन में वृद्धि करने वाले, चतुर विरही जनों के प्राणान्त करने वाले ! आपको

---

[1] क. तद्देव । [2] क. सृष्टि ।

अकृपा येषु तेऽनर्थस्तेषां ज्ञानविनाशनम् । अनूहरूप भक्तेषु कृपासिन्धो न० ॥७३॥
तपस्विनां च तपसां विघ्नबीजावलीलया । मनः सकामं मुक्तानां कर्तुं शक्त न० ॥७४॥
तपःसाध्याश्चाऽऽराध्याश्च सदैवं पाञ्चभौतिकाः । पञ्चेन्द्रियकृताधार पञ्चबाण न० ॥७५॥
मोहिनीत्येवमुक्त्वा तु मनसा सा विधेः पुरः । विररामाऽऽनम्रवक्त्रा बभूव ध्यानतत्परा ॥७६॥
उक्तं माध्यन्दिने कान्ते स्तोत्रमेतन्मनोहरम् । पुरा दुर्वाससा दत्तं मोहिन्यै गन्धमादने ॥७७॥
स्तोत्रमेतन्महापुण्यं कामी भक्त्या यदा पठेत् । अभीष्टं लभते नूनं निष्कलङ्को भवेद्ध्रुवम् ॥७८॥
चेष्टां न कुरुते कामः कदाचिदपि तं प्रियम् । भवेदरोगी श्रीयुक्तः कामदेवसमप्रभः
वनितां लभते साध्वीं पत्नीं त्रैलोक्यमोहिनीम् ॥७९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० मोहिनीस्तोत्रवर्णनं
नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

नमस्कार है ॥७२॥ जिन लोगों पर आपकी कृपा नहीं होती है, उनके जीवन व्यर्थ होते हैं, उनके ज्ञान का नाश हो जाता है। भक्तों में आपका रूप अवितर्क्य है। हे दयासागर ! आपको नमस्कार है ॥७३॥ तपस्वियों के तप में विघ्न डालने में बीज रूप ! मुक्तजनों के मन को लीलापूर्वक सकाम करने में समर्थ ! आपको नमस्कार है ॥७४॥ पाञ्चभौतिक जीव सदा इसी प्रकार तपस्या से साध्य एवं आराध्य होते हैं। हे पांच इन्द्रियों के आधार और पांच बाण वाले (या कामरूप) ! आपको नमस्कार है ॥७५॥ इस प्रकार कहकर मोहिनी विरत हो गई और ब्रह्मा के सामने मुंह नीचे करके ध्यान-निरत हो गई ॥७६॥ हे कान्ते ! उसने माध्यन्दिन शाखा के अन्तर्गत उक्त मनोहर स्तोत्र को कहा, जिसे पूर्वकाल में गन्धमादन पर्वत पर दुर्वासा ने मोहिनी को दिया था ॥७७॥ इस महापुण्य स्तोत्र का पाठ जो कामी भक्तिपूर्वक करता है, उसकी अभीष्ट-सिद्धि निश्चय होती है और वह निश्चित निष्कलङ्क होता है ॥७८॥ अपने उस प्रिय को काम कभी भी पीड़ित नहीं करता है। वह नीरोग, श्रीसम्पन्न एवं काम के समान कान्तिपूर्ण बना रहता है और उसे तीनों लोकों को मोहित करने वाली पत्नी प्राप्त होती है ॥७९॥

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के श्रीकृष्ण जन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में मोहिनीस्तोत्र-वर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३१॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

मोहिनीस्तवनेनैव कामस्तुष्टो बभूव ह । चकार शरसंधानमन्तरिक्षे स्थितः स्वयम् ॥१॥
मन्त्रपूतं महास्त्रं च चिक्षेप पितरं मुदा । बभूव चञ्चलो ब्रह्मा कामास्त्रेण च कामुकः ॥२॥
क्षणं निरीक्षणं चक्रे मोहिन्यास्ये पुनः पुनः । ज्ञानं प्राप्य तदा धाता विरराम हरिं स्मरन् ॥३॥
बुबुधे मनसा सर्वं चरितं मन्मथस्य च । शशाप तं सुतमपि विधाता क्रोधविह्वलः ॥४॥
हे काम यौवनोन्मत्तं मूढैश्वर्येण गर्वित । भविता दर्पभङ्गस्ते गुरोर्मे हेलनादिति ॥५॥
हतोद्यमो जगामाऽऽशु मन्मथो मधुना सह । ब्रह्मणः शापभीतश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥६॥
इत्युवाच जगद्धाता मोहिनीं मदनातुराम् । चतुर्वक्त्रं च पश्यन्तीं सस्मितं वक्रचक्षुषा ॥७॥

ब्रह्मोवाच

मातर्मोहिनि गच्छ त्वं निष्फलं कर्म चात्र ते । ज्ञातस्तवाभिप्रायश्च न योग्योऽस्य कर्मणः ॥८॥

अध्याय ३२

श्रीकृष्ण-स्तोत्र

श्रीकृष्ण बोले—मोहिनी की स्तुति से कामदेव प्रसन्न हो गये । उसने स्वयं आकाश में स्थित होकर धनुष पर बाण चढ़ाया और उस महास्त्र को मन्त्रपूत करके पिता (ब्रह्मा) के ऊपर छोड़ दिया। काम के अस्त्र से ब्रह्मा चञ्चल और कामुक हो गये ॥१-२॥ क्षण भर उन्होंने मोहिनी के मुख को बार-बार देखा । तब ब्रह्मा ज्ञान प्राप्त करके हरि का स्मरण करते हुए विरत हो गये ॥३॥ उन्होंने मनसे काम के सारे चरित को जान लिया । फिर क्रोध से विह्वल होकर विधाता ने उस पुत्र (काम) को भी शाप दे दिया कि हे काम ! यौवन से उन्मत्त ! मूढ ! ऐश्वर्य गर्वित ! मुझ गुरु का तिरस्कार करने के कारण तुम्हारा दर्पभंग होगा ॥४-५॥ प्रयत्न में निष्फल हो जाने पर कामदेव वसन्त के साथ शीघ्र चला गया। ब्रह्मा के शाप से भयभीत होने के कारण उसके ओंठ, कण्ठ और तालु सूख गये थे ॥६॥ तब जगत् के विधाता ने काम-पीड़ित मोहिनी से भी कहा जो मन्द मुसकान करती हुई वक्र दृष्टि से उन्हें देख रही थी ॥७॥

ब्रह्मा बोले—माता मोहिनी ! यहाँ तुम्हारा कार्य सफल नहीं होगा, इसलिए चली जाओ। मैंने तुम्हारा अभिप्राय समझ लिया है, मैं इस कर्म के योग्य नहीं हूँ ॥८॥ मैं स्वयं वेद-कर्ता और संसार में व्यवस्था

वेदे जुगुप्सितं कर्म तदेव कर्तुमक्षमः । वेदकर्ता स्वयमहं व्यवस्थाकारको भवे ॥९॥
अकीर्तिर्वेदवक्तुश्च निन्द्यं च किमतः परम् । उपस्थिता च या योषिदत्याज्या रागिणामपि ॥१०॥
श्रुतौ श्रुतमिति त्याज्या सर्वदैव तपस्विनाम् । अहो सर्वैः परित्याज्या पुंश्चली च विशेषतः ॥११॥
धनायुः प्राणयशसां नाशिनी दुःखदायिनी । स्वकार्यतत्परा शश्वत्परकार्यविनाशिनी ॥१२॥
निष्ठुरा नवघातिभ्यः सर्वापद्बीजरूपिणी । विद्युद्दीप्तिर्जले रेखा लोभान्मैत्री यथा भवेत् ॥१३॥
परद्रोहाद्यथा संपत्कुलटाप्रेम तत्समम् । सर्वेभ्यो हिंस्रजन्तुभ्यो विपद्बीजा सदैव हि ॥१४॥
यो विश्वसेत्तां संमूढो विपत्तस्य पदे पदे । त्वं च रूपवती धन्या वञ्चिता कामुकैः सदा ॥१५॥
यूनां संपत्स्वरूपा च विषतुल्या तपस्विनाम् । त्वमेवाप्सरसां श्रेष्ठा सर्वदा स्थिरयौवना ॥१६॥
तवैव कर्म योग्यं च युवानं पश्य सुन्दरि । त्वं विदग्धा च योषित्सु विदग्धान्वेषणं कुरु ॥१७॥
विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत् । जरातुरोऽहं वृद्धश्च तपस्वी वैष्णवो द्विजः ॥१८॥
अस्वतन्त्रः पराधीनः का रतिः पुंश्चलीषु मे । अये वत्से गच्छ शीघ्रं विहाय पितरं च माम् ॥१९॥
नाम्नाऽहं च जगत्स्रष्टा तस्मात्तव पिता सदा । मन्मथं चन्द्रमित्रं च जयन्तं नलकूबरम् ॥२०॥
स्ववैंद्यौ चन्द्रतनयं दितिपुत्रांश्च सुन्दरान् । कामशास्त्रेषु निष्णातान्रतिकर्मविशारदान् ॥२१॥

करने वाला हूँ, अतः वेद में जो निन्दित कर्म है, उसे करने में मैं असमर्थ हूँ ॥९॥ वेद-वक्ता को इससे बढ़ कर अयश और निन्द्य कर्म क्या हो सकता है? कामभावना से उपस्थित होने वाली स्त्री अनुरागी पुरुषों के लिए भी त्याग करने योग्य है और तपस्वियों को तो सर्वदा ही उसका त्याग कर देना चाहिए, ऐसा वेद में सुना है। अहो! विशेषकर पुंश्चली स्त्री सभी के लिए त्याज्य है ॥१०-११॥ पुंश्चली स्त्री धन, आयु, प्राण और यश का नाश करने वाली, दुःखदायिनी, अपने ही कार्य में निरन्तर तत्पर रहने वाली एवं दूसरे के कार्य को नष्ट करने वाली है ॥१२॥ वह नये घातक प्राणियों से भी बढ़ कर निष्ठुर तथा समस्त आपत्तियों की बीजरूपा है। कुलटा का प्रेम बिजली की कौंध, जल की रेखा, लोभवश मैत्री तथा परद्रोहवश सम्पत्ति के समान (क्षणिक) होता है। कुलटा स्त्री समस्त हिंसक जन्तुओं से बढ़कर विपत्ति का कारण होती है ॥१३-१४॥ जो मूर्ख उसका विश्वास करता है, उसे पग-पग पर विपत्ति प्राप्त होती है। तुम रूपवती एवं धन्य हो, कामुक जनों से सदा वञ्चित रहती हो ॥१५॥ युवापुरुषों की सम्पत्ति स्वरूप और तपस्वियों के लिए विष के समान हो। तुम्हीं अप्सराओं में श्रेष्ठ और सदा स्थिर यौवन वाली हो ॥१६॥ हे सुन्दरि! तुम्हारे ही कर्म के योग्य किसी युवा पुरुष को ढूंढ़ो। तुम स्त्रियों में चतुर हो, इसलिए किसी चतुर पुरुष की खोज करो ॥१७॥ चतुर स्त्री का चतुर पुरुष के साथ संगम गुणवान् होता है। मैं तो वृद्धावस्था से आतुर, वृद्ध, तपस्वी, वैष्णव ब्राह्मण, अस्वतन्त्र और पराधीन हूँ। पुंश्चलियों में मेरा क्या अनुराग होगा? वत्से! मुझ पिता को छोड़ कर तुम शीघ्र चली जाओ ॥१८-१९॥ मैं नाम से जगत्स्रष्टा हूँ, इसलिए तुम्हारा सदा पिता हूँ, तुम चन्द्रमित्र, कामदेव, जयन्त, नलकूबर, अश्विनीकुमार, बुध और सुन्दर दिति-पुत्रों के पास जाओ। वे कामशास्त्र में निपुण एवं रति-कर्म में

या मां यासि हि तांस्त्यक्त्वा सा विदग्धा च कामुकी। सदा संभोगविषये स्त्रियं प्रार्थयते पुमान् ॥२२॥
स्त्री चेत्प्रयाति पुरुषं विपरीतं विडम्बनम्। सर्वेषां चैव रत्नानां स्त्रीरत्नं दुर्लभं परम् ॥२३॥
स्वयं प्रार्थयते स्वामी न तु स्वामिनमेव च। योषिज्जातिषु धिक् ताश्च स्वयं याः समुपस्थिताः ॥२४॥
भवेद्दूरं स्वल्पमूल्यं रत्नं स्वयमुपस्थितम्। नित्यं पुमान्स्त्रियं याति स्त्री वा याति च न प्रियम् ॥२५॥
लोकाचारेषु वेदेषु न स्त्री याति परप्रियम्। स्ववस्तु भुङ्क्ते यः काले शास्त्रोक्तविधिपूर्वकम् ॥२६॥
स पूज्यो न भवेत्पूज्यो यद्रतिः परवस्तुषु। कः कस्य शत्रुरबले निशामय जगत्त्रये ॥२७॥
स्वेन्द्रियाः शत्रवः सर्वे शत्रुता यन्निमित्ततः। वेदोक्ताचरणे सर्वं मित्रं च जगतां जगत् ॥२८॥
कृते वेदविरुद्धे च मित्रं शत्रुर्भवेद्ध्रुवम्। वेदोक्तं कृतवन्तं च हरिस्तुष्टो दिवानिशम् ॥२९॥
हरौ तुष्टे जगत्तुष्टं तस्मिन्रुष्टे भवो रिपुः। कुत्रास्ति कुलटाजातिः साध्वीजातिश्च कुत्र वा ॥३०॥
स्वकीयाचरणात्सर्वं भवे भवति कर्मणः। स्त्रीजातिः प्रकृतेरंशा नारायणविनिर्मिता ॥३१॥
दुःशीला पुंश्चली निन्द्या सुशीला च पतिव्रता। पतिव्रतास्तु त्रिविधाः पुंश्चलीषु च योषितः ॥३२॥

दक्ष हैं ॥२०-२१॥ जो तुम उन्हें त्यागकर मेरे पास आयी हो सो तुम निपुण कामुकी कैसे हो? संभोग के विषय में सदा पुरुष ही स्त्री की प्रार्थना करता है, यदि स्त्री पुरुष के पास जाती है तो यह एक विपरीत विडम्बना है। सभी रत्नों में स्त्री-रत्न परम दुर्लभ होता है ॥२२-२३॥ स्वामी स्वयं स्त्री की प्रार्थना करता है, न कि स्त्री ही स्वामी की प्रार्थना करती है। स्त्री जातियों में उन स्त्रियों को धिक्कार है, जो स्वयं (पुरुषों के पास) उपस्थित होती हैं ॥२४॥ रत्न के स्वयं उपस्थित होने पर उसका मूल्य बहुत कम हो जाता है। नित्य पुरुष ही स्त्री के पास जाता है, स्त्री प्रिय के पास नहीं जाती है ॥२५॥ लोकाचारों और वेदों में ऐसा नहीं देखा गया है कि स्त्री परपुरुष के पास जाती है। जो समय पर अपनी ही वस्तु का शास्त्रविधान द्वारा उपभोग करता है, वही पूज्य है, दूसरे की वस्तु से प्रेम करने वाला पूज्य नहीं है। हे अबले! तीनों लोकों में कौन किसका शत्रु है? ॥२६-२७॥ अपनी ही सब इन्द्रियाँ शत्रु हैं, जिनके निमित्त शत्रुता उत्पन्न होती है। वेदानुसार आचरण करने पर सारा जगत् मित्र हो जाता है ॥२८॥ वेद-विरुद्ध आचरण करने पर मित्र भी शत्रु हो जाता है और वेदानुसार चलने वाले पर भगवान् दिन-रात प्रसन्न रहते हैं ॥२९॥ भगवान् के तुष्ट रहने पर संसार तुष्ट रहता है और उनके रुष्ट होने पर संसार शत्रु हो जाता है। कहाँ है कुलटा जाति? अथवा पतिव्रता जाति ही कहाँ है? ॥३०॥ संसार में अपने ही आचरण द्वारा किये गये कर्म से सब कुछ होता है। स्त्री जाति प्रकृति के अंश से उत्पन्न हुई है जिसका निर्माण नारायण ने स्वयं किया है ॥३१॥ दुःशील स्त्री पुंश्चली और निन्दनीय होती है और सुशील स्त्री पतिव्रता होती है। पतिव्रतायें तीन प्रकार की होती हैं। पुंश्चली स्त्रियों का ऐसा कोई भेद नहीं

तासामेवंविधा नास्ति स्वयं याति परप्रियम्। स्त्रीजातीनां च मध्ये च काऽस्त्येवं कुलकज्जला ।।३३।।
भवे रत्यै स्वयं दृष्ट्वा वेषं कृत्वा प्रयाति तम्। क्षोभिता यदि पश्यन्ती भक्ष्यद्रव्यमसाध्यकम् ।।३४।।
वैकुल्यान्नहि तत्साध्यं सामान्यमेव केवलम् । इत्येवमुक्त्वा जगतां विधाता विरराम च
वक्तुं समुद्यता सा च कोपप्रस्फुरिताधरा ।।३५।।

मोहिन्युवाच

ज्ञातं सर्वं जगद्धातश्चरितं तव सांप्रतम् ।।३६।।
त्वया निबोधिता नीतिर्मनो मे न स्थिरं भवेत्। भूतं त्वयि विशिष्टं[1] च यावद्दृष्टः क्षणे भवान् ।।३७।।
त्वद्वक्त्रदृष्टिमात्रेण सर्वे जाराश्च विस्मृताः। देहं कामाग्निना दग्धं यदा त्यक्तुं समुद्यता ।।३८।
निषिषेध च मां रम्भा प्रददौ मन्त्रमीदृशम् । तदा कामसहायेन त्वत्समीपं समागता ।।३९।।
समधुस्तव शापेन स जगाम हतोद्यमः । अहो गन्तुमशक्ताऽहं त्वया यद्यपि भर्त्सिता ।।४०।।
सर्वाङ्गेष्वेव मे जाड्यं बभूव सांप्रतं विभो । कृपां कुरु कृपासिन्धो न मां हन्तुं त्वमर्हसि ।।४१।।
तवाऽऽश्लेषणमात्रेण विज्वराऽहं सुनिश्चितम्। त्वमेव जगतां धाता कुलटाऽहं च कर्मणा ।।४२।।

है। जो स्त्री स्वयं परपुरुष के पास जाती है, वह स्त्री-जातियों के बीच कुल की काजल है ।।३२-३३।। ऐसी स्त्री संसार में रति के लिए स्वयं वेश बनाकर परपुरुष के पास जाती है। यदि भक्ष्य द्रव्य को देखती हुई वह क्षुब्ध कर दी जाती है तो अकुलीन होने के कारण उसे साध्य नहीं किया जा सकता, वह केवल सामान्य ही है। इतना कहकर जगद्विधाता (ब्रह्मा) चुप हो गये और क्रोध से फड़कते हुए ओठ वाली वह (अप्सरा) बोलने के लिए उद्यत हो गई ।।३४-३५।।

मोहनी बोली—हे जगत् के धाता! मुझे इस समय तुम्हारा सब चरित मालूम हो गया है ।।३६।। तुमने जो नीति सुनाई है, इससे मेरा मन स्थिर नहीं होगा। जिस क्षण आपको देखा तभी से आप में मेरा मन लग गया है। तुम्हारे मुख देखने मात्र से सभी जार विस्मृत हो गये। यह हमारी देह काम की अग्नि से दग्ध होने लगी। जब मैं इसका त्याग करने को तैयार हुई तो रम्भा ने मुझे मना किया और इस प्रकार की मंत्रणा दी। तब मैं काम को सहायक बनाकर तुम्हारे समीप आयी ।।३७-३९।। तुम्हारे शाप के कारण वह असफल होकर वसन्त को साथ लिये चला गया। यद्यपि तुमने मेरी भी भर्त्सना की किन्तु मैं जाने में असमर्थ हूँ ।।४०।। विभो! इस समय मेरे सभी अंगों में जड़ता आ गयी है। कृपासिन्धो! मुझ पर कृपा करो, मेरी हत्या करना तुम्हें उचित नहीं है ।।४१।। यह सुनिश्चित है कि—'तुम्हारे आलिङ्गन मात्र से मैं सन्ताप से मुक्त हो जाऊँगी। कर्मवश तुम्हीं जगत् के विधाता हुए हो और मैं कुलटा हुई हूँ ।।४२।। सज्जन लोग गर्व नहीं करते हैं।

---

[1] क. निविष्टं।

सन्तो गर्वं न कुर्वन्ति कर्मसाध्याश्च जीविनः। कश्चित्प्रयाति यानेन वहन्ति तं च केचन ॥४३॥
करं गृह्णाति नृपतिः कर्मणा ददति प्रजाः । कश्चित्सिंहासनस्थश्च नृपमात्रश्च[१] कश्चन ॥४४॥
केचिद्भूता बहुविधास्तत्र तस्य स्वकर्मणा । यान्ति केचिदश्वपृष्ठैर्गजपृष्ठैश्च केचन ॥४५॥
कर्मणा वाहकाः केचित्केचिद्वाहनपालकाः । सूकरीजठरं कश्चित्संप्रयाति स्वकर्मणा ॥४६॥
कश्चिच्छच्याश्च जठरं तव पुत्राश्च केचन । केचित्कृत्वा हरेर्भक्ति कर्मणा तस्य पार्षदाः ॥४७॥
केचिद्भवन्ति कृमयो विष्ठायां दैवदोषतः । स्वर्गं प्रयान्ति राजेन्द्राः केचिच्च स्वस्वकर्मणा ॥४८॥
केचित्प्रयान्ति नरकं विण्मूत्रे तत्र पच्यते । कर्मणा कश्चिदिन्द्रेन्द्रः सुराणां प्रवरः स्वयम् ॥४९॥
केचित्सुरा नराः केचित्केचिच्च क्षुद्रजन्तवः । केचिच्च कर्मणा विप्रा वर्णश्रेष्ठा महीतले ॥५०॥
केचिद्भूपा वैश्यशूद्राः केचिच्च म्लेच्छजातयः । केचित्स्वकर्मणा प्राज्ञा ज्ञानेन सर्वदर्शिनः ॥५१॥
केचिन्मूर्खाः केचिदन्धा स्वाङ्गहीनाश्च केचन। केचिच्छास्त्रं बोधयन्ति शिष्यवर्गान्स्वकर्मणा ॥५२॥
केचित्पठन्ति सर्वार्थं जानन्ति गुरुवक्त्रतः । भवन्ति कर्मणा केचिद्देहे स्थावरजङ्गमे ॥५३॥
तपस्वी नवघाती च त्वं च ब्रह्मा च कर्मणा। काचित्स्वकर्मणा साध्वी पूज्येह च परत्र च ॥५४॥

प्राणी कर्मसाध्य होते हैं। अतएव कोई सवारी से चलता है और कुछ लोग उसको ढोते हैं ॥४३॥ (कर्म से) राजा कर ग्रहण करता है और प्रजायें उसे देती हैं। कोई सिंहासन पर बैठता है और कोई नाम मात्र का ही राजा है ॥४४॥ अपने कर्म से कोई अनेक प्रकार के हो गये हैं। (कर्म से ही) कोई अश्व की पीठ पर और कोई हाथी की पीठ पर बैठकर चलते हैं ॥४५॥ कर्म से कोई वाहक होते हैं और (कर्म से ही) वाहन-पालक होते हैं। अपने कर्म से कोई सूकरी के गर्भ में जाता है ॥४६॥ कोई इन्द्राणी के गर्भ में जाता है, कोई आपके पुत्र होते हैं। कोई हरि की दास्य-भक्ति करके उनके पार्षद होते हैं ॥४७॥ कोई भाग्य के दोष से विष्ठा के कीड़े होते हैं। कोई राजेन्द्र अपने कर्म के प्रभाव से स्वर्ग को जाते हैं ॥४८॥ कोई नरक में जाते हैं और वहाँ विष्ठा एवं मूत्र में पकते हैं। कोई कर्म से देवप्रवर इन्द्र के भी इन्द्र होते हैं ॥४९॥ कोई देवता, कोई मनुष्य और कोई क्षुद्र जन्तु होते हैं। कोई कर्म के प्रभाव से भूतल पर वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मण होते हैं ॥५०॥ कोई भूप, कोई वैश्य, कोई शूद्र और कोई म्लेच्छ होते हैं। कोई अपने कर्म से विद्वान् और कोई ज्ञान से सर्वदर्शी होते हैं ॥५१॥ कोई मूर्ख, कोई अन्धे, कोई अङ्गहीन होते हैं। कोई अपने कर्म से शिष्यों को शास्त्र का बोध कराते हैं ॥५२॥ कोई पढ़ते हैं और गुरु के मुख से सभी पदार्थ को जान लेते हैं। कोई स्थावर और कोई जंगम की देह धारण करते हैं ॥५३॥ कोई तपस्वी और कोई नवीन घात करने वाला होता है। तुम कर्म से ब्रह्मा हुए हो। कोई स्त्री अपने कर्म से पतिव्रता एवं दूसरे लोक में पूज्य होती है ॥५४॥ कोई वेश्या

---

[१] क. °पपात्र° ।

काचिद्वेश्या तदाहारं भुङ्क्ते कृत्वाऽङ्गविक्रयम् । स्ववेंश्याऽहं सुरपुरे सुरभोग्या सुपूजिता ॥५५॥
तेषामालिङ्गनेनैव कर्मणां खण्डनं भवेत् । मनः स्वभावबीजं च स्वभावः कर्मबीजकः ॥५६॥
तत्कर्मफलबीजं च सर्वेषां जनको हरिः । फलं ददाति नियतं कर्मद्वारा विभुः स्वयम् ॥५७॥
सर्वेभ्यो बलवान्नित्यं कर्मरूपी जनार्दनः । कुतो हेतोर्निन्दिताऽहं त्वयैव भर्त्सिता कथम् ॥५८॥
जगत्स्रष्टुरीश्वरस्य पादाब्जं द्रष्टुमागता । स्वप्ने यस्य पदद्वन्द्वं न हि पश्यन्ति योगिनः ॥५९॥
तमीश्वरं पतिं कर्तुमिच्छया स्वयमागता । गत्वा हि कस्यचित्स्थानमस्पृश्येह परत्र च ॥६०॥
कस्यचित्पादरजसा यशसा भान्ति योषितः । इत्युक्त्वा मोहिनी शीघ्रं गत्वोवास विधेः पुरः ॥६१॥
स्वयं विधाता जगतां चकम्पे कुलटाभयात् । सस्मिता वक्रनयना कामभावं चकार ह ॥६२॥
स्वाङ्गं च दर्शयामास कामबाणप्रपीडिता । एतस्मिन्नन्तरे कामः सर्वज्ञः सर्वयोगवित् ॥६३॥
आविर्भूय पञ्चबाणान्निचिक्षेप च ब्रह्मणि । सम्मोहनं समुद्वेगं बीजस्तम्भितकारणम् ॥६४॥
उन्मत्तबीजं ज्वलदं शश्वच्चेतनहारकम् । एतान्प्रक्षिप्य मदनोऽप्यन्तरिक्षस्थितः स्वयम् ॥६५॥
किंकरान्प्रेषयामास संमोहाय पितुर्मुदा । वसन्तं कोकिलालीश्च गन्धवातं मनोहरम् ॥६६॥
नियुज्याभ्यन्तरं गत्वा तद्विकारं चकार ह । पुंस्कोकिलः कलं रावमुवाच तत्समीपतः ॥६७॥
षट्पदः सुन्दरं सूक्ष्मं जुगुञ्जे पुरतः स्थितः । शश्वद्ववौ गन्धवहो मन्दोऽतिशीतलः प्रिये ॥६८॥

होती है, जो अपने अंगों का विक्रय करके जीविका चलाती है। मैं स्वर्ग की वेश्या हूँ, सुरपुरी में देवताओं की भोग्या तथा सम्मानित हूँ ॥५५॥ उन (देवताओं) के आलिङ्गन मात्र से कर्मों का खंडन हो जाता है। मन का बीज है स्वभाव और स्वभाव का बीज कर्म है ॥५६॥ उस कर्म और फल के बीज हैं सर्वोत्पादक हरि। स्वयं परमात्मा ही कर्म के द्वारा नियत फल देते हैं ॥५७॥ कर्मरूपी जनार्दन सब से बलवान् होते हैं। किस कारण मैं निन्दित हूँ? और तुमने ही मेरी भर्त्सना क्यों की? ॥५८॥ मैं तो जगत् स्रष्टा ईश्वर के चरणों का दर्शन करने आयी हूँ, जिसके चरणयुगल का दर्शन योगी स्वप्न में भी नहीं कर पाते हैं ॥५९॥ उसी ईश्वर को पति वनाने की इच्छा से मैं स्वयं आयी हूँ। किसी दूसरे के स्थान में जाकर (जाने से) मैं इस लोक तथा परलोक में भी अस्पृश्य हो जाऊँगी। क्योंकि स्त्रियाँ किसी एक की चरणधूलि से यशस्विनी होती है। यह कह कर मोहिनी शीघ्र ब्रह्मा के आगे जाकर बैठ गयी ॥६०-६१॥ जगत् के विधाता (ब्रह्मा) कुलटा के भय से काँपने लगे। मोहिनी मुसकराकर तिरछी चितवन से कामभाव प्रकट करने लगी ॥६२॥ काम के बाणों से अति पीडित होने के कारण उसने अपने अङ्गों को दिखाया। इसी बीच सर्वज्ञ एवं समस्त योगों के वेत्ता काम ने प्रकट होकर ब्रह्मा के ऊपर पाँचों वाणों को चला दिया—सम्मोहन, समुद्वेग, बीजस्तम्भितकारण, ज्वलद उन्मत्तवीज तथा निरन्तर चेतनाहारक—इनको चलाकर कामदेव स्वयं आकाश में स्थित हो गया ॥६२-६५॥ उसने हर्ष से पिता को मोहित करने लिए अपने सेवकों को भेजा। उसके सेवक में थे—वसन्त ऋतु, कोयल, भ्रमर तथा मनोहर सुगन्धित वायु ॥६६॥ काम स्वयं भी ब्रह्मा के भीतर प्रविष्ट होकर विकार उत्पन्न करने लगा। उनके समीप नर कोकिल मधुर शब्द करने लगा। सामने स्थित होकर भौंरा गुञ्जार करने लगा।

सततं मुदितस्तत्र बभ्राम च मधुः स्वयम् । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो बभूव जगतां विधिः ॥६९॥
ददर्श मोहिनीभावं प्रहस्य च पुनः पुनः । अतीव वक्रनयना कामास्त्रहतचेतना ॥७०॥
विधाता बुबुधे सर्वं सर्वधर्मनिबन्धनम्[1] । नियन्तुं न मनः शक्तः सस्मार श्रीहरिं भिया ॥७१॥
तुष्टाव मनसा कृष्णं शान्तं हृत्पङ्कजस्थितम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं हरिं पीताम्बरं परम् ॥७२॥
अतीव कमनीयं च किशोरं स्थिरयौवनम् । रत्नालंकारभूषाढ्यं सस्मितं श्यामसुन्दरम् ॥७३॥

ब्रह्मोवाच

रक्ष रक्ष हरे मां च निमग्नं कामसागरे । दुष्कीर्तिजलपूर्णे च दुष्पारे बहुसंकटे ॥७४॥
भक्तिविस्मृतिबीजे च विपत्सोपानदुस्तरे । अतीव निर्मलज्ञानचक्षुःप्रच्छन्नकारणे ॥७५॥
जन्मोर्मिसंघसहिते योषिन्नक्रौघसंकुले । रतिस्रोतःसमायुक्ते गम्भीरे घोर एव च ॥७६॥
प्रथमामृतरूपे च परिणामविषालये । यमालयप्रवेशाय मुक्तिद्वारातिविस्तृते ॥७७॥
बुद्ध्या तरण्या विज्ञानैरुद्धरास्मानतः स्वयं । स्वयं च त्वं कर्णधारः प्रसीद मधुसूदन ॥७८॥
मद्विधाः कतिचिन्नाथ नियोज्या भवकर्मणि । सन्ति विश्वेश[2] विधयो हे विश्वेश्वर माधव ॥७९॥

शीतल, मन्द, सुगन्ध, वायु बहने लगा। प्रिये ! वहाँ स्वयं वसन्त मुदित होकर भ्रमण करने लगा। तब जगत् के विधाता ब्रह्मा सर्वाङ्ग से पुलकित हो उठे ॥६७-६९॥ उन्होंने बार-बार हँसकर मोहिनी का भाव देखा। वह तिरछी चितवनवाली काम के अस्त्रों से चेतना खो बैठी ॥७०॥ विधाता ने समस्त धर्मों के निबन्धन को जान लिया, किन्तु अपने मन को नियन्त्रित न कर सके। तब भय से श्रीहरि का स्मरण करने लगे। उन्होंने मन से, शान्त, हृदय-कमल पर विराजमग्न, दो भुजाओं वाले, हाथ में मुरली लिये हुए, पीताम्बरधारी, श्रेष्ठ, अत्यन्त कमनीय, किशोर, स्थिर यौवन वाले, रत्नों के आभूषणों से सम्पन्न, मन्द मुसकान से युक्त, श्याम सुन्दर कृष्ण की स्तुति करने लगे ॥७१-७३॥

ब्रह्मा बोले--हे हरे ! मेरी रक्षा करो, मैं कामसागर में डूब रहा हूँ, जो दुष्कीर्तिरूपी जल से पूर्ण, अति कठिनाई से पार किया जाने वाला एवं अतिसंकटमय है ॥७४॥ वह भक्ति के विस्मरण का बीज (मूलकारण), विपत्तिरूपी सोपान (सीढ़ियों) के कारण दुस्तर, निर्मल ज्ञानरूपी नेत्र को अत्यन्त प्रच्छन्न करने वाला, जन्म रूपी तरङ्गसमुदाय से युक्त, स्त्री रूपी मगर समूह से व्याप्त, रतिरूपी नदियों से युक्त तथा भयंकर है ॥७५-७६॥ वह आरम्भ में अमृत रूप तथा परिणाम में विष का घर है और यमपुरी में प्रवेश के लिए अति विस्तृत खुला दरवाजा है ॥७७॥ इसलिए हे मधुसूदन ! अपनी बुद्धिरूपी नौका से विज्ञान के द्वारा स्वयं पार करो। तुम स्वयं कर्णधार (पतवार चलाने वाले) हो, प्रसन्न हो जाओ ॥७८॥ हे नाथ ! हे विश्वेश, हे विश्वेश्वर, हे माधव ! इस संसार-सृष्टि के कार्य में मेरे समान अनेकों ब्रह्मा नियुक्त हैं। यद्यपि यह अभीष्ट ब्रह्मलोक है, कर्मक्षेत्र

---

[1] ख. °र्वबन्धनि° । [2] क. °श्वेषु वि° ।

Funding by IKS-MoE

न कर्मक्षेत्रमेवेदं ब्रह्मलोकोऽयमीप्सितः । तथाऽपि[1] न स्पृहा कामे त्वद्भक्तिव्यवधायके ॥८०॥
हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो कृपां कुरु । त्वं महेश महाज्ञाता दुःस्वप्नं मां न दर्शय ॥८१॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम सनातनः । ध्यायं ध्यायं मत्पदाब्जं शश्वत्सस्मार मामिति ॥८२॥
ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् । स चैवाऽऽकर्ण्य विषये न निमग्नो भवेद्ध्रुवम् ॥८३॥
मम मायां विनिर्जित्य संज्ञानं लभते ध्रुवम् । इह लोके भक्तियुक्तो मद्भक्तप्रवरो भवेत् ॥८४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाप्रश्ने ब्रह्ममोहिनीसं०
श्रीकृष्णस्तोत्रं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

नहीं, तथापि तुम्हारी भक्ति में व्यवधान डालने वाले काम की इच्छा नहीं है ॥७९-८०॥ हे नाथ ! करुणासिंधो ! हे दीनबन्धो ! मेरे ऊपर कृपा करो । हे महेश ! तुम महान् ज्ञाता हो, मुझे दुःस्वप्न न दिखाओ ॥८१॥ इतना कहकर जगत् के विधाता एवं सनातन ब्रह्मा चुप हो गये और बार-बार मेरे चरण-कमलों में ध्यानपूर्वक निरन्तर मेरा स्मरण करने लगे ॥८२॥ इस प्रकार ब्रह्मा-कृत स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक पाठ या श्रवण करेगा, वह विषय में नहीं फँसेगा, यह निश्चित है ॥८३॥ वह मेरी माया को जीत कर निश्चित रूप से सम्यक् ज्ञान प्राप्त करेगा तथा मेरा श्रेष्ठ भक्त होगा ॥ ८४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में राधा के प्रश्न के प्रसंग में ब्रह्मा और मोहिनी के संवाद में बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३२॥

---

[1] ख. °पि नः स्पृ° ।

Funding by IKS-MoE

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

कृत्वा ब्रह्मा हरेः स्तोत्रं तस्थौ तस्याः समीपतः। मनो मत्तगजेन्द्रं च कामासक्तं निवारयन् ॥१॥
दिव्यज्ञानाङ्कुशेनैव मया दत्तेन राधिके। उवाच मोहिनी तं च परिहासपरं वचः ॥२॥

मोहिन्युवाच

इङ्गितेनैव नारीणां सद्यो मत्तं भवेन्मनः। करोत्याकृष्य संभोगं यः स एवोत्तमो विभो ॥३॥
ज्ञात्वा स्फुटमभिप्रायं नार्या संप्रेषितो हि यः। पश्चात्करोति शृङ्गारं पुरुषः स च मध्यमः ॥४॥
पुनः पुनः प्रेषितश्च स्त्रिया कामार्तया च यः। तया न लिप्तो रहसि स क्लीबो न पुमानहो ॥५॥
गृही तपस्वी कामी वा त्यजेत्स्त्रियमुपस्थिताम्। व्रजेत्परत्र नरकमपूज्यश्च भवेदिह ॥६॥
नष्टश्रीर्भ्रष्टरूपश्च भ्रष्टबुद्धिर्भवेद्ध्रुवम्। स सद्यः क्लीबतां याति ब्रह्मञ्छापेन योषितः ॥७॥
उत्तिष्ठ जगतीनाथ पारं कुरु स्मरार्णवे। निमग्नां दुस्तरे घोरे कर्णधार भयानके ॥८॥

अध्याय ३३

मोहिनी का शाप और ब्रह्मा का दर्पभंग

श्रीकृष्ण बोले—हे राधिके! मेरे दिये हुए दिव्यज्ञानरूपी अंकुश द्वारा मतवाले गजेन्द्र के समान कामासक्त मन को रोकते हुए ब्रह्मा हरि की स्तुति करके मोहिनी के समीप स्थित हुए। तब मोहिनी उनसे परिहास (मजाक) की बात कहने लगी ॥१-२॥

मोहिनी बोली—विभो! स्त्रियों के संकेत मात्र से जिस का मन तुरन्त मतवाला हो जाये और स्त्री को खींचकर सम्भोग कर ले, वही, उत्तम पुरुष है ॥३॥ जो स्त्री के स्पष्ट अभिप्राय को जानकर उसके द्वारा प्रेरित होने के पश्चात् सम्भोग करता है, वह मध्यम पुरुष है ॥४॥ और जो कामपीडित स्त्री द्वारा बार-बार प्रेरित होने पर भी एकान्त स्थल में उसके साथ सम्भोग नहीं करता, वह नपुंसक है, पुरुष नहीं ॥५॥ गृहस्थ, तपस्वी या कामी (इनमें से जो कोई स्वयं) उपस्थित स्त्री का त्याग करता है, वह मरने पर नरक में जाता है और इस लोक में अपूज्य (असम्मानित) होता है ॥६॥ उसकी श्री नष्ट हो जाती है, रूप (सौन्दर्य) बिगड़ जाता है, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और हे ब्रह्मन्! वह स्त्री के शाप से तुरन्त नपुंसक हो जाता है ॥७॥ अतः जगत् के नाथ, कर्णधार! दुस्तर, घोर एवं भयानक काम के सागर में डूबती हुई मुझे पार लगाने के लिए

अतीव निर्जनस्थाने सर्वजन्तुविवर्जिते । सुगन्धिवायुना रम्ये पुंस्कोकिलरुतश्रुते ॥९॥
सततं त्वन्मनस्कां मां दासीं जन्मनि जन्मनि । क्रीणीहि रतिपण्येनामूल्यरत्नेन सत्वरम् ॥१०॥
इत्युक्त्वा मोहिनी सद्यो जगत्स्रष्टुश्च ब्रह्मणः । विचकर्ष वरं[१] वस्त्रं सस्मिता कामविह्वला ॥११॥
विज्ञाय समयं धाता तामुवाच भयातुरः । पीयूषतुल्यं वचनं वरं विनयपूर्वकम् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

शृणु मोहिनि मद्वाक्यं सत्यसारं हितं स्फुटम् । न कुरु त्वं च त्रैलोक्ये स्त्रीजातीनामपत्रपाम् ॥१३॥
त्यज मामम्बिके पुत्रं वृद्धं निष्काममेव च । त्वत्कर्म योग्यरसिकं युवानं पश्य सुस्मिते ॥१४॥
निषेकाल्लभते पत्नी गुरुभर्तुः शुभाशुभम् । मन्त्रशिल्पमपत्यं च सर्वमेतन्न यत्नतः ॥१५॥
त्वया सह मम रतेर्निर्बन्धो नास्ति सुव्रते । क्षुद्रं महद्वा यत्कर्म सर्वं दैवनिबन्धकम् ॥१६॥
इत्युक्तवन्तं ब्रह्माणं स्मरन्तं मत्पदाम्बुजम् । विचकर्ष पुनर्वेश्या कामेन हतचेतना ॥१७॥
एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रं स्थानं तत्सुमनोहरम् । आजग्मुर्मुनयः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा ॥१८॥
अत्रिः पुलस्त्यः पुलहो वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराः । भृगुर्मरीचिः कपिलो वोढुः पञ्चशिखो रुचिः ॥१९॥
आसुरिश्च प्रचेताश्च स्वयं शुक्रो बृहस्पतिः । उतथ्यः करकः कण्वः कश्यपो गौतमस्तथा ॥२०॥

शीघ्र उठो ॥८॥ सभी जीव-जन्तुओं से शून्य, सुगन्धित वायु से रमणीय और पुरुष-कोकिल की कूक से शब्दित अत्यन्त निर्जन स्थान में जन्म-जमान्तर की मुझ दासी को, जो निरन्तर तुम्हीं में मन लगाये रहती है, रतिक्रीड़ा रूपी अमूल्य रत्न द्वारा खरीद लो ॥९-१०॥ इतना कहकर मुसकराती हुई कामविह्वल मोहिनी तुरन्त ब्रह्मा का उत्तम वस्त्र खींचने लगी ॥११॥ समय को जानकर भय से व्याकुल ब्रह्मा ने उससे विनयपूर्वक अमृततुल्य श्रेष्ठ वचन कहा ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—हे मोहिनि ! सत्य का निचोड़, हितकर और स्पष्ट मेरा वाक्य सुनो । तुम तीनों लोक में स्त्री-जाति को लज्जित मत करो ॥१३॥ माता ! मुझ वृद्ध एव निष्काम पुत्र को छोड़ दो । हे सुन्दर मुसकान वाली ! तुम्हारे कर्म के योग्य किसी रसिक तरुण को देखो ॥१४॥ पत्नी गर्भाधान के द्वारा गुरु पति से शुभ, अशुभ मन्त्र, शिल्प और सन्तान को प्राप्त करती है, यह सब प्रयत्न करने से नहीं होते हैं ॥१५॥ हे सुव्रते ! तुम्हारे साथ मेरी रति का कोई निर्बन्ध (शर्त) नहीं है । छोटे-बड़े सभी कर्मों के होने में दैव ही मुख्य कारण हैं ॥१६॥ इतना कह कर ब्रह्मा मेरे चरण-कमल का स्मरण करने लगे और उस वेश्या ने काम से आहत होने के कारण पुनः उनका वस्त्र खींचने लगी ॥१७॥ इसी बीच ब्रह्मतेज से चमकते हुए सभी मुनिगण उस मनोहर स्थान में शीघ्र ही आ पहुँचे ॥१८॥ (यथा) अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, वसिष्ठ, क्रतु, अंगिरा, भृगु, मरीचि, कपिल, वोढु, पञ्चशिख, रुचि, आसुरि, प्रचेता, शुक्र, बृहस्पति, उतथ्य, करक, कण्व, कश्यप, गौतम, सनक, सनन्द, कर्दम,

---

[१] क. करं ।

सनकश्च सनन्दश्च कर्दमश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवान्योगिनां परमो गुरुः ॥२१॥
शातातपः पिप्पलश्च शङ्कुः शुक्रः पराशरः । मार्कण्डेयो लोमशश्च मृकण्डुश्च्यवनस्तथा ॥२२॥
दुर्वासाश्च जरत्कारुरास्तीकश्च विभाण्डकः । ऋष्यश्रृङ्गो भरद्वाजो वामदेवश्च कौशिकः ॥२३॥
दृष्ट्वैतांश्च तपोनिष्ठानागतांश्च मुनीश्वरान् । तत्याज मोहिनी शीघ्रं व्रीडया कमलोद्भवम् ॥२४॥
तत्रोवास जगद्धाता तद्वामपार्श्वतश्च सा । प्रणेमुर्मुनयस्तं च भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥२५॥
आशिषं युयुजे ब्रह्मा वासयामास तान्विभुः । तेषु मध्ये प्रजज्वाल यथा तारासु चन्द्रमाः ॥२६॥
पप्रच्छुर्मुनयो देवं कथमेषा तवान्तिके । स्ववेंश्यानां च प्रवरा मोहिनीत्येवमेव च ॥२७॥
श्रुत्वा मुनीनां वचनमुवाच तान्प्रजापतिः । स्त्रीजातीनां च वचनं लज्जाच्छादनमेव च ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

अपूर्वं नृत्यगीतं च चिरं कृत्वा शुभावहा । उवासेयं परिश्रान्ता यथा कन्या पितुः पुरः ॥२९॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता जहास मुनिसंसदि । जहसुर्मुनयः सर्वे सर्वज्ञास्तत्र राधिके ॥३०॥
सर्वं रहस्यं विज्ञाय जगत्स्रष्टुश्च मानसम् । सद्यश्चुकोप कुलटा हास्यव्याजेन संसदि ॥३१॥
सर्वाङ्गकम्पमाना सा कुलटा कुटिलानना । रक्तपङ्कजनेत्रा च कोपप्रस्फुरिताधरा ॥३१॥
उत्थाय च सभामध्ये तेषां च पुरतः स्थिता । संबोध्योवाच ब्रह्माणं मृत्युकन्या यथा रुषा ॥३२॥

सनातन और योगियों के महान् गुरु भगवान् सनत्कुमार शातातप, पिप्पल, शंकु, शुक्र, पराशर, मार्कण्डेय, लोमश, मृकण्डु, च्यवन, दुर्वासा, जरत्कारु, आस्तीक, विभाण्डक, ऋष्यशृङ्ग, भरद्वाज, वामदेव और कौशिक थे ॥१९-२३॥ इन तपोनिष्ठ महर्षियों को आये देखकर मोहिनी ने लज्जावश ब्रह्मा को तुरन्त छोड़ दिया ॥२४॥ जगत् के विधाता (ब्रह्मा) वहीं बैठ गये और उनके बाम भाग में वह (मोहिनी) बैठ गयी। भक्ति से कन्धे झुकाये महर्षियों ने ब्रह्मा को प्रणाम किया और उन्होंने उन लोगों को आशीर्वाद दिया तथा बैठाया। उनके मध्य में ब्रह्मा उसी तरह चमकने लगे जैसे ताराओं के बीच चन्द्रमा ॥२५-२६॥ तदुपरान्त मुनियों ने उनसे पूछा कि स्वर्ग की वेश्याओं में श्रेष्ठ यह मोहिनी आपके समीप कैसे बैठी है ? ॥२७॥ मुनियों की बात सुनकर ब्रह्मा ने उनसे कहा कि स्त्री जाति का वचन (अर्थात् स्त्रियों से बोलना) लज्जा से ढक जाना ही है ॥२८॥

ब्रह्मा बोले—यह शुभ मूर्ति चिरकाल तक अपूर्व नृत्य-गान करके श्रान्त हो गयी है अतः पिता के सामने कन्या की भांति यहां बैठी है ॥२९॥ यह कह कर जगत् के विधाता ब्रह्मा उस मुनिसभा में हँस पड़े। राधिके ! सर्वज्ञ सभी मुनि भी हँसने लगे ॥३०॥ सब रहस्य तथा जगत्-स्रष्टा की मानसिक स्थिति समझ कर वह कुलटा सभा में हास्य के बहाने सद्यः कुपित हो उठी। और उसके सर्वाङ्ग में कम्पन होने लगा, मुख विकृत हो गया, आंखें रक्त कमल की भांति लाल हो गयीं और क्रोध से अधरोष्ठ फड़कने लगे ॥॥३१॥ सभा के बीच उठकर वह उन लोगों के सामने खड़ी हो गयी और ब्रह्मा को सम्बोधित करके क्रुद्ध मृत्युकन्या की भांति बोली ॥३२॥

मोहिन्युवाच

अये ब्रह्मञ्जगन्नाथ वेदकर्ता त्वमेव च ।।३३।।
किंवा वेदप्रणिहितं कर्म किं तद्विपर्ययम् । विचारं मनसा स्वेन कुरु वेदविदां गुरो ।।३४।।
स्वकन्यायां यत्स्पृहा स कथं हससि नर्तकीम् । निर्मिताऽहमीश्वरेण स्वर्वेश्या सर्वगामिनी ।।३५।।
सतां कर्म विरुद्धं यत्तदत्यन्तविडम्बनम् । दासीतुल्यां विनीतां च दैवेन शरणागताम् ।।३६।।
यतो हससि गर्वेण ततोऽपूज्यो भवाचिरम् । अचिराद्दर्पभङ्गं ते करिष्यति हरिः स्वयम् ।।३७।।
निबोध वचनं ब्रह्मन्वेश्यायाश्च तु सांप्रतम् । तवैव वचनं स्तोत्रं गृह्णाति यो नरः सदा ।।३८।।
भविता तस्य विघ्नश्च स यास्यत्युपहास्यताम् । भविता वार्षिकी पूजा देवतानां युगे युगे ।।३९।।
तव माघ्यां च संक्रान्त्यां न भविष्यति सा पुनः । कल्पान्तरेऽत्र कल्पे वा देहे देहान्तरेऽत्र वा ।।४०।।
पुनः पूजा न भविता या गता सा गतैव च । इत्युक्त्वा मोहिनी शीघ्रं जगाम मदनालयम् ।।४१।।
तेन सार्धं रतिं कृत्वा बभूव विज्वरा पुनः । पश्चात्सा चेतनां प्राप्य विललाप भृशं पुनः ।।४२।।
अयं कथं मया शप्तो जगद्विधिरतिप्रियः । स्वर्वेश्यायां गतायां च मुनयो दुःखिता भृशम् ।।४३।।
स्वयं विधाता जगतां चकम्पे नतकंधरः । उपायं मुनयस्तस्मै ददुः कल्याणकारिणः ।।४४।।
शरणं व्रज वैकुण्ठमित्युक्त्वा ते गृहान्ययुः । ब्रह्मा जगाम शरणं मम मूर्त्यन्तरं परम् ।।४५।।

मोहिनी ने कहा––अरे ब्रह्मन् ! तुम जगत् के स्वामी और वेदों के कर्ता भी हो ।।३३।। वेदवेत्ताओं के गुरु ! यह बात अपने मन से विचार करो कि––कौन कर्म वेदविहित है और कौन उसके प्रतिकूल ? जो अपनी कन्या के प्रति स्पृहा करता है, वह नर्तकी को क्या हँसेगा ? ईश्वर ने मुझे सबके पास जाने वाली स्वर्ग की वेश्या बनाया है ।।३४-३५।। सज्जनों का जो कर्म (शास्त्र या लोक से) विरुद्ध होता है, वह अत्यन्त विडम्बना है । दैववश शरण में आयी हुई दासीतुल्य मुझ विनीता को जिसलिए गर्व से तुम हँस रहे हो, इसलिए शीघ्र अपूज्य हो जाओ और शीघ्र ही साक्षात् हरि तुम्हारा गर्व चूर्ण करेंगे ।।३६-३७।। ब्रह्मन् ! इस समय तुम वेश्या की बात सुनो ! तुम्हारे ही वचन-स्तोत्र का जो मनुष्य सदा ग्रहण करेगा, उसे (कार्य में) विघ्न हो जायगा और वह उपहास को प्राप्त करेगा । प्रत्येक युग में देवताओं की वार्षिक पूजा होगी किन्तु तुम्हारी पूजा माघ की संक्रान्ति में नहीं होगी । इस कल्प में या कल्पान्तर में, इस देह में अथवा देहान्तर में फिर तुम्हारी पूजा नहीं होगी । अब तक जो हो गई सो हो गई । इतना कह कर वह मोहिनी शीघ्र ही कामदेव के यहाँ चली गयी ।।३८-४१।। वहाँ उसके साथ रति करके वह सन्ताप-रहित हो गई । पश्चात् सचेत होने पर वह अत्यन्त विलाप करने लगी ।।४२।। उसने कहा––'मैंने जगत् के विधाता एवं अत्यन्त प्रिय ब्रह्मा को कैसे शाप दिया ?' स्वर्ग-वेश्या मोहिनी के चले जाने पर मुनियों को महान् दुःख हुआ और जगत् के विधाता ब्रह्मा काँप उठे । उनका मस्तक झुक गया । तब कल्याणकारी महर्षिंयों ने उन्हें उपाय बताया कि––आप वैंकुण्ठनाथ की शरण में जाइए । इतना कह कर वे सब अपने घर चले गये और ब्रह्मा

शान्तं तं कमलाकान्तं श्यामं नारायणाभिधम् । गत्वा विषण्णवदनः प्रणम्य च चतुर्भुजम् ॥४६॥
तत्रोवास जगत्कर्ता नातिदूरे समीपतः । रहस्यं कथयामास शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥४७॥
दीनबन्धुं दयासिन्धुं विपत्तारणकारणम् । श्रुत्वा रहस्यं तत्सर्वं प्रहस्योवाच तं विभुः ॥
सत्यं सारं हितं वाक्यं जगतां च सुखावहम् ॥४८॥

नारायण उवाच

स्वयं त्वं वेदविदसि विदुषां च गुरोर्गुरुः ॥४९॥
त्वया कृतं च यत्कर्म इह[1] केन न तत्कृतम् । स्त्रीजातिः प्रकृतेरंशा जगतां बीजरूपिणी ॥५०॥
स्त्रीणां विडम्बनेनैव प्रकृतेश्च विडम्बनम् । न तद्भारतवर्षं च पुण्यक्षेत्रमनुत्तमम् ॥५१॥
क्रीडाक्षेत्रे ब्रह्मलोके कस्तवेन्द्रियनिग्रहः । यदि तद्भारते दैवात्कामिनी समुपस्थिता ॥५२॥
स्वयं रहसि कामार्ता न सा त्याज्या जितेन्द्रियैः । त्यक्त्वा परत्र नरकं व्रजेदतिविडम्बितः[2] ॥५३॥
भवेदेव हि दुःखार्ता शापं दद्याच्च तं ध्रुवम् । विहाय स्वकलत्रं च यो गृह्णाति परस्त्रियम् ॥५४॥
लोभात्कामसुखाद्वाऽपि सोऽधमो नात्र संशयः । पातयित्वा स च पतेद्दशपूर्वान्दशापरान् ॥५५॥

भी मेरी दूसरी मूर्ति परम शान्त, कमलाकान्त और श्यामवर्ण नारायण की शरण में गये। वहाँ पहुँच कर म्लानमुख ब्रह्मा ने उन चार भुजा वाले विष्णु को प्रणाम किया और उन्हीं के समीप वे जगत्कर्ता ब्रह्मा बैठ गये। उस समय उनका कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये। उन्होंने दीनवन्धु, दयासागर, विपत्ति से उबारने वाले भगवान् से उन्होंने अपने आगमन का रहस्य बताया। वह सारा रहस्य सुनकर विभु (नारायण) ने हँसकर सत्य, सार, हितकर एवं सारे जगत् के लिए सुखावह वचन कहा ॥४३-४८॥

नारायण बोले--तुम स्वयं वेदवेत्ता हो और विद्वानों के गुरु के गुरु हो, किन्तु तुमने जैसा कर्म किया है, वैसा इस लोक में किसी ने नहीं किया है। स्त्री जाति प्रकृति का अंश है और जगत् का वीजरूप है। स्त्रियों के अपमान से प्रकृति का अपमान होता है। वह भारतवर्ष नहीं है, परमोत्तम पुण्यक्षेत्र है। उस क्रीड़ा-क्षेत्र ब्रह्मलोक में तुम्हें इन्द्रियनिग्रह करने की क्या आवश्यकता थी ? यदि भारतवर्ष में भी संयोग वश एकान्त में कोई कामिनी कामपीडित होकर पहुँच जाये, तो जितेन्द्रिय लोगों को भी उसका त्याग नहीं करना चाहिए। क्योंकि उसके त्याग करने से वह अत्यन्त दीन होकर परलोक में नरक प्राप्त करता है ॥४९-५३॥ (त्याग करने से कामिनी) अवश्य ही दुःख से व्याकुल होगी और उस (पुरुष) को निश्चित ही शाप देगी। जो अपनी स्त्री को छोड़कर दूसरे की स्त्री को लोभ से या काम-सुख से अपनाता है, वह अधम है, इसमें संशय नहीं। वे अपने पहले और पीछे की दश-दश

१क. ह्यालिके° । २क. °जेदिह वि° ।

Funding by IKS-MoE

त्यक्त्वा स्वस्वामिनं या च परं गच्छति कामतः। न पुमान्न च वेश्या च कुलस्त्री तत्र दुष्यति ॥५६॥
उपायेन च या साध्यं करोति परपूरुषम्। तिष्ठत्येवान्धकूपे सा यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥५७॥
स्वर्वेश्या च दिवं याति सततं कुलधर्मतः। ध्रुवं भवेत्सोऽपराधी तस्या अप्यवमानतः ॥५८॥
तमुपायं करिष्यामि शप्तो यत्र विशुद्ध्यति। क्षणं तिष्ठ जगन्नाथ पापिनश्च भवार्णवे ॥५९॥
एतस्मिन्नन्तरे कश्चिदाजगाम हरेः पुरः। द्वारपालः शीघ्रगामीत्युवाच नतकंधरः ॥६०॥

द्वारपाल उवाच

अन्यब्रह्माण्डाधिपतिर्ब्रह्मा दशमुखः स्वयम्। द्वारे तिष्ठन्महाभक्तस्त्वां द्रष्टुं स्वयमागतः ॥६१॥
द्वारपालवचः श्रुत्वा स चैवानुमतिं ददौ। द्वारपालाज्ञया ब्रह्मा तुष्टावाऽऽगत्य भक्तितः ॥६२॥
स्तोत्रैरतिविचित्रैश्च चतुर्वक्त्राश्रुतैरहो। स्तुत्वोवासाऽऽज्ञया विष्णोः कृत्वा पश्चाच्चतुर्मुखम् ॥६३॥
नारायणो द्वारपालानित्युवाच चतुर्भुजान्। आगन्तुकं जनमपि प्रवेशयत सादरम् ॥६४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वृन्दावनविनोदिनि। आजगामातिप्रणतो ब्रह्मा शतमुखः स्वयम् ॥६५॥
दिव्यैः स्तोत्रैश्च तुष्टाव निगूढमतिसुन्दरैः। स्तुत्वोवास वरैः स्तोत्रैः सर्वेषामश्रुतैरहो ॥६६॥

पीढ़ियों को नरक में गिराता है ॥५४-५५॥ इसी प्रकार जो स्त्री अपने पति को छोड़कर कामवश पर-पुरुष का साथ करती है, वह भी पूर्व-पर की दश-दश पीढ़ियों को नरक में गिराती हैं किन्तु वेश्या और उससे समागम करने वाला पुरुष दूषित नहीं होता है, कुलीन स्त्री दूषित होती है ॥५६॥ जो कुल-स्त्री किसी उपाय द्वारा पर-पुरुष को साध्य (वश में) कर लेती है, वह निश्चित ही चन्द्रमा और सूर्य के समय तक अन्धकूप नामक नरक में पड़ी रहती है ॥५७॥ स्वर्ग की वेश्या तो अपने कुलधर्मानुसार स्वर्ग को जाती है और उसका अपमान करने वाला निरन्तर अपराधी ही बना रहता है ॥५८॥ अब मैं वह उपाय करूँगा, जिससे शापप्राप्त व्यक्ति की शुद्धि हो जाती है। हे जगन्नाथ! तुम क्षण भर पापी के भवसागर में रहो ॥५९॥ इसी बीच भगवान् के सामने कोई द्वारपाल बड़ी शीघ्रता से आया और कन्धे झुकाये कहने लगा ॥६०॥

द्वारपाल बोला—अन्य ब्रह्माण्ड के अधीश्वर, दशमुख वाले ब्रह्मा स्वयं द्वार पर आकर ठहरे हैं, वे आपके महाभक्त हैं और आपका दर्शन करने के लिए आये हैं ॥६१॥ द्वारपाल की बात सुनकर उन्होंने अनुमति प्रदान की। तब द्वारपाल की आज्ञा से ब्रह्मा आये और बड़ी भक्ति से भगवान् की स्तुति करने लगे ॥६२॥ उन्होंने अति विचित्र स्तोत्रों द्वारा स्तुति की जिन्हें चारमुख वाले ब्रह्मा ने नहीं सुना था। स्तुति के अनन्तर दश मुख वाले ब्रह्मा विष्णु की आज्ञा से चार मुख वाले ब्रह्मा को पीछे करके बैठ गये ॥६३॥ तब चार भुजाओं वाले द्वारपालों से नारायण ने कहा कि—द्वार पर आये हुए आगन्तुक जनों को भी सादर यहाँ लिवा लाओ ॥६४॥ इतने में हे वृन्दावन में विनोद करने वाली! सौ मुख वाले ब्रह्मा भी स्वयं आ गये जो अत्यन्त विनय-विनम्र थे ॥६५॥ उन्होंने वहाँ पहुँच कर दिव्य एवं अतिसुन्दर स्तोत्रों द्वारा गूढ़भाव से भगवान् की स्तुति की। फिर

तदनन्तरं तयोरग्रे भक्त्या शतमुखः स्वयम् । जगद्विधौ सभायां च तत्र तिष्ठति तत्क्षणे ॥६७॥
आजगामान्यब्रह्माण्डाधिपो ब्रह्मा हरेः पुरः । सहस्रवदनः श्रीमान्भक्त्या नम्रात्मकंधरः ॥६८॥
स्तुत्वोवास वरैः स्तोत्रैः सर्वेषामश्रुतैरहो । तं च पप्रच्छ सर्वेषां ब्रह्माण्डानां च ब्रह्मणाम् ॥६९॥
वार्तां विषयिणां चैव सुराणां च क्रमेण च। चतुर्मुखस्य तान्दृष्ट्वा दर्पभङ्गो बभूव ह ॥७०॥
आत्मानं विष्णुसदृशं मन्यमानस्य दर्पतः। अन्यान्यान् दर्शयामास ब्रह्माण्डस्थान्विधीन्हरिः ॥७१॥
दृष्ट्वा च कृपया तत्र मृततुल्यं चतुर्मुखम्। यावन्ति गात्रलोमानि सन्ति नारायणस्य मे ॥७२॥
तत्प्रमाणाश्च ब्रह्माण्डा ब्रह्माणः सन्ति संततम्। नारायणं प्रणम्याऽऽशु जग्मुस्ते स्वालयं प्रति ॥७३॥
स मेने विधिरात्मानमत्यल्पविषयाधिपम् । पप्रच्छ प्रणतं विष्णुर्लज्जानम्रचतुर्मुखम् ॥७४॥
वद तत्किमिदं दृष्टं स्वप्नवद्भवताऽधुना । नारायणवचः श्रुत्वा विधिरित्युक्तवांस्तदा ॥७५॥
भूतं भव्यं भविष्यं च तव मायासमुद्भवम् । इत्येवमुक्त्वा स विधिस्तस्थौ संसदि लज्जया
सर्वान्तर्यामी भगवांस्तस्योपायं विनिर्ममे ॥७६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० मोहिनीशापब्रह्मदर्पभङ्गो
नाम त्रयस्त्रिशोऽध्यायः ॥३३॥

सबके लिए अश्रुत एवं श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा स्तुति करके वे बैठ गये ॥६६॥ तदनन्तर पहले के आये हुए दोनों ब्रह्माओं के आगे स्वयं शतमुख ब्रह्मा के बैठ जाने पर उसी समय उस सभा में एक अन्य ब्रह्माण्ड अधीश्वर सहस्रमुख ब्रह्मा विष्णु के आगे आये । उन्होंने भी भक्तिभाव से मस्तक झुकाकर किसी के द्वारा भी अब तक न सुने गये उत्तम स्तोत्रों से भगवान् की स्तुति की और उनके भी बैठ जाने पर हरि ने समस्त ब्रह्माण्डों के ब्रह्माओं का और उनके राज्य में रहने वाले देवताओं का क्रमशः कुशल-समाचार पूछा । उन सब ब्रह्माओं को देखकर अपने को विष्णुतुल्य मानने वाले चतुर्मुख ब्रह्मा का दर्पभंग हो गया । भगवान् ने अन्यान्य ब्रह्माण्डों के ब्रह्माओं को दिखाया ॥६७-७१॥ उन्हें देखकर चतुर्मुख ब्रह्मा मृतक तुल्य हो गये । भगवान् ने कृपा करके उन्हें यह बोध कराया कि––मेरे शरीर में जितने लोम हैं, उतने ही ब्रह्माण्ड और उतने ही उनके अधीश्वर ब्रह्मा निरन्तर विद्यमान रहते हैं । वे सभी ब्रह्मा नारायण को प्रणाम करके अपने स्थान को चले गये ॥७२-७३॥ तब चार मुख वाले ब्रह्मा ने अपने को अति अल्प राज्य का अधिपति माना । लज्जा से उनका मुख नीचे हो गया । यह देख कर विष्णु ने उनसे पूछा––कहो, स्वप्न की भांति इस समय क्या देखा है ? नारायण की बात सुनकर ब्रह्मा ने कहा––'आपकी माया से उत्पन्न होने वाले भूत, भविष्य और वर्तमान को देखा है।' इतना कहकर ब्रह्मा उस सभा में लज्जित हो गये और सबके अन्तःकरण की बात जानने वाले भगवान् ने उनके (शाप-निवारण) का उपाय किया ॥७४-७६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड में नारायण-नारद के संवाद में मोहिनी शाप तथा ब्रह्म-दर्पभंग-वर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३३॥

Funding by IKS-MoE

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शंकरः समुपस्थितः । सस्मितो वृषभेन्द्रस्थो विभूतिभूषणः स्वयम् ॥१॥
व्याघ्रचर्माम्बरधरो नागयज्ञोपवीतकः । स्वर्णाकारजटाभारमर्धचन्द्रं च संदधत् ॥२॥
त्रिशूलपट्टिशकरो बिभ्रत्खट्वाङ्गमुत्तमम् । सद्रत्नसाररचितस्वरयन्त्रकरो मुदा ॥३॥
वाहनादवरुह्याऽऽशु भक्तिनम्रात्मकंधरः । प्रणम्य कमलाकान्तं वामे चोवास[1] भक्तितः ॥४॥
आजग्मुर्मुनयः सर्वे सुराः शक्रादयस्तथा । आदित्या वसवो रुद्रा मनवः सिद्धचारणाः ॥५॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् । प्रणम्य तं शिवं सर्वे सुराश्चाऽऽनम्रकंधराः ॥६॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र संगीतं शंकरो जगौ । कृत्वाऽतीव सुतालं च स्वरयन्त्रसमन्वितः ॥७॥
आवयोश्च गुणाख्यानं रासंसंबन्धि सुन्दरम् । समयोचितरागेण मनोमोहनकारिणा ॥८॥
यन्त्रकण्ठैकतानेन चैकमानेन चारुणा । पदभेदविरामेण गुरुणा लघुना क्रमात् ॥९॥

अध्याय ३४

जाह्नवी-जन्म-प्रस्ताव

श्रीकृष्ण बोले—इसी बीच वहाँ शङ्कर जी आगये। वे मुसकरा रहे थे, बैल पर सवार थे, विभूति रमाये हुए थे, व्याघ्रचर्म का वस्त्र, सर्पमय यज्ञोपवीत, सिर पर सुनहरे रंग की जटा का भार, ललाट में अर्धचन्द्र, हाथों में त्रिशूल, पट्टिश तथा उत्तम खट्वाङ्ग धारण किये, श्रेष्ठ रत्नों के सारतत्त्व से निर्मित स्वरयन्त्र लिये शिव हर्ष से शीघ्र ही वाहन से उतरे और भक्तिभाव से मस्तक झुकाकर कमलाकान्त को प्रणाम करके उन्हीं के वाम भाग में बैठ गये ॥१-४॥ फिर इन्द्र आदि समस्त देवता, मुनि, आदित्य, वसु, रुद्र, मनु, सिद्ध और चारण वहाँ आये ॥५॥ वे सर्वाङ्ग में पुलकायमान थे। उन्होंने पुरुषोत्तम की स्तुति की। फिर समस्त देवों ने सिर झुकाकर शिव को प्रणाम किया ॥६॥ अनन्तर स्वरयन्त्र लिये शंकर ने सुमधुर तालस्वर के साथ संगीत आरंभ किया ॥७॥ उसमें हम दोनों के गुणों तथा रास सम्बन्धी सुन्दर पदों का गान होने लगा। मन को मोह लेने वाले सामयिक राग, कण्ठ की एकतानता, एक मनोहर मान, गुरु-लघु के क्रम से सुन्दर वर्णन करना आरम्भ किया था, जिसमें एक समान कण्ठ-कलाप, सुन्दर पद-भेद-विराम, अतिदीर्घ गमक तथा मधुर आनन्द

१क. हर्षितः ।

Funding by IKS-MoE

गमकेनातिदीर्घेण भद्रे (न्द्रे) न मधुरेण च। अवेति दुर्लभं सृष्टं प्रीत्या स्वेन विनिर्मितम् ॥१०॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्र पुनः पुनः। तदेव श्रुतिमात्रेण मूर्च्छां प्रापुर्विचेतनाः ॥११॥
बभूवू रुद्ररूपाश्च मुनयः पुरतः प्रिये। रुद्ररूपाः सुराःसर्वे विधातृहरिपार्षदाः ॥१२॥
नारायणश्च लक्ष्मीश्च गायकश्च शिवः स्वयम्। जलपूर्णं च वैकुण्ठं दृष्ट्वा त्रस्तोऽहमीश्वरि ॥१३॥
गत्वा मूर्तीर्विनिर्माय सर्वाश्च तादृशीरिति। तत्स्वरूपास्तदस्त्राश्च तत्स्ववाहनभूषणाः ॥१४॥
तत्स्वभावास्तन्मनस्कास्तत्तद्विषयमानसाः। स्थानं निर्माय परितो वैकुण्ठस्य चतुर्दिशि ॥१५॥
तदधिष्ठातृदेवी च आजगाम स्वमालयम्। शरीरजा सुराणां सा बभूव सुरनिम्नगा ॥१६॥
मुक्तिदा च मुमुक्षूणां भक्तानां हरिभक्तिदा। कोटिजन्मार्जितं पापं विविधं पापिनामहो ॥१७॥
यस्याश्च स्पर्शवायोश्च संपर्केण विनश्यति। किंवा न जाने प्राणेशि स्पर्शदर्शनयोःफलम् ॥१८॥
किमुत स्नानजन्यं च कथयामि निरूपणम्। सर्वतीर्थात्परं पृथ्व्यां पुष्करं परिकीर्तितम् ॥१९॥
वेदोक्तं च तदेवास्याः कलां नार्हति षोडशीम्। भगीरथेन चाऽऽनीता तेन भागीरथी स्मृता ॥२०॥
गामागता स्रोतसोंऽशाद्गङ्गा तेन प्रकीर्तिता। जानुद्वारा पुरा दत्ता जह्नुनाऽऽपीय कोपतः ॥२१॥

के साथ उन्होंने प्रेमपूर्वक स्वयं निर्मित ऐसा संगीत छेड़ा, जो संसार में अत्यन्त दुर्लभ है ॥८-१०॥ उनका सर्वाङ्ग पुलकित हो गया और आँखों में बार-बार आंसू भर आता था। उसके सुनने मात्र से वहाँ के सब लोग मूर्च्छित हो गये (सुधि-बुधि खो बैठे) ॥११॥ प्रिये ! सामने बैठे हुए मुनिवृन्द, समस्त ब्रह्मा, विष्णु, पार्षद-गण, लक्ष्मी और गायक स्वयं शिव भी रुद्र रूप हो गये। वैकुण्ठ में जल भर गया। हे ईश्वरि ! यह देखकर मैं भी त्रस्त हो गया ॥१२-१३॥ अनन्तर वहाँ जाकर मैंने उन सब देवता आदि की मूर्तियों (शरीरों) का पूर्ववत् निर्माण किया। उनके स्वरूप, अस्त्र, वाहन और भूषण पहले के समान थे ॥१४॥ उनके स्वभाव, मन एवं विषय-वासनायें भी पूर्ववत् थीं। उस जल-राशि के लिए वैकुण्ठ के चारों ओर स्थान बनाया ॥१५॥ फिर उसकी अधिष्ठात्री देवी (गंगा) स्वयं अपने वासस्थान में आयीं। देवों के शरीर से उत्पन्न होने के कारण (वह दिव्य जल-राशि) देवनदी (गङ्गा) हुई ॥१६॥ वह मोक्ष चाहने वाले को मोक्ष और भक्तों को भगवान् की भक्ति प्रदान करती है। उसका स्पर्श करके आये हुए वायु के सम्पर्क से पापियों के करोड़ों जन्मों के नानाविध पाप नष्ट हो जाते हैं। हे प्राणेश्वरी ! उसके स्पर्श करने और दर्शन करने का फल क्या होगा—यह मैं नहीं जानता ? ॥१७-१८॥ फिर उसमें स्नान करने से प्राप्त होने वाले पुण्य के विषय में क्या कहूँ ? पृथ्वी पर समस्त तीर्थों से बढ़कर पुष्कर तीर्थ माना गया है। वेद में प्रतिपादित वही तीर्थ इस (गंगा) की सोलहवीं कला के समान भी नहीं है। इसे यहाँ भगीरथ लाये थे, इसी से इसका नाम भागीरथी पड़ा ॥१९-२०॥ यह अपने स्रोत के अंश से पृथ्वी पर आयी थी, इसलिए 'गङ्गा' कहलायी। पूर्व काल में क्रुद्ध होकर जह्नु ने इसे पी लिया था और अन्त में जानु (घुटने) द्वारा इसे निकाल दिया था। उनकी कन्या स्वरूपा होने से यह 'जाह्नवी' कहलायी।

तस्य कन्यास्वरूपा सा जाह्नवी तेन कीर्तिता। भीष्मः स्वयं वसुर्जातस्तस्यांशात्तेन भीष्मसूः ॥२२॥
धाराभिस्तिसृभिः स्वर्गं पृथिवीमतलं तथा । ममाऽऽज्ञया च गच्छन्ती तेन त्रिपथगामिनी ॥२३॥
प्रधानधारया स्वर्गे सा च मन्दाकिनी स्मृता। योजनायुतविस्तीर्णा प्रस्थे च योजना स्मृता ॥२४॥
क्षीरतुल्यजला शश्वदत्युत्तुङ्गतरङ्गिणी । वैकुण्ठाद्ब्रह्मलोकं च ततः स्वर्गं समागता ॥२५॥
स्वर्गाद्धिमाद्रिमार्गेण पृथिवीमागता मुदा । सा धाराऽलकनन्दाख्या लवणोदेन मिश्रिता ॥२६॥
शुद्धस्फटिकसंकाशा बहुवेगवती सती । पापिनां पापशुष्केन्धं दग्धुं पावकरूपिणी ॥२७॥
अहो सागरवंशेभ्यो निर्वाणमुक्तिदायिनी । वैकुण्ठगामिनी सा च सोपानरूपिणी वरा ॥२८॥
अतोऽपि मृत्युसमये सतां पुण्यस्वरूपिणाम्। आदौ पादौ च संन्यस्य मुखे तोयं प्रदीयते ॥२९॥
गङ्गासोपानमारुह्य सन्तो यान्ति निरामयम् । आब्रह्मलोकं संलङ्घ्य रथस्थाश्च निरापदः ॥३०॥
दैवात्पुरा प्राक्तनेन मग्नं चेत्कृतपातकैः । लोमप्रमाणवर्षं च मोदन्ते हरिमन्दिरे ॥३१॥
ततो भोगो भवेत्तेषां निश्चितं पापपुण्ययोः । अतिस्वल्पेन कालेन कालव्यूहं च बिभ्रताम् ॥३२॥
ततः पुण्यवतां गेहे लब्ध्वा जन्म च भारते । सम्प्राप्य निश्चलां भक्तिं भवन्ति हरिरूपिणः[1] ॥३३॥

वसु के अंश से भीष्म स्वयं इसके गर्भ से उत्पन्न हुए थे, इस कारण यह 'भीष्मजननी' कही जाती है ॥२१-२२॥ गङ्गा मेरी आज्ञा से तीन धारा बनाकर स्वर्ग, पृथिवी और पाताल में गयी हैं, इससे 'त्रिपथगामिनी' कही जाती है ॥२३॥ इसकी प्रधान धारा स्वर्ग में है, जो मन्दाकिनी नाम से प्रख्यात, दश सहस्र योजन विस्तीर्ण, लम्बी और एक योजन चौड़ी है ॥२४॥ इसका क्षीर के समान जल एवं अत्यन्त ऊँची तरंगें हैं। वैकुण्ठ से ब्रह्मलोक होती हुई यह स्वर्ग में आयी है ॥२५॥ स्वर्ग से हिमालय मार्ग द्वारा जो धारा हर्ष से पृथिवी पर आयी और लवण समुद्र से मिल गयी, उसे अलकनन्दा कहते हैं ॥२६॥ वह शुद्ध स्फटिक के समान धवल, अति वेग वाली और पापियों के पापरूपी सूखे काठ को जलाने के लिए पावक (अग्नि) रूप है ॥२७॥ अहो ! सगर के वंशजों (पुत्रों) को उसी ने निर्वाण-मोक्ष प्रदान किया। वह वैकुण्ठ जाने के लिए श्रेष्ठ सोपान रूप है ॥२८॥ इसलिए भी मृत्युकाल में पहले पुण्यस्वरूप वाले सज्जनों के चरणों को रखकर (मुमूर्षु के) मुख में गंगाजल डाला जाता है ॥२९॥ गङ्गा रूपी सोपान (सीढ़ियों) पर चढ़कर सन्त लोग निरामय (वैकुण्ठधाम) को प्राप्त होते हैं। वे ब्रह्मलोक तक को लाँघकर विमान पर बैठे हुए निर्बाध गति से जाते हैं। यदि दैववश पूर्वकर्म के प्रभाव से पापी पुरुष गंगा में डूब जायँ तो वे भगवान् के लोक में जाकर लोम प्रमाण वर्षों तक (अर्थात् शरीर में जितने रोएँ हैं उतने वर्षों तक) सुखी जीवन व्यतीत करते हैं ॥३०-३१॥ इसके पश्चात् उन्हें अपने पाप-पुण्य का भोग प्राप्त होता है और वे अत्यन्त स्वल्प काल में ही काल-समूह को पूरा कर लेते हैं ॥३२॥ तदनन्तर भारत में पुण्यवानों के गृह में जन्म-ग्रहण करके वे भगवान् की निश्चल भक्ति पाकर भगवत्स्वरूप हो जाते हैं ॥३३॥ यदि दैववश मरे हुए द्विजों के

---

[1] क. मम पर्षदाः।

मृतद्विजानां देहांश्च दैवाच्छूद्रा वहन्ति चेत्। पदप्रमाणवर्षं च तेषां च नरके स्थितिः ॥३४॥
ततस्तेषां च साहाय्यं करोति हरिरूपिणी । ददाति मुक्ति तेभ्योऽपि क्रमेण च कृपामयी ॥३५॥
जन्म पुण्यवतां गेहे कारयित्वा च भारते । स्थलं ददाति वैकुण्ठे निश्चितं जन्मभिस्त्रिभिः ॥३६॥
यात्रां कृत्वा तु यः शुद्धौ स्नातुं याति सुरेश्वरीम्। पदप्रमाणवर्षं च वैकुण्ठे मोदते ध्रुवम् ॥३७॥
गङ्गां प्राप्यानुषङ्गेण स्नाति चेत्समलो[1] नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुनर्यदि न लिप्यते ॥३८॥
कलौ पञ्चसहस्राब्दं स्थितिस्तस्याश्च भारते। तस्यां च विद्यमानायां कः प्रभावः कलेरहो ॥३९॥
कलौ दशसहस्राणि वर्षाणि प्रतिमा मम । तिष्ठन्ति च पुराणानि प्रभावस्तत्र कः कलेः ॥४०॥
अतलं याति या धारा सा च भोगवती स्मृता । पयःफेननिभा शश्वदतिवेगवती सदा ॥४१॥
आकराऽमूल्यरत्नानां मणीन्द्राणां च संततम् । नागकन्याश्च यत्तीरे क्रीडन्ति स्थिरयौवनाः ॥४२॥
स्वयं देवी च वैकुण्ठं वेष्टयित्वा च संततम् । सहस्रयोजना प्रस्थे दैर्घ्ये च लक्षयोजना ॥४३॥
अस्या विनाशः प्रलये नास्त्येव दुहितुर्मम । नानारत्नाकरं दिव्यं तत्तीरं सुमनोहरम् ॥४४॥

शवों को शूद्र ढोते हैं तो उन्हें उतने वर्षों तक नरक में रहना पड़ता है जितने पग वे चलते हैं। किन्तु नारायण-स्वरूपिणी अति कृपामयी यह गंगा उन लोगों की भी सहायता करती है और क्रमशः उन्हें मुक्ति प्रदान करती है ॥३४-३५॥ भारत में पुण्यवानों के घर जन्म ग्रहण करा कर तीन जन्मों के उपरान्त वैकुण्ठ में निश्चित स्थान दिलाती है ॥३६॥ जो शुद्धि के लिए यात्रा करके गंगा में स्नान करने के लिए जाता है, वह जितने पग चलता है, उतने वर्षों तक वैकुण्ठ में निश्चित रूप से आनन्द प्राप्त करता है॥३७॥ आनुषङ्गिक रूप से भी गङ्गा में पहुँच कर यदि पापी मनुष्य स्नान करता है तो वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है यदि वह पुनः पाप में लिप्त न हो ॥३८॥ कलियुग के पाँच सहस्र वर्षों तक गंगा भारत में स्थित रहेंगी, उनके रहते हुए कलि का क्या प्रभाव पड़ेगा ? ॥३९॥ कलि में दश सहस्र वर्षों तक मेरी प्रतिमाएँ रहेंगी और उतने समय तक पुराण भी रहेंगे उनके होते हुए कलि का क्या प्रभाव हो सकता है ? ॥४०॥ (गंगा की) जो धारा पाताल लोक को जाती है, उसे 'भोगवती' कहते हैं। वह सदा दूध के फेन के समान स्वच्छ और निरन्तर अति वेग से मुक्त रहती है ॥४१॥ अमूल्य रत्नों तथा मणीन्द्रों की वह निरन्तर खान बनी रहती है और स्थायी यौवन वाली नागकन्यायें उसके तट पर क्रीडा करती हैं ॥४२॥ स्वयं गंगा देवी वैकुण्ठ को चारों ओर से घेर कर स्थित है, जो सहस्र योजन चौड़ी और लक्ष योजन लम्बी है ॥४३॥ मेरी इस पुत्री का प्रलय में भी विनाश नहीं होता हैं। उसका तट अत्यन्त मनोहर, दिव्य एवं विविध रत्नों की खान है

---

[1] क. चेन्मोसलं न°।

इत्येवं कथितं सर्वं जाह्नवीजन्म पुण्यदम् । ब्रह्मणश्च प्रतीकारो मोहिनीशापतः शृणु ॥४५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० जाह्नवीजन्मप्रस्तावो
नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

नारायणश्च ब्रह्माणमुवाच कृपया पुनः । दृष्ट्वा गङ्गां च सर्वे तां मम मायां च मेनिरे ॥१॥

नारायण उवाच

उत्तिष्ठ गच्छ भद्रं ते भविष्यति चतुर्मुख । अत्र स्नात्वाऽभिशप्तस्त्वं पूतो भव ममाऽऽज्ञया ॥२॥
त्वं चेत्सत्यं स्वयं पूतः स्पर्शं वाञ्छन्ति तानि ते । वैष्णवेशस्य तीर्थानि सर्वाणि सततं मुने ॥३॥
तथाऽपि शापमुक्तस्त्वमत्र प्रकृतिहेलनात् । अहंकारश्च सर्वेषां पापबीजममङ्गलम् ॥४॥

॥४४॥ इस प्रकार मैंने गङ्गा के जन्म का सारा पुण्यप्रद प्रसंग बता दिया । अब ब्रह्मा का मोहिनी के शाप से कैसे उद्धार हुआ, यह सुनो ॥४५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड में नारायण-नारद के संवाद में जाह्नवी-जन्म-वर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३४॥

अध्याय ३५

ब्रह्मा का प्रसंग

श्रीकृष्ण बोले—नारायण ने कृपया पुनः ब्रह्मा से कहना आरम्भ किया और वहाँ के सभी लोगों ने गंगा को देखकर उसे मेरी माया स्वीकार किया ॥१॥

नारायण बोले—हे चतुर्मुख ! उठो, जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा । इस (गंगा) में स्नान करके शापग्रस्त तुम मेरी आज्ञा से पवित्र हो जाओ ॥२॥ मुने ! तुम यदि सत्य हो तो स्वयं पवित्र हो और वे समस्त तीर्थ तुम वैष्णवपति का निरन्तर स्पर्श चाहते हैं, तो भी यहाँ प्रकृति की अवहेलना करने (हँसी उड़ाने) से तुम्हें शाप मिला है, उससे यहाँ मुक्त हो जाओगे । अहंकार ही सभी के लिए पापों का बीज एवं अमंगल रूप है ॥३-४॥

Funding by IKS-MoE

शीघ्रं त्वं गच्छ गोलोकं ममाऽऽलयं परात्परम् । प्रकृत्यंशां मङ्गलदां तत्र प्राप्स्यसि भारतीम् ॥५॥
प्रकृतिं भज कल्याण सृष्टिबीजस्वरूपिणीम् । अहो कल्पान्तपर्यन्तं तपस्तप्तं त्वयाऽधुना ॥६॥
तव मन्त्रं न गृह्णन्ति केऽपि वेश्याभिशापतः । यदन्यदेवपूजायां तव पूजा भविष्यति ॥७॥
त्वमेव जगतां धाता स्वात्मारामश्च योषितः । सर्वरूपी च पूजा च सर्वदेहेषु सर्वतः ॥८॥
तदा ममाऽऽज्ञया ब्रह्मा स्नात्वा च जाह्नवीजले । शीघ्रं जगाम गोलोकं मां प्रणम्य जगद्गुरुः ॥९॥
ते देवा मुनयः सर्वे प्रजग्मुः स्वालयं मुदा । सुनिर्मलं मम यशो गायन्तश्च पुनः पुनः ॥१०॥
विधिरागत्य गोलोकं संप्राप्य भारतीं सतीम् । सर्वविद्याधिदेवीं तां सद्वक्त्राच्च[1] विनिर्गताम् ॥११॥
वागीश्वरीं च संप्राप्य ब्रह्मा प्रमुदितः स्वयम् । कामास्त्राणां च व्यापारमनुमेने स्वयं विभुः ॥१२॥
तत आगत्य मां नत्वा प्राप्य त्रैलोक्यमोहिनीम् । क्रीडां चकार भगवान्स्थाने स्थानेऽतिनिर्जने ॥१३॥
रतिं चिरतरं कृत्वा विरराम स्वयं विधिः । वागीश्वरीमुवाचेदं त्वं वै ब्रह्मा च कर्मणा ॥१४॥
काचित्स्वकर्मणा साध्वी पूज्या च स्थिरयौवना । तवैव कर्मयोगं च युवानं पश्य सुन्दरि ॥१५॥
विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत् । जरातुरोऽहं वृद्धश्च तपस्वी वैष्णवो द्विजः ॥१६॥
अस्वतन्त्रः पराधीनः का रतिः पुंश्चलीषु मे । आजगाम ब्रह्मलोकं पुनरेव निजालयम् ॥१७॥

तुम शीघ्र मेरे परात्पर धाम गोलोक को जाओ। वहाँ प्रकृति की अंशरूपा मंगलदायिनी सरस्वती को प्राप्त करोगे ॥५॥ हे भद्र ! सृष्टि की बीजरूपिणी प्रकृति को अपनाओ। अहो ! तुमने एक कल्प पर्यन्त तप किया है ॥६॥ उस वेश्या के अभिशाप से कोई भी तुम्हारे मंत्र को ग्रहण नहीं करेगा, किन्तु अन्य देवों की पूजा के साथ तुम्हारी भी पूजा हो जायगी ॥७॥ क्योंकि तुम जगत् के विधाता, स्वात्मा में रमण करने वाले, स्त्री के सर्वरूपी और सब ओर से समस्त देहों में पूजास्वरूप हो ॥८॥ तब जगद्गुरु ब्रह्मा मेरी आज्ञावश जाह्नवी-जल में स्नान करके और मुझे प्रणाम करते शीघ्र गोलोक को चले गये ॥९॥ फिर सभी देव एवं मुनि गण भी मेरे निर्मल यश को बार-बार गान करते हुए अपने-अपने घर चले गये ॥१०॥ ब्रह्मा ने गोलोक आकर सती भारती को प्राप्त किया, जो समस्त विषयों की अधिष्ठात्री देवी एवं मेरे मुख-कमलसे निकली है ॥११॥ सरस्वती को प्राप्त करके ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए और स्वयं विभु (ब्रह्मा) ने कामदेव के अस्त्रों को चलाने की अनुमति दे दी ॥१२॥ पश्चात् आकर उन्होंने मुझे नमस्कार किया और उस त्रैलोक्यमोहिनी को अपनाकर अत्यन्त निर्जन स्थान-स्थान में क्रीडा की ॥१३॥ अत्यन्त चिरकाल तक रति करने के उपरान्त ब्रह्मा स्वयं विरत हो गये और सरस्वती से यह बोले—"तुम कर्म द्वारा ब्रह्मा हो, कोई स्त्री अपने कर्मवश सती, पूज्या और स्थिर यौवन वाली हो जाती है। हे सुन्दरि ! तुम अपने ही कर्म के लिए किसी योग्य एवं युवा पुरुष को देखो ॥१४-१५॥ क्योंकि समर्थ स्त्री का समर्थ पुरुष के साथ समागम गुणवान् (विशेष आनन्ददायक) होता है। मैं तो वृद्धावस्था के कारण विकल, वृद्ध, तपस्वी, वैष्णव ब्राह्मण, अस्वतन्त्र एवं पराधीन हूँ। पुंश्चलियों में मेरा क्या अनुराग होगा ?

---

[1] ख. °क्त्राब्जविनिर्मिताम्।

दद‍ृशुर्ब्रह्मलोकस्थास्तां देवीं कौतुकान्विताः । अतीव सुन्दरीं रम्यां शुभ्रवर्णां च सस्मिताम् ॥१८॥
शरच्छीतांशुवदनां शरत्पङ्कजलोचनाम् । पक्वबिम्बप्रभामुष्टदीप्तोष्ठाधरपल्लवाम् ॥१९॥
मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिमनोहराम् । रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरशोभिताम् ॥२०॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन कर्णमूलविराजिताम् । रत्नेन्द्रसारहारेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलाम् ॥२१॥
वह्निशुद्धांशुकं सूक्ष्मं बिभ्रतीं नवयौवनाम् । अतीव कमनीयां च पीनश्रोणिपयोधराम् ॥२२॥
वीणापुस्तकहस्तां च व्याख्यामुद्राकरां वराम्। ते च निर्मञ्छनं कृत्वा चक्रुः परममङ्गलम् ॥२३॥
पुरीं प्रवेशयामासुर्ब्रह्माणं भारतीं मुदा । ब्रह्मा तया सह क्रीडां चकार स दिवानिशम् ॥२४॥
अतीव सुखसंभोगे निमग्नः सततं मुदा । गूढं सर्वपुराणेषु किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥२५॥

नारायण उवाच

प्राणेशवचनं श्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरी। भूयोऽपि परिपप्रच्छ कौतुकान्मानसं पुरा ॥२६॥

राधिकोवाच

ब्रह्मा कथं न जग्राह वेश्यां स्वयमुपस्थिताम्। न कर्मक्षेत्रे रहसि फलदाता च कर्मणाम् ॥२७॥

मैं पुनः अपने घर ब्रह्मलोक में आ गया हूँ ॥१६-१७॥ वहाँ ब्रह्मलोक के निवासियों ने बड़े कौतुक से उस देवी को देखा जो अत्यन्त सुन्दरी, रमणीय, शुक्ल तथा मन्द मुस्कान से युक्त थी ॥१८॥ उनका मुख शारदीय चन्द्रमा के समान था, नेत्र शरद् ऋतु के कमल की भाँति थे, दीप्तिमान् ओष्ठ और अधरपल्लव पके बिम्बफल की प्रभा को चुराने वाले थे, दाँतों की पंक्तियाँ मोतियों की पंक्तियों को विनिन्दत करने वाली थीं और वे (देवी) रत्नों के केयूर, कंकण और नूपुर से सुशोभित थीं ॥१९-२०॥ उनके कानों के नीचे का भाग रत्नों के युगल कुण्डलों से विभूषित था। रत्नेन्द्र के सारभाग के बने हार से उनका वक्षःस्थल प्रकाशमान था ॥२१॥ वे अग्निविशुद्ध एवं सूक्ष्म वस्त्र धारण करके नवीन यौवन से सम्पन्न एवं अतिकमनीय दृष्टिगोचर होती थीं। उनके नितम्ब और स्तन स्थूल थे ॥२२॥ उनके दोनों हाथों में वीणा और पुस्तक तथा अन्य हाथों में व्याख्या की मुद्रा थी। ब्रह्मलोक-निवासियों ने उन पर प्रिय वस्तुएँ निछावर करके परम मङ्गल उत्सव मनाया और ब्रह्मा तथा भारती को पुरी में प्रविष्ट कराया। ब्रह्मा उनके साथ दिन रात क्रीड़ा करने में रत हो गये। बड़ी प्रसन्नता से अपने अत्यन्त सुख-सम्भोग में सतत निमग्न रहने लगे। यह समस्त पुराणों में गूढ़ विषय है। पुनः क्या सुनना चाहती हो? ॥२३-२५॥

नारायण बोले—प्राणेश्वर की बात सुनकर परमेस्वरी राधा ने कौतुकवश पुनः मन की बात पूछी ॥२६॥

राधिका बोलीं—कर्मों के फलदाता ब्रह्मा ने एकान्त में उस वेश्या के स्वयं उपस्थित होने पर उसका

उपस्थितायास्त्यागे च महान्दोषो हि योषितः । ज्ञात्वा[1] देवो विधाता स कथं तत्याज
मोहिनीम् ॥२८॥

नारायण उवाच

राधिकावचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः । पाद्मकल्पस्य वृत्तान्तमुवाच परमेश्वरीम् ॥२९॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु कान्ते प्रवक्ष्यामि पुरावृत्तान्तमीप्सितम् । अकथ्यं गोपनीयं च महतामभिनन्दितम् ॥३०॥
एकदा च प्रजाः स्रष्टुं विधाता प्रेरितो मया । ससर्ज मनसा पुत्राञ्ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥३१॥
सनकं च सनन्दं च सनातनमनुत्तमम् । सनत्कुमारं वोढुं च कविं पञ्चशिखं विभुम् ॥३२॥
असितं कपिलं सिद्धं सिद्धान्मम कलोद्भवान् । तान्नग्नान्पञ्चवर्षीयान्पिता स्रष्टुं जगाद ह ॥३३॥
प्रजाः स्रष्टुं प्रेरकं च जनकं तेऽवमन्य च । प्रजग्मुस्तपसे तूर्णं ममार्चनपरायणाः ॥३४॥
तदा रुष्टो जगद्धाता पुनः पुत्रान्विनिर्ममे । रुद्रानेकादश वरान्रुदतो भीमविग्रहान् ॥३५॥
तस्मिन्प्रयुज्य तरसा पुनः पुत्रान्विनिर्ममे । योगी योगेन मां ध्यात्वा स्वात्मारामः स्वविग्रहे ॥३६॥

ग्रहण क्यों नहीं किया, वह कर्मक्षेत्र (भारत) तो था नहीं। स्वयं उपस्थित स्त्री के त्याग करने में महादोष होता है, यह जानते हुए भी उस विधाता ने मोहिनी का त्याग कैसे कर दिया ? ॥२७-२८॥

नारायण बोले—राधिका की बात सुनकर मधुसूदन ने हँसकर परमेश्वरी (राधा) से पाद्मकल्प का वृत्तान्त बताया ॥२९॥

श्रीकृष्ण बोले—प्रिये ! सुनो, मैं अकथनीय, गोपनीय, महान् लोगों से अभिनन्दित एवम् अभीष्ट प्राचीन वृत्तान्त बताऊँगा ॥३०॥ एक बार प्रजाओं की सृष्टि करने के लिए ब्रह्मा को मैंने प्रेरित किया। उन्होंने ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान पुत्रों की मानसिक सृष्टि की ॥३१॥ वे थे—सनक, सनन्द, परमोत्तम सनातन, सनत्कुमार, वोढु, कवि, पञ्चशिख, असित, कपिल और सिद्ध। मेरी कला से उत्पन्न उन पाँच वर्ष वाले नंगे सिद्धों को, पिता ने सृष्टि करने के लिए कहा ॥३२-३३॥ मेरी अर्चना में सदैव तन्मय रहने वाले उन पुत्रों ने प्रजाओं की सृष्टि के लिए प्रेरक पिता की अवमानना करके शीघ्रता से तप के लिए चले गए ॥३४॥ तब रुष्ट हुए जगत् के विधाता ने पुनः पुत्रों को उत्पन्न किया। वे पुत्र थे—भयंकर शरीर वाले एवं रोते हुए ग्यारह रुद्र ॥३५॥ इन पुत्रों को उस (सृष्टि) कार्य में नियुक्त करके योगी एवं स्वात्माराम ब्रह्मा ने अपने शरीर में योगद्वारा

---

[1] क. °त्वा वेदवि° ।

Funding by IKS-MoE

वसिष्ठं पुलहं चैव क्रतुमङ्गिरसं तथा । भृगुमत्रिं पुलस्त्यं च दक्षं कर्दममेव च ॥३७॥
मरीचिं च विनिर्माय प्रजाः स्रष्टुं नियुज्य च । प्रहृष्टमानसः पुत्रं कन्यैकां च ससर्ज ह ॥३८॥
कृष्णस्य कामिनः पुत्रः कामदेवो बभूव ह । कन्या षोडशवर्षीया रत्नभूषणभूषिता ॥३९॥
उवाच पुत्रं स विधिः सुदीप्तं पुरतः स्थितम् । दुर्निवार्यं मत्कलांशं स्वात्मारामं मनोहरम् ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

स्त्रीपुंसोः क्रीडनार्थाय मुदा त्वं च विनिर्मितः । हृदि योगेन सर्वेषामधिष्ठानं करिष्यसि ॥४१॥
संमोहनं समुद्वेगं बीजस्तम्भितकारणम् । उन्मत्तबीजं ज्वलदं शश्वच्चेतनहारकम् ॥४२॥
प्रगृह्यैतान्मया दत्तान्सर्वान्संमोहनं कुरु । दुर्निवार्यो मम वराद्ध्रुव वत्स भवेषु च ॥४३॥
बाणान्दत्त्वैवमुक्त्वा च प्रहृष्टश्च जगद्विधिः । दृष्ट्वोवाच दुहितरं वरं दातुं समुद्यतः ॥४४॥
एतस्मिन्नन्तरे कामो मनसाऽऽलोच्य मन्त्रणाम् । कर्तुं शस्त्रपरीक्षां च बाणांश्चिक्षेप ब्रह्मणि ॥४५॥
मन्त्रपूतैश्च बाणैश्च दुर्वार्यैः स्मरणेन च । अतिविद्धो महायोगी मूर्च्छितो हतचेतनः ॥४६॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य ददर्शाग्रे च कन्यकाम् । तां संभोक्तुं मनश्चक्रे सा दुद्राव भिया सती ॥४७॥
दृष्ट्वा पश्चाच्च पितरं धावन्तं हतचेतनम् । जगाम शरणं शीघ्रं भ्रातॄणां च तपस्विनाम् ॥४८॥

मेरा ध्यान करके वसिष्ठ, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, भृगु, अत्रि, पुलस्त्य, दक्ष, कर्दभ और मरीचि को उत्पन्न किया तथा इन्हें प्रजाओं की सृष्टि करने में लगा दिया। तत्पश्चात् प्रसन्नचित्त होकर ब्रह्मा ने एक पुत्र और एक कन्या की सृष्टि की ॥३६-३८॥ कामयुक्त श्रीकृष्ण के पुत्र कामदेव हुए। रत्नों के आभूषणों से भूषित एक षोडशवर्षीया कन्या हुई ॥३९॥ सामने स्थित, सबके लिए दुर्निवार, मेरी कला के अंश, स्वात्माराम और मनोहर उस तेजस्वी पुत्र से ब्रह्मा ने कहा ॥४०॥

ब्रह्मा बोले---स्त्री-पुरुषों की क्रीडा के निमित्त ही हर्ष से तुम्हारी सृष्टि की गयी। योग के द्वारा तुम सबके हृदय में निवास करो ॥४१॥ सम्मोहन, समुद्वेग, बीजस्तम्भन का कारण, उन्मत्त करने का बीज, जलन उत्पन्न करने वाला, चेतना का अपहरण करने वाला मेरे दिये हुए इन (बाणों) को ग्रहण करके तुम सब का सम्मोहन करो। वत्स ! मेरे वरदान द्वारा तुम संसार में दुर्निवार होगे (कोई रोक नहीं सकेगा) ॥४२-४३॥ जगत् के विधाता बाणों को देकर और इस प्रकार कहकर अत्यन्त हर्षित हुए। फिर पुत्री को देखकर उसे वर देने के लिए उद्यत हुए ॥४४॥ उसी बीच काम ने मनमें विचार करके उन शस्त्रों की परीक्षा करने के लिए ब्रह्मा के ऊपर बाणों को चला दिया ॥४५॥ मंत्रपूत उन दुर्निवार बाणों के आघात और स्मरण से आहत होकर महायोगी ब्रह्मा चेतनाहीन होकर मूर्च्छित हो गये ॥४६॥ क्षण में चेतना प्राप्त होने पर उन्होंने अपने सामने उस कन्या को देखा। उसके साथ सम्भोग करना चाहा। वह सती भयभीत होकर वहाँ से भाग चली। नष्ट चेतना वाले पिता को भी पीछे दौड़ते हुए देखकर वह शीघ्रता से अपने तपस्वी भाइयों की शरण में पहुँच गयी ॥४७-४८॥

Funding by IKS-MoE

त तां समीपे संस्थाप्य तमूचे पितरं क्रुधा । हितं तथ्यं च वेदोक्तं नीतिसारं परं वचः ॥४९॥

ऋषय ऊचुः

अहो किमेतज्जनक कर्म तेऽतिविगर्हितम् । नीचानां[1] चरितं यत्तत्करोषि त्वं जगद्विधे ॥५०॥
पश्यन्ति सततं सन्तः प्रसूमिव परस्त्रियम् । ये ते सर्वत्र पूज्याश्च परत्रेह जितेन्द्रियाः ॥५१॥
त्वं स्वयं वेदकर्ता च कन्यां संभोक्तुमिच्छसि । कन्या च मातृवर्गेषु प्रविष्टा च श्रुतौ श्रुता ॥५२॥
गुरोः पत्नी राजपत्नी विप्रपत्नी च या सती । पत्नी च भ्रातृसुतयोर्मित्रपत्नी च तत्प्रसूः ॥५३॥
प्रसूः पित्रोस्तथा भ्रातुः पत्नी श्वश्रूः स्वकन्यकाः । जननी तत्सपत्नी च भगिनीं सुरभी तथा ॥५४॥
स्वाभीष्टसुरपत्नी च धात्रिकाऽन्नप्रदायिका । गर्भधात्री स्वनाम्ना च भयात्त्रातुश्च कामिनीं ॥५५॥
एता वेदप्रणीताश्च सर्वेषां मातरः स्मृताः । एतास्वपि च सर्वासु न्यूनता नास्ति कासु च ॥५६॥
कन्यादाताऽन्नदाता च ज्ञानदाताऽभयप्रदः । जन्मदो मन्त्रदो ज्येष्ठभ्राता च पितरः स्मृताः ॥५७॥
एता वहन्ति ये मूढा य एताञ्जनकानपि । पच्यन्ते नरके ते च यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥५८॥
तानन्धकूपे संस्थाप्य दूरतो यमकिंकराः । कुर्वन्ति ताडनं शश्वत्पुरीषं पाययन्ति च ॥५९॥

उन लोगों ने उस कन्या को अपने समीप रख कर पिता से क्रोधपूर्वक हितकर, तथ्य, वेदोक्त और नीति के साररूप श्रेष्ठ वचन कहा ॥४९॥

ऋषिगण बोले—हे पिता ! कष्ट की बात है। क्यों यह अत्यन्त निन्दित कर्म करने पर आप उतारू हो गये हैं ? जगद्विधाता ! नीचों का जो चरित्र है, वह आप कर रहे हैं॥५०॥ सन्त लोग पर-स्त्री को निरन्तर माता के समान देखते हैं और जो जितेन्द्रिय होते हैं, वे ही यहाँ-वहाँ सर्वत्र पूज्य होते हैं ॥५१॥ तुम स्वयं वेदों के रचयिता होकर कन्या के साथ सम्भोग करना चाहते हो ? कन्या मातृवर्गों में है, ऐसा वेदों में सुना गया है ॥५२॥ गुरुपत्नी, राजा की पत्नी सती ब्राह्मण-पत्नी, भ्राता और पुत्र की पत्नी, मित्र पत्नी और उनकी मातायें, माता-पिता की माता, सास, अपनी कन्या, माता, उसकी सौत, भगिनी, गाय, अपने इष्टदेव की पत्नी, धाय, अन्नदात्री, गर्भधात्री, (गर्भकाल से ही धाय बनी हुई) भय दूर करने वाले की पत्नी—ये सभी लोगों की मातायें हैं, ऐसा वेदों में कहा गया है। इन सबों में से किसी में भी न्यूनता नहीं है ॥५३-५६॥ (इसी तरह) कन्यादाता, अन्नदाता, ज्ञानदाता, अभयदाता, जन्मदाता, मंत्रदाता और ज्येष्ठ भ्राता—ये पिता माने गये हैं ॥५७॥ जो मूढ़ इन माताओं और पिताओं के साथ दुर्व्यवहार करते हैं, वे ब्रह्मा की अवस्था तक नरक में पकाये जाते हैं ॥५८॥ उन्हें यमराज के दूत दूर से ही, अन्धकूप नरक में डाल कर सतत मारते-पीटते रहते हैं और मलपान कराते हैं ॥५९॥

१क. नीचैर्नाऽऽच° ।

Funding by IKS-MoE

त्वमेव विश्वकर्ता च शास्ता वै शमनस्य च। स्वयं विधाता जगतां तेन गृह्णासि कन्यकाम् ॥६०॥
अस्माकं पुरतो दूरं गच्छ कामार्तमानस । न कुर्मो भस्मसात्कर्तुं शक्ताश्च जनकं वयम् ॥६१॥
गुरोर्दोषसहस्राणि क्षन्तुमर्हन्ति पण्डिताः । सर्वघ्नं तं विनिघ्नन्ति नीतिज्ञाः स्वगुरुं विना ॥६२॥
गृह्णन्तं यदि सर्वस्वं शपन्तं निष्ठुरं गुरुम् । साधवस्तं न निन्दन्ति प्रणमन्ति स्वभक्तितः ॥६३॥
ये द्विषन्ति च निन्दन्ति गुरुमिष्टं सुरात्परम् । पच्यन्ते तेऽन्धकूपे च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥६४॥
पुरीषं भुञ्जते नित्यं क्षुभिता यमताडनैः । [1]सर्पप्रमाणकीटैश्च दंशिताश्च दिवानिशम् ॥६५॥
इत्येवमुक्त्वा मुनयः प्रणेमुस्तत्पदाम्बुजम् । सर्वं भवति दैवेन प्रशान्तमनसा ध्रुवम् ॥६६॥
उन्मुखा मुनयः सर्वे बभूवुश्च स्वकर्मणि । ब्रह्मा शरीरं संत्यक्तुं व्रीडया च समुद्यतः ॥६७॥
योगेन भित्त्वा षट्चक्रं सर्वान्प्राणान्निरुध्य च। ब्रह्मरन्ध्रं समानीय तत्याज स्वेन वर्त्मना ॥६८॥
मनसा श्रीहरिं स्मृत्वा नमस्कारं चकार ह । न मे मनः परद्रव्ये भविता [2]लोलमीश्वर ॥६९॥
प्राणत्यागात्परं दुःखमयशश्च यशस्विनाम् । बभूव हृदि कृत्वैकं ब्रह्मा लीनश्च ब्रह्मणि ॥७०॥
कन्या तातं मृतं दृष्ट्वा विलप्य च भृशं मुहुः। योगेन देहं तत्याज सा प्रलीना च ब्रह्मणि ॥७१॥

तुम्हीं विश्व के रचयिता, यमराज के भी शासक और स्वयं तीनों लोक के विधाता हो। क्या इसी से कन्या को पकड़ रहे हो ? ॥६०॥ हे कामपीडित चित्त वाले ! तुम हम लोगों के सामने से दूर हट जाओ, हम तुम्हें भस्म करने के लिए समर्थ होते हुए भी, पिता मान कर भस्म नहीं करना चाहते ॥६१॥ क्योंकि पण्डित लोग गुरु के सहस्र दोषों को क्षमा कर देते हैं। नीति के ज्ञाता लोग सब के हन्ता को मार डालते हैं; अपने गुरु को छोड़कर ॥६२॥ गुरु यदि सर्वस्व का अपहरण और शाप प्रदान करता है, तो ऐसे निष्ठुर गुरु की भी साधु लोग निन्दा नहीं करते, अपितु अपनी भक्ति से उनको प्रणाम करते हैं ॥६३॥ देवता से भी श्रेष्ठ अभीष्ट गुरु से जो द्वेष रखते हैं और उसकी निन्दा करते हैं, वे चन्द्रमा-सूर्य के समय तक अन्धकूप नामक नरक में पचते रहते हैं ॥६४॥ यमराज के दूतों द्वारा ताड़ित होकर नित्य विष्ठा (मल) खाते हैं और सांप सरीखे कीड़ उन्हें दिन-रात काटते रहते हैं ॥६५॥ इतना कहकर उन मुनियों ने उन (ब्रह्मा) के चरण-कमल को प्रणाम किया। अत्यन्त शान्त मन वाले दैव के कारण निश्चित ही सब संभव है ॥६६॥ मुनिवृन्द ऊपर मुँख करके अपने-अपने कार्य में लग गये और ब्रह्मा लज्जावश अपना शरीर छोड़ने को उद्यत हो गये ॥६७॥ समस्त प्राणवायु को रोककर योगद्वारा षट्चक्र का भेदन करके ब्रह्म-रन्ध्र में लाकर अपने मार्ग का परित्याग कर दिया ॥६८॥ उस समय उन्होंने मनसे श्रीहरि का स्मरण करके नमस्कार किया और कहा—हे ईश्वर ! मेरा मन परधन की ओर रंच मात्र भी न झुके। यशस्वी लोगों के लिए अपयश प्राणत्याग से भी बढ़कर दुःखदायी है। ब्रह्मा हृदय में एक तान करके ब्रह्म में लीन हो गये । ॥६९-७०॥ अपने पिता को मृतक देखकर उस कन्या ने भी अत्यन्त विलाप किया और योग द्वारा देह का परित्याग करके वह ब्रह्म में विलीन हो गयी ॥७१॥ मुनिश्रेष्ठ ने भी अपने पिता और भगिनी को

१क. सालप्र°। २ ख. स्तोकमी°।

Funding by IKS-MoE

मृतं तातं च भगिनीं दृष्ट्वा च मुनिपुंगवाः । सस्मरुः श्रीहरिं कोपात्स्वात्मारामं विलप्य च ॥७२॥
नारायणो मदंशश्च कृपयाऽऽगत्य सत्वरम् । ब्रह्माणं जीवयामास ब्रह्मज्ञानात्सुतां च ताम् ॥७३॥
ब्रह्मा पुरो हरिं दृष्ट्वा वरं वव्रे स्म वाञ्छितम् । भक्ति त्वच्चरणे शश्वन्निश्चलामनपायिनीम् ॥७४॥
ब्रह्माणं विरसं दृष्ट्वा तमुवाच कृपानिधिः । प्रबोधवचनं सत्यं नीतिसारं मनोहरम् ॥७५॥

नारायण उवाच

शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्येऽहं मुखमुत्तोल्य सांप्रतम् । त्यज लज्जां जगन्नाथ हृदयज्वररूपिणीम् ॥७६॥
सत्कीर्तिरपकीर्तिर्वा सुप्रतिष्ठाऽप्युपद्रव. । क्षुद्राणां चैव महतां भवत्येव स्वकर्मणा ॥७७॥
सर्वेषामपि सर्वेभ्यः स्वकर्म बलवत्तरम् । तस्मात्सन्तः प्रकुर्वन्ति नित्यं सत्कर्म संततम् ॥७८॥
केचित्कुर्वन्ति निर्मूलं सर्वेषामपि कर्मणाम् । कृतं कर्म परं भुक्त्वा हरिपादाब्जचेतसः ॥७९॥
कुकर्मणश्चापकीर्तिस्ततो लज्जा भवेद्ध्रुवम् । सुकर्मणः सुप्रतिष्ठा सर्वत्र निर्मलं यशः ॥८०॥
कालेन जरसा देहो बलं रूपं शुभाशुभम् । कीर्तिर्या त्रिगुणा चैव मोहश्चापयशो विधे ॥८१॥
ऋणव्रणापवादाश्च जन्तूनां यान्ति कालतः । महतां तौ च पूर्वोक्तौ नेतरश्च कदाचन ॥८२॥
सदाऽपकीर्तिर्वसति परस्त्रीषु च वस्तुषु । तस्मात्ते नैव गृह्णन्ति सन्तः स्वक्लेशकारणे ॥८३॥

मृतक देखकर क्रोध से विलाप करके आत्माराम श्रीहरि का स्मरण किया ॥७२॥ तब मेरे अंशभूत नारायण ने कृपया शीघ्र आकर ब्रह्मज्ञान द्वारा ब्रह्मा और उस कन्या को जीवित कर दिया ॥७३॥ ब्रह्मा ने सामने हरि को देखकर उनसे अभीष्ट वर की याचना की कि—'तुम्हारे चरणों में मेरी निश्चल और अविनश्वर भक्ति निरन्तर बनी रहे' ॥७४॥ ब्रह्मा को विरस देखकर कृपानिधान भगवान् ने उन्हें उद्बोधन दिया, जो सत्य-स्वरूप, नीतियुक्त एवं मनोहर था ॥७५॥

नारायण बोले——ब्रह्मन् ! जगन्नाथ ! अब हृदय-ज्वर-रूप लज्जा को छोड़ दो और मुँह उठाकर सुनो, मैं बता रहा हूँ ॥७६॥ सुयश या अपयश और उत्तम प्रतिष्ठा या उपद्रव छोटे-बड़े सभी को कर्मानुसार प्राप्त होते हैं ॥७७॥ सभी लोगों का अपना कर्म सबसे बलवान् होता है; इसलिए सन्त लोग नित्य निरन्तर सत्कर्म ही करते हैं ॥७८॥ कोई तो भगवान् के चरण-कमल में मन लगा कर किये हुए कर्म का भोग करके समस्त कर्मों का निर्मूलन कर डालते हैं ॥७९॥ कुकर्म से अपयश मिलता है और उससे निश्चित ही लज्जा होती है । सुकर्म से प्रतिष्ठा और निर्मल यश की प्राप्ति होती है ॥८०॥ ब्रह्मन् ! कालवश वृद्धावस्था से युक्त देह, बल, रूप, शुभ, अशुभ तथा त्रिगुणात्मिका कीर्ति, मोह, अयश, ऋण, व्रण (घाव) और कलंक जन्तुओं को मिलते हैं । किन्तु महात्माओं को पूर्वोक्त वे दोनों तथा अन्य भी नहीं होते हैं ॥८१-८२॥ परायी वस्तुओं और परस्त्रियों में सदा अपकीर्ति निवास करती है, इस लिए अपने लिए क्लेशकारक उन दोनों को सन्त लोग ग्रहण नहीं करते हैं ॥८३॥ अतः अन्तःकरण में मेरा स्मरण

Funding by IKS-MoE

स्मर मामन्तरे ब्राह्मे मदीयं विषयं कुरु । अतस्ते न मनो लोलं भविता परवस्तुषु ॥८४॥
योषिद्रूपा च मे माया सर्वेषां मोहकारिणी । लीलया कुरुते मोहं स्वात्मारामस्य संततम् ॥८५॥
नानामुद्राश्रये देशे रागिणां संततं रतिः । स्तनाभिधे मांसपिण्डेऽधरे लालालयेऽशुचौ ॥८६॥
श्रोणिवक्त्रस्तनं तासां कामदेवालयं सदा । तस्मात्ते[1] न हि पश्यन्ति सन्तो हि धर्मभीरवः ॥८७॥
को धर्मः कि यशस्तेषां का प्रतिष्ठा च कि तपः । किं बुद्धिर्विद्या दानं च परस्त्रीषु च यन्मनः ॥८८॥
इहाप्यपयशो दुःखं नरकेषु परत्र च । वासः प्रहारस्तेषां च ताडनैः कृमिभक्षणैः ॥८९॥
दुःखबीजं सुखं मत्वा मूढाश्च दैवदोषतः । परस्त्रीसेवनं प्रीत्या कुर्वन्ति संततं मुदा ॥९०॥
उत्तमा मत्पदाम्भोजं सत्कर्म मध्यमा सदा । स्मरन्ति शश्वदधमाः परस्त्रीसेवनं मुदा ॥९१॥
विपत्तिः संततं तस्य परवस्तुषु यन्मनः । विशेषतः परस्त्रीषु सुवर्णेषु च भूमिषु ॥९२॥
दैवात्परस्त्रियं दृष्ट्वा विरमेद्यो हरिं स्मरन् । दृष्ट्वा परसुवर्णं च हस्तप्रक्षालनाच्छुचिः ॥९३॥
सततं नैव संसक्ताः सन्तः स्वस्त्रीषु कामतः । यक्ष्मव्याधिज्ञानहानिलोकनिन्दाभयेन च ॥९४॥
तपस्विनस्तपस्यायां शास्त्रचिन्तासु पण्डिताः । योगिनो योगचिन्तासु वेदार्थेषु च वैदिकाः ॥९५॥

करो और मुझे ही ध्यान का लक्ष्य बनाओ । इससे तुम्हारा मन दूसरे की वस्तुओं के प्रति चंचल नहीं होगा ॥८४॥ स्त्रीरूपिणी मेरी माया सभी को मोहित करने वाली है । वह स्वात्माराम (व्यक्ति) को भी निरन्तर लीलापूर्वक मोहित करती रहती है ॥८५॥ उसके अनेक प्रकार की मुद्राओं के आश्रयभूत अंगों में रागी जनों की सतत रति बनी रहती है । जैसे––उसके स्तन नामक मांस-पिण्ड और अपवित्र एवं लार के घर अधर में रति बनी रहती है। इसलिए धर्मभीरु सन्त लोग स्त्रियों के नितम्ब, मुख, स्तन एवं कामनिवास (भग) को नहीं देखते हैं ॥८६-८७॥ जिस का मन स्त्रियों में लग जाता है, उसका धर्म, यश, प्रतिष्ठा, तप, बुद्धि, विद्या और दान निरर्थक हो जाता है ॥८८॥ इस लोक में भी अयश और दुःख भोगना पड़ता है तथा परलोक में नरकवास करना पड़ता है, जहाँ यमदूत प्रहार करते हैं और कीटभक्षण कराते हैं ॥८९॥ मूर्ख लोग दैववश दुःख के बीज को सुख मान कर प्रसन्नता से पर-स्त्री-सहवास नित्य करते हैं ॥९०॥ उत्तम पुरुष एक मात्र मेरे चरण-कमल का, मध्यम पुरुष सत्कर्म (यागादि पुण्य कर्म) का और अधम पुरुष निरन्तर हर्ष से पर-स्त्री-सेवन का स्मरण करते रहते हैं ॥९१॥ परायी वस्तुओं में––विशेषतया पर स्त्रियों, दूसरे के सुवर्णों और भूमियों में––जिसका मन लग जाता है, उसे निरन्तर विपत्ति बनी रहती है ॥९२॥ दैववश परस्त्री को देखकर जो हरि का स्मरण करते हुए रुक जाता है और पराया धन देखकर हाथ प्रक्षालन कर (धो) लेता है, वह पवित्र हो जाता है ॥९३॥ यक्ष्मा-व्याधि, ज्ञानहानि, लोकनिन्दा के भय से सन्त लोग कामवश अपनी स्त्री में भी निरन्तर आसक्त नहीं होते हैं ॥९४॥ तपस्वीगण तपस्या में, पण्डित लोग शास्त्रों के चिन्तन में, योगीलोग योगसाधन में, वैदिकगण वेदार्थों के

---

[1] १क. °स्मात्ता न ।

साध्व्यश्च पतिसेवासु गृहस्था गृहकर्मसु । विषयेषु विषयिणो मद्भक्ता मम सेवने ।।९६।।
एते नियुक्ता एतेषु सभासु च प्रशंसिताः । वेदोक्ताचरणेनैव तद्विरुद्धेन निन्दिताः ।।९७।।
सर्वे नित्यं प्रशंसन्ति शश्वत्सन्मार्गगामिनम्। हालिका अपि निन्दन्ति कुवर्त्मगामिनं विधे ।।९८।।
भविता न परस्त्रीषु परवस्तुषु ते मनः । अद्यप्रभृति जीवान्तं निविष्टं मद्वरेण च ।।९९।।
मदीयविषये बाह्ये मया दत्तं कुरु प्रियम्। अन्तरा मत्पदाम्भोजचिन्तां विघ्नविनाशिनीम् ।।१००।।
कन्या भवतु ते[१] ब्रह्मन्कामदेवस्य कामिनी । रतिर्नाम परित्याज्या रत्यधिष्ठातृदेवता ।।१०१।।
इत्येवमुक्त्वा ब्रह्माणमाश्वास्य कमलापतिः । जगाम नित्यं वैकुण्ठं वृन्दावनविनोदनः ।।१०२।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाकृष्णसं०
ब्रह्मणः प्रसंगो नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।।३५।।

चिन्तन में, पतिव्रताएँ, पतिसेवा में, गृहकार्य में, विषयी लोग विषयों में और मेरे भक्त मेरी सेवा में निरन्तर लगे रहते हैं ।।९५-९६।। इन कार्यों में नियुक्त ये लोग वेदोक्त आचरण करने से ही सभाओं में प्रशंसित होते हैं और वेद-विरुद्ध आचरण करने से निन्दित होते हैं ।।९७।। ब्रह्मन् ! उत्तम मार्ग पर चलने वाले की सभी लोग नित्य प्रशंसा करते हैं और कुमार्गगामी की हलवाहे भी निन्दा करते हैं ।।९९।। मेरे वरदान द्वारा आज से जीवन पर्यन्त तुम्हारा मन पर-स्त्रियों और परायी वस्तुओं में नहीं लगेगा ।।९१।। वाहर अपने संबंध में मेरे दिये हुए उपदेश को करो और भीतर विघ्नविनाशी मेरे चरण-कमल का चिन्तन करो ।।१००।। ब्रह्मन् ! तुम्हारी कन्या कामदेव की पत्नी बने । इसका नाम 'रति' होगा । यह रति की अधिष्ठात्री देवी होगी, तुम इसका त्याग कर दो ।।१०१।। इस प्रकार कहकर और ब्रह्मा को आश्वस्त करके वृन्दावनविनोदी एवं कमला-पति भगवान् नित्य वैकुण्ठधाम को चले गये ।।१०२।।

श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में राधाकृष्ण-संवाद के क्रम में ब्रह्मा का प्रसंग नामक पैंतीसवाँ अध्याथ समाप्त ।।३५।।

---

[१] ब. बे।

Funding by IKS-MoE

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

राधिकोवाच

एतेन नियमेनैव ब्रह्मा तत्याज मोहिनीम् । कथं स कुलटाशापादपूज्यः संबभूव ह ॥१॥
कथं तस्य दर्पभङ्गं चकार कमलापतिः । कथयस्व सर्वबीजं सर्वेषामीश्वरः स्वयम् ॥२॥

नारायण उवाच

रासेश्वरीवचः श्रुत्वा प्रहस्य रसिकेश्वरः । निगूढमितिहासं च तां वक्तुमुपचक्रमे ॥३॥

श्रीकृष्ण उवाच

ब्रह्मा चिरं तपस्तप्त्वा मत्तो लब्ध्वा वरं वरम् । सृष्टिं नानाविधां कृत्वा विधाता स बभूव ह ॥४॥
तपसां फलदाता च सर्वेषां शास्तिकृत्प्रभुः । आत्मानमीश्वरं ज्ञात्वा महागर्वो बभूव ह ॥५॥
ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु गर्वपर्यन्तमुन्नतिः । इति मत्वा ब्रह्मणश्च दर्पभङ्गः कृतो मया ॥६॥
येषां येषां भवेद्दर्पो ब्रह्माण्डेषु परात्परः । विज्ञाय सर्वं सर्वात्मा तेषां शास्ताऽहमेव च ॥७॥
प्रथमे ब्रह्मणो गर्वो मया चूर्णीकृतः श्रुतः । शंकरस्य च पार्वत्याश्चन्द्रस्य च रवेस्तथा ॥८॥

अध्याय ३६

श्रीकृष्ण द्वारा शंकर की प्रशंसा

राधिका बोलीं—इसी नियम से ब्रह्मा ने मोहिनी का त्याग कर दिया (यह ठीक है; किन्तु) उस कुलटा के शाप से वे अपूज्य कैसे हो गये ? ॥१॥ सबके कारण और सबके स्वयं ईश्वर कमलापति विष्णु ने उनके दर्प का भंग कैसे किया, यह बताइए ॥२॥

नारायण बोले—रासेश्वरी (राधिका) की बात सुनकर रसिकेश्वर (श्रीकृष्ण ने) हँसकर वह निगूढ़ इतिहास उन्हें बताना आरम्भ किया ॥३॥

श्रीकृष्ण बोले—ब्रह्मा ने चिरकाल तक तप करने के उपरान्त मुझसे उत्तम वरदान प्राप्त करके अनेक प्रकार की सृष्टि की और वे विधाता हुए ॥४॥ सभी की तपस्याओं के फलदाता और शासनकर्ता प्रभु (ब्रह्मा) अपने को ईश्वर मान कर महान् गर्वी हो गये ॥५॥ सभी ब्रह्माण्डों में गर्व पर्यन्त ही उन्नति होती है, यह मान कर मैंने ब्रह्मा का अभिमान चूर्ण कर दिया ॥६॥ ब्रह्माण्डों में जिन-जिन लोगों को अधिकाधिक अभिमान हो जाता है, उनका सब (भाव) जानकर मैं सर्वात्मा ही उनको शासित करता हूँ ॥७॥ प्रिये ! सर्वप्रथम मैंने ब्रह्मा का अभिमान चूर्ण किया है, यह तो तुमने सुन ही लिया है । अब शङ्कर, पार्वती, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, दुर्वासा,

Funding by IKS-MoE

वह्नेर्दुर्वाससश्चैव तथा धन्वन्तरेः प्रिये । क्रमेण दर्पभङ्गं च कथयामि निशामय ।।९।।
क्षुद्राणां महतां चैव येषां गर्वो भवेत्प्रिये । एवंविधमहं तेषां चूर्णीभूतं करोमि च ।।१०।।

नारायण उवाच

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका । प्रपच्छ राधा यत्नेन संत्रस्ता भयविह्वला ।।११।।

राधिकोवाच

कस्य केन प्रभावेण महादर्पो बभूव ह । त्वया केन प्रभावेण तस्य भङ्गः कृतः पुरा ।।१२।।
कथयस्व प्राणनाथ सर्वेषां दर्पभञ्जन । दर्पदाभयद प्राणदानैककारणेश्वर ।।१३।।

श्रीकृष्ण उवाच

येन भूतं गर्वचूर्णं श्रुतं त्रिजगतां विधेः । अन्येषां श्रूयतां राधे व्यासेन कथयामि ते ।।१३।।
स्वयं शिवो मदंशश्च संहर्ता जगतां च यः । तेजसा मत्समः पूर्णो ज्ञानेन च गुणेन च ।।१५।।
ध्यायन्ति योगिनो यं स योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः । ज्ञानानन्दस्वरूपोऽयं तस्याख्यानं शृणु प्रिये ।।१६।।
युगषष्टिसहस्राणि तपस्तप्त्वा दिवानिशम् । भूत्वा च मत्कलापूर्णो बभूव मत्समो विभुः ।।१७।।
तपसा तेजसा शश्वत्तेजोराशिर्बभूव ह । सूर्यकोटिप्रभावश्च भक्तानां कल्पपादपः ।।१८।।

और धन्वन्तरि का अभिमान चूर्ण होना क्रमशः कह रहा हूँ ।।८-९।। प्रिये ! छोटे-बड़े जिन लोगों को गर्व हो जाता है, मैं इसी भाँति उनके गर्व को चूर्ण कर देता हूँ ।।१०।।

नारायण बोले—श्रीकृष्ण की बात सुनकर राधिका के ओंठ, कण्ठ और तालु सूख गये। भय से व्याकुल एवं सन्त्रस्त होकर उन्होंने पूछा ।।११।।

राधिका बोलीं—किसको, किसके प्रभाव से महान् दर्प हुआ ? तुमने किस प्रभाव से उसका भंग किया ।।१२।। हे प्राणनाथ ! सबके दर्प को चूर्ण करने वाले ! दर्प देने वाले ! अभय देने वाले ! प्राणदान के एकमात्र कारण ! ईश्वर ! बताओ ।।१३।।

श्रीकृष्ण बोले—राधे ! जिस कारण तीनों लोक के विधाता (ब्रह्मा) का अभिमान चूर्ण हुआ, वह तुम सुन चुकी हो, अब अन्य लोगों का दर्प-भङ्ग संक्षेप में बता रहा हूँ, सुनो ।।१४।। स्वयं शिव मेरे अंशभूत हैं। तीनों लोक का संहार करने वाले, तेज में मेरे समान और ज्ञान एवं गुण से परिपूर्ण हैं। योगी लोग उनका ध्यान करते हैं। वे योगीन्द्रों के गुरु के गुरु तथा ज्ञानानन्द स्वरूप हैं । प्रिये ! उनका आख्यान सुनो ।।१५-१६।। साठ हजार युगों तक रात-दिन तप करके वे मेरी कलाओं से पूर्ण होकर मेरे समान व्यापक हो गये ।।१७।। निरन्तर तप और तेज के कारण वे तेज की राशि हो गये। करोड़ों सूर्य के समान उनका प्रभाव है। भक्तों के

ध्यायं ध्यायं च योगीन्द्रास्तत्तेजो बहुकालतः । तदन्तरे च पश्यन्ति स्वरूपमतिसुन्दरम् ॥१९॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् । त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम् ॥२०॥
जपन्तं स्वात्मनाऽऽत्मानं श्वेताब्जबीजमालया । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं चन्द्रचूडं परात्परम् ॥२१॥
स्वर्णाकारं जटाभारं दधतं शिरसा मुदा । शान्तं कान्तं त्रिजगतां भक्तानुग्रहकारकम् ॥२२॥
अथ स्वमीश्वरं मत्वा प्रदाता सर्वसंपदाम् । ददाति सर्वं सर्वेभ्यो वाञ्छितं कल्पपादपः ॥२३॥
यो यं वाञ्छति तं तस्मै वरं दत्त्वा वरेश्वरः । बभूव गर्वसंयुक्तः स्वात्मारामः स्वलीलया ॥२४॥
एकदा च वृको दैत्यस्तपस्तेपे शिवस्य च । केदारे च कठोरेण वर्षमेकं दिवानिशम् ॥२५॥
नित्यं याति तत्समीपं कृपया च कृपानिधिः । वरं दातुं यथाभीष्टं न जग्राहासुरो वरम् ॥२६॥
वर्षान्ते शंकरः शश्वत्तस्थौ तत्पुरतः स्वयम् । वरदो भक्तिपाशेन क्षणं गन्तुं न स क्षमः ॥२७॥
सर्वैश्वर्यं सर्वसिद्धिं भुक्ति मुक्ति हरेः पदम् । दैत्यः किंचिन्न गृह्णाति प्रेरितः शूलपाणिना ॥२८॥
ध्यायमानं तत्पदाब्जं दृष्ट्वा त्रस्तो महेश्वरः । अयाचितारं निश्चेष्टं रुरोद प्रेमविह्वलः ॥२९॥
अतीव रोदनात्तस्य ध्यानभङ्गो बभूव ह । ददर्श पुरतः साक्षाद्दातारं सर्वसंपदाम् ॥३०॥

लिए वे कल्पवृक्ष हैं ॥१८॥ योगीन्द्रगण बहुत काल तक उनके तेजका बार-बार ध्यान करके उसके भीतर अति सुन्दर स्वरूप का दर्शन करते हैं ॥१९॥ शुद्ध स्फटिक के समान उनका वर्ण है, पाँच मुख हैं, तीन नेत्र हैं। उनके हाथों में त्रिशूल एवं पट्टिश अस्त्र हैं। वे बाघम्बर धारण किये हुए हैं और श्वेत कमल के बीज की माला से स्वयं ही अपने आपका--अपने मन्त्रों का जप करते हैं। उनके प्रसन्नमुख पर मन्द हास्य की छटा छायी रहती है। वे परात्पर शिव मस्तक पर अर्धचन्द्र का मुकुट तथा सुनहरे रंग की जटाओं का भार धारण करते हैं। उनका स्वरूप शान्त है। वे तीनों लोकों के स्वामी और भक्तों पर अनुग्रह करने वाले हैं ॥२०-२२॥ फिर वे अपने-आपको परमेश्वर मानकर समस्त सम्पदाओं के दाता होकर कल्पवृक्ष के समान सबको सारी मनोवांछित वस्तुएँ देते हैं ॥२३॥ जो जिस वस्तु की इच्छा करता है, उसे वही वर देकर वे वरों के ईश्वर हो गये हैं। इस प्रकार अपने आत्मा में रमण करने वाले शिव अपनी लीला से गर्वयुक्त हो गये ॥२४॥ एक बार वृक नामक दैत्य ने शिव के केदार क्षेत्र में एक वर्ष तक दिन-रात कठोर तप किया ॥२५॥ कृपानिधि शिव कृपया उसे यथेच्छ वर प्रदान करने के लिए उसके समीप नित्य जाया करते थे, किन्तु उस असुर ने किसी वरदान को ग्रहण नहीं किया ॥२६॥ वर्ष के अन्त में शिव उसके सामने निरन्तर उपस्थित रहने लगे। वरदायक शिव भक्तिरूपी पाश से बँधकर क्षण भर के लिए भी वहाँ से जाने में समर्थ न हो सके ॥२७॥ शिव उसे ऐश्वर्य, सब प्रकार की सिद्धियाँ, भुक्ति, मुक्ति, भगवान् का पद-यह सब कुछ देना चाहते थे; किन्तु उसने कुछ भी ग्रहण नहीं किया ॥२८॥ वह केवल उनके चरण-कमलों का ध्यान ही करता रहा। उस अयाचक एवं निश्चेष्ट असुर को देखकर शिव भयभीत एवं प्रेम-विह्वल होकर रोने लगे ॥२९॥ उनके बहुत रोने से असुर का ध्यान भंग हो गया। उसने अपने सामने समस्त सम्पत्ति के प्रदाता शिव को साक्षात् उपस्थित देखा ॥३०॥ उनकी माया से दैत्येन्द्र ने भक्तिपूर्वक वरदान की याचना की कि—

यन्मायया वरं वव्रे दैत्येन्द्रो भक्तिपूर्वकम् । हस्तं दधे च यन्मूर्ध्नि स भस्म भवितेति च ॥३१॥
ओमित्युक्त्वा प्रयान्तं तं दुद्राव दैत्यपुंगवः । मृत्युंजयो मृत्युभयाद्दुद्राव त्रासविह्वलः ॥३२॥
पपात डमरुस्तस्य व्याघ्रचर्म मनोहरम् । दिगम्बरो दश दिशो भेजे दानवभीतये ॥३३॥
न हन्ति तं च कृपया भक्तं च भक्तवत्सलः । दुष्टानुसारं साधुश्च न करोति कदाचन ॥३४॥
साधवो घ्नन्ति घ्नन्तं च भृत्यं पुत्रं प्रियां विना । प्रबोधितुं न शक्तश्च स्वात्मानं कृपया समम् ॥३५॥
शिवः स्वमृत्युं मत्वा च भीतश्च निरहंकृतः । स्मारं स्मारं च मां भद्रे मामेव शरणं ययौ ॥३६॥
दृष्ट्वा स्वाश्रममायान्तं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकम् । हे हरे रक्ष रक्षेति जपन्तं भयविह्वलम् ॥३७॥
संस्थाप्य तत्समीपे च स दैत्यो बोधितो मया । पृष्टश्च सर्ववृत्तान्तमुवाच मां क्रमेण च ॥३८॥
तदा ममाऽऽज्ञया तूर्णं वञ्चितो माययाऽसुरः । दत्त्वा स्वमूर्ध्नि हस्तं च सद्यो भस्म बभूव ह ॥३९॥
तदा सिद्धाः सुरेन्द्राश्च मुनीन्द्रा मनवो मुदा । तुष्टुवुर्मां सुभक्त्या च लज्जया लज्जितः शिवः ॥४०॥
बभूव चूर्णस्तद्गर्वो जगाम बोधितो मया । वरं ददाति वरदस्ततो बोध्यो[1] ह्यहं शिव ॥४१॥
अथ गर्वान्वितो रुद्रो हन्तुं त्रिपुरमुल्बणम् । मत्वा मनसि संहर्ता सर्वेषां जगतामिति ॥४२॥

मैं जिसके शिर पर हाथ रख दूं वह भस्म हो जाये ॥३१॥ वरदान देकर जाते समय दैत्यराज ने शंकर का पीछा कर लिया और मृत्युञ्जय शिव मृत्युभय के त्रास से दुःखी होकर भागने लगे ॥३२॥ उनके डमरू और मनोहर बाघम्बर गिर पड़े । वे दिगम्बर (नग्न) होकर दानव के डर से दशो दिशाओं में भागने लगे ॥३३॥ इतने पर भी भक्त-वत्सल शिव कृपावश उसे मारना नहीं चाहते थे, क्योंकि साधु व्यक्ति दुष्ट के अनुसार व्यवहार कभी भी नही करता है ॥३४॥ यद्यपि साधु लोग मारने वाले को मारते हैं, किन्तु सेवक, पुत्र और प्रिया को नहीं (मारते) । शंकर उस (दैत्य) को समझा भी न सके, क्योंकि वे उसे कृपया अपना स्वरूप समझते थे ॥३५॥ शिव अपनी मृत्यु को मानकर भयभीत तथा अभिमानशून्य हो गये । प्रिये ! वे बार-बार मेरा स्मरण करके मेरी ही शरण में गये ॥३६॥ मैंने अपने आश्रम में आते हुए उन्हें देखा । उनके कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये थे । वे 'हे हरे ! बचाइए, बचाइए' इस प्रकार जप करते हुए भयाकुल हो रहे थे ॥३७॥ मैंने उन्हीं के समीप उस दैत्य को स्थापित करके उसे प्रबोधित किया और पूछने पर उसने मुझे समस्त वृत्तान्त क्रमशः बता दिया ॥३८॥ तब मेरी आज्ञा से माया ने उस असुर को शीघ्र वंचित कर दिया और वह असुर अपने मस्तक पर हाथ रखकर सद्यः भस्म हो गया ॥३९॥ उस समय सिद्ध, सुरेन्द्र, मुनीन्द्र, मनुगण एवं लज्जित होकर शिव भी अति भक्ति से मेरी स्तुति करने लगे ॥४०॥ जब उनका अभिमान चूर्ण हो गया, तब मैंने उन्हें प्रबोधित किया और वे चले गये । हे शिव ! वर देने वाला वर देता है, उसके पश्चात् मुझे जानना चाहिए (अर्थात् वरदान को मैं ही पूर्ण करता हूँ) ॥४१॥ इसी भाँति गर्वान्वित होकर शंकर भयंकर त्रिपुरासुर को मारने के लिए गये । वे मन में यह

---

[1] क. वध्यो ह्य° ।

कोऽयं पतङ्गवद्दैत्य इति मत्वा ययौ रणम् । विहाय शूलं मद्दत्तं मदीयकवचं परम् ॥४३॥
चिरं बभूव समरं वर्षमेकं दिवानिशम् । न कोऽपि जेतुं कं शक्तौ द्वौ समौ समरे तदा ॥४४॥
पृथिव्यां च रणं कृत्वा दैत्येन्द्रो मायया प्रिये । अत्यूर्ध्वं च समुत्तस्थौ पञ्चाशत्कोटियोजनम् ॥४५॥
उत्तस्थौ शंकरस्तूर्णं हन्तुं दैत्यं जगत्प्रभुः । बभूव तत्र युद्धं च मासमेकं निराश्रये ॥४६॥
अस्त्राणि चापं चिच्छेद शंकरस्यासुरो बली । रथं बभञ्ज दैत्येन्द्रश्चापमस्त्राणि शंकरात् ॥४७॥
जघान मुष्टिना रुद्रो दानवेन्द्रं प्रकोपतः । वज्रमुष्टिप्रहारेण सद्यो मूर्च्छामवाप सः ॥४८॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य कोपाद्दानवपुंगवः । शिवं शयानमुत्तोल्य पातयामास भूतले ॥४९॥
सरथे पातिते रुद्रे देवा देवर्षयो भिया । तुष्टुवुर्मां परित्राहि कृष्णेत्युक्त्या पुनः पुनः ॥५०॥
हरः सस्मार मामेव निर्भयो भयकारणम् । तुष्टाव भक्त्या स्तोत्रेण मया दत्तेन संकटे ॥५१॥
तदाऽहं कलया शीघ्रं वृषरूपं विधाय च । शयानं शंकरं धृत्वा विषाणाभ्यामुरुक्रमम् ॥५२॥
ददौ तस्मै स्वकवचं स्वशूलमरिमर्दनम् । प्राप्य तद्दानवस्थानमत्यूर्ध्वं च निराश्रयम् ॥५३॥
मया दत्तेन शूलेन जघान त्रिपुरं हरः । मामेव दर्पहन्तारं तुष्टाव व्रीडितः पुनः ॥५४॥
सद्यः पपात दैत्येन्द्रश्चूर्णीभूतश्च भूतले । देवता मुनयः सर्वे तुष्टुवुः शंकरं मुदा ॥५५॥

समझकर कि 'मैं तीनों लोक का संहार करने वाला हूँ, फिर मेरे सामने इस पतिंगे के समान दैत्य की क्या विसात है ?' युद्धक्षेत्र में गये । उस समय वे मेरे दिये हुए त्रिशूल और श्रेष्ठ कवच को छोड़कर युद्ध में गये थे ॥४२-४३॥ उनका त्रिपुर के साथ एक वर्ष तक दिन रात युद्ध होता रहा; किन्तु कोई भी किसी पर, विजय नहीं पा सका। समरांगण में दोनों समान सिद्ध हुए, ॥४४॥ वह दैत्य पृथिवी पर युद्ध करके माया द्वारा पचास करोड़ योजन ऊपर उठ गया ॥४५॥ जगत्स्वामी शंकर भी उस दैत्य का वध करने के लिए तत्काल ऊपर को उठे । उस निराधार स्थान में दोनों का युद्ध एक मास तक चलता रहा ॥४६॥ बली असुर ने शंकर के अस्त्रों और धनुष को काट दिया, रथ तोड़ डाला, अन्य अस्त्रों को नष्ट कर दिया ॥४७॥ रुद्र ने क्रुद्ध होकर उस दैत्येन्द्र पर मुष्टिका प्रहार किया । उस वज्र के समान मुष्टिप्रहार से वह दैत्य सद्यः मूर्च्छित हो गया ॥४८॥ क्षण में चेतना प्राप्त होने पर क्रोध से उस दानवरान ने शयन करते हुए शिव को उठा भूतल पर दे मारा ॥४९॥ रथ समेत शिव के धराशायी हो जाने पर देव और देवर्षि गण अति भयभीत हुए और 'हे कृष्ण ! मेरी रक्षा करो' ऐसा बार-बार कहते हुए मेरी स्तुति करने लगे ॥५०॥ भय का कारण उपस्थित हुआ जानकर शिव ने निर्भयतापूर्वक मेरा ही स्मरण किया । उन्होंने संकट काल में मेरे ही दिये हुए स्तोत्र से भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति की ॥५१॥ तब मैंने अपनी कला से शीघ्र ही वृषभ रूप धारण करके सोते शंकर को सींगों से उठाया और उन्हें अपना कवच तथा शत्रुनाशक अपना शूल प्रदान किया । उसे पाकर उन्होंने दानव के उस अत्यन्त ऊँचे स्थान त्रिपुर को जो आकाश में निराधार टिका हुआ था, मेरे दिये हुए शूल से नष्ट कर दिया । इसके बाद शिव ने लज्जित होकर मुझ दर्पहन्ता की बार-बार स्तुति की ॥५२-५४॥ चूर्णीभूत होकर वह दैत्य तुरन्त पृथिवी पर गिर पड़ा, यह देखकर देवता और मुनिवृन्द शंकर

तत्याज शंकरो दर्पं विघ्नबीजं ततो विभुः । ज्ञानानन्दस्वरूपश्च निर्लिप्तः सर्वकर्मसु ॥५६॥
ततोऽहं वृषरूपेण वहामि तेन तं प्रियम् । मम प्रियतमो नास्ति त्रैलोक्येषु शिवात्परः ॥५७॥
मनःस्वरूपो ब्रह्मा मे ज्ञानरूपो महेश्वरः । बुद्धिर्भगवती दुर्गा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥५८॥
निद्रादयः शक्तयो यास्ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः । वागधिष्ठातृदेवी या सा स्वयं च सरस्वती ॥५९॥
मम कल्याणाधिदेवो हर्षरूपो गणेश्वरः । परमार्थः स्वयं धर्मो मम भक्तो हुताशनः ॥६०॥
सर्वैश्वर्याधिदेवी मे सर्वगोलोकवासिनः । प्राणाधिष्ठातृदेवी त्वं सदा प्राणाधिका मम ॥६१॥
गोपाङ्गनास्तव कला अत एव मम प्रियाः । मल्लोमकूपजा गोपाः सर्वे गोलोकवासिनः ॥६२॥
तेजःस्वरूपः सूर्यश्च प्राणा मे वायवः स्मृताः । जलाधिदेवो वरुणः पृथिवी मे मलोद्भवा ॥६३॥
मम शून्यो महाकाशो मदनो मानसो द्भवः । इन्द्रादयः सुराः सर्वे मत्कलांशांशसंभवाः ॥६४॥
एतानि सृष्टिबीजानि महदादीनि चैव हि । सर्वेषां बीजरूपोऽहं स्वमात्मा निराश्रयः ॥६५॥
जीवो मे प्रतिबिम्बश्च कर्मभोगाधिकारकः । अहं साक्षी निरीहश्च न भोगी सर्वकर्मसु ॥६६॥
भक्तध्यानार्थदेहोऽयं मम स्वेच्छामयस्य च । प्रकृतिः पुरुषोऽहं च एक एव परात्परः ॥६७॥
इत्येवं कथितं राधे शिवदर्पविमोचनम् । सृष्टिबीजं च शृणु मे पार्वतीदर्पमोचनम् ॥६८॥

की स्तुति करने लगे ॥५५॥ उपरान्त प्रभु शिव ने अभिमान को विघ्न का बीज समझ कर त्याग दिया । वे ज्ञानानन्दस्वरूप से स्थित हो, सब कर्मों में निर्लिप्त भाव से संलग्न रहने लगे ॥५६॥ तब से मैं अपने प्रिय भक्त शंकर को वृषरूप से पीठ पर वहन करने लगा । क्योंकि तीनों लोकों में शिव से बढ़कर प्रियतम मेरे लिए कोई नहीं है ॥५७॥ ब्रह्मा मेरे मनःस्वरूप, महेश्वर ज्ञानरूप और मूल प्रकृति ईश्वरी भगवती दुर्गा बुद्धिरूप हैं ॥५८॥ निद्रा आदि जितनी शक्तियाँ हैं वे सब प्रकृति की कलारूप हैं एवं साक्षात् सरस्वती मेरी वाणी की अधिष्ठात्री देवी हैं ॥५९॥ कल्याण के अधिदेवता गणेश्वर देव मेरे हर्ष रूप हैं, स्वयं धर्म परमार्थ और अग्नि मेरे भक्त हैं ॥६०॥ समस्त गोलोकवासी मेरे सम्पूर्ण ऐश्वर्य के अधिदेवता हैं, तुम सदा मेरे प्राणों की अधिष्ठात्री देवी एवं प्राणों से भी अधिक प्रिय हो ॥६१॥ गोपियाँ तुम्हारी कलायें हैं, अतः मुझे अधिक प्रिय हैं । गोलोकवासी सभी गोप मेरे लोम कूपों से उत्पन्न हैं ॥६२॥ इसी प्रकार सूर्य मेरे तेजो रूप, वायु प्राणस्वरूप, वरुण जलाधीश्वर एवं पृथ्वी मेरे मल से प्रकट हुई है ॥६३॥ महाकाश मेरा शून्य स्थान है, कामदेव मेरे मन से उत्पन्न हैं और इन्द्र आदि सभी देवता मेरी कलाओं के अंशांश से उत्पन्न हुए हैं ॥६४॥ सृष्टि के बीज रूप जो महती आदि तत्व हैं, उन सब का बीजरूप आश्रयहीन आत्मा मैं स्वयं ही हूँ ॥६५॥ जीव मेरा प्रतिबिम्ब है, जो कर्मभोगों का अधिकारी है । मैं निरीह एवं एवं साक्षी हूँ । किसी कर्म का भोक्ता नहीं हूँ ॥६६॥ मुझ स्वेच्छामय का यह शरीर भक्तों के ध्यान के लिए है । मैं ही प्रकृति, पुरुष एवं एक मात्र परात्पर (परमेश्वर) हूँ ॥६७॥ राधे ! इस प्रकार मैंने शिव का अभिमान-भङ्ग होना बता दिया, अब सृष्टि के बीज रूप पार्वती का भी दर्पभङ्ग मुझसे सुनो ॥६८॥

Funding by IKS-MoE

नारायण उवाच

इत्युक्तवन्तं श्रीकृष्णं परमात्मनमीश्वरम् । पप्रच्छ राधिका देवी निगूढमभिवाञ्छितम् ॥६९॥

राधिकोवाच

भगवन्सर्वतत्त्वज्ञ सर्वबीज सनातन । वद मे वाञ्छितं प्रश्नं सर्वसंदेहभञ्जनम् ॥७०॥
सर्वज्ञानाधिदेवश्च शंकरः सर्वतत्त्ववित् । मृत्युंजयः कालकालो भगवांस्त्वत्समो महान् ॥७१॥
कथं विभूतिगात्रश्च पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः । दिगम्बरो जटाधारी नागसंघातभूषणः ॥७२॥
वृषेणाटति देवेन्द्रो विहाय वरवाहनम् । न बिभर्ति कथं रत्नं सारनिर्माणभूषणम् ॥७३॥
वह्निशुद्धांशुकं त्यक्त्वा धत्ते शार्दूलचर्मकम् । धत्ते धत्तूरकुसुमं पारिजातं विहाय च ॥७४॥
नास्ति रत्नकिरीटेच्छा जटायां प्रीतिरुत्तमा । दिव्यलोकं परित्यज्य स्मशानेषु स्पृहा विभोः ॥७५॥
चन्दनागुरुकस्तूरीसुगन्धिकुसुमानि च । त्यक्त्वा स्पृहा बिल्वपत्रे बिल्वकाष्ठानुलेपने ॥७६॥
एतद्वेतितुमिच्छामि व्यासेन कथय प्रभो । श्रोतुं कौतूहलं नाथ वर्धते मे मनःस्पृहा ॥७७॥
राधिकावचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः । कथां कथितुमारेभे कृत्वा राधां स्ववक्षसि ॥७८॥

नारायण बोले—इतना कह चुकने वाल परमात्मा ईश्वर श्रीकृष्ण से राधिका देवी ने गुप्त एवम् अभीष्ट (प्रश्न) पूछा ॥६९॥

राधिका बोलीं—भगवन् ! समस्त तत्वों के ज्ञाता सबके बीज ! सनातन ! समस्त सन्देहों का निवारण करने वाले ! मेरे अभीष्ट प्रश्न का समाधान कीजिए ॥७०॥ भगवान् शङ्कर समस्त ज्ञानों के अधीश्वर, समस्त तत्वों के वेत्ता, मत्युविजेता, कालों के काल एवं तुम्हारे समान महान् हैं ॥७१॥ किन्तु शरीर में विभूति (भस्म) क्यों लगाते हैं ? पाँच मुख, तीन नेत्र, दिगम्बर (मान), जटा धारण किये तथा नाग समूहों को भूषण की भाँति धारण किये वे देवेन्द्र अन्य उत्तम वाहन को त्याग कर क्यों वृष (बैल) पर ही चलते हैं ? रत्नों के सारभाग के बने भूषणों को क्यों नहीं धारण करते ? ॥७२-७३॥ वे अग्नि विशुद्ध वस्त्र का त्याग कर बाघम्बर क्यों पहनते हैं ? पारिजात को छोड़कर धतूरे का पुष्प क्यों ग्रहण करते हैं ? ॥७४॥ रत्न किरीट की इच्छा न कर जटा पर क्यों परम प्रेम रखते हैं ? विभु (शङ्कर) दिव्य लोक को छोड़ कर श्मशानों में ही रहने की इच्छा क्यों करते हैं ॥७५॥ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी एवं सुगन्धित पुष्प का त्याग कर वे बिल्वपत्र और बिल्व काष्ठ के अनुलेपन की स्पृहा क्यों रखते हैं ? ॥७६॥ प्रभो ! इन सब बातों को मैं संक्षेप में सुनना चाहती हूँ, बता दें। नाथ ! इसे सुनने के लिए मेरे मन में कौतूहल बढ़ रहा है, इच्छा जाग उठी है ॥७७॥ राधिका की बात सुन कर मधुसूदन हँसकर उन्हें अपने अंक से लगाकर कथा कहना आरम्भ किया ॥७८॥

श्रीकृष्ण उवाच

युगषष्टिसहस्राणि तपः कृत्वा महेश्वरः । विरराम पूर्णतमो ध्यात्वा मां मनसा मुदा ॥७९॥
एतस्मिन्नन्तरे मां च ददर्श पुरतः स्थितम् । अतीव कमनीयाङ्गं किशोरं श्यामसुन्दरम् ॥८०॥
अहोऽनिर्वचनीयं च दृष्ट्वा रूपमनुत्तमम् । न बभूव वितृष्णश्च लोचनाभ्यां त्रिलोचनः ॥८१॥
पश्यन्निमेषरहित इति मत्वा स्वमानसे । भक्त्युद्रेकान्महाभक्तो रुरोद प्रेमविह्वलः ॥८२॥
सहस्रवदनोऽनन्तो भाग्यवांश्च चतुर्मुखः । बहुभिर्लोचनैर्दृष्ट्वा तुष्टाव बहुभिर्मुखैः ॥८३॥
पश्यामि किंवा किं स्तौमि संप्राप्य नाथमीदृशम् । आस्यैकेन लोचनाभ्यां चतुर्धा स पुनः पुनः ॥८४॥
स्वमानसे कुर्वतीदं शंकरे च तपस्विनि । तद्बभूव चतुर्वक्त्रं पूर्वेण सह पञ्चमम् ॥८५॥
एकैकवक्त्रं शुशुभे लोचनैश्च त्रिभिस्त्रिभिः । बभूव तेन तन्नाम पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः ॥८६॥
स्तवनादधिकप्रीतिः शिवस्य दर्शने मम । तेनाधिकानि तस्यैवं बभूवुर्लोचनानि च ॥८७॥
चक्षूंषि गुणरूपाणि तस्य ब्रह्मस्वरूपिणः । सत्त्वं रजस्तम इति तस्य हेतुं निशामय ॥८८॥
सत्त्वांशेन दृशा शंभुः पश्यन्पाति च सात्त्विकान् । राजसेन राजसिकांस्तामसेन च तामसान् ॥८९॥
चक्षुषस्तामसात्पश्चाल्ललाटस्थाद्धरस्य च । संहारकाले संहर्तुरग्निराविर्भवेत्क्रुधा ॥९०॥

श्रीकृष्ण बोले—पूर्णतम महेश्वर साठ सहस्रयुगों तक तप कर के सानन्द मन से मेरा ध्यान करके विरत हो गये ॥७९॥ इसी बीच उन्होंने सामने मुझे स्थित देखा। अत्यन्त सुन्दर अंग, किशोरावस्था एवं परमोत्तम श्यामसुन्दर रूप—सब कुछ अनिर्वचनीय था। मेरे उस रूप को देखकर त्रिलोचन शिव की आँखें तृप्त नहीं हुईं ॥८०-८१॥ वे (एक टक) नेत्रों से देखते रहे तथा भक्ति के उद्रेक से प्रेम-बिह्वल हो महाभक्त शिव रोने लगे ॥८२॥ उन्होंने सोचा कि सहस्र मुख वाले अनन्त एवं चार मुख वाले ब्रह्मा अधिक भाग्यवान् हैं, जिन्होंने बहुत नेत्रों से (भगवान् रूप का) दर्शन करके अनेक मुखों से उनकी स्तुति की है ॥८३॥ मैं अपने ऐसे स्वामी को पाकर क्या उनका दर्शन करूँ और क्या स्तुति। क्योंकि मेरे एक ही मुख और दो नेत्र हैं, ऐसा उन्होंने चार बार कहा ॥८४॥ तपस्वी शंकर के मन ही मन इस प्रकार संकल्प करने पर उनके चार मुख और प्रकट हो गये तथा पहले के मुख को लेकर पञ्चम संख्या की पूर्ति हो गई ॥८५॥ उनका एक-एक मुख तीन-तीन नेत्रों से सुशोभित होने लगा। इसलिए वे पञ्चमुख और त्रिलोचन नाम से प्रसिद्ध हुए ॥८६॥ शंकर को स्तुति की अपेक्षा मेरे रूप के दर्शन में ही अधिक प्रेम है, इसलिए उनके नेत्र ही अधिक प्रकट हुए ॥८७॥ ब्रह्मस्वरूप उस शिव के नेत्र सत्व, रज और तम रूप गुणों के अनुसार हैं, उसका कारण मैं बता रहा हूँ, सुनो ॥८८॥ शिव अपने सात्विक अंश के नेत्रों से सात्विकों को, राजस नेत्रों से राजसी व्यक्तियों को और तामस नेत्रों से तामसी प्राणियों को देखते हुए उनकी रक्षा करते हैं ॥८९॥ संहारकर्ता हर के ललाटवर्ती तामस नेत्र से पीछे चलकर संहार-काल में क्रोध-पूर्वक संवर्तक अग्नि का आविर्भाव होता

Funding by IKS-MoE

कोटितालप्रमाणश्च सूर्यकोटिसमप्रभः। लेलिहानो दीर्घशिखस्त्रैलोक्यं दग्धुमीश्वरः ॥९१॥
विभूतिगात्रः स विभुः सतीसंस्कारभस्मना। धत्ते तस्या अस्थिमालां प्रेमभावेन भस्म च ॥९२॥
स्वात्मारामो यद्यपीशस्तथाऽपि पूर्णमब्दकम्। सतीशवं गृहीत्वा च भ्रामं भ्रामं रुरोद ह ॥१३॥
प्रत्यङ्गं चापि तस्याश्च पपात यत्र यत्र ह। सिद्धपीठस्तत्र तत्र बभूव मन्त्रसिद्धिकृत् ॥९४॥
त(य)दा शवावशेषं च कृत्वा वक्षसि शंकरः। पपात मूर्च्छितो भूत्वा सिद्धिक्षेत्रे च राधिके ॥९५॥
तदा गत्वा महेशं तं कृत्वा क्रोडे प्रबोध्य च। अददां दिव्यतत्त्वं च तस्मै शोकहरं परम् ॥९६॥
तदा शिवश्च संतुष्टः स्वं लोकं च जगाम ह। मूर्त्यन्तरेण कालेन तां संप्राप प्रियां सतीम् ॥९७॥
दिव्यस्त्रग्धारियोगेन[1] नेच्छा नित्ये परे[2] विभो। जटां तपस्याकालीनां धत्तेऽद्यापि विवेकतः ॥९८॥
न चेच्छा केसशंकारे स्वाङ्गे[3] वेषे च योगिनः। समता चन्दने पङ्के लोष्टे रत्ने मणीश्वरे ॥९९॥
गरुडद्वेषिणो नागाः शंकरं शरणं ययुः। बिभर्ति कृपया स्वाङ्गे तानेव शरणागतान् ॥१००॥
वाहनं वृषरूपोऽहमन्यस्तं वोढुमक्षमः। त्रिपुरस्य वधे पूर्वं मत्कलांशसमुद्भवः ॥१०१॥

है ॥९०॥ वह अग्नि करोड़ों तालों के समान ऊँचा, करोड़ों सूर्यों के समान प्रभापूर्ण और विशाल लपटों से युक्त हो अपनी जीभ लपलपाते हुए तीनों लोकों को दग्ध कर देने में समर्थ हैं ॥९१॥ सती के दाह-भस्म को वे अपनी देह में लगाये रहते हैं। इसलिए 'विभूतिधारी' कहे जाते हैं। सती के प्रति प्रेम भाव के कारण ही वे उनकी अस्थियों की माला पहनते हैं और भस्म भी धारण करते हैं ॥९२॥ यद्यपि शिव स्वात्मा राम हैं तथापि उन्होंने पूरे वर्ष तक सती का शव लिए चारों ओर घूमते हुए रोदन किया था ॥९३॥ सती का एक-एक अंग जहाँ-जहाँ गिरा, वहाँ वहाँ सिद्धपीठ हो गया, जो मन्त्रों की सिद्धि करने वाला है ॥९४॥ राधिके ! अनन्तर शव के अवशिष्ट अंश को छाती से लगा कर वे सिद्ध क्षेत्र में मूर्च्छित होकर गिर पड़े ॥९५॥ उस समय मैंने वहाँ जाकर शिव को अपनी गोद में रख कर प्रबोधित किया और शोकनाशक परम दिव्यतत्व उन्हें प्रदान किया ॥९६॥ अनन्तर सन्तुष्ट होकर शिव अपने लोक को चले गये और अपनी ही दूसरी मूर्ति काल के द्वारा उन्होंने अपनी प्रिया सती को प्राप्त कर लिया ॥९७॥ वे योगस्थ होने के कारण दिगम्बर हैं। उन नित्य परमेश्वर में इच्छा का सर्वथा अभाव है। उनके सिर पर जो जटायें हैं, वे तपस्याकाल की हैं, जिन्हें वे आज भी विवेकपूर्वक धारण करते हैं। ॥९८॥ योगी को केशों का संस्कार करने तथा शरीर को वेशभूषा से विभूषित करने की इच्छा नहीं होती। योगी का चन्दन और कीचड़ में तथा मिट्टी के ढेले और मणीन्द्र रत्न में समभाव होता है ॥९९॥ गरुण के द्वेषी नाग गण शंकर की शरण में गये। उन्हीं शरणागतों को वे कृपया अपने अंगों में लपेटे रहते हैं ॥१००॥ वृष (बैल) रूप होकर मैं ही उनका वहन करता हुँ क्योंकि अन्य कोई भी उनको वहन करने में समर्थ नहीं है। पूर्वकाल में त्रिपुरासुर के वध करने के समय मेरे कलांश से उस वृषभ की उत्पत्ति हुई थी ॥१०१॥ पारिजात आदि पुष्प तथा चन्दन आदि सुगन्धित वस्तु वे

---

[1] क. दिग्वस्त्रधारी यो°। [2] क. पदे। [3] ख. स्वाङ्गवेषेण यो°।

Funding by IKS-MoE

पारिजातादिकं पुष्पं सुगन्धिचन्दनादिकम् । मयि संन्यस्य तेष्वेवं प्रीतिर्नास्ति कदाचन ॥१०२॥
धत्तूरे तत्सदा प्रीतिर्बिल्वपत्रानुलेपने । गन्धहीने सुगन्धे च योगीष्टे[1] व्याघ्रचर्मणि ॥१०३॥
दिव्यलोके दिव्यतल्पे जनतायां न तन्मनः । श्मशानेऽतीव रहसि ध्यायते मामहर्निशम् ॥१०४॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं समं च मन्यते शिवः । ममानिर्वचनीयेऽत्र रूपे तन्मग्नमानसम् ॥१०५॥
ब्रह्मणः पतनेनापि शूलपाणेः क्षणो भवेत् । तस्याऽऽयुषः प्रमाणं च नाहं जानामि का श्रुतिः ॥१०६॥
ज्ञानं मृत्युंजयः शूलं धत्ते मत्तेजसा[2] समम् । विना मया न कश्चित्तं शंकरं जेतुमीश्वरः ॥१०७॥
शंकरः परमात्मा मे प्राणेभ्योऽपि परः शिवः । त्र्यम्बके मन्मनः शश्वन्न प्रियो मे भवात्परः ॥१०८॥
ब्रह्माण्डनिकरं छन्नं मया मन्मायया सदा । सा[3] कम्पति हरं शश्वन्न च तं मोहितुं क्षमा[4] ॥१०९॥
न संवसामि गोलोके वैकुण्ठे तव वक्षसि । सदा शिवस्य हृदये निबद्धः प्रेमपाशतः ॥११०॥
स्वरसिद्धं सुतानेन पञ्चवक्त्रेण शंकरः । शश्वद्गायति मद्गाथां तेनाहं तत्समीपतः ॥१११॥
स्रष्टुं शक्तो हि नष्टुं च भ्रूभङ्गलीलयाऽपि यः । ब्रह्माण्डनिकरं योगान्न योगी शंकरात्परः ॥११२॥
दिव्यज्ञानेन यः स्रष्टुं नष्टुं भ्रूभङ्गलीलया । मृत्युं कालादिकं शक्तो न ज्ञानी शं० ॥११३॥

मुझे अर्पित कर चुके हैं, इसलिए उनमें उनकी कभी प्रीति नहीं होती ॥१०२॥ धतूर के पुष्प, विल्व पत्र और बेल का चन्दन, गन्धहीन पुष्प तथा व्याघ्रचर्म योगियों को अभीष्ट हैं । इसलिए उनमें उनकी सदा प्रीति रहती है ॥१०३॥ दिव्यलोक, दिव्यशय्या और जनसमुदाय में उनका मन नहीं लगता है । वे अत्यन्त एकान्त स्थान श्मशान में दिन रात मेरा ध्यान करते रहते हैं ॥१०४॥ शिव ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सब को समान जानते हैं । केवल अनिर्वचनीय मेरे इस रूप में उनका चित्त निमग्न रहता है ॥१०५॥ ब्रह्मा का पतन होने पर शिव का एक क्षण होता है । उनकी आयु का प्रमाण मैं भी नहीं जातता हूँ, फिर श्रुति क्या जानेगी ? ॥१०६॥ मृत्युंञ्जय (शिव) मेरे तेज के समान शूल और ज्ञान धारण करते हैं । मेरे विना शिव को जीतने में कोई समर्थ नही है ॥१०७॥ शंकर परमात्मा हैं, शिव मेरे प्राणों से भी बढ़कर हैं । त्र्यम्बक शिव में मेरा मन निरन्तर लगा रहता हे । शिव से बढ़कर मेरा प्रिय कोई नहीं है ॥१०८॥ मेरे द्वारा मेरी माया समस्त ब्राह्मण समूह को सदा आच्छन्न किये रहती है, किन्तु वह शिव से निरन्तर काँपती रहती है, उन्हें मोहित करने में समर्थ नहीं होती है ॥१०९॥ मैं गोलोक, वैकुण्ठ अथवा तुम्हारे वक्ष में भी वास नहीं करता हूँ । मैं तो शिव के प्रेम-पाश में बँधकर उन्हीं के हृदय में सदा निवास करता हूँ ॥११०॥ शिव अपने पाँचों मुखों से उत्तम तान द्वारा सिद्ध स्वर में निरन्तर मेरी गाथा का गान करते रहते हैं, अतः मैं उनके समीप रहता हूं ॥१११॥ जो योग द्वारा भ्रूभङ्ग की लीला मात्र से ब्रह्माण्ड-समूहों की सृष्टि और विनाश करने में समर्थ हैं, उन शंकर से बढ़ कर कोई योगी नहीं है ।११२॥ जो अपने दिव्य ज्ञान से भ्रूभङ्ग लीला द्वारा नष्ट हुए मृत्यु और काल आदि की पुनः सृष्टि करने में समर्थ हैं, उन शंकर से बढ़कर कोई ज्ञानी

१क. योगेष्टे । २क. जसां मलम् । ३ख. स । ४क. क्षमः ।

मम भक्ति च दास्यं च मुक्ति च सर्वसंपदः। सर्वसिद्धि दातुमीशो न दाता शं० ॥११४॥
पञ्चवक्त्रेण मन्नाम यो हि गायत्यहर्निशम् । मद्रूपं ध्यायते शश्वन्न भक्तः शं० ॥११५॥
अहं सुदर्शनं शंभुस्तेजसा च वयं समाः । ब्रह्मा स्रष्टा च योगेन नास्माभिस्तेजसा समः ॥११६॥
इत्येवं कथितं सर्वं शंकरस्य यशोऽमलम्। तथाऽप्यस्य दर्पभङ्गं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥११७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० श्रीकृष्णकृतशंकर-
प्रशंसा नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

राधिकोवाच

एवंभूतस्य च विभोः सर्वेशस्य महात्मनः । न शस्तं कथमुच्छिष्टं ब्रूहि संदेहभञ्जन ॥१॥

नहीं है ॥११३॥ शिव मेरी भक्ति, दास्य पद, मुक्ति, समस्त सम्पत्ति और समस्त सिद्धियाँ देने में समर्थ हैं, अतः उनसे बढ़कर कोई दानी नहीं है ॥११४॥ अपने पाँचों मुखों द्वारा दिन रात जो मेरे नाम का गायन किया करता है और मेरे रूप का निरन्तर ध्यान करता है, उससे बढ़कर कोई भक्त नहीं है ॥११५॥ मैं, सुदर्शन चक्र और शिव तेज में समान हैं। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा भी योग और तेज में हम लोगों की समानता नहीं करते हैं ॥११६॥ इस प्रकार मैंने शिव का समस्त निर्मल यश और दर्पभङ्ग तुम्हें सुना दिया, अव और क्या सुनना चाहती हो ? ॥११७॥

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के श्रीकृष्ण जन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में श्रीकृष्णकृत शिव-प्रशंसा वर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३६॥

अध्याय ३७

शंकर के निर्माल्य को शाप

राधिका बोलीं—हे सन्देह निवारक ! ऐसे महात्मा विभु एवं सर्वेश्वर शिव का उच्छिष्ट क्यों नहीं प्रशस्त माना जाता, बतावें ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्ः । पापेन्धनानां दहने ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥२॥
सनत्कुमारो वैकुण्ठमेकदा च जगाम ह । ददर्श भुक्तवन्तं च नाथं नारायणं द्विजः ॥३॥
तुष्टाव गूढैः स्तोत्रैश्च प्रणम्य भक्तितो मुदा । अवशेषं ददौ तस्मै संतुष्टो भक्तवत्सलः ॥४॥
प्राप्तमात्रेण तत्रैव भुक्तं तेनैव किंचन । किंचिद्ररक्ष बन्धूनां भक्षणाय च दुर्लभम् ॥५॥
सिद्धाश्रमे च यद्दत्तं गुरवे शूलपाणिने । भक्त्युद्रेकाच्च तत्सर्वं भुक्तं च प्राप्तिमात्रतः ॥६॥
भुक्त्वा सुदुर्लभं वस्तु ननर्त प्रेमविह्वलः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रो मुदाऽन्वितः ॥७॥
गायन्मम गुणान्भक्त्या सुकण्ठः पञ्चवक्त्रतः । रागभेदैकतानेन तालमानेन सुन्दरम् ॥८॥
पपात डमरुर्हस्ताच्छृङ्गं च व्याघ्रचर्म च । स्वयं निपत्य पश्चाच्च रुदन्मूर्च्छामवाप ह ॥९॥
अतीव कमनीयं तद्रूपं[1] ध्यात्वैकमानसः । सहस्रदलमध्यस्थं मां पश्यन्हृत्सरोरुहे ॥१०॥
एतस्मिन्नन्तरे देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । मुदाऽऽजगाम शीघ्रं तत्प्रसन्नवदनेक्षणा ॥११॥
रुदन्तं मूर्छितं दृष्ट्वा निपतन्तं च भक्तितः । प्रहस्य वार्तां पप्रच्छ कुमारं शूलपाणिनः ॥१२॥
सर्वं तां कथयामास कुमारः संपुटाञ्जलिः । श्रुत्वा चुकोप सा देवी शिवं प्रस्फुरिताधरा ॥१३॥

श्रीकृष्ण बोले—देवि ! सुनो, (इस विषय में) मैं एक प्राचीन इतिहास बताऊँगा, जो पापरूपी इन्धनों के जलाने में प्रज्वलित अग्निशिखा के समान है ॥२॥ एक बार सनत्कुमार वैकुण्ठ में पहुंचे, वहाँ भोजन कर चुके हुए स्वामी नारायण को ब्राह्मण ने देखा ॥३॥ उन्हें हर्ष से भक्तिपूर्वक प्रणाम करके गूढ़ स्तोत्रों द्वारा स्तुति की । भक्तवत्सल भगवान् ने सन्तुष्ट होकर उन्हें अपना उच्छिष्ट प्रदान किया ॥४॥ ब्राह्मण ने दुर्लभ अवशेष पाते ही कुछ तो खा लिया और कुछ बन्धुओं के खाने के लिए रख लिया ॥५॥ पश्चात् सिद्धाश्रम में पहुंचने पर उन्होंने वह अवशेष अपने गुरु शिव को दे दिया उसे पाते ही वे भक्ति के उद्रेक से सम्पूर्ण अवशेष को खा गये ॥६॥ उस अति दुर्लभ वस्तु का भक्षण करके वे प्रेम-विह्वल होकर नाचने लगे । उनके सर्वांग में रोमाञ्च हो आया, नेत्र सजल हो गये , और वे हर्ष से विभोर हो उठे ॥७॥ वे अपने पाँचो मुखों द्वारा विविध राग, ताल के अनुसार तान और मधुर स्वर से मेरे गुणों का बड़ा सुन्दर गायन करने लगे ॥८॥ (तन्मय) होने के कारण उनके हाथ से डमरू, शंख और बाघम्बर भी गिर पड़ा । पश्चात् वे स्वयं गिरकर रोदन करते हुए मूच्छित हो गये ॥९॥ वे अपने हृदय कमल में सहस्र दल के मध्य मेरे अति कमनीय रूप का अति स्थिर चित्त से ध्यान कर रहे थे ॥१०॥ इसी बीच प्रसन्न मुख और नेत्र वाली दुर्गतिनाथिनी दुर्गा देवी वहाँ हर्ष से शीघ्र पहुँच गयीं ॥११॥ भक्ति से उन्हें रोदन करते, मूच्छित होते और गिरते-पड़ते देख कर दुर्गा ने हँस कर सनत्कुमार से शंकर का समाचार पूछा ॥१२॥ सनत्कुमार ने हाथ जोड़कर उनसे समस्त वृत्तान्त कह दिया, सुनकर देवी कुपित हो गईं, उनका अधरोष्ठ फड़कने लगा ॥१३॥

---

[1] क. °द्रूपध्यानकै° ।

तां शप्तुमुद्यतां देवीमुत्थाय च त्रिलोचनः । बोधयामास विविधं तुष्टाव संपुटाञ्जलिः ॥१४॥
श्रुत्वा मनोहरं स्तोत्रं न शशाप शिवं शिवा । दुष्टं चक्रे तदुच्छिष्टमभक्ष्यं विदुषामपि ॥१५॥
न लोकानां प्रभावश्च तपः सौभाग्यतेजसाम् । ब्रह्माण्डे सर्वसंहर्ता चकम्पे पार्वतीभये ॥१६॥
उवाच तं जगन्माता नीतिसारं परं वचः । गणप्रसूः सकोपा च रक्तपङ्कजलोचना ॥१७॥
अहो तपःप्रभावश्च तेजसश्च न जीविनाम् । स ब्रह्माण्डस्य संहर्ता चकम्पे शैलकन्यका ॥१८॥

पार्वत्युवाच

त्वं पोष्टा जगतां पाता ममैव च विशेषतः । वक्ता चतुर्णां वेदानां जनकश्च स्वयं विभुः ॥१९॥
मुक्तिप्रदाता भक्तानां दाता च सर्वसंपदाम् । त्वं चेत्करोषि दुर्नीतिं को वा धर्मं च पाति वै ॥२०॥
सदा ते परिपाल्याऽहं पोष्या भक्त्या च किंकरी। वञ्चिता कर्मदोषेण हरनिर्माल्यभक्षणे ॥२१॥
किंचिच्छुद्धं हिरण्येन किंचिद्वस्तु च वायुना । किंचित्प्रक्षालनैनैव सर्वं विष्णोर्निवेदनात् ॥२२॥
विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्या सर्वदेवता । पितरोऽतिथयस्चैवमिति वेदेषु निश्चितम् ॥२३॥
अनिवेद्यमभक्ष्यं च नैवेद्यमुदरे हरे । त्यक्त्वा करोति यो भक्त्या पार्षदप्रवरो भवेत् ॥२४॥

फिर शाप देने के लिए उद्यत देवी को देखकर त्रिनेत्र शिव ने उठकर उन्हें विविध भांति से समझाया और हाथ जोड़कर स्तुति की ॥१४॥ मनोहर स्तोत्र सुनकर पार्वती ने शिव को शाप नहीं दिया, किन्तु उनके उच्छिष्ट को दूषित कर दिया, जो विद्वानों के लिए भी अभक्ष्य हो गया ॥१५॥ तप के सौभाग्य से तेजस्वी लोगों पर इसका प्रभाव नहीं पड़ेगा। ब्रह्माण्ड में सबका संहार करने वाले शिव भी पार्वती के भय से कांप उठे ॥१६॥ तब गणों की जननी जगन्माता पार्वती, जिनके नेत्र लाल कमल के समान हो गये थे, कुपित होकर नीति के सार रूप उत्तम वचन कहने लगीं ॥१७॥ अहो ! यह तप का प्रभाव है, न कि जीवों के तेज का। क्योंकि जो समस्त ब्रह्माण्ड का संहार करता है, उसे पर्वतराज पुत्री (पार्वती) कम्पित कर रही हैं ॥१८॥

पार्वती बोलीं—तुम समस्त जगत् के पोषक एवं रक्षक हो, विशेषतया मेरे ही हो। फिर चारों वेदों के वक्ता, जनक और स्वयं विभु (व्यापक) हो ॥१९॥ तुम भक्तों के लिए मुक्तिदाता एवं समस्त सम्पदाओं के प्रदाता भी हो। यदि तुम्हीं अनीति करते हो, तो धर्म की रक्षा कौन करेगा ? ॥२०॥ मैं तुम्हारी सदैव की परिपालनीय, पोषणीय और भक्ति से दासी भी हूँ। अपने ही कर्मदोष से मैं शिव-निर्माल्य भक्षण से वञ्चित हो गयी हूँ ॥२१॥ कोई वस्तु सुवर्ण द्वारा शुद्ध होती है, कुछ वायु के द्वारा, कुछ प्रक्षालन करने से और विष्णु को निवेदित कर देने से सव कुछ शुद्ध हो जाती है ॥२२॥ विष्णु को निवेदित किये अन्न से समस्त देवों का यजन करना चाहिए, और पितरों एवं अतिथियों को तृप्त करना चाहिए, ऐसा वेदों में निश्चित किया गया है ॥२३॥ न निवेदन करने योग्य अभक्ष्य वस्तु को त्याग कर जो भक्ति से विष्णु के नैवेद्य को उदर में डालता है, वह श्रेष्ठ पार्षद

अमृतं सर्ववस्तूनामिष्टं सारं सुदुर्लभम् । विष्णोर्निवेदितान्नस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥२५॥
हन्त्यकालिकमृत्युं तदमृतं मूढरञ्जनम् । नैवेद्यं च हरेरेव हरितुल्यं करोत्यहो ॥२६॥
यदृच्छया तन्नैवेद्यं यो भुङ्क्ते साधुसङ्गतः । षष्टिवर्षसहस्राणां प्राप्नोति तपसः फलम् ॥२७॥
यो निवेद्य हरिं भुङ्क्ते भक्त्या भक्तश्च नित्यशः । किंवा तपस्यां कर्ता च स हरेस्तेजसा समः ॥२८॥
श्रुतं पुरा त्वन्मुखतः पुष्करे मुनिसंसदि । अहं वेदविधाता न किमहं वक्तुमीश्वरी ॥२९॥
सुचिरं च तपस्तप्त्वा मया लब्धस्त्वमीश्वरः । त्वया विष्णोः प्रसादेन वञ्चिताऽहं कथं प्रभो ॥३०॥
यतो न दत्तं नैवेद्यं विष्णोर्मह्यं त्वयाऽधुना । अतो सत्तो गृहाणैतत्फलमेव महेश्वरः ॥३१॥
अद्यप्रभृति ये लोका नैवेद्यं भुञ्जते तव । ते जन्मैकं सारमेया भविष्यन्त्येव भारते ॥३२॥
इत्युक्त्वा पार्वतीमाता रुरोद पुरतो विभोः । दृष्टिः पपात तत्कण्ठे नीलकण्ठो बभूव ह ॥३३॥
तदा शिवः शिवां भक्त्या कृत्वा वक्षसि सादरम् । तन्मानभङ्गं स्तोत्रेण विनयेन चकार ह ॥३४॥
करेण चक्षुषोर्नीरं मंसृज्य च पुनः पुनः । बोधयामास विविधैर्नीतिवाक्यैर्मनोहरैः ॥३५॥
परितुष्टा च सा देवी भर्तारं समुवाच ह । कलेवरं च त्यक्ष्यामि नैवद्येन विना हरेः ॥३६॥
बिभर्ति(र्मि) देहं सततं तव सौभाग्यवर्धनम् । कथं वहामि सौभाग्यरहितं च कलेवरम् ॥३७॥

होता है ॥२४॥ भगवान् विष्णु को निवेदित किये हुए अन्न की सोलहवीं कला के समान भी अमृत नहीं है, जो समस्त वस्तुओं का इष्ट एवं अत्यन्त दुर्लभ सारभाग है ॥२५॥ वह अमृत अकाल-मृत्यु का विनाशक तथा मूर्खों का प्रसादक है, किन्तु विष्णु का नैवेद्य तो उनके समान ही बना देता है, यह आश्चर्य है॥२६॥ साधुओं की संगति में जो स्वेच्छा से विष्णु का नैवेद्य भक्षण करता हैं वह साठ सहस्र वर्षों की तपस्या के फल प्राप्त करता है ॥२७॥ जो भक्त नित्य भक्तिपूर्वक भगवान् को निवेदन करके नैवेद्य भक्षण करता है, वह तपस्याओं का कर्ता होते हुए तेज में भगवान् के समान हो जाता है ॥२८॥ पूर्वकाल में पुष्कर क्षेत्र में मुनियों की सभा के मध्य तुम्हारे ही मुख से मैंने यह सब सुना था । मैं वेद की स्रष्ट्री नहीं हूँ, कैसे कहने में समर्थ हो सकती हूँ ? ॥२९॥ प्रभो ! मैंने अति चिरकाल तक तप करके तुम ईश्वर को पतिरूप में प्राप्त किया है । तब विष्णु के प्रसाद भक्षण से मैं क्यों वञ्चित की गयी ? ॥३०॥ महेश्वर ! इस समय तुमने जो मुझे विष्णु का नैवैद्य नहीं दिया है, इसलिए मुझसे यह फल ग्रहण करो ॥३१॥ आज से जो लोग तुम्हारा नैवेद्य भक्षण करेंगे, वे भारत में एक जन्म कुत्ते भी होंगे ॥३२॥ यह कह कर माता पार्वती प्रभु (शिव) के सामने रोदन करने लगीं । उस समय उनकी दृष्टि उनके कण्ठ पर पड़ गयी, जिससे वे नीलकण्ठ हो गये ॥३३॥ तब शिव पार्वती को आदर पूर्वक छाती से लगाकर विनय और स्तोत्र से उनका मान दूर कर दिया ॥३४॥ हाथ से उनके दोनों नेत्रों के आँसुओं को बार-बार पोंछकर अनेक मनोहर नीति वाक्यों से उन्हें समझाया ॥३५॥ सन्तुष्ट होकर देवी ने स्वामी से कहा कि मैं विष्णु के नवेद्य के बिना देह को छोड़ दूँगी ॥३६॥ तुम्हारे सौभाग्य को बढ़ाने वाली देह को मैं धारण करती हूँ, अब सौभाग्यरहित शरीर को मैं

Funding by IKS-MoE

अपूर्वं तव नैवेद्यं जन्ममृत्युजराहरम् । कृतं दुष्टं च यत्तस्मात्पश्य देहं त्यजामि च ॥३८॥
लिङ्गोपरि च यद्दत्तं तदेवाग्राह्यमीश्वर । सुपवित्रं भवेत्तस्य[2] विष्णोर्नैवेद्यमिश्रितम् ॥३९॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी देहं त्यक्तुं समुद्यता । त्रस्तो हरस्तत्पुरतः स्तुत्वा च स्वीचकार ह ॥४०॥

शंकर उवाच

स्थिरा भव महादेवि चण्डिके जगदम्बिके । ममापराधमखिलं क्षन्तुमर्हसि सुन्दरि ॥४१॥
मां भृत्यं तपसा क्रीतं कृपां कुरु ममोपरि । ब्रह्मविष्णुमहेशानां बीजभूते सनातनि ॥४२॥
अहो गोलोकनाथस्य गुणातीतस्य निर्गुणे । सर्वशक्तिस्वरूपे च सदैव सहचारिणि ॥४३॥
साकारे च निराकारे नित्ये स्वेच्छामये प्रिये । कृपया तद्विभोरेव मम वक्षसि सांप्रतम् ॥४४॥
सर्वबीजस्वरूपे च महामये मनोहरे । सर्वसिद्धिप्रदे देवि मुक्तिदे कृष्णभक्तिदे ॥४५॥
इच्छैवं श्रीहरेः साक्षान्नाहं दातुमपि क्षमः । तदा देहं परित्यज्य निर्गुणं व्रज निर्गुणे ॥४६॥
इत्येवमुक्त्व पुरतस्तस्थौ च चन्द्रशेखरः । बभूव सुप्रसन्ना सा प्रणनाम हरं परम् ॥४७॥

कैसे धारण करूँ ? ॥३७॥ जन्म, मृत्यु एवं बुढ़ापे का अपहरण करनेवाला तुम्हारा नैवेद्य अपूर्व था, किन्तु तुमने जो उसे दूषित कर दिया, अतः तुम्हारे देखते ही मैं देह त्याग रही हूँ ॥३८॥ हे ईश्वर ! केवल शिव लिंग के ऊपर जो नैवेद्य अर्पित किया जायगा वही आग्राह्य होगा और भगवान् विष्णु के नैवेद्य से मिश्रित तुम्हारा नैवेद्य अतिपवित्र होगा ॥३९॥ इस प्रकार कह कर वह देवी देह त्यागने के लिए उद्यत हो गईं। तब भयभीत शंकर ने उनके आगे स्तुति करके स्वीकार कर लिया ॥४०॥

शंकर बोले—हे महादेवि ! हे चण्डिके ! हे जगन्माता ! स्थिर हो जाओ। हे सुन्दरि ! तुम मेरे सम्पूर्ण अपराध को क्षमा करो ॥४१॥ तुमने अपनी तपस्या द्वारा मुझ भृत्य को खरीदा है, अतः मेरे ऊपर कृपा करो। तुम ब्रह्मा, विष्णु और महेश की बीजभूत एवं सनातनी हो ॥४२॥ अहो ! तुम गुणातीत गोलोकनाथ की निर्गुण शक्ति हो, सभी शक्तियों के स्वरूप हो, सदैव (मेरी) सहचरी हो ॥४३॥ प्रिये ! तुम साकार, निराकार, नित्य एवं स्वेच्छामय हो। उन्हीं विभु (श्रीकृष्ण) की कृपा से इस समय मेरे वक्षःस्थल पर विराज रही हो ॥४४॥ तुम समस्त बीज स्वरूप, महामाया, मनोहर, समस्त सिद्धियों को देने वाली और मुक्ति एवं कृष्ण की भक्ति प्रदान करने वाली हो ॥४५॥ भगवान् श्रीहरि की साक्षात् इच्छा ही ऐसी थी, जिससे मैं तुम्हें देने में असमर्थं रहा। हे निर्गुणे ! इस कारण को भलीभाँति जान लो और तभी देह त्याग कर इस निर्गुण में लीन हो जाओ ॥४६॥ इतना कहकर भगवान् चन्द्रशेखर उनके सामने स्थित रहे। अनन्तर देवी ने अति प्रसन्न होकर परमेश्वर शिव को

१क. हविर्भुङ्क्ते। २क. तत्र।

इत्येवं पार्वतीस्तोत्रं शंकरेण कृतं पुरा । यः पठेद्विपदाग्रस्तः स भयादेव मुच्यते ॥४८॥
मित्रभेदो भवेद्दूरं तत्संप्रीतिर्भवेत्पुरा । पार्वती परितुष्टा च न त्यजेत्तस्य मन्दिरम् ॥४९॥

श्रीकृष्ण उवाच

श्रुत्वा प्रतिज्ञां नाथस्य परितुष्टा बभूव सा । जगाम स्वर्णदीं तूर्णं स्नानार्थं शंकराज्ञया ॥५०॥
स्नात्वा संपूज्य भक्त्या च सुरमिष्टं च निर्गुणम् । चकार प्रस्तुतं शीघ्रं मिष्टान्नं व्यञ्जनानि च ॥५१॥
शिवः स्नात्वा च संपूज्य ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । तुष्टाव परया भक्त्या मामेव हृदयस्थितम् ॥५२॥
गत्वा सर्वमहं भुक्त्वा तस्मै दत्त्वाऽभिवाञ्छितम् । नैवेद्यं पार्वती लेभे तव मूलं समागता ॥५३॥
भुक्त्वाऽवशेषं सा देवी सह भर्त्रा मुदान्विता । तुष्टाव शंकरं भक्त्या प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥५४॥
इत्येवं कथितं सर्वं त्वया पृष्टं सुरेश्वरि । अभिशप्तं शंकरस्य निर्माल्यं येन हेतुना ॥५५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० हरनिर्माल्यशाप-
प्रसङ्गो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

प्रणाम किया ॥४७॥ इस प्रकार पूर्व काल में शंकर ने इस पार्वती-स्तोत्र की रचना की थी। जो विपद्ग्रस्त प्राणी इसका पाठ करेगा वह भय से मुक्त हो जायेगा ॥४८॥ उसका मित्र से मनमुटाव दूर होकर पूर्व की भांति परस्पर सम्प्रीति हो जायगी और पार्वती प्रसन्न होकर उसके गृह का त्याग कभी नहीं करेगी ॥४९॥

श्रीकृष्ण बोले—स्वामी की ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर पार्वती सन्तुष्ट हो गई। फिर शिव की आज्ञा से गंगा में स्नान करने के लिए चली गई ॥५०॥ स्नान करके भक्तिपूर्वक निर्गुण इष्ट देव की अर्चना करने के उपरान्त शीघ्र ही मिष्टान्न तथा व्यञ्जन तैयार किये ॥५१॥ उधर शिव भी स्नान करके सनातन ब्रह्मज्योति की पूजा करने के उपरान्त पराभक्ति से हृदयस्थित मेरी ही स्तुति करने लगे ॥५२॥ तब मैंने वहाँ जाकर सब खाकर उन्हें अभीष्ट फल दिया, फिर तुम्हारे चरण-शरण में आकर पार्वती ने नैवेद्य प्राप्त किया ॥५३॥ पश्चात् पति के साथ अवशेष भोजन करके पार्वती हर्षित हुईं और शंकर की भक्तिपूर्वक स्तुति करके बार-बार प्रणाम करने लगीं ॥५४॥ हे सुरेश्वरि! इस प्रकार तुम्हारा पूछा हुआ सब मैंने बता दिया, जिस कारण शंकर का निर्माल्य अभिशप्त हुआ ॥५५॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद संवाद में हर-निर्माल्य-शाप-प्रसंग-वर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३७॥

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

दर्पभङ्गः श्रुतो देवि शंकरस्य जगद्गुरोः । अधुना श्रूयतां मत्तो दुर्गादर्पविमोचनम् ॥१॥
तेजसा सर्वदेवानामाविर्भूय जगत्प्रसूः । दधार कामिनीरूपं कमनीयं मनोहरम् ॥२॥
निहत्य दानवेन्द्रांश्च ररक्ष देवताकुलम् । लेभे जन्म ततो देवी जठरे दक्षयोषितः ॥३॥
पिनाकपाणिं जग्राह सा देवी सुरसाधनम् । शश्वत्परमभक्त्या च सिषेवे स्वामिनं सती ॥४॥
दक्षेण सार्धं दैवेन बभूव शिवशत्रुता । निरर्थकं दैवयोगात्पुरा वै सुरसंसदि ॥५॥
दक्षश्चकार यज्ञं च तत आगत्य कोपतः । सर्वान्विज्ञापयामास तत्रैव शंकरं विना ॥६॥
सस्त्रीका देवताः सर्वा आजग्मुर्दक्षमन्दिरम् । सगणः शंकरः कोपान्नाऽऽजगामाभिमानतः ॥७॥
सती पतिं च मोहेन बोधयामास यत्नतः । न तं चालयितुं शक्ता बभूव चञ्चला स्वयम् ॥८॥
आजगाम पितुर्गेहं दर्पात्तस्य विनाऽऽज्ञया । तस्य शापेन तस्याश्च दर्पभङ्गो बभूव ह ॥९॥
न हि संभाषणं चक्रे वाङ्मात्रेण पिता च ताम् । श्रुत्वा च निन्दां भर्तुश्च देहं तत्याज मानतः ॥१०॥

अध्याय ३८

पार्वती के गर्वभंग का प्रस्ताव

श्रीकृष्ण बोले—हे देवि ! जगद्गुरु शिव का दर्पभंग तो तुमने सुन लिया, अब दुर्गा का दर्पमोचन मुझसे सुनो ॥१॥ समस्त देवों के तेज द्वारा प्रकट होकर जगज्जननी ने अति मनोहर कामिनी का रूप धारण किया ॥२॥ देवी ने दानवेन्द्रों का संहार करके देवों की रक्षा की । पश्चात् उन्होंने दक्षपत्नी के उदर से जन्म ग्रहण किया ॥३॥ देवों के कार्यसाधक पिनाकपाणि को अपना पति वरण किया । सती (पार्वती) परम भक्ति से अपने स्वामी की निरन्तर सेवा करगे लगीं ॥४॥ दैवयोग से देवताओं की सभा में दक्ष के साथ शिव की निरर्थक शत्रुता हो गयी ॥५॥ दक्ष ने वहाँ से आकर क्रोध से एक यज्ञानुष्ठान आरम्भ किया, जिसमें शंकर को छोड़कर उन्होंने सब को निमंत्रित किया ॥६॥ पत्नी समेत सभी देव गण दक्ष के घर आये, किन्तु क्रोध और अभिमान वश गण सहित शिव वहाँ नहीं आये ॥७॥ सती ने मोहवश अपने पति को प्रयत्नपूर्वक (वहाँ जाने के लिए) समझाया, किन्तु उन्हें अपने निश्चय से डिगा न सकीं । तब स्वयं चञ्चल हो उठीं ॥८॥ बिना उनकी आज्ञा के ही स्वयं अभिमान वश पिता के घर आ गयीं । उनके शाप से सती का अभिमान चूर्ण हुआ ॥९॥ घर पहुँचने पर पिता ने उनसे बात तक नहीं की । वाणी मात्र से भी सत्कार नहीं किया । तब पति की निन्दा सुनकर अभिमान वश उन्होंने देह का त्याग कर दिया ॥१०॥ प्रिये ! इस

एवं प्रिये निगदितं सतीदर्पविमोचनम् । तस्या जन्मान्तरं नित्यं दर्पभङ्गश्च श्रूयताम् ।।११।।
लेभे जन्म सती शीघ्रं जठरे शैलयोषितः । शिवस्तस्याश्चिताभस्म चास्थि जग्राह भक्तितः ।।१२।।
चकार मालामस्थ्नां च भस्मना तनुलेपनम् । स्मारं स्मारं सतीं प्रेम्णा भ्रामं भ्रामं पुनःपुनः ।।१३।।
सुषाव मेना तां देवीमतीव सुमनोहराम् । सृष्टौ विधातुस्तस्याश्च ह्युपमा नास्ति कुत्र च ।।१४।।
गुणप्रसूर्गुणान्सर्वान्सर्वरूपान्बिभर्ति सा । सर्वाश्च देवपत्न्यस्तत्कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।१५।।
बभूव वर्धमाना सा शुक्ले चन्द्रकला यथा । अतीव यौवनस्था च शैलगेहे दिने दिने ।।१६।।
बभूवाऽऽकाशवाणी च तां संबोध्य जगत्प्रसूम् । शिवे शिवं च तपसा कठोरेण लभेति च ।।१७।।
विनेश्वरं न तपसा प्राप्ता हि गर्भसंभवम् । प्रहस्य तस्थौ श्रुत्वेति सा च यौवनगर्विता ।।१८।।
मम जन्मान्तरीयं च भस्मास्थि च बिभर्ति यः । स मां प्रौढां कथं दृष्ट्वा न गृह्णात्यत्र जन्मनि ।।१९।।
यो विदग्धश्च ब्रह्माण्डं बभ्राम मम शोकतः । स कथं मां न गृह्णाति दृष्ट्वा परमसुन्दरीम् ।।२०।।
दक्षयज्ञं यो बभञ्ज मम हेतोः कृपानिधिः । स कथं मां न गृह्णाति पत्नीं जन्मनि जन्मनि ।।२१।।
या यस्य पत्नी यो यस्या भर्ता प्राक्तनतः पुरा । कुतो विश्वे तयोर्भेदो निषेको नान्यथा भवेत् ।।२२।।

प्रकार सती का दर्पभंग मैंने कह दिया। अब उनका जन्मान्तर में भी जो अभिमान चूर्ण हुआ है, उसको कह रहा हूं, सुनो ! ।।११।। (देह त्याग के उपरान्त) सती ने हिमवान् की पत्नी (मेना) के उदर से जन्म ग्रहण किया। शिव ने प्रेमवश सती की चिता का भस्म और उनकी अस्थियाँ ग्रहण कीं ।।१२।। अस्थियों की माला बनायी और भस्म से अंगराग का काम लिया। वे सती का बार-बार स्मरण करते हुए चारों ओर भ्रमण करने लगे ।।१३।। उधर मेना ने उस अति मनोहर देवी को उत्पन्न किया, जिसकी उपमा विधाता की सृष्टि में कहीं कोई नहीं थी ।।१४।। वे गुणों की जननी हैं, अतः सभी और सब प्रकार के सद्गुणों को धारण करती हैं। समस्त देवपत्नियां उनकी सोलहवीं कला के भी समान नहीं थीं ।।१५।। जैसे शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कला बढ़ती है, उसी तरह हिमालय के घर में वे देवी दिनों-दिन बढ़ने लगीं। जब वे युवावस्था को प्राप्त हुईं तब उन जगदम्बा को सम्बोधित करके आकाशवाणी ने कहा —"हे शिवे ! कठोर तपस्या द्वारा शिव को प्राप्त करो। क्योंकि तपस्या के विना ईश्वर को पाना अथवा उनके अंश से गर्भ धारण करना असंभव है।" यह आकाशवाणी सुनकर यौवन के गर्व से भरी हुई पार्वती हँसकर चुप रहीं। वे मन ही मन सोचने लगीं कि जो मेरे पूर्व जन्म की अस्थियाँ और भस्म धारण करते हैं, वह इस जन्म में मुझे इस प्रौढ़ारूप में देख कर क्यों नहीं ग्रहण करेंगे ? ।।१६-१९।। जो चतुर होकर भी मेरे शोक के कारण समस्त ब्रह्माण्ड में भटकते फिरे; वे ही मुझ परम सुन्दरी को देख कर क्यों नहीं अपनायेंगे ? ।।२०।। जिन कृपानिधान ने मेरे ही कारण दक्ष-यज्ञ का विध्वंस किया था, वे जन्म-जन्मान्तर की मुझ पत्नी को क्यों नहीं ग्रहण करेंगे ? ।।२१।। पूर्व जन्म में जो जिसकी पत्नी है और जो जिसका पति है, संसार में उन दोनों में भेद कैसे हो सकता है ? प्रारब्ध को कोई पलट नहीं सकता ।।२२।। अत्यन्त अभिमान के कारण अपने को समस्त सौन्दर्य और

Funding by IKS-MoE

सर्वरूपगुणाधारं मत्वा स्वमतिमानतः । न चकार तपः साध्वी न विज्ञाय तमीश्वरम् ॥२३॥
सुन्दरीषु च सर्वासु मत्तो नास्त्येव सुन्दरी । हृदीति मत्वा गर्वेण न चकार तपः शिवा ॥२४॥
रूपयौवनवेषाणां पुमान्ग्राही स्वयोषिताम् । शिवो मच्छ्रुतिमात्रेण मां गृह्णाति विना तपः ॥२५॥
हृदीति मत्वा गिरिजा तस्थौ हिमगिरेर्गृहे । शश्वत्सहचरीमध्ये क्रीडोन्मत्ता दिवानिशम् ॥२६॥
एतस्मिन्नन्तरे तूर्णं दूतः शैलेन्द्रसंसदि । उवाचऽऽगत्य मधुरं तत्पुरः संपुटाञ्जलिः ॥२७॥

दूत उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शैलेन्द्र गच्छाक्षयवटान्तिकम् । आजगाम महादेवः सगणो वृषवाहनः ॥२८॥
मधुपर्कादिकं दत्त्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः । पूजनं कुरु शैलेन्द्र देवेन्द्रं तमतीन्द्रियम् ॥२९॥
सिद्धिस्वरूपं सिद्धेशं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम् । मृत्युञ्जयं कालकालं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥३०॥
परमात्मस्वरूपं च सगुणं निर्गुणं विभुम् । भक्तध्यानार्थममलं दधानं देहमीश्वरम् ॥३१॥
शैलो दूतवचः श्रुत्वा समुत्तस्थौ मुदाऽन्वितम् । मधुपर्कादिकं नीत्वा जगाम शंकरान्तिकम् ॥३२॥
देवी दूतवचः श्रुत्वा प्रसन्नवदनेक्षणा । हृदीति मेने मद्धेतोराजगाम महेश्वरः ॥३३॥
चकार वेषमतुलं दधार वस्त्रमुत्तमम् । रत्नेन्द्रसारालंकारान्रत्नमालां मनोहराम् ॥३४॥
पारिजातप्रसूनानां मालां चन्दनसंयुताम् । चकार शंकरार्थं च मत्वा मालां मनोहराम् ॥३५॥

गुणों का आधार मानकर पार्वती ने तप नहीं किया और शिव को ईश्वर नहीं समझा ॥२३॥ समस्त सुन्दरियों में कोई स्त्री मेरे समान सुन्दरी नहीं है; अपने हृदय में गर्व करके पार्वती ने तप नहीं किया ॥२४॥ रूप, यौवन और उत्तम वेष वाली अपनी पत्नी को पुरुष अपनाता ही है, अतः मुझे सुनते ही शिव विना तप किये मुझे स्वीकर करेंगे, ऐसा अपने हृदय में निश्चय करके गिरजा हिमवान् के घर ही रहकर सखियों के बीच दिन रात निरन्तर खेल में ही मस्त रहने लगीं (तप के लिए नहीं गयीं) ॥२५-२६॥ इसी बीच गिरिराज की सभा में बड़ी शीघ्रता से दूत आकर हाथ जोड़ कर मधुर वाणी में कहने लगा ॥२७॥

दूत बोले—शैलराज ! उठिए। अक्षयवट के समीप जाइए। वहाँ वृषवाहन महादेव अपने गणों के साथ पधारे हैं ॥२८॥ मधुपर्क आदि देकर भक्ति से कंधे झुकाकर, हे शैलेन्द्र ! उन इन्द्रियातीत देवेन्द्र का पूजन कीजिए। वे सिद्धिस्वरूप, सिद्धेश, योगिराजों के गुरु के गुरु, मृत्युजेता, काल के काल, ब्रह्मज्योति, सनातन, परमात्म स्वरूप, सगुण, निर्गुण, व्यापक और भक्तों के ध्यानार्थ निर्मल महेश्वर रूप धारण किये हुए हैं ॥२९-३१॥ दूत की बात सुनकर पर्वतराज प्रसन्नता से उठे और मधुपर्क आदि लेकर शङ्कर के पास पहुँचे ॥३२॥ दूत की बात सुनकर देवी पार्वती के नेत्र प्रसन्नता से खिल उठे। उन्होंने हृदय में मान लिया कि महेश्वर मेरे ही लिए यहाँ आये हैं ॥३३॥ उन्होंने अपना अनुपम वेष बनाया, उत्तम वस्त्र, रत्नेन्द्रों के सार-भाग के बने आभूषणों और मनोहर रत्नमाला धारण की ॥३४॥ फिर शिव के निमित्त चन्दनयुक्त पारिजात पुष्पों की माला बनायी। उसको मनोहर मानकर रत्न-

रत्नसिंहासनस्था सा ददर्श दर्पणे मुखम् । कस्तूरीबिन्दुना सार्धं सिन्दूरबिन्दुभूषितम् ॥३६॥
आरक्तनेत्रयुगलं निर्मलाञ्जनसंयुतम् । शरन्मध्याह्नकमलं यथाऽलिपङ्क्तिवेष्टितम् ॥३७॥
सुकोमलौष्ठयुगलं ताम्बूलरागसंयुतम् । अतीव सुन्दरं रम्यपक्वबिम्बफलं यथा ॥३८॥
रत्नकुण्डलदीप्त्या च गण्डस्थलविराजितम् । सूर्योदयेन ज्वलितं सुमेरुशिखरं यथा ॥३९॥
अत्यनिर्वचनीयं च दन्तपङ्क्तिमनोहरम् । यथा मुक्तासमूहं च सजलं जलदागमे ॥४०॥
गजमुक्तासमायुक्तं सुचारुनासिकोत्तमम् । सुशोभितं यथा मेरुं स्वर्णदीजलधारया ॥४१॥
मालतीमाल्यसंयुक्तकबरीभारसंयुतम् । बकपङ्क्तिसुशोभाढ्यं नवीनं जलदं यथा ॥४२॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभं चारुवक्षःस्थलोज्ज्वलम् । रत्नेन्द्रसारहाराक्तं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ॥४३॥
चारुचम्पकवर्णाभं स्तनयुग्मं मनोहरम् । बदरीफलतुल्यं च चारुपत्रकशोभिताम् ॥४४॥
मध्यं मनोहरं क्षीणं निम्ननाभिस्थलोज्ज्वलम् । अतीव सुन्दरं रम्यमुदरं वर्तुलाकृति ॥४५॥
रम्भास्तम्भविनिन्द्यैकमुरुयुग्मं मनोहरम् । कामालयं सुकठिनं निगूढमंशुकेन च ॥४६॥
स्थलपद्मप्रभामुष्टपदयुग्मं मनोहरम् । रत्नपाशकसंयुक्तं सिद्धालक्तकभूषितम् ॥४७॥
दधतं रत्नमञ्जीरं राजहंसानुकारि च । रत्नेन्द्रसाराभरणं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥४८॥

सिंहासन पर बैठ कर उन्होंने दर्पण में अपना मुख देखा, जो कस्तूरी की बिन्दी के साथ सिन्दूर की बिन्दी से भूषित था। शिवा के दोनों नेत्र कुछ लालिमा युक्त एवं निर्मल अञ्जन से पूर्ण थे और वे शरद् ऋतु की दोपहरी में भ्रमरों की पंक्तियों से घिरे निर्मल कमल की भाँति मालूम होते थे ॥३५-३७॥ उनके दोनों ओंठ अति कोमल और ताम्बूल की-सी लालिमा से युक्त, रम्य एवं पके बिम्बाफल के समान अति सुन्दर थे ॥३८॥ जिस प्रकार सूर्योदय होने पर सुमेरु पवंत का शिखर चमकने लगता है, उसी भाँति रत्न के बने कुण्डलों की किरणों द्वारा (शिवा का) गण्डस्थल सुशोभित हो रहा था ॥३९॥ उनके दातों की मनोहर पंक्ति अत्यन्त अनिर्वचनीय थी, मानों वर्षाकाल में सजल मोतियों का समूह हो ॥४०॥ गङ्गा की जलधारा से सुशोभित मेरु की भाँति उनकी अति सुन्दर नासिका गजमुक्ता से विभूषित थी ॥४१॥ जिस भाँति नवीन (श्यामल) मेघ वक-पंक्तियों से अत्यन्त सुशोभित होता है, उसी भाँति उनका केशपाश मालती की माला से अति मनोहर था ॥४२॥ रत्नेन्द्रों के सार भाग के बने हार और कस्तूरी कुंकुम से युक्त उनका वक्षःस्थल तपाये सुवर्ण की भाँति अत्यन्त प्रकाशमान था ॥४३॥ उत्तम पत्र-रचना से अलंकृत बेर के बराबर दोनों स्तन अति मनोहर थे ॥४४॥ (शरीर का) मध्मभाग मनोहर और क्षीण था। गहरी नाभि का प्रदेश प्रकाशमान था। उदर गोलाकार, रम्य एवं अत्यन्त सुन्दर था ॥४५॥ जाँघें कदली स्तम्भ को तिरस्कृत करने वाली एवं मनोहर थीं। कामालय (भग) अति कठोर एवं वस्त्र से सुगुप्त था ॥४६॥ स्थल कमल की प्रभा को चुराने वाले मनोहर चरण युगल रत्नों के पाशक (पायल ? आभूषण) से युक्त और सिद्ध अलक्तक (आलता) से विभूषित थे ॥४७॥ उन्होंने राजहंस के (शब्दों) का अनुकरण करने वाले रत्नों के नूपुरों को धारण कर रखा था। विश्वकर्मा ने उनके लिए, रत्नेन्द्रों के सार भाग से आभूषणों को बनाया था ॥४८॥

करं सुकोमलतरं सुन्दरं कनकप्रभम् । रत्नकङ्कणकेयूरशङ्खभूषणभूषितम् ॥४९॥
बिभ्रत्सद्रत्नमुकुरं[1] लीलाकमलमुज्ज्वलम् । रत्नाङगुलीयमतुलं दधनं सुमनोहरम् ॥५०॥
दृष्ट्वा स्वरूपमतुलं दध्यौ शंकरमीश्वरम् । विशिष्य मनसा शश्वद्भर्तुश्चरणपङ्कजम् ॥५१॥
पितरं मातरं बन्धुं साध्वीवर्गं सहोदरम् । अन्तरे सा न सस्मार किंचिदेव शिवं विना ॥५२॥
अथ शैलेश्वरस्तत्र ददर्श चन्द्रशेखरम् । स्वर्णदीपुलिनाद्रम्यादुत्पतन्तं च सस्मितम् ॥५३॥
दधतं संस्कृतां मालां जपन्तं मम नामकम् । तप्तस्वर्णप्रभाजुष्टजटाराशिविराजितम् ॥५४॥
वृषभस्थं शूलपाणिं सर्वभूषणराजितम् । नागयज्ञोपवीतं च सर्वभूषणभूषितम् ॥५५॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं व्याघ्रचर्मधरं परम् । विभूतिभूषिताङ्गं तमस्थिमालं दिगम्बरम् ॥५६॥
पञ्चवक्त्रं त्रिनयनं सूर्यकोटिसमप्रभम् । ददर्श रुद्रान्परितो ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥५७॥
शिववामे महाकालं दक्षिणे नन्दिकेश्वरम् । भूतप्रेतपिशाचांश्च कूष्माण्डान्ब्रह्मराक्षसान् ॥५८॥
वेतालान्क्षेत्रपालांश्च भैरवान्भीमविक्रमान् । सनकं च सनन्दं च कुमारं च सनातनम् ॥५९॥
जैगीषव्यं देवलं च काणादं गौतमं तथा । पिप्लादं कणखनं वोढुं पञ्चशिखं कठम्[2] ॥६०॥
जार्जलि[3] करखं[4] कर्णं लोमशं सूर्यवर्चसम् । कात्यायनं पाणिनिं च शङ्खं दुर्वाससं ततः ॥६१॥

उनके सुवर्ण की-सी प्रभा वाले सुन्दर हाथ अत्यन्त कोमल थे । उनमें रत्नों के कंकण, केयूर एवं शंख के आभूषण शोभायमान थे ॥४९॥ उनके हाथों में उत्तम रत्न का दर्पण, उज्वल लीला कमल एवं रत्नों की अनुपम सुन्दर अंगूठी शोभित थी ॥५०॥ अपने ऐसे अनुपम स्वरूप को देखकर उन्होंने ईश्वर शिव का ध्यान किया, विशेष करके मन से पति के चरण-कमल का निरन्तर ध्यान किया ॥५१॥ उस बीच शिव के अतिरिक्त पिता, माता, बन्धु, साध्वीवर्ग या सखी वर्ग या सहोदर किसी का स्मरण नहीं किया ॥५२॥ गिरिराज ने वहाँ पहुँचकर चन्द्रशेखर शिव को देखा । वे मुस्कराते हुए गङ्गा के रमणीक तट से उपर को आ रहे थे ॥५३॥ वे संस्कारयुक्त माला को पहने मेरे नाम का जप कर रहे थे; तपे सुवर्ण की प्रभा से युक्त जटा से सुशोभित थे; वृषभ पर विराजमान होकर हाथ में त्रिशूल लिए समस्त आभूषणों से भूषित थे; नाग का यज्ञोपवीत पहने सर्पमय भूषणों से सुशोभित थे; उनकी अंगकान्ति शुद्ध स्फटिक के समान उज्वल थी; व्याघ्रचर्म धारण किये, हड्डियों की माला पहने तथा अंगों में विभुति रमाये वे बड़ी शोभा पा रहे थे; दिगम्बर वेष, पाँच मुख और प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र थे; उनके श्री-अंगों से करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश फैल रहा था; हिमवान् ने उनके चारों ओर एकादश रुद्रों को देखा, जो ब्रह्म-तेज से प्रकाशमान थे ॥५४-५७॥ शिव के वामभाग में महाकाल और दाहिने भाग में नन्दिकेश्वर खड़े थे, भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, क्षेत्रपाल, भीमपराक्रमी भैरव, सनक, सनन्द, सनत्कुमार, सनातन, जैगीषव्य, देवल, काणाद, गौतम, पिप्पलाद, कणखन, वोढु, पञ्चशिख, कठ, जाजलि, करख, कर्ण, लोमश, सूर्यवर्चा, कात्यायन

१ख. मुकुटम् । २ख. कचम् । ३ख. जावालिम् । ४ख. करथं कण्वम् ।

Funding by IKS-MoE

शातातपं पारिभद्रमष्टावक्रं मरुद्भवम् । एतान्पुरोगमान्नत्वा प्रणनाम शिवं गिरिः ॥६२॥
मूर्ध्ना निपत्य भूमौ स दण्डवत्संपुटाञ्जलिः । अथो अनल्पया भक्त्या धृत्वा तच्चरणाम्बुजम्
ननाम चाश्रुनेत्रः स पुलकाञ्चितविग्रहः ॥६३॥
धर्मदत्तेन स्तोत्रेण तुष्टाव परमेश्वरम् । तुष्टे ब्राह्मे दिनेऽतीते पुष्करे सूर्यपर्वणि ॥६४॥

हिमालय उवाच

त्वं ब्रह्मा सृष्टिकर्ता च त्वं विष्णुः परिपालकः । त्वं शिवः शिवदोऽनन्तः सर्वसंहारकारकः ॥६५॥
त्वमीश्वरो गुणातीतो ज्योतीरूपः सनातनः । प्रकृतः प्रकृतीशश्च प्राकृतः प्रकृतेः परः ॥६६॥
नानारूपविधाता त्वं भक्तानां ध्यानहेतवे । येषु रूपेषु यत्प्रीतिस्तत्तद्रूपं बिभर्षि च ॥६७॥
सूर्यस्त्वं सृष्टिजनक आधारः सर्वतेजसाम् । सोमस्त्वं सस्यपाता च सततं शीतरश्मिना ॥६८॥
वायुस्त्वं वरुणस्त्वं च त्वमग्निः सर्वदाहकः । इन्द्रस्त्वं देवराजश्च कालो मृत्युर्यमस्तथा ॥६९॥
मृत्युंजयो मृत्युमृत्युः कालकालो यमान्तकः । वेदस्त्वं वेदकर्ता च वेदवेदाङ्गपारगः ॥७०॥
विदुषां जनकस्त्वं च विद्वांश्च विदुषां गुरुः । मन्त्रस्त्वं हि जपस्त्वं हि तपस्त्वं तत्फलप्रदः ॥७१॥
वाक् त्वं वागधिदेवी त्वं तत्कर्ता तद्गुरुः स्वयम् । अहो सरस्वतीबीजं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥७२॥

पाणिनि, दुर्वासा, शातातप, पारिभद्र, अष्टावक्र और मरुद्भव उनके सामने खड़े थे । हिमालय ने उन्हें नमस्कार करके शिव को प्रणाम किया ॥५८-६२॥ पृथ्वी पर माथा टेककर दण्ड की भाँति पड़कर दोनों हाथ जोड़ लिये । अनन्तर बड़ी भक्ति से उनका चरणकमल पकड़ कर सजल नेत्र से उन्हें पुनः नमस्कार किया । उस समय उनके शरीर में रोमाञ्च हो गया और नेत्रों से आँसू बहने लगे । तब धर्म के दिये हुए स्तोत्र द्वारा शिव की स्तुति आरम्भ की । वह स्तोत्र ब्राह्म दिन बीत जाने पर पुष्कर क्षेत्र में सूर्य-पर्व के अवसर पर धर्म ने दिया था ॥६४॥

हिमालय बोले—आप सृष्टि करने वाले ब्रह्मा, भली-भाँति पालन करने वाले विष्णु, कल्याणप्रद शिव तथा सबका संहार करने वाले अनन्त हैं ॥६५॥ आप ईश्वर, गुणों से परे, ज्योतिरूप, सनातन, प्रकृत, प्रकृति के ईश, प्राकृत और प्रकृति से परे हैं ॥६६॥ भक्तों के ध्यान करने के लिए आप अनेक रूप धारण करते हैं । जिन रूपों में जिसकी प्रीति है, उसके लिए आप वही रूप धारण करते हैं ॥६७॥ आप सृष्टिजनक सूर्य हैं । समस्त तेजों के आधार हैं तथा शीतल किरण द्वारा सदा कृषि की रक्षा करने वाले चन्द्रमा हैं ॥६८॥ आप वायु, वरुण, सर्वदाहक अग्नि, देवराज इन्द्र, काल, मृत्यु, यम, मृत्युञ्जय, मृत्यु के मृत्यु, काल के काल, यम के यम, वेद, वेदकर्ता, वेद-वेदाङ्ग के पारगामी विद्वान्, विद्वानों के जनक, विद्वान्, विद्वानों के गुरु, मन्त्र, जप, तप, उसके फलदाता, वाणी, वाणी की अधिष्ठात्री देवी, उसके कर्ता और स्वयं उसके गुरु हैं । अहो ! सरस्वती का बीज अद्भुत है । यहाँ

Funding by IKS-MoE

इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रस्तस्थौ धृत्वा पदाम्बुजम् । तत्रोवास तमाबोध्य चावरुह्य वृषाच्छिवः ॥७३॥
स्तोत्रमेतन्महापुण्यं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो भयेभ्यश्च भवार्णवे ॥७४॥
अपुत्रो लभते पुत्रं मासमेकं पठेद्यदि । भार्याहीनो लभेद्भार्यां सुशीलां सुमनोहराम् ॥७५॥
चिरकालगतं वस्तु लभते सहसा ध्रुवम् । राज्यभ्रष्टो लभेद्राज्यं शंकरस्य प्रसादतः ॥७६॥
कारागारे श्मशाने च शत्रुग्रस्तेऽतिसंकटे । गभीरेऽतिजलाकीर्णे भग्नपोते विषादने ॥७७॥
रणमध्ये महाभीते हिंस्रजन्तुसमन्विते । सर्वतो मुच्यते स्तुत्वा शंकरस्य प्रसादतः ॥७८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० पार्वतीगर्वभङ्गप्रस्तावेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

कौन आपकी स्तुति कर सकता है ? ॥६९-७२॥ इस प्रकार कहकर पर्वतराज उनका चरण कमल पकड़कर वहीं खड़े रहे। तब शिव वृषभ पर से उतर कर हिमवान् को उद्बोधन देकर वहीं बैठ गये ॥७३॥ जो तीनों संध्याओं में इस महापुण्य स्तोत्र का पाठ करता है वह भवसागर के समस्त पापों और भयों से मुक्त हो जाता है ॥७४॥ एक मास पाठ करने से पुत्रहीन को पुत्र, स्त्रीहीन को सुशील और अति मनोहर पत्नी एवं चिरकाल की खोयी वस्तु सहसा निश्चित रूप से प्राप्त होती है। शिव के प्रसाद से राज्यभ्रष्ट को पुनः राज्य की प्राप्ति होती है। कारागार, श्मशान और शत्रु-संकट में पड़ने पर तथा अति अगाध जल में नौका के टूट जाने पर तथा हिंसक जन्तुओं से घिर जाने पर इस स्तुति का पाठ करके मनुष्य शंकर की कृपा से समस्त भयों से मुक्त हो जाता है ॥७५-७८॥

श्री ब्रह्मवैवर्तपुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में पार्वती-गर्व-भङ्ग के प्रस्ताव में अड़तीसवां अध्याय समाप्त ॥३८॥

Funding by IKS-MoE

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

इति स्तुत्वा हिमगिरिर्वसतः शंकरस्य च । उवास पुरतो दूरे लब्धाज्ञः सर्नसंमतः ॥१॥
मधुपर्कादिकं तस्मै प्रददौ भक्तिपूर्वकम् । मुनीन्संपूजयामास ततः शंकरपार्षदान् ॥२॥
तदा तत्र समागत्य मेनका स्त्रीगणैः सह । ददर्श वटमूलस्थं शंकरं चन्द्रशेखरम् ॥३॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं वसन्तं व्याघ्रचर्मणि । मध्ये मुनिगणानां च ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥४॥
यथाऽऽकाशे तारकाणां द्विजराजं विराजितम् । परमाह्लादकं रूपं कन्दर्पकोटिसंनिभम् ॥५॥
विहाय वार्द्धकावस्थां दधतं नवयौवनम् । अतीव सुन्दरं रम्यं चित्तचोरं च योषिताम् ॥६॥
कामं कामातुराणां च सतीनां च सुतं यथा । वैष्णवानां महाविष्णुं शैवानां च सदाशिवम् ॥७॥
शक्तिस्वरूपं शाक्तानां सौराणां सूर्यरूपिणम् । कालस्वरूपं दुष्टानां शिष्टानां परिपालकम् ॥८॥
कालकालसमं मृत्योर्मृत्युमृत्युं भयानकम् । व्याघ्रचर्मचारुवस्त्रं बभूव भस्मचन्दनम् ॥९॥
सर्पाः सुन्दरमाल्यानि कस्तूरी या विषप्रभा । जटा सुललिता चूडा चन्द्रस्त्वलिकचन्दनम् ॥१०॥

अध्याय ३९

पार्वती का दर्प-भंग

श्रीकृष्ण बोले—वहाँ ठहरे हुए शिव की स्तुति करके हिमवान् शिव की आज्ञा और सर्वसम्मति प्राप्त करके उन्हीं के सामने दूर बैठ गये ॥१॥ वहीं से शिव को भक्तिपूर्वक मधुपर्क आदि समर्पित करके उन्होंने मुनियों और शिव के पार्षदों की अर्चना की ॥२॥ तदनन्तर स्त्रीसमूहों को साथ लिए मेना वहाँ आयीं और वट-वृक्ष के मूल में अवस्थित चन्द्रशेखर शिव को उसने देखा, जो मन्दहास करते हुए प्रसन्नमुख, वाघम्बर पर बैठे, मुनियों के मध्य ब्रह्मतेज से प्रज्वलित होते हए इस भाँति दिखायी दे रहे थे, जैसे आकाश में तारों के बीच चन्द्रमा सुशोभित हो। करोड़ों काम के समान उनका रूप परम आनन्दप्रद था ॥३-५॥ उस समय शिव वृद्धावस्था को त्याग कर नव यौवन धारण किये हुए थे। वे अत्यन्त सुन्दर, रमणीय एवं स्थियों के चितचोर थे ॥६॥ वे कामातुर स्त्रियों को काम, पतिव्रताओं को पुत्र, वैष्णवों को महाविष्णु, शैवों को सदाशिव, शाक्तों को शक्तिस्वरूप, सौरों को सूर्यरूप, दुष्टों को कालरूप, शिष्टों को परिपालक, काल को काल और मृत्यु को भयानक मृत्यु जान पड़ते थे। उनका व्याघ्रचर्म मनोहर वस्त्र बन गया, भस्म चन्दन हो गया, सर्प सुन्दर मालाओं के रूप में परिणत हो गये। कालकूटविष की प्रभा कस्तूरी के समान प्रतीत हुई और जटा सुन्दर शिखा बन गई। चन्द्रमा भाल देश में चन्दन जान पड़े। मस्तक पर गङ्गा की मनोहर धारा अतिसुन्दर मालती माला बन गई। अस्थियों की माला

सुचार्वी मालतीमाला गङ्गाधारा मनोहरा । अस्थिमाला रत्नमाला धत्तूरं चारुचम्पकम् ॥११॥
एकीभूतं पञ्चवक्त्रं नेत्रयुग्माब्जशोभितम् । शरत्पार्वणचन्द्राभां प्रच्छाद्य दीप्तमुत्तमम् ॥१२॥
बन्धुजीवविनिन्द्यैकमोष्ठाधरमनोहरम् । श्वेतश्चन्द्रो वृषेन्द्रश्च भूताद्या नर्तका इव ॥१३॥
सद्यो व्यतिक्रमं सर्वं महेशस्य महेश्वरि । दृष्ट्वैवं शिवरूपं च मेना तुष्टा बभूव ह ॥१४॥
काश्चिन्निमेषरहिताः कामेन पुलकाञ्चिताः । अतिकामातुराः सत्यः प्रापुर्मूर्च्छां च काश्चन ॥१५॥
काश्चिद्विनिन्द्य कान्तांश्च प्रशशंसुर्महेश्वरम् । मनोरथेन मनसा समाश्लिष्यन्ति काश्चन ॥१६॥
काचिन्मानसिकं कामात्कुर्वन्ती चुम्बनं मुदा । ध्रुवं कामं करिष्यामो वयं च कामसागरे ॥१७॥
अस्माकमेवं भर्ता चेत्परत्र[1] च यतो भवेत् । इहैवं[2] किं करिष्यामो वयं कान्तै रतैरलम् ॥१८॥
दृष्ट्वा तमेवं सुचिरमिति जल्पन्ति काश्चन ॥१९॥
काश्चिद्दृष्ट्वा शिवं किंचिन्मुखमाच्छाद्य वाससा । सस्मिता वक्रनयनाः पश्यन्त्येवं पुनः पुनः ॥२०॥
वयं गृहं न यास्यामो यास्यामः शिवसंनिधिम् । शरत्सुधांशुवदनं द्रक्ष्यामोऽहर्निशं मुदा ॥२१॥
संसारं न करिष्मामः प्रविशामो हुताशनम् । भविता नः शिवः स्वामीत्येवं जल्पन्ति काश्चन ॥२२॥

रत्न माला हो गई और धतूर मनोहर चम्पा के रूपमें बदल गया ॥७-११॥ पाँच मुख के स्थान में उन्हें एक ही मुख दिखाई देने लगा, जो दो नेत्रकमलों से शोभित था। मुख शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा की आभा को आच्छादित करके देदीप्यमान हो रहा था। बन्धुजीव (दुपहरिया) की लालिमा को तिरस्कृत करने वाले उनके ओष्ठ और अधर से मुख की मनोहरता बढ़ गई थी। श्वेत चन्द्रमा ही मानो वृषभराज नन्दी और भूत आदि नर्तक की भाँति दिखायी देते थे ॥१२-१३॥ हे महेश्वरि ! शंकर का सब कुछ सद्यः बदल गया। उनका ऐसा रूप देखकर मेना सन्तुष्ट हुईं ॥१४॥ कुछ स्त्रियाँ काम से रोमाञ्चित हो शिव को टकटकी बाँध कर देखने लगीं। कुछ अति कामातुर होकर मूर्च्छित हो गयीं ॥१५॥ कुछ अपने पतियों की निन्दा करके महेश्वर की प्रशंसा करने लगीं, कुछ अपने मनोरथानुसार उनका मानसिक आलिङ्गन करने लगीं। ।१६॥ कुछ स्त्रियाँ कामवश उनका मानसिक चुम्बन करती हुई मन में कह रही थीं कि हम कामसागर में निश्चित ही (इनसे) कामोपभोग करेंगी ॥१७॥ मरने पर भी हमारे ऐसे स्वामी होते, क्योंकि यहाँ इस प्रकार हम क्या करेंगी ? अनुरक्त पतियों से भी क्या करना है ? ॥१८॥ शिव को बहुत काल तक इस प्रकार देखकर कुछ स्त्रियाँ (इस प्रकार) विचार प्रकट कर रही थीं ॥१९॥ कुछ तो शिव को देखकर वस्त्र से थोड़ा मुख ढक कर मन्दमुसुकान करती हुई बार-बार उन पर तिरछी चितवन डाल रही थीं ॥२०॥ कुछ कह रही थीं कि——हम घर नहीं जायँगी, शिव के पास चलेंगी। उनके शारदीय चन्द्रमा के समान मुख को रात दिन देखेंगी ॥२१॥ अब हम संसार में नहीं फँसेगी, अग्नि में प्रवेश करेंगी, हमारे स्वामी शिव होंगे——इस प्रकार कुछ

---

[1] ख. रत्रैव यशो भ° । [2] क. इहैवैकं करिष्यामो वयं कान्तं रतो रतम् ।

Funding by IKS-MoE

अहो पुण्यवती दुर्गा श्लाघ्यते[३] जन्म भारते । यस्या अयं शिवः स्वामीत्येवं जल्पन्ति काश्चन ॥२३॥
मुदा मेना शिवं दृष्ट्वा गृहं ताभिर्जगाम ह । शिवं संपूज्य शैलेन्द्रः प्रणम्य स्वगृहं ययौ ॥२४॥
कृत्वाऽनुमानं रहसि गिरीशो मेनया सह । दुर्गां प्रस्थापयामास शिवाय शिवसंनिधिम् ॥२५॥
पार्वती सखिभिः सार्धं वेषं कृत्वा मनोहरम् । भावानुरक्ता हर्षेण जगाम शिवसंनिधिम् ॥२६॥
दृष्ट्वा शिवा शिवं शान्तं प्रसन्नवदनेक्षणम् । सप्तप्रदक्षिणं कृत्वा सस्मिता प्रणनाम सा ॥२७॥
अनन्यभावं गुणिनमपरं ज्ञानिनां वरम् । सुन्दरं लभ भर्तारं सुन्दरीत्याशिषं ददौ ॥२८॥
भविता तव सौभाग्यं शुभे स्वामिनि संततम् । पुत्रस्ते भविता साध्वि नारायणसमो गुणैः ॥२९॥
भविता ते परा पूजा त्रैलोक्ये जगदम्बिके । ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु सर्वेषां च परा भव ॥३०॥
सप्त प्रदक्षिणाः कृत्वा यतो भक्त्या त्वया नतम् । सप्तजन्मनि तुष्टोऽहं तत्फलं लभ सुन्दरि ॥३१॥
तीर्थे कान्तेऽभीष्टदेवे गुरौ मन्त्रे तथौषधे । आस्था च यादृशी यासां सिद्धिस्तासां व तादृशी ॥३२॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तूर्णं ब्रह्मज्योतिः परं च माम् । दध्यौ योगासनं कृत्वा योगीशो व्याघ्रचर्मणि ॥३३॥
प्रक्षाल्य चरणौ देवी पपौ तच्चरणोदकम् । चकार मार्जनं भक्त्या वह्निशौचेन वाससा ॥३४॥
रत्नसिंहासनं रम्यं विश्वकर्मादिनिर्मितम् । अपूर्वं कांस्यपात्रस्थं नैवेद्यं प्रददौ किल ॥३५॥

स्त्रियाँ कह रही थीं ॥२२॥ अहो दुर्गा बड़ी पुण्यवती है । भारतवर्ष में इसका जन्म स्पृहणीय है, क्योंकि ये शिव इसके स्वामी होने वाले हैं—इस प्रकार कुछ ललनायें आपस में कह रही थीं ॥२३॥ मेना शिव का दर्शन करके हर्ष से उन स्त्रियों के साथ घर गईं । हिमालय भी शिव का पूजन और प्रणाम कर अपने घर गये ॥२४॥ पर्वतराज ने मेना के साथ एकान्त में परामर्श करके कल्याण के लिए पार्वती को शिव के समीप भेज दिया ॥२५॥ पार्वती सखियों के साथ मनोहर वेष बनाकर हर्ष से भावानुरक्त होकर शिव के समीप पहुँची ॥२६॥ वहाँ प्रसन्नमुख और नेत्र वाले शान्त शिव को देखकर शिवा ने सात बार परिक्रमा की और मुसकरा कर उन्हें प्रणाम किया ॥२७॥ उस समय शंकर ने आशीर्वाद देते हुए कहा—सुन्दरि ! तुम्हें अनन्य प्रेमी, गुणवान्, अमर, ज्ञानिश्रेष्ठ और सुन्दर पति प्राप्त हो । शुभे ! तुम्हारा पतिविषयक सौभाग्य सतत बना रहे । साध्वि ! तुम्हारा पुत्र नारायण के समान गुणवान् होगा । जगदम्बिके ! तीनों लोकों में तुम्हारी उत्कृष्ट पूजा होगी । तुम समस्त ब्रह्माण्डों में सबसे श्रेष्ठ होओ । सुन्दरी ! तुमने सात प्रदक्षिणा करके भक्तिपूर्वक नमस्कार किया है, अतः मैं सात जन्मों के लिए सन्तुष्ट हो गया । तुम उसका फल पाओ । तीर्थ, पति, इष्टदेव, गुरु, मंत्र, और औषध में जिन स्त्रियों की जैसी भावना रहती है उन्हें वैसी ही सिद्धि भी प्राप्त होती है । इतना कहकर योगीश्वर शिव ने बाघम्बर पर योगासन लगाकर मुझ ब्रह्मज्योति का ध्यान करना आरम्भ कर दिया ॥२८-३३॥ तब देवी ने उनका चरण धोकर उस चरणामृत का पान किया, भक्तिवश अग्निविशुद्ध वस्त्र से पोंछा ॥३४॥ विश्वकर्मा आदि द्वारा सुरचित रम्य रत्न-सिंहासन अर्पित किया । फिर कांसे के पात्र में अपूर्व नैवेद्य प्रदान किया ॥३५॥ उनके चरणों में गंगाजल से युक्त अर्घ्य

३क. श्लाघ्यं ते जं॰ ।

अर्घ्यं मन्दाकिनीतोयसंयुक्तं चरणे ददौ । सुगन्धिचन्दनं चारुकस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्
प्रददौ मालतीमालां गले गरलसुन्दरे ॥३६॥
भक्त्या पूजां चकाराथ पुष्पवृष्टिं च तुष्टये । पीयूषं स्वर्णपात्रस्थं प्रददौ मधुरं मधु ॥३७॥
रत्नप्रदीपशतकं समन्ताद्धूपमुत्तमम् । त्रैलोक्यदुर्लभं वस्त्रं स्वर्णयज्ञोपवीतकम् ॥३८॥
सुगन्धिशीततोयं च पानार्थं पार्वती ददौ । अतीव सुन्दरं रम्यं रत्नसारेन्द्रभूषणम् ॥३९॥
दुर्लभां कामधेनुं च स्वर्णशृङ्गसमन्विताम् । स्नानीयं तीर्थतोयं च ताम्बूलं च मनोहरम् ॥४०॥
दत्त्वा षोडशोपचारं प्रणनाम पुनः पुनः । संपूज्य शूलिनं भक्त्या ययौ नित्यं पितुर्गृहम् ॥४१॥
शुश्रावाप्सरसां वक्त्राद्देवीमिन्द्रो महेश्वरः । श्रुत्वा वार्तां शुनासीरो ननर्त हर्षसंयुतः ॥४२॥
दूतद्वारा कामदेवमानिनाय त्वरान्वितः । इन्द्राज्ञया कामदेवः प्रजगामामरावतीम् ॥४३॥
तूर्णं प्रस्थापयामास तं च यत्र शिवः शिवा । पञ्चसायकसंयुक्तो जगाम पञ्चसायकः ॥४४॥
प्रसन्नवदनः श्रीमान्यत्र शक्तियुतः शिवः । गत्वा ददर्श मदनः शिवायुक्तं शिवं विभुम् ॥४५॥
शान्तं त्रैलोक्यकान्तं च प्रसन्नवदनेक्षणम् । कामः स्थितोऽन्तरिक्षे च धृत्वा च सशरं धनुः ॥४६॥
चिक्षेपास्त्रं दुर्निवार्यममोघं शंकरे मुदा । बभूवामोघमस्त्रं च मोघं तत्परमात्मनि ॥४७॥

दिया, मनोहर सुगन्धयुक्त चन्दन तथा कस्तूरी और कुंकुम भी प्रस्तुत किये । फिर विष से सुन्दर प्रतीत होने वाले गले में मालती की माला पहनायी ॥३६॥ भक्ति से पूजन किया और उनकी प्रसन्नता के लिए पुष्पों की वर्षा की। सुवर्ण के पात्र में अमृत तथा मधुर मधु प्रदान किया ॥३७॥ सैकड़ों दीपक जलाये और चारों ओर उत्तम धूप की सुगन्ध फैलायी । तीनों लोक में दुर्लभ वस्त्र, सोने का यज्ञोपवीत तथा सुगन्धित शीतल जल पीने के लिए पार्वती ने प्रस्तुत किये । रत्नेन्द्र के सारभाग से बना अत्यन्त सुन्दर एवं रमणीय आभूषण, सुवर्णमढ़े सींग वाली दुर्लभ कामधेनु, स्नानोपयोगी द्रव्य, तीर्थजल तथा मनोहर ताम्बूल भी समर्पित किये ॥३८-४०॥ इस प्रकार भक्तिपूर्वक शिव का षोडशोपचार पूजन करके उन्हें बार-बार प्रणाम किया । यह उनका नित्य का नियम बन गया । प्रतिदिन भक्ति से शिव का पूजन करके पिता के घर लौट जाया करती थीं ॥४१॥ अप्सराओं के मुख से देवराज यह समाचार सुनकर कि महेश्वर पार्वती के प्रति अनुरक्त हैं—वे हर्ष-मग्न होकर नाचने लगे । इन्द्र ने बड़ी शीघ्रता से दूत भेजकर काम को बुलवाया । कामदेव भी इन्द्र की आज्ञा से अमरावती में उपस्थित हुआ ॥४२-४३॥ उन्होंने इस समय काम को शीघ्र ही वहाँ भेज दिया, जहाँ पार्वती-शंकर थे । कामदेव अपने पाँचों बाणों समेत वहाँ पहुँच गया जहाँ प्रसन्नमुख श्रीमान् शिव शिवा से युक्त थे। कामदेव ने वहाँ पहुँच कर प्रभु शिव को पार्वती के साथ स्थित देखा, जो शान्त, तीनों लोकों के कान्त और प्रसन्न मुख एवं नेत्रों वाले थे । कामदेव नें अन्तरिक्ष में स्थित होकर बाण समेत धनुष को धारण करके शङ्कर के ऊपर अपने दुर्निवार एवं अमोघ अस्त्र कों हर्ष से चला दिया । किन्तु उन परमात्मा शिव के प्रति उसका अमोघ(अव्यर्थ)अस्त्र भी मोघ(व्यर्थ)हो गया जैसे आकाश

Funding by IKS-MoE

आकाश इव निर्लिप्ते निर्लिप्ते परमात्मनि । मोघीभूते च शस्त्रे च भयमाप च मन्मथः ॥४८॥
चकम्प पुरतः स्थित्वा दृष्ट्वा मृत्युंजयं विभुम् । सस्मार त्रिदशान्कामः शक्रादीन्भयविह्वलः ॥४९॥
आययुर्देवताः सर्वाः शंभुकोपेन वेपिताः । चक्रुः स्तुतिं च स्तोत्रेण शंकरं त्रिदशेश्वरम् ॥५०॥
कोपाग्निमुद्गिरन्तं तं कपाललोचनाद्हो । स्तुतिं कुर्वत्सु देवेषु स वह्निः शंभुसंभवः ॥५१॥
जज्वालोर्ध्वशिखो दीप्तः प्रलयाग्निशिखोपमः । उत्पत्य गगने घूर्णन्निपत्य धरणीतले ॥५२॥
भ्रामं भ्रामं च परितः पपात मदनोपरि । बभूव भस्मसात्कामः क्षणेन हरकोपतः ॥५३॥
बिषण्णा देवताः सर्वा नतवक्त्रा च पार्वती । विललाप बहुतरं हरस्य पुरतो रतिः ॥५४॥
तुष्टुवुर्देवताः सर्वाः कम्पिताश्चन्द्रशेखरम् । रतिमूचुः सुराः सर्वे रुरुदुश्च मुहुर्मुहुः ॥५५॥
किंचिद्भस्म गृहीत्वा च रक्ष मातर्भयं त्यज । वयं तं जीवयिष्यामो लभिष्यसि प्रियं पुनः ॥५६॥
हरकोपापनयने सुप्रसन्ने दिने तथा । दृष्ट्वा रतेर्विलापं च मूर्च्छां संप्राप पार्वती ॥५७॥
अतीन्द्रियं गुणातीतं तुष्टाव चन्द्रशेखरम् । रुदन्तीं पार्वतीं त्यक्त्वा स्वस्थानं प्रययौ शिवः ॥५८॥
सद्यो बभूव तत्रैव पार्वतीदर्पमोक्षणम् । रूपयौवनयोर्गर्वं तत्याज शैलकन्यका ॥५९॥
मुखं दर्शयितुं लज्जा तद्बभूव सखीगणे । सुराश्च रतिमाश्वास्य सर्वे जग्मुः स्वमन्दिरम् ॥६०॥

निर्लेप होता है, उसी तरह निर्लिप्त परमात्मा शिव पर जब वह शस्त्र विफल हो गया तब कामदेव को बड़ा भय हुआ ॥४४-४८॥ सामने विभु मृत्युञ्जय को देख कर काम कांप उठा और भयाकुल होकर इन्द्र आदि देवों का स्मरण करने लगा ॥४९॥ शिव के कोप से कम्पित होकर सभी देव गण वहाँ आये और स्तोत्र द्वारा देवाधीश्वर शिव की स्तुति करने लगे ॥५०॥ देवों के स्तुति करते समय ही क्रुद्ध शिव के भाल-नेत्र से अग्नि प्रकट हो गया, शम्भु से उत्पन्न वह अग्नि ऊँची-ऊँची लपटें उठाता हुआ प्रज्वलित हो उठा। वह प्रलयकालिक अग्नि की ज्वाला के समान जान पड़ता था । आकाश में ऊपर उठकर चक्कर काटता हुआ वह अग्नि पृथ्वी पर उतर आया और चारों ओर चक्कर देकर कामदेव पर टूट पड़ा। रुद्र के कोप से कामदेव एक ही क्षण में भस्म हो गया ॥५१-५३॥ यह देखकर देवों का मन विषाद से भर गया और पार्वती ने मुख नीचा कर लिया । रति (कामदेव की पत्नी) शिव के सम्मुख अत्यन्त विलाप करने लगी ॥५४॥ भयकम्पित देवों ने चन्द्रशेखर शिव की स्तुति की । इसके बाद वे बार-बार रोते हुए रति से बोले—हे माता ! (पति के शरीर का) थोड़ा भस्म लेकर सुरक्षित रखो और भय छोड़ दो। हम काम को जीवित कर देंगे और तुम पुनः प्रिय को पा जाओगी । किन्तु जब शंकर का क्रोध शान्त हो जाएगा और उनकी प्रसन्नता का समय होगा, तभी यह कार्य संभव हो सकेगा । उस समय रति का विलाप देख कर पार्वती मूर्च्छित हो गईं ॥५५-५७॥ फिर अतीन्द्रिय गुणातीत शंकर की स्तुति करने लगीं । रोती हुई पार्वती को छोड़कर शिव अपने स्थान पर चले गये ॥५८॥ वहीं पार्वती का अभिमान तुरन्त चूर्ण हो गया । शैलकुमारी ने अपने रूप और यौवन का गर्व छोड़ दिया ॥५९॥ अब उन्हें सखियों को अपना मुख दिखाने में भी लज्जा का अनुभव होने लगा। सब देवता, रति को आश्वासन देकर रुद्र को दण्डवत प्रणाम करके शोक से उद्विग्नचित्त हो अपने स्थान

कामकामिनी ॥६१॥
प्रणम्य दण्डवद्रुद्रं शोकादुद्विग्नमानसाः । स्तुत्वा रुदित्वा शोकेन भयेन
सा तु लज्जया ॥६२॥
कोपरक्तेक्षणं रुद्रं राधिके स्वालयं ययौ । न जगाम पितुर्गेहं पार्वती
शोकविह्वलाः ॥६३॥
स्वालिभिर्वार्यमाणाऽपि जगाम तपसे वनम् । प्रजग्मुः सहचारिण्यस्ततपश्चाच्छोकविह्वलाः
त्रिलोचनम् ॥६४॥
मातृभिर्वार्यमाणा सा स्वर्णदीतीरजं वनम् । सुचिरं च तपस्तप्त्वा सा संप्राप त्रिलोचनम्
रतिः संप्राप मदनं शंकरस्य वरेण च । इत्येवं कथितं सर्वं पार्वतीदर्पमोक्षणम्
॥६५॥
निगूढचरितं राधे किं भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाकृष्णसं०
पार्वतीदर्पभङ्गो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

* * *

को चले गये । हे राधिके ! काम की पत्नी रति ने भी शोक और भय से रोदन करके क्रोध से रक्त नेत्र शिव की स्तुति की और अपने घर चली गयी । किन्तु वह पार्वती लज्जा के कारण पिता के घर नहीं गईं, बल्कि सखियों के मना करने पर भी तप करने के लिए वन में चली गयीं उनके पीछे उनकी सहेलियाँ भी शोकाकुल होकर चली गयीं ॥६०-६३॥ माताओं के रोकने पर भी पार्वती गङ्गातटवर्ती वन की ओर चली गयीं और वहाँ अति चिरकाल तक तप करके उन्होंने त्रिनेत्र शिव को (पति रूप में) प्राप्त किया ॥६४॥ रति ने भी शिव के वर से कामदेव को प्राप्त किया । हे राधे ! इस प्रकार मैंने पार्वती का दर्पभंग बता दिया, पार्वती का यह चरित्र गूढ़ है । अब और क्या सुनना चाहती हो ? ॥६५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में
उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३९॥

* * *

Funding by IKS-MoE

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

राधिकोवाच

अहो विचित्रं चरितमपूर्वं किं श्रुतं विभो । सुन्दरं श्रुतिपीयूषं निगूढं ज्ञानकारणम् ॥१॥
न विशेषं समासं च श्रुतं न व्यासमीप्सितम् । अधुना श्रोतुमिच्छामि विस्तीर्णं कथय प्रभो ॥२॥
किं किं तपः कठोरं च चकार पार्वती स्वयम् । कं कं वरं वा संप्राप्य कथमाप महेश्वरम् ॥३॥
रतिः केन प्रकारेण जीवयामास मन्मथम् । पार्वतीशिवयोः कृष्ण विवाहं वर्णय प्रभो ॥४॥
तयो रहसि संभोगं पापिनां[1] पापमोचनम् । कथ्यतां करुणासिन्धो दुःखिनां दुःखमोचनम् ॥५॥
दम्पतीविरहोक्तिश्च कर्णज्वाला च योषितः । श्रोतुं कौतूहलं कृष्ण पुनः संमेलनं तयोः ॥६॥
अग्निज्वाला विषज्वाला क्षमा सोढुं च योषितः । दम्पतीविरहज्वाला न श्रोतुं च क्षणं क्षमा ॥७॥
राधिकावचनं श्रुत्वा विस्मितश्चकिताननः । विस्तीर्णं वक्तुमारेभे हृदयेन विदूयता ॥८॥
दम्पतीविरहोक्तिं च या राधा श्रोतुमक्षमा । विच्छेदे शतवर्षीये किमस्या भविता मम ॥९॥

अध्याय ४०

पार्वती की तपश्चर्या

राधिका बोलीं—विभो ! यह बहुत ही विचित्र और अपूर्व चरित्र सुनने को मिला है, जो कानों के लिए अमृत, गूढ़ और ज्ञान का कारण है। प्रभो ! यह न तो अधिक संक्षेप से सुना गया है और न विस्तार से ही। परन्तु अब विस्तारपूर्वक सुनना चाहती हूँ, कहिए ॥१-२॥ स्वयं पार्वती ने कौन-कौन-सा कठोर तप किया और किस-किस वर को पाकर किस प्रकार महेश्वर को प्राप्त किया? रति ने किस प्रकार कामदेव को जीवित कराया ? प्रभो ! कृष्ण! हर-गौरी के विवाह का वर्णन करें ॥३-४॥ दयासागर ! एकान्त में उन दोनों का सम्भोग भी कहें, जो पापियों के पाप का नाशक एवं दुःखियों के दुःख का विनाशक भी है॥५॥ हे कृष्ण ! दम्पतियों का विरहकालिक कथन महिला के कानों के लिए ज्वाला के समान है। उन (हर-गौरी) के पुनर्मिलन सुनने का कुतूहल हो रहा है ॥६॥ स्त्रियाँ अग्निज्वाला और विष की ज्वाला को सहन करने में समर्थ हो सकती हैं, किन्तु दम्पती के विरह की ज्वाला को क्षणभर नहीं सुन सकतीं ॥७॥ राधिका की बात सुनकर श्रीकृष्ण को विस्मय हुआ और मुखाकृति चकित हो गई। तब वे परितप्त चित्त से विस्तारपूर्वक कहना आरम्भ किया ॥८॥ जो राधा दम्पती के विरह की बात भी सुनने में असमर्थ है, उसकी मेरे सौवर्षीय वियोग में क्या दशा होगी ? ऐसा

---

[1] क. पार्वतीपा°।

इत्येवं मानसे कृत्वा मायेशो माययाऽन्वितः । कृपासिन्धुश्च कृपया कथां कथितुमुद्यतः ॥१०॥

श्रीकृष्ण उवाच

प्राणाधिके राधिके त्वं श्रूयतां प्राणवल्लभे । प्राणाधिदेवि प्राणेशि प्राणाधारे मनोहरे ॥११॥
वटमूलाद्गते रुद्रे पार्वती तपसे ययौ । पुनः पुनः स्वमात्रा च पित्रा च विनिवारिता ॥१२॥
गत्वा सा स्वर्णदीतीरं स्नात्वा त्रिषवणं मुदा । संदेशे च मया दत्तं जजाप तं मनुं मुदा ॥१३॥
वर्षमेकं च संपूर्णमनाहारा स्वभक्तितः । तप्त्वा तपः कठोरं च चकार जगदम्बिका ॥१४॥
ग्रीष्मे च परितो वह्निं प्रज्वलन्तं दिवानिशम् । कृत्वा प्रतस्थौ तन्मध्ये संततं जपती मनुम् ॥१५॥
शश्वत्श्मशाने वर्षासु कृत्वा योगासनं शिवा । शिलां दृष्ट्वा च संसिक्तां बभूव जलधारया ॥१६॥
शीते जलान्तरे शश्वत्प्रतस्थौ भक्तिपूर्वकम् । अनाहारा शरद्रौद्रनीहारासु निशासु[1] च ॥१७॥
एवं कृत्वा परं वर्षमप्राप्य शंकरं सती । शुचा कृत्वाऽग्निकुण्डं च प्रवेष्टुं सा समुद्यता ॥१८॥
तामग्निकुण्डं विशतीं तपसाऽतिकृशां सतीम् । दृष्ट्वा शिवः कृपासिन्धुः कृपया तां जगाम ह ॥१९॥
अतीव वामनो बालो विप्ररूपी स्वतेजसा । प्रज्वलन्मनसा हृष्टो दण्डी छत्री जटाधरः ॥२०॥

मन में विचार करके मायायुक्त मायापति एवं कृपासिन्धु भगवान् कृपया कथा कहने लगे ॥९-१०॥

श्रीकृष्ण बोले—प्राणाधिके ! राधिके ! प्राणवल्लभे ! सुनो । प्राणेश्वरी ! तुम प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हो । प्राणाधारे ! मनोहरे ! जब रुद्रदेव वटवृक्ष के मूल से चले गये तब पार्वती माता-पिता के द्वारा बार-बार रोकी जाने पर भी तप करने के लिए चली गईं ॥११-१२॥ गङ्गा के तट पर पहुँच कर उन्होंने हर्ष से तीनों काल स्नान और संदेश रूप में दिये हुए मेरे मंत्र का जप करना आरम्भ किया ॥१३॥ अपनी भक्ति के अनुसार जगदम्बिका ने अनाहार रह कर पूरे एक वर्ष तक कठोर तप किया——ग्रीष्म काल में अपने चारों ओर अग्नि प्रज्वलित करके दिन-रात उसके मध्य में निरन्तर मंत्र-जप करती थीं, वर्षाकाल में श्मशान में योगासन लगाकर शिवा सतत शिला की ओर देखती हुई जलधारा से भीगती रहती थीं ॥१४-१६॥ शीतकाल में वे सदा जल के भीतर प्रवेश कर जातीं तथा शरद् की भयंकर बर्फ वाली रातों में भी निराहार रहकर भक्तिपूर्वक तपस्या करती थीं । इस प्रकार पूरे वर्ष तक कठोर तय करने पर भी शिव से न मिलने पर सती पार्वती ने शोक से अग्नि-कुण्ड में प्रवेश करने के लिए उद्यत हो गईं ॥१७-१८॥ तप करने से अति दुर्बल पार्वती को अग्नि-कुण्ड में प्रवेश करते देखकर कृपासागर शिव कृपया उनके पास पहुँच गये । अत्यन्त नाटे कद के बालक ब्राह्मण का रूप धारण करके शिव मन ही मन बड़े हर्ष का अनुभव कर रहे थे । उनके सिर पर जटा थी । उन्होंने दण्ड और

---

[1] ख. °दिशा° ।

Funding by IKS-MoE

शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लवासाश्च सस्मितः । श्वेताब्जबीजमालां च बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम् ॥२१॥
निर्जने बालकं दृष्ट्वा स्निग्धा साऽपि जगाद ह । तत्तेजसाऽति प्रच्छन्ना[१] तत्याज च तपः स्वयम् ॥२२॥
को भवानिति पप्रच्छ तं शिशुं पुरतः स्थितम् । मनसाऽऽलिङ्गनं कर्तुमिच्छन्ती परमादरम् ॥२३॥
श्रुत्वा शैलसुताप्रश्नं प्रहस्य परमेश्वरः । उवाचातीव मधुरं कर्णपीयूषमीश्वरम् ॥२४॥

शंकर उवाच

इच्छागामी बटुरहं तपस्वी विप्रबालकः । का त्वं कान्ताऽतिकान्तारे तपश्चरसि सुन्दरि ॥२५॥
वद कस्य कुले जाता कस्य कन्या च काऽभिधा । तपसः फलदात्री त्वं कस्माद्धेतोस्तपस्तव ॥२६॥
अहो वा तपसां राशिः स्वयं मूर्तिमती सती । तपो वा लोकशिक्षार्थं करोषि कमलेक्षणे ॥२७॥
स्वयं तेजःस्वरूपा वा मूलप्रकृतिरीश्वरी । विधाय भक्तध्यानार्थं विग्रहं भारते जनुः ॥२८॥
किंवा त्रिलोके लक्ष्मीस्त्वं संपद्रूपा सनातनी । रक्षां विधातुं जगतामागता धातुरन्तिके ॥२९॥
किंवाऽम्बिका त्वं देवानां स्वयं मूर्तिमती सती । सावित्री भारते जन्म स्वेच्छया लब्धुमागता ॥३०॥
रागाधिष्ठातृदेवी वा स्वयं साक्षात्सरस्वती । सर्वविद्याः प्रकटितुं स्वेच्छया जन्म भारते ॥३१॥

छत्र भी ले रखे थे। श्वेत वस्त्र, श्वेत यज्ञोपवीत, श्वेत कमल के बीजों की माला एवं श्वेत तिलक धारण किये वे, मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे ॥१९-२१॥ निर्जन प्रदेश में बालक को देखकर पार्वती का मन स्नेहपूर्ण हो गया। उसके तेज से अत्यन्त आच्छादित हो उन्होंने स्वयं तप त्याग कर उस बालक से पूछा—'आप कौन हैं ?' शिवा बड़े आदर के साथ उसे हृदय से लगा लेना चाहती थीं ॥२२-२३॥ पर्वत-राजपुत्री का प्रश्न सुनकर परमेश्वर शिव हँस कर शिवा के कानों में अमृत उड़ेलते हुए-से मधुर वचन बोले ॥२४॥

शंकर बोले—मैं ब्राह्मण-बालक, तपस्वी एवं इच्छानुसार विचरण करने वाला बटु हूँ। हे सुन्दरि ! तुम कौन हो, जो कान्तिमती होकर भी इस घोर वन में तप कर रही हो ? ॥२५॥ किसके कुल में तुम्हारा जन्म हुआ है ? तुम किसकी कन्या हो ? तुम्हारा क्या नाम है ? तुम तप का फल प्रदान करने वाली होकर किस कारण तप कर रही हो ?॥२६॥ हे कमललोचने ! तुम तपस्या की मूर्तिमती राशि हो। अवश्य ही तुम्हारा यह तप लोक-शिक्षा के लिए है। ।२७॥ तुम स्वयं तेजःपुञ्जरूप, मूल प्रकृति ईश्वरी हो। भक्तों के ध्यान करने के लिए शरीर धारण करके भारत में उत्पन्न हुई हो ॥२८॥ अथवा तीनों लोक में सम्पत्तिरूप सनातनी लक्ष्मी हो। तुम तीनों जगत् की रक्षा के लिए ब्रह्मा के समीप आयी हो ॥२९॥ या देवमाता हो या स्वयं मूर्तिमती सती हो या सावित्री हो जो भारत में स्वेच्छा से जन्म ग्रहण करने के हेतु आयी हो। अथवा रागों की अधिष्ठात्री देवी साक्षात् सरस्वती हो, जो समस्त विद्याओं को प्रकट करने के लिए भारत में स्वेच्छा से उत्पन्न हुई हो ॥३०-३१॥

---

[१] क. प्रसन्ना।

एतासु मध्ये का वा त्वं नाहं तर्कितुमीश्वरः। या सा भवति कल्याणि परितुष्टा च मां भव ॥३२॥
सति त्वयि प्रसन्नायां प्रसन्नः परमेश्वरः। परिव्रतायां तुष्टायां तुष्टो नारायणः स्वयम् ॥३३॥
तुष्टे नारायणे देवे शश्वत्तुष्टं जगत्त्रयम्। तरुमूलेषु सिक्तेषु शाखाः सिक्ता यथा प्रिये ॥३४॥
शिशोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरी। उवाच वचनं चारु कर्णपीयूषमीश्वरी ॥३५॥

पार्वत्युवाच

नाहं वेदप्रसूर्लक्ष्मीर्वागधिष्ठातृदेवता। जन्म मे भारते वर्षे सांप्रतं शैलकन्यका ॥३६॥
पूर्वं जन्म दक्षगेहे सती शंकरकामिनी। योगेन त्यक्तदेहाऽहं तातभर्तृविनिन्दया ॥३७॥
अत्र जन्मनि पुण्येन संप्राप्ते शंकरे द्विज। मां त्यक्त्वा भस्मसात्कृत्वा मन्मथं स जगाम ह ॥३८॥
प्रयाते शंकरे तापाद्व्रीडयाऽहं पितुर्गृहात्। आगमत्तपसे चित्तं ममेदं स्वर्णदीतटे ॥३९॥
तपः कृत्वा कठोरं च सुचिरं प्राणवल्लभम्। अप्राप्याग्निं प्रवेष्टुं च त्वां च दृष्ट्वा क्षणं स्थिता ॥४०॥
गच्छ त्वं प्रविशाम्यग्नौ प्रलयाग्निशिखोपमे। कृत्वा स्वकामनां विप्र हरप्राप्तिमनीषिताम् ॥४१॥
यत्र यत्र जनुर्लब्ध्वा लभिष्यामि शिवं परम्। प्राणाधिकं प्रियं कान्तं विभुं जन्मनि जन्मनि ॥४२॥
सर्वा हि स्वप्रियं लब्धुं लभन्ति जन्म वाञ्छितम्। तज्जन्म पतिलाभार्थं सर्वासां च श्रुतौ श्रुतम् ॥४३॥

इन देवियों में से तुम कौन हो, इसका अनुमान करने में मैं असमर्थ हूँ। कल्याणि! तुम जो भी हो, मुझ पर प्रसन्न हो जाओ॥३२॥ हे सती! तुम्हारे प्रसन्न रहने पर परमेश्वर प्रसन्न होते हैं और पतिव्रता के सन्तुष्ट होने पर स्वयं नारायण सन्तुष्ट होते हैं। प्रिये! नारायण भगवान् के प्रसन्न होने पर, तीनों लोक उसी भांति निरन्तर प्रसन्न होते हैं जिस प्रकार वृक्षों के मूल भाग को सींच देने पर उसकी शाखायें स्वयं सिंच जाती हैं ॥३३-३४॥ बालक की वह बात सुनकर परमेश्वरी हँसकर कानों में अमृत की वर्षा करती हुई मनोहर वाणी बोलीं ॥३५॥

पार्वती बोलीं--न तो मैं वेदजननी (सावित्री) हूँ, न लक्ष्मी हूँ और न बाणी की अधीश्वरी सरस्वती ही हूँ सम्प्रति मेरा जन्म भारत-वर्ष में हुआ है और मैं पर्वतराज की कन्या हूँ॥३६॥ पूर्वजन्म में मेरा जन्म दक्ष के घर में हुआ था और मैं शिव की सती नामक पत्नी थी। वहाँ पिता द्वारा पति की निन्दा होने पर मैंने योग द्वारा देह त्याग कर दिया था॥३७॥ हे द्विज! इस जन्म में भी पुण्य वश शिवजी प्राप्त हुए थे, किन्तु कामदेव को भस्म करके मुझे त्याग कर चले गये हैं॥३८॥ शिव के चले जाने पर मैं मानसिक संताप और लज्जा से विवश हो पिता के घर से तपस्या के हेतु इस गंगा तट पर चली आयी हूँ॥३९॥ अति चिर काल तक यहाँ कठोर तप करने के उपरान्त भी प्राणवल्लभ शिव को न पाकर मैं अब अग्नि-कुण्ड में प्रवेश करने जा रही थी, किन्दु तुम्हें देखकर क्षण भर के लिए रुक गयी ॥४०॥ विप्र! अब तुम जाओ, मैं प्रलयकाल की अग्निशिखा की भांति इस प्रज्वलित अग्नि में अपनी शिव प्राप्ति की कामना लिये प्रवेश कर रही हूँ॥४१॥ प्रत्येक जन्म में मेरा जहाँ-जहाँ जन्म होगा, वहाँ-वहाँ शिव को ही प्राप्त करूँगी, जो प्राणों से अधिक प्रिय, प्रभु एवं कान्त हैं॥४२।

प्राक्तनीयो हि यो भर्ता स तासां प्रतिजन्मनि। या स्त्री येषां सुनियता सा तेषां जन्मजन्मनि ॥४४॥
तद्देहमिह न प्राप्य कृत्वा घोरतरं तपः । कृत्वाऽग्निकुण्डे काम्यं च लभिष्यामि परत्र तम् ॥४५॥
इत्युक्त्वा पार्वती तत्र तत्पुरः प्रविवेश ह । निषिध्यमाना पुरतो ब्राह्मणेन पुनः पुनः ॥४६॥
वह्निप्रवेशं कुर्वन्त्याः पार्वत्याः परमेश्वरि । बभूव तपसा सद्यो वह्निश्चन्दनवद्ध्रुवम् ॥४७॥
क्षणं तदन्तरे स्थित्वा चोत्पतन्तीं शिवां शिवः। पुनः प्रपच्छ सहसा वृन्दावनविनोदिनि ॥४८॥

महादेव उवाच

अहो तपस्ते किं भद्रे न बुद्धं किंचिदेव हि । न दग्धो वह्निना देहो न च प्राप्तो मनीषितः ॥४९॥
शिवं कल्याणरूपं च भर्तारं कर्तुमिच्छसि । अविग्रहं पतिं कृत्वा किं वा ते वाञ्छितं भवेत् ॥५०॥
संहर्तारं च भर्तारं यदीच्छसि शुचिस्मिते । कान्तमिच्छति का वा स्त्री सर्वसंहारकारणम् ॥५१॥
मोक्षं वाञ्छसि चेद्देवि कृत्वा कान्तं स्वरूपिणम्। सर्वमुक्तिप्रदा त्वं च तपस्या विफला तव ॥५२॥
शिवश्च मङ्गले मोक्षे संहर्ता न च दृश्यते । शिवशब्दस्य चान्योऽर्थो न हि वेदे निरूपितः ॥५३॥
तं च संहारकर्तारं यदि वाञ्छसि सुन्दरि । लभिष्यसे रतं रुद्रं सर्वलोकभयंकरम् ॥५४॥

सभी स्त्रियाँ अपने प्रिय को प्राप्त करने के लिए अभीष्ट जन्म ग्रहण करती हैं। उन सबका वह जन्म अपने अभीष्ट पति की उपलब्धि के लिए ही होता है, ऐसा वेद में सुना गया है ॥४३॥ पूर्व जन्म का जो भर्ता रहता है, वही स्त्रियों को प्रतिजन्म में प्राप्त होता हे। जो स्त्री जिनकी सुनियत है, वह उन्हें प्रत्येक जन्म में मिलती है ॥४४॥ अतः इस जन्म में घोर तप करने पर भी पति को न पाकर इस शरीर को अग्निकुण्ड में होम दूंगी। यह काम्म कर्म (पति की कामना को लेकर) होगा, इसलिए परलोक में उन्हें अवश्य प्राप्त करूँगी ॥४५॥ इतना कहकर पार्वती वहाँ ब्राह्मण के बार-बार मना करने पर भी उसके सामने ही अग्निकुण्ड में प्रविष्ट हो गयीं ॥४६॥ हे परमेश्वरि ! पार्वती के अग्नि-प्रवेश करते ही उनके तप के कारण अग्नि चन्दन की भांति तुरन्त ही शीतल हो गया ।।४७।। हे वृन्दावन में विनोद करने वाली ! क्षणमात्र उसके भीतर रहकर वहां से ऊपर निकलती हुई शिवा से शिव ने सहसा पूछा ॥४८॥

महादेव बोले—भद्रे ! तुम्हारा तप क्या है ? मैं कुछ समझ नहीं पाया। न तो अग्नि में तुम्हारी देह जली और न अभीष्ट पति ही मिला ॥४९॥ तुम कल्याणमूर्ति शिव को अपना पति बनाना चाहती हो, परन्तु वे तो निराकार हैं। निराकार को पति बनाने से तुम्हारा कौन-सा मनोरथ सिद्ध होगा ? ॥५०॥ हे पवित्र मुस्कान वाली ! यदि उस संहारकारी को भर्ता बनाना चाहती हो, तो यह बताओ कि सर्वसंहारकारी को कौन स्त्री अपना पति बनाना चाहेगी ? ॥५१॥ देवि ! यदि उन्हें अपना पति बनाकर मोक्ष प्राप्त करना चाहती हो, तो इसके लिए तुम्हारी तपस्या निरर्थक हैं क्योंकि सबको मुक्ति प्रदान करने वाली तुम स्वयं ही हो ॥५२॥ शिव का अर्थ है मंगल (कल्याण) मोक्ष और संहारकर्ता। शिव शब्द का दूसरा अर्थ नहीं देखा जाता है। वेद में इसका अन्य अर्थ निरूपित नहीं है ॥५३॥ सुन्दरी ! यदि उस संहारकर्ता को चाहती हो तो सब लोगों के लिए भयंकर रुद्र को (अपने प्रति) अनुरक्त पाओगी

Funding by IKS-MoE

न भविष्यति मोक्षस्ते स्वाभीष्टं देवसेवनम् । हरिस्मृतिरमोघा च सर्वमङ्गलदा सदा ॥५५॥
शीघ्रं पितृगृहं गच्छ तत्र द्रक्ष्यसि शंकरम् । ममाऽऽशिषा स्वतपसां फलेन च सुदुर्लभम् ॥५६॥
इत्युक्त्वा पार्वती विप्रस्तत्रैवान्तरधीयत । दुर्गा ययौ पितुर्गेहं महादेवेति वादिनी ॥५७॥
पार्वत्यागमनं श्रुत्वा मेनका च हिमालयः । दिव्यं यानं पुरस्कृत्य प्रययौ हर्षविह्वलः ॥५८॥
संस्थाप्य मङ्गलघटान्राजवर्त्मनि राधिके । चन्दनागुरुकस्तूरीफलशाखासमन्वितान् ॥५९॥
पट्टसूत्रसंनिबद्धरसालपल्लवान्वितैः । परितः परितो रम्भास्तम्भवृन्दसमन्विते ॥६०॥
पतिपुत्रवतीयोषित्समूहैर्दीपहस्तकैः । पूर्णैर्लाजाधान्यदूर्वाफलपुष्पसमन्वितैः ॥६१॥
सुपुण्यैर्ब्राह्मणैश्चापि मुनिभिर्ब्रह्मचारिभिः । नटीभिर्नर्तकीभिश्च गजेन्द्रैः परिशोभिते ॥६२॥
पुरोहितैश्च संयुक्तैः कुर्वद्भिर्मङ्गलध्वनिम् । सुचारुमालतीमालाहस्तैः शस्तैः प्रशंसितैः ॥६३॥
नानाप्रकारवाद्यैश्च शङ्खध्वनिसुनादितैः । सिन्दूररेणुभिश्चारुचन्दनद्रवपङ्किलम् ॥६४॥
प्रविश्य नगरं दुर्गा ददर्श पितरौ पुरः । सुप्रसन्नौ प्रधावन्तौ हर्षाश्रुपुलकान्वितौ ॥६५॥
प्रसन्नवदना देवी चाऽऽलिभिः प्रणनाम तौ । संयुज्याथाऽऽशिषं तौ च चक्रतुस्तां च वक्षसि ॥६६॥
हे वत्से वत्सेत्युच्चार्य रुदन्तौ प्रेमविह्वलौ । तदा तां च रथे कृत्वा जग्मतुर्निजमन्दिरम् ॥६७॥
स्त्रियो निर्मञ्छनं चक्रुर्विप्रा युयुजुराशिषम् । ब्राह्मणेभ्यश्च बन्दिभ्यः पर्वतेन्द्रो धनं ददौ ॥६८॥

॥५४॥ न तो तुम्हारा मोक्ष होगा और न अपने अभीष्ट देव की सेवा ही उपलब्ध होगी । श्रीहरि का स्मरण अमोघ है । वे सदा सब प्रकार से सम्पूर्ण मंगल के दाता हैं ॥५५॥ अब तुम शीघ्र अपने पिता के घर चली जाओ, मेरे आशीर्वाद से और अपने तप के फल से उन अति दुर्लभ शिव का दर्शन तुम्हें वहां प्राप्त होगा ।५६। इतना कहकर ब्राह्मण वहीं अन्तर्हित हो गया और पार्वती 'महादेव, महादेव' का उच्चारण करती हुई पिता के घर गयीं ॥५७॥ पार्वती का आगमन सुनकर मेना और हिमालय हर्ष-विभोर होकर उनके लिए दिव्य यान (सवारी) लेकर चले ॥५८॥ हे राधिके ! राजमार्ग पर चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, फल और शखायुक्त मंगल कलशों को स्थापित कराया, जो पट्टसूत्रों से आवद्ध एवं आम के पल्लवों से संयुक्त थे। उनके चारों ओर कदली-स्तम्भों के समूह लगाये गये थे ॥५९-६०॥ पतिपुत्रवती सुन्दरियाँ हाथों में दीपक, लाजा (धान का लावा), धान्य, दूर्वा, फल और पुष्प लिये आगे चल रहीं थी ॥६१॥ फिर अति पुण्यात्मा ब्राह्मणों, मुनियों, ब्रह्मचारियों, नटियों, नर्तकियों और गजराजों से वह मार्ग.शोभायमान था ॥६२॥ पुरोहित लोग हाथों में सुन्दर मालती-मालायें लेकर संयुक्त रूप से मंगल ध्वनि करते हुए जा रहे थे ॥६३॥ उस समय विभिन्न प्रकार के बाजे बज रहे थे, शंखध्वनि हो रही थी। सड़कों पर सिन्दूर तथा चन्दन के जल से कीच मच गई ॥६४॥ उस नगर में प्रविष्ट होकर दुर्गा ने सामने माता-पिता को देखा, जो अत्यन्त प्रसन्न और हर्ष के आँसुओ से रोमांचित होकर दौड़ रहे हैं ॥६५॥ प्रसन्नमुख देवी ने सखियों समेत उन्हें प्रणाम किया। उन लोगों ने संयुक्त आशीवांद देकर दुर्गा को हृदय से लगा लिया ॥६६॥ हे वत्से, हे वत्से ! ऐसा कहते हुए प्रेमाकुल होकर रोदन करने लगे। फिर दुर्गा को रथ पर बैठा कर अपने घर ले गये ॥६७॥ स्त्रियों ने दुर्गा का निर्मञ्च्छन किया और ब्राह्मणों ने आशी-

Funding by IKS-MoE

मङ्गलं कारयामास पाठयामास छान्दसम् । एवं स्वकन्यया सार्धं तस्थतुस्तौ स्वमन्दिरे ॥६९॥
सुखेन वसतौ तौ हि हर्षनिर्भरमानसौ । एकदा च तपः कर्तुं जगाम स्वर्णदीं गिरिः ॥७०॥
मेनका कन्यया सार्धमुवास प्राङ्गणे मुदा । एतस्मिन्नन्तरे भिक्षुर्नर्तकश्च सुगायनः ॥७१॥
सहसैक आजगाम मेनकासंनिधिं मुदा । शृङ्गवाद्यं वामहस्ते डमरुं दक्षिणे तथा ॥७२॥
कृत्वा विभूतिगात्रोऽतिवृद्धोऽतीव जरातुरः । पृष्ठकन्थो रक्तवासाः सुकण्ठोऽतिमनोहरः ॥७३॥
जगौ मम गुणाख्यानं कृत्वा नृत्यं मनोहरम् । वादयामास शृङ्गं च क्षणं डमरुकं तथा ॥७४॥
आजग्मुर्नागरा बाला बालिका हर्षविह्वलाः । वृद्धा युवानो युवतीसमूहो वृद्धयोषितः ॥७५॥
श्रुत्वा तु सुन्दरं गीतं सुतानस्वरसंयुतम् । सहसा मुमुहुः सर्वे ते मूर्च्छामवाप्नुवन् ॥७६॥
मूर्च्छां संप्राप सा दुर्गा ददर्श हृदि शंकरम् । त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्मधरं परम् ॥७७॥
विभूतिभूषणं रम्यमस्थिमालं सुनिर्मलम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं सुप्रसन्नं त्रिलोचनम् ॥७८॥
मालाहस्तं पञ्चवक्त्रं नागयज्ञोपवीतकम् । वरं वृणिवत्युक्तवन्तं सुन्दरं चन्द्रशेखरम् ॥७९॥
हृदयस्थं हरं दृष्ट्वा मनसा तं ननाम सा । वरं वव्रे मानसे सा त्वं पतिर्मे भवेति च ॥८०॥

आशीर्वाद दिया। पर्वतराज ने ब्राह्मणों एवं बन्दी जनों को धन प्रदान किया ॥६८॥ मंगल कराया और वेदों के पाठ हुए इस प्रकार अपनी कन्या के साथ वे भवन में रहने लगे ॥६९॥ हर्षविभोर होकर सुखपूर्वक रहते हुए पर्वतराज एक बार तप करने के हेतु गङ्गातट पर गये और मेना पुत्री पार्वती को साथ लिए घर के आँगन में बैठी थीं। इसी बीच एक भिक्षुक आया जो नाचने वाला तथा सुन्दर गायन करने वाला था ॥७०-७१॥ वह सहसा मेना के पास हर्ष से आया। उसके बायें हाथ में सींग का बाजा और दाहिने हाथ में डमरू था ॥७२॥ वह शरीर में भस्म लगाये, अतिवृद्ध, अत्यन्त जरा अवस्था से आकुल, पीठ पर गुदड़ी लिये तथा रक्तवस्त्र पहने था। उसका कण्ठ सुन्दर एवं वह अति मनोहर था ॥७३॥ उसने मनोहर नृत्य करके मेरा गुणगान करना आरम्भ किया––कभी शृंग बजाता और कभी डमरू ॥७४॥ उसे सुनकर नगर के बालक-बालिकायें, वृद्ध, युवा पुरुष और युवती एवं वृद्धा स्त्रियाँ हर्ष-विह्वल होकर वहाँ आ गयीं ॥७५॥ उसके सुन्दर गीत को सुनकर, जो उत्तम तान और स्वर से युक्त था, सभी लोग सहसा मोहित हो गये और उससे उन्हें मूर्च्छा आ गई ॥७६॥ दुर्गा भी मूर्च्छित होकर हृदय में शिव का दर्शन करने लगीं, जो हाथों में त्रिशूल और पट्टिश लिए एवं परमोत्तम बाघम्बर धारण किये हुए थे ॥७७॥ वे सम्पूर्ण अंगों में विभूति से विभूषित थे। बड़ा ही रम्य रूप था। अत्यन्त निर्मल अस्थि माला धारण किये मन्द हास समेत प्रसन्नमुख था। उनकी आकृति से आन्तरिक उल्लास सूचित होता था। पाँच मुख और प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र शोभा पाते थे। हाथ में माला, कंधे पर नागों का यज्ञोपवीत और मस्तक पर चन्द्राकार मुकुट—बड़ी सुन्दर झाँकी थी। उन्होंने पार्वती से कहा कि वर माँगो। हृदय स्थित हर को देखकर पार्वती ने मन ही मन उन्हें प्रणाम

एवं दत्त्वा शिवस्तस्यै चान्तर्धानं चकार सः। न दृष्ट्वा हृदि तं दुर्गा संप्राप्य चेतनां पुनः ॥८१॥
ददर्श चक्षुरुन्मील्य भिक्षुकं गायकं पुरः । नृत्यसंगीततः सा तु भिक्षुकस्य च मेनका ॥८२॥
दातुं ययौ सा रत्नानि स्वर्णपात्रस्थितानि च। भिक्षां ययाचे भिक्षुस्तां दुर्गां नान्यां गृहीतवान् ॥८३॥
पुनश्च नर्तनं कर्तुमुद्यतः कौतुकेन च । मेना तद्वचनं श्रुत्वा चुकोप विस्मयं ययौ ॥८४॥
भिक्षुकं भर्त्सयामास बहिः कर्तुमुवाच तम्। पत्नी त्रिलोकनाथस्य शिवस्य परमात्मनः ॥८५॥
याच्ञामिमां प्रकुर्वन्तं दूरं कुरु कुभाषिणम्। एतस्मिन्नन्तरे तप्त्वा गिरिः स्वालयमाययौ ॥८६॥
ददर्श पुरतो भिक्षुं प्राङ्गणस्थं मनोहरम् । कृत्वा नारायणार्चां च गङ्गातीरे मनोहरे ॥८७॥
तन्मूर्तिध्यानविश्लेषशोकादुद्विग्नमानसः । श्रुत्वा मेनामुखाद्वार्तां जहास च चुकोप सः ॥८८॥
आज्ञां चकार स्वचरं बहिः कर्तुं च भिक्षुकम्। आकाशमिव दुःस्पर्शं प्रज्वलन्तं स्वतेजसा ॥८९॥
न शशाक बहिः कर्तुं समीपं गन्तुमक्षमः । ददर्श भिक्षुकं शैलः क्षणं चारुचतुर्भुजम् ॥९०॥
किरीटिनं कुण्डलिनं पीताम्बरधरं परम् । सुवेषं सुन्दरं श्याममीषद्धास्यं मनोहरम् ॥९१॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भक्तानुग्रहकारकम् । यद्यत्पुष्पं प्रदत्तं च पूजाकाले गदाभृते ॥९२॥

किया और वर माँगा––'आप हमारे पति हो जाइये।' 'एवमस्तु' कहकर शिव अन्तर्धान हो गये। हृदय में शिव को न देखकर दुर्गा की मूर्च्छा भंग हुई। उन्होंने आँखें खोलीं तो गायन करने वाले भिक्षुक को देखा। मेना ने भिक्षुक के नृत्यसंगीत से संतुष्ट हो सुवर्ण के पात्र में रत्न-समूह लेकर उसे देने के लिए गईं। किन्तु भिक्षुक केवल दुर्गा को ग्रहण करने की ही भिक्षा की याचना की, अन्य वस्तु की नहीं ॥७८-८३॥ जब वह पुनः कौतुकवश नृत्य करने के लिए उद्यत हुआ तो मेना उसकी बात सुनकर कुपित हो गयीं और उन्हें आश्चर्य भी हुआ ॥८४॥ उन्होंने भिक्षुक की भर्त्सना की और उसे बाहर करने के लिए कहा–(यह दुर्गा) तीनों लोक के स्वामी परमात्मा शिव की पत्नी है, इसकी याचना करते हुए इस कुत्सितभाषी (भिक्षुक) को बाहर निकाल दो।' ॥८५-८६॥ उसी समय पर्वतराज हिमालय तप करके अपने घर आये, वहाँ प्राङ्गण में सामने अवस्थित मनोहर भिक्षुक को देखा। गङ्गा के मनोहर तट पर नारायण की अर्चना करके वे उनका ध्यान कर रहे थे, किन्तु (ध्यान में) मूर्तिवियोग (ध्यान-भंग) हो जाने के कारण उनका मन शोक से खिन्न हो गया था। मेना के मुख से समाचार सुनकर वे हँसे और कुपित भी हुए ॥८७-८८॥ तब भिक्षुक को बाहर करने के लिए अपने दूत को आज्ञा दी। किन्तु आकाश की भाँति उस (भिक्षुक) का स्पर्श करना भी कठिन था। वह अपने तेज से प्रज्वलित हो रहा था ॥८९॥ उसे कोई बाहर नहीं कर सका। उसके निकट जाने की भी किसी में क्षमता नहीं थी। हिमवान् ने एक ही क्षण में देखा––उस भिक्षुक के सुन्दर चार भुजायें हैं; मस्तक पर किरीट, कानों में कुण्डल तथा शरीर पर पीताम्बर-शोभा पाता है; श्यामसुन्दर का रुचिर वेष मन को मोह लेता है; मुखपर मन्द मुस्कान की प्रभा फैल रही है। सम्पूर्ण अंग चन्दन से

गात्रे शिरसि तत्सर्वं भिक्षुकस्य ददर्श ह । धूपः प्रदीपो यो दत्तो नैवेद्यं वा मनोहरम् ॥९३॥
ददर्श शैलस्तत्सर्वं भिक्षुकस्य पुरः स्थितम् । क्षणं ददर्श द्विभुजं विनोदमुरलीकरम् ॥९४॥
गोपवेषं किशोरं च सस्मितं श्यामसुन्दरम् । मयूरपिच्छचूडं च रत्नालंकारभूषितम् ॥९५॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं वनमालाविभूषितम् । क्षणं ददर्श स्वच्छं च शंकरं चन्द्रशेखरम् ॥९६॥
त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्माम्बरं परम् । विभूतिगात्रममलमस्थिमालाविभूषितम् ॥९७॥
नागयज्ञोपवीतं च तप्तस्वर्णजटाधरम् । डमरुभृङ्गहस्तं च सुप्रशस्तं मनोहरम् ॥९८॥
प्रजपन्तं हरेर्नाम श्वेताब्जबीजमालया । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥९९॥
स्वतेजसा प्रज्वलन्तं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् । क्षणं ददर्श जगतां स्रष्टारं च चतुर्मुखम् ॥१००॥
जपन्तं श्रीहरेर्नाम स्वच्छस्फटिकमालया । क्षणं सूर्यस्वरूपं च ददर्श त्रिगुणात्मकम् ॥१०१॥
ददर्श तमतीव्रं तु ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । क्षणमग्निस्वरूपं च ज्वलन्तमतितेजसा ॥१०२॥
क्षणमाह्लादजनकं चन्द्ररूपं ददर्श ह । क्षणं तेजःस्वरूपं च निराकारं निरञ्जनम् ॥१०३॥
निर्लिप्तं च निरीहं च परमात्मस्वरूपिणम् । एवं स्वेच्छामयं दृष्ट्वा नानारूपधरं परम् ॥१०४॥
हर्षाश्रुपुलकः शैलो दण्डवत्प्रणनाम तम् । भक्त्या प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥१०५॥

चर्चित हैं तथा वे भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए कातर हैं। हिमवान् ने पूजाकाल में (भगवान्) गदाधर को जो-जो पुष्प समर्पित किये थे, वे सब उस भिक्षुक के अंग और सिर पर दिखायी पड़े। धूप, दीप एवं मनोहर नैवेद्य भी, जो पर्वतराज ने वहाँ समर्पित किया था, वह सब भिक्षुक के सामने रखा देखा। दूसरे ही क्षण में वही भिक्षुक पुनः द्विभुज रूप में दिखायी दिया, जिसके हाथ में विनोद-मुरली थी। गोपवेष, किशोरवय, मन्दहास, मोरपंख की चूडा, रत्नों के आभूषणों से भूषित, चन्दनचर्चित सर्वांग और वनमाला से सुशोभित—मानो साक्षात् श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण हों। पुनः क्षण मात्र में उसे शुभ्रवर्ण शिव रूप में देखा। उसके हाथों में त्रिशूल और पट्टिश थे। वह बाघम्बर, भस्म और अस्थिमाला से विभूषित था। वह अस्थिमाला एवं यज्ञोपवीत पहने हुए था। उसकी जटा तप्त सुवर्ण के समान चमक रही थी। हाथों में डमरू और शृंग थे, अत्यन्त प्रशस्त एवं मनोहर रूप था ॥९०-९८॥ वह श्वेत कमल की माला से हरि के नाम का जप कर रहा था तथा मन्दहास समेत प्रसन्नमुख, भक्तों पर अनुग्रहार्थ कातर, अपने तेज से प्रज्वलित एवं पाँच मुख और तीन नेत्रों से युक्त था। फिर दूसरे ही क्षण में उन्होंने भिक्षुक को जगत्-स्रष्टा चतुर्मुख ब्रह्मा के रूप में देखा, जो स्वच्छ स्फटिक की माला से हरि के नाम का जप कर रहा था। क्षण भर में पुनः त्रिगुणात्मक सूर्य-रूप में देखा, जो ब्रह्मतेज से अति प्रज्वलित था। क्षण में पुनः उसे अति तेज से प्रदीप्त अग्नि के रूप में देखा ॥९९-१०२॥ क्षण में हर्षजनक चन्द्ररूप में देखा। क्षण में तेजः स्वरूप, निराकार, निरञ्जन, निर्लिप्त, निरीह और परमात्मस्वरूप में देखा। इस भाँति अनेक रूपधारी उन स्वेच्छामय को देखकर हिमालय के नेत्र प्रेमवश सजल हो गये, शरीर में रोमाञ्च हो आया। उन्होंने दण्डवत्प्रणाम किया और भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा करके उन्हें बार-बार प्रणाम करने लगे ॥१०३-१०५॥ फिर हर्ष से उछल कर पर्वतराज ने पुनः उन्हें देखा तो वही भिक्षुक

समुत्पत्य हर्षयुक्तो ददर्श पुनरेव तम्। वास्तवं भिक्षुकं दृष्ट्वा शैलेन्द्रो विष्णुमायया ॥१०६॥
विसस्मार च तत्सर्वं नानारूपधरं[1] परम्। भिक्षां ययाचे भिक्षुस्तं भिक्षास्थालीस्वपार्श्वकः[2] ॥१०७॥
रक्ताम्बरः शृङ्गवाद्यविचित्रडमरुः करे। आदातुमुत्सुको दुर्गां नान्यां भिक्षुः कदाचन ॥१०८॥
न स्वीचकार शैलेन्द्रो मोहितो विष्णुमायया। भिक्षुः किंचिन्न जग्राह तत्रैवान्तरधीयत ॥१०९॥
तदा बभूव ज्ञानं च मेनकाशैलयोः प्रिये। अहो दृष्टो जगन्नाथ आवाभ्यां स्वप्नवद्दिने ॥११०॥
आवां शिवो वञ्चयित्वा स्वस्थानं गतवान्विभुः। तयोर्भक्तिं शिवे दृष्ट्वा सर्वे देवाश्च चिन्तिताः ॥१११॥
चक्रुः शक्रादयो युक्तिं सुमेरो रक्षणे भरात्। एकान्तभक्त्या शैलश्चेत्कन्यां तस्मै प्रदास्यति ॥११२॥
ध्रुवं निर्वाणतां सद्यः संप्राप्नोत्येव भारते। अनन्तरत्नाधारश्चेत्पृथ्वीं त्यक्त्वा प्रयास्यति ॥११३॥
रत्नगर्भाभिधा भूमेर्मिथ्यैव भविता ध्रुवम्। स्थावरत्वं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय सः ॥११४॥
कन्यां शूलभृते दत्त्वा विष्णुलोकं गमिष्यति। नारायणस्य सारूप्यं भविष्यत्येव लीलया ॥११५॥
सम्प्राप्य पार्षदत्वं च हरिदासो भविष्यति। दशवापीसमा कन्या दीयते ब्राह्मणाय ताम् ॥११६॥

सामने था। वास्तव में वह भिक्षुक ही है—ऐसा उन्हें दिखायी दिया। विष्णु की माया से शैलराज उसके नाना रूप धारण सम्बन्धी सब बातों को भूल गये। भिक्षुक उनसे भीख माँगने लगा। उसके पास भिक्षा का पात्र था। उसने रक्त वस्त्र धारण कर रखा था। हाथों में शृंग और विचित्र डमरू के बाजे थे। वह भिक्षा में केवल दुर्गा को ग्रहण करने के लिए उत्सुक था, दूसरी किसी वस्तु को नहीं ॥१०६-१०८॥ किन्तु विष्णु की माया से मोहित शैलराज ने इसे स्वीकार नहीं किया। भिक्षु भी अन्य कुछ न लेकर वहीं अन्तर्हित हो गया ॥१०९॥ प्रिये ! भिक्षुक के चले जाने पर उन दोनों मेना-हिमवान् को ज्ञान हुआ कि—अहो ! हम दोनों को जगन्नाथ शिव दिन में स्वप्न की भाँति दिखायी पड़े, भगवान् शिव हमें वञ्चित करके अपने स्थान को चले गये। शिव में उन दोनों की ऐसी भक्ति देखकर देवगण अति चिन्तित हुए ॥११०-१११॥ भार से सुमेरु की रक्षा के लिए युक्ति करने लगे। वे आपस में कहने लगे कि यदि हिमालय भारत में अनन्य भक्ति से शिव को कन्या प्रदान करेंगे, तो वे अवश्यमेव निर्वाणमोक्ष प्राप्त कर लेंगे। अनन्तरत्नधारी हिमालय यदि पृथिवी त्याग कर भारत से चले जायेंगे, तो पृथ्वी का 'रत्नगर्भा (वसुन्धरा) नाम निश्चित ही मिथ्या हो जायगा। क्योंकि शूलपाणि शिव को कन्या देकर अपने स्थावररूप को त्याग कर दिव्यरूप धारण करके हिमालय विष्णुलोक को चले जायेंगे। वहाँ नारायण का सारूप्य मोक्ष उन्हें अनायास प्राप्त हो जायगा ॥११२-११५॥ फिर पार्षद-पद प्राप्त करके वे हरिदास हो जायेंगे। ब्राह्मण को कन्यादान करने पर दस वापी (वावली) बनवाने का पुण्य प्राप्त होता है ॥११६॥ जो वेद का ज्ञाता, पवित्राचरण,

---

१क. °पप्रदर्शनम्। २ख. °कम्।

वेदज्ञाय पवित्राय चाप्रतिग्रहशालिने । संध्यायज्ञवेदपाठकारिणे सत्यवादिने ॥११७॥
अस्मै प्रदत्ता कन्या च दशवापीफलप्रदा । त्रिसंध्यं कारिणे सत्यवादिने गृहशालिने ॥११८॥
वेदज्ञाय सुविप्राय दत्त्वा सुफलदायिनी । प्रतिग्रहगृहीताय संध्याहीनाय नित्यशः ॥११९॥
मूर्खाय दत्ता कन्या सा त्वर्धांशफलदायिनी । परदारगृहीताय याजकाय द्विजातये ॥१२०॥
शठाय संध्याहीनाय वाप्यैकफलदा सुता । सर्वसंध्यास्वगायत्रीविहीनाय शठाय च ॥१२१॥
वैश्योद्भवाय[1] दत्ता या वाप्यर्धफलदा स्मृता । पापिने शूद्रजाताय विप्रक्षत्त्रोद्भवाय च ॥१२२॥
दत्त्वा चाण्डालतुल्याय कन्या सा नरकप्रदा । विष्णुभक्ताय विदुषे विप्राय सत्यवादिने ॥१२३॥
जितेन्द्रियाय दत्ता या विंशद्वापीफलप्रदा । षष्टिवर्षसहस्राणि दिव्यरूपं विधाय च ॥१२४॥
एवंभूताय दत्ता चेन्मोदते विष्णुमन्दिरे । दत्त्वा कन्यां सुशीलां च हराय हरयेऽथवा ॥१२५॥
नारायणस्वरूपं च भवेदेव श्रुतौ श्रुतम् । विष्णुभक्तो यदा कन्यां ददाति विष्णुप्रीतये ॥१२६॥
स लभेद्धरिदास्यं च ध्रुवं विप्रोद्भवाय च । इत्यालोच्य सुराः सर्वे कृत्वा च मन्त्रणां प्रिये ॥१२७॥
गुरुं प्रस्थापितुं जग्मुर्हिमालयगृहं प्रति । गत्वा प्रणम्य च गुरुं सर्वे चक्रुर्निवेदनम् ॥१२८॥
हिमालयगृहं गत्वा कुरु निन्दां च शूलिनः । पिनाकिनं विना दुर्गा वरं नान्यं वरिष्यति ॥१२९॥

प्रतिग्रह (दान) न लेने वाला, संध्या, यज्ञ एवं वेद पाठ करने वाला तथा सत्यवक्ता हो, उसको कन्या देने से दस वापी खुदवाने का फल प्राप्त होता है, तीनों काल की संध्या करने वाले, सत्यवादी, गृहस्थ, वेद-ज्ञाता एवं उत्तम ब्राह्मण को कन्यादान करने से सुफल होता है । प्रतिग्रह ग्रहण करने वाले, नित्य संध्या से रहित और मूर्ख को दी गई कन्या आधा फल देती है। दूसरे की स्त्री ग्रहण करने वाले, यज्ञ करावे वाले, शठ और संध्याहीन ब्राह्मण को दी गई कन्या एक वापी का फल प्रदान करती है । तीनों काल की संध्या अपनी गायत्री से रहित, शठ तथा वैश्य से उत्पन्न व्यक्ति को कन्यादान करने से आधी वापी का फल प्राप्त होता है । पापी तथा शूद्र द्वारा उत्पन्न या ब्राह्मण या क्षत्रिय से उत्पन्न चाण्डाल तुल्य व्यक्ति को कन्या प्रदान करने से नरक प्राप्त होता है ॥११७-१२२½॥ विष्णुभक्त, विद्वान्, सत्यवक्ता और जितेन्द्रिय ब्राह्मण को कन्या दान करने पर बीस वापी का फल प्राप्त होता है । फिर साठ हजार वर्षों तक दिव्य रूप धारण करके वह (दाता) विष्णु-मन्दिर में आनन्द प्राप्त करता है । शिव या विष्णु को सुशीला कन्या प्रदान करने से वह नारायण स्वरूप हो जाता है, ऐसा वेद में सुना गया है । जब विष्णु का भक्त विष्णु के प्रीत्यर्थ ब्राह्मण को कन्यादान करता है तो वह निश्चित हरिदास्य पद प्राप्त करता है ॥१२३-१२६½॥ हे प्रिये ! यह सब सोचकर सभी देवता मन्त्रणा (सलाह) करके हिमालय के घर बृहस्पति को भेजने के लिए गये । जाकर गुरु को प्रणाम करके उनसे निवेदन करने लगे कि—॥१२७-१२८॥ आप हिमवान् के घर जाकर शूलधारी शिव की निन्दा कीजिए, क्योंकि पिनाकी शिव के अतिरिक्त किसी दूसरे का वरण दुर्गा

---

[1] क. विप्रोद्भ° ।

अनिच्छया सुतां दत्त्वा फलं पूर्णं न लभ्यते। कालेन यातु शैलेन्द्रश्चेदानीं भुवि तिष्ठतु ॥१३०॥
अनन्तरत्नाधारं च त्वमेव रक्ष भारते । देवानां वचनं श्रुत्वा प्रददौ कर्णयोः करौ ॥१३१॥
न स्वीचकार स्वगुरुः स्मरन्नारायणेति च । उवाच देववर्गांश्च संभर्त्स्य च पुनः पुनः ॥
वेदवेदाङ्गविज्ञाता[1] महाभक्तो हरौ हरे ॥१३२॥

बृहस्पतिरुवाच

श्रूयतां मद्वचः सत्यं हे देवाः स्वार्थसाधकाः ।
नीतिसारं च वेदोक्तं परिणामसुखावहम् । हरकेशवयोर्भक्तं ये च निन्दन्ति पापिनः ॥१३३॥
भूदेवान्ब्राह्मणांश्चैव स्वगुरुं च पतिव्रताः । पतिभिक्षुब्रह्मचारिसृष्टिबीजान्सुरांस्तथा ॥१३४॥
पच्यन्ते कालसूत्रे ते यावच्चन्द्रदिवाकरौ । श्लेष्ममूत्रपुरीषेषु शेरते ते दिवानिशम् ॥१३५॥
भक्षिताः कीटनिकरैः शब्दं कुर्वन्ति कातराः । ये निन्दन्ति च ब्रह्माणं स्रष्टारं जगतां गुरुम् ॥१३६॥
शिवं सुराणां प्रवरं दुर्गां लक्ष्मीं सरस्वतीम् । गीतां च तुलसीं गङ्गां वेदांश्च वेदमातरम् ॥१३७॥
व्रतं तपस्यां पूजां च मन्त्रं मन्त्रप्रदं गुरुम् । ते पच्यन्तेऽन्धकूपे वै चाऽऽयुषोऽर्धं विधेरहो ॥१३८॥

कभी नहीं करेंगी ॥१२९॥ उस दशा में हिमवान् अनिच्छा से ही अपनी पुत्री शिव को देंगे । ऐसा करने से कन्यादान का पूरा फल नहीं मिलेगा । कालान्तर में गिरिराज भले ही मुक्त हो जायँ; परन्तु इस समय तो इन्हें पृथ्वी पर रहना ही चाहिए । आप ही अनन्त रत्नों के आधारभूत हिमालय को भारत वर्ष में रखिए । देवताओं की बात सुनकर बृहस्पति ने दोनों हाथ कानों में लगा लिये और नारायण का स्मरण करते हुए उसे अस्वीकार कर दिया । वेदान्त के विशिष्ट ज्ञाता और विष्णु एवं शिव के महाभक्त बृहस्पति ने देवों की बार-बार भर्त्सना करते हुए कहा ॥१३०-१३२॥

बृहस्पति बोले—हे स्वार्थ-साधक देवगण ! तुम लोग मेरा सत्य वचन सुनो, जो नीति का सारभाग, वेदोक्त और परिणाम में सुख देने वाला है । जो पापी शिव तथा विष्णु के भक्त की, भूदेव ब्राह्मणों की, अपने गुरु, पतिव्रता स्त्रियों, पति, भिक्षु, ब्रह्मचारी और सृष्टि के बीजभूत देवों की निन्दा करते हैं, वे सूर्य चन्द्रमा के समय तक कालसूत्र नामक नरक में पकाये जाते हैं तथा कफ, मूत्र और मल में दिनरात पड़े रहते हैं एवं कीड़ों के समूह उन्हें खाया करते हैं, जिससे वे सदैव कातर होकर चिल्लाया करते हैं । जो जगत् के स्रष्टा एवं गुरु ब्रह्मा, देव-प्रवर शिव, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, गीता, तुलसी, गंगा, वेद, वेदमाता (सावित्री), व्रत, तप, पूजा, मन्त्र और मन्त्रदाता गुरु की निन्दा करते हैं, वे ब्रह्मा की आधी आयु तक अन्धकूप नामक नरक में पकते रहते हैं ॥१३३-

---

[1] ख. °दान्तवि° ।

Funding by IKS-MoE

भक्षिताः सर्पसंघैश्च शब्दं कुर्वन्ति संततम् । ये निन्दन्ति हृषीकेशं देवसाम्यं विधाय च ॥१३९॥
विष्णुभक्तिप्रदं चैव पुराणं च श्रुतेः परम् । राधां तदङ्गजा गोपीर्ब्राह्मणांश्च सदार्चितान् ॥१४०॥
ते पचयन्तेऽवटे देवा विधातुरायुषा समम् । अधोमुखा ऊर्ध्वजङ्घाः सर्पसंघैश्च वेष्टिताः ॥१४१॥
भक्षिता विकृताकारैः कीटैः सर्पसमाकृतैः । अतीव कातरा भीताः शब्दं कुर्वन्ति संततम् ॥१४२॥
श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि ध्रुवं भक्षन्ति क्षोभिताः । उल्कां ददति रुष्टाश्च तन्मुखे यमकिंकराः ॥१४३॥
त्रिसंध्यं तर्जनं कृत्वा कुर्वन्ति दण्डताडनम् । कुर्वन्ति मूत्रपानं च प्रहारैस्तृषितान्भिया ॥१४४॥
तदा कल्पान्तरे स्रष्टुं सृष्टिं च प्रथमे पुनः । तेषां भवेत्प्रतीकार इत्याह कमलोद्भवः ॥१४५॥
कृत्वा हि शिवनिन्दां च यास्यन्ति नरकं सुराः । इममेवोपकारं च कर्तुमिच्छथ पुत्रकाः ॥१४६॥
ब्रह्मणा प्रेरितो दक्षो दत्त्वा शूलभृते सुताम् । न पापं परमैश्वर्यं संप्राप हरनिन्दकः ॥१४७॥
अनिच्छया सुतां दत्त्वा तुर्यपुण्यं ललाभ सः । अहो विहाय सारूप्यं तुच्छं स्वर्गं ललाभ सः ॥१४८॥
कश्चिन्मध्ये च युष्माकं गत्वा शैलगृहं सुराः । संपादयत्वभिमतं शैलेन्द्रस्य प्रयत्नतः ॥१४९॥

१३८॥ सर्प-समूह उन्हें खाया करते हैं, जिससे वे निरन्तर चिल्लाते रहते हैं। जो भगवान् मधुसूदन की देवता से तुलना करके उनकी निन्दा करते हैं, विष्णुभक्ति प्रदान करने वाले पुराण में, जो वेद से भी उत्कृष्ट है, दोष निकालते हैं, राधा तथा उनकी कायव्यूहरूपा गोपियों की और सदा पूजित होने वाले ब्राह्मणों की भी निन्दा करते हैं, वे देवता ही क्यों न हो, ब्रह्मा की आयु पर्यन्त नरक के गड्ढे में पकाये जाते हैं। उनके मुँह नीचे लटकाये जाते हैं और उनकी जाँघें ऊपर की ओर होती हैं। विकृताकार सर्पसमूह तथा सर्प की-सी आकृति वाले कीट उनके सारे अंगों में लिपट कर काटते रहते हैं और वे अत्यन्त कातर तथा भयभीत हो सदा आर्तनाद किया करते हैं ॥१३९-१४२॥ निश्चय ही वहाँ वे क्षोभपूर्वक कफ, मूत्र और मल भक्षण करते हैं तथा रुष्ट यमदूत उनके मुख में जलती हुई लुआठी डाल देते हैं ॥१४३॥ तीनों संध्याओं में उनकी तर्जना करते हुए उन पर डंडों का प्रहार करते हैं। डंडों के प्रहारों से प्यास लगने पर वे उन यमदूतों के भय से मूत्र-पान करते हैं ॥१४४॥ पुनः दूसरे कल्प में सृष्टि के समय सर्वप्रथम उनका प्रतीकार (पापों का निवारण) किया जाता है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥१४५॥ शिव की निन्दा करके देवतागण नरक में जायेंगे। हे पुत्रो ! क्या यही उपकार करना चाहते हो ॥१४६॥ ब्रह्मा से प्रेरित होकर दक्ष ने शिव को अपनी कन्या का दान किया था, इसीलिए उनकी निन्दा करने पर भी उन्हें पापभागी नहीं होना पड़ा, अपितु उन्होंने परम ऐश्वर्य की प्राप्ति की ॥१४७॥ हाँ, यह अवश्य हुआ कि अनिच्छापूर्वक कन्यादान करने से उन्हें चौथाई पुण्य की ही प्राप्ति हुई। अतएव वे सारूप्य मोक्ष को न पाकर केवल तुच्छ स्वर्ग की ही प्राप्ति कर सके ॥१४८॥ देवताओ ! तुम्हीं लोगों में से कोई पर्वतराज के घर जाकर उनसे प्रयत्नपूर्वक अपने मत के अनुसार कार्य करे। अनिच्छापूर्वक कन्या का दान करके हिमालय भारत में सुखपूर्वक रहें।

अनिच्छया सुतां दत्त्वा सुखं तिष्ठतु भारते। तस्मै भक्त्या सुतां दत्त्वा मोक्षं प्राप्स्यति निश्चितम् ॥१५०॥
पश्चात्सप्तर्षयः सर्वे गृहीत्वा तामरुन्धतीम्। ध्रुवं तस्य गृहं गत्वा बोधयिष्यन्ति पर्वतम् ॥१५१॥
विना पिनाकिनं दुर्गा वरं नान्यं वरिष्यति। अनिच्छया सुतां तस्मै प्रदास्यति सुताज्ञया ॥१५२॥
इत्येवं कथितं सर्वं देवा गच्छन्तु मन्दिरम्। इत्युक्त्वा वाक्पतिः शीघ्रं तपसे स्वर्णदीं गतः ॥१५३॥
इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

तदा देवाः समालोच्य जग्मुस्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम्। सर्वे निवेदनं चक्रुर्ब्रह्माणं जगतां पतिम् ॥१॥

भक्तिपूर्वक कन्यादान करने पर तो वे अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर लेंगे ।।१४९-१५०।। पश्चात् (अश्रद्धा उत्पन्न हो जाने के बाद) अरुन्धती को साथ लेकर सब सप्तर्षि अवश्य ही पर्वतराज के घर जाकर उन्हें समझायेंगे। दुर्गा पिनाकी शिव के अतिरिक्त किसी अन्य का वरण नहीं करेंगी। उस दशा में पुत्री के आग्रह से वे शिव को कन्या देंगे। इस प्रकार मैंने सब कह दिया। अन्य देवता लोग अपने-अपने घर को जायँ--इतना कह कर बृहस्पति तप करने के लिए गङ्गा जी चले गये ।।१५१-१५३।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्म-खण्ड में नारायण-नारद-संवाद में चालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।४०।।

अध्याय ४१

राजा अनरण्य का वृत्तान्त

श्रीकृष्ण बोले--तब देवगण भली-भाँति विचार करके ब्रह्मा के पास पहुँचे। वहाँ सभी ने जगत्पति ब्रह्मा से निवेदन किया ।।१।।

Funding by IKS-MoE

देवा ऊचुः

तव सृष्टौ जगत्स्रष्टा रत्नाधारो हिमालयः । स चेत्प्राप्स्यति मोक्षं च रत्नगर्भा कुतो मही ॥२॥
सुतां शूलभृते दत्त्वा भक्त्या शैलेश्वरः स्वयम् । नारायणस्य सारूप्यं संप्राप्स्यति न संशयः ॥३॥
त्वं तस्य निन्दनं कृत्वा विमतिं प्रतिपादय । त्वया विना क्षमो नान्यो गच्छ शैलगृहे प्रभो ॥४॥
देवानां वचनं श्रुत्वा तानुवाच विधिः स्वयम् । वचनं नीतिसारं च कर्णपीयूषमुत्तमम् ॥५॥

ब्रह्मोवाच

नाहं कर्तुं क्षमो वत्साः शिवनिन्दां सुदुष्कराम् । संपद्विनाशरूपां च विपदो बीजरूपिणीम् ॥६॥
भूतेशं प्रस्थापयत स्वात्मनिन्दां करोतु सः । परनिन्दा विनाशाय स्वनिन्दा यशसे परम् ॥७॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा तं प्रणम्य सुराः प्रिये । शीघ्रं ययुस्ते कैलासं गत्वा च तुष्टुवुः शिवम् ॥८॥
सर्वं निवेदनं चक्रुः शंकरं करुणालयम् । स ययौ शैलमूलं च तानाश्वास्य प्रहस्य च ॥९॥
देवा मुमुदिरे सर्वे शीघ्रं गत्वा स्वमन्दिरम् । इष्टसिद्धिर्मुदे शश्वदसिद्धिर्दुःखवर्धिनी ॥१०॥
अथ शैलः सभामध्ये समुवास मुदाऽन्वितः । बन्धुवर्गैः परिवृतः पार्वतीसहितः स्वयम् ॥११॥

देववृन्द बोले—हे संसार की सृष्टि करने वाले ! तुम्हारी सृष्टि में हिमालय रत्नों का आधार है। यदि उसे मोक्ष मिल जायगा, तो यह पृथ्वी 'रत्नगर्भा' कैसे कहलायेगी ? पर्वतराज हिमालय शूलधारी शिव को भक्तिपूर्वक कन्या प्रदान करके नारायण का सारूप्य मोक्ष प्राप्त करेंगे, इसमें संशय नहीं ॥२-३॥ प्रभो ! इसलिए आप हिमालय के घर जायँ और शिव की निन्दा करके पर्वतराज के मन में अश्रद्धा उत्पन्न कर दें । आप के सिवा दूसरा यह कार्य करने में समर्थ नहीं है ॥४॥ देवों की बात सुनकर स्वयं ब्रह्मा ने उनसे नीति का सार भाग एवं कानों को अमृत के समान लगने वाला उत्तम वचन कहा ॥५॥

ब्रह्मा बोले—बच्चो ! मैं शिव की निन्दा करने में असमर्थ हूँ, जो अत्यन्त कठिन, सम्पत्ति का नाश करने वाली और विपदाओं का बीज रूप है ॥६॥ तुम लोग उन्हीं भूतनाथ को ही भेजो । वे ही अपनी निन्दा करें । परायी निन्दा करने से विनाश होता है और अपनी निन्दा करने से महान् यश प्राप्त होता है ॥७॥ प्रिये ! ब्रह्मा की बात सुनकर देव लोग उन्हें प्रणाम करके शीघ्र ही कैलाश को गये और वहाँ पहुँच कर शिव की स्तुति करने लगे ॥८॥ अनन्तर करुणालय शिव से देवों ने निवेदन किया, जिसे सुनकर वे बहुत हँसे और देवों को आश्वासन देकर स्वयं हिमालय के यहाँ पहुँचे । यह देखकर देवों को अपार हर्ष हुआ, वे सब शीघ्रता से घर पहुँचकर आनन्द मनाने लगे । क्यों न हो, इष्टसिद्धि आनन्द देने वाली और अभीष्ट वस्तु की असिद्धि सदा दुःख बढ़ाने वाली होती है ॥९-१०॥ पर्वतराज हिमालय बन्धुवर्गों से आवृत होकर स्वयं पार्वती समेत

Funding by IKS-MoE

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विप्ररूपी शिवः स्वयम् । समाजगाम सहसा प्रसन्नवदनेक्षणः ॥१२॥
दण्डी छत्री दीर्घवासा बिभ्रत्तिलकमुत्तमम् । करे स्फटिकमाला च शालग्रामं गले दधत् ॥१३॥
तं च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ सगणश्च हिमालयः । ननाम दण्डवद्भूमौ भक्त्याऽतिथिमपूर्वकम् ॥१४॥
ननाम पार्वती भक्त्या प्राणेशं विप्ररूपिणम् । आशिषं युयुजे विप्रः सर्वेषां प्रीतिपूर्वकम् ॥१५॥
शैलदत्तासने शीघ्रमुवास ब्राह्मणः स्वयम् । मधुपर्कादिकं सर्वं जग्राह प्रीतिपूर्वकम् ॥१६॥
पप्रच्छ कुशलं शैलो ब्राह्मणं को भवानिति । उवाच सर्वं विप्रेन्द्रो गिरीन्द्रं सादरेण च ॥१७॥

ब्राह्मण उवाच

वाटिकां वृत्तिमाश्रित्य भ्रमामि धरणीतले । मनोयायी सर्वगामी सर्वज्ञोऽहं गुरोर्वरात् ॥१८॥
मया ज्ञातं शंकराय सुतां दातुं त्वमिच्छसि । इमां पद्मासमां दिव्यामज्ञातकुलशीलिने ॥१९॥
निराश्रयायासङ्गायारूपाय निर्गुणाय च । श्मशानगामिने सर्वभूतनाथाय योगिने ॥२०॥
दिग्वाससेऽहिगात्राय विभूतिभूषणाय च । व्यालग्राहिस्वरूपाय कालव्यापादनाय च ॥२१॥
अज्ञातमृत्यवेऽज्ञायानाथायाबन्धवे भवे । तप्तस्वर्णजटाभारधारिणे निर्धनाय च ॥२२॥

सभा में बैठे हुए थे ॥११॥ उसी बीच ब्राह्मण वेष में शिव स्वयं वहाँ सहसा पधारे। उनके मुख और नेत्रों से प्रसन्नता प्रकट हो रही थी । उनके हाथ में दण्ड और छत्र था । उनका वस्त्र लम्बा था । उन्होंने ललाट में उत्तम तिलक लगा रखा था । वे एक हाथ में स्फटिक की माला और गले में शालग्राम की मूर्ति धारण किये हुए थे ॥१२-१३॥ उनको देखकर हिमालय अपने गण समेत उठकर बड़ी भक्ति से उस अपूर्व अतिथि को नमस्कार किया और खड़े हो गये । फिर भूमि पर दण्ड की भाँति पड़कर अपने प्राणेश्वर को ब्राह्मण रूप में देखकर पार्वती ने भी अति भक्ति से नमस्कार किया । ब्राह्मण ने सबको प्रीतिपूर्वक आशीर्वाद प्रदान किया तथा पर्वतराज के द्वारा प्रदत्त आसन पर सुखासीन होकर उनके मधुपर्क आदि सभी स्वागत को भी प्रीतिपूर्वक स्वीकार किया ॥१४-१६॥ हिमवान् ने ब्राह्मण से कुशल-समाचार पूछा—‘आप कृपया अपना परिचय बतायें ।’ यह सुनकर विप्रवर ने गिरिराज को सादर सब कुछ बता दिया ॥१७॥

ब्राह्मण बोले—मै घटक-वृत्ति (वर-कन्या के विवाह सम्बन्ध कराने का कार्य) का आश्रय लेकर भूमण्डल में घूमता रहता हूँ । मेरी मन के समान तीव्र गति है । गुरुदेव के वरदान से मैं सर्वत्र पहुँचने में समर्थ एवं सर्वज्ञ हूँ १८॥ मुझे ज्ञात हुआ है कि तुम लक्ष्मी के समान अपनी यह कन्या शिव को देना चाहते हो, जिसके कुल और शील का कुछ पता ही नहीं है ॥१९॥ वे आश्रयहीन, संग और रूप से रहित, निर्गुण, श्मशान में रहने वाले, समस्त भूतगणों के स्वामी, योगी, दिगम्बर (नङ्गे) शरीर में साँप लपेटे, विभूति (राख) लगाये, सँपेरे के समान स्वरूप वाले, कालनाशक, अज्ञातमृत्यु, अज्ञ (मूढ़), अनाथ, संसार में बन्धुरहित, तपाये सुवर्ण के समान जटा का भार धारण किये, निर्धन, अज्ञात अवस्था (आयु) वाले, अतिवृद्ध, विकारशून्य, सबका आश्रय, घुमक्कड़,

अज्ञातवयसेऽतीव वृद्धाय चाविकारिणे । सर्वाश्रयाय भ्रमिणे नागहाराय भिक्षवे ।।२३।।
निबोध ज्ञानिनां श्रेष्ठं नारायणं कुलोद्भवम् । स ते पात्रानुरूपश्च पार्वतीदातृकर्मणि[1] ।।२४।।
महाजनः स्मेरमुखः श्रुतिमात्राद्भविष्यति । लक्षशैलाधिपस्त्वं च न तस्यैकोऽस्ति बान्धवः ।।२५।।
बान्धवान्मेनकां प्रश्नं कुरु शीघ्रं प्रयत्नतः । सर्वान्पृच्छ प्रयत्नेन हे बन्धो पार्वतीं विना ।।२६।।
रोगिणे नौषधं शश्वत्कुपथ्यं रोचते सदा । इत्युक्त्वा ब्राह्मणः शीघ्रं स्नात्वा भुक्त्वा मुदाऽन्वितः ।।२७।।
जगाम स्वालयं शान्तो वृन्दावनविनोदिनि । ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा मेनोवाच हिमालयम् ।।
शोकेन साश्रुनयना हृदयेन विदूयता ।।२८।।

मेनकोवाच

शृणु शैलेन्द्र मद्वाक्यं परिणामसुखावहम् । पृच्छ शैलवरानस्मै न दास्यामि सुतामहम् ।।२९।।
त्यक्ष्यामि सर्वान्विषयान्भक्ष्यामि विषमेव च । गले बद्ध्वाऽम्बिकां पश्य यास्यामि घोरकाननम् ।।३०।।
गृहीत्वा पार्वतीं मेना गत्वा कोपालयं रुषा । त्यक्त्वाऽऽहारं रुदन्ती च चकार शयनं भुवि ।।३१।।

सर्पों का हार धारण करने वाले तथा भिखमंगे हैं ।।२०-२३।। (यही उनका परिचय है जिन्हें तुम अपनी पुत्री देने जा रहे हो) । नारायण ज्ञानियों में श्रेष्ठ तथा कुलीन हैं। तुम उनके महत्त्व को समझो। पार्वती के दानकर्म में वे ही तुम्हारे लिए योग्य पात्र हैं ।।२४।। पार्वती का विवाह शंकर से हो रहा है, यह सुनते ही बड़े-बड़े लोगों के मुख पर (उपहाससूचक) मुसकराहट दौड़ जाएगी। तुम लाखों पर्वतों के अधीश्वर हो और शिव के एक भी कोई बान्धव नहीं है ।।२५।। अतः तुम अपने बान्धवों और पत्नी मेना से भलीभांति पूछ कर इसका निर्णय लो। हे बन्धो ! मैं इतना ही कहूँगा कि इस विषय में सबसे प्रयत्नपूर्वक पूछो किन्तु पार्वती से कभी मत पूछना ।।२६।। क्योंकि रोगी को औषध कभी प्रिय नहीं होता है, वह निरन्तर कुपथ्य ही चाहता है। इतना कहकर वह ब्राह्मण शीघ्र हर्ष से स्नान-भोजन करके शान्त भाव से अपने घर चला गया। हे वृन्दावन में विनोद करने वाली ! ब्राह्मण का वचन सुनकर मेना का हृदय अति संतप्त हुआ, शोक से आँखों में आँसू भरकर उन्होंने हिमालय से कहा ।।२७-२८।।

मेनका बोलीं—हे शैलराज ! मेरी बात सुनो ! जो परिणाम में सुख देने वाली है। तुम सभी श्रेष्ठ पर्वतों से पूछो, मैं अपनी पुत्री शिव को नहीं दूंगी ।।२९।। देखो, मैं सभी विषयों को त्याग दूंगी, विष भक्षण कर लूंगी और पार्वती को अपने गले में बाँध कर घोर जंगल में चली जाऊँगी ।।३०।। (ऐसा कह) मेना क्रोध से पार्वती का हाथ पकड़ कर कोपभवन में चली गयीं। वहाँ आहार त्याग कर रोदन करती हुई वे भूमि पर ही सो गयीं ।।३१।। इसी

---

[1] १क. °दानक° ।

Funding by IKS-MoE

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वसिष्ठो भ्रातृभिः सह । आजगाम पुनस्तैश्च युक्ता पश्चादरुन्धती ॥३२॥
प्रणम्य शैलस्तान्सर्वान्स्वर्णसिंहासनं ददौ । दत्त्वा षोडशोपचारान्पूजयामास भक्तितः ॥३३॥
ऋषयश्च सभामध्ये सुखमूषुः सुखासने । जगामारुन्धतीं तूर्णं यत्र मेना च पार्वती ॥३४॥
गत्वा ददर्श मेनां च शयानां शोकमूर्च्छिताम् । उवाच मधुरं साध्वी सावधानां हितं वचः ॥३५॥

अरुन्धत्युवाच

उत्तिष्ठ मेनके साध्वि त्वद्गृहेऽहमरुन्धती । पितृणां मानसी कन्या मां जानीहि विधेर्वधूम् ॥३६॥
अरुन्धत्याः स्वरं श्रुत्वा शीघ्रमुत्थाय मेनका । उवाच शिरसा नत्वा तां पद्मामिव तेजसा ॥३७॥

मेनकोवाच

अहोऽद्य किमिदं पुण्यमस्माकं पुण्यजन्मनाम् । वधूर्जगद्विधेः पत्नी वसिष्ठस्य ममाऽऽलये ॥३८॥
संभ्रमेणेदमेवोक्तं गृहं तेऽहं च किंकरी । ईश्वरीं जगतां द्रष्टुमागतां बहुपुण्यतः ॥३९॥
पाद्यं दत्त्वा स्वर्णपीठे वासयामास तां सतीम् । भोजयामास मिष्टान्नं बुभुजे कन्यया सह ॥४०॥
शिवस्य हेतोर्नीतिं च बोधयामास मेनकाम् । अरुन्धती प्रसङ्गेन संबन्धयोजनानि च ॥४१॥

बीच भ्राताओं समेत वसिष्ठ अरुन्धती को साथ लिए वहाँ आये ॥३२॥ हिमवान् ने उन सबको प्रणाम करके सोने का सिंहासन दिया और सोलह उपचार अर्पित करके भक्तिभाव से उनका पूजन किया ॥३३॥ ऋषिगण सभा के बीच सुखासीन हुए और अरुन्धती शीघ्र वहाँ पहुँची, जहाँ पार्वती समेत मेना स्थित थीं ॥३४॥ वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि मेना शोक से अधीर होकर भूमि पर पड़ी हैं। सती (अरुन्धती) ने सावधान मेना से मधुर वाणी में हितकर वचन कहा ॥३५॥

अरुन्धती बोलीं—हे पतिव्रता मेना उठो, मैं अरुन्धती तुम्हारे घर आयी हूँ, मैं पितरों की मानसी कन्या हूँ। मुझे ब्रह्मा की पुत्र-वधू समझो ॥३६॥ अरुन्धती की वाणी सुनते ही मेना शीघ्रता से उठीं। उन्होंने लक्ष्मी के समान तेजस्विनी अरुन्धती को शिर से प्रणाम करके बोलीं ॥३७॥

मेनका बोलीं—अहा ! हम लोगों का यह कौन-सा पुण्य आज फलित हुआ है, जिससे हमारे घर जगविधाता (ब्रह्मा) की पुत्रवधू और वसिष्ठ की पत्नी ने पदार्पण किया है ॥३८॥ देवि ! मैं आपकी दासी हूँ। यह घर आपका घर है। हमारे बहुत पुण्य से आयी हुई जगत् की ईश्वरी को देखने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है--शीघ्रता से इतना ही कहा। अनन्तर उस पतिव्रता को पाद्य (चरणप्रक्षालनार्थ) जल देकर मेना ने सुवर्ण के आसन पर उन्हें बिठाया और मिष्टान्न भोजन कराया। फिर स्वयं भी पुत्री के साथ भोजन किया ॥३९-४०॥ तत्पश्चात् अरुन्धती ने मेना को शिव के लिए नीति की बातें समझायीं और प्रसंगवश उनके साथ सम्बन्ध जोड़ने वाले वचन भी कहे ॥४१॥

Funding by IKS-MoE

अथ शलमृषीन्द्राश्च नीतिसारं परं वचः । बोधयामासुः संबन्धयोजनानि[1] प्रसङ्गतः ॥४२॥

ऋषय ऊचुः

शैलेन्द्र श्रूयतां वाक्यमस्माकं शुभकारकम् । शिवाय पार्वतीं देहि संहर्तुः श्वशुरो भव ॥४३॥
अयाचितारं देवेशं बोधयाऽऽशु प्रयत्नतः । तव शङ्काविनाशाय ब्रह्मसंबन्धकर्मणि ॥४४॥
नेच्छको दारसंयोगे शंकरो योगिनां वरः । विधेः प्रार्थनया देवस्तव कन्यां ग्रहीष्यति ॥४५॥
दुहितुस्ते तपस्यान्ते प्रतिज्ञानं चकार सः । हेतुद्वयेन योगीन्द्रो विवाहं च करिष्यति ॥४६॥
ऋषीणां वचनं श्रुत्वा प्रहस्य च हिमालयः । उवाच किंचिद्भीतश्च परं विनयपूर्वकम् ॥४७॥

हिमालय उवाच

शिवस्य राजसामग्रीं[2] न हि पश्यामि कांचन । किंचिदाश्रममैश्वर्यं किंवा स्वजनबान्धवम् ॥४८॥
न कन्यामतिनिर्लिप्तयोगिने दातुमर्हति । यूयं विधातुः पुत्राश्च सत्यं वदत निश्चितम् ॥४९॥
नानुरूपाय पात्राय पिता कन्यां ददाति चेत् । कामाल्लोभाद्भयान्मोहाच्छताब्दं[3] नरकं व्रजेत् ॥५०॥
न हि दास्याम्यहं कन्यामिच्छया शूलपाणिने । यद्विधानं भवेद्योग्यमृषयस्तद्विधीयताम् ॥५१॥

इधर ऋषिवरों ने भी हिमवान् को उत्तम वाणी में नीति का सारतत्त्व समझाया और शिव-पार्वती के सम्बन्ध को जोड़ने वाली बातें भी कहीं ॥४२॥

ऋषिगण बोले—हे पर्वतराज ! हम लोगों का कल्याणकारक वचन सुनिए । भवान् शिव को (अपनी पुत्री) पार्वती दे दो और उस संहारकारक के श्वशुर बनो ॥४३॥ अयाचक देवेश्वर शिव को तुम यत्नपूर्वक शीघ्र समझाओ—विवाह के लिए तैयार करो । इससे ब्रह्म-सम्बन्ध-कर्म (ब्राह्म-विवाह) के प्रति तुम्हारी शंका का निवारण हो जाएगा ॥४४॥ योगिराज शंकर कभी विवाह के लिए इच्छुक नहीं है । ब्रह्मा जी की प्रार्थना से ही वे तुम्हारी पुत्री को ग्रहण करेंगे ॥४५॥ तुम्हारी कन्या के तप की समाप्ति पर उन्होंने ऐसी ही प्रतिज्ञा की है । इन कारणों से योगीन्द्र (शिव) विवाह स्वीकार कर लेंगे ॥४६॥ ऋषियों की बात सुनकर हिमालय हँसे और भयभीत होकर उन्होंने अति विनयपूर्वक कहा ॥४७॥

हिमालय बोले—शिव के पास राजा की भाँति न तो कुछ सामग्री (सुखसाधन) ही देखता हूँ, न घर है, न ऐश्वर्य है और न स्वजन-बान्धव ही हैं ॥४८॥ अतिनिर्लिप्त (निखट्टू उदासीन) योगी को कन्यादान करना भी नहीं चाहिए । आप लोग ब्रह्मा के पुत्र हैं अतः आप ही सत्य एवं निश्चित कहने की कृपा करें ॥४९॥ यदि काम, लोभ, भय या मोह वश पिता कन्या के अनुरूप पात्र के साथ उसका विवाह नहीं करता है तो उसे सौ वर्षों तक नरक में रहना पड़ता है ॥५०॥ इसलिए शूलपाणि शिव को मैं अपनी इच्छा से कन्या नहीं दूँगा । ऋषियों !

---

[1] क. °नाय । [2] क. राज्यसा° । [3] ख. काला° ।

हिमालयवचः श्रुत्वा वसिष्ठो विधिनन्दनः । वेदवेदाङ्गविज्ञाता वेदोक्तं वक्तुमुद्यतः ॥५२॥

वसिष्ठ उवाच

वचनं त्रिविधं[४] शैल लौकिके वैदिके तथा । सर्वं जानाति शास्त्रज्ञो निर्मलज्ञानचक्षुषा ॥५३॥
असत्यमहितं पश्चात्सांप्रतं श्रुतिसुन्दरम् । सुबुद्धं शत्रुर्वदति न हितं च कदाचन ॥५४॥
आपातप्रीतिजनकं परिणामसुखावहम् । दयालुर्धर्मशीलश्च बोधयत्येव बान्धवम् ॥५५॥
श्रुतिमात्रात्सुधातुल्यं सर्वकाले सुखावहम् । सत्यसारं हितकरं वचसां श्रेष्ठमीप्सितम् ॥५६॥
एवं च त्रिविधं शैल नीतिशास्त्रनिरूपितम् । कथ्यतां त्रिषु मध्ये किं वदामि वाक्यमीप्सितम् ॥५७॥
बाह्यसंपद्विहीनश्च शंकरस्त्रिदशेश्वरः । तत्त्वज्ञानसमुद्रेषु संनिमग्नैकमानसः ॥५८॥
आपातभ्रमसंपत्तिर्विद्युच्छ्रीरिव नाशिनी । सदानन्दस्येश्वरस्य स्वात्मारामस्य का स्पृहा ॥५९॥
गृही ददाति स्वसुतां राज्यसंपत्तिशालिने । कन्यां विद्वेषिणे दत्त्वा कन्याघाती भवेत्पिता ॥६०॥
को वदेच्छंकरो दुःखी कुबेरो यस्य किंकरः । भ्रूभङ्गलीलया सृष्टिं स्रष्टुं नष्टुं क्षमो हि यः ॥६१॥

अतः इसके लिए जो समुचित विधान हो, वह आप करें ॥५१॥ हिमवान् की बात सुनकर वेद-वेदाङ्ग के विशेष ज्ञाता ब्रह्म-पुत्र वसिष्ठ, वेदानुसार कहने के लिए उद्यत हुए ॥५२॥

वसिष्ठ बोले—शैलराज ! लोक और वेद में तीन प्रकार के वचन कहे गये हैं। शास्त्रज्ञ पुरुष अपनी निर्मल ज्ञान-दृष्टि से उन सब को जानता है ॥५३॥ पहला वचन वह है, जो सम्प्रति कानों को सुन्दर लगे और जल्दी समझ में आ जाय; किन्तु पीछे असत्य और अहितकर सिद्ध हो। ऐसी बात केवल शत्रु ही कहता है। उससे कदापि हित नहीं होता ॥५४॥ दूसरे प्रकार का वचन वह है, जो आरम्भ में सहसा दुःखजनक जान पड़े, परन्तु परिणाम में सुख देने वाला हो। ऐसा वचन दयालु और धर्मशील पुरुष ही अपने भाई-बन्धुओं को समझाने के लिए कहता है ॥५५॥ तीसरा वचन वह है जो कानों में पड़ते ही अमृत के समान मधुर प्रतीत हो तथा सब काल में सुखदायक हो। ऐसा वचन सत्यसार, हितकर, सर्वश्रेष्ठ एवं अभीष्ट है ॥५६॥ शैलराज ! इस प्रकार नीतिशास्त्र में तीन प्रकार के वचनों का निरूपण है। इनमें कौन वचन आपको अभीष्ट है ? मैं वही कहना चाहता हूँ ॥५७॥ देवेश्वर शिव बाह्यसम्पत्ति (दिखावटी आडम्बर) से रहित हैं, क्योंकि उनका मन एकमात्र तत्त्वज्ञान-समुद्र में निमग्न रहता है ॥५८॥ धन-सम्पत्ति तो स्वभावतः भ्रमात्मक एवं विद्युत् की भाँति नश्वर है, अतः सदा आनन्दरूप रहने वाले एवं स्वात्माराम शिव को उसके लिए क्या इच्छा होगी ? ॥५९॥ गृहस्थ अपनी पुत्री का दान किसी राज्यसम्पत्ति वाले को करता है। स्त्री से द्वेष करने वाले पुरुष को कन्या देने वाला पिता कन्याघाती कहलाता है ॥६०॥ कौन कहता है कि शंकर दुःखी हैं ? जिनके कुबेर जैसे सेवक हैं और जो स्वयं भ्रूभंग की लीला मात्र से समस्त सृष्टि का सर्जन एवं विनाश कर सकते हैं ॥६१॥ वे निर्गुण, परमात्मा, ईश,

---

[४] ख. बिदि°।

निर्गुणः परमात्मा च य[1] ईशः प्रकृते परः । सर्वेशः स च निर्लिप्तो लिप्तश्च सर्वजन्तुषु ॥६२॥
स एकः सृष्टिसंहारे स सर्वः सृष्टिकर्मणि । निराकारश्च साकारो विभुः स्वेच्छामयः स्वयम् ॥६३॥
य ईशस्त्रिविधां मूर्तिं विधत्ते सृष्टिकर्मणि । सृष्टिस्थित्यन्तजननीं ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ॥६४॥
ब्रह्मा च ब्रह्मलोकस्थो विष्णुः क्षीरोदवासकृत् । शिवः कैलासवासी च सर्वाः कृष्णविभूतयः ॥६५॥
श्रीकृष्णश्च द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः । चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् ॥६६॥
तस्य देवस्य तेंऽशाश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । केचिद्देवाः कलास्तस्य कलांशाश्चैव केचन ॥६७॥
कृष्णः सृष्ट्युन्मुखश्चापि प्रकृतिं तत्र निर्ममे । निर्माय तां च तद्योनौ वीर्याधानं चकार ह ॥६८॥
ततो डिम्भः समुद्भूतस्तन्मध्ये च महाविराट् । महाविष्णुः स विज्ञेयो श्रीकृष्णषोडशांशकः ॥६९॥
नाभिपद्मोद्भवो ब्रह्मा तस्यैव जलशायिनः । भालोद्भवस्तस्य स्रष्टुः शंकरश्चन्द्रशेखरः ॥७०॥
महाविष्णु(ष्णो)र्वामपार्श्वात्संभूतो विष्णुरेव च । सर्वे प्राकृतिकाः शैलब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥७१॥
धत्ते चतुर्विधां मूर्तिं प्रकृतिः कृष्णसंभवा । अंशेन लीलया सृष्ट्यै कलया बहुधा तथा ॥७२॥
कृष्णवामाङ्गसंभूता राधा रासेश्वरी स्वयम् । मुखोद्भवा स्वयं वाणी रागाधिष्ठातृदेवता ॥७३॥

प्रकृति से परे, सर्वेश्वर और निर्लिप्त हैं तथा समस्त जीवों में लिप्त भी रहते हैं ॥६२॥ वे अकेले ही सृष्टि के संहार-कर्म और सृष्टि-कर्म में भी समर्थ हैं एवं सर्वरूप हैं। वे निराकार, साकार व्यापक एवं स्वेच्छामय हैं, ॥६३॥ वे ईश सृष्टि-कर्म में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव नामक अपनी तीन मूर्तियां धारण करके सृष्टि, पालन और प्रलय कार्य सम्पन्न करते हैं। ब्रह्मा ब्रह्मलोक में रहते हैं, विष्णु क्षीरसागर में निवास करते हैं और शिव कैलास वासी हैं, ये सभी श्रीकृष्ण की विभूतियां हैं ॥६४-६५॥ श्रीकृष्ण के दो रूप हैं--द्विभुज और चतुर्भुज। चतुर्भुजरूप से तो वे वैकुण्ठ में निवास करते हैं और स्वयं द्विभुज रूप से गोलोक में विराजमान हैं ॥६६॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर उसी देव के अंश रूप हैं । कोई देवता उनकी कला हैं और कोई कलांश ॥६७॥ श्रीकृष्ण ने सृष्टि करने की इच्छा से प्रकृति का निर्माण किया और निर्माण करके उसकी योनि में वीर्याधान किया ॥६८॥ उस गर्भ से एक डिम्भ उत्पन्न हुआ, जिसके भीतर से महाविराट् (नारायण) प्रकट हुए । उन्हीं को महाविष्णु जानना चाहिए, जो श्रीकृष्ण के सोलहवें अंश हैं ॥६९॥ उन्हीं जलशायी महाविष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के भाल से चन्द्रशेखर शिव प्रकट हुए ॥७०॥ महाविष्णु के वामभाग से विष्णु ही प्रकट हुए। शैलराज ! (प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण) ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि सभी प्राकृतिक कहे गये है ॥७१॥ श्रीकृष्ण से उत्पन्न प्रकृति ने अपनी चार प्रकार की मूर्ति धारण की। इसके सिवा सृष्टि कार्य के लिए लीला की भांति अपने अंश और कला द्वारा उन्होंने और भी बहुत-से रूप धारण किये ॥७२॥ श्रीकृष्ण के वाम अंग से स्वयं रासेश्वरी राधा प्रकट

---

[1] क. यज्ञेशः ।

Funding by IKS-MoE

वक्षःस्थलोद्भवा लक्ष्मी सर्वसंपत्स्वरूपिणी । शिवा तेजःसु देवानामाविर्भावं चकार सा ॥७४॥
निहत्य दानवान्सर्वान्देवेभ्यश्च श्रियं ददौ । प्राप्य कल्पान्तरे जन्म जठरे दक्षयोषितः ॥७५॥
नाम्ना सती शिवं प्राप दक्षस्तस्मै ददौ च ताम् । योगेन देहं तत्याज श्रुत्वा सा भर्तृ निन्दनम् ॥७६॥
पितृणां मानसी कन्या मेनका तव गेहिनी । ललाभ तस्या जठरे जन्म सा जगदम्बिका ॥७७॥
शिवा शिवस्य पत्नीयं शैल जन्मनि जन्मनि । कल्पे कल्पे बुद्धिरूपा ज्ञानिनां जननी परा ॥७८॥
जातिस्मरा च सर्वज्ञा सिद्धिदा सिद्धिरूपिणी । अस्या अस्थि चिताभस्म भक्त्या धत्ते
शिवः स्वयम् ॥७९॥
ददासि स्वेच्छया कन्यां देहि भद्र शिवाय च । अथवा सा स्वयं कान्तस्थानं यास्यति द्रक्ष्यसि ॥८०॥
प्राक्तनाद्यस्य या कान्ता सा तं प्राप्नोति वल्लभम् । प्रजापतेर्निबन्धं च न कोऽपि खण्डितुं क्षमः ॥८१॥
विवाहे नोत्सुकः शंभुः स्वात्मारामश्च तत्त्ववित् । तष्टुवुस्तं सुराः सर्वे तारकाख्येन पीडिताः ॥८२॥
देवानां पीडनं दृष्ट्वा ब्रह्मणा प्रार्थितो विभुः । कृपया स्वीचकाराऽऽशु कृपालुर्देवसंसदि ॥८३॥
कृत्वा प्रतिज्ञां योगीन्द्रो दृष्ट्वा क्लेशमसंख्यकम् । दुहितुस्ते तपःस्थानमाजगाम द्विजात्मकः ॥८४॥
तामाश्वस्य वरं दत्वा जगाम निजमन्दिरम् । तच्छ्रुत्वैवाऽऽययुः सर्वे सुराः शक्रादयो मुदा ॥८५॥

हुईं। उनके मुख से रागों की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती और उनके वक्षः स्थल से समस्त सम्पत्ति स्वरूपालक्ष्मी उत्पन्न हुईं। सम्पूर्ण देवताओं के तेज में उन्होंने अपने आपको शिवारूप से अभिव्यक्त किया और समस्त दानवों का वध करके उन्होंने देवताओं को राज्यलक्ष्मी प्रदान की। कल्पान्तर में दक्षपत्नी के उदर से जन्म ग्रहण करके वे ही सती नाम से प्रख्यात हुईं और शिव की पत्नी बनीं। दक्ष ने उन्हें स्वयं प्रदान किया था। परन्तु पति का निन्दा सुनने के कारण सती ने योग द्वारा शरीर त्याग कर दिया ॥७३-७६॥ तुम्हारी धर्मपत्नी मेना पितरों की मानसी कन्या है उन्हीं के गर्भ से जगदम्बिका ने जन्म ग्रहण किया है ॥७७॥ शैलराज ! शिवा प्रत्येक जन्म में और प्रत्येक कल्प में शिव की पत्नी रही है—यह श्रेष्ठ जननी ज्ञानियों की बुद्धि रूपा है ॥७८॥ यह सिद्धिदायिनी, सर्वज्ञा और सिद्धिस्वरूपा है, इसे जन्म-जन्मान्तरों का स्मरण सदा बना रहता है। इसी की अस्थिमाला एवं चिताभस्म को शिव भक्तिपूर्वक स्वयं धारण करते हैं ॥७९॥ कल्याणस्वरूप ! तुम स्वेच्छा से अपनी कन्या शिव को दे रहे हो तो दे दो, अन्यथा वह स्वयं अपने कान्त के निवासस्थान को चली जायगी और तुम देखते रह जाओगे ॥८०॥ पूर्वजन्म से जिसकी जो पत्नी है, वह उस पति को अवश्य प्राप्त करती है ब्रह्मा के इस नियम को कोई भी खण्डित नहीं कर सकता ॥८१॥ स्वात्माराम और तत्त्ववेत्ता शिव विवाह के लिए उत्सुक नहीं हैं। तारकासुर से पीडित समस्त देवों ने उनकी स्तुति की, देवों की पीड़ा को देखकर ब्रह्मा ने भी विभु (शिव) की प्रार्थना की। कृपालु शिव ने देवसभा में कृपया उसे स्वीकार कर लिया ॥८२-८३॥ विवाह की प्रतिज्ञा करके योगिराज शिव तुम्हारी पुत्री का असंख्य क्लेश देखकर तपस्या के स्थान में स्वयं ब्राह्मण का रूप धारण करके आये और उसे आश्वासन तथा वर देकर अपने स्थान को लौट गये। उस (समाचार) को सुनकर ही इन्द्र आदि सभी देवता हर्ष से आये ॥८४-८५॥

Funding by IKS-MoE

नारायणश्च भगवान्ब्रह्मा धर्मश्च सांप्रतम् । ऋषयो मुनयः सर्वे गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ॥८६॥
तत्र सर्वे मुदा युक्तैः समालोचनकर्तृभिः । प्रस्थापिता वयं शीघ्रमनृणा सा अरुन्धती ॥८७॥
तव प्रबोधने प्रीतिर्वर्धते महती सदा । संप्राप्तं शुभकार्यं च सर्वकालसुखावहम् ॥८८॥
शिवां शिवाय शैलेन्द्र स्वेच्छया चेन्न दास्यसि । भविता वा विवाहश्च भवितव्यबलेन च ॥८९॥
आगमिष्यति देवो यो नारायणसहायवान् । रत्नसाररथे कृत्वा देवानां प्रवरं वरम् ॥९०॥
योगीन्द्राणां वरेण्यं तं ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुम् । आदिमध्यान्तरहितमविकारमजं परम् ॥९१॥
वरं ददौ शिवायै स शिवश्च तपसः स्थले । न हीश्वरप्रतिज्ञातं दुर्लभं विफलं भवेत् ॥९२॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नश्वरमस्थिरम् । अहो प्रतिज्ञा दुर्लङ्घ्या साधूनामविनाशिनी ॥९३॥
एको महेन्द्रः शैलानां पक्षांश्चिच्छेद लीलया । पवनो लीलया मेरोः शृङ्गभङ्गं चकार ह ॥९४॥
के वा शैलेषु योद्धारः सुरैः सह हिमालय । पतिष्यन्ति समुद्रेषु पवनैः प्रेरिताः क्षणात् ॥९५॥
एकार्थे यदि शैलेन्द्र सर्वसंपद्विनश्यति । सर्वान्रक्षति तद्दत्त्वा विना च शरणागतम् ॥९६॥
शरणागतरक्षार्थं प्राणांश्च दातुमर्हति । पुत्रदारधनं सर्वानिति नीतिविदो विदुः ॥९७॥
दत्त्वा विप्राय स्वसुतामनरण्यो नृपेश्वरः । ब्रह्मशापाद्विमुक्तश्च ररक्ष सर्वसंपदम् ॥९८॥

भगवान् नारायण, ब्रह्मा, धर्म, सभी ऋषि-मुनि और गन्धर्व, यक्ष और राक्षस सब एक स्थान पर मिले और इस विषय पर सबने अच्छी तरह विचार किया। उन्हीं लोगों ने हमें शीघ्र यहाँ भेजा है। देवी अरुन्धती अपने कर्तव्य का पालन करके उऋण हो चुकी हैं ॥८६-८७॥ तुम्हें प्रबोधित करने में हमें अत्यन्त हर्ष होता है। तुम्हारे सामने सभी काल में सुखदायक (शिव के विवाह का) शुभ कार्य प्राप्त है ॥८८॥ हे शैलेन्द्र ! यदि तुम स्वेच्छा से शिव को पार्वती नहीं दोगे तो भवितव्यता (होनहार) के बल विवाह तो होकर ही रहेगा ॥८९॥ जो भगवान् (शिव) रत्नसारनिर्मित रथ पर योगीन्द्रों में श्रेष्ठ, ज्ञानियों के गुरु के गुरु, आदि, मध्य एवं अन्त से रहित विकार-शून्य, अजन्मा एवं देवप्रवर नारायण को साथ लेकर यहाँ आयेंगे, वही शिव तपस्या के स्थान में शिवा को वर दे चुके हैं। ईश्वर की दुर्लभ प्रतिज्ञा कभी विफल नहीं हो सकती ॥९०-९२॥ ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सभी कुछ नश्वर एवं अस्थिर है, किन्तु साधुजनों की अविनाशिनी प्रतिज्ञा दुर्लंघ्य होती है ॥९३॥ एक ही इन्द्र ने पर्वतों के पंखों को लीलापूर्वक काट दिया। पवन ने खेल-खेल में ही मेरु के शिखर को भंग कर दिया ॥९४॥ अतः हे हिमालय ! तुम्हारे पर्वतों में कौन ऐसे हैं जो देवों से युद्ध कर सकें। पवन द्वारा प्रेरित होकर समस्त पर्वत एक ही क्षण में समुद्रों में गिर जायँगे ॥९५॥ शैलराज ! एक के कारण यदि समस्त सम्पत्ति का विनाश उपस्थित हो, तो उसे देकर सब की सुरक्षा करनी चाहिए, परन्तु यह नियम शरणागत के लिए लागू नहीं है ॥९६॥ शरणागत की रक्षा के लिए तो प्राणों को दे देना भी उचित है, फिर पुत्र, स्त्री एवं धन आदि वस्तुओं की तो बात ही क्या है ? ऐसा नीति-वेत्ताओं ने कहा है ॥९७॥ महाराज अनरण्य ब्राह्मण को अपनी कन्या प्रदान कर ब्रह्मशाप से मुक्त हुए और समस्त सम्पदाओं की सुरक्षा कर सके ॥९८॥ ब्राह्मणों के हितकारी किन्तु उन्हीं के शाप में डूबकर

तमाशु बोधयामासुर्नीतिशास्त्रविदो जनाः । ब्रह्मशापनिमग्नं च ब्रह्मण्यमतिकातरम् ॥९९॥
त्वमेवं शैलराजेन्द्र सुतां दत्त्वा शिवाय च । रक्ष सर्वान्बन्धुवर्गान्वशे कुरु सुरानपि ॥१००॥
वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य पर्वतेश्वरः । पप्रच्छ नृपवृत्तान्तं हृदयेन विदूयता ॥१०१॥

हिमालय उवाच

कस्य वंशोद्भवो ब्रह्मन्ननरण्यो नृपेश्वरः । सुतां दत्त्वा स च कथमरक्षत्सर्वसंपदम् ॥१०२॥

वसिष्ठ उवाच

मनुवंशोद्भवो राजा सोऽनरण्यो नृपेश्वरः । चिरंजीवी धर्मशीलो वैष्णवो विजितेन्द्रियः ॥१०३॥
स्वायंभुवो मनुः पूर्वं ब्रह्मपुत्रोऽतिधार्मिकः । राज्यं चकार धर्मेण युगानामेकसप्ततिम् ॥१०४॥
ततो जगाम वैकुण्ठं सहितः शतरूपया । संप्राप्य दास्यं सांनिध्यं हरेर्दासो बभूव ह ॥१०५॥
मनुर्बभूव तत्पश्चात्स्वयं स्वारोचिषो महान् । स्वारोचिषे गते शैल बभूव मनुरुत्तमः ॥१०६॥
उत्तमे निर्गते धर्मी तामसो मनुरेव च । ततो मनुर्बभूवात्र रैवतो ज्ञानिनां वरः ॥१०७॥
चक्षुषश्च ततो ज्ञेयः श्राद्धदेवश्च सप्तमः । सावर्णिरष्टमो ज्ञेयः श्रीसूर्यतनयो महान् ॥१०८॥
चैत्रवंशोद्भवो राजा पुराऽऽसीत्सुरथो भुवि । नवमो दक्षसावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिको दश ॥१०९॥

अत्यन्त कातर अनरण्य को नीतिशास्त्र के वेत्ताओं ने शीघ्र कर्तव्य का बोध कराया और उसका पालन करके वे संकट से मुक्त हुए ॥९९॥ शैलराजाधिराज ! उसी प्रकार तुम भी शिव को अपनी कन्या सौंपकर समस्त बन्धु-वर्गों की रक्षा करो और देवों को अपने अधीन बना लो ॥१००॥ वसिष्ठ की ऐसी बात सुनकर पर्वतराज हिमालय बहुत हँसे और व्यथित हृदय से राजा (अनरण्य) का वृत्तान्त पूछा ॥१०१॥

हिमालय बोले—ब्रह्मन् ! महाराज अनरण्य किस वंश में उत्पन्न हुए थे और किस भाँति अपनी कन्या देकर समस्त सम्पत्ति की उन्होंने रक्षा की थी ? ॥१०२॥

वसिष्ठ बोले--महाराज अनरण्य का जन्म मनु-वंश में हुआ था। वे चिरजीवी, धार्मिक स्वभाव वाले वैष्णव एवं जितेन्द्रिय थे ॥१०३॥ पहले मनु का नाम स्वायम्भुव है जो ब्रह्मा के पुत्र तथा अति धार्मिक राजा थे। उन्होंने एकहत्तर युग पर्यन्त धर्ममय राज्य किया था ॥१०४॥ अनन्तर अपनी शतरूपा पत्नी के साथ वैकुण्ठ चले गये, वहाँ हरि का दास्य एवं सामीप्य पाकर उनके सेवक हो गये ॥१०५॥ शैलराज ! तत्पश्चात् महान स्वारोचिष मनु हुए, उनके चले जाने पर उत्तम नामक मनु हुए ॥१०६॥ उसके उपरान्त धर्ममूर्ति तामस मनु हुए और उनके अनन्तर ज्ञानिश्रेष्ठ रैवत मनु हुए ॥१०७॥ तत्पश्चात् छठे चाक्षुष, सातवें श्राद्धदेव और आठवें सूर्यपुत्र महान् सावर्णि मनु हुए जो पूर्व समय में भूतल पर चैत्रवंश में उत्पन्न राजा सुरथ हुए थे । नवम दक्षसावर्णि दसम ब्रह्मसावर्णि, ग्यारहवें श्रेष्ठ मनु धर्मसावर्णि और बारहवें रुद्रसावर्णि मनु हुए, जो भगवान् विष्णु के

एकादशो मनुश्रेष्ठो धर्मसावर्णिरुच्यते । ततश्च रुद्रसावर्णिर्विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ॥११०॥
तत्परो देवसावर्णिरिन्द्रसावर्णिकस्ततः । इत्येवं कथिता बन्धो मनवश्च चतुर्दश ॥१११॥
एतेषु समतीतेषु बभूव ब्रह्मणो दिनम् । इन्द्रसावर्णिवृत्तान्तं सर्वं मत्तो निशामय ॥११२॥
मनूनां प्रवरो धर्मी शुद्धभक्तो गदाभृतः । चकार राज्यं धर्मेण युगानामेकसप्ततिम् ॥११३॥
राज्यं दत्त्वा सुरेन्द्राय[1] जगाम तपसे वनम् । सुरेन्द्रस्य[2] सुतः श्रीमाञ्छीनिकेतुर्महाबलः ॥११४॥
तस्य पुत्रो महायोगी पुरीषतरुरेव च । तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी गोकामुख इति स्मृतः ॥११५॥
वृद्धश्रवाः सुतस्तस्य तत्पुत्रो भानुरेव च । पुण्डरीकः सुतस्तस्य तत्पुत्रो जिह्वलस्तथा ॥११६॥
जिह्वलस्य सुतः शृङ्गी तत्पुत्रो भीम एव च । तत्पुत्रोऽपि यशश्चन्द्रो यशसा च शशी जितः ॥११७॥
तत्कीर्तिं निर्मलां सन्तो गायन्ति संततं सुराः । तस्य पुत्रो वरेण्यश्च पुरारण्यश्च तत्सुतः ॥११८॥
तत्पुत्रो धार्मिकः श्रीमान्धरारण्यश्च[1] एव च । तत्पुत्रो मङ्गलारण्यस्तपस्वी ज्ञानिनां वरः ॥११९॥
अपुत्रको नृपश्रेष्ठस्तपसे पुष्करं गतः । सुचिरं च तपस्तप्त्वा वरं लब्ध्वा महेश्वरात् ॥१२०॥
संप्राप्य वैष्णवं पुत्रमनरण्यं जितेन्द्रियम् । दत्त्वा तस्मै च राज्यं च जगाम तपसे वनम् ॥१२१॥
अनरण्यो नृपश्रेष्ठः सप्तद्वीपमहीपतिः । चकार यज्ञशतकं भृगुणा च पुरोधसा ॥१२२॥

भक्त एवं इन्द्रियसंयमी थे ॥१०८-११०॥ उनके अनन्तर देवसावर्णि और चौदहवें इन्द्रसावर्णि मनु हुए । बंधो! इस प्रकार मैंने तुम्हें चौदहों मनु को बता दिया, जिनकी समाप्ति होने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है । अब इन्द्रसावर्णि का समस्त वृत्तान्त मुझसे सुनो ॥१११-११२॥ इन्द्रसावर्णि मनुओं में श्रेष्ठ, धर्मात्मा एवं गदाधारी (विष्णु) के शुद्ध भक्त थे, जिन्होंने इकहत्तर युग के समय तक धर्म से राज्य किया था ॥११३॥ अनन्तर अपने पुत्र सुरेन्द्र को राज्य सौंप कर स्वयं तप करने के लिए जंगल में चले गये । सुरेन्द्र के महाबली एवं श्रीमान् श्रीनिकेतु पुत्र हुए, उनके पुत्र महायोगी पुरीषतरु और पुरीषतरु के अतितेजस्वी पुत्र गोकामुख हुए ॥११४-११५॥ उनके वृद्धश्रवा, वृद्धश्रवा के भानु, भानु के पुण्डरीक, पुण्डरीक के जिह्वल, जिह्वल के शृङ्गी, शृङ्गी के भीम और भीम के यशश्चन्द्र पुत्र हुए, जिन्होंने अपने यश द्वारा शशी चन्द्रमा को जीत लिया था ॥११६-११७॥ उनकी निर्मल कीर्ति का गान सन्त एवं देवगण निरन्तर किया करते हैं । उनके पुत्र वरेण्य, वरेण्य के पुत्र पुरारण्य और उनके धरारण्य नामक श्रीमान् एवं धार्मिक पुत्र हुए, उनके मङ्गलारण्य पुत्र हुए जो तपस्वी एवं ज्ञानिश्रेष्ठ थे ॥११८-११९॥ नृपश्रेष्ठ मङ्गलारण्य पुत्रहीन होने के कारण पुष्कर में तप करने के लिए गये । वहाँ अति चिरकाल तक तप करके शिव से वरदान प्राप्त किया, जिसके फलस्वरूप उन्हें वैष्णव एवं जितेन्द्रिय अनरण्य नामक पुत्र की प्राप्ति हुई । वे अनरण्य को राज्य सौंप कर वन में तप करने के लिए चले गये ॥१२०-१२१॥ नृपश्रेष्ठ अनरण्य सातों द्वीपों के राजा हुए, जिन्होंने भृगु महर्षि को पुरोहित बनाकर उनके द्वारा

१क. सुचन्द्रा° । २क. सुचन्द्र। १क. वरा° ।

Funding by IKS-MoE

तुच्छं मत्वाऽऽशु शक्रत्वं न लेभे नश्वरं सुधीः । लीलया च जितः शक्रो लीलया च जितो बलिः ॥१२३॥
जिताश्च दानवेन्द्रा वै ज्वलता स्वेन तेजसा। बभूवुः शतपुत्राश्च राज्ञस्तस्य हिमालय ॥१२४॥
कन्यैका सुन्दरी रम्या पद्मा पद्मालयासमा । सा कन्या यौवनस्था च बभूव पितृमन्दिरे ॥१२५॥
चारं प्रस्थापयामास वराय नृपतीश्वरः । एकदा पिप्पलादश्च गन्तुं स्वाश्रममुत्सुकः ॥१२६॥
तपःस्थाने निर्जने च गन्धर्वं स ददर्श ह । स्त्रीषु निमग्नचित्तं च शृङ्गाररससागरे ॥१२७॥
कामादतीव मत्तं च न जानन्तं दिवानिशम् । दृष्ट्वा तं मुनिशार्दूलः सकामश्च बभूव ह ॥१२८॥
ततः[1] सुभग्नचित्तः संश्चिन्तयन्दारसंग्रहम् । एकदा पुष्पभद्रायां स्नातुं गच्छन्मुनीश्वरः ॥१२९॥
ददर्श पद्मां युवतीं पद्मामिव मनोरमाम् । केयं कस्येति पप्रच्छ समीपस्थाञ्जनान्मुनिः ॥१३०॥
जना निवेदनं चक्रुः पद्माऽनरण्यकन्यका । मुनिः स्नात्वाऽभीष्टदेवं संपूज्य राधिकेश्वरम् ॥१३१॥
जगाम कामी भिक्षार्थमनरण्यसभाजिरे । राजा शीघ्रं मुनिं दृष्ट्वा प्रणनाम भयाकुलः ॥१३२॥
मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तितः । कामात्सर्वं गृहीत्वा च ययाचे कन्यकां मुनिः ॥१३३॥
मौनी बभूव नृपतिः किंचिन्निर्वक्तुमक्षमः । मुनिः पुनर्ययाचे तं कन्यां देहीति मे नृपः ॥१३४॥

सौ यज्ञों का अनुष्ठान सुसम्पन्न किया था ॥१२२॥ उस विद्वान् ने नाशवान् इन्द्रपद को तुच्छ समझ कर उसको प्राप्त नहीं किया। उसने इन्द्र एवं बलि, दोनों को लीलापूर्वक जीत लिया ॥१२३॥ उसके जाज्वल्यमान तेज से दानवराज पराजित हो गये। हिमालय ! उस राजा के सौ पुत्र और पद्मा नामक एक सुन्दरी कन्या हुई, जो लक्ष्मी के समान थी। पिता के घर में रहकर वह कन्या जब युवावस्था को प्राप्त हुई, तो महाराज ने उसके वर के लिए चारों ओर दूतों को भेजा। एक बार महर्षि पिप्पलाद अपने आश्रम में जाने को उत्सुक थे। उस निर्जन तपःस्थान में उन्होंने एक गन्धर्व को देखा, जो स्त्रियों के मध्य रहकर शृङ्गार रस के सागर में निमग्न हो रहा था ॥१२४-१२७॥ काम से अत्यन्त मतवाला होने के कारण उसे दिन-रात का कुछ भी ज्ञान नहीं था। उसे देखकर मुनिश्रेष्ठ के मन में काम उत्पन्न हो गया, और उसी दिन से वे भग्नचित्त (खिन्न) रह कर स्त्री-प्राप्ति (विवाह) की चिन्ता में रहने लगे। एक बार मुनीश्वर (पिप्पलाद) पुष्पभद्रा नदी में स्नान करने के लिए जा रहे थे, (मार्ग में) उन्होंने राजकुमारी पद्मा को देखा, जो युवावस्था सम्पन्न एवं कमला के समान ही सुन्दरी थी। उन्होंने समीप के लोगों से पूछा कि—यह कौन है और किसकी कन्या है ॥१२८-१३०॥ लोगों ने बताया कि—यह राजा अनरण्य की पद्मा नामक पुत्री है। अनन्तर स्नान और अभीष्ट देव राधिकेश्वर की अर्चना करके कामी मुनि भिक्षा के निमित्त अनरण्य के सभा-भवन में गये। मुनि को देखकर राजा ने भयभीत होकर शीघ्रता से उन्हें प्रणाम किया और मधुपर्क आदि सादर उन्हें निवेदन करके भक्ति से उनकी पूजा की। मुनि ने बड़े चाव से उनकी सभी सेवा स्वीकार करके उनसे कन्या की याचना की ॥१३१-१३३॥ राजा मौन हो गये, कुछ भी बोलने में असमर्थ रहे।

---

[1] क. तपःसु भग्नचित्तश्च चि° ।

अथवा भस्मसात्सर्वं करिष्यामि क्षणेन च । सर्वे बभूवुराच्छन्ना गणाश्च तेजसा मुनेः ॥१३५॥
रुरोद राजा सगणो दृष्ट्वा वृद्धं जरातुरम् । महिष्यो रुरुदुः सर्वा इतिकर्तव्यमक्षमाः ॥१३६॥
मूर्छां प्राप महाराज्ञी कन्यामाता शुचाऽऽकुला । पण्डितो नीतिशास्त्रज्ञो बोधयामास भूमिपम् ॥१३७॥
महीषीं च नृपसुतान्कन्यकानीतिमुत्तमाम् । अद्य वाऽपि दिनान्ते वा दातव्या कन्यका नृप ॥१३८॥
पराय विप्रादन्यस्मै कस्मै वा दातुमर्हसि । सत्पात्रं ब्राह्मणादन्यं न पश्यामि जगत्त्रये ॥१३९॥
सुतां दत्त्वा च मुनये रक्षस्व सर्वसंपदम् । राजन्कन्यानिमित्तेन सर्वसंपत्प्रणश्यति ॥१४०॥
सर्वं रक्षति तत्त्यक्त्वा विना तं शरणागतम् । राजा प्राज्ञवचः श्रुत्वा विलप्य च मुहुर्मुहुः ॥१४१॥
कन्यां सालंकृतां कृत्वा मुनीन्द्राय ददौ किल । कान्तां गृहीत्वा स मुनिर्मुदितः स्वालयं ययौ ॥१४२॥
राजा सर्वान्परित्यज्य जगाम तपसे शुचा । भर्तुश्च दुहितुः शोकात्प्राणांस्तत्याज सुन्दरी ॥१४३॥
पुत्राः पौत्राश्च भृत्याश्च मूर्च्छां प्रापुर्नृपं विना । अनरण्यस्तपस्तप्त्वा चिन्तयन्राधिकेश्वरम् ॥१४४॥

मुनि ने पुनः उनसे याचना की—"राजन् ! मुझे अपनी कन्या प्रदान करो, नहीं तो क्षण मात्र में तुम्हारा सब कुछ भस्म कर दूंगा ।" उस समय मुनि के तेज से राजा के सभी सेवक आदि आच्छन्न हो गये थे। उस मुनि को वृद्ध एवं जरातुर देखकर गण समेत राजा रोदन करने लगे। सभी रानियाँ भी रोदन करने लगीं। इस समय क्या करना चाहिए, इसका निर्णय करने की शक्ति किसी में नहीं रह गई ॥१३४-१३६॥ महारानी, जो कन्या की माता थी, उस शोक से व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गयी। नीतिशास्त्र के ज्ञाता पण्डित ने राजा, रानी और राजकुमारों और कन्या को उत्तम नीति का उपदेश देते हुए कहा—"हे नृप ! आज या किसी दूसरे दिन कन्या का दान तो दिया ही जायगा। इस ब्राह्मण को छोड़कर और किसको आप कन्या देना उचित समझते हैं ? मैं तो तीनों लोकों में इस ब्राह्मण के सिवा दूसरे किसी को कन्यादान का उत्तम पात्र नहीं देखता हूँ। आप मुनि को कन्यादान करके समस्त सम्पत्ति की रक्षा कीजिये। अन्यथा राजकुमारी के कारण समस्त सम्पदा नष्ट हो जाएगी ॥१३७-१४०॥ शरणागत के सिवा दूसरे किसी भी एक मनुष्य का त्याग करके सर्वस्व की रक्षा कीजिए। राजा ने विद्वान् की बात सुनकर बार-बार विलाप करके अलंकारों से समन्वित कन्या को मुनीन्द्र के हाथ में दे दिया। मुनि भी कान्ता को लेकर हर्ष से आश्रम को लौट गए ॥१४१-१४२॥ राजा भी शोक के कारण सबको छोड़कर तप करनें के लिए चले गये और उनकी सुन्दरी पत्नी ने भी पति और पुत्री के शोक से अपने प्राणों का त्याग कर दिया ॥१४३॥ राजा के विना (उनके) पुत्रों, पौत्रों और सेवकों को मूर्च्छा आ गई। राजा अनरण्य राधिकेश्वर श्रीकृष्ण का चिन्तन करते हुए तप करके गोलोक को चले गये। तब राजा का ज्येष्ठ

Funding by IKS-MoE

गोलोकनाथं संसेव्य गोलोकं च जगाम ह। बभूव कीर्तिमान्राजा[1] ज्येष्ठपुत्रो नृपस्य च ॥
पुत्रवत्पालयामास प्रजाः सर्वा महीतले ॥१४५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाकृष्णसं०-
एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

अथानरण्यस्य कन्या सिषेवे भक्तितो मुनिम् । कर्मणा मनसा वाचा लक्ष्मीर्नारायणं यथा ॥१॥
एकदा स्वर्णदीं स्नातुं गच्छन्तीं सस्मितां सतीम् । ददर्श पथि धर्मश्च मायया नृपलिङ्गकः ॥२॥
चारुरत्नरथस्थश्च रत्नालंकारभूषितः । नवीनयौवनश्रीमान्कामदेवसमप्रभः ॥३॥
दृष्ट्वा तां सुन्दरीं रम्यामुवाच मायया विभुः । विज्ञातुमन्तस्तत्त्वं च तस्याश्च मुनियोषितः ॥४॥

पुत्र कीर्तिमान् राजा हुआ । वह भूतल पर के सभी प्रजाओं का पुत्र की भाँति पालन करने लगा ॥१४४-१४५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्म-खण्ड में नारायण-नारद-संवाद में राधाकृष्ण-संवाद के प्रकरण में इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४१॥

अध्याय ४२

सती का शरीर-त्याग

वसिष्ठ बोले—राजा अनरण्य की उस कन्या ने मनसा, वाचा, कर्मणा मुनि की उसी तरह सेवा की जैसे लक्ष्मी ने नारायण की सेवा की थी । एक बार गंगा को जाती हुई उस मुसकराती हुई कन्या को देखकर राजा का वेश धारण किये हुए साक्षात् धर्म ने उसके मन के भावों को जानने के लिए पवित्र भावना से ही कामी पुरुष की भाँति कुछ बातें कहीं, जो सुन्दर रत्नरथ पर अवस्थित, रत्नालंकारों से विभूषित और नवीन यौवन की श्री से कामदेव के समान कांतिमान् थे। उस रमणीय एवं सुन्दरी मुनि-पत्नी का अभ्यन्तर भाव जानने के लिए धर्म ने कहा ॥१-४॥

---

[1] क० राज्ये ज्ये° ।

धर्म उवाच

अयि सुन्दरि लक्ष्मीव राजयोग्ये मनोहरे । अतीव यौवनस्थे च कामिनि स्थिरयौवने ।।५।।
जरातुरस्य वृद्धस्य समीपे त्वं न राजसे । चन्दनागुरुसंलिप्ता राजसे राजवक्षसि ।।६।।
विप्रं तपःसु निरतं सत्यज्ञं मरणोन्मुखम् । विहाय पश्य राजेन्द्रं रतिशूरं स्मरातुरम् ।।७।।
प्राप्नोति सुन्दरी पुण्यात्सौन्दर्यं पूर्वजन्मनः । सफलं तद्भवेत्सर्वं रसिकालिङ्गनेन च ।।८।।
सहस्रसुन्दरीकान्तं कामशास्त्रविशारदम् । किंकरं कुरु मां कान्ते परित्यक्ष्यामि ता अपि ।।९।।
निर्जले निर्जने रम्ये शैले शैले नदे ह्रदे । पुष्पोद्याने पुष्पिते च सुगन्धिपुष्पवायुना ।।१०।।
मलये चन्दनारण्ये चारुचन्दनवायुना । विहरिष्यामि कामेन कामिन्या च त्वया सह ।।११।।
कामज्वरेण दग्धायाः शान्ति कर्तुमहं क्षमः । विहरस्व मया सार्धं जन्मेदं सफलं कुरु ।।१२।।
इत्येवमुक्तवन्तं तं स्वरथादवरुह्य च । ग्रहीतुमुत्सुकं हस्ते तमुवाच पतिव्रता ।।१३।।

पद्मोवाच

दूरं गच्छ गच्छ दूरं पापिष्ठ भूमिपाधम । मां चेत्पश्यसि कामेन सद्यो भस्म भविष्यसि ।।१४।।
पिप्पलादं मुनिश्रेष्ठं तपसा पूतविग्रहम् । विहाय त्वां भजिष्यामि स्त्रीजितं रतिलम्पटम् ।।१५।।

धर्म बोले—हे सुन्दरि ! तुम लक्ष्मी की भाँति अति मनोहारिणी हो। हे कामिनि ! तुम्हारी यह यौवनावस्था और स्थिर यौवन राजा के योग्य है । इस कारण उस जरातुर एवं वृद्ध के साथ रहने में तुम्हारी शोभा नहीं होती है। चन्दन, अगुरु का अनुलेपन करके तुम्हें राजा के अंक में सुशोभित होना चाहिए ।।५-६।। अब उस मरणोन्मुख ब्राह्मण का, जो सत्य-प्रतिज्ञ और तप करने में सतत लीन रहता है, त्याग करके मुझ राजेन्द्र की ओर देखो । मैं रति करने में शूर हूँ और इस समय कामातुर हो गया हूँ ।।७।। पूर्वजन्म के पुण्यवश सुन्दरी सौन्दर्य प्राप्त करती है और उसकी रसिक वर के आलिंगन से सब कमनायें पूरी होती हैं ।।८।। हे प्रिये ! मुझ कामशास्त्र-विशारद के पास सहस्रों सुन्दरियाँ हैं। मैं उन सबका त्याग कर दूंगा। कान्ते ! मुझे दास बना लो ।।९-१०।। निर्जल, निर्जन, रमणीक स्थान में, पर्वतों पर, नदियों, नदों और पुष्प-विकसित वाटिकाओं में, जहाँ पुष्पों की सुगन्ध भरे वायु के झोंके आते हों और मलय पर्वत के चारु चन्दन के वायु से पूरित चन्दन वन में तुम कामनी के साथ मैं चाव से विहार करूंगा। काम-ज्वर से दग्ध हो रही तुम्हारी ज्वाला को शान्ति प्रदान करने में मैं समर्थ हूं। तुम मेरे साथ विहार करो और अपने इस जन्म को सफल करो ।।११-१२।। इतना कहकर वे रथ से उतर पड़े और उस राजकुमारी का हाथ पकड़ना चाहा । इस पर वह पतिव्रता उन्हें फटकारती हुई बोली ।।१३।।

पद्मा बोली—अधम राजा ! तू महान् पापी है, अतः दूर हट । अब यदि कामवश मेरी ओर देखेगा, तो तुरन्त भस्म हो जायेगा ।।१४।। तपस्या के कारण पवित्र देह वाले मुनिश्रेष्ठ पिप्पलाद को छोड़कर क्या मैं रति-

स्त्रीजितस्पर्शमात्रेण सर्वं पुण्यं प्रणश्यति। न भूमौ पातकी पापात्पापिनां स्त्रीजितात्परः ॥१६॥
मां मातरं च स्त्रीभावं कृत्वा येन ब्रवीषि च। भविष्यति क्षयस्तेन कालेन मम शापतः ॥१७॥
श्रुत्वा धर्मः सतीशापं नृपमूर्तिं विहाय च। धृत्वा स्वमूर्तिं देवेशः कम्पमान उवाच ताम् ॥१८॥

धर्म उवाच

मातर्जानीहि मां धर्मं धर्मज्ञानां गुरोर्गुरुम्। परस्त्रीमातृबुद्धिं च कुर्वन्तं सन्ततं सति ॥१९॥
अहं तवान्तर्विज्ञातुमागतस्तव संनिधिम्। युष्माकं च मनो जाने तथाऽपि दैवबोधितः[1] ॥२०॥
कृतं मे दमनं साध्वि न विरुद्धं यथोचितम्। शास्तिः समुत्पथस्थानामीश्वरेण विनिर्मिता ॥२१॥
धर्मं स्वधर्मं विज्ञातुं कालं कलयितुं क्षमः। विधातारं संविधातुं तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥२२॥
संहर्तुं यः क्षमः काले संहर्तारं भवं विभुः। स्रष्टारं लीलया स्रष्टुं तस्मै० ॥२३॥
शत्रुं विधार्तुं मित्रं च सुप्रीतिं कलहं क्षमः। स्रष्टुं नष्टुं तदेवं च त० ॥२४॥
शापं प्रदातुं सर्वांश्च सुखःदुखवरान्क्षमः। संपदं विपदं यो हि त० ॥२५॥
प्रकृतिर्निर्मिता येन महाविष्णुश्च निर्मितः। ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यास्त० ॥२६॥

लम्पट के साथ विहार करूँ? जो स्त्रियों द्वारा सदा पराजित है ॥१५॥ तुझे यह मालूम होना चाहिये कि—स्त्रीजित पुरुष के स्पर्श मात्र से ही समस्त पुण्य नष्ट हो जाता है। भूमि पर समस्त पापियों में स्त्रीजित से बढ़कर कोई पातकी नहीं ॥१६॥ जिसलिए तू मुझ माता में स्त्रीभाव करके मुझसे बोल रहा है, अतः मेरे शाप से समय पर तेरा क्षय हो जायगा ॥१७॥ पतिव्रता का शाप सुनकर ही धर्म ने राजा का स्वरूप त्याग कर अपना स्वरूप धारण किया और काँपते हुए उस देवेश्वर ने (पद्‌मा) से कहा ॥१८॥

धर्म बोले—माता मुझे! धर्मज्ञों के गुरु का गुरु धर्म जानो! सती! मैं परायी स्त्री में निरन्तर मातृ-बुद्धि रखता हूँ ॥१९॥ मैं तुम्हारे मन की बात जानने के लिए तुम्हारे पास आया था। यद्यपि आप जैसो सतियों का मन कैसा होता है, यह मैं जानता था, तथापि दैव से प्रेरित होकर परीक्षा लेने के लिए चला आया। साध्वी! तुमने मेरा दमन करके उचित ही किया है, विरुद्ध नहीं। अनीति मार्ग अपनाने वाले पर शासन करना ईश्वर का विधान है ॥२०-२१॥ जो धर्म को अपना धर्म मनाने, काल की भी कलना (गणना) तथा स्रष्टा की भी सृष्टि करने में समर्थ हैं, उन कृष्ण को नमस्कार है ॥२२॥ जो समय पर संहर्ता का संहार तथा स्रष्टा का सर्जन लीला की भांति करने में समर्थ हैं, उन कृष्ण को नमस्कार है ॥२३॥ जो शत्रु को मित्र बना सकते हैं और गाढ़ी प्रीति को कलह रूप में परिणित कर सकते हैं तथा जो सृष्टि एवं विनाश करने में समर्थ हैं, उन कृष्ण को नमस्कार है ॥२४ जो सभी को शाप, सुख-दुःख, वरदान एवं सम्पदा और विपदा देने में समर्थ हैं, उन कृष्ण को नमस्कार है ॥२५॥ जिन्होंने प्रकृति, महाविष्णु एवं ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि का सर्जन किया है, उन कृष्ण को

---

[1] क. वबाधि°।

येन शुक्लीकृतं क्षीरं जलं शीतं कृतं पुरा । दाहीकृतो हुताशश्च तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥२७॥
अतितेजः समुत्थाय तेजोरूपाय मूर्तये । गुणश्रेष्ठनिर्गुणाय त० ॥२८॥
सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वेषामन्तरात्मने । सर्वबन्धुस्वरूपाय त० ॥२९॥
इत्युक्त्वा पुरतस्तस्यास्तस्थौ धर्मो जगद्गुरुः । सा साध्वी तं च विज्ञाय सहसोवाच पर्वत ॥३०॥

पद्मोवाच

त्वमेव धर्म सर्वेषां साक्षी च सर्वकर्मणाम् । सर्वान्तरेषु सर्वात्मा सर्वज्ञः सर्वतत्त्ववित् ॥३१॥
कथं मनो मे विज्ञातुं विडम्बयसि किंकरीम् । यत्कृतं त्वत्कृते ब्रह्मन्नपराधो बभूव मे ॥३२॥
त्वं च शप्तो मयाऽऽज्ञानात्स्त्रीस्वभावात्क्रुधा विभो । का व्यवस्था भवेत्तस्य चिन्तयामीति सांप्रतम् ॥३३॥
आकाशोऽसौ दिशः सर्वा यदि नश्यन्ति वायवः । तथाऽपि साध्वीशापस्तु न नश्यति कदाचन ॥३४॥
त्वं च नष्टो भवसि चेत्सृष्टिनाशो भवेत्तदा । इतिकर्तव्यतामूढा तथाऽपि त्वां वदाम्यहम् ॥३५॥
सत्ये पूर्णश्चतुष्पादैः पौर्णमास्यां यथा शशी । विराजसे देवराज सर्वकालं दिवानिशम् ॥३६॥
पादक्षयश्च त्रेतायां भगवन्भविता तव । पादौ परौ द्वापरे च तृतीयश्च कलौ विभो ॥३७॥

नमस्कार है। ॥२६॥ जिन्होंने पूर्वकाल में क्षीर को शुक्ल, जल को शीतल और अग्नि को जलाने की शक्ति से
सम्पन्न किया, उन कृष्ण को नमस्कार है ॥२७॥ जो अत्यन्त तेजस्वी रूप में उठकर तेज का मूर्तिमान् रूप दिखायी
देते हैं, उन गुणश्रेष्ठ एवं निर्गुण कृष्ण को नमस्कार है ॥२८॥ जो सर्वरूप, सर्वबीजस्वरूप, सब के अन्त-
रात्मा और सब के बन्धु हैं, उन कृष्ण को नमस्कार है ॥२९॥ हे पर्वत ! इतना कह कर जगद्गुरुधर्म उस राज-
कुमारी के सामने खड़े हो गये और वह पतिव्रता भी उन्हें पहचान कर सहसा बोल उठी ॥३०॥

पद्मा बोली—तुम्हीं सबके धर्म, समस्त कर्मों के साक्षी, सबके भीतरी अन्तरात्मा सर्वज्ञ एवं समस्त
तत्वों के वेत्ता हो, तो फिर मुझदासी के मन को जानने के लिए ऐसी बिडम्बना क्यों की? ब्रह्मन् ! मैंने तुम्हें जो कहा है, वह
मेरा अपराध हुआ। विभो! मैंने क्रोध, अज्ञान, और स्त्री स्वभाव के कारण ही तुम्हें शाप दिया है। इसलिए अब सोच रही हूँ
कि—इस (शाप) की क्या व्यवस्था होगी ? ॥३१-३३॥ यह आकाश, समस्त दिशाएँ और वायु-समूह नष्ट हो सकते हैं,
किन्तु पतिव्रता का शाप कभी भी नष्ट नहीं हो सकता। और तुम्हारे नष्ट होने से सृष्टि का नाश निश्चित
है—यह सोच कर मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो रही हूँ तथापि आपसे कहती हूँ कि हे देवराज ! सत्ययुग में पूर्णिमा के
चन्द्रमा की भाँति आप चारों चरणों से सभी समय दिन-रात सुशोभित रहोगे, पर हे भगवन् ! त्रेतायुग में तुम्हारा
एक चरण क्षीण हो जायगा। हे विभो ! द्वापर युग में दो चरण और कलियुग में तीन चरण नष्ट रहेंगे। कलि

कलिशेषे शेषपादस्तवाऽऽच्छन्नो भविष्यति। पुनः सत्ये समायाते परिपूर्णो भविष्यसि ॥३८॥
सत्ये सर्वव्यापकस्त्वं तदन्येषु च कुत्रचित् । यत्र स्थानं तवाऽऽधारो वदामि श्रूयतां विभो ॥३९॥
वैष्णवेषु च सर्वेषु यतिषु ब्रह्मचारिषु । पतिव्रतासु प्राज्ञेषु वानप्रस्थेषु भिक्षुषु ॥४०॥
नृपेषु धर्मशीलेषु सत्सु सद्वैश्यजातिषु । द्विजसेविषु शूद्रेषु सत्संसर्गस्थितेषु च ॥४१॥
एषु त्वं सततं पूर्णो धर्मराज विराजसे । युगे युगे तवाऽऽधारा यत्र पुण्यतमा जनाः ॥४२॥
अश्वत्थवटबिल्वेषु तुलसीचन्दनेषु च । दीक्षापरीक्षाशपथगोष्ठगोष्पदभूमिषु ॥४३॥
देवार्हेषु[1] च पुष्पेषु विद्यमानोऽसि शाखिषु । देवालयेषु तीर्थेषु सतां शश्वद्गृहेषु च ॥४४॥
वेदवेदाङ्गश्रवणे जलेषु च सभासु च । श्रीकृष्णगुणनामोक्तश्रुतिगीतस्थलेषु च ॥४५॥
व्रतपूजातपोन्याययज्ञसाक्ष्यस्थलेषु च । गवां गृहेषु गोष्वेव विद्यमानो हि पश्यसि ॥४६॥
कृशता ते न भविता धर्म तेषु स्थलेषु च । एतदन्येषु कृशता यदगम्यं च तच्छृणु ॥४७॥
पुंश्चलीषु च सर्वासु गृहेषु नरघातिनाम् । नरघातिषु नीचेषु मूर्खेषु च खलेषु च ॥४८॥
देवतागुरुविप्रेष्टपाल्यानां धनहारिषु । असन्नरेषु धूर्तेषु चौरेषु रतिभूमिषु ॥४९॥
दुरोदरसुरापानकलहानां स्थलेषु च । शालग्रामसाधुतीर्थपुराणरहितेषु च ॥५०॥

के शेष समय में तुम्हारा शेष (एक) चरण आच्छादित रहेगा जो सत्ययुग के अवसर पर पुनः परिपूर्ण हो जायगा ॥३४-३८॥ हे विभो! सत्ययुग में तुम सर्वव्यापक रहोगे और अन्य युगों में कहीं-कहीं। अब तुम्हारा रहने का स्थान बता रही हूँ, सुनो! सभी प्रकार के वैष्णवों, संन्यासियों, ब्रह्मचारियों, पतिव्रताओं, प्राज्ञों, वानप्रस्थों, योगियों, धर्मशीलराजाओं, सज्जनों, सज्जन वैश्यों, द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य) की सेवा करने वाले शूद्रों और सत्संसर्ग में रहने वालों में तुम पूर्णरूप से विराजमान रहोगे। युग-युग में जहाँ पुण्यात्मा लोग रहेंगे, वे आपके आधारस्थान बने रहेंगे ॥३९-४२॥ पीपल, बरगद, बिल्ववृक्ष, तुलसी, चन्दन इन वृक्षों पर, दीक्षा, परीक्षा, शपथ, गोशाला और गोपद-भूमियों में देवों के योग्य पुष्पों और वृक्षों में विद्यमान रहोगे। देवालयों, तीर्थों, सज्जनों के घरों में निरन्तर तुम्हारा निवास होगा ॥४३-४४॥ वेद-वेदाङ्गों के श्रवण-काल में, जल में, सभाओं में, श्रीकृष्ण के नाम तथा गुणों के कीर्तन, श्रवण तथा गान के स्थानों में, व्रत, पूजा, तप, न्याय, यज्ञ एवं साक्षी के स्थानों में और गौओं के गृहों (तथा गौओं) में सदैव विद्यमान रहोगे। हे धर्म! इन स्थलों में तुम में कृशता नहीं आयेगी और इनसे भिन्न स्थानों में तुम्हारी कृशता देखी जायेगी। अब जो स्थान तुम्हारे लिए अगम्य है उसे भी सुन लो ॥४५-४७॥ सभी पुंश्चल स्त्रियों, नरघाती मनुष्यों के घरों में, नरघातियों में, नीचों, मूर्खों, दुष्टों तथा देवता, गुरु, ब्राह्मण, इष्टदेव एवं पालनीय मनुष्यों के धन चुराने वालों में, आचरणभ्रष्ट मनुष्यों, धूर्तों, चोरों, रति-स्थानों में, जुआ, मदिरापान और कलह के स्थानों में, शालग्राम, साधु, तीर्थ एवं पुराण रहित स्थानों में, लुटेरों के स्नेह में, विवादों

---

[1] ख. विवाहेषु।

Funding by IKS-MoE

दस्युस्नेहेषु वादेषु तालच्छायासु गर्विषु । असीजीविमषीजीविदेवलग्रामयाजिषु ॥५१॥
वृषवाहस्वर्णकारजीवहिंसोपजीविषु । भर्तृनिन्दितनारीषु स्त्रीजितेषु च पुंसु च ॥५२॥
दीक्षासंध्याविष्णुभक्तिविहीनेषु द्विजेषु च । स्वाङ्गकन्याविक्रयिषु स्वयोषिद्विक्रयेष्वथ ॥५३॥
शालग्रामसुरग्रन्थभूमिविक्रयिषु प्रभो । मित्रद्रोहिकृतघ्नेषु सत्यविश्वासघातिषु ॥५४॥
शरणागतहीनेषु[1] चाश्रितघ्नेषु नृष्वपि । शश्वन्मिथ्योक्तिशीलेषु तथा सीमापहारिषु ॥५५॥
कामात्क्रोधात्तथा लोभान्मिथ्यासाक्ष्यप्रवादिषु । पुण्यकर्मविहीनेषु पुण्यकर्मविरोधिषु ॥५६॥
स्थातुमेतेषु निन्द्येषु नाधिकारस्तव प्रभो । ममापि वचनं सत्यं बभूव च क्षणं तव ॥५७॥
यास्यामि पतिसेवायै गच्छ तात स्वमन्दिरम् । इत्येवं वादिनीं साध्वीमुवाच विधिनन्दनः ।
प्रसन्नवदनः श्रीमानतीव विनयं वचः ॥५८॥

धर्म उवाच

धन्याऽसि पतिभक्ताऽसि स्वस्ति तेऽस्तु च संततम् ॥५९॥
वरं गृहाण दास्यामि मत्परित्राणकारिणि । युवा भवतु भर्ता ते रतिशूरश्च कन्यके ॥६०॥

में, ताड़की छाया में, अभिमानी प्राणियों में, तलवार द्वारा जीविका-निर्वाह करने वाले तथा स्याही से जीवन-निर्वाह करने वाले लोगों में, मन्दिरों-मठों के पुजारियों में, गाँव-गाँव यज्ञ कराने वालों में तथा बैल जोतने वालों में, सुनारों में, जीवों की हिंसा द्वारा जीविका चलाने वालों में, पति की निन्दा करने वाली स्त्रियों में और स्त्रीजित पुरुषों में दीक्षा, संध्या और भगवान् विष्णु की भक्ति से हीन द्विजों में, अपनी कन्या का विक्रय करने वाले, अपनी पत्नी बेचने वाले तथा शालग्राम, देवप्रतिमा, ग्रंथ एवं भूमि बेचने वाले लोगों में, मित्रद्रोहियों, कृतघ्नों, सत्य एवं विश्वासघात करने वालों में, शरणागतों, दीनों और उनके आश्रितों की हत्या करने वालों में, निरन्तर असत्यवादी मनुष्यों में, सीमाभंग करने वालों तथा काम, क्रोध एवं लोभवश झूठी गवाही देने वालों में, पुण्यकर्म रहित मनुष्यों और पुण्य कर्म के विरोधियों में तुम्हें रहने का अधिकार नहीं है। हे प्रभो ! ऐसी व्यवथा होने से मेरी बात भी सच्ची हो जाएगी ॥४८-५७॥ तात ! मैं अब अपने पति की सेवा में जा रही हूँ, तुम भी अपने घर जाओ। इस प्रकार कहने वाली उस पतिव्रता से प्रसन्नमुख धर्म अत्यन्त विनयपूर्वक बोले ॥५८॥

धर्म ने कहा—तुम धन्य हो, पतिभक्ता हो, तुम्हारा निरन्तर कल्याण हो। हे मेरी रक्षा करने वाली मैं तुम्हें वर प्रदान करूँगा। ग्रहण करो। कन्यके ! तुम्हारा भर्ता युवा, रतिशूर, रूपवान्, गुणवान्

---

[1] ख. °दीने°।

Funding by IKS-MoE

रूपवान्गुणवान्साध्वि[१] संततं स्थिरयौवनः । परमैश्वर्यसंयुक्ता त्वं भव स्थिरयौवना ॥६१॥
चिरजीवी भवतु स मार्कंण्डेयात्परः सुते । कुबेराद्धनवांश्चैव शक्रादैश्वर्यवानपि ॥६२॥
विष्णुभक्तः शिवसमः सिद्धस्तु कपिलात्परः । स्वामिसौभाग्यसंयुक्ता भव त्वं जीवनावधि ॥६३॥
गृहा भवन्तु ते साध्वि कुबेरभवनाधिकाः । माता त्वं दशपुत्राणां गुणिनां चिरजीविनाम् ॥६४॥
स्वभर्तुरधिकानां च भविष्यसि न संशयः । इत्येवमुक्त्वा संतस्थौ धर्मराजश्च पर्वत ॥६५॥
सा तं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य स्वगृहं ययौ । धर्मस्तामाशिषं युक्त्वा जगाम निजमन्दिरम् ॥६६॥
पतिव्रतां प्रशशंस प्रतिसंसदि संसदि । सा रेमे स्वामिना सार्धं यूना रहसि संततम् ॥६७॥
पश्चाद्बभूवुः सत्पुत्रा तद्भर्तुरधिका गुणैः । शैलेन्द्र कथितं सर्वमितिहासं पुरातनम् ॥६८॥
दत्त्वाऽनरण्यः स्वसुतां ररक्ष सर्वसंपदम् । त्वमेव कन्यकां दत्त्वा सर्वेषामीश्वराय च ॥६९॥
रक्ष सर्वबन्धुवर्गानात्मनः सर्वसंपदम् । सप्ताहे समतीते च दुर्लभेऽतिशुभे क्षणे ॥७०॥
लग्नाधिपे च लग्नस्थे चन्द्रे स्वतनयान्विते । मोदते रोहिणीयुक्ते विशुद्धे चन्द्रतारके ॥७१॥
मार्गशीर्षे चन्द्रवारे सर्वदोषविवर्जिते । सर्वसद्ग्रहसंदृष्टे ह्यसद्ग्रहविवर्जिते ॥७२॥
सदपत्यप्रदेऽतीव पतिसौभाग्यदायिनि । अवैधव्यप्रदे सौख्यप्रदे जन्मनि जन्मनि ॥७३॥

और निरन्तर स्थायी यौवन सम्पन्न हो । साध्वि ! तुम्हें परमैश्वर्य समेत स्थायी यौवन प्राप्त हो । सुते ! तुम्हारा पति मार्कण्डेय से भी बढ़कर दीर्घजीवी, कुबेर से बढ़कर धनवान्, इन्द्र से बढ़कर ऐश्वर्यवान्, शिव के समान विष्णु-भक्त और कपिल से बढ़कर सिद्ध हो । जीवन पर्यन्त तुम्हें स्वामी का सौभाग्य प्राप्त रहे । साध्वि ! कुबेर के भवनों से अधिक तुम्हारे भवन हों, तुम अपने पति से भी अधिक गुणी एवं चिरंजीवी दश पुत्रों की माता बनो—इसमें संशय नहीं । हे पर्वत ! इतना कह कर धर्मराज चुप हो गये ॥५९-६५॥ पद्मा उनकी प्रदक्षिणा और प्रणाम करके अपने घर गयी । धर्मराज भी उसे शुभाशिष प्रदान कर अपने घर चले गये ॥६६॥ धर्मराज ने प्रत्येक सभा में उस पतिव्रता की प्रशंसा की । पद्मा अपने युवक पति के साथ एकान्त में निरन्तर आनन्दोपभोग करने लगी ॥६७॥ पश्चात् उसके सदाचारी पुत्र उत्पन्न हुए, जो उसके पति से भी अधिक गुणशाली थे । शैलराज ! मैंने तुम्हें सम्पूर्ण प्राचीन इतिहास बता दिया ॥६८॥ राजा अनरण्य ने अपनी कन्या देकर समस्त सम्पत्ति की रक्षा की । तुम भी सबके ईश्वर शिव को अपनी कन्या देकर समस्त बन्धुवर्गों समेत अपनी सम्पत्ति की रक्षा करो ॥६९½॥ पर्वत एक सप्ताह व्यतीत होने पर अत्यन्त दुर्लभ शुभ क्षण में जब चन्द्रमा लग्नेश होकर लग्न में अपने पुत्र बुध के साथ विराजमान होंगे; चन्द्र और तारा सर्वथा शुद्ध होंगे; मार्गशीर्ष मास का सोमवार होगा, लग्न सब प्रकार के दोषों से रहित, समस्त शुभग्रहों की दृष्टि से लक्षित और असत् ग्रहों से शून्य होगा; उत्तम सन्तानप्रद, पतिसौभाग्यदायक, वैधव्य-निवारक, जन्म-जन्म में सुख प्रदान करने वाला तथा प्रेम का कभी विच्छेद न होने देने वाला अत्यन्त श्रेष्ठतम

---

[१] क. °वान्वाग्मी सं० ।

अत्यन्तप्रेमाविच्छेदप्रदायिनि परात्परे । कन्यां प्रदाय देवाय त्वं कृती भव पर्वत ॥७४॥
जगदम्बां जगत्पित्रे मूलप्रकृतिमीश्वरीम् । तेजःस्वरूपां सर्वेषां देवानां देवपूजिताम् ॥७५॥
आविर्भूता पुरा कल्पे देवानां रक्षणाय च । तेजोराशिः सुरौघाणां प्रज्वलन्ती दिशो दश ॥७६॥
अस्याः स्वतेजसा दैत्याः केचिद्दग्धाः पलायिताः । केचिद् बभूवुः शैलेन्द्र भस्मीभूताश्च भूतले ॥७७॥
बिलं प्रविविशुः केचिन्मूर्च्छां प्रापुश्च केचन । केचिद्दन्ते तृणं कृत्वा जग्मुः शरणमीश्वरीम् ॥७८॥
केचिच्चिक्षिपुरस्त्राणि स्तम्भिता अपि केचन । केचिच्चिरं रणं कृत्वा ययुः स्वर्गमनामयम् ॥७९॥
निःशत्रवो बभूवुस्ते सुरा अस्याः प्रसादतः । कृष्णाज्ञया सा कल्पान्ते दक्षकन्या बभूव ह ॥८०॥
वक्षश्च विधिवद्देवीं प्रददौ शूलपाणये । देवेन मत्पितुर्यज्ञे सहसा सुरसंसदि ॥८१॥
बभूव कलहः शैल तेन शूलभृता महान् । ब्रह्माणं च नमस्कृत्य ययौ रुष्टस्त्रिलोचनः ॥८२॥
दक्षश्च सगणो रुष्टः प्रययौ स्वालयं तदा । कोपात्संभृतसंभारो दक्षो यज्ञं चकार ह ॥८३॥
न ददौ यज्ञभागं च मात्सर्याच्छूलपाणये । दृष्ट्वा सती प्रकुपिता जनकं रक्तलोचना ॥८४॥
निर्भर्त्स्य च बहुतरं हृदयेन विदूयता । यज्ञस्थानात्समुत्थाय जगाम मातुरन्तिकम् ॥८५॥
भविष्यं कथयामास त्रिकालज्ञा परात्परा । यज्ञभङ्गादिकं सर्वं स्वपितुश्च पराभवम् ॥८६॥

योग उपस्थित होगा; उस समय तुम अपनी पुत्री मूल प्रकृति, ईश्वरी, सभी देवों के तेजःस्वरूप तथा देवपूजित जगदम्बा को जगत्पिता महादेव के हाथ में देकर कृतकृत्य हो जाओ ॥७०-७५॥ पूर्वकल्प में देवों के रक्षणार्थ मूलप्रकृति देव-समूह की तेजोराशि के रूप में दसों दिशाओं को प्रज्वलित करती हुई प्रकट हुईं ॥७६॥ शैलराज ! उनके अपने तेज से कुछ दैत्य दग्ध होकर पलायन कर गये, कुछ पृथिवी पर भस्म हो गये, कुछ बिल (पाताल) में प्रविष्ट हो गये, कुछ मूर्च्छित हो गये, कुछ दांतों के नीचे तृण रख कर ईश्वरी के शरण में चले गये ॥७७-७८॥ कुछ ने अस्त्रों को फेंक दिया, कुछ स्तम्भित हो गये और कुछ ने चिरकाल तक युद्ध करके नीरोग स्वर्ग की प्राप्ति की ॥७९॥ उनकी कृपा से देवलोक शत्रुरहित हो गये। वही जगदम्बा कल्पान्त में भगवान् कृष्ण की आज्ञा से दक्षकन्या हुईं ॥८०॥ दक्ष ने उस देवी को विधि-विधान के साथ शूलपाणि शिव को प्रदान किया। हे शैल ! अनन्तर मेरे पिता के यज्ञ में, जहाँ देवताओं की सभा लगी हुई थी, दक्ष का शूलधारी शिव के साथ सहसा महान् कलह हो गया, जिससे क्रुद्ध होकर त्रिनेत्र शिव ब्रह्मा को नमस्कार करके वहाँ से चले गये ॥८१-८२॥ दक्ष भी रुष्ट होकर गणों समेत अपने घर चले गये। उपरान्त दक्ष ने रोषपूर्वक ही यज्ञसामग्री एकत्र की और उसके द्वारा महान् यज्ञ का आयोजन किया। उस यज्ञ में उन्होंने द्वेषवश शूलपाणि को भाग नहीं दिया। यह देख सती के मन में पिता के प्रति बड़ा क्रोध हुआ। उनकी आँखें लाल हो गयीं। वह व्यथित हृदय से पिता के उस यज्ञस्थान से उठ कर अपनी माता के पास चली गयीं ॥८३-८५॥ अनन्तर उस त्रिकालज्ञा एवं परात्परा देवी ने अपनी माता से सब भविष्य की बातें कह डालीं, जिसमें यज्ञ के भङ्ग होने, अपने पिता का अपमान, यज्ञस्थल से

पलायनं च देवानां यज्ञस्थानाद्गिरीश्वरम्। मुनीनामृत्विजां चैव पर्वतानां तथैव च ॥८७॥
जय शंकरसैन्यानां स्वात्मनो मृत्युमेव च । शोकात्पर्यटनं भर्तुर्विरहातुरचेतसा ॥८८॥
निर्माणं नेत्रसरसः प्रबोधं च जनार्दनात् । मूर्तिभेदात्पुनः प्राप्ति विहारं तस्य तत्समम् ॥८९॥
अपरं भवितव्यं च सर्वमुक्त्वा जगाम सा । स्वमात्रा भगिनीभिश्च प्रतिषिद्धा च दुःखिता ॥९०॥
बभूवादर्शना योगात्सर्वासां सिद्धियोगिनी । गत्वा सा जाह्नवीतीरं स्मृत्वा संपूज्य शंकरम् ॥९१॥
स्मृत्वा तच्चरणाम्भोजं देहं तत्याज सुन्दरी । गन्धमादनद्रोणीस्थं शरीरं प्रविवेश ह ॥९२॥
संजहार पुरा येन दैत्यानामखिलं कुलम् । हाहाकारं प्रचक्रुश्च सुराः सर्वेऽतिविस्मिताः ॥९३॥
जग्मुः शंकरसेनाश्च दक्षयज्ञं विनश्य च । पराभवं च सर्वेषां कृत्वा शोकातुराः पराः ॥९४॥
सत्वरं सर्ववृत्तान्तं कथयामासुरीश्वरम् । श्रुत्वा प्रवृत्ति संहर्ता सर्वंरुद्रगणैर्वृतः ॥९५॥
मूर्च्छां संप्राप शोकेन ज्ञानानन्दः परात्परः । क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्थाय त्रिलोचनः ॥९६॥
जगाम स्वर्णदीतीरं यत्र देवीकलेवरम् ॥९७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० सतीदेहत्यागो नाम
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

देवों का हिमालय को भाग जाना, मुनियों, ऋत्विजों एवं पर्वतों के पलायन, शंकर के सैनिकों की विजय, अपनी मृत्यु, तथा शोक के कारण पति (शिव) का विरहातुर होकर चारों ओर पर्यटन करना, उनके नेत्रों के जल से सरोवर का निर्माण, भगवान् जनार्दन के समझाने से उनका धैर्य धारण करना, दूसरे शरीर से पुनः शिव की प्राप्ति तथा उनके साथ विहार की चर्चा थी। इस प्रकार भावी सब वृत्तान्त बताकर सती, माता और बहनों के मना करने पर भी दुःखी होकर चली गयीं ॥८६-९०॥

वह सिद्धयोगिनी थीं, अतः योगबल से सबकी दृष्टि से ओझल हो गयीं। वे गङ्गातट पर जाकर शंकर के ध्यान और पूजन के पश्चात् उनके चरणारविन्दों का चिन्तन करती हुईं उस सुन्दरी सती ने देह का त्याग कर दिया और गन्धमादन पर्वत की गुफा में विद्यमान उस दिव्य विग्रह में प्रवेश किया, जिसके द्वारा उन्होंने पूर्वकाल में दैत्यकुलों का संहार किया था। यह देखकर सब देवता अत्यन्त विस्मित हो 'हाहाकार' कर उठे ॥९१-९३॥ शंकर की सेनाओं ने वहाँ जाकर दक्ष-यज्ञ का विनाश तथा सबका पराभव करके शोकाकुल होकर वहाँ का समस्त वृत्तान्त बड़ी शीघ्रता से जाकर शिव को कह सुनाया। यह समाचार सुनकर समस्त सद्गुणों से घिरे हुए संहारकारी शिव गंगा के उस तट पर गये, जहाँ सती का शरीर पड़ा था ॥९४-९७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में सती-देहत्यागवर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४२॥

Funding by IKS-MoE

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

अथ दुर्गां महादेवः सतीमूर्तिं मनोहराम् । अम्लानपद्मवक्त्रां तां शयानां जाह्नवीतटे ॥१॥
दधतीमक्षमालां च प्रतप्तकाञ्चनप्रभाम् । तेजसा प्रज्वलन्तीं च दधानां शुक्लवाससम् ॥२॥
दृष्ट्वा सतीशरीरं च प्रदग्धो विरहाग्निना । तत्त्वराशिर्मूर्तिमांश्च मूर्च्छां प्राप तथाऽपि च ॥३॥
कलत्रशोको बलवान्स्वात्मारामं परात्परम् । बाधते वेदबीजं तं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम् ॥४॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य तामुवाच त्रिलोचनः । निरीक्ष्य वदनाम्भोजं स्थाणुः स्थाणुरिवापरः ॥५॥
साश्रुनेत्रोऽतिदीनश्च दीनानां शरणप्रदः । दीनदैन्यापहारी च विललाप परं वचः ॥६॥

शंकर उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुभगे सति प्राणेश्वरि प्रिये । शंकरोऽहं तव स्वामी पश्य मां निकटागतम् ॥७॥

अध्याय ४३

शिव के शोक का दूरीकरण

नारायण बोले—महादेव गंगा के तट पर सोयी हुई सती दुर्गा की उस मनोहर मूर्ति को, जिसके मुखारविन्द की कान्ति अभी मलिन नहीं हुई थी, जो श्वेत वस्त्र धारण किये और हाथ में अक्षमाला लिये दिव्य तेज से प्रकाशित हो रही थी और जिससे तपाये हुए स्वर्ण की-सी कमनीय कान्ति फैल रही थी, देखकर विरहाग्नि से दग्ध होने लगे। वे मूर्तिमान् तत्त्वराशि होते हुए भी मूर्च्छित हो गये ॥१-३॥ बलवान् पत्नी-शोक शिवजी को भी अत्यन्त कष्टप्रद हुआ। अपने आत्मा में रमण करने वाले, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ, वेदों के बीज तथा योगीन्द्रों के गुरु के गुरु को भी सताने लगा ॥४॥ क्षण में चेतना प्राप्त होने पर स्थाणु शिव, जो अपर स्थाणु (ठूंठ) की भाँति दिखायी देते थे, सती के मुखकमल को देखकर उनसे बोले ॥५॥ उस समय उनकी आँखों में आँसू भरा था। यद्यपि वे दीनों के शरण-प्रद, एवं दीनों की दीनता को दूर करने वाले हैं, फिर भी अतिदीन होकर उन्होंने विलाप करना आरम्भ किया ॥६॥

शंकर बोले—हे सुभगे सति ! प्राणेश्वरि प्रिये ! उठो, उठो। मैं तुम्हारा स्वामी शंकर हूँ। अपने निकट

शिवं शिवप्रदं सर्वसंपद्रूपं च सिद्धिदम् । सर्वात्मानं च सर्वेशं शवतुल्यं त्वया विना ॥८॥
शक्तोऽहं च त्वया सार्धं सर्वशक्तिस्वरूपया । शक्तिहीनः शवसमो निश्चेष्टः सर्वकर्मसु ॥९॥
यश्च शक्तिं न जानाति ज्ञानहीनश्च निन्दति । तं त्यक्तुमुचितं विज्ञे कथं मां त्यजसि प्रिये ॥१०॥
स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः साध्यभूता वयं तव । सस्मितं सकटाक्षं च वद किंचित्सुधोपमम् ॥११॥
मधुराभासदृष्ट्या च मां दग्धं सेचनं कुरु । मां दृष्ट्वा दूरतः शीघ्रं स्निग्धं वदसि सस्मितम् ॥१२॥
कथमद्यापि रुष्टेव विलपन्तं न भाषसे । प्राणाधिके समुत्तिष्ठ रुदन्तं मां न पश्यसि ॥१३॥
परित्यज्य च नः प्राणान्गन्तुं नार्हसि सुन्दरि । जगदम्बे समुत्तिष्ठ प्राणाधारे परात्परे ॥१४॥
पतिव्रते समुत्तिष्ठ कथं मां नाद्य सेवसे । कथं करोषि विज्ञाय व्रतभङ्गं श्रुतिप्रसूः ॥१५॥
इत्युक्त्वा मृतदेहं च प्रियाया विरहातुरः । निधायोरसि संश्लिष्य चुचुम्ब च पुनः पुनः ॥१६॥
अधरे चाधरं दत्त्वा वक्षो वक्षसि शंकरः । पुनः पुनः समाश्लिष्य पुनर्मूर्च्छामवाप सः ॥१७॥
पुनः स चेतनां प्राप्य वेगादुत्थाय शोकतः । दुद्राव च यथोन्मत्तो ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः ॥१८॥
सप्तद्वीपं सप्तसिन्धुं लोकालोकं च काञ्चनम् । बभ्राम भ्रान्तवज्ज्ञानी सतीं कृत्वा स्ववक्षसि ॥१९॥

आये हुए मुझे देखो ॥ ७॥ यद्यपि मैं शिव (कल्याण) रूप, कल्याणप्रद, समस्त सम्पदारूप, सिद्धिप्रद, सब का आत्मा एवं सब का ईश्वर हूँ, तथापि तुम्हारे बिना मैं शव तुल्य हूँ ॥८॥ तुम समस्त शक्तिस्वरूपा हो, तुम्हारे साथ रहने पर ही मैं समर्थ रहता हूँ और (तुम) शक्ति से हीन होने पर सभी कामों में शव के समान निश्चेष्ट हो जाता हूँ ॥९॥ प्रिये ! हे विशेष ज्ञान रखने वाली ! जो शक्ति को न जानता हो और ज्ञानहीन होने के नाते निन्दा करता हो उसका त्याग करना तुम्हें उचित है, किन्तु मेरा त्याग क्यों कर रही हो ॥१०॥ स्वयं ब्रह्मा, स्वयं विष्णु और हम सभी तुम्हारे साध्य हैं। (अब) तुम मुसकराहट एवं कटाक्ष के साथ कुछ अमृतोपम वचन कहो ॥११॥ अपनी मधुर आभास वाली दृष्टि से मुझ दग्ध का सेचन करो। तुम सदैव मुझे दूर से ही देखकर शीघ्र मन्दमुसकान समेत स्नेहिल बातें कहती थी फिर क्यों आज रुष्ट-सी होकर विलाप करते हुए मुझसे नहीं बोल रही हो ? हे प्राणाधिके ! उठो, रोते हुए मुझे क्यों नहीं देखती ? ॥१२-१३॥ सुन्दरि ! मेरे प्राणों का त्याग कर तुम्हें जाना उचित नहीं। प्राणाधारे, परात्परे, जगदम्बे ! उठो। पतिव्रते ! आज मेरी सेवा क्यों नहीं करती ? तुम वेदों की जननी हो, व्रतभङ्ग जानती हुई भी यह क्या कर रही हो ? ॥१४-१५॥ इतना कह कर विरहातुर शिव ने अपनी प्रिया की उस मृत देह को उठा कर अपने हृदय से लगा लिया और बार-बार उसका चुम्बन किया। उनके अधर पर अपना अधर और वक्षःस्थल से अपना वक्षःस्थल संयुक्त करके शंकर उनका बार-बार आलिङ्गन करके पुनः मूर्च्छित हो गये ॥१६-१७॥ पुनः चेतना प्राप्त करके शोक से वेगपूर्वक उठकर ज्ञानियों के गुरु के गुरु होते हुए भी वे प्रमत्त की भांति दौड़ने लगे। सती को वक्ष पर धारण करके वे सातों द्वीप, सातों समुद्र, लोकालोक एवं सुमेरु पर्वत पर ज्ञानी भ्रान्त की भांति भ्रमण करने लगे ॥१८-१९॥ (भ्रमण करते हुए) वे भारत में शतश्रृंग-

Funding by IKS-MoE

शतश्रृङ्गगिरेः पार्श्वे जम्बुद्वीपे च भारते । सुनिर्जनेऽक्षयवटे गङ्गातीरे सरित्तटे ॥२०॥
रुरोदोच्चैः स्वयं कृत्वा सति साध्वीत्युदीर्य च । त्रिनेत्रनेत्रनीरेण संबभूव सरोवरम् ॥२१॥
तन्नेत्रं च सरो नाम मुनीनां तपसः स्थलम् । योजनद्वयविस्तीर्णं पुण्यतीर्थं मनोहरम् ॥२२॥
यत्र स्नात्वा पुनर्जन्म नराणां न भवेद्‌गिरे । शतजन्मकृतं पापं स्नानमात्रेण नश्यति ॥२३॥
त्यक्त्वा तां मानवीं मूर्तिं नरा यान्ति हरेः पदम् । तत्र स रोदनं त्यक्त्वा पुनर्बभ्राम मेदिनीम् ॥२४॥
पूर्णमब्दं महायोगी विरहातुरमानसः । सतीगलितप्रत्यङ्गैरङ्गैश्च पर्वतेश्वर ॥२५॥
वभूव सिद्धपीठानां समूहो वाञ्छितप्रदः । शेषाङ्गानां महादेवः संस्कारं वै विधाय च ॥२६॥
अस्थिमालां विनिर्माय चकार कण्ठभूषणम् । नित्यं तद्भस्म भक्त्या च चकार गात्रलेपनम् ॥२७॥
सति प्राणेश्वरीत्युक्त्वा पुनर्मूच्छीमवाप सः । विसस्मार ब्रह्म परमात्मानमात्मसंभवः ॥२८॥
स्वात्मारामः पूर्णकामो निश्चेष्टो विरहज्वरात् । तं शयानं गिरिवरस्याभ्याशे वटमूलके ॥२९॥
दृष्ट्वा देवाः समाजग्मुर्विस्मिताः शिवसंनिधिम् । नारायणश्च भगवानीश्वरः सह पार्षदे ॥३०॥
रत्नयानेना ऽऽजगाम पद्मार्चितपदाम्बुजः । रत्नालंकारशोभाढ्यः पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥३१॥

गिरि के पास जम्बूद्वीप में निर्जन प्रदेशस्थ अक्षयवट के नीचे गङ्गा तट पर पहुँचे ॥२०॥ सति ! साध्वि ! ऐसा कहकर वहाँ अति उच्च स्वर से रोदन करने लगे । उस समय त्रिनेत्र शिव के नेत्र से निकले आँसू का एक सरोवर बन गया, जिसका 'नेत्रसर' नाम हुआ और वह मुनियों का तपःस्थल हुआ । उस मनोहर पुण्यतीर्थ का दो योजन विस्तार है । पर्वत ! उसमें स्नान करने से मनुष्यों का पुनर्जन्म नहीं होता । उसमें स्नान मात्र से सौ जन्मों का पाप विनष्ट हो जाता है ॥२१-२३॥ मनुष्य-शरीर को छोड़कर मनुष्य विष्णु-पद को प्राप्त कर लेते हैं। वहाँ रोदन बन्द करके वह पुनः पृथ्वी पर भ्रमण करने लगे ॥२४॥ महायोगी शंकर विरहाकुलचित्त होकर पूरे एक वर्ष तक परिभ्रमण करते रहे । पर्वतराज ! सती देवी के उस मृत शरीर के अंग-प्रत्यग जिस-जिस स्थान पर गिरे, वे स्थान कामनाप्रद सिद्धपीठ हो गये। अनन्तर महादेव सती के शेष अंगों का संस्कार करके अस्थियों की माला गूँथकर उसे अपना कण्ठभूषण और प्रतिदिन (सती के शरीर का) भस्म भक्ति से अपने शरीर पर लेपने लगे ॥२५-२७॥ सति ! प्राणेश्वरि ! कहते हुए शिव पुनः मूर्च्छित हो गये । उन आत्मसम्भव ने परमात्मा ब्रह्म को भी विस्मृत कर दिया और स्वात्माराम तथा पूर्णकाम होकर भी विरह-संताप के कारण निश्चेष्ट हो गये । गिरिराज के भीतर वटवृक्ष के नीचे उन्हें शयन किये मूर्च्छित देखकर देवों को महान् विस्मय हुआ——वे सब शिवजी के समीप गये । भगवान् नारायण भी पार्षदों समेत रत्नयान द्वारा वहाँ आये, जो कमला-अर्चित चरणकमल, रत्नों के आभूषणों से भूषित, पीताम्बर, चतुर्भुज, मन्दमुसुकान समेत प्रसन्नमुख एवं वनमाला से सुशोभित थे। अनन्तर ब्रह्मा, शेष,

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो वनमालाविभूषितः । ब्रह्मा शेषश्च धर्मश्च सुराः सर्वे महर्षयः ॥३२॥
समूषुरीशसदसि लक्ष्मीकान्तं प्रणम्य ते । श्रीहरिः शंकरमहो कृत्वा वक्षसि मूर्च्छितम् ॥
रुदन्तं बोधयामास ज्ञानीशो ज्ञानिनां गुरुम् ॥३३॥

श्रीभगवानुवाच

स्वात्माराम निबोधेदं मदीयं वचनं शृणु । हितमध्यात्मसारं च दुःखशोकनिकृन्तनम् ॥३४॥
सर्वाध्यात्मविद्यामानबीजं ज्ञाननिधिं विधिम् । तथाऽपि बोधयामि त्वां सर्वज्ञं वेधसां विधिम् ॥३५॥
बुधं बोधयितुं शक्तोऽबुधोऽपि प्राणसंकटे । व्यवहारोऽस्ति लोकेषु सर्वः सर्वपरस्परम् ॥३६॥
मायाश्रिता गुणाः सर्वे हेतवः सुखदुःखयोः । विष्णुमाया बलवती गुणयुक्तं प्रबाधते ॥३७॥
दुःखं शोकं भयं शंभो दुर्दिने भवतीश्वर । तत्रातीते कुतस्तानि सुदिने च समागते ॥३८॥
हर्षं ऐश्वर्यदर्पश्च संततं तत्र वर्धते । सर्वाण्येतानि गण्यन्ते स्वप्नानीव विपश्चितः ॥३९॥
ज्ञानं लभ महादेव ज्ञानबीज सनातन । चेतनां कुरु भद्रं ते सतीं प्राप्स्यसि निश्चितम् ॥४०॥
न तोयं शीतता नित्यं नाग्निं मुञ्चति दाहिका । तेजः सूर्यं महीं गन्धो तथा त्वां च सती शिव ॥४१॥
शैलेत्येवं समाकर्ण्य हरिं किंचिदुवाच ह । नेत्राण्युन्मीलनं कृत्वा त्रिनेत्रः श्रूयतामिति ॥४२॥

धर्म, देवगण एवं महर्षियों ने वहाँ आकर लक्ष्मीकांत भगवान् को प्रणाम किया और सभा-स्थल में बैठ गये। तब ज्ञानियों के अधीश्वर भगवान् श्रीहरि रोदन करते हुए शिव को अपनी गोद में रखकर समझाने लगे ॥२८-३३॥

श्रीभगवान् बोले—हे स्वात्माराम ! मेरी बात सुनो, जो हितकर, अध्यात्म का सारभाग एवं दुःख-शोक का नाशक है ॥३४॥ यद्यपि तुम समस्त अध्यात्म के विद्यमान बीज, ज्ञाननिधान, विधि, सर्वज्ञ तथा स्रष्टाओं के भी स्रष्टा हो, तथापि मैं तुम्हें ज्ञान का उपदेश दे रहा हूँ। प्राणसंकट के समय अविद्वान् भी विद्वान् को समझाने में समर्थ होता है। लोकों में यह व्यवहार है कि सब लोग सबको परस्पर समझाते-बुझाते हैं। सभी गुण माया के ही अधीन हैं, जो प्राणियों के सुख-दुःख में कारण होते हैं, इसलिए विष्णु की बलवती माया गुणयुक्त प्राणी को दुःख प्रदान करती है ॥३५-३७॥ शम्भो ! ईश्वर! दुर्दिन में दुःख, शोक एवं भय की प्राप्ति होती है। जब दुर्दिन बीत जाता है और सुदिन आ जाता है, तब उनकी प्राप्ति कैसे हो सकती है। उस समय तो हर्ष एवं ऐश्वर्याभिमान निरन्तर बढ़ता रहता है, इसलिए बुद्धिमान् लोग इसे स्वप्न की भाँति मानते हैं ॥३८-३९॥ हे महादेव ! ज्ञान प्राप्त करो, तुम ज्ञानबीज और सनातन हो; चेतना प्राप्त करो, तुम्हारा कल्याण होगा—सती तुम्हें निश्चित मिलेंगी ॥४०॥ हे शिव ! जिस प्रकार शीतलता जल को और दाहिका शक्ति अग्नि को, तेज सूर्य को और गन्ध पृथ्वी को नहीं छोड़ती, उसी भाँति सती तुमसे पृथक् नहीं रहेंगी। हे शैल ! यह सुनकर त्रिनेत्र शिव ने अपना नेत्रोन्मीलन करके हरि से कुछ कहा, वह सुनो ॥४१-४२॥

Funding by IKS-MoE

त्रिनेत्र उवाच

कस्त्वं तेजःस्वरूपोऽसि क इमे तव संनिधौ । किन्नाम भक्तश्चैषां कानि नामानि का सती ॥४३॥
कोऽहं को मे भवान्ब्रूते किंकराः कुत आगताः । क्व यास्यसि क्व यास्यामि क्व गच्छन्त इमे वद ॥४४॥
हरिरित्येवमाकर्ण्य रुरोद सगणो गिरे । नेत्रनीरैस्त्रिनेत्रं तं रुदन्तं प्रसिषेच सः ॥४५॥
हरित्रिनेत्रयोर्नेत्रनीरपातेन तत्र वै । बभूव सरसां श्रेष्ठं तीर्थं भुवनपावनम् ॥४६॥
भारतेऽस्तगिरेः पश्चात्तत्राक्षयवटान्तिके । स्थलं बभूव तपसां मुक्तिबीजं तपस्विनाम् ॥४७॥
अथोवाच पुनः शीघ्रमाध्यात्मं च हरं हरिः । शृण्वतां सर्वदेवानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥४८॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु शंकर वक्ष्यामि ज्ञानानन्द सनातन ॥४९॥
ज्ञानं ज्ञाननिधे शोकाद्विस्मृतोऽसि परात्पर । सुदिनं दुर्दिनं शश्वद्भूक्त्येव भवे भव ॥५०॥
सर्वेषां प्राकृतानां च ते बीजे सुखदुःखयोः । सुखाद्भवति हर्षश्च दर्पः शौर्यं प्रमत्तता ॥५१॥
राग ऐश्वर्यकामश्च विद्वेषश्च निरन्तरम् । दुःखाच्छोकात्समुद्वेगाद्भयं नित्यं प्रवर्तते ॥५२॥
हतान्येतानि सर्वाणि हते बीजे महेश्वर । सुदिनं दुर्दिनं चैव सर्वं कर्मोद्भवं भव[१] ॥५३॥

शिव बोले—तेजःस्वरूप तुम कौन हो ? तुम्हारे समीप ये सब कौन हैं ? आपका तथा इनका क्या नाम है ? सती कौन है ? मैं कौन हूँ ? मुझसे कहने वाले आप कौन हैं ? ये किंकर लोग और ये सब कहाँ जा रहे हैं ? मुझे बताओ ॥४३-४४॥ शैल ! यह सुन कर हरि अपने गणों समेत रोदन करने लगे। अपने नयनजल से उन्होंने रोदन करते हुए शिव को नहला दिया। नारायण और शिव के नयन जल से वहाँ एक श्रेष्ठ सरोवर बन गया जो भुवनपावन तीर्थ है। भारत में अस्ताचल पर्वत के पीछे—अक्षयवट के समीप वह स्थल है, जो तप करने की भूमि एवं तपस्वियों की मुक्ति का कारण है। अनन्तर हरि समस्त देवों तथा ऊर्ध्वरेता मुनियों के सुनते शिव से पुनः अध्यात्म की बात कहने लगे ॥४५-४८॥

श्रीभगवान् बोले—हे शङ्कर ! तुम ज्ञानानंद और सनातन हो, मैं जो कह रहा हूँ उसे सुनो ! हे ज्ञाननिधे ! हे परात्पर ? शोक के कारण तुम ज्ञान को भूल गये हो। यह सुदिन और दुर्दिन जन्म-जन्म में निरन्तर होते रहते हैं, जो सभी प्राकृत प्राणियों के सुख-दुःख के कारण स्वरूप हैं सुख से हर्ष, दर्प, शौर्य, प्रमत्तता, अनुराग, ऐश्वर्य की इच्छा और विद्वेष निरन्तर प्रकट होते रहते हैं। दुःख, शोक और उद्वेग से सदा भय की प्राप्ति होती है ॥४९-५२॥ महेश्वर ! बीज के नष्ट होने पर ये सभी स्वतः नष्ट हो जाते हैं। शिव ! सुदिन और

---

[१] क. भवे ।

तत्कर्म तपसां साध्यं कर्मणां च शुभाशुभम् । तपः स्वभावसाध्यं च स्वभावोऽभ्यासतो भवेत् ॥५४॥
संसर्गसाध्योऽभ्यासश्च संसर्गः पुण्यतो भवेत् । पुण्यबीजं मनश्चैव पापबीजं च चञ्चलम् ॥५५॥
मनः शंभो ममांशश्च सर्वेन्द्रियपुरःसरम् । सर्वेषां जनकोऽहं च चित्त्वं ब्रह्मा पतिस्त्वयम् ॥५६॥
ब्रह्मैकं मूर्तिभेदस्तु गुणभेदेन संततम् । तद्ब्रह्म विविधं वस्तु सगुणं निर्गुणं शिव[१] ॥५७॥
मायाश्रितो यः सगुणो मायातीतश्च निर्गुणः । स्वेच्छामयश्च भगवानिच्छया विकरोति च ॥५८॥
इच्छाशक्तिश्च प्रकृतिर्नित्या सर्वप्रसूः सदा । केचिदेकं वदन्त्येव ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥५९॥
केचिद्वदन्ति द्विविधं ब्रह्म प्रकृतिपूर्वकम् । शृणु ये च वदन्त्येकं मायापुरुषयोः परम् ॥६०॥
तस्माद्भवति तौ द्वौ च तद्ब्रह्म सर्वकारणम् । अथ चैकं परं ब्रह्म द्विविधं भवतीच्छया ॥६१॥
इच्छाशक्तिश्च प्रकृतिः सर्वशक्तिप्रसूः सदा । तत्राऽऽसक्तश्च सगुणः शरीरी प्राकृतस्तथा ॥६२॥
निर्गुणस्तत्र निर्लिप्तोऽशरीरी च निरङ्कुशः । सर्वात्मा भगवान्नित्यः सर्वाधारः सनातनः ॥६३॥
सर्वेश्वरः सर्वसाक्षी सर्वत्रास्ति फलप्रदः । शरीरं द्विविधं शंभो नित्यं प्राकृतमेव च ॥६४॥

दुर्दिन सब कर्म से उत्पन्न होते हैं ॥५३॥ वह कर्म तपः साध्य है। कर्मों के शुभ और अशुभ फल मिलते हैं। तप स्वभाव-साध्य है एवं स्वभाव अभ्यास से बनता है ॥५४॥ अभ्यास, संसर्ग से साध्य होता है और संसर्ग पुण्य द्वारा प्राप्त होता है। चंचल मन ही पुण्य और पाप का बीज है। शम्भो ! सम्पूर्ण इन्द्रियों समेत मन मेरा अंश है। सबका जनक जो अहंकार है, उसके अधिष्ठाता चेतन तुम हो और ये ब्रह्मा बुद्धि के अधिठाता हैं। परब्रह्म परमात्मा एक हैं। गुणभेद से ही सदा उसके भिन्न-भिन्न रूप होते हैं। वह ब्रह्मतत्त्व एक होने पर भी अनेक प्रकार का है। शिव ! वह सगुण भी है और निर्गुण भी ॥५५-५७॥ जो मायारूप उपाधि का आश्रय लेता है, वह सगुण और जो मायातीत है, वह निर्गुण कहलाता है। भगवान् स्वेच्छामय हैं। वे अपनी इच्छा से ही विविध रूपों में प्रकट होते हैं ॥५८॥ उनकी इच्छाशक्ति का ही नाम प्रकृति है। वह नित्य-स्वरूपा और सदा सबकी जननी है। कुछ लोग ज्योतिःस्वरूप सनातन ब्रह्म को एक ही बताते हैं तथा कुछ दूसरे विद्वान् उसे प्रकृति से युक्त होने के कारण द्विविध कहते हैं। जो एक बताते हैं, उनका मत सुनो। ब्रह्म, माया तथा जीवात्मा दोनों से परे हैं। उस ब्रह्म से ही वे दोनों (माया और जीवात्मा) प्रकट होते हैं, अतः ब्रह्म ही सबका कारण है। वह परब्रह्म एक होकर भी स्वेच्छा से दो हो जाता है। उसकी इच्छाशक्ति ही प्रकृति है, जो सदा सम्पूर्ण शक्तियों की जननी होती है। उससे संयुक्त होने के कारण वे परमात्मा 'सगुण' कहे जाते हैं। वे ही सबके आधार, सनातन, सर्वेश्वर, सर्वसाक्षी तथा सर्वत्र फलदाता होते हैं। शम्भो ! शरीर भी दो प्रकार का होता है—एक नित्य और

---

[१] क. शिवम् ।

Funding by IKS-MoE

नित्यं विनाशरहितं नश्वरं प्राकृतं सदा । अहं त्वं चापि भगवान्नाऽऽवयोर्नित्यविग्रहः ।।६५।।
आवयोरंशभूता ये प्राकृता नष्टविग्रहाः । रुद्रादयस्त्वदंशाश्च मदंशा विष्णुरूपिणः ।।६६।।
ममाप्येवं द्विधा रूपं द्विभुजं च चतुर्भुजम् । चतुर्भुजोऽहं वैकुण्ठे पद्मया पार्षदैः सह ।।६७।।
गोलोके द्विभुजोऽहं च गोपीभिः सह राधया । द्विविधं ये वदन्त्येव द्वौ प्रधानौ तु तन्मते ।।६८।।
पुरुषश्च सदा नित्यो नित्या प्रकृतिरीश्वरी । सदा तौ द्वौ च संश्लिष्टौ सर्वेषां पितरौ शिव ।।६९।।
सशरीरौ निःशरीरौ स्वेच्छया सर्वरूपिणौ । प्राधान्यं च यथा पुंसः प्रकृतेश्च सदा तथा ।।७०।।
सतीमिच्छसि चेच्छंभो प्रकृतेः स्तवनं कुरु । यत्स्तोत्रं च त्वया दत्तं पुरा दुर्वाससे मुदा ।।७१।।
तद्दिव्यं कण्वशाखोक्तं भज तेन जगत्प्रसूम् । शोकनाशो भवतु ते शिवं शिव ममाऽऽशिषा ।।७२।।
दूरं विप्लवहेतुश्च यातु स्त्रीविरहज्वरः । इत्येवमुक्त्वा लक्ष्मीशो विरराम गिरीश्वर ।।७३।।
स्तवनं कर्तुमारेभे प्रकृतेश्च महेश्वरः । स्नात्वा नत्वा च श्रीकृष्णं ब्रह्माणं भक्तिसंयुतः ।।
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा पुलकाञ्चितविग्रहः ।।७४।।

दूसरा प्राकृत ।।५९-६४।। नित्य शरीर का विनाश नहीं होता; परन्तु प्राकृत शरीर सदा नश्वर होता है। भगवन्! हम दोनों के शरीर नित्य हैं। हमारे अंशभूत जो अन्य जीव हैं, उनके शरीर त्रिगुणात्मिका प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण प्राकृत कहलाते हैं। प्राकृत शरीर सदा ही विनाशशील है। रुद्र आदि तुम्हारे अंश हैं और विष्णुरूपधारी मेरे अंश ।।६५-६६।। मेरे भी दो रूप हैं—द्विभुज और चतुर्भुज। चतुर्भुज मैं हूँ और वैकुण्ठधाम में लक्ष्मी तथा पार्षदों के साथ रहता हूँ। द्विभुज रूप से मैं श्रीकृष्ण कहलाता हूँ और गोलोक में गोपियों तथा राधा के साथ निवास करता हूँ। जो ब्रह्म को द्विविध बताते हैं उनके मत में दो प्रधान तत्त्व हैं—नित्य पुरुष तथा नित्या प्रकृति ईश्वरी। शिव! वे दोनों सदा परस्पर संयुक्त रहते हैं। वे ही सबके माता-पिता हैं ।।६७-६९।। वे दोनों अपनी इच्छा के अनुसार सशरीर और निःशरीर होते रहते हैं। दोनों ही सर्वस्वरूप हैं। जैसे पुरुष की नित्य प्रधानता हैं, उसी तरह प्रकृति की भी है। शम्भो! यदि तुम सती को पाना चाहते हो तो प्रकृति का स्तवन करो। तुमने पूर्वकाल में दुर्वासा को प्रसन्नतापूर्वक जिस स्तोत्र का उपदेश दिया था, वह दिव्य है और उसका कण्वशाखा में वर्णन किया गया है। तुम उसी के द्वारा जगदम्बा की आराधना करो। शिव! मेरे आशीर्वाद से तुम्हारे शोक का नाश हो ।।७०-७२।। तुम्हें कल्याण की प्राप्ति हो और तुम्हारे लिए विप्लव का कारण बना हुआ पत्नी के वियोग का यह रोग दूर हो जाय। पर्वतराज! ऐसा कहकर लक्ष्मीपति (विष्णु) चुप हो गये और महेश्वर ने प्रकृति की स्तुति करना आरम्भ किया। स्नान करके उन्होंने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर पुलकित शरीर होकर श्रीकृष्ण और ब्रह्मा को नमस्कार किया ।।७३-७४।।

Funding by IKS-MoE

महेश्वर उवाच--ओं नमः प्रकृत्यै । मन्त्रः ।

ब्राह्मि ब्रह्मस्वरूपे त्वं मां प्रसीद सनातनि । परमात्मस्वरूपे च परमानन्दरूपिणि ॥
भद्रे भद्रप्रदे दुर्गे दुर्गघ्ने दुर्गनाशिनि । पोतस्वरूपे जीर्णे त्वं मां प्रसीद भवार्णवे ॥७५॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशि सर्वबीजस्वरूपिणि । सर्वाधारे सर्वविद्ये मां प्रसीद जयप्रदे ॥७६॥
सर्वमङ्गलरूपे च सर्वमङ्गलदायिनि । समस्तमङ्गलाधारे प्रसीद सर्वमङ्गले ॥७७॥
निद्रे तन्द्रे क्षमे श्रद्धे तुष्टिपुष्टिस्वरूपिणि । लज्जे मेधे बुद्धिरूपे प्रसीद भक्तवत्सले ॥७८॥
वेदस्वरूपे वेदानां कारणे वेददायिनि । सर्ववेदाङ्गरूपे च वेदमातः प्रसीद मे ॥७९॥
दये जये महामाये प्रसीद जगदम्बिके । क्षान्ते शान्ते च सर्वान्ते क्षुत्पिपासास्वरूपिणि ॥८०॥
लक्ष्मि नारायणक्रोडे स्रष्टुर्वक्षसि भारति । मम क्रोडे महामाये विष्णुमाये प्रसीद मे ॥८१॥
कलाकाष्ठास्वरूपे च दिवारात्रिस्वरूपिणि । परिणामप्रदे देवि प्रसीद दीनवत्सले ॥८२॥
कारणे सर्वशक्तीनां कृष्णस्योरसि राधिके । कृष्णप्राणाधिके भद्रे प्रसीद कृष्णपूजिते ॥८३॥
यशःस्वरूपे यशसां कारणे च यशःप्रदे । सर्वदेवीस्वरूपे च नारीरूपविधायिनि ॥८४॥
समस्तकामिनीरूपे कलांशेन प्रसीद मे । सर्वसंपत्स्वरूपे च सर्वसंपत्प्रदे शुभे ॥८५॥

महेश्वर बोले—ओंनमः प्रकृत्यै (प्रकृति को नमस्कार है)। हे ब्राह्मि! तुम ब्रह्मस्वरूप एवं सनातनी हो, मुझ पर प्रसन्न हो जाओ। तुम परमात्मस्वरूप एवं परमानन्दरूप हो। दुर्गे! तुम भद्र (कल्याण) रूप, भद्रप्रद, दुर्गासुर की नाशिनी एवं संकटविनाशिनी हो, भवसागर को पार करने के लिए तुम नौका हो, मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ॥७५॥ सर्वस्वरूपे! सर्वेश्वरि! सर्वबीजस्वरूपिणि! सर्वाधारे! सर्वविद्ये! विजयप्रदे! मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ॥७६॥ सर्वमङ्गले! तुम समस्त मङ्गलरूप, समस्त मङ्गलदायिनी और समस्त मङ्गलों का आधार रूप हो, प्रसन्न हो जाओ ॥७७॥ भक्तवत्सले! तुम निद्रा, तन्द्रा, क्षमा, श्रद्धा, तुष्टि, पुष्टि, लज्जा, मेधा और बुद्धि रूप हो, प्रसन्न हो जाओ ॥७८॥ वेदजननि! तुम वेदस्वरूप, वेदों की कारण, वेददायिनी और सर्ववेदाङ्गरूप हो, मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ॥७९॥ जगदम्बिके! तुम दया, जया, महामाया, क्षान्ता, शान्ता एवं सबका अन्त करने वाली और क्षुधा-पिपसा स्वरूप हो, प्रसन्न हो जाओ ॥८०॥ विष्णुमाये! तुम नारायण के अङ्क में लक्ष्मी, ब्रह्मा के साथ भारती और मेरे अंक में महामाया हो, मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ॥८१॥ दीनवत्सले! तुम कला, दिशा, दिन तथा रात्रि स्वरूपा हो एवं (कर्मों के) परिणाम (फल) देने वाली हो, प्रसन्न हो जाओ ॥८२॥ तुम समस्त शक्तियों की कारण, श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर राधारूप, श्रीकृष्ण की प्राणों से भी अधिक प्रिय और श्रीकृष्ण से पूजित हो। भद्रे! प्रसन्न हो जाओ ॥८३॥ तुम यशःस्वरूप, यशों की कारणभूता, दश देने वाली समस्त देवीस्वरूप, नारी-रूप बनाने वाली और कलांश द्वारा समस्त कामिनीरूप हो, प्रसन्न हो जाओ। तुम समस्त सम्पतस्वरूपा समस्त सम्पदा देने वाली, शुभरूपा, परमानन्दरूप समस्त सम्पत्तियों की कारणभूता, दश-

Funding by IKS-MoE

प्रसीद परमानन्दे कारणे सर्वसंपदाम् । यशस्विनां पूजिते च प्रसीद यशसां निधे ॥८६॥
आधारे सर्वजगतां रत्नाधारे वसुंधरे । चराचरस्वरूपे च प्रसीद मम मा चिरम् ॥८७॥
योगस्वरूपे योगीशे योगदे योगकारणे । योगाधिष्ठात्रि[1] देवीशे प्रसीद सिद्धयोगिनि ॥८८॥
सर्वसिद्धिस्वरूपे च सर्वसिद्धिप्रदायिनि । कारणे सर्वसिद्धीनां सिद्धेश्वरि प्रसीद मे ॥८९॥
व्याख्यानं सर्वशास्त्राणां मतभेदे महेश्वरि । ज्ञाने[2] यदुक्तं तत्सर्वं क्षमस्व परमेश्वरि ॥९०॥
केचिद्वदन्ति प्रकृतेः प्राधान्यं पुरुषस्य च । केचित्तत्र मतद्वैधे व्याख्याभेदं विदुर्बुधाः ॥९१॥
महाविष्णोर्नाभिदेशे स्थितं तं कमलोद्भवम् । मधुकैटभौ महादैत्यौ लीलया हन्तुमुद्यतौ ॥९२॥
दृष्ट्वा स्तुतिं प्रकुर्वन्तं ब्राह्मणं रक्षितुं पुरा । बोधयामास गोविन्दं विनाशहेतवे तयोः ॥९३॥
नारायण त्वया शक्त्या जघान तौ महासुरौ । सर्वेश्वरस्त्वया सार्धमनीशोऽयं त्वया विना ॥९४॥
पुरा त्रिपुरसंग्रामे गगनात्पतिते मयि । त्वया च विष्णुना सार्धं रक्षितोऽहं सुरेश्वरि ॥९५॥
अधुना रक्ष मामीशे प्रदग्धं विरहाग्निना । स्वात्मदर्शनपण्येन[3] क्रीणीहि परमेश्वरि ॥९६॥

स्वियों द्वारा पूजित और यशों की निधि हो, प्रसन्न हो जाओ ॥८४-८६॥ तुम समस्त जगत् एवं रत्नों की आधारभूता वसुन्धरा हो, चर-अचर स्वरूपा हो, मुझ पर अविलम्ब प्रसन्न होओ ॥८७॥ सिद्धियोगिनि ! तुम योगस्वरूपा, योग की ईश्वरी, योगदायिनी, योग की कारणभूता एवं योग की अधिष्ठात्री देवी और देवियों की अधीश्वरी हो, प्रसन्न हो जाओ ॥८८॥ सिद्धेश्वरि ! तुम समस्त सिद्धिस्वरूपा, समस्त सिद्धि देने वाली, समस्त सिद्धियों की कारणभूता हो, प्रसन्न होओ ॥८९॥ महेश्वरि ! तुम समस्त शास्त्रों की व्याख्या रूप हो। ज्ञानस्वरूपे परमेश्वरि ! मैंने जो कुछ अनुचित कहा हो, वह सब तुम क्षमा करो ।.९०॥ कुछ लोग प्रकृति को प्रधान बतलाते हैं और कुछ पुरुष को, कुछ विद्वान् इन दो प्रकार के मतों में व्याख्याभेद को ही कारण मानते हैं ॥९१॥ पूर्वकाल में महाविष्णु के नाभिप्रदेश में स्थित कमल पर बैठे हुए ब्रह्मा को महादैत्य मधु-कैटभ मारने के लिए तैयार हो गये । यह देखकर तुम्हारी स्तुति करते हुए ब्रह्मा की रक्षा हेतु उन दोनों (दैत्यों) को मारने के लिए तुमने गोविन्द को जगा दिया ॥९२-९३॥

तब नारायण ने तुम शक्ति की सहायता से उन दोनों महासुरों का हनन किया । तुम्हारे सहयोग के कारण वे सर्वेश्वर कहलाते हैं और तुम्हारे बिना असमर्थ रहते हैं ॥९४॥ हे सुरेश्वरि ! जब त्रिपुरासुर से मेरा संग्राम हुआ था, उस समय आकाश से मेरे गिरने पर विष्णु के साथ रहकर तुमने ही मेरी रक्षा की थी ॥९५॥ ईश्वरि ! इस समय मैं तुम्हारी वियोगाग्नि में दग्ध हो रहा हूँ, मेरी रक्षा करो । परमेश्वरि ! अपने दर्शन का मूल्य देकर मुझे खरीद लो ॥९६॥ यह कहकर शिव चुप हो गये । तब उन्होंने आकाश

१क. °ष्ठातृदे° । २क. °ने ज्ञाने यदुक्तं तत्क्ष° । ३ ख. °पुण्ये° ।

Funding by IKS-MoE

इत्युक्त्वा विरतः शंभुर्ददर्श गगनस्थिताम् । रत्नसाररथस्थां तां देवीं शतभुजां मुदा ॥९७॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभां रत्नाभरणभूषिताम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां जगतां मातरं सतीम् ॥९८॥
दृष्ट्वा तां विरहासक्तं पुनस्तुष्टाव सत्वरम् । दुःखं निवेदयामास प्ररुदन्विरहोद्भवम् ॥९९॥
दर्शयामासास्थिमालां स्वाङ्गस्थं भस्मभूषणम् । कृत्वा बहु परीहारं तोषयामास सुन्दरीम् ॥१००॥
नारायणश्च ब्रह्मा च धर्मः शेषः सुरर्षयः । शिवं रक्षेश्वरीत्युक्त्वा तुष्टुवुस्ते सनातनीम् ॥१०१॥
बभूव परितुष्टा सा तेषां स्तोत्रेण तत्क्षणम् । उवाच कृपया शंभुं प्राणेशं प्राणवल्लभा ॥१०२॥

प्रकृतिरुवाच

स्थिरो भव महादेव मम प्राणाधिके प्रभो । भवानात्मा च योगीशः स्वामी जन्मनि जन्मनि ॥१०३॥
अहं शैलेन्द्रकामिन्यां लब्ध्वा जन्म महेश्वर । तव पत्नी भविष्यामि मुञ्च त्वं विरहज्वरम् ॥१०४॥
इत्युक्त्वा शिवमाश्वास्य चान्तर्धानं चकार सा । सुराजग्मुस्तमाश्वास्यलज्जानम्रात्मकं-
धरम् ॥१०५॥
हर्षान्तरात्मा गिरीशः कैलासं तु जगाम ह । ननर्त सगणस्तूर्णं संत्यज्य विरहज्वरम् ॥१०६॥
इदं शिवकृतं स्तोत्रं प्रकृत्या यः पठेन्नरः । न भवेत्कामिनीभेदस्तस्य जन्मनि जन्मनि ॥१०७॥

में विराजमान उस देवी प्रकृति को प्रसन्नतापूर्वक देखा, जो रत्नों के रथ पर स्थित, सौ भुजाओं से युक्त, प्रसन्नचित्त, तपाये सुवर्ण की भाँति देदीप्यमान, रत्नों के आभूषणों से भूषित, मन्द मुसकान समेत प्रसन्नमुख, जगत् की माता एवं सती थी। विरहव्याकुल शिव ने उन्हें देखकर शीघ्रता से पुनः स्तुति की और रोदन करते हुए अपनी विरह व्यथा बतायी ॥९७-९९॥ अस्थियों की माला और अपने अंगों में लगे भूषणरूप भस्म को भी उन्हें दिखाया तथा अनेक प्रकार से मनुहार करके उन्होंने सुन्दरी सती को सन्तुष्ट किया ॥१००॥ उस समय नारायण, ब्रह्मा, धर्म, शेष, देवता और ऋषियों ने 'हे ईश्वरि ! शिव की रक्षा करो, ऐसा कहते हुए उस देवी की स्तुति की ॥१०१॥ उन लोगों के स्तोत्र से वह देवी उसी क्षण प्रसन्न हो गयीं और अपने प्राणेश्वर शिव से वह प्राणवल्लभा बोलीं ॥१०२॥

प्रकृति ने कहा—महादेव ! आप धैर्य धारण करें। प्रभो ! आप मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। योगीश्वर ! आप ही आत्मा तथा जन्म-जन्म में मेरे स्वामी हैं। महेश्वर ! मैं पर्वतराज हिमालय की पत्नी मेना से जन्म लेकर आपकी पत्नी बनूंगी। अतः आप वियोगसंताप को त्याग दें ॥१०३-१०४॥ यह कहकर शिव को आश्वासन देकर वह देवी अन्तर्हित हो गयीं। पश्चात् देवों ने मी लज्जा से कन्धे झुकाये शिव को आश्वासन दिया और अपने घर चले गये ॥१०५॥ गिरीश कैलाश पर्वत पर चले गये और शीघ्र ही विरह-ज्वाला को त्याग कर गणों समेत नत्य करने लगे ॥१०६॥ इस शिवकृत-प्रकृति स्तोत्रका जो पाठ करता है, उसे किसी भी जन्म में पत्नीवियोग

Funding by IKS-MoE

इह लोके सुखं भुक्त्वा स याति शिवमन्दिरम् । धर्मार्थकाममोक्षांश्च लभते नात्र संशयः ॥१०८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० शंकरशोकापनोदनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा सगणोऽपि हिमालयः । विस्मितो भार्यया सार्धं जहास पार्वती स्वयम् ॥१॥
अरुन्धती च तां मेनां बोधयामास कातराम् । निराहारां च रुदतीं जहौ शोकं मुदा च सा ॥२॥
अरुन्धतीं भोजयित्वा बुभुजे भोगमुत्तमम् । सर्वं प्रहृष्टमनसा मङ्गलं च चकार ह ॥३॥
शैलः संभृतसंभारो वसिष्ठस्याऽऽज्ञया प्रिये । पत्रं प्रस्थापयामास नानास्थानं त्वरान्वितः ॥४॥
ततः प्रस्थापयामास शिवं मङ्गलपत्रिकाम् । नानाप्रकारद्रव्याणि वाह्यानि च चकार ह ॥५॥

नहीं होता है ॥१०७॥ इस लोक में आजीवन सुखोपभोग करके अन्त में शिव-लोक में चला जाता है और धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं ॥१०८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में शङ्कर-शोक नाशवर्णन नामक तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४३॥

अध्याय ४४

पार्वती का दान

श्रीकृष्ण बोले—वसिष्ठ की बात सुनकर पत्नी और गण समेत हिमालय को आश्चर्य हुआ, किन्तु स्वयं पार्वती हँस रही थीं ॥१॥ अरुन्धती ने भी कातर एवं निराहार होकर रोदन करती हुई मेना को समझाया। तब उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक शोक का त्याग कर दिया तथा अरुन्धती को उत्तम भोजन कराकर स्वयं भी भोजन किया। अनन्तर वे अत्यन्त प्रसन्नचित्त से मङ्गल कार्यों का सम्पादन करने लगीं ॥२-३॥ प्रिये ! तदुपरान्त वसिष्ठ की आज्ञा से हिमवान् ने वैवाहिक सामग्री एकत्रित की और बड़ी शीघ्रता से विभिन्न स्थानों में निमन्त्रण-पत्र भिजवाया ॥४॥ इसके बाद शिव के पास मङ्गल-पत्रिका भिजवायी, अनेक प्रकार के द्रव्य और वाहन एकत्रित

तन्दुलानां च शैलान्वै पृथुकानां च सुन्दरि । तैलानां च घृतानां च दध्नां वापीश्चकार ह ॥६॥
गुडानामासवानां च क्षीराणां च तथैव च । अथो हैयङ्गवीनानां लवणानां परं मुदा[1] ॥७॥
लड्डुकानां शर्कराणां स्वस्तिकानां तथैव च । यवचूर्णादिपिष्टानां घृतपक्वानि तानि च ॥८॥
नानाप्रकारवस्त्राणि वह्निशौचानि यानि च । महारत्नप्रवालानि सुवर्णरजतानि च ॥९॥
द्रव्याण्येतानि शैलेन्द्रः कृत्वा तु विधिपूर्वकम् । मङ्गलं कर्तुमारेभे तत्रैव मङ्गले दिने ॥१०॥
संस्कारं कारयामासुः पार्वतीं पर्वतस्त्रियः । स्नापयित्वा वस्त्रयुगं धारयामासुराशु ताः ॥११॥
कारयित्वा सुवेषां च रत्नभूषणभूषिताम् । दर्पणं धारयामासुर्दूर्वाक्षतसमन्वितम् ॥१२॥
ददुश्चालक्तकं चारु पादाङ्गुलिषु पादयोः । गण्डे पत्रावलीं रम्यां नेत्रे कज्जलमुज्ज्वलम् ॥१३॥
कबरीं कारयामासुर्मालतीमाल्यवेष्टिताम् । पट्टसूत्रपिनद्धां तां वामवक्त्रां मनोहराम् ॥१४॥
एतस्मिन्नन्तरे राधे समाजग्मुः सुरेश्वराः । नीत्वा त्रिनेत्रं तत्रैव रत्नयानस्थमीश्वरम् ॥१५॥
शैलः संभृतसंभारान्संभाषयितुमीश्वरान् । शैलान्प्रस्थापयामास ब्राह्मणानपि पूजितान् ॥१६॥
प्राङ्गणं कारयामास रम्भास्तम्भैः समन्वितम् । पट्टसूत्रसंनिबद्धरसालपल्लवान्वितैः ॥१७॥
फलपल्लवसंयुक्तैः कलशैर्जलसंयुतैः । चन्दनागुरुकस्तूरीसुचारुकुसुमान्वितैः ॥१८॥

किये गये ॥५॥ हे सुन्दरि ! चावलों और चिउरों के पहाड़ बना दिये गये । तेल, घी और दही की बावलियाँ बना दी गईं ॥६॥ गुड़, आसव, दूध, मक्खन, नमक, लड्डू, शक्कर, स्वस्तिक (विशेष प्रकार की मिठाई) घी में पकायी गयी यव के आटे की पीठी, अनेक प्रकार के अग्निविशुद्ध वस्त्र, श्रेष्ठ रत्न, मूँगे, सोने, चाँदी—इन द्रव्यों को पर्वतराज ने विधिपूर्वक एकत्रित करके वहीं शुभ दिन में मांगलिक कर्म आरम्भ किया ॥७-१०॥ पर्वत की स्त्रियों ने पार्वती का संस्कार कराया । पार्वती को स्नान करवाकर शीघ्र दो वस्त्र धारण कराये ॥११॥ सुन्दर वेश बनवाकर रत्नों के आभूषणों से विभूषित किया । फिर दूब और अक्षत के साथ दर्पण धारण कराया ॥१२॥ दोनों पैरों की अंगुलियों में महावर लगवाया । कपोल पर रमणीय पत्रावली तथा नेत्रों में काजल लगवाया ॥१३॥ मालती की माला से आवेष्टित चोटी बनवायी । उस मनोहर सुमुखी को रेशम का धागा बाँध दिया ॥१४॥ इतने में देवेश्वरगण विविध वाहनों पर सवार हो, रत्नमय रथ पर आरूढ हुए शंकर को साथ लिए वहीं पहुंच गये ॥१५॥

हिमालय ने बातचीत करने में समर्थ पर्वतों तथा पूजित ब्राह्मणों को उन लोगों के स्वागत के लिए सामग्रियों के साथ भेजा ॥१६॥ आंगन को कदली-स्तम्भों से सुसज्जित कराया । उनमें रेशमी धागे से आम के पल्लव बाँधे गये ॥१७॥ फल, पल्लव एवं जल से पूर्ण कलशों, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, सुन्दर पुष्प और

---

[1] ख. मुने ।

Funding by IKS-MoE

मालतीमाल्यसंयुक्तैः संयुक्तं सुमनोहरम् । देवेश्वरान्पुरो दृष्ट्वा प्रणनाम हिमालयः ॥१९॥
रत्नसिंहासनं दातुं प्रेरयामास किंकरान् । नारायणो हि भगवानुवास पार्षदैः सह ॥२०॥
विनतानन्दनात्तूर्णमवरुह्य चतुर्भुजः । चतुर्भुजैः पार्षदैश्च रत्नभूषणभूषितैः ॥२१॥
रत्नमुष्टिनिबद्धैश्च सेवितः श्वेतचामरैः । ऋषिश्रेष्ठैः सुरश्रेष्ठैः स्तूयमानश्च संसदि ॥२२॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकारकः । उवास च तदभ्याशे ब्रह्मा देवगणैः सह ॥२३॥
ऋषयो मुनयश्चैव सम्षुर्मङ्गले स्थले । एतस्मिन्नन्तरे शंभुरवरुह्य रथादहो ॥२४॥
रत्नासने समुत्तिष्ठन्ददर्श पर्वतालयम् । समाजग्मुः शिवं द्रष्टुं शैलेन्द्रनगरस्त्रियः ॥२५॥
वृद्धा बाला युवत्यश्च वस्त्राभरणभूषिताः । काश्चित्कज्जलहस्ताश्च वस्त्रहस्ताश्च काश्चन ॥२६॥
काश्चित्सिन्दूरहस्ताश्च काश्चित्कङ्कतिकाकराः । वेषार्धभूषिताः काश्चित्काश्चिन्नैवार्धभूषिताः॥२७॥
काश्चिन्निर्भूषिताः काश्चित्सर्वाभरणभूषिताः । सर्वा आगत्य संतस्थुः सस्मिताः पर्वतालये ॥२८॥
ऋषिकन्या देवकन्या नागकन्या मनोहराः । गन्धर्वशैलकन्याश्च राजकन्याः समागताः ॥२९॥
सर्वा अप्सरसो दिव्या रम्भाद्याः समुपस्थिताः । मेना कन्यागणैः सार्धं ददर्श शंकरं वरम् ॥३०॥
चारुचम्पकवर्णाभमेकवक्त्रं त्रिलोचनम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं रत्नाभरणभूषितम् ॥३१॥
चन्दनागुरुकस्तूरीचारुकुङ्कुमभूषितम् । मालतीमाल्यसंयुक्तं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् ॥३२॥

मालती मालाओं से आंगन को सुशोभित किया गया । देवेश्वरों को सामने देखकर हिमालय ने उन्हें प्रणाम किया और सेवकों को आज्ञा दी कि इन्हें रत्न-सिंहासन प्रस्तुत किये जायँ । भगवान् नारायण अपने पार्षदों समेत आये ॥१८-२०॥ विनतानन्दन गरुड़ की पीठ से तत्काल उतर कर चारभुजाधारी नारायण रत्न-सिंहासन पर अवस्थित हुए । रत्नमय आभूषणों से विभूषित चारभुजावाले पार्षद रत्नमयी मुट्ठी में बँधे हुए श्वेत चामरों से उनकी सेवा कर रहे थे। उस समाज में श्रेष्ठतम ऋषि और बड़े-बड़े देवता उनकी स्तुति कर रहे थे। भगवान् का प्रसन्नमुख मन्द मुस्कान से सुशोभित था और वे भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए कातर जान पड़ते थे । उनके पास ही देवताओं के साथ ब्रह्मा जी भी बैठे ॥२१-२३ । ऋषि और मुनि भी मंगलमय स्थान पर विराजमान हुए । इसी बीच शिव ने रथ से उतर कर रत्नसिंहासन पर बैठते हुए, पर्वतराज की ओर देखा । तत्पश्चात् शिव को देखने के लिए शैलेन्द्रनगर की स्त्रियाँ आयीं ॥२४-२५॥ उनमें वृद्धा, बालिकायें, युवतियाँ सभी वस्त्रों एवं आभूषणों से भूषित थीं । कुछ हाथों में काजल लिये, कुछ वस्त्र लिये, कुछ सिन्दूर लिये, कुछ हाथों में कंघी लिये, कुछ आधे वेष बनाये, कुछ आधे वेष भी न बनाये, कुछ अपने को बिना सजाये समस्त आभूषणों से सुशोभित होकर आयी थीं । वे सभी पर्वत-भवन में मुसकराती हुई अवस्थित हुईं ॥२६-२८॥ ऋषियों, देवों, नागों, गन्धर्वों, पर्वतों और राजाओं की भी मनोहर कन्यायें वहाँ आ पहुँची ॥२९॥ रम्भा आदि समस्त दिव्य अप्सरायें भी उपस्थित हुईं । कन्यासमूहों के साथ मेना ने भी दूलह शिव को देखा, जो चारु चम्पा पुष्प के समान रूपरङ्गवाले, एकमुख, तीन नेत्रवाले, मन्दहास समेत प्रसन्नमुख, रत्नों के आभूषणों से सुभूषित, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी एवं चारु कुंकुम से अलंकृत,

वह्निशौचेनातुलेन चातिसूक्ष्मेण चारुणा । अमूल्यवस्त्रयुग्मेन विचित्रेणातिभूषितम् ॥३३॥
रत्नदर्पणहस्तं च कज्जलोज्ज्वललोचनम् । सर्वया प्रभयाऽऽच्छन्नमतीव सुमनोहरम् ॥३४॥
अतीव तरुणं रम्यैर्भूषिताङ्गैश्च भूषितम् । बिभ्रतं रूपमतुलं परं नारायणाज्ञया ॥३५॥
योगस्वरूपं योगेशं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम् । स्वेच्छामयं गुणातीतं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥३६॥
गुणभेदाद्रूपभेदं धत्तेऽनन्तमरूपकम् । तारणं तं भवस्थानां सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ॥३७॥
सर्वाधारं सर्वबीजं सर्वेशं सर्वजीवनम् । साक्षिरूपं निरीहं च परमानन्दमक्षरम् ॥३८॥
आद्यन्तमध्यरहितं सर्वाद्यं सर्वरूपकम् । दृष्ट्वा जामातरं मेना जहौ शोकं मुदाऽन्विता ॥३९॥
प्रशशंसुर्युवत्यश्च धन्या धन्या सतीति ताः । दुर्गा भाग्यवतीत्येवमूचुः काश्चन कन्यकाः ॥४०॥
कामेन काश्चित्कामिन्यो मौनीभूताश्च स्तम्भिताः। न दृष्टो वर इत्येवमस्माभिर्ज्ञानिगोचरे ॥४१॥
काश्चिन्निमेषरहिता मूर्च्छामापुश्च काश्चन । निनिन्दुः स्वपतिं काश्चित्स्वेच्छां चक्रुश्च काश्चन ॥४२॥
काश्चिद्भावेन रुरुदुः पुलकाञ्चितविग्रहाः । जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४३॥
दृष्ट्वा शंकररूपं च प्रहृष्टाः सर्वदेवताः । नानाप्रकारवाद्यानि चारूणि मधुराणि च ॥४४॥
वादका वादयामासुर्नानाशिल्पेन तत्र वै । एतस्मिन्नन्तरे दुर्गां शैलान्तःपुरचारिका ॥४५॥

मालती की माला, उत्तम रत्नों के समुज्ज्वल मुकुट से प्रकाशित और अग्निविशुद्ध, अनुपम, अतिसूक्ष्म, सुन्दर, विचित्र एवं अमूल्य युगल वस्त्रों से सुशोभित थे ॥३०-३३॥ उन्होंने हाथ में रत्न दर्पण ले रखा था। काजल से नेत्रों की शोभा बढ़ गई थी। पूर्ण प्रभा से आच्छादित होने के कारण वे अत्यन्त मनोहर दिखाई देते थे ॥३४॥ उनकी अवस्था अत्यन्त तरुण थी। वे भूषणभूषित रमणीय अंगों से बड़ी शोभा पा रहे थे। उस समय उन्होंने नारायण की आज्ञा से परम सुन्दर अनुपम रूप धारण कर रखा था। शंकर योगस्वरूप, योगेश्वर, योगीन्द्रों के गुरु के भी गुरु, स्वतन्त्र, गुणातीत तथा सनातन ब्रह्मज्योति हैं ॥३५-३६॥ वे गुणों के भेद से अनन्त भिन्न-भिन्न रूप धारण करते हैं, तथापि रूपरहित हैं। संसार-सागर में डूबे हुए प्राणियों का उद्धार करने वाले हैं तथा जगत् की सृष्टि, पालन एवं संहार के कारण हैं ॥३७॥ सबके आधार, सबके बीज, सबके ईश, सबके जीवन, साक्षिरूप निरीह, परमानन्द, अविनाशी, आदि, अन्त और मध्य से रहित, सबके आदिकारण तथा सर्वरूप हैं। ऐसे जामाता को देखकर हर्षित मेना ने शोक को त्याग दिया ॥३८-३९॥

वे युवतियाँ 'पार्वती धन्य हैं, धन्य हैं'--कहकर प्रशंसा करने लगीं। कुछ कन्याओं ने 'दुर्गा भाग्यवती हैं' ऐसा कहा ॥४०॥ कुछ कामिनियाँ कामभाव से युक्त हो मौन एवं स्तब्ध रह गईं और कितनी ही बोल उठीं--'हमने अपने जीवन में ऐसा वर नहीं देखा था' ॥४१॥ कुछ अपलक (एकटक) नेत्रों से देखने लगीं और कुछ मूर्च्छित हो गयीं। कुछ अपने पतियों की निन्दा करने लगीं, कुछ उनके लिए इच्छुक हो रही थीं ॥४२॥ कुछ भावावेश में रोमाञ्चित होकर रोदन कर रही थीं। गन्धर्वराज गायन कर रहे थे और अप्सरायें नाच रही थीं ॥४३॥ शिव के रूप-सौन्दर्य को देखकर सभी देवगण बहुत प्रसन्न थे। बाजे बजाने वाले ने भाँति-भाँति की कलायें दिखाते हुए वहाँ सुन्दर और मधुर वाद्य बजा रहे थे। इसी समय हिमालय के अन्तः पुर की दासियाँ दुर्गा

Funding by IKS-MoE

बहिश्चकार सद्रत्नासनस्थां[1] वस्त्रवेष्टिताम् । कस्तूरीबिन्दुभिः सान्द्रसिन्दूरबिन्दुभूषिताम् ।।४६।।
चारुचन्दनचन्द्राभां नम्रभालस्थलोज्ज्वलाम् । रत्नेन्द्रसारहारेण वक्षःस्थलविभूषिताम् ।।४७।।
त्रिनेत्रदत्तनेत्रां तामनन्यवारितलोचनाम् । अतीषद्धास्ययुक्तास्यां सकटाक्षां मनोहराम् ।।४८।।
रत्नकेयूरवलयरत्नकङकणमण्डिताम् । रत्नपाशकसंसक्तां क्वणन्मञ्जीररञ्जिताम् ।।४९।।
अमूल्यातुल्यचित्राढ्यवस्त्रयुग्मसुशोभिताम् । सद्रत्नकुण्डलाभ्यां च चारुगण्डस्थलोज्ज्वलाम् ।।५०।।
मणिसारप्रभामुष्टदन्तराजिविराजिताम् । रत्नदर्पणहस्तां च क्रीडापद्मं विघूर्णतीम् ।।५१।।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङकुमेनाङ्गचर्चिताम् । मुदिता ददृशुः सर्वे जगदाद्यां जगत्प्रसूम् ।।५२।।
त्रिनेत्रो नेत्रकोणेन तां ददर्श मुदाऽन्वितः । सर्वां सत्याकृतिं दृष्ट्वा विजहौ विरहज्वरम् ।।५३।।
शिवः सर्वं विसस्मार दुर्गासंन्यस्तमानसः । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो हर्षाश्रुयुक्तलोचनः ।।५४।।
एतस्मिन्नन्तरे शैलः प्रहृष्टः सपुरोहितः । तं वरं वरयामास वस्त्रचन्दनभूषणैः ।।५५।।

को बाहर ले आयीं। वे वस्त्रवेष्टित होकर रत्नसिहासन पर बैठी थीं। उनके मुखमण्डल का कस्तूरी तथा स्निग्ध सिन्दूर के बिन्दुओं से शृंगार किया गया था। चारु चन्दन से चर्चित चन्द्र सदृश आभा वाले आनम्र भालदेश से उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। श्रेष्ठ रत्नों के सार से निर्मित हार उनके वक्षःस्थल की शोभा बढ़ा रहा था। वे त्रिलोचन शिव की ओर कनखियों से देख रही थीं। शिव के सिवा और कहीं उनकी दृष्टि नहीं जा रही थीं। उनके मुख पर अत्यन्त मन्द मुसकान की आभा बिखरी हुई थी। वे कटाक्ष करती हुई मनोहर जान पड़ती थीं। वे रत्नों के बने केयूर, कड़े तथा कंगन से विभूषित थीं। वे रत्नों की बनी हुई करधनी एवं झनकारते हुए मंजीर पहने हुई थीं ।।४४-४९।। वे बहुमूल्य, तुलनारहित एवं चित्र-युक्त दो वस्त्रों से सुशोभित थीं। उनके सुन्दर कपोल उत्तम रत्ननिर्मित कुण्डलों से जगमगा रहे थे ।।५०।। वे मणि के सारभाग की प्रभा को छीन लेने वाली दन्तपंक्ति से विराजित थीं। वे एक हाथ में रत्नमय दर्पण लिये हुई थीं और दूसरे में क्रीड़ाकमल लेकर घुमा रही थीं ।।५१।। उनके अंग चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से चर्चित थे। ऐसी अलौकिक रूपवाली जगत् की आदिकारणभूता जगदम्बा को सब लोगों ने प्रसन्नता के साथ देखा ।।५१।। हर्षान्वित शंकर ने भी नेत्र के कोने से उन्हें देखा। शिवा की सम्पूर्ण आकृति सती से सर्वथा मिलती-जुलती थी। उन्हें देखकर शिव ने विरहज्वर का परित्याग कर दिया ।।५३।।

दुर्गा में उनका मन इस भाँति आसक्त हो गया कि वे सब कुछ भूल गये, उनके शरीर में रोमाञ्च हो आया और आँखों में हर्ष के आँसू छलक आये ।।५४।। इसी बीच पुरोहित समेत अत्यन्त हर्षित हिमालय ने वस्त्र, चन्दन एवं आभूषणों से वर का वरण किया ।।५५।। भक्तिपूर्वक पाद्य आदि उपचार अर्पित किये तथा दिव्य

---

[1] ख. रत्नवेदिका° ।

भक्त्या पाद्यादिभिर्माल्यैर्दिव्यगन्धमनोहरैः । ततः शीघ्रं वेदमन्त्रैः संप्रदानं चकार ताम् ॥५६॥
यौतुकानि ददौ तस्मै रत्नानि विविधानि च । चारुरत्नविकाराणि पात्राणि सुन्दराणि च ॥५७॥
गवां लक्षं गजेन्द्राणां सहस्राणि च राधिके । रत्नकम्बलयुक्तानि साङ्कुशानि मुदाऽन्वितः ॥५८॥
त्रिंशल्लक्षं हयानां च सज्जितानामकातरः । दासीनामनुरक्तानां लक्षं सद्रत्नभूषितम् ॥५९॥
शतं द्विजबटूनां च पार्वतीभ्रातृतुल्यकम् । रथानां च शतं रम्यं रत्नेन्द्रसारनिर्मितम् ॥६०॥
पार्वतीं वस्तुसहितां स्वस्तीत्युच्चार्य शंकरः । जग्राहाऽऽनन्दमनसा यत्नाच्छैलसमर्पिताम् ॥६१॥
हिमालयः सुतां दत्त्वा परिहारं चकार तम् । माध्यंदिनोक्तस्तोत्रेण तुष्टाव संपुटाञ्जलिः ॥६२॥

हिमालय उवाच

प्रसीद दक्षयज्ञघ्न नरकार्णवतारक । सर्वात्मरूप सर्वेश परमानन्दविग्रह ॥६३॥
गुणार्णव गुणातीत गुणयुक्त[1] गुणेश्वर । गुणबीज महाभाग प्रसीद गुणिनां वर ॥६४॥
योगाधार योगरूप योगज्ञ योगकारण । योगीश योगिनां बीज प्रसीद योगिनां गुरो ॥६५॥

गन्ध वाली मालाओं से वर को अलंकृत किया। तदनन्तर शीघ्र ही वेदमंत्रों के उच्चारणपूर्वक उनके हाथ में अपनी कन्या का दान कर दिया ॥५६॥ और राधिके! हर्ष से भरे हुए हिमालय ने उदारतापूर्वक दहेज में उन्हें अनेक प्रकार के रत्न, सुन्दर रत्नों के बने हुए मनोहर पात्र, एक लाख गौ, रत्नजटित तथा अंकुश से युक्त एक सहस्र गजराज, सजे-सजाये तीन लाख घोड़े, श्रेष्ठ रत्नों से अलंकृत लाखों अनुरक्त दासियाँ, पार्वती के लिए छोटे भाई के समान प्रिय एक सौ ब्राह्मण बटु और श्रेष्ठ रत्नों के सारतत्त्व से निर्मित सौ रमणीय रथ दिये। पूर्वोक्त वस्तुओं के साथ शैलराज द्वारा यत्नपूर्वक दी हुई पार्वती को शंकर ने प्रसन्न मन से 'स्वस्ति' कहकर ग्रहण किया।

हिमालय ने कन्या दान करके शंकर की परिहार नामक स्तुति की। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर माध्यन्दिन शाखा में वर्णित स्तोत्र को पढ़ते हुए उनकी स्तुति की ॥५७-६२॥

हिमालय बोले—हे दक्षयज्ञ के नाशक! नरक के समुद्र से तारने वाले! आप सबके आत्मस्वरूप, सर्वाधीश्वर और परमानन्दमय शरीर वाले हैं। मुझ पर प्रसन्न हों ॥६३॥ आप गुणों के सागर, गुणों से परे, गुणयुक्त, गुणों के स्वामी, गुणों के कारण और गुणियों में श्रेष्ठ हैं। महाभाग! मुझ पर प्रसन्न हों ॥६४॥ योग के आधार, योगरूप, योग के ज्ञाता, योग के कारण, योगियों के ईश, योगियों के आदिकारण एवं योगियों के गुरु हैं। आप मुझ पर प्रसन्न हों ॥६५॥ आप प्रलयरूप, प्रलय के एकमात्र आदि तथा उसके कारण हैं। फिर प्रलय

---

[1] ख. गणे°।

Funding by IKS-MoE

प्रलय प्रलयाद्यैक भवप्रलयकारण । प्रलयान्ते सृष्टिबीज प्रसीद परिपालक ॥६६॥
संहारकाले घोरे च सृष्टिसंहारकारण । दुर्निवार्यं दुराराध्य चाऽऽशुतोष प्रसीद मे ॥६७॥
कालस्वरूप कालेश काले च फलदायक । कालबीजैक कालघ्न प्रसीद कालपालक ॥६८॥
शिवस्वरूप शिवद शिवबीज शिवाश्रय । शिवभूत शिवप्राण प्रसीद परमाश्रय ॥६९॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा विरराम हिमालयः । प्रशशंसुः सुराः सर्वे मुनयश्च गिरीश्वरम् ॥७०॥
हिमालयकृतं स्तोत्रं संयतो यः पठेन्नरः । प्रददाति शिवस्तस्मै वाञ्छितं राधिके ध्रुवम् ॥७१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० पार्वतीसंप्रदाने
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

अथ वेदविधानेन संस्थाप्य वह्निमीश्वरः । यज्ञं चकार तत्रैव वामे संस्थाप्य पार्वतीम् ॥१॥
निवृत्ते विधिवद्यज्ञे विप्रेभ्यो दक्षिणां ददौ । शिवः शतसुवर्णानि वृन्दावनविनोदिनि ॥२॥

के अन्त में सृष्टि के बीजरूप हैं और उस सृष्टि का पूर्णतः परिपालन करने वाले हैं। मुझ पर प्रसन्न हों ॥६६॥
आप घोर संहारसमय में सृष्टि संहार के कारण, दुर्निवार, दुराराध्य एवं आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न होनेवाले) हैं। मुझ पर
प्रसन्न हों ॥६७॥ आप कालस्वरूप, कालेश, समय पर फलदायक, काल के एकमात्र कारण, कालनाशक एवं काल-
पोषक हैं। मुझ पर प्रसन्न हों ॥६८॥ आप कल्याणरूप, कल्याणदायक, कल्याण के बीज, कल्याण के आश्रय, कल्याण-
मय, कल्याण-स्वरूप प्राण, और परम आश्रय हैं; प्रसन्न हों ॥६९॥ इस भाँति स्तुति करके हिमालय चुप हो गये।
समस्त देवगण और मुनियों ने भी गिरीश शिव की प्रशंसा की ॥७०॥ राधिके! जो मनुष्य संयत भाव से
हिमालय कृत स्तोत्र का पाठ करता है, उसके लिए शिव निश्चित ही मनोवांछित वस्तु प्रदान करते हैं ॥७१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में पार्वती-प्रदान नामक चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४४॥

अध्याय ४५

शंकर का विवाह

श्रीकृष्ण बोले—अनन्तर वैदिक विधि से अग्नि-संस्थापनपूर्वक पार्वती को वामभाग में बैठाकर शिव
ने यज्ञ (हवन कार्य) सम्पन्न किया। वृन्दावन-विनोदिनि! यज्ञ-समाप्ति के उपरान्त शिव ब्राह्मण को सौ सुवर्ण

Funding by IKS-MoE

अथ प्रदीपमानीय शैलेन्द्रनगरस्त्रियः । निर्वर्त्य मङ्गलं कर्म गृहं संप्राप्य दम्पती ॥३॥
कृत्वा जयध्वनिं प्रीत्या शुभनिर्मञ्छनादिकम् । सस्मिताः सकटाक्षाश्च पुलकाञ्चितविग्रहाः ॥४॥
वासगेहं संप्रविश्य ददृशुः कामिनीगणाः । शंकरं रूपवेषाढ्यं रत्नभूषणभूषितम् ॥५॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाञ्चितविग्रहम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं सकटाक्षं मनोहरम् ॥६॥
अपूर्वसूक्ष्मवेषाढ्यं सिन्दूरबिन्दुभूषितम् । चारुचम्पकवर्णाभं सर्वावयवसुन्दरम् ॥७॥
नवीनयौवनस्थं च मुनीन्द्रचित्तमोहनम् । सरस्वतीं च लक्ष्मीं च सावित्रीं जाह्नवीं रतिम् ॥८॥
अदितिं च शचीं चैव लोपामुद्रामरुन्धतीम् । अहल्यां तुलसीं स्वाहां रोहिणीं च वसुंधराम् ॥९॥
शतरूपां च संज्ञां च सतीस्त्रीणां च षोडश । देवकन्या नागकन्या मुनिकन्या मनोहराः ॥१०॥
या याः स्थितास्तत्र तासां संख्यां कर्तुं च कः क्षमः । ताभी रत्नासने दत्ते तत्रोवास शिवो मुदा ।
तमुचूः क्रमशो देव्यो मधुरोक्ति सुधामिव ॥११॥

सरस्वत्युवाच

प्राप्ता सती महादेवाधुना प्राणाधिका मुदा । दृष्ट्वा प्रियास्यं चन्द्राभं संतापं त्यज कामुक ॥१२॥
कालं गमय कालेश सदा संश्लेषपूर्वकम् । विश्लेषस्ते न भविता सर्वकालं ममाऽऽशिषा ॥१३॥

(सोने के सिक्के) दक्षिणा में समर्पित किये ॥१-२॥ तत्पश्चात् शैलेन्द्र-नगर की स्त्रियों ने मांगलिक कृत्य का सम्पादन किया। फिर वे उन दम्पति (शिव-पार्वती) को घर ले गईं ॥३॥ उन लोगों ने जय-जयकार की ध्वनि एवं शुभ निर्मञ्छन आदि करके मुसकराहट के साथ कटाक्षपूर्वक शिव की ओर देखा। उस समय वे पुलकायमान हो गई थीं। वासगृह में प्रवेश करके कामिनियाँ शिव के रत्नाभूषणभूषित रूप-वेष की सुन्दरता देखने लगीं, जो चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम शरीर में लगाये, मन्दहास समेत प्रसन्नमुख और कटाक्ष सहित मनोहर थे ॥४-६॥ उनकी वेश-भूषा अपूर्व एवं सूक्ष्म थी। वे सिन्दुर-बिन्दुओं से विभूषित थे। उनकी गौर कान्ति मनोहर चम्पा की आभा को तिरस्कृत कर रही थी। वे सर्वाङ्ग-सुन्दर नवीन यौवन से सम्पन्न एवं मुनीन्द्रों के भी चित्त को मोहित करने वाले थे। वहाँ सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, गङ्गा, रति, अदिति, इन्द्राणी, लोपामुद्रा, अरुन्धती, अहल्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, वसुंधरा, शतरूपा, और संज्ञा—ये सोलह पतिव्रतायें उपस्थित थीं। इनके सिवा मनोहर देवकन्यायें, नागकन्यायें और मुनिकन्यायें भी आयी थीं। उस समय जो महिलायें वहाँ विद्यमान थीं उन सबकी संख्या बताने में कौन समर्थ है? उनके दिये हुए रत्नसिंहासन पर शिव बड़ी प्रसन्नता से बैठ गये। उस समय सभी देवियों ने क्रमशः अमृत के समान मधुर वचन कहे ॥७-११॥

सरस्वती बोलीं—हे महादेव! इस समय आपकी प्राणप्रिया सती आपको हर्ष से मिल गयी हैं, अतः हे कामुक! चन्द्रमा के समान कान्ति वाले प्रिया के मुख को देखकर सन्ताप दूर कर दें ॥१२॥ हे काल के स्वामी! सदा संयोगपूर्वक समय व्यतीत कीजिए और मेरे आशीर्वाद से आपको किसी काल में भी वियोग नहीं होगा ॥१३॥

Funding by IKS-MoE

लक्ष्मीरुवाच

लज्जां विहाय देवेश सतीं कृत्वा स्ववक्षसि। तिष्ठ संप्रति का लज्जा प्राणा यान्ति यया विना ॥१४॥

सावित्र्युवाच

भोजयित्वा सतीं शंभो शीघ्रं भोजय मा खिदः। तदाचम्य सकर्पूरं ताम्बूलं देहि भक्तितः ॥१५॥

जाह्नव्युवाच

स्वर्णकङ्कतिकां धृत्वा केशान्मार्जय योषितः। कामिन्याः स्वामिसौभाग्यं सुखं नातः परं भवेत् ॥१६॥

रतिरुवाच

गृहीत्वा पार्वतीं देव सुभगामतिदुर्लभाम्। कथं मम प्राणनाथो निःस्वार्थं भस्मसात्कृतः ॥१७॥
जीवयित्वा विभो कामं कामव्यापारमात्मनि। कुरु दूरं च संतापं मम विश्लेषहेतुकम् ॥१८॥
दम्पतीविरहक्लेशं सर्वं ज्ञात्वा दयानिधे। तथाऽपि मम कान्तश्च कोपेन भस्मसात्कृतः ॥१९॥
इत्युक्त्वा कामभस्माथ ददौ सा ग्रन्थिबन्धितम्। रुरोद पुरतः शंभोर्नाथ नाथेत्युदीर्य च ॥२०॥
हरिस्तद्रोदनं श्रुत्वा करुणामयसागरः। ब्रह्मा धर्मादिदेवाश्च ययुर्वासगृहं शिवम् ॥२१॥

लक्ष्मी बोलीं—हे देवेश ! अब लज्जा छोड़कर सती को अपने वक्ष से लगाकर रहिए। जिसके बिना प्राण जाते हों, उसके प्राप्त होने पर लज्जा किस बात की ? ॥१४॥

सावित्री बोलीं—हे शम्भो ! सती को भोजन कराकर शीघ्र भोजन कीजिए, खेद मत करो। इसलिए आचमन करके कपूर समेत ताम्बूल उन्हें भक्तिपूर्वक प्रदान करें ॥१५॥

जाह्नवी बोलीं—सुवर्ण की कंघी से सती के केशों को सँवारिए, सती को स्वामि-सौभाग्यसुख से बढ़कर कोई दूसरा सुख नहीं है ॥१६॥

रति बोलीं—हे देव ! अतिदुर्लभ एवं सुन्दरी पार्वती को पाकर मेरे प्राणनाथ (काम) को बिना स्वार्थ के क्यों जला दिया ? विभो ! अपने काम व्यापार के हेतु कामदेव को जीवित करके मेरे वियोग सन्ताप को दूर कर दें ॥१७-१८॥ हे दयानिधे ! दम्पती का विरहदुःख जानते हुए भी आप ने क्रोधवश मेरे कान्त को भस्म कर दिया ॥१९॥ इतना कह कर वह कामके भस्म (राख) को, जो पोटली में बँधा हुआ था, उन्हें दे दिया और वहीं शिव के सामने 'हे नाथ!' कहकर रोदन करने लगी ॥२०॥ उसका रोदन सुनकर करुणासागर विष्णु, ब्रह्मा एवं धर्म आदि देवगण वहाँ वासगृह में शिव के समीप पहुँच गये ॥२१॥ शिव ने नारायण, धर्म, ब्रह्मा

दृष्ट्वा नारायणं धर्मं ब्रह्माणं च सुरानपि । जवेन पीठादुत्थाय स्वाज्ञां कुर्वित्युवाच ह ॥२२॥
शंकरस्य वचः श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम् । कामं जीवय हे रुद्रेत्युक्त्वा शीघ्रं जगाम सः ॥२३॥
ऊचुर्देव्यो बहुतरं वाक्यं विनयपूर्वकम् । सुधादृष्ट्या शूलभृतो भस्मतो निर्गतः स्मरः ॥२४॥
दृष्ट्वा कामं रतिस्तं च प्रणनाम महेश्वरम् । तद्रूपं च तदाकारं सस्मितं सधनुःशरम् ॥२५॥
प्रणम्य शंकरं कामः स्तुतिं कृत्वा यथागमम् । बहिर्गत्वा हरिं देवान्प्रणम्य समुवास ह ॥२६॥
कामं संभाष्य देवाश्च युयुजुश्च तमाशिषम् । काले[१] रक्षा विनाशश्च निषेध(कः)केन वार्यते ॥२७॥
अथ शैलः सुरान्सर्वान्नारायणपुरोगमान् । भोजयामास भक्त्या च शाययामास यत्नतः ॥२८॥
अथ शंभुर्वासगृहे वामे संस्थाप्य पार्वतीम् । मिष्टान्नं भोजयामास तया सह मुदाऽन्वितः ॥२९॥
भुक्तवन्तं शिवं तत्र देवमाताऽदितिः स्वयम् । उवाच सस्मितं राधे संप्रीत्या सरसं वचः ॥३०॥

अदितिरुवाच

भोजनान्ते शचि शंभोः शौचार्थं जलमर्पय । देहि शीघ्रं मम प्रीत्या दम्पत्योः प्रीतिपूर्वकम् ॥३१॥

और अन्य देवगणों को देखकर आसन से वेगपूर्वक उठकर 'आज्ञा कीजिए' ऐसा कहा ॥२२॥ शंकर की बात सुनकर स्वयं हरि ने उनसे कहा—"हे रुद्र ! काम को जीवित कर दो ।' इतना कहकर वे वहाँ से चले गये ॥२३॥ वहाँ की देवियों ने भी विनय-विनम्र होकर शिव से बहुत कहा । तब अमृतमयी दृष्टि से शिव के ताकने पर कामदेव उस भस्म से निकला ॥२४॥ काम को देखकर रति ने उसको तथा महेश्वर को प्रणाम किया । उस समय कामदेव का पूर्व की भाँति ही रूप, आकार एवं मन्दहास था और वैसे ही धनुष-बाण भी थे ॥२५॥ काम ने शास्त्रानुसार स्तुति करके शंकर को प्रणाम किया । फिर बाहर आकर नारायण एवं देवों को भी प्रणाम करके बैठ गया ॥२६॥ देवों ने उससे संभाषण करके उसे आशीर्वाद दिया । समय पर होने वाली रक्षा एवं विनाश को कौन रोक सकता है ? ॥२७॥ अनन्तर हिमालय ने नारायण आदि देवों को भक्तिपूर्वक भोजन कराकर प्रयत्न से शयन कराया ॥२८॥ इधर वास-गृह (रङ्गमहल) में शिव ने पार्वती को अपने वाम भाग में बैठा कर उनके साथ सहर्ष मिष्टान्न का भोजन किया ॥२९॥ राधे ! उस समय स्वयं देवमाता अदिति भोजन कर चुके हुए शिव से मुसकराहट के साथ बड़े प्रेम से सरस बातें करने लगीं ॥३०॥

अदिति बोलीं—हे इन्द्राणी ! भोजन के अन्त में हाथ-मुँह धोने के लिए शिव को जल दो । मेरी प्रीति के कारण दम्पती (युगल जोड़ी) को प्रीतिपूर्वक शीघ्र (जल) दो ॥३१॥

---

[१] क. काम र°।

Funding by IKS-MoE

शच्युवाच

कृत्वा विलापं यद्धेतोः शवं कृत्वा स्ववक्षसि । यो बभ्राम भुवं मोहात्कालेन प्राप तां सतीम् ।।३२।।

अरुन्धत्युवाच

मया दत्ता सती तुभ्यं मेना दातुमनीप्सिता । विविधं बोधयित्वेमां रतिं च कर्तुमर्हसि ।।३३।।

अहल्योवाच

वृद्धावस्थां परित्यज्य ह्यतीव तरुणोऽधुना । तेन मेना तु मेने त्वां सुतामर्पितुमीश्वर ।।३४।।

तुलस्युवाच

सती त्वया परित्यक्ता कामो दग्धः पुरा कृतः । कथं तदा वसिष्ठश्च प्रभो प्रस्थापितोऽधुना ।।३५।।

स्वाहोवाच

स्थिरो भव महादेव स्त्रीणां वचसि सांप्रतम् । विवाहे व्यवहारोऽस्ति पुरंध्रीणां[1] प्रगल्भता ।।३६।।

रोहिण्युवाच

कामं पूरय पार्वत्याः कामशास्त्रविशारद । कुरु पारं स्वयं कामी कामिनीकामसागरम्[2] ।।३७।।

शची बोलीं—जिसके कारण शव को अपनी छाती पर रख कर विलाप किया था और मोहवश भूमण्डल का चक्कर लगाया था, उस सती को समय से आप पा गये ।।३२।।

अरुन्धती बोलीं—मेना देने को इच्छुक नहीं थी । मैंने विविध भांति से उसे समझाकर आपको सती दिलायी है । आपके लिए रति करना उचित है ।।३३।।

अहल्या बोलीं—हे ईश्वर ! वृद्धावस्था का त्यागकर आप इस समय अत्यन्त तरुण रूप हो गये हैं, इसी लिए मेना ने आपको अपनी पुत्री देना पसन्द किया ।।३४।।

तुलसी बोलीं—प्रभो ! आप ने पहले सती का त्याग किया और काम को दग्ध कर दिया, फिर अब वसिष्ठ को क्यों भेजा ? ।।३५।।

स्वाहा बोलीं—महादेव ! इस समय स्त्रियाँ जो कुछ कह रही हैं, उसे स्थिर होकर सुनिए । विवाह के अवसर पर महिलाओं की प्रगल्भता (धृष्टतापूर्ण बात करने) का व्यवहार है ।।३६।।

रोहिणी बोलीं—हे कामशास्त्र में पारंगत ! पार्वती की कामना पूरी कीजिए—स्वयं कामी बनकर कामिनी रूपी कामसमुद्र को पार कीजिए ।।३७।।

---

[1] ब. पुरस्त्रीणां । [2] ब. °मिनां का° ।

वसुंधरोवाच

भोगद्रव्यं विना भोगी न हि तुष्टः क्षुधातुरः । येन तुष्टिर्भवेच्छंभो तत्कर्तुमुचितं स्त्रियाः ॥३८॥

संज्ञोवाच

जानासि भावं सर्वज्ञ कामार्तानां च योषिताम् । न च स्वं स्वामिनं शंभो सती जानाति संगतम् ॥३९॥

शतरूपोवाच

तूर्णं प्रस्थापय प्रीत्या पार्वत्या सह शंकरम् । रत्नप्रदीपं ताम्बूलं तल्पं निर्माय निर्जने ॥४०॥

श्रीकृष्ण उवाच

स्त्रीणां तद्वचनं श्रुत्वा ता उवाच शिवः स्वयम् । निर्विकारी च भगवान्योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥४१॥

शंकर उवाच

देव्यो मा वदतोक्ति च ह्येवंभूतां ममान्तिके । जगतां मातरः साध्व्यः पुत्रे चपलता कथम् ॥४२॥
शंकरस्य वचः श्रुत्वा लज्जिताः सुरयोषितः । बभूवुः संभ्रमात्तूष्णीं चित्रपुत्तलिका यथा ॥४३॥
भुक्त्वा मिष्टानि भगवानाचम्य च मुदाऽन्वितः । सकर्पूरं च ताम्बूलं बुभुजे भार्यया सह ॥४४॥
रत्नसिंहासने शंभुर्मेनादत्ते मनोहरे । संनिधाय मुदा युक्तो ददर्श वासमन्दिरम् ॥४५॥

वसुन्धरा बोलीं—हे शम्भो ! भूख से पीडित भोगी प्राणी, बिना भोगपदार्थ (की प्राप्ति) के सन्तुष्ट नहीं हो सकता है। स्त्री को जिससे सन्तोष हो, वही करना उचित है ॥३८॥

संज्ञा बोलीं—हे सर्वज्ञ शम्भो ! कामपीडित स्त्रियों का भाव तो आप जानते ही हैं। सती अपने स्वामी से संगम करना नहीं जानती है ॥३९॥

शतरूपा बोलीं—एकान्त भवन में रत्नप्रदीप, ताम्बूल और पलंग स्थापित करके (वहाँ) पार्वती के साथ शिव को प्रेमपूर्वक शीघ्र पहुँचाओ ॥४०॥

श्रीकृष्ण बोले—उन स्त्रियों की ऐसी (हास्यपूर्ण) बातें सुनकर निर्विकार एवं योगीन्द्रों के गुरु के गुरु शिव ने स्वयं उनसे कहा ॥४१॥

शंकर बोले—हे देवियों ! आपको मुझसे ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिए, क्योंकि आप लोग साध्वी और जगत् की माताएँ हैं, तो फिर पुत्र के प्रति ऐसी चपलता क्यों ? ॥४२॥ शिव की बात सुनकर वे देवस्त्रियाँ लज्जित हो गयीं और सम्भ्रमपूर्वक चित्रलिखी-सी चुप रहीं ॥४३॥ अनन्तर भगवान् शिव ने हर्षपूर्वक मिठाई खाकर आचमन किया (हाथ-मुंह धोये) और पत्नी के साथ कपूर सहित ताम्बूल खाया ॥४४॥ उपरान्त मेना के दिये हुए

रत्नप्रदीपशतकैर्ज्वलद्‌भिर्ज्वलितं श्रिया । रत्नपात्रघटाकीर्णं मुक्तामाणिक्यभूषितम् ॥४६॥
रत्नदर्पणशोभाढ्यं मण्डितं श्वेतचामरैः । चन्दनागुरुसंयुक्तं पुष्पशय्यासमन्वितम् ॥४७॥
नानाचित्रविचित्राढ्यं निर्मितं विश्वकर्मणा । रत्नसारेण खचितं रचितं हीरकैर्वरैः ॥४८॥
कुत्रचित्सुरनिर्माणवैकुण्ठसुमनोहरम् । वृन्दावनं कुञ्जवनं कुत्रचिद्रासमण्डलम् ॥४९॥
कैलासं च कुत्रचन कुत्रचिदिन्द्रमन्दिरम् । दृष्ट्वाऽऽश्चर्यं महादेवः परितुष्टो बभूव ह ॥५०॥
अथ प्रभातकालश्च बभूव प्राणवल्लभे । नानाप्रकारवाद्यानि वादयांचक्रिरे जनाः ॥५१॥
सर्वे सुराः समुत्तस्थुः सज्जीभूताः ससंभ्रमाः । स्ववाहनान्समारुह्य कैलासं गन्तुमुद्यताः ॥५२॥
वासगेहं समागत्य धर्मो नारायणाज्ञया । उवाच शंकरं योगी योगीशं समयोचितम् ॥५३॥

धर्म उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते भवतु प्रमथाधिप । पार्वत्या सह माहेन्द्रे यात्रां कुरु हरिं स्मरन् ॥५४॥
इत्थं धर्मवचः श्रुत्वा पार्वत्या सह शंकरः । यात्रां चकार माहेन्द्रे वृन्दावनविनोदिनि ॥५५॥
यात्रां कुर्वति देवेश पार्वत्या सह शंकरे । उच्चैरुदित्वा सा मेना तमुवाच कृपानिधिम् ॥५६॥

मनोहर रत्न सिंहासन पर आसीन होकर शिव हर्ष से निवास-गृह की ओर देखने लगे, जो रत्नों के सैंकड़ों प्रज्वलित दीपों से प्रकाशमय, रत्नों के पात्र एवं कलशों से परिपूर्ण, मुक्ता-माणिक्य से सुभूषित, रत्नों के दर्पणों की शोभा से सम्पन्न, श्वेत चामरों से अलंकृत, चन्दन, और अगुरु से युक्त एवं पुष्पों की शय्या से समन्वित था ॥४५-४७॥ उस गृह का निर्माण विश्वकर्मा ने किया था। उसमें नाना प्रकार के अपूर्व चित्र बने हुए थे। वह उत्तम हीरों से बनाया गया था। उसमें रत्नों के सारभाग जड़े हुए थे ॥४८॥ उसमें कहीं देव-निर्माण, अत्यन्त मनोहर वैकुण्ठ, वृन्दावन, कुंजवन और कहीं रासमण्डल बना हुआ था ॥४९॥ कहीं कैलास और कहीं इन्द्रभवन का आश्चर्यजनक दृश्य देखकर महादेव अत्यन्त सन्तुष्ट हुए ॥५०॥ प्राणवल्लभे ! जब प्रातःकाल हुआ, तब लोग विभिन्न प्रकार के वाद्य बजाने लगे ॥५१॥ फिर तो सब देवता वेगपूर्वक उठे और वेश-भूषा से सज्जित हो अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर कैलाश जाने के लिए उद्यत हो गये ॥५२॥ उस समय नारायण की आज्ञा से योगी धर्म उस वास-भवन में गये और योगीश्वर शिव से समयोचित वचन बोले ॥५३॥

धर्म ने कहा—हे प्रमथों के अधीश्वर ! आपका कल्याण हो, उठिए, उठिए और हरि का स्मरण करते हुए माहेन्द्र-योग में पार्वती के साथ यात्रा कीजिए ॥५४॥ वृन्दावनविनोदिनि ! धर्म की बात सुनकर शिव ने पार्वती के साथ माहेन्द्र योग में यात्रा प्रारंभ की ॥५५॥ पार्वती के साथ देवाधीश्वर शिव के यात्रा करते समय मेना ऊँचे स्वर से रोकर उन कृपानिधान से बोलीं ॥५६॥

Funding by IKS-MoE

मेनोवाच

कृपानिधे कृपां कृत्वा मद्वत्सां पालयिष्यसि । सहस्रदोषान्भगवानाशुतोषः क्षमिष्यसि ॥५७॥
त्वत्पदाम्बुजभक्तैषा मद्वत्सा जन्मजन्मनि । स्वप्ने ज्ञाने स्मृतिर्नास्ति महादेवप्रभुं विना ॥५८॥
त्वद्भक्तिश्रुतिमात्रेण हर्षाश्रुपुलकान्विता । त्वन्निन्दया भवेन्मौना मृत्युंजय मृता इव ॥५९॥
इत्युक्त्वा मेनका शीघ्रं तत्राऽऽगत्य हिमालयः । उच्चै रुरोद च तदा वत्सां कृत्वा स्ववक्षसि ॥६०॥
क्व यासि वत्सेत्युच्चार्य शून्यं कृत्वा हिमालयम् । स्मारं स्मारं तद्गुणौघं विदार्यं मन्मनः
स्फुटम् ॥६१॥
इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रः समर्प्यं च शिवां शिवे । सशैलः सहपुत्रश्च रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥६२॥
नारायणश्च भगवानध्यात्मविद्यया स्वयम् । सर्वान्प्रबोधयामास कृपया स कृपानिधिः ॥६३॥
ननाम पार्वती भवक्त्या मातरं पितरं गुरून् । मायया च महामाया रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥६४॥
पार्वतीरोदनेनैव रुरुदुः सर्वयोषितः । मुनयश्च सुराः सर्वे सस्त्रीकाः सगणा ध्रुवम् ॥६५॥
शीघ्रं ययुस्ते कैलासं देवा मानसयायिनः[1] । मुहुर्तार्धेन मुदिताः संप्रापुः शंकरालयम् ॥६६॥
दृष्ट्वाऽऽगतं देवपत्न्यो मुनिपत्न्यश्च सत्वरम् । आययुर्दीपमानीय मुदा मङ्गलकर्मणि ॥६७॥

मेना ने कहा—हे कृपानिधे ! कृपा करके मेरी पुत्री का पालन कीजिएगा, आप भगवान् आशुतोष हैं, अतः इसके दोषों को क्षमा करेंगे । मेरी यह पुत्री जन्म-जन्मातर से आपके चरण-कमल की भक्त है । एक महादेव स्वामी के बिना इसे स्वप्न एवं जागरण में किसी का स्मरण नहीं होता है ॥५७-५८॥ आपकी भक्ति को सुनते ही यह पुलकित हो उठती है और नेत्रों से आनन्द के आँसू बहने लगते हैं । मृत्युञ्जय ! आपकी निन्दा से ऐसी मौन हो जाती है मानो मर गई हो ॥५९॥ मेना के इतना कहते हीं वहाँ शीघ्र हिमालय भी आ गये और पुत्री को अपने हृदय से लगाकर ऊँचे स्वर से रोदन करने लगे—हे 'वत्से ! हिमालय को शून्य करके तुम कहाँ जा रही हो ? तुम्हारे गुणसमूहों का जब मुझे बार-बार स्मरण होता है, तो उस समय हृदय विदीर्ण होने लगता है—इतना कहकर पर्वतराज हिमालय ने शिवा (पार्वती) शिव को सौंप दी और पुत्र समेत बार-बार ऊँचे स्वर से वे रोने लगे । उस समय कृपानिधान साक्षात् भगवान् नारायण ने कृपा करके अध्यात्म-विद्या द्वारा सब को समझाया । पार्वती ने भक्तिपूर्वक माता-पिता तथा गुरुजनों को प्रणाम किया । वे महामायारूपिणी हैं, अतः माया का आश्रय लेकर ऊँचे स्वर से बारंबार रोदन करने लगीं । पार्वती के रोदन से ही (वहाँ की) सभी स्त्रियाँ रोने लगीं । पत्नियों एवं गणों सहित सभी देवता और मुनि भी रो पड़े । फिर वे मन के समान चलने वाले देवगण शीघ्र कैलाश के लिए चल पड़े तथा दो ही घड़ी में शिव के निवास-स्थान पर सानन्द जा पहुँचे ॥६०-६६॥ आगमन देखकर देवों की स्त्रियाँ एवं मुनिपत्नियाँ मंगल-कृत्य का सम्पादन करने के लिए हर्ष से दीपक लिए

---

[1] ख. यायि ।

Funding by IKS-MoE

वायुपत्नी कुबेरस्य कामिनी शुक्रकामिनी । तारा सुरगुरोः पत्नी पत्नी दुर्वाससस्तथा ॥६८॥
अत्रिभार्याऽनसूया च चन्द्रपत्न्यस्तथैव च । देवकन्या नागकन्या मुनिकन्याः सहस्रशः ॥६९॥
असंख्यकामिनीसंघः संख्यां कर्तुं च कः क्षमः । ताश्च प्रवेशयामासुर्दम्पतीं वासमन्दिरम् ॥७०॥
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरीम् । सतीं तां दर्शयामास शिवः पूर्वालयं मुदा ॥७१॥
सति स्मरस्यतो गेहाद्यद्गता तातमन्दिरम् । अधुना शैलकन्या त्वं तत्र दक्षसुता पुरा ॥७२॥
जातिस्मरां स्मारयामि नित्यं स्मरसि चेद्वद । शंकरस्य वचः श्रुत्वा सस्मितोवाच सा सती ॥७३॥
सर्वं स्मरामि प्राणेश मौनीभूतो भवेति तम् । शिवः संभृतसंभारो नानावस्तुमनोहरम् ॥७४॥
भोजयामास देवांश्च नाराणयपुरोगमान् । भुक्त्वा देवा प्रजग्मुस्ते नानारत्नविभूषिताः ॥७५॥
सस्त्रीकाः सगणाः सर्वे प्रणम्य चन्द्रशेखरम् । नारायणं च ब्रह्माणं ननाम शंकरः स्वयम् ॥७६॥
तौ च तं च समाश्लिष्याऽऽशिषं कृत्वा प्रजग्मतुः । अथ शैलश्च मेना च मैनाकमाजुहाव ह ॥७७॥
शीघ्रमानय भद्रं ते पार्वती शंकरं सुत । तयोः स वचनं श्रुत्वा शीघ्रं गत्वा शिवालयम् ॥७८॥
आजगाम समानीय पार्वतीपरमेश्वरौ । पार्वत्यागमनं श्रुत्वा बालाश्च बालिकास्तथा ॥७९॥

शीघ्र आ गईं ॥६७॥ वायु की पत्नी, कुबेर की पत्नी, शुक्र-प्रिया, देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा, दुर्वासा की पत्नी, अत्रिपत्नी अनसूया और चन्द्रमा की स्त्रियों समेत सहस्रों देवकन्यायें, नागकन्यायें एवं मुनिकन्यायें वहाँ उपस्थित हुईं ॥६८-६९॥ वहाँ की कामिनियों के समूहों की संख्या करने में कौन समर्थ हो सकता है ? उन स्त्रियों ने दम्पती को वासभवन (रङ्गमहल) में प्रवेश कराया ॥७०॥

वहाँ रत्न के सिंहासन पर पार्वती को बैठाया । शिव ने सती को पूर्व का गृह दिखाया और हर्ष से पूछा-- 'हे सति ? क्या तुम्हें स्मरण हो रहा है, जो इसी घर से तुम अपने पिता के घर गयीं थीं ? उस समय तुम दक्ष की कन्या थीं और अब शैलराज की पुत्री हुई हो। तुम पूर्व की बातों का स्मरण रखने वाली हो। यदि तुम्हें स्मरण है तो कहो।' शंकर की बात सुनकर मन्द-मुसकान करती हुई पार्वती ने उनसे कहा— 'प्राणेश ! मुझे सब बातों का स्मरण है, किन्तु इस समय आप चुप रहें (उन बीती बातों की चर्चा न करें) । तदुपरान्त शिव ने वस्तुओं को एकत्र करके नारायण आदि देवों को भोजन कराया । भोजन के पश्चात् नाना रत्नों से विभूषित होकर वे देवगण अपने-अपने गणों एवं पत्नियों समेत चन्द्रशेखर को नमस्कार करके घर चले गये । नारायण और ब्रह्मा को शिव ने स्वयं नमस्कार किया ॥७१-७६॥ उन दोनों ने भी उनका आलिंगन करके आशीर्वाद प्रदान किया और अपने घर चले गये ।

अनन्तर हिमालय और मेना ने पुत्र मैनाक को बुलाकर कहा—'हे पुत्र ! तुम्हारा कल्याण हो ! तुम पार्वती और शिव को वहाँ से शीघ्र लिवा लाओ। उनदोनों की बात सुनकर वे कैलास चले गये और वहाँ से पार्वती और परमेश्वर (शिव) को शीघ्र लिवा लाये । पार्वती का आगमन सुनकर बालक, बालिकायें,

वृद्धा युवत्यो या याश्च शैलाश्च दुद्रुवुर्मुदा । मेना सुताभ्यां वध्वा च सह दुद्राव सस्मिता ॥८०॥
हिमालयश्च मुदितो दुद्रावानुव्रजन्सुताम् । अवरुह्य रथाद्देवी मातरं पितरं गुरून् ॥८१॥
प्रणनाम प्रमुदिता निमग्नाऽऽनन्दसागरे । पार्वतीं च समाश्लिष्य मेनका हर्षविह्वला ॥८२॥
हिमालयश्च मुदितो गताः प्राणा इवाऽऽगताः । सुतां निधाय गेहे स्वे रत्नसिंहासनं ददौ ॥८३॥
शूलभृते गणेभ्यश्च मधुपर्कादिकं मुदा । तस्थौ श्वशुरगेहे च सगणश्चन्द्रशेखरः ॥८४॥
नित्यं षोडशोपचारैः पूजितः सह भार्यया । इत्येवं कथितं राधे शंकरोद्वाहमङ्गलम् ॥
शोकघ्नं हर्षजनकं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥८५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाकृष्णसं० शंकरविवाहो
नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

वृद्धायें, युवतियाँ, एवं पर्वतगण भी देखने के लिए दौड़ आये। मेना अपने पुत्रों और बहू के साथ मुसकराती हुई दौड़ी ॥७७-८०॥ हिमालय भी प्रसन्नता से पुत्री की अगवानी के लिए दौड़े आये। देवी पार्वती ने रथ से उतर कर अपनी माता, पिता एवं गुरुजनों को प्रणाम किया। उस समय वे आनन्द सागर में निमग्न हो रही थीं। हर्षविभोर मेना पार्वती का आलिंगन किया। हिमालय भी इतने मोदमग्न हुए मानो गये हुए प्राण वापस आ गये हों। कन्या को अपने भवन में रखकर रत्नसिंहासन दिया ॥८१-८३॥ गणों समेत शिव को प्रसन्नता से मधुपर्क आदि देकर स्वागत किया। पार्षदों समेत चन्द्रशेखर शिव ससुर के घर में निवास करने लगे। वहाँ भार्या सहित शंकर की सोलह उपचारों से पूजा होने लगी। राधे ! इस प्रकार मैंने शिव का विवाहमंगल, जो शोकनाशक एवं हर्षप्रद है, तुम्हें सुना दिया, अब पुनः क्या सुनना चाहती हो ? ॥८४-८५॥

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में शङ्करविवाह नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४५॥

Funding by IKS-MoE

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

राधिकोवाच

सुचिरं च मृतं कामं शंकरेण च जीवितम् । रतिः पुनः प्रियं प्राप्य किं चकार मुदाऽन्विता ॥१॥
स्त्रीणां स्वस्वामिविच्छेदो मरणादतिदुष्करः । पुनः संमेलनं भर्तुः सुखं परमदुर्लभम् ॥२॥
शिवः सती तां संप्राप्य सङ्गे मङ्गलकर्मणि । चिरं प्रनष्टविरहः किं चकार मुदाऽन्वितः ॥३॥
कलत्रविरहः पुंसां सर्वशोकात्सुदुष्करः । पुनः संमीलनं तस्याः प्राणदानाधिकं सुखम् ॥४॥
रतिः पुंसो विरहिणी शिवः स्त्रीविरही चिरम् । द्वयोर्द्वयोश्च संप्राप्तौ किं बभूव द्वयोः सुखम् ॥५॥
तदेवं श्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं मम । कृपया विदुषां श्रेष्ठ सव्यासं कथय प्रभो ॥६॥
मेलनं शक्तिशिवयो रतिमन्मथयोस्ततः । शोकापहं श्रुतवतां सर्वमङ्गलकारणम् ॥७॥

नारायण उवाच

इत्युक्त्वा राधिका देवी सस्मिता विरराम ह । कृष्णस्तद्वचनं श्रुत्वा सस्मितस्तामुवाच ह ॥८॥

अध्याय ४६

पार्वती और शंकर का विलास

राधिका बोलीं--प्रभो ! अतिचिरकाल से मृतक तथा शिव के द्वारा जीवित किये गये अपने प्रियतम (काम) को पुनः पाकर हर्षान्वित रति ने क्या किया ? ॥१॥ स्त्रियों को अपने पति से विच्छेद होना मरण से भी अत्यन्त दुःखदायी होता है और पुनः पति का मिलाप हो जाना परम दुर्लभ सुख देता है ॥२॥ शिव ने संगात्मक मङ्गल कर्म में सती को पुनः प्राप्त करके चिरकाल के विरह से रहित तथा हर्ष से युक्त होकर क्या किया ? ॥३॥ पुरुषों के लिए स्त्री-वियोग महान् दुःखप्रद होता है और उसका पुनः मिल जाना प्राणदान से भी अधिक सुखदायी है ॥४॥ रति चिरकाल से पुरुष वियोगिनी थी और शिव को स्त्री-वियोग था, उन दोनों को अपने-अपने अभीष्ट की प्राप्ति हो गयी । तब दोनों ने कौन सुखानुभव किया, इसे सुनने का मुझे महान् कौतूहल हो रहा है। आप विद्वानों में श्रेष्ठ हैं, इसलिए प्रभो ! विस्तारपूर्वक कहने की कृपा करें ॥५-६॥ (क्योंकि) पार्वती और शिव का तथा रति और कामदेव का पुनः मिलन सुनने वालों के लिए शोकनाशक एवं समस्त मङ्गलों का कारण है ॥७॥

नारायण बोले—इतना कहकर मुसकराती हुई राधिका देवी चुप हो गयीं । उनकी बात सुनकर मुसकराहट के साथ श्रीकृष्ण ने उनसे कहा ॥८॥

Funding by IKS-MoE

श्रीकृष्ण उवाच

मृतं कामं पुनः प्राप्य कामार्ता कामकामिनी । स्वालयं तं समानीय हरोद्वाहगृहादहो ।।९।।
भर्तुः सुवेषं विविधं स्वात्मनः स्वालिभिर्मुदा । कारयामास यत्नेन सा रती रमणोत्सुका ।।१०।।
ज्ञात्वा कामस्तु तद्भावं कामशास्त्रविधायकः । रत्नयानं समारुह्य जगाम स्वालयाद्वनम् ।।११।।
शैले शैलेऽतिरम्ये च नद्यां नद्यां नदे नदे । द्वीपे द्वीपे सिन्धुतटे पुष्पोद्याने मनोहरे ।।१२।।
काञ्चने भूमिनिकरे[1] वटमूलेऽतिनिर्जने । नदीपुलिनभूम्यां च पुष्पिते पुष्पकानने ।।१३।।
भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रुते । सुगन्धिवायुनाऽऽकीर्णे दधति जलसीकरम् ।।१४।।
चित्तेषु चेतनानां च हरणं योषितामहो । कलामानप्रकारेण शृङ्गारं च चकार सा ।।१५।।
पूर्णमब्दशतं दिव्यं स रेमे वामया सह । दिवानिशं च न बुबुधे संसक्तः सततं मुदा ।।१६।।
तस्थतुस्तौ च तत्रैव संसक्तो सततं मुदा । सुरतौ च न विरतौ रतिशास्त्रविशारदौ ।।१७।।
पतिविच्छेदसंतापं विजहौ सा रतिर्मुदा । प्राप्य रत्नमपहृतं कः क्षणं त्यक्तुमुत्सहेत् ।।१८।।
इत्येवं कथितं सर्वं रतिसंतापकारणम् । शृङ्गारं शक्तिशिवयोरतुलं शृणु राधिके ।।१९।।
शृण्वतां कर्णपीयूषं परमाश्चर्यमीप्सितम् । सर्वसंतापहरणं सुखदं पुण्यदं शुभम् ।।२०।।

कृष्ण बोले— कामपीड़ित रति ने अपने मृतक पति काम को पुनः पाकर शिव के विवाह-गृह से अपने घर ले आई ।।९।। घर पहुंच कर रमण के लिए उत्सुक उस रति ने अपनी सखियों के द्वारा यत्न पूर्वक पति का सुन्दर वेष बनवाया ।।१०।। कामशास्त्र के रचयिता काम ने उसका भाव समझ कर उसके (साथ रत्न) के रथ पर चढ़कर अपने घर से वन में चला गया, प्रत्येक अतिरमणीय पर्वत, नदी, नद, द्वीप, समुद्र-तट, मनोहर पुष्पोद्यान, स्वर्णिम भूमि (सोने की खान), अत्यन्त निर्जन वटवृक्ष के मूल, नदी-तट की रेतीली भूमि और खिले हुए फूलों के वन में, जहाँ भौंरों की गुंजार और कोयलों की कूक सुनाई पड़ती थी एवं ऐसे स्थान में जहाँ जल की फुहार को सुगन्धित वायु बिखेरता था, रति ने विविध कलाओं से संभोग किया, जिसे देखकर सचेतन स्त्रियों का चित्त हरण हो गया, वे आश्चर्यचकित हो गईं ।।११-१५।। दिव्य सौ वर्षों तक काम ने रति के साथ रमण किया। उसमें उसे दिन-रात का कुछ भी ज्ञान नहीं था। दोनों रति-शास्त्र के विशेषज्ञ थे। इससे दोनों आनन्दमग्न होकर सुरत-व्यापार में ही निरन्तर लगे रहे, उन्हें रति-विराग कभी हुआ ही नहीं ।।१६-१७ उस रति ने अपना पति-वियोग-संताप त्याग दिया। अपहृत (खोये हुए) रत्न को पाकर कौन उसे क्षणमात्र भी त्याग सकता है ? ।।१८।। राधिके ! इस प्रकार मैंने रति का सन्ताप-कारण तुम्हें सुना दिया। अब हर-गौरी का अनुपम शृङ्गार-सम्भोग सुनो, जो सुनने वालों के कानों के लिए अमृत के समान, परम आश्चर्यमय, अभीष्ट, समस्त

---

[1] क. °कटे व° ।

वसञ्छ्वशुरगेहे स पार्वत्या सह शंकरः। तदनुज्ञां समादाय क्रीडार्थं प्रययौ वनम् ॥२१॥
रत्नस्यन्दनमारुह्य रत्नसारपरिच्छदम् । रत्नसारेण खचितं रचितं विश्वकर्मणा ॥२२॥
शतशृङ्गे सुवसने मलये गन्धमादने । नन्दने पुष्पभद्रे च पारिभद्रे च भद्रके ॥२३॥
पुलिन्दे च कलिन्दे च पुण्ड्रे पिण्डारकेऽन्धके । वने वनेऽतिरम्ये च सागराणां तटे तटे ॥२४॥
निकटेऽस्तगिरेः पार्श्ववटमूले मनोहरे। चकार करुणां यत्र परित्यज्य सती शिवम् ॥२५॥
नानास्थानेषु रहसि पशुपक्षिविवर्जिते । यथामनोरथंगामी स रेमे वामया सह ॥२६॥
यत्र यत्र शवं नीत्वा बभ्राम धरणीतलम् । तत्सर्वं दर्शयामास सती शंभुर्मुदाऽन्वितः ॥२७॥
कृत्वा विहारं सुचिरं न पूर्णं मानसं तयोः । महाशृङ्गारमारेभे सहस्राब्दं जगत्पिता ॥२८॥
मायातीतोऽतिमायेशो मायासक्तः स्वमायया । न कालं बुबुधे योगी सुखेन कालकारकः ॥२९॥
शक्तिशक्तिमतोस्तत्र न बभूव परिश्रमः । जहतोः सर्वसंतापमन्योन्यविरहोद्भवम्[1] ॥३०॥
सुखसंसक्तमनसोः पुलकाञ्चितगात्रयोः । कामबाणमूर्च्छितयोः पुष्पशय्याशयानयोः ॥३१॥
नग्नयोः सुखसंभोगाद्रतिशास्त्रविधिज्ञयोः । नखदन्तप्रहारैश्च क्षतविक्षतदेहयोः ॥३२॥

संतापहारी, सुखदायक, पुण्य-प्रदायक एवं शुभ है॥१९-२०॥ ससुर के घर में पार्वती समेत निवास करते हुए शिव ने उनकी आज्ञा प्राप्त करके क्रीड़ा करने के लिए रत्नों के सारभाग के उपकरणों से युक्त, उत्तम रत्नों से जटित एवं विश्वकर्मा द्वारा रचित रत्नों के रथ पर चढ़कर वन को प्रस्थान किया ॥२१-२२॥ शतशृङ्ग (सौ शिखर वाले) पर्वत एवं सुवसन, मलय गन्धमादन, नन्दन, पुष्पभद्र, पारिभद्र, भद्रक, पुलिन्द, कलिन्द, पुंड्र, पिण्डारक और अंधक नामक प्रदेशों तथा अत्यन्त रमणीय वनों में और सागर-तटों पर, अस्ताचल के निकट, वट वृक्ष के मनोहर मूल भाग में जहाँ सती को त्यागकर उहोंने करुणालाप किया था, विभिन्न स्थानों में और पशु पक्षी से रहित एकान्त स्थान में मनोरथानुसार यात्रा करके उन्होंने शिवा के साथ रमण किया ॥२३-२६॥ पुनः शिव ने प्रसन्न होकर सती को उन सब स्थानों को दिखाया, जहां जहाँ वे उनका पूर्वकालीन शव लिए भ्रमण कर चुके थे ॥२७॥ अति चिरकाल तक विहार करने पर जब भी उन दोनों के मन नहीं भरे तब जगत्पिता ने एक सहस्र वर्षों तक महासम्भोग किया ॥२८॥ माया से परे तथा मायाधीश अपनी माया से माया में आसक्त हो गये । सुख से काल के बनाने वाले योगी को काल का ज्ञान नहीं हुआ ॥२९॥ वहाँ परस्पर विरह से उत्पन्न सम्पूर्ण संताप को त्यागते हुए शक्ति और शक्तिमान् को कुछ परिश्रम भी नहीं हुआ ॥३०॥ उन दोनों का मन सुख में आसक्त था; शरीर में रोमाञ्च हो आया था; वे फूलों की शय्या पर लेटे हुए काम-वाण से मूर्च्छित हो रहे थे; सुख-सम्भोग से नग्न हो गये थे, रति-शास्त्र की विधि को जानने वाले वे दोनों नखों और दांतों के प्रहार से क्षत-विक्षत शरीर हो गये थे;

१क. °मसह्यवि° ।

चन्दनागुरुकस्तूरीसिन्दूरबिन्दुलिप्तयोः । निबद्धकेशकबरीश्लथयोश्छिन्नमाल्ययोः ॥३३॥
वसनानां नूपुराणां कङ्कणानां च सुन्दरि । वलयानां कुण्डलानां शब्दैः क्रीडां प्रकुर्वतोः ॥३४॥
पुष्पतल्पं दलितयोर्बाष्पोत्कर्षं च बिभ्रतोः । तेजसा समयोः शश्वत्क्रीडया कौतुकेन च ॥३५॥
भारेण विश्वंभरयोर्भाराक्रान्ता वसुंधरा । सा विदीर्णा चकम्पे च सशैलवनसागरा ॥३६॥
तयोर्भरभराक्रान्तधरायाश्च भरेण च । भाराक्रान्तो हि शेषश्च तद्भारार्तोऽपि कच्छपः ॥३७॥
कच्छपस्य भरेणैव सर्वाधाराः समीरणाः । महाविक्लवयुक्ताश्च सर्वप्राणाश्च स्तम्भिताः ॥३८॥
स्तम्भितेषु समीरेषु त्रिलोका भयविह्वलाः । ब्रह्मादयः सुराः सर्वे वैकुण्ठं शरणं ययुः ॥३९॥
सर्वं निवेदनं चक्रुर्नारायणपदाम्बुजे । नारायणश्च भगवानुवाच कमलोद्भवम् ॥४०॥

नारायण उवाच

शृङ्गारभङ्गसमयो भविता नाधुना विधे । कालप्रयुक्तं कार्यं च सिद्धं तत्समयोचितम् ॥४१॥
पूर्णे वर्षसहस्रे च स्वेच्छया विरमिष्यति । शंभोः संभोगमिष्टं च को भेदं कर्तुमीश्वरः ॥४२॥
स्त्रीपुंसो रतिविच्छेदमुपायेन करोति यः । तस्य स्त्रीपुंसयोर्भेदो भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥४३॥
यात्यन्ते कालसूत्रे च वर्षलक्षं स पातकी । भ्रष्टज्ञानो नष्टकीर्तिरलक्ष्मीको भवेदिह ॥४४॥
रम्भायुक्तं शक्रमिमं चकार विरतं रतौ । महामुनीन्द्रो दुर्वासास्तत्स्त्रीभेदो बभूव ह ॥४५॥

चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और सिन्दूर के बिन्दु पुत गये थे; बालों का जूड़ा खुल गया था और माला टूट गई थी। हे सुन्दरि! वस्त्रों, नूपुरों, कंगनों, कड़ों और कुण्डलों के शब्दों से क्रीडा करते हुए, पुष्पशय्या को कुचलते हुए, अत्यन्त हांफते हुए, तेज, क्रीडा और कौतुक में समान होते हुए तथा विश्व का भरण करने वाले दोनों के भार से पृथ्वी दब गयी। वह विदीर्ण होकर पर्वत, वन तथा समुद्र समेत कांपने लगी ॥३१-३६॥ उन दोनों के अतिशय भार से आक्रान्त पृथ्वी के भार से शेषनाग भाराक्रान्त हो गया। उसके भार से कच्छप पीड़ित हो उठा। कच्छप के भार से ही सबके आधार वायु अत्यन्त विकल हो गये, जिससे सबके प्राण स्तम्भित हो गये। प्राणों के स्तम्भित हो जाने पर सब भय से व्याकुल हो गये। ब्रह्मा आदि सभी देवता विष्णु की शरण में पहुंचे। नारायण के चरण-कमल में समस्त वृत्तान्त निवेदन किया। तब भगवान् नारायण ने ब्रह्मा से कहा ॥३७-४०॥

नारायण बोले—ब्रह्मन्! उनके सम्भोग भङ्ग करने का समय अभी नहीं प्राप्त है। कालप्रयुक्त कार्य उचित समय पर ही सिद्ध होता है ॥४१॥ पूरे एक सहस्र वर्ष के उपरान्त वे स्वेच्छा से विरत हो जायेंगे। अभी शिव को संभोग ही प्रिय है। इससे कोई भी उन्हें अलग करने में समर्थ नहीं हो सकता है ॥४२॥ जो उपाय द्वारा स्त्री-पुरुष का रति भङ्ग करता है, उसे प्रत्येक जन्म में पति-पत्नी-वियोग प्राप्त होता है। अनन्तर वह पातकी एक लाख वर्षों तक कालसूत्र नामक नरक में पड़ा रहता है और इस लोक में आजीवन ज्ञानभ्रष्ट, नष्टकीर्ति होकर दरिद्र होता है ॥४३-४४॥ रम्भा-इन्द्र की रति को महामुनि दुर्वासा ने भङ्ग किया था, जिससे उन्हें स्त्री-विरह

पुनरन्यां स संप्राप्य निषेव्य शूलपाणिनम् । दिव्यवर्षसहस्रं च विजहौ विरहज्वरम् ॥४६॥
[1]रोहिणीसहितं चन्द्रं चकार विरतं रतौ । महर्षिगौतमस्तस्य स्त्रीविच्छेदो बभूव ह ॥४७॥
पुनः शिवं समाराध्य प्राप्याहल्यां च पुष्करे । दिव्यवर्षसहस्रं च विजहौ विरहज्वरम् ॥४८॥
मुनिः स्वभार्यासंसक्ते दिवसे निर्जने वने । ब्रह्माण्डकसुतं नीत्वा चकार विरतं रुषा ॥४९॥
बभूव पुत्रविच्छेदस्तस्य कल्पान्तरे पुनः । शिवं निषेव्य संप्राप्य पुत्रं तत्याज विक्लवम् ॥५०॥
हरिश्चन्द्रो हालिकं च वृषल्या सह संयुतम् । वारयामास निश्चेष्टं निर्जने तत्फलं शृणु ॥५१॥
भ्रष्टं श्रीराज्यवित्तेभ्यस्तं चकारावलीलया । विश्वामित्रो महर्षिश्च ताडयामास तं पुरा ॥५२॥
ततः शिवं समाराध्य दातारं सर्वसंपदाम् । सद्यो जगाम वैकुण्ठं सगणो मम मन्दिरम् ॥५३॥
अजामिलं द्विजश्रेष्ठं वृषल्या सह संयुतम् । न भिया वारयामासुः सुरास्तं चापि केचन ॥५४॥
निष्पन्ने कर्मभोगे च स मद्भक्तो मुमोच ह । मन्नामस्मृतिमात्रेण चाऽऽजगाम ममाऽऽलयम् ॥५५॥
सर्वं निषेकसाध्यं च निषेको बलवान्विधे । निषेकफलदाताऽहं निषेकः केन वार्यते ॥५६॥
दिव्यं वर्षसहस्रं च शंभोः संभोगकर्म तत् । निषेकफलदातुस्तु निषेकफलसंचयम् ॥५७॥

प्राप्त हुआ था ॥४५॥ पुनः उन्होंने दिव्य सहस्र वर्षों तक शूलपाणि शिव की आराधना करके अन्य स्त्री को पाकर अपना वियोग-सन्ताप दूर किया ॥४६॥ महर्षि गौतम ने रोहिणी-चन्द्रमा के सम्भोग को भङ्ग किया, जिससे उन्हें स्त्री-विच्छेद प्राप्त हुआ और पुनः पुष्कर क्षेत्र में दिव्य सहस्र वर्षों तक शिव की आराधना करने पर उन्हें अहल्या की प्राप्ति हुई, जिससे उनका सन्ताप दूर हुआ ॥४७-४८॥ एक बार मुनि ने निर्जन वन में दिन में अपनी पत्नी से संभोग करते हुए ब्रह्माण्डक नामक पुत्र को क्रोध से विरत कर दिया। इससे कल्पान्तर में उन्हें पुत्र-वियोग प्राप्त हुआ। तब पुनः दूसरे कल्प में शिव की आराधना से पुत्र प्राप्त करके विकलता का त्याग किया ॥४९-५०॥ शूद्रा के साथ निर्जन स्थान में उपभोग करते हुए निश्चेष्ट हलवाहे को रोक दिया, उसका फल जो उन्हें भोगना पड़ा, उसे सुनो ॥५१॥ इसी के परिणामस्वरूप महर्षि विश्वामित्र ने उन्हें श्री, राज्य एवं धन से वञ्चित कर उनकी बड़ी कदर्थना की ॥५२॥ पश्चात् उन्होंने समस्त सम्पत्ति के दाता शिव की, आराधना की जिससे गण, परिवार समेत वे मेरे मन्दिर वैकुण्ठ में चले गये ॥५३॥ इसीलिए वृषली के साथ सम्भोग करते हुए द्विजश्रेष्ठ अजामिल को कोई भी देवता डर से नहीं रोक सके ॥५४॥ कर्मभोग समाप्त होने पर वह मेरा भक्त स्वयं उसे छोड़कर मेरे नाम के स्मरण मात्र से मेरे यहाँ चला आया ॥५५॥ इसलिए हे विधे ! कर्म बलवान् होता है। उसी से सब कुछ साध्य है। उस कर्म का फल मैं प्रदान करता हूं। उसका निवारण कौन कर सकता है? ॥५६॥ कर्मफलदाता शिव का कर्मफलसंचय रूप संभोग-कर्म दिव्य हजार वर्षों तक चलने वाला है। सहस्र वर्ष पूर्ण हो जाने पर वहां जाकर शंकर

---

[1] क. घृताच्या सह संश्लिष्टं कामं वारितवान्गुरुः । षण्मासाभ्यन्तरे च° ।

Funding by IKS-MoE

पूर्णे वर्षसहस्रे च गत्वा तत्र महेश्वरः[1] । येन वीर्यं पतेद्भूमौ तत्करिष्यति निश्चितम् ॥५८॥
तत्र वीर्ये च भविता स्कन्दको भक्ततारकः । सदा भद्रस्वरूपोऽहं भयं किं वो मयि स्थिते ॥५९॥
अधुना त्वं गृहं गच्छ भगवन्स्वगणैः सह । करोतु शंभुः संभोगं पार्वत्या सह निर्जने ॥६०॥
इत्युक्त्वा कमलाकान्तः शीघ्रं स्वान्तः पुरं ययौ । स्वालयं प्रययुर्देवाः शिवः स्वस्थो रतौ रतः ॥६१॥

नारायण उवाच

इत्युक्त्वा राधिकां कृष्णः सकटाक्षां च सस्मिताम् । जगाम चन्दनवनं निर्जने च तया सह ॥६२॥
अतीव निर्जनं रम्यं वायुना सुरभीकृतम् । पुष्पोद्यानैः समाकीर्णं तत्र क्रीडां चकार ह ॥६३॥
पुष्पतल्पसमाकीर्णे परपुष्टरुतश्रुते । भ्रमरध्वनिसंयुक्ते कामिनीनां मनोहरे ॥६४॥
कृष्णसंभोगमात्रेण सुखसंमूर्च्छिता च सा । अतीव मूर्च्छितः कृष्णो राधाङ्गस्पर्शमात्रतः ॥६५॥
तस्थतुस्तत्र संयुक्तौ राधारासेश्वरौ मुने । अतीव रतिनिश्चेष्टौ किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥६६॥
इत्येवं मङ्गलं कर्म यः शृणोति समाहितः । कदाचिद्बन्धुविच्छेदो न भवेत्तस्य नारद ॥६७॥
महाशोकार्णवे मग्नो भेदे पुत्रकलत्रयोः । मद्भृत्यानां च बन्धूनां मासं श्रुत्वा लभेद्ध्रुवम् ॥६८॥

स्वयं ऐसा उपाय करेंगे, जिससे उनका वीर्य निश्चित रूप से पृथ्वी पर गिरेगा और उससे स्कन्द की उत्पत्ति होगी जो भक्तों का उद्धार करेगा। मैं सदा भद्र (कल्याण) स्वरूप हूँ, अतः मेरे रहते तुम लोगों को क्या भय है ?॥५७-५९॥ भगवन्! इस समय आप लोग गणों समेत घर जाइए और निर्जन स्थान में शिव को पार्वती के साथ संभोग करने दीजिये ॥६०॥ इतना कहकर नारायण शीघ्र अपने अन्तःपुर चले गये और देव लोग अपने-अपने घर गये एवम् शिव स्वस्थतापूर्वक रति-क्रिया में रत रहे ॥६१॥

नारायण बोले—मन्द मुसुकान समेत कटाक्ष करने वाली राधिका से इतना कहकर श्रीकृष्ण उनके साथ चन्दन वन के एकान्त स्थान में चले गये ॥६२॥ वह निर्जन स्थान अत्यन्त रमणीक, वायु द्वारा सुगन्धित एवं पुष्प वाटिकाओं से व्याप्त था, वहाँ उन्होंने क्रीडा की। वहाँ फूलों की शय्यायें बिछी थीं कोयलों की कूक सुनाई पड़ती थी, वह भ्रमरों की गुञ्जार से युक्त तथा कामिनियों के लिए मनोहर था ॥६३-६४॥ राधिका कृष्ण के संभोगमात्र से आनन्द-मूर्च्छित हो गईं। कृष्ण भी राधिका के अंगस्पर्शमात्र से अतीव मूर्च्छित हो गये ॥६५॥ राधा और रासेश्वर कृष्ण वहाँ सहवास करते हुए अत्यन्त निश्चेष्ट हो गये। अब क्या सुनना चाहते हो ?॥६६॥ नारद! इस प्रकार मङ्गल कर्म को जो सावधान होकर सुनता है उसे कभी भी बन्धु-विच्छेद नहीं होता है और महाशोक-सागर में निमग्न होने, पुत्र, स्त्री, भृत्य एवं बन्धुओं से मतभेद होने पर इसका एक मास श्रवण करने से निश्चित ही अभीष्ट प्राप्त होता है ॥६७-६८॥

---

[1] क. °सुरेश्वर° ।

Funding by IKS-MoE

सूत उवाच

इत्युक्त्वा धर्मपुत्रश्च विरराम महामुनिः । पुनः संप्रष्टुमारेभे देवर्षिः कौतुकान्वितः ॥६९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० मङ्गलवर्णनं
नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

अथ क्रीडान्तरे राधा किं पप्रच्छ हरिं विभुम् । कां कथां कथयामास कथ्यतां करुणानिधे ॥१॥

नारायण उवाच

उत्थाय सुखसंभोगाद्राधां कृत्वा पुरो हरिः । उवास मलयद्रोण्यां वटमूले मनोहरे ॥२॥
राधा तं परिपप्रच्छ सस्मितं सुमनोहरम् । दर्पभङ्गं वज्रभृतो निगूढं श्रुतिसुन्दरम् ॥३॥

सूत बोले— महामुनि धर्मपुत्र (नारायण) इतना कहकर चुप हो गये, पश्चात् देवर्षि नारद ने कौतुकवश पुनः उसे पूछना प्रारम्भ किया ॥६९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में मङ्गलवर्णन नामक छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४६॥

अध्याय ४७

इन्द्र का दर्प-भंग

नारद बोले— करुणानिधे ! क्रीडा करने के अनन्तर विभु श्रीकृष्ण से राधिका ने क्या पूछा और उन्होंने कौन कथा सुनाई ? कहें ॥१॥

नारायण बोले— सुख-सम्भोग से निवृत्त होकर हरि राधा को आगे करके मलयाचल की घाटी में पहुंचकर वट वृक्ष के मनोहर मूल में बैठ गये ॥२॥ वहाँ राधिका ने मन्दहास करते हुए अत्यन्त सुन्दर कृष्ण से वज्रधारी इन्द्र का दर्प-भङ्ग पूछा, जो अतिगुप्त एवं सुनने में प्रिय था ॥३॥

Funding by IKS-MoE

राधिकोवाच

श्रुतं यशः शूलभृतो दर्पभङ्गश्च दैवतः । पार्वत्या दर्पभङ्गश्च विवाहश्च तयोरहो ॥४॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि दर्पभङ्गं हरेर्हरे । शेषाणां च क्रमेणैव वद व्यस्य जगद्गुरो ॥५॥

श्रीकृष्ण उवाच

दर्पभङ्गं सुरपतेस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । कर्णपीयूषमतुलं सुन्दरं शृणु सुन्दरि ॥६॥
पुरा शतमखो दर्पात्कृत्वा शतमखान्मुदा । बभूव सर्वदेवानामध्यक्षः संपदा युतः ॥७॥
दिने दिने तदैश्वर्यं वर्धते तपसां फलात् । दीक्षां तं कारयामास सिद्धमन्त्रं बृहस्पतिः ॥८॥
स जजाप महामन्त्रं पुष्करे शतवत्सरम् । बभूव मन्त्रसिद्धश्च परिपूर्णमनोरथः ॥९॥
ब्रह्मस्वरूपां प्रकृतिं संपन्मूढो न मन्यते । सा तं शशाप स्वगुरोः शापं लेभेऽतिकोपतः ॥१०॥
एकदा प्रकृतेः शापाद्धतबुद्धिः स्वसंसदि । गुरुं दृष्ट्वा समुत्थाय न ननाम मदान्वितः ॥११॥
बृहस्पतिस्ततः कोपान्नोवास गृहमाययौ । न तस्थौ तारकाभ्याशे तपसे काननं ययौ ॥१२॥
उवाच मनसा दीनो यातु संपद्धरेरिति । अथ शक्रो मतिं प्राप्य क्व गतोऽतो मदीश्वरः ॥१३॥
इत्युक्त्वा वेगतः पीठाज्जगाम तारकान्तिकम् । प्रणम्य मातरं भक्त्या नतस्कन्धः पुटाञ्जलिः ॥१४॥

राधिका बोलीं—हरे ! जगद्गुरो ! मैंने शूलपाणि शिव का यश तथा दैववश दर्पभङ्ग की बात सुनी, पार्वती का गर्वभंजन और शिव-पार्वती के विवाह का भी वर्णन सुना। अब इन्द्र के तथा अन्य लोगों के भी अभिमान के चूर्ण होने के प्रसंगों को क्रमशः सुनना चाहती हूँ। विस्तार से बतावें ॥४-५॥

श्रीकृष्ण बोले—पति इन्द्र का दर्प मोचन तीनों लोकों में प्रख्यात है। वह प्रसंग सुन्दर, अनुपम तथा कानों के लिए अमृत के समान है, सुनो ॥६॥ पूर्व समय शतमख इन्द्र ने दर्प से सौ यज्ञों को सम्पन्न करके समस्त देवों का श्री सम्पन्न अध्यक्षपद ग्रहण किया ॥७॥ तपस्या के फलस्वरूप दिन-दिन उनका ऐश्वर्य बढ़ने लगा, बृहस्पति ने सिद्धमन्त्र की उन्हें दीक्षा प्रदान की। उन्होंने पुष्कर क्षेत्र में सौ वर्षों तक इस महामन्त्र का जप किया। जप से मंत्र सिद्ध हो गया और उनका मनोरथ पूरा हुआ ॥८-९॥ सम्पत्ति से प्रमत्त होने वाला मूर्ख ब्रह्मस्वरूप प्रकृति का आदर नहीं करता है, अतः प्रकृति ने इन्द्र को शाप दिया। इसीलिए उन्हें अपने गुरु की ओर से भी शाप मिला ॥१०॥ एक बार प्रकृति के शाप से नष्टबुद्धि इन्द्र ने अपनी सभा में गुरु बृहस्पति को देखकर दर्पवश न तो आसन छोड़ा और न नमस्कार ही किया ॥११॥ यह देखकर बृहस्पति रुष्ट हुए और वहाँ न बैठ कर अपने घर चले आये। यहाँ भी तारा के पास न ठहरकर वे तप हेतु वन में चले गये ॥१२॥ उन्होंने मन ही मन दुःखी होकर कहा—इन्द्र की सम्पत्ति चली जाये। तदनन्तर इन्द्र को सुबुद्धि प्राप्त हुई और वे बोले कि मेरे स्वामी यहाँ से कहाँ चले गये। यों कहकर वेगपूर्वक सिंहासन से उठे और तारा के पास पहुंचे। वहाँ भक्ति से कन्धे झुकाये और हाथ जोड़े उन्होंने माता को प्रणाम किया। फिर समस्त बातों का निवेदन करके वे ऊंचे

Funding by IKS-MoE

सर्वं निवेदनं कृत्वा रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः । पुत्रस्य रोदनं दृष्ट्वा रुरोद तारका भृशम् ॥१५॥
वत्स गच्छ गृहं नैव गुरुं द्रक्ष्यसि सांप्रतम् । दुर्दिनान्ते गुरुं प्राप्य पुनर्लक्ष्मीमवाप्स्यसि ॥१६॥
अधुना कर्मणां भोगं भुङक्ष्व मूढ दुराशय । दुर्दिने स्वगुरो[1] रोषः सुदिने परितोषणम् ॥१७॥
सुदिनं दुर्दिनं शक्र कारणं सुखदुःखयोः । इत्युक्त्वा तारका देवी विरराम पतिव्रता ॥१८॥
जगाम शक्रः स्नानार्थं स्वर्णदीं सुमनोहराम् । ददर्श तत्र रुचिरां मार्जन्तीं च नितम्बिनीम् ॥१९॥
सस्मितां सकटाक्षां तामहल्यां गौतमप्रियाम् । दृष्ट्वा च विपुलश्रोणीं स्तनयुग्मं मनोहरम् ॥२०॥
स तस्याः शक्रः संपश्यन्मुमोह काममोहितः । पुनः स चेतनां प्राप्य विहाय स्नानमीश्वरि ॥२१॥
मूर्तिं विधाय तद्भर्तुस्तत्समीपं जगाम ह । गत्वा तु स्निग्धवस्त्रां तां समाकृष्य स्मरातुरः ॥२२॥
चकार विविधं तत्र शृङ्गारं सुमनोहरम् । मूर्च्छां संप्राप कामेन तन्द्रां च मुनिकामिनी ॥२३॥
निश्चेष्टा सुखसंभोगान्निष्चेश्टस्त्रिदशाधिपः । एतस्मिन्नन्तरे तप्त्वा समागत्य मुनीश्वरः ॥२४॥
ददर्श गेहे मिथुनं मैथुने च रतं प्रिये । दृष्ट्वा चुकोप स मुनिर्ज्वलन्निव हुताशनः ॥२५॥
विज्ञानेनातिरोषेण बभञ्ज सुरतिक्षणम् । शक्रः स चेतनां प्राप्य दृष्ट्वा च मुनिपुंगवम् ॥२६॥

स्वर से बार-बार रोदन करने लगे। उनको रोते देखकर तारा भी अत्यन्त रोदन करने लगी ॥१३-१५॥ वह बोली—हे वत्स, घर लौट जाओ, इस समय तुम्हें गुरु का दर्शन नहीं होगा। इस दुर्दिन (बुरे दिन) के समाप्त होने पर ही तुम्हें गुरु मिलेगें और तभी लक्ष्मी भी पुनः प्राप्त होगी ॥१६॥ हे मूढ ! दुष्टचित्त ! अब अपने कर्मों का फल भोग। दुर्दिन में अपने गुरु का क्रोध मिला और सुदिन में सन्तुष्टि मिलेगी ॥१७॥ इन्द्र! सुदिन और दुर्दिन ही सुख और दुःख के कारण हैं। इतना कहकर पतिव्रता तारा देवी चुप हो गई ॥१८॥ तत्पश्चात् इन्द्र स्नान करने के लिए अत्यन्त मनोहर मन्दाकिनी में गये। वहाँ उन्होंने स्नान करती हुई सुन्दरी गौतमपत्नी को देखा, जो कटाक्षों से देखती हुई मन्द मुसुकान कर रही थी। उसकी विशाल श्रेणी और मनोहर युगल स्तनों को देखकर इन्द्र काममोहित होकर मूच्छित हो गये। चेतना आने पर उन्होंने स्नान करना छोड़ कर उसके पति (गौतम) का स्वरूप बनाकर उसके पास पहुँच गये। कामातुर इन्द्र ने भीगी धोती वाली अहल्या को खींचकर विविध प्रकार का शृङ्गार सम्भोग किया। उस समय वह मुनिपत्नी भी कामवश अलसायी हुई मूच्छित हो गई ॥१९-२३॥ मुनिपत्नी तथा इन्द्र दोनों सुखसंभोग के कारण चेष्टाहीन हो गये। इसी बीच मुनीश्वर गौतम तप करके आ गये ॥२४॥

प्रिये ! मुनि ने घर में जोड़े को मैथुन में रत देखा। देखकर मुनि प्रज्जलित अग्नि की भाँति क्रुद्ध हो उठे ॥२५॥ तब विशेष ज्ञान से जानकर अत्यन्त क्रोध से उन्होंने सुरति को भंग कर दिया। चेतना

---

[1] ख. गुरौ दोषः।

Funding by IKS-MoE

कालस्वरूपं त्रासेन दधार चरणाम्बुजम् । कोपरक्तास्यनयनो देवं पादानतं भिया ॥
उवाच नीतिवचनं गौतमः शरणागतम् ॥२७॥

गौतम उवाच

धिक् त्वामिन्द्र सुरश्रेष्ठ कश्यपात्मज पण्डित ॥२८॥
प्रपौत्र जगतां स्रष्टुर्बुद्धिस्ते कथमीदृशी । मातामहः स्वयं दक्षोऽदितिर्माता पतिव्रता ॥२९॥
कर्मसाध्यः स्वभावश्च कुलधर्मं प्रबाधते । वेदं विज्ञाय ज्ञानी त्वं योनिलुब्धोऽसि कर्मणा ॥३०॥
योनीनां च सहस्रं च तव गात्रे भवत्विह । पूर्णवर्षं च सततं योनिगन्धं त्वमाप्नुहि ॥३१॥
ततः सूर्यं समाराध्य योनिश्चक्षुर्भविष्यति । मम प्राणेश्वरी दुष्टा येन मूढ त्वया कृता ॥३२॥
मच्छापेन गुरोः कोपाद्भ्रष्टश्रीर्भव सांप्रतम् । गुरोरपेक्षया मूढ प्राणा नापहृतास्तव ॥३३॥
तेजस्विनोऽतिबन्धोर्मे बन्धुभेदभिया सुर । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ देवेन्द्र गच्छ वत्स स्वमन्दिरम् ॥३४॥
शुभाशुभं च यत्किंचित्सर्वं कर्मोद्भवं भवेत् । महामुनीन्द्रवचनाद्गतः शक्रश्च पुष्करम् ॥३५॥
चकाराऽऽराधनं भक्त्या [1]नैष्कृत्यं च चकार ह । पादानता महल्यां तामुवाच मुनिपुंगवः ॥३६॥

प्राप्त होने पर इन्द्र ने उन मुनि को काल रूप में देखा और भयभीत होकर उनका चरण-कमल पकड़ लिया। क्रोध से लाल मुख और नेत्र वाले गौतम ने भय से चरण पर पड़े हुए शरणागत इन्द्र से नीति की बात कही ॥२६-२७॥

गौतम बोले—इन्द्र ! तुम्हें धिक्कार है । तुम देवश्रेष्ठ, कश्यप के पुत्र, पण्डित और जगत्स्रष्टा ब्रह्मा के प्रपौत्र हो, तो भी तुम्हारी ऐसी (नीच) बुद्धि कैसे हो गई ? तुम्हें धिक्कार है । जिसके नाना साक्षात् प्रजापति दक्ष हैं और माता पतिव्रता अदिति हैं, उसका इतना पतन आश्चर्य की बात है । तुम वेद का ज्ञान प्राप्त करके ज्ञानी कहलाते हो, किन्तु कर्म से योनि के लोभी हो । इसलिए तुम्हारे शरीर में सहस्र भग हो जायँ और पूरे वर्ष तक तुम्हें निरन्तर योनि की गन्ध मिलती रहे । पश्चात् सूर्य की आराधना करने पर योनि नेत्ररूप में परिणत हो जायगी । हे मूढ़ ! जिस कारण तुमने मेरी प्राणेश्वरी को दूषित किया है, इसलिए मेरे शाप से और गुरु के क्रोध से इस समय तुम राज्य-लक्ष्मी से भ्रष्ट हो जाओ । हे मूढ ! गुरु की अपेक्षा के कारण ही मैंने तुम्हारे प्राणों का अपहरण नहीं किया । क्योंकि वे तेजस्वी और मेरे परम बन्धु हैं । हम दोनों में फूट न पड़ जाय, इस भय से मैं छोड़ रहा हूँ । अतः वत्स देवेन्द्र ! उठो और अपने घर जाओ । शुभ-अशुभ जो भी कुछ होता है, वह सब कर्म से ही उत्पन्न होता है । महामुनिराज के कहने से इन्द्र पुष्कर-क्षेत्र को चले गये ॥२८-३५॥ वहाँ जाकर भक्तिपूर्वक आराधना द्वारा इन्द्र ने इसका प्रायश्चित्त किया । उस समय चरण पर पड़ी हुई अहल्या से भी

---

[1] क. नैरुज्यं च ।

वनं गत्वा चिरं तिष्ठ विधाय मूर्तिमश्मनः । अकामां चकमे शक्रः सर्वं जानाम्यहं प्रिये ।।३७।।
तथा च (ऽपि) परभोग्या मे न च भोग्या व्रजाधमे । परवीर्यं यदुदरे कामतोऽकामतोऽपि वा ।।३८।।
अहल्ये याति दैवेन तदुपायं निशामय । अकामतो न दुष्टा सा प्रायश्चित्तेन शुध्यति ।।३९।।
कामभोगेन त्याज्या सा कर्मभोगेन शुध्यति । पितृपाके दैवपाके पूजायां नाधिकारिणी ।।४०।।
षष्टिवर्षसहस्राणि कालसूत्रं प्रयाति सा । षष्टिवर्षसहस्राणि क्षयं कृत्वा स्वकर्मणः ।।४१।।
स्वामिनो वचनात्सा तु प्रणम्य स्वामिनं भिया । नाथ नाथेति कुर्वन्ती रुदन्ती वनमाप सा ।।४२।।
षष्टिवर्षसहस्राणि भुक्त्वा भोगं मुनिप्रिया । श्रीरामचरणस्पर्शात्सद्यः श्रद्धा बभूव ह ।।४३।।
त्रैलोक्यमोहनं रूपं विधाय मुनिकामिनी । जगाम गौतमाभ्याशं मुनिः संप्राप्य (प) सुन्दरीम् ।।४४।।
अथ शक्रस्य वृत्तान्तं परमं शृणु सुन्दरि । पापघ्नं पुण्यबीजं तत्संव्यस्य कथयामि ते ।।४५।।
एकदा च गुरोः कोपात्प्रकृतेरवहेलनात् । ब्रह्महत्या वज्रभृतो बभूव हतचेतसः ।।४६।।
शक्रस्त्यक्तगुरुर्दैवग्रस्तो दैत्यनिपीडितः । जगाम शरणं भीतो ब्रह्माणं जगतां गुरुम् ।।४७।।
तदाज्ञया विश्वरूपं चकार च पुरोहितम् । बभूव तत्र विश्वस्तो दैवाद्बुद्धिहतो हरिः ।।४८।।

मुनिवर (गौतम) ने कहा—प्रिये ! तुम्हारी इच्छा के बिना ही इन्द्र ने तुम्हारा उपभोग किया है। तुम वन में जाकर अपनी पत्थर मूर्ति बना कर वहाँ रहो। मैं सब जानता हूँ। तो भी दूसरे से उपभोग कराने के नाते तू अधम हो गयी है, मेरे उपभोग के योग्य नहीं रही। अहल्ये ! स्त्री की इच्छा रहे या न रहे—दैवयोग से चाहे जिस प्रकार दूसरे पुरुष का वीर्य उसके गर्भस्थल में यदि चला जाता है तो उसका शुद्धि-उपाय बता रहा हूँ, सुनो। अनिच्छया उपभोग कराने से वह स्त्री दूषित नहीं होती, अपितु प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध हो जाती है ।।३६-३८।। सकाम उपभोग कराने से वह त्याज्य है और उसकी शुद्धि, कर्म के भोग कर लेने पर ही होती है। देवयज्ञ, पितृयज्ञ और पूजा में वह अधिकारिणी नहीं रह जाती ।।३९-४०।। वह साठ सहस्र वर्षों तक कालसूत्र नामक नरक में पड़ी रहती है। फिर उतने दिनों में अपने किये कर्म का क्षय करके वह शुद्ध होती है। ।।४१।। स्वामी (गौतम) के वचन से भयभीत होकर उसने मुनि को प्रणाम किया और 'हा नाथ, हा नाथ' कह कर रोती हुई वह वन में चली गयी ।।४२।। साठ हजार वर्षों तक वह मुनिपत्नी कर्म-भोग भोग लेने के उपरांत श्रीरामचन्द्र के चरणस्पर्श से तुरन्त शुद्ध हो गयी ।।४३।। तब अपना त्रैलोक्यमोहन रूप प्राप्त करके वह मुनि-पत्नी पुनः गौतम के यहाँ आयी तथा उन्होंने उस सुन्दरी को सहर्ष अपनाया ।।४४।। सुन्दरि ! अब मैं तुमसे इन्द्र का परमोत्तम वृत्तान्त कहूँगा जो पापनाशक एवं पुण्य का बीज है ।।४५।।

एक बार गुरु के कोप और प्रकृति की अवहेलना से वज्रधारी इन्द्र की विवेक-शक्ति नष्ट हो गई थी, अतः उनसे ब्रह्महत्या का पाप बन गया ।।४६।। गुरु द्वारा त्यक्त, दुर्दैव (दुर्भाग्य) से ग्रस्त और दैत्यों से अति-पीडित इन्द्र भयभीत होकर जगद्गुरु ब्रह्मा की शरण में गये ।।४७।। ब्रह्मा की आज्ञा से उन्होंने विश्वरूप को पुरोहित बनाया और यज्ञारम्भ किया। दुर्दैववश बुद्धि के नष्ट हो जाने के कारण इन्द्र ने विश्वरूप पर भी

दैत्यदौहित्रस्य भावं विज्ञाय च विचक्षणः। प्रचिच्छेद शिरस्तस्य तीक्ष्णबाणेन लीलया ॥४९॥
विश्वरूपपिता त्वष्टा श्रुत्वा सद्यश्चुकोप ह। इन्द्रशत्रो[1] विवर्धस्वेत्युक्त्वा यज्ञं चकार ह ॥५०॥
यज्ञकुण्डात्समुत्तस्थौ वृत्रो नाम महासुरः। चकार निग्रहं कोपाद्देवानामवलीलया ॥५१॥
शक्रो महामुनेरस्थ्नां वज्रं कृत्वा सुदारुणम्। जघान वृत्रं देवानां कण्टकं दैत्यमर्दनः ॥५२॥
ब्रह्महत्या शुनासीरं दुद्राव हतचेतनम्। रक्तवस्त्रपरीधाना [2]वृद्धस्त्रीवेषधारिणी ॥५३॥
सप्ततालप्रमाणा सा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका। ईषाप्रमाणदशना महाभीतं चकार तम् ॥५४॥
धावन्तं परि (मनु) धावन्ती बलिष्ठा हतचेतनम्। खड्गहस्ता दयाहीना वेगेन परिधावति ॥५५॥
इन्द्रो दृष्ट्वा च तां घोरां स्मारं स्मारं गुरोः पदम्। विवेश मानससरो मृणालसूक्ष्मसूत्रतः ॥५६॥
तत्र गन्तुं न शक्ता सा ब्रह्मणः शापकारणात्। सा तस्थौ वटशाखायां सरसस्तटसंनिधौ ॥५७॥
अथात्र नहुषो भूपस्त्रिलोकेशो बभूव ह। स ययाचे शचीं देवान्बलिष्ठो दुर्बलानपि ॥५८॥
शची श्रुत्वा महाभीता तारकां शरणं ययौ। तारा निर्भर्त्स्यं स्वपतिं भृत्यपत्नीं ररक्ष च ॥५९॥

पूरा-पूरा विश्वास कर लिया ॥४८॥ पश्चात् दैत्य के नाती (विश्वरूप) का (दुष्ट) भाव समझकर विद्वान् इन्द्र ने उसके शिर को तीक्ष्ण बाण से लीलापूर्वक काट लिया, जिसे सुनकर उसका पिता त्वष्टा तुरन्त क्रुद्ध हो गया और बोला—'हे इन्द्रशत्रो ! (इन्द्र के शत्रु) वृद्धि को प्राप्त करो' ऐसा कहकर यज्ञ सम्पन्न किया ॥४९-५०॥ उस यज्ञकुण्ड से वृत्र नामक एक महान् असुर प्रकट हुआ। उसने समस्त देवों पर लीलापूर्वक अपना अधिकार जमा लिया ॥५१॥ तब दैत्यमर्दक इन्द्र ने महामुनि (दधीचि) की अस्थियों का अतिभीषण वज्र बनाकर उससे देवकण्टक वृत्र को मार दिया ॥५२॥ किन्तु चेतनाहीन इन्द्र के पीछे ब्रह्महत्या लग गई। वह (ब्रह्महत्या) रक्तवस्त्र पहने हुई थी। उसका वेष बूढ़ी स्त्री का था। उसके शरीर की ऊँचाई सात ताड़ों के बराबर थी तथा कंठ, ओठ एवं तालू सूखे हुए थे। उसके दाँत हरिस के समान लंबे थे। उसने इन्द्र को बहुत डरा दिया ॥५३-५४॥ इन्द्र जब दौड़ते थे तो उनके पीछे-पीछे वह भी दौड़ती थी। ब्रह्महत्या बलिष्ठ थी और इन्द्र अपनी चेतना तक खो बैठे थे। उसका स्वभाव निर्दय था और वह हाथ में तलवार लेकर बड़े वेग से दौड़ रही थी। उस घोर ब्रह्महत्या को देखकर गुरु के चरणों का स्मरण करते हुए वे कमलनाल के सूक्ष्मसूत्र के सहारे मानसरोवर में प्रविष्ट हो गये ॥५५-५६॥ ब्रह्महत्या, ब्रह्मा के शाप के कारण वहाँ नहीं जा सकती थी, इसलिए सरोवर के तटवर्ती वटवृक्ष की एक शाखा पर वह जा बैठी ॥५७॥ उन दिनों राजा नहुष तीनों लोकों के अधीश्वर बनाये गये। नहुष बलिष्ठ थे और देवता दुर्बल। अतः इन्द्र-पद पर प्रतिष्ठित हुए नहुष ने देवताओं से यह माँग की कि इन्द्राणी शची मुझ इन्द्र की सेवा के लिए उपस्थित हो ॥५८॥ शची यह सुनकर भयभीत हुईं और तारा देवी की शरण में गईं। तारा ने अपने पति को डाँट-फटकार कर उनके द्वारा भृत्यपत्नी (शची) की रक्षा करायी

---

१ क. °शत्रुर्वर्धतामित्यु°। २ख. स्त्री°

शचीमाश्वास्य स गुरुर्जगाम तत्सरो मुदा । आजुहाव शुनासीरं कातरं हतचेतनम् ॥६०॥

बृहस्पतिरुवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ हे वत्स भयं किं ते मयि स्थिते । त्वदीश्वरं स्वरेणैव निशामयभयं त्यज ॥६१॥
स्वरं बृहस्पतेर्ज्ञात्वा सर्वसिद्धीश्वरो हरिः । सूक्ष्मरूपं परित्यज्य स्वरूपं च दधार सः ॥६२॥
उत्थाय सद्यः संभ्रान्तो गुरुं तं सूर्यवर्चसम् । दृष्ट्वा ननाम संप्रीत्या संप्रीतं त्यक्तकोपकम् ॥६३॥
पादाम्बुजे निपतितं रुदन्तं भयविह्वलम् । निधाय वक्षसि प्रेम्णा रुरोद प्रेमविह्वलः ॥६४॥
रुदन्तं वाक्पतिं तुष्टं तुष्टाव त्रिदशेश्वरः । पुटाञ्जलिः पुलकितो भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥६५॥

इन्द्र उवाच

क्षमस्व भगवन्दोषं कृपां कुरु कृपानिधे । भृत्यापराधं सततं न गृह्णाति सदीश्वरः ॥६६॥
स्वभार्यासु स्वशिष्येषु स्वभृत्येषु सुतेषु च । दुर्बलः सबलो वाऽपि को दण्डं कर्तुमक्षमः ॥६७॥
त्रिषु कोटिषु देवेषु देवकोऽहमपण्डितः । त्वत्प्रसादात्सुरश्रेष्ठ कृपया वर्धितस्त्वया ॥६८॥
संहर्तुमीशस्त्वं सर्वमहं को वाऽपि कीटवत् । स्वयं विधातुः पौत्रश्च पुनः स्रष्टुं स्वयं क्षमः ॥६९॥

॥५९॥ गुरु ने शची को आश्वासन देकर प्रसन्नता से मानसरोवर गये और चेतनाहीन एवं कातर इन्द्र को बुलाने लगे ॥६०॥

बृहस्पति बोले——वत्स ! उठो-उठो ! मेरे रहते तुम्हें भय क्या है ? स्वर (आवाज) से ही पहचान लो, मैं तुम्हारा गुरु हूँ, निर्भय होकर चले आवो ॥६१॥ बृहस्पति के स्वर को पहचान कर समस्त सिद्धियों के अधीश्वर इन्द्र ने सूक्ष्मरूप के त्यागपूर्वक अपना रूप धारण किया और सहसा उठकर सूर्य के समान तेजस्वी गुरु का दर्शन किया, जो कोप त्याग कर अति प्रसन्न थे । अत्यन्त प्रेम से उन्हें प्रणाम करके उनके चरण-कमल पर गिर कर रोदन करने लगे । प्रेमविभोर होकर गुरु भी भयाकुल इन्द्र को प्रेम से उठाकर हृदय से लगा लिया और स्वयं भी रोदन करने लगे । बृहस्पति को सन्तुष्ट तथा रोते हुए देखकर देवेश्वर इन्द्र का अंग-अंग पुलकित हो उठा । भक्तिभाव से उनका मस्तक झुक गया और वे हाथ जोड़ कर उनकी स्तुति करने लगे ॥६२-६५॥

इन्द्र बोले——भगवन् ! कृपानिधे ! मेरा अपराध क्षमा करें, मुझ पर कृपा करें । सज्जन स्वामी सेवक के अपराध पर ध्यान नहीं देते ॥६६॥ अपनी पत्नी, अपने शिष्य, अपने सेवक और पुत्रों को दण्ड देने में दुर्बल या सबल कौन मनुष्य असमर्थ होता है ? ॥६७॥ तीन करोड़ देवों में मैं ही एक अपण्डित (मूढ़) देव हूँ, किन्तु हे सुरश्रेष्ठ ! अपनी प्रसन्नता से आपने कृपा करके मेरा संवर्धन किया है। आप सबका संहार करने के लिए समर्थ हैं। कीड़े की भाँति मैं कौन हूँ (अर्थात् मेरी क्या गणना है) ? आप स्वयं विधाता ब्रह्मा के पौत्र हैं

Funding by IKS-MoE

इति तस्य स्तवं श्रुत्वा परितुष्टो गुरुः स्वयम् । उवाच वचनं प्रीत्या प्रसन्नवदनेक्षणः ॥७०॥

गुरुरुवाच

स्थिरो भव महाभाग निश्चलां कमलां लभ । संप्राप्य परमैश्वयं पूर्वस्माच्च चतुर्गुणम् ॥७१॥
गच्छामरावतीं वत्स राज्यं कुरु पुरंदर । हतशत्रुर्मत्प्रसादाद्गत्वा पश्य शचीं सतीम् ॥७२॥
इत्येवमुक्त्वा स गुरुः सशिष्यो गन्तुमुद्यतः । ददर्श पुरतो घोरां ब्रह्महत्यां सुदुःसहाम् ॥७३॥
दृष्ट्वा शक्रो महाभीतस्तं गुरुं शरणं ययौ । बृहस्पतिर्महाभीतः सस्मार मधुसूदनम् ॥७४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी । स्वल्पाक्षरा च बह्वर्था तां शुश्राव बृहस्पतिः॥७५॥
संसारविजयं नाम सर्वाशुभविनाशनम् । राधिकाकवचं दत्त्वा शिष्यं रक्षाधुनेति च ॥७६॥
तदा त्वत्कवचं दत्त्वा शिष्याय शिष्यवत्सलः । चकार भस्मसात्तां च हुंकारेणैव लीलया ॥७७॥
तदा शिष्यं गृहीत्वा च गत्वाताममरावतीम् । ददर्श चिछन्नभग्नां च शत्रुणा वचनाद्गुरोः ॥७८॥
भर्तुरागमनं श्रुत्वा शची संहृष्टमानसा । प्रणम्य च गुरुं भक्त्या स्वकान्तं प्रणनाम सा ॥७९॥
श्रुत्वाऽऽगमनमिन्द्रस्य समाजग्मुः सुराः प्रिये । ऋषयो मुनयश्चैव हर्षगद्गदमानसाः ॥८०॥
योजयामास सत्कारुं निर्मातुममरावतीम् । पूर्णमब्दशतं शिल्पी निर्ममे रुचिरां पुरीम् ॥८१॥

और इस (जगत्)की सृष्टि करने में स्वयं समर्थ हैं। इस प्रकार उनकी स्तुति सुनकर गु बृहस्पति अति सन्तुष्ट हुए और मुख-नेत्र से प्रसन्नता प्रकट करते हुए प्रेम से बोले ॥६८-६९॥

गुरु ने कहा——महाभाग ! सुस्थिर होओ और निश्चल लक्ष्मी को प्राप्त करो। वत्स पुरन्दर ! पहले से चौगुना अधिक महान् ऐश्वर्य प्राप्त कर अमरावती जाओ और राज्य करो ॥७०-७१॥ मेरे प्रसाद से तुम्हारे शत्रु नष्ट हो जांयगे। तुम जाकर पतिव्रता शची से मिलो ॥७२॥ इस प्रकार कह कर गुरु शिष्य समेत ज्यों चलने को तैयार हुए कि सामने भीषण एवं सुदुःसह ब्रह्महत्या दिखायी पड़ी। उसे देखकर इन्द्र महाभयभीत हुए और गुरु की शरण में गये। उस समय बृहस्पति ने अतिभयभीत होकर भगवान् मघुसूदन का स्मरण किया, इतने में वहाँ आकाशवाणी हुई, जो परिमित अक्षरों में बहुत अर्थों से परिपूर्ण थी, उसे बृहस्पति ने सुना ॥७३-७५॥ (उसने कहा) सभी प्रकार के अमंगलों का नाश करने वाला संसारविजय नामक राधाकवच (अपने) शिष्य को देकर इस समय बचाओ ॥७६॥ तब शिष्यवत्सल गुरु ने शिष्य इन्द्र को वह तुम्हारा कवच प्रदान किया और उस (ब्रह्महत्या) को हुंकार से ही भस्म कर दिया ॥७७॥ उसके बाद शिष्य को लेकर गुरु ने अमरावती (इन्द्रपुरी) जाकर देखा कि वह वह शत्रु के द्वारा छिन्न-भिन्न कर दी गई है ॥७८॥ पति का आगमन सुनकर शची अत्यन्त हर्षित हुई। उसने भक्तिभाव से गुरु को प्रणाम करके अपने पति को प्रणाम किया ॥७९॥ अनन्तर इन्द्र का आगमन सुनकर देवगण, ऋषिवृन्द और मुनिलोग हर्ष से गद्गद होकर वहाँ आये ॥८०॥ अमरावती का निर्माण करने के लिए श्रेष्ठ शिल्पी (विश्वकर्मा) को नियुक्त किया गया। शिल्पी

नानारत्नविचित्राढ्यां मणिरत्नेन्द्रनिर्मिताम् । मनोहरां निरुपमां न हि तुष्टो यया हरिः ॥८२॥
विश्वकर्मा गृहं गन्तुं न शशाक विनाऽऽज्ञया । परमोद्विग्नचित्तश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥८३॥
विज्ञाय तदभिप्रायं तमुवाच विधिः स्वयम् । तव कर्मक्षयादेव तावच्छ्वो भवितेति च ॥८४॥
श्रुत्वा तद्वचनं कारुः शीघ्रं प्रापामरावतीम् । ब्रह्मा जगाम वैकुण्ठं प्रणम्योवाच मातरम् ॥८५॥
हरिर्ब्रह्माणमाश्वास्य प्रस्थाप्य स्वगृहं च तम् । विप्ररूपं समास्थाय चाऽऽजगामामरावतीम् ॥८६॥
दण्डी छत्री शुक्लवासा बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम् । अतिखर्वः शुक्लदन्तः सस्मितः सुमनोहरः ॥८७॥
वयसाऽतिशिशुर्बुद्धया ज्ञानवृद्धाद्विचक्षणः । स्वयं विधातुर्धाता च दाता च सर्वसंपदाम् ॥८८॥
इन्द्रद्वारे समुत्तिष्ठन्द्वारपालमुवाच ह । ब्रूहीदं ब्राह्मणो द्वारे शीघ्रं त्वां द्रष्टुमागतः ॥८९॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा द्वारि ज्ञानं चकार तम् । स च शीघ्रं समागम्य ददर्श ब्राह्मणार्भकम् ॥९०॥
बालकानां बालिकानां समूहैः परिवेष्टितम् । हसद्भिश्च महोत्साहात्सस्मितं तेजसाऽन्वितम् ॥९१॥
प्रणनाम हरिर्भक्त्या तं हरिं शिशुरूपिणम् । आशिषं युयुजे प्रीत्या तं हरिर्भक्तवत्सलः ॥९२॥
मधुपर्कादिकं दत्त्वा शक्रः पूजां चकार तम् । पप्रच्छाऽऽगमनं कस्माद्वदेति विप्रबालकम् ॥९३॥
इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच द्विजार्भकः । मेघगम्भीरया वाचा बृहस्पतिगुरोर्गुरुः ॥९४॥

पूरे सौ वर्षों में मनोहरपुरी की रचना की ॥८१॥ वह अनेक भाँति के रत्नों से अति विचित्र, मणि और रत्नेन्द्रों से सुरचित, मनोहर एवं अनुपम थी, किन्तु उससे इन्द्र को सन्तोष नहीं हुआ ॥८२॥ इधर बिना उनकी आज्ञा के विश्वकर्मा घर नहीं जा सकते थे, इससे वे अत्यन्त खिन्नमन होकर ब्रह्मा की शरण में गये ॥८३॥ उनका अभिप्राय समझकर ब्रह्मा ने स्वयं उनसे कहा—तुम्हारे (प्रतिरोधक) कर्म के क्षीण होने पर ही कल तुम्हें छुटकारा मिलेगा। उनकी बात सुनकर विश्वकर्मा पुनः अमरावती लौट आये और ब्रह्मा जी वैकुण्ठ चले गये। वहाँ माता (पिता श्रीहरि) को प्रणाम करके उनसे (विश्वकर्मा-सम्बन्धी) बात कही ॥८४-८५॥ भगवान् ने ब्रह्मा को आश्वासन देकर उन्हें उनके घर भेज दिया और स्वयं ब्राह्मण वेष बनाकर अमरावती पहुँचे। वे दण्ड, छत्र से युक्त, शुक्ल वस्त्र एवं समुज्ज्वल तिलक धारण किये, अतिवामनरूप एवं शुक्ल दाँत वाले तथा मन्दहास करते हुए अतिमनोहर थे। वे अवस्था में अतिबालक थे किन्तु बुद्धि में ज्ञानवृद्ध से भी अधिक विलक्षण थे, वे स्वयं ब्रह्मा के ब्रह्मा तथा समस्त सम्पत्ति के प्रदाता थे ॥८६-८८॥ उन्होंने इन्द्र के दरवाजे पर पहुँचकर द्वारपाल से कहा—'तुम (इन्द्र से) कहो, तुम्हारे दर्शनार्थ दरवाजे पर कोई ब्राह्मण आया है' ॥८९॥ द्वारपाल ने उनकी बात सुनकर इन्द्र को सूचना दी और इन्द्र शीघ्र आकर ब्राह्मणकुमार से मिले ॥९०॥ हँसते हुए बालक-बालिकाओं के समूह उन्हें घेर कर खड़े थे। वे बड़े उत्साह से मुसकरा रहे थे और उनका स्वरूप अत्यन्त तेजस्वी जान पड़ता था ॥९१॥ इन्द्र ने बालकरूपी हरि को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और भक्तवत्सल भगवान् ने भी बड़े प्रेम से उन्हें शुभाशिष प्रदान किया ॥९२॥ इन्द्र ने मधुपर्क आदि देकर उसकी पूजा की और विप्र बालक से पूछा—'आपका आगमन कैसे हुआ ?' ॥९३॥ इन्द्र की बात सुन कर उस ब्राह्मण-बालक ने, जो बृहस्पति के गुरु के भी गुरु थे, मेघ की भाँति गम्भीर वाणी में कहा ॥९४॥

ब्राह्मण उवाच

समागतोऽहं त्वां द्रष्टुं प्रष्टुं वचनमीप्सितम् । चित्रं नगरनिर्माणं समाकर्ण्याद्भुतं हरे ।।९५।।
कतिवर्षं च निर्माणे भवान्संकल्पितो यथा । कतिचित्तां विश्वकर्मा निर्माणं वा करिष्यति ।।९६।।
एवंभूतं च निर्माणं न केनेन्द्रेण निर्मितम् । नैवंविधसुनिर्माणे विश्वकर्मा परः क्षमः ।।९७।।
वालकस्य वचः श्रुत्वा जहास स सुरेश्वरः । संपन्मदातिमत्तश्च पुनः पप्रच्छ बालकम् ।।९८।।
कतीन्द्राणां समूहश्च त्वया दृष्टः श्रुतोऽथवा । विश्वकर्मा कतिविधस्तं मे ब्रूहि शिशोऽधुना ।।९९।।
शक्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रहस्य विप्रबालकः । तमुवाच श्रुतिसुखं पीयूषसदृशं वचः ।।१००।।

ब्राह्मण उवाच

जानामि कश्यपं तात तव तातं प्रजापतिम् । मुनिं मरीचिनामानं तत्तातं च तपोनिधिम् ।।१०१।।
नाभिपद्मोद्भवं विष्णोः स्तुत्वा तं विधिमीश्वरम् । रक्षितारं च तं विष्णुं परं सत्त्वगुणान्वितम्।।१०२।।
एकार्णवं च प्रलयं सत्त्वशून्यं भयानकम् । सृष्टिं कतिविधां शक्र कल्पं कतिविधं ध्रुवम् ।।१०३।।
ब्रह्माण्डं च कतिविधं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् । ब्रह्माण्डेषु कतिविधानिन्द्रान्को गन्तुमीश्वरः ।।१०४।।

ब्राह्मण बोला— हे हरे ! मैं तुम्हारे दर्शन के लिए और इस अद्भुत नगर का निर्माण सुनकर इसके विषय में कुछ अभीष्ट बातें पूछने के लिए भी आया हूँ ।।९५।। इस नगर–मिर्माण की योजना में आपने कितने वर्ष लगाने का संकल्प किया है ? अथवा विश्वकर्मा कितने वर्षों में इसका निर्माण पूर्ण करेंगे ? ।।९६।। इस प्रकार का निर्माण किसी भी इन्द्र ने नहीं किया । । इस प्रकार के सुन्दर निर्माण में दूसरा विश्वकर्मा समर्थ भी नहीं है ? ।।९७।। बालक की बात सुनकर सम्पत्ति के मद में अति प्रमत्त होने वाले सुरराज इन्द्र हँस पड़े और पुनः उस बालक से पूछने लगे ।।९८।। शिशो! तुमने कितने इन्द्रों के समूहों को देखा या सुना है ? अथवा कितने प्रकार के विश्वकर्मा आपके देखने-सुनने में आये हैं ? यह मुझे इस समय बताइये ।।९९।। इन्द्र की बात सुनकर उस ब्राह्मण-बालक ने हँसकर इन्द्र से अमृत के समान मधुर एवं श्रवणसुखद वचन कहा ।।१००।।

ब्राह्मण बोला— मैं तुम्हारे पिता प्रजापति कश्यप को जानता हूँ। उनके पिता तपोनिधि एवं मरीचिमुनि से भी परिचित हूँ ।।१०१।। विष्णु के नाभि-कमल से उत्पन्न मरीचि के पिता देवेश्वर ब्रह्मा को भी जानता हूँ और उनके रक्षक सत्त्वगुणशाली महाविष्णु का भी परिचय रखता हूँ ।।१०२।। मुझे एकार्णव प्रलय का भी ज्ञान है, जो जीवशून्य एवं भयानक दिखाई देता है। इन्द्र निश्चय ही सृष्टि कई प्रकार की है। कल्प भी अनेक हैं तथा ब्रह्माण्ड भी कितने ही प्रकार के हैं। उन ब्रह्माण्डों में ब्रह्मा विष्णु, महेश्वर और इन्द्र जितने हो चुके हैं उनकी गणना कौन कर सकता है ? (किन्तु मैं सब कुछ जानता हूँ) ।।१०३-१०४।। हे

Funding by IKS-MoE

यदि संख्याऽस्ति रेणूनां धरायां च सुराधिप । तथाऽपि संख्या शक्राणां नास्त्येवेति विदुर्बुधाः ॥१०५॥
शक्रस्याऽऽयुश्चाधिकारो युगानामेकसप्ततिः । अष्टाविंशतिशक्राणां पतनेऽहर्निशं विधेः ॥१०६॥
विधेरष्टोत्तरशतमायुरेव[1] प्रमाणतः । सुरेन्द्राणां च का संख्या नास्ति संख्या विधेरपि ॥१०७॥
ब्रह्माण्डसंख्या यत्र क्व ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । महाविष्णोर्लोमकूपोद्भवे तोये सुनिर्मले ॥१०८॥
ब्रह्माण्डेऽस्ति यथा नौका भवतोये च कृत्रिमा । एवं लोम्नः प्रमाणेन ब्रह्माण्डाः सन्त्यसंख्यकाः ॥१०९॥
ब्रह्माण्डे च कति विधाः सुराः सन्त्येव त्वत्समाः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श पुरुषोत्तमः ॥११०॥
पिपीलिकासमूहं च व्यायतं धनुषां शतम् । क्रमशस्तान्संनिरीक्ष्य जहासोच्चैर्द्विजार्भकः ॥१११॥
नोवाच किंचिन्मौनी च गम्भीरः सागरो यथा । दृष्ट्वा हास्यं विप्रबटोर्गाथां श्रुत्वाऽतिविस्मितः
पप्रच्छ च पुनर्विप्रं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥११२॥

इन्द्र उवाच

कथं हससि विप्रेन्द्र मां शीघ्रं कारणं वद । त्वं वा को माययाच्छन्नः शिशुरूपी गुणार्णवः ॥११३॥

हे सुरश्रेष्ठ ! भूतल के धूलिकणों की गणना नहीं कर ली जाय तो भी इन्द्रों की गणना नहीं हो सकती है, ऐसा विद्वानों का मत है ॥१०५॥ इन्द्र की आयु और अधिकार इकहत्तर चतुर्युग तक है। अट्ठाईस इन्द्रों का पतन हो जाने पर विधाता का एक दिन-रात पूरा होता है ॥१०६॥ इस प्रकार एक सौ आठ वर्षों तक ब्रह्मा की सम्पूर्ण आयु है जहाँ विधाता की भी सँख्या नहीं है, वहां देवेन्द्रों की गणना क्या हो सकती है ? ॥१०७॥ जहाँ ब्रह्माण्डों की संख्या ज्ञात नहीं होती वहाँ ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश की क्या गणना हो सकती है ? महाविष्णु के लोमकूप-जनित उस निर्मल जल में ब्रह्माण्ड की स्थिति उसी तरह है जैसे सांसारिक नदी-नद आदि के जल में कृत्रिम नौका की हुआ करती है। इस प्रकार महाविष्णु के शरीर में जितने रोये हैं उतने ब्रह्माण्ड हैं, अतएव ब्रह्माण्ड असंख्य कहे गये हैं ॥१०८-१०९॥ एक-एक ब्रह्माण्ड में तुम्हारे जैसे कितने ही देवता निवास करते हैं। इसी बीच पुरुषोत्तम (हरि) ने चीटियों के समूह को देखा जो सौ धनुष की दूरी तक फैला हुआ था। क्रमशः उन सबको देखकर ब्राह्मण-बालक ऊंचे स्वर से (ठठाकर) हंस पड़ा; किन्तु कुछ बोला नहीं। मौन होकर सागर के समान गम्भीर बना रहा। ब्राह्मण-वटुक का हास्य देखकर और उसकी गाथा सुनकर इन्द्र को महान् आश्चर्य हुआ। उनके कंठ, ओठ और तालू सूख गये। फिर उन्होंने ब्राह्मण से पूछा ॥११०-११२॥

इन्द्र बोले-- विप्रवर ! तुम क्यों हंस रहे हो ? इसका कारण मुझे शीघ्र बताओ। अथवा माया से आच्छन्न एवं गुणों के सागर तुम शिशु रूप में कौन हो ? ॥११३॥ इन्द्र की बात सुनकर ब्राह्मण-बालक

---

[1] क. °रेवं प्र० ।

Funding by IKS-MoE

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच द्विजार्भकः । आध्यात्मिकं नीतिसारं ज्ञानबीजं परं वचः ॥११४॥

ब्राह्मण उवाच

दृष्टः पिपीलिकासंघो हेतुरस्य निगूढकः । मा मां पृच्छ शोकबीजं तव चाज्ञानकारणम् ॥११५॥
सांसारिकाणां संसारवृक्षमूलनिकृन्तनम् । अज्ञानतमसि च्छन्नं ज्ञानदीपमनुत्तमम् ॥११६॥
निगूढं सर्ववेदेषु सिद्धानामपि दुर्लभम् । योगिनां प्राणतुल्यं च मूढाहंकारभञ्जनम् ॥११७॥
इत्युक्त्वा तत्र संतस्थौ सस्मितो द्विजपुंगवः । पुनः पप्रच्छ शक्रस्तं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥११८॥

शक्र उवाच

ब्रूहि विप्रबटो शीघ्रं ज्ञानदीपं पुरातनम् । न जानामि शिशुः कस्त्वं ज्ञानराशिः स्वमूर्तिमान् ॥११९॥
इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः । ज्ञानं भाषितुमारेभे योगीन्द्राणां सुदुर्लभम् ॥१२०॥

ब्राह्मण उवाच

सृष्टः पिपीलिकासंघ एकैकः[1] क्रमशो मया । सर्वे स्वकर्मणा शक्र शक्रीभूताः सुरालये ॥१२१॥
अधुना कर्मणा सर्वे क्रमशो भूतजन्मनाम् । अतीतकाले संप्राप्ता भूतजातिं पिपीलिकाम् ॥१२२॥

ने उनसे आध्यात्मिक, नीति का सार भाग एवं ज्ञान का बीज रूप उत्तम वचन कहा ॥११४॥

ब्राह्मण बोला--मैं इन चींटियों के समूहों को देख रहा था । इसका कारण अत्यन्त गूढ है । तुम अपने अज्ञान का कारण तथा शोक का बीज मुझ से मत पूछो ॥११५॥ यह संसारी जीवों के लिए उनके संसाररूपी वृक्ष के मूल का नाशक, अज्ञानरूपी अंधकार में ढका हुआ, परमोत्तम ज्ञानदीप, समस्त वेदों में निगूढ, सिद्धों के लिए भी दुर्लभ, योगियों के प्राणतुल्य और मूढ़ों के अहंकार का विनाशक है ॥११६-११७॥ इतना कहकर वह ब्राह्मण वहाँ मुसकराता हुआ चुप हो गया। सूखे कंठ, ओठ एवं तालू वाले इन्द्र ने पुनः उनसे पूछा ॥११८॥

शक्र बोले--ब्राह्मण-बालक मुझे यह प्राचीन ज्ञानदीप शीघ्र बताओ। ज्ञान-राशि एवं स्वमूर्तिमान् तुम शिशुरूप में कौन हो, यह मैं नहीं जान पा रहा हूँ । इन्द्र की बात सुनकर ब्राह्मणरूपी जनार्दन ने योगिराजों के लिए भी दुर्लभ ज्ञान के विषय में भाषण देना आरंभ किया ॥११९-१२०॥

ब्राह्मण बोला-- हे शक्र ! मैंने क्रमशः एक-एक करके चींटियों के समुदाय की सृष्टि की। ये सभी चींटे अपने कर्म से देवलोक में इन्द्र के पद पर प्रतिष्ठित हो चुके थे, किन्तु इस समय वे सब क्रमशः भिन्न-भिन्न जीवयोनियों में जन्म लेते हुए चींटों की जाति में उत्पन्न हुए हैं ॥१२१-१२२॥ कर्म

---

[1] क. कैकं क्र०।

Funding by IKS-MoE

कर्मणा जीविनो यान्ति वैकुण्ठं च निरामयम् । कर्मणा ब्रह्मलोकं च शिवलोकं च कर्मणा ॥१२३॥
स्वर्गं स्वर्गसमास्थानं पातालं च स्वकर्मणा । कर्मणा नरकं घोरं स्वात्मदुःखैककारणम् ॥१२४॥
कर्मणा सूकरीगर्भं कर्मणा क्षुद्रजीवनम् । कर्मणा पशुपत्नीनां कर्मणा पक्षियोषिताम्[1] ॥१२५॥
कर्मणा कीटयोनिं च वृक्षत्वं च स्वकर्मणा । स्वकर्मणा सुखी दुःखी सेव्यः सेवक एव च ॥१२६॥
कर्मणा ब्राह्मणत्वं च दैवं चापि स्वकर्मणा । स्वकर्मणा च प्रेतत्वं ब्रह्मत्वं च स्वकर्मणा ॥१२७॥
कर्मणा शिबिकारोही राजेन्द्रश्च स्वकर्मणा । कर्मणा व्याधियुक्तश्च कर्मणैवातिसुन्दरः ॥१२८॥
कर्मणा स्वाङ्गहीनश्च स्वाङ्गवृद्धश्च कर्मणा । विधाता कर्मसूत्रेण फलदाता च जीविनाम् ॥१२९॥
कर्म स्वभावसाध्यं च स्वभावोऽभ्यासजीवकः । इत्येवं कथितं सर्वमाध्यात्मिकपरं वचः ॥१३०॥
सुखदं पुण्यदं सारं नरकार्णवतारकम् । संसारं[2] स्वप्नवत्सर्वं देवेन्द्र सचराचरम् ॥१३१॥
मृत्युश्च मस्तकस्थायी सर्वेषां कालयोगतः । जलबुद्बुदवत्सर्वं जीविनां च शुभाशुभम् ॥१३२॥
शक्र शश्वद्भमत्येव नाऽऽविष्टस्तत्र पण्डितः । इत्येवमुक्त्वा विप्रश्च तत्र तस्थौ च सस्मितः ॥१३३॥

से ही जीव निरामय वैकुण्ठ धाम में जाते हैं, कर्म से ब्रह्मलोक में और कर्म से ही शिवलोक में पहुँचते हैं ॥१२३॥ अपने कर्म से ही वे स्वर्ग में तथा स्वर्गतुल्य स्थान पाताल में भी प्रवेश करते हैं। कर्म से ही अपने किए दुःख के एक मात्र कारण घोर नरक में गिरते हैं ॥१२४॥ कर्म से ही जीव सूकरी के गर्भ में जाता है और कर्म से क्षुद्र जीवन पाता है। कर्म से पशुपत्नियों के गर्भ में जाता है। कर्म से चिड़ियों के गर्भ में, कर्म से कीड़े-मकोड़ों की योनि में और अपने ही कर्म से वृक्ष होता है। अपने ही कर्म से सुखी, दुःखी, स्वामी और सेवक होता है ॥१२५-१२६॥ कर्म से ही ब्राह्मण और देव होता है । अपने कर्म से प्रेतत्व और अपने ही कर्म से व्रह्मत्व को प्राप्त करता है ॥१२७॥ कर्म से पालकी की सवारी पाता है और कर्म से राजाधिराज होता है। कर्म से रोगी और कर्म से ही अत्यन्त सुन्दर होता है ॥१२८॥ कर्म से अंगहीन और कर्म से अङ्गवृद्धियुक्त होता है। कर्मसूत्र से ही विधाता जीवधारियों को फल देते हैं ॥१२९॥ कर्म स्वभावसाध्य है और अभ्यासजन्य। इस प्रकार मैंने आध्यात्मिक संबन्धी सब बातों को तुम्हें बता दिया जो सुखप्रद, पुण्यदायक-तत्वरूप और नरकसागर से तारने वाली हैं। देवेन्द्र! चराचर प्राणियों समेत समस्त संसार स्वप्न के समान है ॥१३०-१३१॥

यहाँ कालयोग से सबका मृत्यु सदा शिर पर सवार रहता है। जीवधारियों के शुभ और अशुभ सबकुछ जल के वुलवुले के समान हैं। इन्द्र! विद्वान् पुरुष इसमें सदा विचरता है; परन्तु कहीं भी आसक्त नहीं होता। यों कहकर ब्राह्मण वहाँ मुसकराता हुआ बैठा रहा ॥१३२-१३३॥ इसे सुनकर इन्द्र को महान् आश्चर्य हुआ। उनका अपने

---

१ क. °षिता: । २ ख. ०सारः स्व° ।

विस्मितस्त्रिदशाध्यक्षो नाऽऽत्मानं बहु मन्यते । एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रमाजगाम मुनीश्वरः ॥१३४॥
अतिवृद्धो महायोगी ज्ञानेन वयसा महान् । कृष्णाजिनी जटाधारी बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम् ॥१३५॥
वक्षःस्थले रोमचक्रं बिभर्ति मस्तके कटम् । स्थितं सर्वं मध्यदेशे किंचिदुत्पाटितं स्फुटम् ॥१३६॥
समागत्य द्वयोर्मध्ये तस्थौ स्थाणुवदेव सः । महेन्द्रो ब्राह्मणं दृष्ट्वा प्रणनाम मुदाऽन्वितः ॥१३७॥
मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तितः । प्रपच्छ कुशलं विप्रं चकार विनयं परम् ॥१३८॥
तुष्टावातिथिभावेन मुदा सादरपूर्वकम् । विप्रार्भकस्तेन सार्धं संभाषां च चकार सः ॥
स्ववाञ्छितं परं प्राह सर्वं विनयपूर्वकम् ॥१३९॥

बालक उवाच

कुतस्त्वमागतो विप्र किन्नाम भवतो वद । को वाऽत्राऽऽगमने हेतुर्निवासः कुत्र तेऽधुना ॥१४०॥
कटं कथं मस्तके तं लोमचक्रं च वक्षसि । अत्युन्नतं मध्यदेशे किंचिदुत्पाटितं मुने ॥१४१॥
मां चेत्कृपाऽस्तिते विप्र सर्वं संव्यस्य कथ्यताम् । अत्यद्भुतमिदं सर्वं श्रोतुं कौतूहलं मम ॥१४२॥
स शिशोर्वचनं श्रुत्वा तमुवाच महामुनिः । सर्वं स्वकीयवृत्तान्तं शक्रस्य पुरतो मुदा ॥१४३॥

आपको अधिक लगाना छूट गया । इसी बीच वहाँ एक मुनीश्वर का आगमन हुआ जो अतिवृद्ध, महायोगी, ज्ञान और वय से भी अत्यन्त महान्, कृष्णमृगचर्म पहने, जटाधारी, उज्ज्वल तिलक लगाये एवं हृदय में रोमचक्र तथा सिर पर चटाई धारण किये हुए थे । उनका सारा रोममण्डल विद्यमान था; केवल बीच में कुछ रोम उखाड़े गये थे । वे मुनि ब्राह्मण-बालक तथा इन्द्र के बीच में आकर ठूंठे काठ की भाँति खड़े हो गये । महेंद्र ने ब्राह्मण को देखकर सहर्ष प्रणाम किया और भक्तिपूर्व मधुपर्क आदि समर्पित करके उनकी पूजा की । पुनः विनय-विनम्र होकर उस ब्राह्मण से उन्होंने कुशल-मंगल पूछा और सादर एवं सानन्द आतिथ्य करके उन्हें सन्तुष्ट किया । अनन्तर ब्राह्मण-बालक ने उनके साथ बातचीत की और विनयपूर्वक अपना सारा मनोभाव प्रकट किया ॥१३४-१३९॥

बालक बोला---हे विप्र! आप कहां से आये हैं ? आपका नाम क्या है ? यहां किस प्रयोजन से आये हैं ? निवासस्थान कहाँ है ॥१४०॥ आपने मस्तक पर चटाई किसलिए धारण कर रखी है ? मुने ! आपके वक्षःस्थल पर रोमचक्र कैसा है ? यह बहुत बढ़ा हुआ है किन्तु बीच में कुछ रोम क्यों उखाड़ लिये गये हैं ? ब्रह्मन् ! यदि आपकी मुझ पर कृपा हो तो सब विस्तारपूर्वक कहिये । यह सब अद्भुत बात सुनने के लिए मुझे कुतूहल हो रहा है ॥१४१-१४२॥ शिशु की बात सुनकर वे महामुनि इन्द्र के सामने प्रसन्नतापूर्वक अपना समस्त वृत्तान्त कहने लगे ॥१४३॥

मुनिरुवाच

अल्पायुषा मया विप्र कुत्रापि न कृता गृहाः। न विवाहश्चोपजीव्यं भिक्षोपजीविनाऽधुना ।।१४४।।
लोमशेति च मन्नाम हेतुर्विप्रस्य दर्शनम् । वर्षणातपशान्त्यर्थं मस्तकस्थं कटं मम ।।१४५।।
वक्षःस्थलस्थितं रोमचक्रं तत्कारणं शृणु । सांसारिकाणां भयदं विवेकजननं परम् ।।१४६।।
आयुः संख्याप्रमाणं मे लोमचक्रं च वक्षसि । शक्रैकपतने विप्र लोमैकोत्पाटनं मम ।।१४७।।
उत्पाटितानि लोमानि तेन मध्ये स्थितानि च । ब्रह्मणो द्विपरार्धे च मम मृत्युर्निरूपितः ।।१४८।।
असंख्यविधयो ब्रह्मन्मरिष्यन्ति मृता अपि । कलत्रेण च पुत्रेण गृहेण किं प्रयोजनम् ।।१४९।।
ब्रह्मणः पतने चक्षुर्निमेषश्च हरेर्भवेत् । तत्पादपद्ममतुलं चिन्तयामि निरन्तरम् ।।१५०।।
दुर्लभं श्रीहरेर्दास्यं भक्तिर्मुक्तेर्गरीयसी । स्वप्नवत्सर्वमैश्वर्यं तद्भक्तिव्यवधायकम् ।।१५१।।
इदं मद्गुरुणा दत्तं शंभुना ज्ञानमुत्तमम् । विना भक्तिं न गृह्णामि सालोक्यादिचतुष्टयम् ।।१५२।।
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्जगाम शिवसंनिधिम् । शिशुरूपी हरिस्तत्रैवान्तर्धानं चकार ह ।।१५३।।
इन्द्रस्तु स्वप्नवद्दृष्ट्वा बभूव तत्र विस्मितः । तृष्णामात्रं च संपत्तौ नास्त्येव परमेश्वरे ।।१५४।।

मुनि बोले—विप्र! हमारी आयु अल्प है, इसलिए हमने कहीं गृह नहीं बनाया है, न विवाह किया
और न जीविका का कुछ साधन ही जुटाया है। आजकल केवल भिक्षामात्र से जीविकानिर्वाह करता हूँ ।।१४४।।
मेरा नाम लोमश है, ब्राह्मण-दर्शन के हेतु आया हूँ। वर्षा-धूप से बचाव के लिए मस्तक पर यह चटाई
है ।।१४५।। मेरे वक्षःस्थल में जो रोमचक्र है, उसका भी कारण सुनिये, जो सांसारिक जीवों को भय देने
वाला और उत्तम विवेक को उत्पन्न करने वाला है ।।१४६।। मेरे वक्षःस्थल का यह रोममण्डल ही मेरी
आयु की संख्या का प्रमाण है। ब्रह्मन् ! जब एक इन्द्र का पतन हो जाता है, तब मेरे इस रोमचक्र का एक
रोम उखाड़ दिया जाता है ।।१४७।। इसी कारण बीच के बहुत से रोएं उखाड़ दिये गये हैं। तथापि अभी
बहुत से विद्यमान हैं। ब्रह्मा का दूसरा परार्ध पूर्ण होने पर मेरी मृत्यु बताई गई है ।।१४८।। असंख्य
ब्रह्मा मर चुके हैं और मरेंगे, मुझे स्त्री-पुत्र और गृह से प्रयोजन ही क्या है ? ।।१४९।। ब्रह्मा का पतन होने पर
भगवान् विष्णु की एक पलक गिरती है। इसलिये मैं उनके अनुपम चरणकमल का ही सतत ध्यान करता रहता
हूँ ।।१५०।। भगवान् श्री हरि का दास्य-पद दुर्लभ है और भक्ति-मुक्ति से भी श्रेष्ठ है। सारा ऐश्वर्य स्वप्न के समान
है और भगवान् की भक्ति में बाधक है ।।१५१।। यह परमोत्तम ज्ञान मेरे गुरु शिव ने प्रदान किया है, जिस कारण
मैं बिना भक्ति के सालोक्य आदि चारों प्रकार की मुक्ति भी ग्रहण करने को तैयार नही हूँ ।।१५२।। इतना
कहकर वे मुनि शिव के वहाँ चले गये और शिव रूपी विष्णु भी वहीं अन्तर्हित हो गये ।।१५३।। इन्द्र स्वप्न
के समान इसे देखकर आश्चर्यचकित हो गये। अब उन परमेश्वर के मन में सम्पत्ति के लिए तृष्णा नहीं हर

Funding by IKS-MoE

विश्वकर्माणमानीय प्रियमुक्त्वा शतक्रतुः । दत्त्वा रत्नानि संपूज्य तं प्रस्थापितवान्गृहम् ॥१५५॥
सर्वं विन्यस्य पुत्रे च शरणं गन्तुमुद्यतः । शचीं राज्यश्रियं त्यक्त्वा विवेकी क्षयकामुकः ॥१५६॥
दृष्ट्वा विवेकिनं कान्तं हृदयेन विदूयता । शची जगाम शोकार्ता संत्रस्ता शरणं गुरोः ॥१५७॥
सर्वं निवेदनं कृत्वा समानीय बृहस्पतिम् । बोधयामास शक्रं तं नीतिसारेण कामिनी ॥१५८॥
गुरुः शास्त्रविशेषं च दम्पतीरससंयुतम् । विधाय च स्वयं प्रीत्या पाठयामास तं मुदा ॥१५९॥
नीतिशास्त्रं बहुविधं बोधयामास वाक्पतिः । स चकार तदा राज्यं वृन्दावनविनोदिनि ॥१६०॥
इत्येवं कथितं सर्वं शक्रदर्पविमोचनम् । साक्षाद्दृष्टो दर्पभङ्गो नन्दयज्ञे सुरेश्वरि ॥१६१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० श्रीकृष्णराधासं०
शक्रदर्पभङ्गो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

गई। उन्होंने तुरन्त विश्वकर्मा को बुलाया और स्नेहपूर्ण बातें करके रत्नों के उपहार से उन्हें सुसम्मानित करके घर भेज दिया ॥१५४-१५५॥

फिर सबकुछ पुत्र को सौंपकर वे भगवान् की शरण में जाने को उद्यत हो गये। उनका विवेक जाग उठा था; अतः वे शची तथा राजलक्ष्मी को त्यागकर प्रारब्ध-क्षय की कामना करने लगे ॥१५६॥ उधर इन्द्राणी ने देखा कि पतिदेव ने हार्दिक वेदना प्रकट करते हुए विवेक का आश्रय ले लिया है। वह शोक से व्याकुल हो उठी, भयभीत होकर गुरु की शरण पहुँची ॥१५७॥ वहाँ उनसे सबकुछ निवेदन कर उन्हें अपने घर लिवा लायी, उस कामिनी ने गुरु द्वारा इन्द्र को नीतिसार का बोध कराया ॥१५८॥ गुरु बृहस्पति ने दाम्पत्य-प्रेम से युक्त शास्त्रविशेष की रचना करके स्वयं प्रेमपूर्वक उन्हें पढ़ाया ॥१५९॥ बृहस्पति ने उस शास्त्रविशेष का भाव इन्द्र को भलीभाँति समझा दिया। बृन्दावनविनोदिनि! तब इन्द्र पूर्ववत् राज्य करने लगे ॥१६०॥ सुरेश्वरि! इस भाँति शक्र का दर्पभङ्ग तुम्हें बता दिया। नन्द के यज्ञ में जो इन्द्र का दर्प-दलन हुआ था, उसे तो तुमने स्वयं देखा ही था ॥१६१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में श्रीकृष्णराधासंवाद-प्रसंग में इन्द्रदर्पभङ्ग नामक सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४७॥

Funding by IKS-MoE

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

राधिकोवाच

कथितो भवता मह्यं दर्पभङ्गः श्रुतो हरेः । दर्पभङ्गं रवेश्चापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।।१।।

श्रीकृष्ण उवाच

एकदैवोदयं कृत्वा रविरस्तं जगाम ह । माली सुमाली दैत्येन्द्रो दीप्तिं कर्तुं समुद्यतौ ।।२।।
महासंपन्मदोन्मत्तौ शंकरस्य वरेण च । तयोश्च प्रभया रात्रिर्न भवेदिति सुन्दरि ।।३।।
रुष्टः सूर्यः स्वशूलेन तौ जघानावलीलया । पतितौ सूर्यशूलेन मूर्च्छितौ धरणीतले ।।४।।
भक्तापायं च विज्ञाय शंकरो भक्तवत्सलः । आगत्य जीवयामास महाज्ञानेन तौ विभुः ।।५।।
तौ च नत्वा शिवं भक्त्या जग्मतुर्निजमन्दिरम् । दुद्राव च महादेवः सूर्यं हन्तुं रुषा ज्वलन् ।।६।।
दृष्ट्वा संहारकर्तारं जिघांसन्तं हरं रविः । भिया पलायमानश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ ।।७।।
दुद्राव च महादेवो ब्रह्मणो निलयं रुषा । शूलमत्यर्थमुद्यम्य कालकालो विधेर्विधिः ।।८।।

अध्याय ४८

सूर्य का दर्प भंग

राधिका बोलीं—भगवन् ! आप ने इन्द्र का दर्प-मोचन तो मुझे सुना दिया, किन्तु मैं अब सूर्य का दर्प-भङ्ग, रहस्य समेत सुनना चाहती हूँ ।।१।।

श्रीकृष्ण बोले--एक समय सूर्य उदय होकर अस्त हो गये, किन्तु माली और सुमाली नामक दो दैत्यराज वैसा ही प्रकाश करने के लिए उद्यत हो गये ।।२।। शिव के वरदान से वे दोनों दैत्य महासम्पत्तिशाली होकर मदोन्मत्त हो गये थे । उनके प्रकाश के कारण रात्रि होती ही नहीं थी ।।३।। यह देखकर सूर्य बहुत रुष्ट हुए और शूल से उन्हें सहज ही में मार डाला । सूर्य के शूल से आहत वे दोनों पृथिवी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े ।।४।। भक्तवत्सल शिव, भक्तों का विनाश जानकर वहाँ आये और प्रभु ने अपने महान् ज्ञान द्वारा उन दोनों को जीवित कर दिया ।।५।। वे दोनों भी भक्तिपूर्वक शिव को नमस्कार करके अपने घर चले गये । इधर महादेव महाक्रुद्ध होकर मारने के लिए सूर्य का पीछा करने लगे । सूर्य ने देखा कि—संहार करने वाले स्वयं शिव मुझे मार देना चाहते हैं, वे भयभीत होकर भागते हुए ब्रह्मा की शरण में पहुँचे ।।६-७।। तब महादेव ने रोष से शूल उठाकर ब्रह्मा के भवन पर धावा किया । भगवान् काल के भी काल और विधाता

Funding by IKS-MoE

दृष्ट्वा ब्रह्मा हरं रुष्टं तुष्टाव परमेश्वरम् । चतुर्वक्त्रेण वेदोक्तस्तोत्रेण जगतां पतिः ॥९॥

ब्रह्मोवाच

प्रसीद दक्षयज्ञघ्न सूर्यं मच्छरणागतम् । त्वयैव सृष्टः सृष्टेश्च समारम्भे जगद्गुरो ॥१०॥
आशुतोष महाभाग प्रसीद भक्तवत्सल । कृपया च कृपासिन्धो रक्ष रक्ष दिवाकरम् ॥११॥
ब्रह्मस्वरूप भगवन्सृष्टिस्थित्यन्तकारण । स्वयं रविं विनिर्माय स्वयं संहर्तुमिच्छसि ॥१२॥
स्वयं ब्रह्मा स्वयं शेषो धर्मः सूर्यो हुताशनः । इन्द्रचन्द्रादयो देवास्त्वत्तो भीताः परात्पर ॥१३॥
ऋषयो मुनयश्चैव त्वां निषेव्य तपोधनाः । तपसां फलदाता त्वं तपस्त्वं तपसां[1] फलम् ॥१४॥
इत्येवमुक्त्वा ब्रह्मा तं सूर्यमानीय भक्तितः । प्रीत्या समर्पयामास शंकरे दीनवत्सले ॥१५॥
शंभुस्तमाशिषं कृत्वा विधिं नत्वा जगद्विधिः । प्रसन्नवदनः श्रीमानालयं प्रययौ मुदा ॥१६॥
इति धातृकृतं स्तोत्रं संकटे यः पठेन्नरः । भयात्प्रमुच्यते भीतो बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥१७॥
राजद्वारे श्मशाने च भग्नपोते महार्णवे । स्तोत्रस्मरणमात्रेण मुच्यते नात्र संशयः ॥१८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० श्रीकृष्णराधासं० सूर्यदर्पभङ्गो नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

के भी विधाता हैं ॥८॥ ब्रह्मा परमेश्वर शिव को रुष्ट देखकर अपने चारों मुखों से वेदोक्त-स्तोत्र द्वारा उनकी स्तुति करने लगे ॥९॥

ब्रह्मा बोले—जगद्गुरो ! आप दक्षयज्ञ-नाशक हैं, समस्त सृष्टि के स्रष्टा हैं, अतः मेरी शरण में आये सूर्य पर प्रसन्न हो जाइये ॥१०॥ भक्त-वत्सल ! महाभाग ! आप आशुतोष एवं कृपासिन्धु हैं, प्रसन्न हो जाइए और सूर्य की रक्षा कीजिए ॥११॥ भगवन् ! आप ब्रह्मस्वरूप हैं और सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय करने वाले हैं। आपने ही सूर्य का निर्माण किया है और अब आप ही उनका संहार करना चाहते हैं ? ॥१२॥ आप स्वयं ब्रह्मा, स्वयं शेष, धर्म, सूर्य और अग्नि हैं। परात्पर ! चन्द्र आदि समस्त देवगण आपसे भयभीत रहते हैं ॥१३॥ ऋषि-मुनि लोग आप ही की सेवा करके तपोधन कहलाते हैं। आप ही तप के फलदाता, तपःस्वरूप एवं तप के फलस्वरूप भी हैं। इतना कहकर ब्रह्मा ने सूर्य को लाकर दीनवत्सल शिव को भक्तिपूर्वक सप्रेम सौंप दिया ॥१४-१५॥ संसार के विधाता शिव ने सूर्य को शुभाशिष प्रदान किया और प्रसन्न वदन से ब्रह्मा को नमस्कार कर अपने धाम को प्रस्थान किया ॥१६॥ जो संकटकाल में ब्रह्माकृत इस स्तोत्र का पाठ करता है, वह भयभीत हो तो भय से मुक्त और बँधा हो तो बन्धन मुक्त हो जाता है ॥१७॥ राजद्वार पर, श्मशान में और महासागर में जहाज टूट जाने पर इस स्तोत्र के स्मरणमात्र से (प्राणी संकट-) मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥१८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में श्रीकृष्ण-राधा-संवाद के प्रसंग में सूर्यदर्प-भंग नामक अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४८॥

---

[1] क. °पसः परः।

Funding by IKS-MoE

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

सूर्यः प्रणम्य ब्रह्माणं मुदा युक्तस्तदाज्ञया । चकार विनयं प्रीत्या तेजस्वी त्रिगुणात्मकः ॥१॥
अथ वह्नेरुपाख्यानं सावधानं निशामय । गोपनीयं पुराणेषु कर्णपीयूषमुत्तमम् ॥२॥
त्रैलोक्यं भस्मसात्कर्तुमेकदाग्निः समुद्यतः । शततालप्रमाणां तां शिखां कृत्वा भयानकाम् ॥३॥
क्षुभितः कुपितश्चैव भृगोः शापस्य कारणात् । स्वं च तेजस्विनं मत्वा तुच्छं मत्वाऽन्यमात्मनः ॥४॥
एतस्मिन्नन्तरे विष्णुराजगामावलीलया । वह्नेस्तां दाहिकीं शक्ति तां जहार पुरः स्थितः ॥५॥
मायया शिशुरूपी च तमुवाच जनार्दनः । सस्मितो विनयं कृत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥६॥

शिशुरुवाच

कथं रुष्टोऽसि भगवन्भवान्मां कारणं वद । त्रैलोक्यं भस्मसात्कर्तुमुद्यतोऽसि निरर्थकम् ॥७॥
त्वमेव भृगुणा शप्तो भृगोश्च दमनं कुरु । एकापराधात्त्रैलोक्यं भस्मीकर्तुं न चार्हसि ॥८॥
विश्वं च ब्रह्मणा सृष्टं तस्य पाता स्वयं हरिः । संहर्ता भगवान्रुद्र एवमेव क्रमो भवेत् ॥९॥

अध्याय ४९

अग्नि का दर्प-भंग

श्रीकृष्ण बोले--त्रिगुणात्मक एवं तेजस्वी सूर्य ने प्रसन्न होकर ब्रह्मा को प्रणाम किया और उनकी आज्ञा से वे अभिमान छोड़कर प्रेमपूर्वक विनयपूर्ण बर्ताव करने लगे ॥१॥ अब अग्नि का उपाख्यान सावधानी से सुनो । यह उपाख्यान पुराणों में गोपनीय एवं कानों को अमृत के समान उत्तम प्रतीत होता है ॥२॥

एक बार अग्नि तीनों लोकों को भस्म करने के लिए तैयार हो गये--उस समय उनकी सौ ताडवृक्ष के समान ऊँची एवंभ यानक शिखा (लपटें) हो गईं ॥३॥ भृगु के शापवश वे क्षुब्ध होकर कुपित हो उठे थे; इसीलिए अपने ही को तेजस्वी मानते हुए, अन्य को तुच्छ समझ रखा था ॥४॥ इसी बीच वहाँ विष्णु आ गये और उन्हीं के सामने स्थित होकर उन्होंने उनकी दाह (जलाने) वाली शक्ति का अपहरण कर लिया ॥५॥ तत्पश्चात् माया द्वारा बालकरूपी हरि ने मन्द-मन्द मुसकराते हुए भक्ति से कन्धे झुका कर विनयपूर्वक कहा ॥६॥

शिशु बोला--भगवन् ! आप रुष्ट क्यों हैं ? इसका कारण मुझे बताइए । व्यर्थ ही आप तीनों लोकों को भस्म करने के लिए क्यों उद्यत हुए हैं ? ॥७॥ भृगु ने आप को शाप दिया है, अतः आप भृगु का ही दमन करें । एक के अपराध से तीनों लोकों को भस्म कर डालना आपके लिए उचित नहीं है ॥८॥ ब्रह्मा ने इस जगत् की सृष्टि की है और इसके रक्षक स्वयं विष्णु हैं और संहारक भगवान् रुद्र हैं, ऐसा ही ही क्रम

तत्कथं भस्मसात्कर्तुमीश्वरे शंकरे स्थिते । रक्षितारं हरिं जित्वा संहारं कुरु सत्वरम् ॥१०॥
इत्युक्त्वा ब्राह्मणबटुः शरपत्रं पुरः स्थितम् । अतिशुष्कं करे धृत्वा दग्धं कर्तुं ददौ मुदा ॥११॥
दृष्ट्वा शुष्केन्धनं वह्निर्लेलिहानो भयानकः । स वव्रे शिखया विप्रं मेघेन शशिनं यथा ॥१२॥
न च दग्धं शुष्कपत्रं लोमैकं च शिशोस्तथा । दृष्ट्वा व्रीडायुतो वह्निर्निस्तब्धो हि शिशोः पुरः ॥१३॥
कृत्वा वह्नेर्दर्पभङ्गमन्तर्धानं चकार सः । वह्निः स्वमूर्तिं संहृत्य स्वस्थानं भीतवद्ययौ ॥१४॥
उक्तो वह्नेर्दर्पभङ्गः परं वै श्रोतुमिच्छसि । नित्यनूतनमाख्यानं देवानां दर्पमोचनम् ॥१५॥

राधिकोवाच

शेषाणां दर्पभङ्गं च क्रमेण कथय प्रभो । कथापीयूषधारां ते श्रुत्वा तृप्येत को भुवि ॥१६॥

नारायण उवाच

राधिकावचनं श्रुत्वा सस्मितो भगवान्प्रभुः । कथां कथितुमारेभे श्रुत्वा रम्यां पुरातनीम् ॥१७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० अग्निदर्पमोचनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

है ॥९॥ इसलिए संहारकर्ता शिव के रहते आप भस्म करने के लिए क्यों उद्यत हुए हैं ? यदि ऐसा ही करना है, तो रक्षा करने वाले विष्णु को जीत लीजिये, तब शीघ्रतापूर्वक संहार कीजिए ॥१०॥ इतना कहकर उस ब्राह्मण-वटु ने सामने पड़े हुए अत्यन्त सूखे एक सरपत के पत्ते को हाथ से उठा लिया और प्रसन्न मन से उन्हें उसे दग्ध करने (जलाने) के लिए दे दिया ॥११॥ उस सूखे पत्ते को देखकर अग्नि भयानक रूप से जीभ लपलपाने लगे। उन्होंने अपनी लपटों से ब्राह्मण (बटु) को उसी तरह लपेट लिया, जैसे मेघों की घटा से चन्द्रमा छिप जाता है ॥१२॥

किन्तु वे न तो उस सूखे पत्ते को दग्ध कर सके और न उस बालक के एक लोम को भी जलाने में समर्थ हो सके। यह देखकर अग्नि लज्जित होकर शिशु के सामने एकदम अवाक् हो गये ॥१३॥ बालक रूपी भगवान् अग्नि का अभिमान चूर करके अन्तर्हित हो गये और अग्नि भी अपना भीषण रूप त्याग कर डरे हुए की तरह अपने स्थान को चले गये ॥१४॥ मैंने अग्नि का दर्पनाश बता दिया, और अब क्या सुनना चाहती हो ? देवों का दर्पभंग नित्य नूतन आख्यान है ॥१५॥

राधिका बोलीं—प्रभो ! अब शेष देवों का दर्पभंग बताइये । आपसे कथारूपी अमृत की धारा को सुनकर पृथ्वी पर कौन तृप्त हो सकता है ? ॥१६॥

नारायण बोले—राधिका की बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र मुसकराये और प्राचीन रमणीय कथा कहने लगे ॥१७॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में अग्निदर्पमोचन नामक उनचासवां अध्याय समाप्त ॥४९॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

दुर्वाससो दर्पभङ्गं कथयामि शृणु प्रिये । महामुनेर्योगिनश्च रुद्रांशस्यातितेजसः ॥१॥
एकदा चाम्बरीषश्च कृत्वा च द्वादशीव्रतम् । पारणं कर्तुमारेभे भोजयित्वा द्विजान्बहून् ॥२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चाऽऽजगाम मुनिः स्वयम् । क्षुधार्तश्च तृषार्तश्च विष्णुव्रतपरायणः ॥३॥
मां भोजय महाभागेत्येवं स नृपमुक्तवान् । राजा भक्त्या ददौ तस्मै परमान्नं सुधोपमम् ॥४॥
सकेशं पायसं दृष्ट्वा राजानं शप्तुमुद्यतः । जटां निकृत्य शिरसः स्थापयामास भूतले ॥५॥
जटामध्यात्समुद्भूतो ज्वलदग्निशिखोपमः । सप्ततालप्रमाणश्च पुरुषः प्रलयान्तकः ॥६॥
नृपश्रेष्ठं सराजानं कोपेन हन्तुमुद्यतः । भयेन कम्पिताः सर्वे शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥७॥
सस्मार च महाभीतो राजा मम पदाम्बुजम् । सर्वविघ्नस्योपशमः स्मृतिमात्राद्बभूव ह ॥८॥
एतस्मिन्नन्तरे चक्रं दुर्निवार्यं सुदर्शनम् । तेजसा मम तुल्यं च कोटिसूर्यप्रभोपमम् ॥९॥
आविर्बभूव सहसा सभामध्ये च घूर्णितम् । निकृत्य कृत्यापुरुषं दुद्राव मुनिपुंगवम् ॥१०॥

अध्याय ५०

दुर्वासा का दर्प-भंग

श्रीकृष्ण बोले—प्रिये ! योगी, रुद्र के अंश से उत्पन्न, अत्यन्त तेजस्वी और महान् मुनि दुर्वासा का भोजन कराने के पश्चात् दर्पभङ्ग सुनो ॥१॥ एक बार राजा अम्बरीष ने द्वदशी व्रत करके अनेक ब्राह्मणों को (प्यास) से स्वयं पारण करने के लिए बैठे कि उसी बीच वहाँ मुनि दुर्वासा आ गये, जो क्षुधापीडित, तृषा राजा आकुल एवं विष्णुव्रत में निरत थे ॥२-३॥ उन्होंने राजा से कहा-हे महाभाग ! मुझे भोजन कराइये ! निकलने से ने तुरन्त भक्तिपूर्वक उन्हें अमृत के समान खीर समर्पित किया ॥४॥ किन्तु (खीर) में केश (बाल) जटा के मध्य से वे राजा को शाप देने के लिए तैयार हो गये। सिर से जटा तोड़कर भूमि पर पटक दिया ॥५॥ प्रलयकारी था प्रज्वलित अग्निशिखा की भाँति एक पुरुष निकल पड़ा, जो सात ताड़ वृक्षों के समान ऊँचा एवं सभी लोग काँप ॥६॥ वह क्रोध से नृपश्रेष्ठ राजा को मारने के लिए तैयार हो गया। उसके भय से (वहाँ के) का स्मरण करने उठे। उनके कण्ठ, ओठ और तालू सूख गये ॥७॥ महाभयभीत होकर राजा मेरे चरणकमल चक्रसुदर्शन प्रकट लगा। स्मरण करते ही उसके समस्त विघ्नों का शमन हो गया ॥८॥ किन्तु उसी बीच सहसा इधर-उधर घूमता हो गया, जो दुर्निवार, मेरे समान तेजस्वी और करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण था। वह सभा में समस्त पर्वत, हुआ (जटा से उत्पन्न) उस कृत्या पुरुष को काटकर मुनि दुर्वासा को दौड़ाने लगा ॥९-१०॥

Funding by IKS-MoE

सशैलसागरां पृथ्वीं काञ्चनीं भूमिमुत्तमाम् । भ्रामयित्वा महीं सर्वां पुनर्दुद्राव तं मुनिम् ॥११॥
धावन्तं मुक्तकेशं तं भीतं कातरमातुरम् । तेजसाऽऽच्छाद्य सूर्यं तं दीप्ति कुर्वन्तमुत्तमाम् ॥१२॥
कैलासं सप्तस्वर्गं च ब्रह्मलोकमनामयम् । विप्रेन्द्रो भ्रमणं कृत्वा वैकुण्ठं शरणं ययौ ॥१३॥
पादपद्मे पतन्तं च ददर्श विप्रपुंगवम् । कृपया च कृपासिन्धुर्ददौ विप्राय निर्भयम् ॥१४॥
नारायणवरेणैव बभूव विज्वरो द्विजः । पुनर्ययौ हरिं स्तुत्वा नृपगेहं तदाज्ञया ॥१५॥
राजा मुनीन्द्रं संप्राप्य भोजयामास पायसम् । स्वयं च पारणां चक्रे सस्त्रीकः सहबान्धवः ॥१६॥
राजानमाशिषं कृत्वा भुक्त्वा विप्रो गृहं ययौ । मया नियोजितं चक्रं भक्तानां रक्षणाय च ॥१७॥
नश्यन्ति सर्वे प्रलये न मे भक्तः प्रणश्यति । सर्वे देवा मम प्राणा भक्ताः प्राणाधिका मम ॥१८॥
त्वं च लक्ष्मीर्महामाया सावित्री वा सरस्वती । ब्रह्मा शंभुरनन्तश्च धर्मश्च ब्राह्मणास्तथा ॥१९॥
गोपाङ्गनाश्च गोपाश्च सर्वे प्रियतमा मम । तेभ्यः प्रियाः परा भक्ताः प्रियो भक्तान्न कश्चन ॥२०॥
दत्त्वा सुदर्शनं चक्रं भक्तानां रक्षणाय च । तथाऽपि न प्रतीतिर्मे स्वयं द्रष्टुं प्रयामि तान् ॥२१॥
दुर्वाससो दर्पभङ्गः श्रुतो मत्तः सुरेश्वरि । आज्ञापय महाभागे किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥२२॥

सातों सागर और परमोत्तम काञ्चन भूमि (सुमेरु पर्वत) समेत भूमण्डल में उनका पीछा करता रहा ॥११॥

दौड़ते हुए ऋषि के केश खुल गये थे और वे अति भयभीत, कातर एवं आतुर होकर भाग रहे थे। विप्रेन्द्र दुर्वासा अपने तेज से सूर्य की प्रभा को भी आच्छादित करके उत्तम प्रकाश फैलाते हुए दौड़ रहे थे। कैलाश, सात स्वर्ग तथा स्वस्थ ब्रह्मलोक का भ्रमण करते हुए विष्णु की शरण में पहुँचे ॥१२-१३॥ वहाँ कृपासागर विष्णु ने अपने चरणकमल पर गिरे हुए ब्राह्मण-श्रेष्ठ दुर्वासा को देखकर कृपया उन्हें अभय प्रदान किया ॥१४॥ अनन्तर नारायण के वरदान द्वारा ही वह ब्राह्मण सन्तापरहित होकर सुखी हुआ। नारायण की स्तुति करके उनकी आज्ञा से पुनः राजा के घर गया ॥१५॥ राजा उन मुनिश्रेष्ठ को पाकर बहुत प्रसन्न हुए। मुनि को तुरन्त पायस भोजन कराया, फिर स्वयं भी स्त्री-बान्धवों समेत भोजन किया ॥१६॥ भोजन करके ब्राह्मण राजा को शुभाशिष प्रदान कर अपने घर चला गया। मैंने भक्तों की रक्षा के कार्य में उस चक्र को लगा दिया। प्रलय में सबका नाश हो जाता है, किन्तु मेरे भक्त का नाश नहीं होता। समस्त देव मेरे प्राणस्वरूप हैं किन्तु भक्त लोग मुझे प्राण से भी अधिक प्रिय हैं ॥१७-१८॥ तुम, लक्ष्मी, महामाया, सावित्री, सरस्वती, ब्रह्मा, शिव, अनन्त, धर्म, ब्राह्मण, गोपियाँ, और गोपगण सभी मुझे अति प्रिय हैं, परन्तु उनसे भी बढ़कर भक्त प्रिय हैं, भक्त से बढ़कर प्रिय मुझे कोई नहीं हैं ॥१९-२०॥ भक्तों के रक्षणार्थ सुदर्शन को नियुक्त करने पर भी मुझे पूरा विश्वास नही होता है, अतः मैं स्वयं उन्हें देखने के लिए जाता हूँ ॥२१॥ सुरेश्वरि ! महाभागे ! दुर्वासा का दर्पभङ्ग तो मुझसे सुन लिया, अब और क्या सुनना चाहती हो ? आज्ञा प्रदान करो ॥२२॥

Funding by IKS-MoE

राधिकोवाच

धन्वन्तरेर्दर्पभङ्गं कथयस्व जगद्गुरो । पुराणे गोपनीयं च श्रोतुं कौतूहलं मम ।।२३।।

नारायण उवाच

राधिकावचनं श्रुत्वा जहास मधुसूदनः । कथां कथितुमारेभे श्रुतिरम्यां पुरातनीम् ।।२४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० दुर्वाससो दर्पभङ्गो
नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५०।।

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

नारायणांशो भगवान्स्वयं धन्वन्तरिर्महान् । पुरा समुद्रमथने समुत्तस्थौ महोदधेः ।।१।।
सर्ववेदेषु निष्णातो मन्त्रतन्त्रविशारदः । शिष्यो हि वैनतेयस्य शंकरस्योपशिष्यकः ।।२।।
शिष्याणां च सहस्रेण गतः कैलासमीश्वरि । ददर्श तक्षकं मार्गे लेलिहानं भयानकम् ।।३।।

राधिका बोलीं--जगद्गुरो ! मुझे पुराणों में गोपनीय धन्वन्तरि का दर्पभङ्ग सुनने का कौतूहल हो रहा है, कहने की कृपा करें ।।२३।।

नारायण बोले--राधिका की वात सुनकर मधुसूदन हँस पड़े और उन्होंने सुनने में अतिरमणीक प्राचीन कथा कहना आरम्भ किया ।।२४।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद के संवाद में दुर्वासा का दर्प-भङ्ग-वर्णन नामक पचासवाँ अध्याय समाप्त ।।५०।।

अध्याय ५१

धन्वन्तरि का दर्प-भंग

श्रीकृष्ण बोले—भगवान् धन्वन्तरि स्वयं महापुरुष हैं और साक्षात् नारायण के अंशस्वरूप हैं। पूर्व काल में समुद्र-मन्थन के समय वे उसी महासागर से आविर्भूत हुए। वे सम्पूर्ण वेदों में निष्णात एवं मन्त्र-तन्त्र-विशारद हैं, गरुड़ के शिष्य और शिव के उपशिष्य हैं ।।१-२।। हे ईश्वरि ! एक बार वे अपने सहस्रों शिष्यों समेत कैलाश को गये। मार्ग में उन्हें भीषण तक्षक नाग दिखाई पड़ा जो जीभ लपलपा रहा था ।।३।। भयानक विष से भरा

Funding by IKS-MoE

लक्षनागैः परिवृतं शैलतुल्यं विषोल्बणम् । भोक्तुं कोपात्समायान्तमेवं दृष्ट्वा जहास च ॥४॥
दम्भी धन्वन्तरेः शिष्यो धृत्वा तक्षकमुल्बणम् । मन्त्रेण जृम्भितं कृत्वा निर्विषं तं चकार ह ॥५॥
अमूल्यं मणिरत्नं च जहार मस्तकस्थिरम् । करेण भ्रामवित्वा च प्रेरयामास दूरतः ॥६॥
निश्चेष्टस्तक्षकस्तस्थौ तत्र मार्गे यथा मृतः । गणा निवेदनं चक्रुर्गत्वा वासुकिसंनिधिम् ॥७॥
वासुकिस्तत्समाकर्ण्य प्रज्वलन्नतिकोपतः । सर्पान्प्रस्थापयामासासंख्यांश्चैव विषोल्बणान् ॥८॥
सर्पसेनाग्रणीनां च मुख्यान्पञ्च विशारदान् । द्रोणकालीयकर्कोटपुण्डरीकधनंजयान् ॥९॥
सर्वे नागाः समाजग्मुर्यत्र धन्वन्तरिः स्वयम् । भयमापुः शिष्यगणा दृष्ट्वा नागानसंख्यकान् ॥१०॥
नागनिःश्वासवातेन सर्वे शिष्या मृता इव । निश्चेष्टा ज्ञानरहिताः शेरते धरणीतले ॥११॥
धन्वन्तरिश्च भगवान्पीयूषवर्षणेन च । जीवयामास शिष्यांश्च मन्त्रेण च गुरुं स्मरन् ॥१२॥
चेंतनां कारयित्वा च शिष्याणां च जगद्गुरुः । चकार जृम्भितं मन्त्रैः सर्पसंघं विषोल्बणम् ॥१३॥
सर्वे बभूवुर्निश्चेष्टा जृम्भितास्ते मृता इव । कोऽपि नालं ततो देवि वार्तां दातुं गणेषु च ॥१४॥
वासुकिर्बुबुधे सर्वं सर्वज्ञः सर्वसंकटम् । आजुहाव जगद्गौरीं भगिनीं ज्ञानरूपिणीम् ॥१५॥

वासुकिरुवाच

मनसे त्वं समागच्छ नागान्रक्षातिसंकटात् । जगत्त्रये महाभागे पूजा तव भविष्यति ॥१६॥

हुआ वह पर्वताकार नाग लाखों नागों से घिरा हुआ था और धन्वन्तरि को क्रोधपूर्वक काट खाने के लिए आगे बढ़ रहा था। यह देख धन्वन्तरि का शिष्य दम्भी हँसने लगा। उसने भयानक तक्षक को मन्त्र से जृम्भित करके विषहीन बना दिया और उसके मस्तक में विद्यमान मणिरत्न को हर लिया और हाथ से घुमाकर उसे दूर फेंक दिया ॥४-६॥ उस मार्ग में तक्षक मृतक की भाँति निश्चेष्ट पड़ा रहा। उसके गणों ने वासुकि नाग के पास जाकर उनसे समस्त वृत्तान्त निवेदन किया ॥७॥ यह सुनकर नागवासुकि अत्यन्त क्रोध से जल उठे। उन्होंने तीक्ष्ण विष वाले असंख्य सर्पों को वहाँ भेजा। समस्त सेनापतियों में पाँच मुख्य थे--द्रोण, कालीय, कर्कोटक, पुण्डरीक एवं धनञ्जय ॥८-९॥ ये सब नाग वहाँ आये जहाँ स्वयं धन्वन्तरि थे। असंख्य नागों को देखकर धन्वन्तरि के शिष्यगण भयभीत हुए ॥१०॥ नागों के केवल निःश्वास वायु से उनके शिष्यगण मृतक की भाँति चेष्टाहीन एवं ज्ञानशून्य होकर धराशायी हो गये ॥११॥

तब भगवान् धन्वन्तरि ने गुरु का स्मरण करते हुए अमृतवर्षा तथा मन्त्र द्वारा समस्त शिष्यों को जीवित कर दिया ॥१२॥ जगद्गुरु धन्वन्तरि ने अपने शिष्यों को चेतना प्रदान करते हुए तीक्ष्णविष वाले उन सर्पगणों को मन्त्र द्वारा जृंभित कर दिया ॥१३॥ जृंभित सभी सर्प मृतक की भाँति निश्चेष्ट हो गये। देवि ! वहाँ का समाचार बताने के लिये कोई भी सर्प समर्थ नहीं रहा ॥१४॥ परन्तु सर्वज्ञ होने से वासुकि ने स्वयं वहाँ का समस्त संकट जान लिया और अपनी ज्ञानरूपिणी बहन जगद्गौरी को बुलाया ॥१५॥

वासुकि बोले— मनसे ! तुम आवो, नागों को अति संकट से मुक्त करो, महाभागे ! ऐसा करने पर

Funding by IKS-MoE

वासुकेर्वचनं श्रुत्वा प्रहस्योवाच कन्यका । वाक्यं पीयूषतुल्यं च विनयावनतस्थिता ॥१७॥

मनसोवाच

नागेन्द्र शृणु मद्वाक्यं यास्यामि समरं प्रति । भद्राभद्रं दैवसाध्यं करिष्यामि यथोचितम् ॥१८॥
तं शत्रुं संहरिष्यामि लीलया समरस्थले । अहं यं निहनिष्यामि तं को रक्षितुमीश्वरः ॥१९॥
यदि ब्रह्मादयो देवाः समायान्ति रणस्थले । तथाऽपि तव शत्रुं च प्रजेष्यामि न संशयः ॥२०॥
गुरुर्मे भगवाञ्शेषः सिद्धमन्त्रं च दत्तवान् । नारायणस्य जगतामीशस्य परमाद्भुतम् ॥२१॥
बिभर्मि कवचं कण्ठे परं त्रैलोक्यमङ्गलम् । संसारं भस्मसात्कृत्वा पुनः स्रष्टुमहं क्षमा ॥२२॥
शिष्याऽहं मन्त्रशास्त्रेषु शंभोर्भगवतः पुरा । महाज्ञानं दत्तवान्स मह्यं च कृपया विभुः ॥२३॥
शंभोश्च शिष्यो गरुडो गणयामि न तं ध्रुवम् । धन्वन्तरिस्तच्छिष्याणामेकः किं गणयामि तम् ॥२४॥
इत्युक्त्वा सा जगामैका त्यक्त्वा नागगणान्रुषा । प्रणम्य श्रीहरिं शंभुं शेषं च हृष्टमानसा ॥२५॥
यत्र धन्वन्तरिर्देवः प्रसन्नवदनेक्षणः । तत्राऽऽजगाम सा देवी कोपरक्तेक्षणा रुषा ॥२६॥
दृष्टिमात्रेण सर्पांश्च जीवयामास सुन्दरी । विषदृष्ट्या शत्रुशिष्यान्निश्चेष्टांश्च चकार ह ॥२७॥
धन्वन्तरिस्तु भगवान्मन्त्रशास्त्रविशारदः । मन्त्रेण यत्नं कृतवान्नोत्थापयितुमीश्वरः ॥२८॥

तुम्हारीं तीनों लोकों में पूजा होगी ॥१६॥ वासुकि की बात सुनकर उस कन्या ने हँसकर विनीत भाव से खड़ी हो अमृत के समान मधुर वचन कहा ॥१७॥

मनसा बोली—नागेन्द्र ! आप मेरी बात सुनिये। मैं उस समराङ्गण में जाऊँगी। शुभ और अशुभ (जीत और हार) तो दैव के हाथ में है, पर मैं यथोचित कर्तव्य का पालन करूँगी ॥१८॥ मैं युद्धस्थल में उस शत्रु का सहज ही में संहार कर दूंगी। मैं जिसका संहार करूंगी, उसकी रक्षा कौन कर सकता है ? ॥१९॥ यदि रणभूमि में ब्रह्मा आदि देव गण भी आयेंगे तो भी तुम्हारे शत्रु को मैं जीत लूंगी, इसमें संशय नहीं ॥२०॥ मेरे गुरु भगवान् शेष हैं; जिन्होंने मुझे सिद्ध मन्त्र प्रदान किया और जगत् के अधीश्वर भगवान् विष्णु का परम अद्भुत त्रैलोक्यमंगल नामक कवच मैं कण्ठ में धारण करती हूं, उसके द्वारा मैं समस्त संसार को भस्म करके पुनः बनाने में समर्थ हूँ ॥२१-२२॥ मन्त्र-शास्त्रों में मैं भगवान् शिव की शिष्या हूँ, पूर्वकाल में प्रभु ने कृपा करके मुझे महाज्ञान प्रदान किया था ॥२३॥ गरुड भी शिव के शिष्य हैं, किन्तु जब मैं गरुड़ को ही नहीं कुछ समझती तो उनके शिष्यों में एक धन्वन्तरि की क्या गणना करूँगी ? ॥२४॥ इतना कहकर उसने प्रसन्नचित्त होकर श्री हरि, शिव एवं शेष को प्रणाम किया और नागों को छोड़कर स्वयं अकेली क्रोधपूर्वक प्रस्थान कर दिया ॥२५॥ जहाँ प्रसन्न मुख और नेत्र वाले धन्वन्तरि देव विराजमान थे, वहीं वह देवी क्रोध से आँखे लाल किये आ पहुँची ॥२६॥ उस सुन्दरी ने देखने मात्र से समस्त सर्पों को जीवित कर दिया और विष-दृष्टि से समस्त शत्रु-शिष्यों को चेष्टाहीन कर दिया ॥२७॥ अनन्तर मन्त्रशास्त्रनिपुण भगवान् धन्वन्तरि ने मन्त्र के द्वारा शिष्यों को सचेत करने का प्रयत्न किया, किन्तु वे सफल न हो सके ॥२८॥ हे सुरेश्वरि! तब देवी ने हंसकर

Funding by IKS-MoE

दृष्ट्वा धन्वन्तरिं देवी प्रहस्योवाच सत्वरम् । [1]बहूक्तिमर्थयुक्तां च साहंकारां सुरेश्वरि ॥२९॥

मनसोवाच

मन्त्रार्थं मन्त्रशिल्पं च मन्त्रभेदं महौषधम् । वद जानासि किं सिद्ध शिष्योऽसि गरुडस्य च ॥३०॥
अहं च वैंतनेयश्च शिष्यौ शंभोश्च विश्रुतौ । सुकल्पकालं सुचिरमहं धन्वन्तरे शृणु ॥३१॥
इत्युक्त्वा सरसः पद्मं समानीय जगत्प्रसूः । मन्त्रसंवलितं कृत्वा प्रेरयामास कोपतः ॥३२॥
दृष्ट्वाऽऽगतं पद्मपुष्पं ज्वलदग्निशिखोपमम् । धन्वन्तरिश्च निःश्वासैर्भस्मसात्तच्चकार ह ॥३३॥
तच्च धन्वन्तरिं दृष्ट्वा समन्त्ररेणुमुष्टिना । चकार निष्फलं भस्म तां प्रहस्यावलीलया ॥३४॥
देवीं जग्राह शक्ति च ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् । मन्त्रसंवलितां कृत्वा प्रेरयामास तं रिपुम् ॥३५॥
दृष्ट्वा जाज्वल्यमानां तां शक्ति धन्वन्तरिः स्वयम् । विष्णुदत्तेन शूलेन समुच्चिच्छेद लीलया ॥३६॥
तां च शक्ति वृथा दृष्ट्वा प्रजज्वालेश्वरी रुषा । जग्राह नागपाशं च घोरमव्यर्थमुल्बणम् ॥३७॥
नागलक्षसमायुक्तं सिद्धमन्त्रेण मन्त्रितम् । प्रेरयामास कोपेन कालान्तकसमप्रभम् ॥३८॥
धन्वन्तरिर्नागपाशं दृष्ट्वा च सस्मितो मुदा । सस्मार गरुडं तूर्णमाजगाम खगेश्वरः ॥३९॥
सर्पास्त्रमागतं दृष्ट्वा गरुडो हरिवाहनः । [1]निधाय चञ्चुना शीघ्रं बुभुजे क्षुधितश्चिरम् ॥४०॥

धन्वन्तरि से शीघ्र ही बहुत अर्थों से युक्त अहंकार भरी बात कही ॥२९॥

मनसा बोली—सिद्ध ! बताओ तो सही क्या तुम मन्त्र का अर्थ, मन्त्र शिल्प, मन्त्र-भेद और महान् औषध का ज्ञान रखते हो ? गरुड़ के शिष्य हो न ? धन्वन्तरे ! सुनो, मैं और गरुड़ दोनों शिव के विख्यात शिष्य हैं, जो अत्यन्त दीर्घकाल—एक कल्प-तक (गुरु से शिक्षा लेते) रहे हैं ॥३०-३१॥ इतना कहकर उस जगज्जननी ने सरोवर से कमल-पुष्प लेकर मन्त्र से अभिमन्त्रित किया और क्रोधपूर्वक धन्वन्तरि के ऊपर फेंक दिया ॥३२॥ प्रज्वलित अग्निशिखा की भांति उस कमल-पुष्प को आते देखकर धन्वन्तरि ने निःश्वास वायु द्वारा उसे भस्म कर दिया ॥३३ अनन्तर मन्त्र से अभिमन्त्रित एक मुट्ठी धूल लेकर उसके द्वारा उन्होंने उस भस्म को भी निष्फल कर दिया । फिर वे अवहेलनापूर्वक हंसने लगे ॥३४। तब देवी ने शत्रु पर अभिमत्रित शक्ति का प्रयोग किया, जो ग्रीष्म कालीन सूर्य के समान प्रभापूर्ण थी ॥३५॥ उस जाज्वल्यमान शक्ति को देखकर धन्वन्तरि ने विष्णुप्रदत्त शूल द्वारा उसे नष्ट कर दिया ॥३६॥ उस शक्ति को व्यर्थ होते देखकर वह देवी कोप से जल उठी । अब उसने कभी व्यर्थ न जाने वाले दुःसह एवं भयंकर नागपाश को हाथ में ले लिया, जो एक लाख नागों से युक्त, सिद्ध मंत्र से अभिमन्त्रित तथा काल और अन्तक के समान तेजस्वी था । उसे क्रोधपूर्वक चला दिया ॥३७-३८॥ धन्वन्तरि नागपाश को देखकर हँस पड़े और गरुड़ का स्मरण करने लगे । स्मरण करते ही पक्षिराज गरुड़ आ गये ॥३९॥ सर्पास्त्र को आया देख दीर्घकाल के भूखे हुए हरिवाहन गरुड़ ने चोंच से मार-मार कर सब नागों को अपना आहार बना

---

[1] क. कटूक्तिम । [1] ख. विधा० ।

Funding by IKS-MoE

नागास्त्रं निष्फलं दृष्ट्वा कोपरक्तेक्षणा भृशम् । जग्राह भस्ममुष्टिं च शिवदत्तां पुरा प्रिये ॥४१॥
भस्ममुष्टिं मन्त्रपूतां दृष्ट्वा च प्रेरितां यथा । पक्षवातेन चिक्षेप शिष्यं पश्चान्निधाय च ॥४२॥
निरस्तां भस्ममुष्टिं च दृष्ट्वा देवी चुकोप ह । जग्राह शूलमव्यर्थं हन्तुं धन्वन्तरिं स्वयम् ॥४३॥
शिवदत्तं च शूलं च शतसूर्यसमप्रभम् । अव्यर्थंशूलं लोकेषु प्रलयाग्निसमप्रभम् ॥४४॥
अथ ब्रह्मा तथा शंभुराजगाम रणाजिरम् । धन्वन्तरेश्च रक्षार्थं शमनार्थं खगस्य च ॥४५॥
दृष्ट्वा शंभुं जगद्गौरी विधिं च जगतां पतिम् । भक्त्या ननाम तावेव निःशङ्का शूलधारिणी ॥४६॥
धन्वन्तरिश्च गरुडः प्रणनाम सुरेश्वरौ । तुष्टाव परया भक्त्या तौ च चक्रतुराशिषम् ॥४७॥
उवाच ब्रह्मा मधुरं हितं धन्वन्तरिं मुदा । पूजार्थं मनसायाश्च लोकानां हितकाम्यया ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

धन्वन्तरे महाभाग सर्वशास्त्रविशारद । रणं ते मनसा सार्धं न हि साम्यं च मे मतम् ॥४९॥
शिवदत्तेन शूलेन दुर्निवार्येण सर्वतः । त्रैलोक्यं भस्मसात्कर्तुं क्षमेयं त्रिदशेश्वरी ॥५०॥
ध्यानं कौथुमशाखोक्तं कृत्वा भक्त्या समाहितः । दत्त्वा षोडशोपचारं देव्याश्च कुरु पूजनम् ॥५१॥
आस्तीकोक्तेन स्तोत्रेण स्तवनं कर्तुमर्हसि । परितुष्टा च मनसा वरं तुभ्यं प्रदास्यति ॥५२॥

लिया ॥४०॥ प्रिये ! नागास्त्र को विफल देख मनसा की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। उन्होंने एक मुट्ठी भस्म उठाया, जिसे पूर्वकाल में शिव ने दिया था। मन्त्र से पवित्र किये गये उस मुट्ठी भर भस्म को चलाया गया देख गरुड़ ने शिष्य धन्वन्तरि को पीछे करके अपने पंख के वायु से वह सारा भस्म बिखेर दिया। यह देख मनसा देवी को बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने धन्वन्तरि का वध करने के लिये स्वयं अमोघ शूल, जिसे शिव ने उन्हें दिया था, हाथ में ले लिया। वह अमोघशूल सैकड़ों सूर्यों के समान चमक रहा था तथा प्रलयकालिक अग्नि के समान प्रकाशित था ॥४१-४४॥ अनन्तर धन्वन्तरि के रक्षार्थ और गरुड़ को शान्त करने के लिये ब्रह्मा एवं शिव भी उस रणाङ्गण में आ गये ॥४५॥ शूल लिये निःशङ्क खड़ी जगद्गौरी ने शिव एवं जगत्पति ब्रह्मा को देखकर भक्तिपूर्वक उन दोनों को नमस्कार किया ॥४६॥ धन्वन्तरि समेत गरुड़ ने भी उन देवश्रेष्ठ को प्रणाम करके पराभक्ति से स्तुति की। उन दोनों ने उन्हें आशिष प्रदान किया ॥४७॥ लोगों के हित की कामना से उस मनसा देवी की पूजा के लिए ब्रह्मा ने धन्वन्तरि से मधुर एवं हितकर वचन कहा ॥४८॥

ब्रह्मा बोले— महाभाग ! सभी शास्त्रों में निष्णात धन्वन्तरि ! हमारे मत से मनसा देवी के साथ तुम्हारा युद्ध असदृश है (उचित नहीं हैं) ॥४९॥ यह देवाधीश्वरी शिवप्रदत्त शूल द्वारा तीनों लोकों को भस्म कर सकती है ॥५०॥ सावधान होकर कौथुम शाखा में वर्णित ध्यान करके भक्तिपूर्वक सोलहो उपचारों से इस देवी की अर्चना करो ॥५१॥ आस्तीक द्वारा किये गये स्तोत्र से तुम्हें स्तुति करनी चाहिये। प्रसन्न होने पर यह मनसा देवी तुम्हें वर प्रदान करेगी ॥५१-५२॥ ब्रह्मा की बात सुनकर शिव ने उसका अनुमोदन किया। गरुड़

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा चकारानुमतिं शिवः । वैनतेयश्च संप्रीत्या बोधयामास यत्नतः ॥५३॥
एषां च वचनं श्रुत्वा स्नात्वा शुचिरलंकृतः । विधिं पुरोहितं कृत्वा पूजां कर्तुं समुद्यतः ॥५४॥

धन्वन्तरिरुवाच

इहाऽऽगच्छ जगद्गौरि गृहाण मम पूजनम् । पूज्या त्वं त्रिषु लोकेषु पुरा कश्यपकन्यके ॥५५॥
त्वया जितं जगत्सर्वं देवि विष्णुस्वरूपया । तेन तेऽस्त्रप्रयोगश्च न कृतो रणभूमिषु ॥५६॥
इत्युक्त्वा संयतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः । गृहीत्वा शुक्लकुसुमं ध्यानं कर्तुं समुद्यतः ॥५७॥
चारुचम्पकवर्णाभां सर्वाङ्गसुमनोहराम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शोभितां सूक्ष्मवाससा ॥५८॥
सुचारुकबरीशोभां रत्नाभरणभूषिताम् । सर्वाभयप्रदां देवीं भक्तानुग्रहकारकाम् ॥५९॥
सर्वविद्याप्रदां शान्तां सर्वविद्याविशारदाम् । नागेन्द्रवाहिनीं देवीं भजे नागेश्वरीं पराम् ॥६०॥
ध्यात्वैवं कुसुमं दत्त्वा नानाद्रव्यसमन्वितम् । दत्त्वा षोडशोपचारं पूजयामास तां प्रिये ॥६१॥
स्तोत्रं चकार यत्नाच्च पुलकाञ्चितविग्रहः । पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥६२॥

धन्वन्तरिरुवाच

नमः सिद्धिस्वरूपायै सिद्धिदायै नमो नमः । नमः कश्यपकन्यायै वरदायै न० ॥६३॥

ने भी प्रेमपूर्वक प्रयत्न से उन्हें समझाया ॥५३॥ उन सबकी बात सुनकर धन्वन्तरि स्नान करके पवित्र होकर सुसज्जित हुए ब्रह्मा को पुरोहित बनाकर देवी की पूजा करने के लिए तैयार हो गये ॥५४॥

धन्वन्तरि बोले—जगद्गौरि ! यहां आओ और मेरी पूजा ग्रहण करो । हे कश्यपपुत्रि ! पहले से ही तीनों लोकों में तुम्हारी पूजा होती आई है ॥५५॥ देवि ! विष्णुस्वरूप से तुमने समस्त संसार को जीत लिया है, इसीलिए रणस्थल में तुमने अस्त्र का प्रयोग नहीं किया है ॥५६॥ इतना कहकर संयत भाव से भक्तिपूर्वक कन्धे झुकाये वे श्वेत पुष्प लेकर ध्यान करने को उद्यत हुए ॥५७॥ सुन्दर चम्पापुष्प के समान अंगों की कान्ति वाली, सर्वावयवसुन्दरी, मुसकराहट से प्रसन्नमुख वाली, सूक्ष्म वस्त्र से शोभित, सुन्दर केशों की वेणी की शोभा से युक्त, रत्नों के आभूषणों से भूषित, सबको अभयदान देने वाली, दिव्य रूपा, भक्तों पर अनुग्रह करने वाली, सम्पूर्ण विद्याओं को देने वाली, शान्तस्वरूपा, सर्वविद्याविशारदा, नागेन्द्रवाहिनी और नागों की स्वामिनी परा देवी मनसा का मैं भजन करता हूँ ॥५८-६०॥ प्रिये ! इस भाँति ध्यान करके पुष्प देकर अनेक प्रकार के द्रव्यों से युक्त षोडशोपचार चढ़ाकर धन्वन्तरि ने उनका पूजन किया ॥६१॥ तत्पश्चात् पुलकितशरीर हो भक्ति से मस्तक झुका दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने यत्नपूर्वक मनसा देवी की स्तुति की ॥६२॥

धन्वन्तरि बोले—सिद्धिस्वरूप वाली मनसा देवी को नमस्कार है। सिद्धि प्रदान करने वाली देवी को बार-बार नमस्कार है। कश्यपकन्या को नमस्कार है, वर प्रदान करने वाली को बार-बार नमस्कार है ॥६३॥

नमः शंकरकन्यायै शंकरायै न० । नमस्ते नागवाहिन्यै नागेश्वर्यै न० ॥६४॥
नम आस्तीकजनन्यै जनन्यै जगतां मम । नमो जगत्कारणायै जरत्कारुस्त्रियै न० ॥६५॥
नमो नागभगिन्यै च योगिन्यै च न० । नमश्चिरं तपस्विन्यै सुखदायै न० ॥६६॥
नमस्तपस्यारूपायै फलदायै न० । सुशीलायै च साध्व्यै च शान्तायै च न० ॥६७॥
इत्येवमुक्त्वा भक्त्या च प्रणनाम प्रयत्नतः । तुष्टा देवी वरं दत्त्वा सत्वरं स्वालयं ययौ ॥६८॥
ब्रह्मरुद्रवैनतेयाः समाजग्मुर्निजालयम् । धन्वन्तरिश्च भगवाञ्जगाम निजमन्दिरम् ॥६९॥
जग्मुर्नागाः प्रहृष्टाश्च फणाराजिविराजितः। इत्येवं कथितं सर्वं स्तवराजं मया तव ॥७०॥
विधिना मातरं भक्तिमास्तीकश्च चकार ह । तदा तुष्टा जगद्गौरी पुत्रं तं मुनिपुंगवम् ॥७१॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् । वंशजानां नागभयं नास्ति तस्य न संशयः ॥७२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मखं० नारदना० राधाकृष्णसं० धन्वन्तरिदर्पभङ्गमनसाविजयो नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

शङ्कर–कन्या को नमस्कार है, शङ्करस्वरूपा को बार-बार नमस्कार है। नागवाहिनी को नमस्कार है और नागेश्वरी को बार-बार नमस्कार है ॥६४॥ आस्तीक-जननी को नमस्कार है। जगत् की जननी को नमस्कार है। जगत् की कारणभूता को नमस्कार है । जरत्कारु की पत्नी को नमस्कार है ॥६५॥ नागों की भगिनी को नमस्कार है। योगिनी को बार-बार नमस्कार है । चिरकाल तक तपस्या करने वाली को नमस्कार है। सुख देने वाली को बार-बार नमस्कार है ॥६६॥ तपस्यास्वरूप वाली को नमस्कार है। फल प्रदान करने वाली को बार-बार नमस्कार है। सुशीला, पतिव्रता एवं शान्त स्वरूप वाली को बार-बार नमस्कार है ॥६७॥ इतना कह कर भक्ति से प्रयत्नपूर्वक प्रणाम किया और देवी भी प्रसन्न होकर उन्हें वरदान देकर शीघ्र अपने घर चली गईं ॥६८॥ ब्रह्मा, शिव एवं गरुड़ अपने-अपने निवास को गये। भगवान् धन्वन्तरि भी अपने मवन को गये ॥६९॥ फणों से भूषित नागगण भी अतिहर्षित होकर चले गये। इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण स्तवराज तुमसे कह दिया ॥७०॥ आस्तीक मुनि ने अपनी माता की सविधि भक्ति की। तब जगद्गौरी अपने पुत्र मुनिश्रेष्ठ पर प्रसन्न हुईं ॥७१॥ जो भक्तिपूर्वक इस महापुण्य स्तोत्र का पाठ करता है, उसके वंशजों को नागों से भय नहीं होता है, इसमें संशय नहीं ॥७२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारदसंवाद में धन्वन्तरि-दर्पभंग और मनसा-विजय नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५१॥

Funding by IKS-MoE

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

सवषां दर्पभङ्गश्च कथितश्च श्रुतस्त्वया । क्षुद्राणां महतां चव कृत एव न संशयः ॥१॥
अधुना च समुत्तिष्ठ गच्छ वृन्दावनं वनम् । गोपिका विरहार्ताश्च शीघ्रं पश्यामि सुन्दरि ॥२॥

नारायण उवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा मानिनी रसिकेश्वरी । उवाच कृष्णं नय मां न शक्ता गन्तुमीश्वर ॥३॥
राधिकावचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः । मामारुहेत्येवमुक्त्वा सोऽन्तर्धानं चकार ह ॥४॥
सा मनोयायिनी राधा कृत्वा च रोदनं क्षणम् । इतस्ततस्तमन्वेष्य वृन्दारण्यं जगाम सा ॥५॥
विवेश चन्दनवनं रुदती शोककातरा । ददर्श गोपिकास्तत्र शोकार्ता भयविह्वलाः ॥६॥
ताम्रास्या घूर्णनयना भ्रमन्तीः सर्वकाननम् । नाथ नाथेति कुर्वन्तीर्निराहारा रुषाऽन्विताः ॥७॥
तां दृष्ट्वा राधिका सा च प्रेमविच्छेदकातरा । कथयामास वृत्तान्तं मलयभ्रमणादिकम् ॥८॥
ताभिः सार्धं च सा राधा रुरोद विरहातुरा । हा नाथ नाथेत्युच्चार्य विलप्य च मुहुर्मुहुः ॥९॥

अध्याय ५२

राधा और माधव का रास-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले— हे सुन्दरी ! छोटे-बड़े सभी लोगों का गर्वनाश मैंने कह दिया और तुमने सुन भी लिया, इसमें संशय नहीं। अब उठो, वृन्दावन जाओ और मैं विरह-पीडित गोपिकाओं को शीघ्र देखता हूँ ॥१-२॥

श्रीनारायण बोले—भगवान् कृष्ण की ऐसी बात सुनकर मानिनी एवं रसिकेश्वरी राधा ने उनसे कहा—हे ईश्वर ! मैं चलने में असमर्थ हूँ, अतः ! मुझे तुम ले चलो ॥३॥ राधिका जी की बात सुनकर भगवान् मधुसूदन ने हँसकर कहा–'मुझ पर चढ़ जाओ'। इस प्रकार कहकर वे अन्तर्हित हो गये। यह देखकर मन के समान चलने वाली राधा ने क्षण भर विलाप किया। अनन्तर इधर-उधर भगवान् कृष्ण को खोजकर वे वृन्दावन चली गईं। वहाँ चन्दन-वन में प्रवेश कर रोती एवं शोक-कातर होती हुई उन्होंने गोपियों को देखा जो शोक से पीड़ित, भय से व्याकुल, लाल मुख, चंचल नेत्र, समस्त काननों में घूमती हुई 'हा नाथ ! हा नाथ !' कहती हुई निराहार तथा कुपित थीं ॥४-७॥ प्रेम-वियोग से कातर हुई राधिका ने उन (गोपियों) को देखकर मलय पर्वत पर भ्रमण करने आदि का वृत्तान्त कह डाला ॥८॥ फिर विरह-व्याकुल वह राधिका भी उन लोगों के साथ रोने लगीं और 'हा नाथ ! हा नाथ' ! कहकर बार-बार विलाप करके कृष्ण की निन्दा करती हुई क्रोध से क्षण भर (शरीर) पीटने लगीं

Funding by IKS-MoE

विनिन्द्य कृष्णं कोपेन तर्जयामास च क्षणम् । क्षणं शरीरमुत्स्रष्टुं कोपात्सर्वाः समुद्यताः ।।१०।।
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णस्तत्र चन्दनकानने । स्वात्मानं दर्शयामास राधिकां गोपिकागणम् ।।११।।
राधा गोपाङ्गनाभिश्च दृष्ट्वा प्राणेश्वरं मुदा । सस्मिता च प्रदुद्राव पुलकाञ्चितविग्रहा ।।१२।।
तूर्णं कृष्णं समाश्लिष्य जहार मुरलीं रुषा । मालां च पीतवसनं नग्नं[1] कृत्वा च मानिनी ।।१३।।
पुनः संधारयामास वस्त्रं मालां मनोहराम् । विनोद मुरलीं तुष्टा वृन्दावनविनोदिनी ।।१४।।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च कातरम् । मुहुर्मुहुर्मुखं वीक्ष्य चुचुम्ब परमादरम् ।।१५।।
क्षणं संतर्जयामास क्षणं स्तोत्रं चकार ह । सकर्पूरं च ताम्बूलं क्षणं तस्मै ददौ मुदा ।।१६।।
अथ गोपाङ्गनाः सर्वा रुरुदुः प्रेमविह्वलाः । सर्वं निवेदनं चक्रुः स्वदुःखं विरहोद्भवम् ।।१७।।
देहत्यागं च स्नानं च स्वाहारस्य विसर्जनम् । वने वनेऽहर्निशं च शश्वद्भ्रमणमेव च ।।१८।।
क्षणं तं भर्त्सयामासुः स्तोत्रं चक्रुःक्षणं मुदा । क्षणं ददुर्भूषणं च क्षणं तस्मै च चन्दनम् ।।१९।।
काश्चिदूचुः प्राणचोरं पश्य रक्षेति सन्ततम् । एवं पुनर्न कर्तव्यमनेनेति च काश्चन ।।२०।।
काश्चिदूचुरिमं मध्ये यूयं कुरुत सत्वरम् । निबद्धप्रेमपाशेन हृदये चेति काश्चन ।।२१।।

तथा कोप के कारण क्षण में शरीर त्याग करने के लिए सभी तैयार हो गयीं ।।९-१०।। इसी बीच उस चन्दनवन में राधिका एवं समस्त गोपियों को भगवान् कृष्ण ने अपना दर्शन दिया ।।११।। गोपियों समेत राधा ने अपने प्राणेश्वर को देखकर अति प्रसन्नता प्रकट की । उनके शरीर में रोमाञ्च हो आया । मन्द मुसकान करती हुई वे शीघ्रता से उनके पास पहुँच गईं ।।१२।। और शीघ्र कृष्ण का आलिंगन करके क्रोध से उनकी मुरली, माला और पीताम्बर छीनकर नग्न करके पुनः सन्तुष्ट होने पर वृन्दावन में विनोद करने वाली मानिनी राधा ने वस्त्र एवं मनोहर माला पहनाकर विनोद की मुरली भी उन्हें लौटा दी ।।१३-१४।। उनके अङ्गों में चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, एवं कुंकुम का लेप लगाकर बार-बार उनका मुख देखकर परम आदर से चुम्बन करने लगीं ।।१५।। क्षण में उनकी तर्जना करती हुई क्षण में स्तुति भी करने लगीं और क्षण में कपूर आदि सुवासित ताम्बूल प्रसन्नतापूर्वक उन्हें देने लगीं ।।१६।। तदुपरान्त प्रेमाकुल होकर रोती हुई गोपियों ने विरह-जनित अपना समस्त दुःख उनसे निवेदन किया । देहत्याग की तैयारी, स्नान, भोजन-त्याग, वन-वन में रात दिन निरन्तर घूमते रहना आदि सब कुछ बताया। अनन्तर वे गोपियाँ क्षण में उनकी भर्सना करने लगीं और क्षण में प्रसन्न होकर स्तुति करने लगीं; क्षण में उन्हें भूषणों से सजाने लगीं और क्षण में सब ने उन्हें चन्दन-चर्चित किया ।।१७-१९।। उनमें से कोई कह रही थीं कि-देखो, ये प्राण-चोर हैं, इनकी निरन्तर रक्षा करो, अब ये पुनः ऐसा काम नहीं करेंगे ।।२०।। कोई कह रही थीं—इन्हें शीघ्रता से सब लोग अपने मध्य में कर लो; कोई कह रहीं थी—प्रेम पाश में बांधकर इन्हें अपने हृदय में रख

---

[1] ख. भग्नं ।

Funding by IKS-MoE

काश्चिदूचुरयं नास्ति प्रतीतिर्न कदाचन । यत्नाच्चेतनचोरं च पश्य पश्येति काश्चन ॥२२॥
काश्चिदूचुर्निष्ठुरोऽयं नरघातीति कोपतः । न पुनर्वदते मां च काश्चनेति च नारद ॥२३॥
निर्जनानि च रम्याणि यानि यानि वनानि च । भ्रमेयुर्गोपिकास्तानि कृष्णेन सह कौतुकात् ॥२४॥
एवं तं गोपिकाः सर्वा मध्ये कृत्वा सदीश्वरम् । ययुर्वनान्तरं यत्र सुरम्यं रासमण्डलम् ॥२५॥
रासं गत्वा स्वर्णपीठे तस्थौ स रसिकेश्वरः । निशि भाति यथाऽऽकाशे चन्द्रस्तारागणैः सह ॥२६॥
नानामूर्तीर्विधायात्र सह ताभिर्जनार्दनः । चकार च पुनः क्रीडां कामुकीनां मनोहराम् ॥२७॥
स्वयं राधां करे धृत्वा पूर्वोक्तं रतिमन्दिरम् । विश्वकर्मविनिर्माणमारुरोह स्मरातुरः ॥२८॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाक्तं सुवासितम् । तत्र चम्पकतल्पे स सुष्वाप च तया सह ॥२९॥
नानाप्रकारशृङ्गारं कामशास्त्रविशारदः । चकार कामी क्रीडां च कामिन्या सह कौतुकी ॥३०॥
बभूव सुरतिस्तत्र सुचिरं च तयोर्मुने । रतिनिष्ठा तयो रम्या निरतिर्नास्ति तत्क्षणम् ॥३१॥
एवं तौ तस्थतुस्तत्र राधाकृष्णौ रसोत्सुकौ । तस्थुस्ता गोपिकाभिश्च सुरतौ कृष्णमूर्तयः ॥३२॥

नारद उवाच

आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात्कृष्णं विदुर्बुधाः । निमित्तमस्य मां भक्तं वद भक्तजनप्रिय ॥३३॥

लो ॥२१॥ कोइ कह रही थीं—न, इनका कभी भी विश्वास न करना, कोई कह रही थीं—इस चितचोर को प्रयत्न करके बार-बार देखो ॥२२॥ कोई कुपित होकर कह रही थी कि—ये बड़े निष्ठुर तथा मनुष्यघाती हैं। फिर कोई कह रही थीं कि यह मुझसे नहीं बोल रहे हैं ॥२३॥ जितने निर्जन और रमणीय वन हैं, उनमें गोपिकायें कृष्ण के साथ कौतुक से भ्रमण करें ॥२४॥ ऐसा विचार कर सभी गोपियों ने ईश्वर श्रीकृष्ण को मध्य में करके जहाँ अतिरमणीक रासमण्डल था, उस वन को प्रस्थान किया ॥२५॥ वहाँ पहुँचकर रसिकेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण सुवर्ण-सिंहासन पर स्थित हुए। वे वहाँ उसी तरह शोभित होने लगे जैसे आकाश में तारागणों के साथ चन्द्रमा ॥२६॥ पश्चात् जनार्दन श्रीकृष्ण ने अपने अनेक रूप बनाकर उन गोपियों के साथ पुनः वही क्रीडायें कीं, जो कामुकियों को मनोहर लगती थीं ॥२७॥ फिर कामातुर कृष्ण राधा का हाथ पकड़कर पूर्व वर्णित रतिमहल में पहुँच गये, जिसे विश्वकर्मा ने बनाया था, जो चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से आर्द्र एवं सुवासित था। वहाँ चम्पक-पुष्पों की शय्या पर राधा के साथ शयन किया ॥२८-२९॥ कामशास्त्रनिपुण एवं कामी कृष्ण ने कामिनी राधा के साथ कौतुक वश विभिन्न प्रकार की श्रृंगारी क्रीडा की ॥३०॥ हे मुने ! इस प्रकार वे दोनों अति चिरकाल तक सुरति-क्रिया में लगे रहे। उस समय उन दोनों की रमणीय रति-निष्ठा किसी प्रकार कम नहीं होती थी ॥२१॥ इस प्रकार रसकेलि के लिए राधाकृष्ण समुत्सुक रहे और कृष्ण के अनेक रूप उन गोपियों के साथ सुरति करते रहे ॥३२॥

नारद बोले—हे भक्तजनों के प्रिय ! विद्वान् लोग प्रथम राधा का नाम कह कर पीछे कृष्ण 'राधाकृष्ण' का नाम लेते हैं, इसका क्या कारण है, मुझ भक्त को बताने की कृपा करें ॥३३॥

नारायण उवाच

निमित्तमस्य त्रिविधं कथयामि निशामय। जगन्माता च प्रकृतिः पुरुषश्च जगत्पिता ॥३४॥
गरीयसी त्रिजगतां माता शतगुणैः पितुः । राधाकृष्णेति गौरीशेत्येवं शब्दः श्रुतौ श्रुतः ॥३५॥
कृष्णराधेशगौरीति लोके न च कदा श्रुतः । प्रसीद रोहिणीचन्द्र गृहाणार्घ्यमिदं मम ॥३६॥
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं संज्ञया सह भास्कर। प्रसीद कमलाकान्त गृहाण मम पूजनम् ॥३७॥
इति दृष्टं सामवेदे कौथुमे मुनिसत्तम । राशब्दोच्चारणादेव स्फीतो भवति माधवः ॥३८॥
धाशब्दोच्चारतः पश्चाद्धावत्येव ससंभ्रमः। आदौ पुरुषमुच्चार्य पश्चात्प्रकृतिमुच्चरेत् ॥३९॥
स भवेन्मातृघाती च वेदातिक्रमणे मुने । त्रैलोक्ये भारतं धन्यं कर्मक्षेत्रं च पुण्यदम् ॥४०॥
ततो वृन्दावनं पुण्यं राधापादाब्जरेणुना । षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तप्तं च वेधसा ॥४१॥
राधिकाचरणाम्भोजपादरेणूपलब्धये ।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधामाधवयो
रासवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

श्रीकृष्ण बोले— मैं इसमें तीन कारण बता रहा हूँ, सुनो ! प्रकृति जगत् की माता है और पुरुष जगत् का पिता । तीनों लोकों में माता का गौरव पिता से सौ गुना अधिक है । इसीलिए वेद में 'राधाकृष्ण और गौरीश' ऐसा कहा गया है ॥३४-३५॥ लोक में भी 'कृष्ण राधा, ईशगौरी' ऐसा कहते कभी नहीं सुना गया । अन्य के लिए भी 'हे रोहिणीचन्द्र ! हे संज्ञासहित सूर्य' ! मेरे इस अर्घ को स्वीकार करो और प्रसन्न हो जाओ और हे कमलाकान्त ! मेरे इस पूजन को स्वीकारकर आप प्रसन्न हों' इस भाँति कहा गया है। हे मुनिसत्तम ! सामवेद की कौथुमी शाखा में इसी प्रकार देखा गया है । 'रा' शब्द के उच्चारण करते ही माधव उठकर तैयार हो जाते हैं और 'धा' शब्द कहते ही पीछे-पीछे घबड़ा कर दौड़ने लगते है। हे मुने ! आदि में पुरुष का नाम लेकर पश्चात् प्रकृति का नाम (कृष्ण-राधा) जो कहता है वह वेद का अतिक्रमण (उलंघन) करने के नाते मातृघाती (माता का हत्यारा) कहा जाता है । इस प्रकार यह कर्मक्षेत्र भारत तीनों लोकों में धन्य और पुण्यप्रद है । उसमें वृन्दावन अधिक पुण्य प्रदेश है, क्योंकि वह राधा जी के चरण कमल की धूलि से पवित्र हुआ है । राधा जी के चरण-कमल की उसी रेणु को प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा ने साठ सहस्र वर्ष तप किया था ॥३६-४१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में राधा-माधव का रास-वर्णन नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५२॥

Funding by IKS-MoE

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारद उवाच

समतीते पूर्णरासे किं चकार जगत्पतिः । रहस्यं किं बभूवाथ तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥१॥

नारायण उवाच

रासं निवर्त्य रासे च रासेश्वर्या समन्वितः । स्वयं रासेश्वरस्तस्माद्यमुनापुलिनं ययौ ॥२॥
तत्र स्नात्वा जलं पीत्वा निर्मलं निर्मले जले । सार्धं गोपाङ्गनाभिश्च जलक्रीडां चकार सः ॥३॥
ततो जगाम भगवान्भाण्डीरं राधया सह । गोपाङ्गनाश्च स्वगृहान्प्रययुर्विरहातुराः ॥४॥
क्रीडां चकार रहसि भाण्डीरे मालतीवने । मालतीपुष्पशय्यायां रम्यायां रमणोत्सुकः ॥५॥
कृत्वा क्रीडां च तत्रैव वासन्तीकाननं ययौ । रेमे तत्रैव रासेशो वसन्ते सुमनोहरे ॥६॥
तत्रैव रमणं कृत्वा ययौ चन्दनकानम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो गृहीत्वा चन्दनोक्षिताम् ॥७॥
रम्ये चन्दनतल्पे च स्निग्धे चन्दनपल्लवे । पूर्णचन्द्रे समुदिते विजहार तया सह ॥८॥
कृत्वा विहारं तत्रैव ययौ चम्पककाननम् । रम्ये चम्पतकल्पे च चकार रतिमीश्वरः ॥९॥

अध्याय ५३

श्रीकृष्ण की रास-क्रीड़ा का वर्णन

नारद बोले—रासक्रीडा को पूरा करके जगत्पति भगवान् ने पुनः और कौन रहस्यमय चरित किया, मुझे आप बताने की कृपा करें ॥१॥

श्रीनारायण बोले—रास-मण्डल में रास क्रीडा करने के उपरान्त रासेश्वरी राधा को साथ लिये रासेश्वर भगवान् कृष्ण यमुना-तट की ओर चले गये ॥२॥ वहाँ निर्मल जल में स्नान करके, जल पीकर राधा और गोपियों के साथ जल-क्रीडा की ॥३॥ तदन्तर राधा को साथ लिये भगवान् भाण्डीर वन में गये और गोपियाँ विरह-व्याकुल होती हुई अपने-अपने घर गईं ॥४॥ भाण्डीर के मालती वन में मालती-पुष्पों की रमणीक शय्या पर रमणोत्सुक भगवान् क्रीडा करके वहीं वासन्ती वन में चले गये। वहाँ अतिमनोहर वसन्त में रासेश भगवान् ने रमण किया ॥५-६॥ चन्दनचर्चित राधा को साथ लिये चन्दनचर्चित कृष्ण चन्दन वन चले गये। वहाँ चन्दन एवं चन्दन-पल्लवों की रम्य एवं स्निग्ध शय्या पर पूर्ण चन्द्र की निर्मल चाँदनी में राधा के साथ बिहार किया ॥७-८॥ वहाँ बिहार करने के अनन्तर वे राधा के साथ चम्पा वन चले गये। वहाँ चम्पा-पुष्पों

Funding by IKS-MoE

रतिं निर्वृत्य तत्रैव ययौ पद्मवनं प्रभुः । पद्मपत्रसमाकीर्णे तल्पेऽतिसुमनोहरे ॥१०॥
सार्धं तत्र पद्ममुख्या शीतेन पद्मवायुना । चकार सुखसंभोगं ययौ निद्रां तया सह ॥११॥
विहाय निद्रां निद्रेशो ददर्श निद्रितां प्रियाम् । शयानां पद्मतल्पे च सुखसंभोगमात्रतः ॥१२॥
दृष्ट्वा मुखं च घर्माक्तं शरच्चन्द्रविनिन्दितम् । अतिसंलुप्तसिन्दूरं लुप्तं कज्जलमुल्बणम् ॥१३॥
संलुप्ताधररागं च संलुप्तगण्डपत्रकम् । विस्रस्तकबरीभारं नेत्रोत्पलविमुद्रितम् ॥१४॥
रत्नकुण्डलयुग्मेनामूल्येन परिशोभितम् । राजितं मौक्तिकेनैव गजराजोद्भवेन च ॥१५॥
प्रेम्णा स्वसूक्ष्मवस्त्रेण वह्निशुद्धेन माधवः । चकार मार्जनं भक्त्या तद्वक्त्रं भक्तवत्सलः ॥१६॥
केशसंमार्जनं कृत्वा निर्माय कबरीं हरिः । माधवीमालतीमालाजालेन परिशोभिताम् ॥१७॥
रत्नपट्टसूत्रबद्धां वामवक्त्रां मनोहराम् । अतीव वर्तुलाकारां कुन्दपुष्पसुशोभिताम् ॥१८॥
ददौ सिन्दूरतिलकमधश्चन्दनमुज्ज्वलम् । कस्तूरीबिन्दुना सार्धं परितः परिशोभिताम् ॥१९॥
चकार पत्रकं गण्डयुग्मे चित्रविचित्रितम् । प्रददौ कज्जलं भक्त्या नेत्रोत्पलसमुज्ज्वलम् ॥२०॥
चकाराधररागं च राधायाश्चानुरागतः । कर्णभूषणयुग्मं च चकारातीव निर्मलम् ॥२१॥
अमूल्यरत्नहारं च स्तनभारयुगोज्ज्वलम् । ददौ कण्ठे च वैकुण्ठो मणिराजिविराजितम् ॥२२॥

की मनोरम शय्या पर भगवान् ने रति की और रतिक्रीड़ा से निवृत्त होने के अनन्तर वे कमलवन में गये । वहाँ कमलपत्र से सुसज्जित एवं अति मनोहर शय्या पर कमल-सुगन्धित तथा शीतल वायु के झोंके में कमलमुखी राधा के साथ सुख-सम्भोग किया और उन्हीं के साथ निद्रामग्न भी हो गये ॥९-११॥ उपरान्त निद्राधीश्वर भगवान् कृष्ण नींद से जागकर उठे और अपनी प्रेयसी राधा की ओर देखने लगे, जो कमल की शय्या पर उनके सुख-सम्भोग मात्र से गम्भीर निद्रा में मग्न पड़ी थीं ॥१२॥ उन्होंने शारदीय चन्द्रमा को तिरस्कृत करने वाला राधा का मुख देखा, जो स्वेद-बिन्दुओं से आर्द्र (तर) हो गया था, जिसमें सिन्दूर की बिन्दी अति लुप्त हो (खो) गयी थी । इसी भाँति आँखों के काजल, ओठों के राग (लालिमा), एवं कपोलों पर बनायी हुई कामकला की सुरचना अत्यन्त लुप्त हो गयी थी, केशों का जूड़ा खुल गया था, नीलकमल के समान नेत्र मुंदे हुए थे, उनका मुखमंडल रत्नों के अमूल्य युगल कुण्डलों से अति सुशोभित एवं गजमुक्ता से विभूषित था ॥१३-१५॥ पश्चात् भक्तवत्सल माधव ने प्रेमभक्तिपूर्वक अपने अग्नि-विशुद्ध एवं सूक्ष्म वस्त्र से उनका मुख पोंछ दिया ॥१६॥ भगवान् ने उनके केशों को कंघी से झाड़कर माधवी और मालती पुष्पों की मालाओं से सुशोभित सुन्दर जूड़ा बनाया, उसे रत्नों के सूत्रों से आबद्ध किया, जो वामभाग की ओर मुख किये अति मनोहर, अत्यन्त गोलाकार एवं कुन्द के पुष्पों से सुभूषित थी ॥१७-१८॥ उनके भाल में सिन्दूर का तिलक लगाया, उसके नीचे कस्तूरी-बिन्दी के साथ उज्ज्वल चन्दन-बिन्दी लगाकर चारों ओर से सुशोभित किया ॥१९॥ उनके युगल कपोलों पर अति चित्र-विचित्र पत्र (काम-कला) की रचना की, भक्तिपूर्वक नील कमल के समान नेत्रों में काजल लगाया और अति अनुराग से राधा के अधरों को लाल किया एवं दोनों कानों में अति निर्मल दो कर्ण-भूषण पहनाये ॥२०-२१॥ कण्ठ में अनेक मणियों की बनी अमूल्य रत्नों के हार पहनाकर उनके युगल स्तनों को सुप्रकाशित किया,

वह्निशुद्धांशुकं दिव्यममूल्यं विश्वरत्नतः । वासयामास वसनं कस्तूरीकुङ्कुमाक्तकम् ॥२३॥
प्रददौ पादयुगले रत्नमञ्जीररञ्जितम् । चकारालक्तकं भक्त्या पादाङ्गुलिनखेषु च ॥२४॥
चकार सेवां सेव्यायाः सेव्यस्त्रिजगतां सताम् । अहो सेवकसंभक्त्या श्वेतेन चामरेण च ॥२५॥
सर्वभावविदां श्रेष्ठो बोधज्ञः कामशास्त्रवित् । कामिनीं बोधयामास वासयामास वक्षसि ॥२६॥
प्रेम्णा च प्रददौ तस्यै सद्रत्नदर्पणं शुभम् । सुवेषदर्शनार्थं च मुखचन्द्रं च मार्जितुम् ॥२७॥
नानापुष्पैर्विरचितामम्लानां चन्दनोक्षिताम् । गण्डे सौभाग्ययुक्तायाः सौभाग्येन ददौ हरिः ॥२८॥
कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च सुगन्धि चन्दनं ततः । ददौ प्रियायाः सर्वाङ्गे प्रियः प्रेमभरेण च ॥२९॥
पारिजातस्य कुसुमं दत्तं रहसि ब्रह्मणा । प्रददौ तत्कबर्यां च ललितायाश्च नारद ॥३०॥
कमलं निर्मलं दिव्यं सहस्रदलमुज्ज्वलम् । शिवेन दत्तं रहसि ददौ तद्दक्षिणे करे ॥३१॥
अतिसारं मणीन्द्राणां मणिरत्नं च कौस्तुभम् । दत्तं रहसि धर्मेण तस्यै सुप्रीतये ददौ ॥३२॥
आसवं रत्नपात्रस्थं दस्रदत्तं च निर्जने । पानार्थं प्रददौ तस्यै कामोन्मादकरं परम् ॥३३॥
मालतीमाधवीकुन्दमन्दारचम्पकादिकम् । पुष्पं सद्रत्नपात्रस्थं तस्यै सुप्रीतये ददौ ॥३४॥

उत्तम माला पहनायी और उनके अग्निविशुद्ध दिव्य एवं विश्व के रत्नों से भी अमूल्य वस्त्र को कस्तूरी-कुंकुम से सिक्त कर सुवासित किया ॥२२-२३॥ उनके युगल चरण-कमल को रत्नों के नूपुरों से सुभूषित करके पैर की अँगुलियों के नखों पर भक्तिपूर्वक अलक्तक (महावर) लगाया ॥२४॥

इस प्रकार तीनों लोकों के सज्जनों के सेव्य भगवान् श्रीकृष्ण ने सेव्या श्री राधिका की सेवक की भाँति अति भक्ति-भाव से श्वेत चामरों द्वारा सेवा की ॥२५॥ अनन्तर कामशास्त्रवेत्ता भगवान् श्रीकृष्ण ने, जो समस्त भावों के वेत्ताओं में श्रेष्ठ एवं ज्ञानी हैं, अपनी प्रिय कामिनी को जगाकर अपने हृदय से लगा लिया और अपना उत्तम वेष एवं मुखचन्द्र देखने के लिए उन्होंने प्रेमपूर्वक उत्तम रत्न का एक शुभदर्पण प्रदान किया ॥२६-२७॥ अनन्तर परिपूर्ण सौभाग्य वाली उस देवी के गले में भगवान् कृष्ण ने सौभाग्यवश अनेक पुष्पों द्वारा सुरचित चन्दन-सिक्त एवं कभी म्लान न होने वाली माला पहनायी और प्रेमविभोर होकर प्रियतम ने अपनी प्रियतमा के सर्वाङ्ग में कस्तूरी-कुंकुम मिश्रित सुगन्धित चन्दन का लेपन किया ॥२८-२९॥ हे नारद ! एकान्त में ब्रह्मा के दिये हुए पारिजात पुष्प को उनके सुन्दर जूड़े में लगा दिया; सहस्रदल वाला, निर्मल दिव्य एवं सुप्रकाशित कमल को, जिसे एकान्त में शिव ने प्रदान किया था, प्रिया के दाहिने हाथ में दे दिया ॥३०-३१॥ मणिरत्न एवं मणीन्द्रों के उत्तम सारभाग द्वारा सुरचित कौस्तुभ मणि जिसे एकान्त में धर्म ने दिया था, भगवान् ने अति प्रेम के कारण राधा को पहना दिया ॥३२॥ रत्न पात्र में स्थित उस परम कामोन्मादी आसव को, जिसे उन्हें निर्जन प्रदेश में वैद्य अश्विनीकुमार ने दिया था, पान करने के लिये प्रेयसी को प्रदान किया ॥३३॥ उत्तम रत्नों के पात्रों में मालती, माधवी, कुन्द, मन्दार एवं चम्पा आदि के पुष्पों को रखकर उन्हें अति प्रसन्नतार्थं

Funding by IKS-MoE

सुदुर्लभं च ताम्बूलं कर्पूरादिसुसंस्कृतम् । भक्षणं कारयामास समयज्ञश्च तां प्रियाम् ॥३५॥
सुदुर्लभं च विश्वेषु वाक्पतेः परिनिर्मितम् । अनुत्तमममूल्यं च वरुणेन रहःस्थले ॥३६॥
अतिसूक्ष्ममनुपमं दत्तं भक्त्या विराजितम् । वासयामास वसनं कृत्वा नग्नां च कौतुकात् ॥३७॥
देवराजेन दत्तं च गजराजेन्द्रमौक्तिकम् । नासिकाभूषणं चारु तस्यै सुप्रीतये ददौ ॥३८॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सुशीलाद्याश्च गोपिकाः । षष्टिः तत्सहचर्यश्च राधायाः सुप्रतिष्ठिताः ॥३९॥
षष्टितत्कोटिगोपीभिः सार्धं संहृष्टमानसाः । आययुः पादचिह्नेन प्रियस्य वहतः प्रियाम् ॥४०॥
काश्चिच्चन्दनहस्ताश्च काश्चिच्चामरवाहिकाः। काश्चित्कस्तूरिहस्ताश्च मालाहस्ताश्च काश्चन ॥४१॥
काश्चित्सिन्दूरहस्ताश्च काश्चित्कङ्कतिकाकराः। काश्चिदलक्तककरा वस्त्रहस्ताश्च काश्चन॥४२॥
काश्चिद्दर्पणहस्ताश्च पुष्पपात्रधरा वराः। काश्चित्क्रीडापद्महस्ता मालाहस्ताश्च काश्चन ॥४३॥
काश्चिदासवहस्ताश्च काश्चि द्भूषणवाहिकाः। करतालकराः काश्चिन्मृगं (मृदङ्गं) वाहिकाः पराः ॥४४॥
स्वरयन्त्रकराः काश्चिद्वीणाहस्ताश्च काश्चन । षट्त्रिंशद्रागरागिण्यो गोपिकारूपधारिकाः ॥४५॥
गोलोकादागता याश्च भारतं राधया सह । काश्चिज्जगुश्च ननृतुस्तत्राऽऽगत्य च काश्चन ॥४६॥
काश्चिच्चक्रुश्च सेवां च राधायाः श्वेतचामरैः । काश्चिच्चक्रुश्च देव्याश्च पादसंवाहनं मुदा ॥४७॥

प्रदान किया ॥३४॥ पश्चात् समयज्ञाता भगवान् कृष्ण ने अपनी प्रिया राधा को कर्पूरादि से सुवासित एवं अति दुर्लभ ताम्बूल भक्षण कराया और अति कौतुक वश राधा को नग्न करके वह उत्तम वस्त्र पहनाया जो समस्त विश्व में दुर्लभ, बृहस्पति द्वारा निर्मित, परमोत्तम, अमूल्य एवं अनुपम था और जिसे वरुण ने एकान्त में भक्तिपूर्वक प्रदान किया था। देवराज इन्द्र द्वारा प्रदत्त गजेन्द्रमुक्ता नासिकाभूषण के रूप में उन्हें प्रीत्यर्थ प्रदान की ॥३५-३८॥ इसी बीच राधा की सुशीला आदि साठ प्रिय सहचरी गोपियाँ, जो अति प्रतिष्ठित, साठ करोड़ उत्तम गोपियों को साथ लिये अत्यन्त प्रसन्न थीं, प्रेयसी राधा को लेकर घूमने वाले प्रियतम भगवान् कृष्ण के चरण-चिह्नों द्वारा ढूंढ़ती हुई वहाँ आ पहुँचीं, जिनमें कुछ के हाथ में चन्दन, कुछ चामर लिये, कुछ गोपियाँ कस्तूरी लिये और कुछ माला हाथ में लिये थीं ॥३९-४१॥ कुछ के हाथ में सिन्दूर, कुछ के कर-कमलों में कंघी, कुछ अलक्तक (महावर) एवं कुछ वस्त्र लिये थीं ॥४२॥ कुछ के हाथ में दर्पण, कुछ के हाथ में उत्तम पुष्प-पात्र, कुछ क्रीडाकमल लिये और कुछ हाथों में माला लिये थीं। कुछ आसव लिये, कुछ भूषण लिए चल रही थीं। इसी भाँति कुछ के हाथों में करताल, कुछ के मृदङ्ग, कुछ हाथों में स्वर-यंत्र और कुछ अपने हाथों में वीणा लिये थीं। इस प्रकार के छत्तीस राग-रागिनियाँ वहाँ गोपी रूप में (सेवार्थ) आ पहुँचीं, जो गोलोक से राधा के साथ भारत में आयी हुई थीं। राधा के सामने वहाँ पहुँचने पर उनमें से कुछ गान करने लगीं, कुछ नृत्य करने लगीं कुछ श्वेत चामरों द्वारा राधा की सेवा और कुछ बड़ी

काचिद्ददौ च ताम्बूलं भक्षणार्थं महामुने । एवं कौतुकयुक्तश्च पुण्ये वृन्दावने वने ॥४८॥
प्रतस्थौ गोपिकासार्धं राधावक्षःस्थलस्थितः । क्षणं पपौ च माध्वीकं प्रियया सह माधवः ॥४९॥
क्षणं चखाद ताम्बूलं क्षणं निद्रां ययौ मुदा । क्षणं चकार शृङ्गारं रत्ननिर्मितमन्दिरे ॥५०॥
क्षणं जलविहारं च चकार यमुनाजले । इत्येवं कथिता वत्स रासक्रीडा हरेरहो ॥५१॥
स्वेच्छामयस्याऽऽत्मनश्च परिपूर्णतमस्य च । निर्गुणस्य स्वतन्त्रस्य परस्य प्रकृतेः प्रभोः ॥५२॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरस्य परस्य च । कृष्णजन्मरहस्यं च बालक्रीडनमीप्सितम् ॥५३॥
उक्तं किशोरचरितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि । ॥५४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० श्रीकृष्णरास-
क्रीडावर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

प्रसन्नता से देवी का चरण दबाने लगीं ॥४३-४७॥ हे महामुने, कुछ उन्हें भक्षण के लिए ताम्बूल दे रही थीं। इस प्रकार उस पुण्य वृन्दावन में भगवान् गोपियों समेत राधा के वक्षःस्थल पर स्थित होकर क्षण में प्रिया के साथ आसव-पान कर रहे थे; क्षण में ताम्बूल खाने लगते थे और क्षण में प्रसन्नता से निद्रामग्न हो जाते थे; क्षण में उस रत्नों के सुन्दर महल में राधा के साथ शृंगार-मग्न होते थे और क्षण में यमुना-जल में जल-विहार करने लगते थे। हे वत्स! इस प्रकार मैंने भगवान् की रास-क्रीड़ा बता दी और स्वेच्छामय, परिपूर्णतम, निर्गुण-स्वतन्त्र, प्रकृति से परे, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव से परे, ईश्वर श्रीकृष्ण का जन्म-रहस्य, प्रिय बाल-केलि और किशोरावस्था का चरित्र वर्णन कर दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥४८-५४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद के संवाद में श्रीकृष्ण की रासक्रीड़ा-वर्णन नामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५३॥

Funding by IKS-MoE

अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारद उवाच

अतः परं किं रहस्यं बभूव मुनिसत्तम । कथं जगाम भगवान्मथुरां नन्दमन्दिरात् ॥१॥
नन्दो दधार प्राणांश्च विच्छेदेन हरेः कथम् । गोपाङ्गना यशोदा वा कृष्णैकतानमानसाः ॥२॥
चक्षुर्निमेषविच्छेदाद्या राधा न हि जीवति । कथं दधार सा देवी प्राणान्प्राणेश्वरं विना ॥३॥
ये ये तत्सङ्गिनो गोपाः शयनासनभोगतः । कथं विसस्मरुस्ते च तादृशं बान्धवं व्रजे ॥४॥
श्रीकृष्णो मथुरां गत्वा किं किं कर्म चकार सः । स्वर्गारोहणपर्यन्तं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥५॥

नारायण उवाच

[1]कंसश्चकार यज्ञं च समाहूतो धनुर्मखम् । जगाम तत्र भगवान् तेन राज्ञा निमन्त्रितः ॥६॥
राजा प्रस्थापयामास[2] चाक्रूरं भगवत्प्रियम् । अक्रूरः प्रेरितो राज्ञा गत्वा च नन्दमन्दिरम् ॥७॥
श्रीकृष्णं च गृहीत्वा स सगणं मथुरां गतः । कृष्णश्च मथुरां गत्वा जघान नृपतिं मुने ॥८॥

अध्याय ५४

श्रीकृष्ण और राधा का संवाद

नारद बोले— हे मुनिश्रेष्ठ ! इसके उपरान्त भगवान् कृष्ण ने कौन चरित किया ? नन्द के यहाँ से मथुरा क्यों चले गये ? और भगवान् के वियोग में नन्द, गोपियाँ एवं यशोदा, जो कृष्ण में निरन्तर चित्त लगाये रहतीं, अपने प्राणों को कैसे धारण कर सकीं ? ॥१-२॥ फिर देवी राधिकाजी, जो नेत्रों के निमेष (पलक भाँजने) मात्र तक के वियोग होने पर जीवित नहीं रह सकती थीं, अपने प्राणेश्वर के चले जाने पर प्राण-धारण कैसे कर सकीं ? ॥३॥ उनके साथी गोप लोग, जो शयन-भोजन आदि सभी समय उनके साथ रहकर अनेक प्रकार के सुखोपभोग करते थे, व्रज में वैसे बन्धु को कैसे भूल गये ? ॥४॥ और मथुरा जाकर भगवान् श्रीकृष्ण ने कौन-कौन से कार्य किये ? उनके स्वर्ग जाने तक के सभी चरित आप मुझे बताने की कृपा करें ॥५॥

श्रीनारायण बोले--(मथुरा में) राजा कंस ने धनुष-यज्ञ किया, जिसमें उन्हें बुलवाया। उस राजा के निमन्त्रण पर भगवान् वहाँ गये ॥६॥ उन्हें बुलाने के लिए राजा ने भगवान् के प्रियभक्त अक्रूर को (व्रज) भेजा। राजा से प्रेरित होकर अक्रूर नन्द के घर (नन्दगांव) गये और वहाँ गणों समेत भगवान् श्रीकृष्ण को साथ लेकर वे पुनः मथुरा पहुँचे। हे मुने ! मथुरापुरी में पहुँचकर भगवाम् कृष्ण ने राजा का हनन किया।

---

[1] क. °सः शंकरयज्ञं च समारेभे ध° । [2] क. °स तमक्रूरं च गोकुलम् ।

Funding by IKS-MoE

जघान रजकं चैव चाणूरं मुष्टिकं गजम् । चकार पित्रोरुद्धारं बान्धवानां च बान्धवः ॥९॥
कुब्जया सह शृङ्गारं कृत्वा च कौतुकेन च । तां च प्रस्थापयामास गोलोकं गोपिकापतिः ॥१०॥
चकार कृपया कृष्णो मालाकारस्य मोक्षणम् । कृपया चोद्धवद्वारा बोधयामास गोपिकाः ॥११॥
तदोपनीतो भगवानवन्तीनगरं ययौ । चकार विद्याग्रहणं मुनेः सान्दीपनेर्गुरोः ॥१२॥
ततो जित्वा जरासंधं निहत्य यवनेश्वरम् । उग्रसेनं च नृपतिं चकार विधिपूर्वकम् ॥१३॥
गत्वा समुद्रनिकटे निर्माय द्वारकां पुरीम् । जहार रुक्मिणीं देवीं जित्वा नृपतिसंघकम् ॥१४॥
कालिन्दीं लक्ष्मणां शैब्यां सत्यां जाम्बवतीं सतीम् । मित्रविन्दां नाग्नजितीं समुद्वाहं चकार सः ॥१५॥
निहत्य नरकं भूपं रणेन दारुणेन च । पत्नीः षोडशसाहस्रं विहारं च चकार सः ॥१६॥
जहार पारिजातं च जित्वा शक्रं च लीलया । चिच्छेद बाणहस्तांश्च जित्वा च चन्द्रशेखरम् ॥१७॥
पौत्रस्य मोक्षणं कृत्वा पुनरागत्य द्वारकाम् । आत्मानं दर्शयामास लोकांश्च प्रतिमन्दिरम् ॥१८॥
यागे च वसुदेवस्य तीर्थयात्राप्रसङ्गतः । प्राणाधिष्ठातृदेवीं च ददर्श तत्र राधिकाम् ॥१९॥
पूर्णे च शतवर्षे च सुदाम्नः शापमोक्षणे । पुनर्ययौ तया सार्धं पुण्यं वृन्दावनं वनम् ॥२०॥
पुनश्चतुर्दशाब्दं च तया सार्धं जगत्पतिः । चकार रासं रासे च पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥२१॥

रजक (धोबी), चाणूर, मुष्टिक, गजराज कुवलयापीड़ को मारकर उन्होंने अपने माता-पिता एवं बन्धुओं का उद्धार किया ॥७-९॥ गोपीपति भगवान् ने कौतुकपूर्ण कुब्जा के साथ शृङ्गारोपभोग करके उसे गोलोक भेज दिया ॥१०॥ भगवान् कृष्ण ने कृपा करके माली को मुक्त किया और उद्धव द्वारा गोपियों को प्रबोधन दिया ॥११॥ उपरान्त उनका उपनयन संस्कार हुआ और वे गुरु सांदीपनि मुनि से विद्याध्ययन करने के लिए अवन्ती नगर चले गये ॥१२॥ वहाँ से आने पर उन्होंने जरासन्ध को जीतकर और यवनेश्वर कालयवन को मारकर उग्रसेन को पुनः विधिपूर्वक राजा बनाया ॥१३॥ पश्चात् समुद्र के भीतर द्वारकापुरी की रचना करके उन्होंने राजसमूहों पर विजय प्राप्त करके रुक्मिणीदेवी का अपहरण करके विवाह किया ॥१४॥ उसी भाँति कालिन्दी, लक्ष्मणा, शैव्या, सत्या, सती जाम्ववती, मित्रविन्दा और नाग्नजिती के साथ विवाह किया। फिर भगवान् ने घोर युद्ध में नरकासुर का हनन किया और उसके यहाँ राजबन्दी के रूप में अपहृत सोलह सहस्र कन्याओं से विवाह करके उनके साथ विहार किया ॥१५-१६॥ अनन्तर इन्द्र को सहज ही में जीतकर पारिजात ले आये और चन्द्रशेखर को जीतकर बाणासुर के हाथों को काट दिया ॥१७॥ अपने पौत्र (अनिरुद्ध) को वहाँ से मुक्त कराकर पुनः वे द्वारका आये और वहाँ प्रत्येक भवन में लोगों को अपना दर्शन दिया ॥१८॥ पुनः वासुदेव के यज्ञ में तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से आई हुई अपनी प्राणाधिष्ठात्री देवी राधिका को देखा ॥१९॥ और पूरे सौ वर्ष में सुदामा के शाप से मुक्त होने पर राधा के साथ पुण्य वृन्दावन की पुनः यात्रा की ॥२०॥ वहाँ पुण्य-क्षेत्र भारत में वृन्दावन के रास-मण्डल में जगत्पति भगवान् कृष्ण ने राधिका के साथ चौदह वर्ष तक पुनः रासक्रीड़ा की ॥२१॥ पूरे ग्यारह वर्षों तक नन्द के घर रहे। इस प्रकार

Funding by IKS-MoE

पूर्णमेकादशाब्दं च निवृत्य नन्दमन्दिरे । मथुरायां द्वारकायां पूर्णमब्दशतं विभुः ॥२२॥
चकार भारहरणं पृथिव्यां पृथुविक्रमः । पञ्चविंशतिवर्षे च शतवर्षाधिकं मुने ॥२३॥
तिष्ठञ्जगाम गोलोकं पृथिव्यां च पुरातनः। यशोदायै च नन्दाय वृषभानाय धीमते ॥२४॥
राधामात्रे कलावत्यै ददौ सामीप्यमोक्षणम् । कृष्णेन सार्धं गोपी च राधिका च कुतूहलात् ॥२५॥
निबध्य धर्मसेतुं च वेदोक्तं च युगे युगे । इत्येवं कथितं सर्वं समासेन महामुने ॥२६॥
श्रीकृष्णचरितं रम्यं चतुर्वर्गफलप्रदम् । ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नश्वरमेव च ॥२७॥
भज तं परमानन्दं सानन्दनन्दनम् । स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ॥२८॥
[1]परमव्ययमव्यक्तं भक्तानुग्रहविग्रहम् । सत्यं नित्यं स्वतन्त्रं च सर्वेशं प्रकृतेः परम् ॥२९॥
निर्गुणं च निरीहं च निराकारं निरञ्जनम् ॥३०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदनारा० श्रीकृष्णराधिकासंवादो
नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु

भगवान् मथुरापुरी और द्वारकापुरी में मिलाकर पूरे सौ वर्षों तक रहे। उस अवधि में महापराक्रमी भगवान् ने पृथ्वी का भार दूर कर दिया। हे मुने! इस भाँति पुरातन भगवान् पृथ्वी पर एक सौ पच्चीस वर्ष रहकर गोलोक चले गये। यशोदा, नन्द, धीमान् वृषभानु और राधा की माता कलावती को सामीप्य मुक्ति प्रदान की। हे महामुने! भगवान् श्रीकृष्ण के साथ गोपी राधिकाजी प्रत्येक युग के लिए वेदोक्त धर्म-सेतु बनाकर गोलोक पहुँच गयीं। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण का अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष प्रदान करने वाला रमणीक चरित तुम्हें संक्षेप में सुना दिया। ब्रह्मा से लेकर कीटपर्यन्त सबको नश्वर समझ कर परमानन्द एवं आनन्दमूर्ति नन्दनन्दन का भजन करो, जो स्वेच्छामय, पारब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर, परम अव्यय, अव्यक्त, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए देह धारण करने वाले, सत्य, नित्य, स्वतन्त्र, सर्वेश, प्रकृति से परे, निर्गुण निरीह, निराकार एवं निरंजन हैं ॥२२-३०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद के संवाद में श्रीकृष्णराधिकासंवाद-वर्णन नामक चौवनवाँ श्रीकृष्णजन्मखण्ड का पूर्वार्ध अध्याय समाप्त ॥५४॥

---

[1] क. °मक्षरम° ।

परिशिष्ट

ब्रह्मवैवर्तपुराण के उत्तरभाग के पूर्वार्ध में आये संज्ञा शब्दों की अनुक्रमणी

अ

अंगिरा—११०, १९८, १९९, २४३, ३४६, ३७०, ३८४।

अंबरीष—२८१, २८९, २९०, २९२, ५०७।

अंबिका—३७, ३०९।

अक्रूर—५२५।

अक्षयवट—४०८।

अगस्त्य—११०, १६०।

अग्नि—६४, १६२, २१९, २९७, ३१३, ३९०, ४११, ५०४।

अच्युत—११५, १७३।

अत्रि—११०, २८४, २९१, ३४६, ३७०, ३८४, ४७९।

अदिति—७२, ८०, ९३, ९४, ४७२, ४७४।

अनंत—१८९, २४८।

अनसूया—२८०, ४७९।

अनिरुद्ध—६०, १२०, २६९, २७८, ५२६।

अपर्णा—३७।

अपूर्व—३०८।

अभिमन्यु—६४।

अमरावती—४१६, ४९४, ४९५।

अयोध्या—३१५।

अरिष्टनेमि—११०।

अरुंधती—४३२, ४३६, ४४१, ४६५, ४७२, ४७५,

अरुणि—१११।

अर्जुन—५६, ६४।

अश्वत्थामा—६४, ८४।

अश्विनीकुमार—६४, २६२, ३६२, ५२२।

अष्टावक्र—११०, ३४१, ३४२, ३४४, ३४५, ३५२, ३५३, ४११।

असित—३४७, ३४८, ३८३।

अहल्या—१९८, ४७२, ४७५, ४९८। ४९०, ४९१।

आ

आखण्डल—२३९।

आदित्य—३७६।

आसुरि—११०, ३४६, ३७०।

आस्तीक—११०, ३७१।

इ

इंद्र—१२५, १३३, १९३, १९८, २११, २२६ २३४, २३५, २३७, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २९०, ३१०, ३३४, ३६५, ३७६, ३९५, ४११, ४१६, ४४१, ४८४, ४८८, ४९०, ४९१, ४९३, ४९४, ४९५, ४९६, ४९७, ४९८, ५०१, ५०२, ५०३, ५२३, ५२६।

इंद्राणी—१६०, ३६५, ४७२।

ई

ईशान—२१९।

उ

उतथ्य—३७०।

उत्तानपाद—१२७।

उपबर्हण—२५६।

उपमन्यु—१११।

उपसुन्द—२६२।

उर्वशी—२२८।

उषा—२६९।

परिशिष्ट

ऋ

ऋष्यशृंङ्ग—११०, २२७, ३७१।

ए

एकानंशा—२७७।

औ

और्व—१११, २७०, २७१, २७२, २७३, २७८, २७९, २८०।

क

कंदली—२७०, २७१, २७४, २७७, २७९।

कंस—२, ८, ७२, ७३, ७५, ८१, ८२, ९८, २३७, २५२, ५२५।

कच—११०, २२७।

कठ—४१०।

कणाद—११०, ४१०।

कण्खन—४१०।

कण्व—११०, ३७०।

कदम्बमाला—३७, ३०८।

कपिल—११०, १४१, ३४६, ३७०, ३८३।

कमला—२८, ३७, ५४, ६४, १०७, १६९, १७७, २८०, ३०८, ३८९, ३९०, ४४४।

करक—३७०।

करख—४१०।

करुष—१११।

कर्कोटक—५१०।

कर्णं—६४, ४१०।

कर्दम—११०, ३७०, ३८४।

कलावती—५४, ६७, ११६, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२, १७५, १७६, १७७, १७८, १७९, ५२७।

कवि—३४६, ३८३।

कश्यप—६४, ९३, ९४, ३१०, ३७०, ५१४।

कश्यपाङ्गज—२३९।

कात्यायन—११०, ४१०।

३१२, ३३१, ३३२, ३३४, ३३५, ३६७, ४१९,

कामदेव—६०, १०३, १३६, १४८, १६७, १७२, २६२, २६४, ३३४, ३५१, ३५६, ३६१, ३६२, ३६६, ३७२, ३८१, ३८९, ३९५, ४१६, ४१७-४१८, ४२२, ४४६, ४७३, ४७४।

कामसखा—२३९।

कारण—११५।

कार्तवीर्यं—३२०।

कार्तिकेय—२८, ५८, ५९, ७९, ८७, ९१, १४१, १६१, १६२, २४४, ३३४।

काल—४११।

कालिंदी—५२६।

कालिक—३०८।

कालिका—३७।

कालिय—२०३, २०४, २०९, २१०, २१३, २१४, २४३, २६९, ५१०।

कुंती—३७, ३०८।

कुबेर—११८, १२३, १२८, १२९, १५१, १६२, २१९, ४५२, ४७९।

कुब्जा—११९।

कुमुद—८७, २८६।

कुवलयापीड़—५२६।

कुशध्वज—१८४।

कृपाचार्य—८४।

कृष्ण—४, ५, ६, ७, ८, ९, ११, १२, १३, १४, १७, १९, २०, २१, २३, २४, २८, ३३, ३४, ३५, ३६, ३८, ४२, ४३, ४७, ५०, ५१, ५५, ५६, ५८, ६०, ६३, ६४, ६६, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ८९, १०१, १०५, १०९, ११४, १३१, १३५, १३८, १४४, १४५, १४६, १५२, १५४, १६०, १६३, १७९, १८६, १८८, १९०, १९२, २०८, २१२, २१६, २१८, २२३, २२५, २३८, २३९, २४४, २४६, २४७, २४९, २५३, २९९, ३००, ३०९, ४४९, ४५३, ४८२, ५१७, ५१८, ५२०, ५२१,

Funding by IKS-MoE

५२३, ५२६।
कृष्णप्राणाधिका––१८६ ।
कृष्णप्रिया––३७, १८६, ३०९।
कृष्णवामाङ्गसंभूता––१८६।
कृष्णस्वरूपिणी––१८६।
केदार––१८३ ।
केशव––१९५।
केशी––१५७, १६६।
कैटभ––१०६, ३०३, ३०५, ४६३।
कौशिक––३७१ ।
क्रतु––११०, ३४६, ३७०, ३८४।

ग

गंगा––३७, २०६, ३०८, ३११, ४३०, ४७२।
गणपति––१।
गणेश––२८, ५८, ६१, ७०, ७९, ८७, ९१, १४१, १६१, १६२, २४४, २८८, २९४, २९७, ३१३, ३२०, ३३४, ३९५।
गरुड़––४, ४९, ५७, ११५, २०७, २१०, २११, २१४, २१५, २१६, २२२, ३९८, ५११, ५१२, ५१३।
गरुड़ध्वज––११५ ।
गर्ग––११०, ११२, ११६, १२४, १२७, १२८, १७८, १८९, २४६।
गायत्री––९०, ४२९।
गिरिजा––४०८ ।
गिरिभानु––१६४ ।
गीता––४३०।
गोकुल––६४, ६८, ८०, ९२, ९८, १००, १०२, ११७, ११८, १२३, १२४, १२८, १३३, १३७।
गोत्रभिद्––२३९।
गोपीश––२४८।
गोलोक––१८५।
गोवर्द्धन––२३३।
गोविन्द––११५, २२०, २४४, २४८, २५३, २८५

३०८, ३३९।
गौतम––११०, ३७०, ४१०, ४८९, ४९०, ४९१।
गौरमुख––१११, २२७ ।
गौरी––३७, ३०८, ४१९।

घ

घृताची––२२८ ।

च

चंडिका––१६५।
चंडी––४०४।
चंदननन्दिनी––३०९ ।
चंद्र––२१९, २९०, ५०४।
चंद्रकान्ता––१८६।
चंद्रप्रभा––२२८ ।
चंद्रभानु––३८, १६४, ३०६।
चंद्रमा––६, ७१, १७०, १७२, २००, २३४, २५८, २५९, २६१, २६४, ३९०, ४१३ ।
चंद्रमुखी––३७, ३०८।
चंद्रशेखर––४०४, ४१०, ४१७, ४८०।
चंद्रावती––१८६ ।
चंद्रावली––१८७।
चंपा––३७।
चाणूर––५२६।

च्यवन––११०, ३७१।

ज

जंभभेदी––२३९।
जगन्नाथ––१३१, ४२८।
जनक––१६९, २३९, ३१६।
जनमेजय––१३४ ।
जनार्दन––१०७, ३०५, ४९८।
जमदग्नि––२५१।
जयंत––२३९, ३६२ ।
जया––३०३ ।

जरत्कारु—११०, ३७१ ।

जरासंध—२५२, ५२६ ।

जांबवती—५९, ५२६ ।

जांबवान्—६०, ६३ ।

जाजलि—४१० ।

जानकी—२५०, ३१७ ।

जाबाल—११० ।

जाह्नवी—३७, ३०८, ४७३ ।

जिष्णु—२३९ ।

जैगीषव्य—११०, १८३, ४१० ।

जैमिनि—११०, २२७ ।

ड

डिंडी—२३७ ।

त

तारकासुर—४४० ।

तारा—१६०, ४८९ ।

तिलोत्तमा—२२८, २५६, २५७, २६१, २६२, २६३, २६५, २६६, २६८, २७७, २७८ ।

तुषाराद्—२३९ ।

तुलसी—२२, ६०, १८४, १८५, ३३७, ४३०, ४५०, ४७२, ४७५ ।

त्रिपुरासुर—३९३, ३९८ ।

द

दक्ष—३८४, ४०६, ४४०, ४९० ।

दधीचि—१५१, २३९, २४१ ।

दशरथ—२५१, ३१५, ३१६ ।

दामोदर—२४८ ।

दिक्पाल—८७ ।

दिति—६४, ३६३ ।

दितिज—२३९ ।

दिवस्पति—२३९ ।

दीक्षित—१३४ ।

दुर्गा—३७, ६०, ६२, ९९, १४१, १६३, २०६, २८४, २८८, ३०३, ३०४, ३०५, ३०८, ३११, ३१३, ३१९, ३२७, ३९५, ४२४, ४२५, ४२८, ४२९, ४३०, ४३२, ४६२, ४६९ ।

दुर्योधन—६४ ।

दुर्वासा—५४, ८३, ९८, १०३, ११०, १५४, १८४, २४९, २५०, २५६, २६७, २६८, २६९, २७०, २७१, २७२, २७४, २७६, २७८, २७९, २८०, २८२, २८३, २८६, २८७, ३६०, ३७१, ३९०, ४११, ४७९, ५०७, ५०८ ।

दुश्च्यवन—२३९ ।

देवकी—२, ६०, ६४, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७८, ८१, ८४, ९४, ९८, १२८ ।

देवभान—३९ ।

देवल—११०, ३५०, ४१० ।

देवेन्द्र—३९६, ४९० ।

दैत्यसूदन—२३९ ।

दैत्यदर्पहन्ता—२४० ।

द्रोणा—६४, ५१० ।

द्रौपदी—६४ ।

द्वारकापुरी—११९, ५२६ ।

द्वारिका—८३, १२० ।

ध

धनञ्जय—५१० ।

धन्वन्तरि—३९१, ५०९, ५१०, ५११, ५१२, ५१३, ५१४ ।

धर्म—२८, ५०, ६७, ६८, ११५, १६१, १८९, १९३, १९४, २११, २१६, २१९, २४४, २८९, २९०, ४४१, ४४७, ४४८, ४५१, ४६४, ४७३, ४७७, ५०४ ।

धर्मराज—१५३, ४५२ ।

धृष्टद्युम्न—६४ ।

धेनुकासुर—११८, २४७, २५५ ।

न

नंद—५४, ५८, ८१, ८७, ९२, ९३, ९६, ९७, ९९,

१०३, १११, ११२, ११४, ११६, ११८, १२१, १२२, १२३, १२८, १३०, १३२, १३५, १३७, १६४, १६६, १७७, १७८, १७९, १८९, २१६, २१९, २२०, २२६, २३४, २३७, २३८, २३९, २४३, २५१, २८६, ५२५, ५२७।

नंदना––३७ ।

नंदिनी––३७ ।

नंदी––४१० ।

नकुल––६४ ।

नमुचि-प्राणनाशन––२४० ।

नरकासुर––५२६ ।

नर-नारायण––११० ।

नल––१२७ ।

नलकूबर––२६२, ३६३ ।

नहुष––१२७ ।

नाग्नजिती––५२६ ।

नारद––१, ४, ८, १५, २२, ३२, ३५, ३७, ३८, ४३, ४४, ६४, ६८, ७१, ७२, ७५, ७७, ८३, ८४, ८७ ८९, ९१, ९८, १०१, १०३, १०४, १२२, १२७, १३२, १३९, १४५; १५०, १५३, १५७, १५९, १६८, १६९, १७८, १८३, १८५, १८८, १८९, १९०, १९७, २०२, २०३, २०६, २१३, २१४, २१५, २२०, २२७ २२८, २३४, २३७, २३८, २४०, २४८, २५६, २५९, २७८, २८१, २९४, २९९, ३०२, ३०६, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३२४, ३३०, ३३२, ३४३, ४८६, ४८७, ५१८, ५२०, ५२२, ५२५ ।

नारायण––३, ७; ८, १२, २३, २७, ३८, ४८, ७२, ७७, ७९, ८३, ८७, ९१, ९७, १०१, १०२, १०३, १०५, १०९, १२४, १२७, १२९, १३०, १३२, १३५, १४१, १४७, १५१, १५३, १५७, १६६, १६९, १७७, १८३, १८६, १८८, १९०, १९५, १९७, २०२, २०३, २०७, २१२, २१४, २१५, २२०, २२१, २२५, २२६, २३४, २४०, २४४, २४६, २४८, २५१, २५२, २५६, २७०, २७३, २७९, २८१, २८७, २८८, २८९, २९४, ३०२, ३०३, ३१२; ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३२४, ३३८, ३४३, ३४५, ३७३, ३७५, ३७९, ३८०, ३८२, ३८३, ३८७, ३९०, ३९१, ३९६, ४०१, ४१५, ४२२, ४२८, ४२९, ४३०, ४३३, ४३५, ४४१, ४५५, ४५७, ४५९, ४६२, ४६७, ४७३, ४७४, ४७७, ४७८, ४७९, ४८१, ४८४, ४८६, ५०६, ५०८, ५०९, ५१६, ५२०, ५२५।

नारायणी––३०३ ।

प

पंचशिख––११०, ३४६, ३७०. ३८३, ४१० ।

पद्ममुखी––३०८ ।

पद्मा––१७, ३७, ३०८, ४४७, ४४९ ।

पद्मावती––१७६ ।

परमानन्दरूपिणी––१८६ ।

परमोत्तम––३८३ ।

परशुराम––८४, २५१, ३२० ।

पराशर––११०, २२७, ३७१ ।

पवन––२१९ ।

पवनाग्रज––२३९ ।

पाकशासन––२३९ ।

पाणिनि––११०, २२७, ४११ ।

पारिजात––३७, ३०८ ।

पारिभद्र––४११ ।

पार्वती––२६, ५८, ६०, ६१, ६२, ६३, ६७, ६८, ८२, ८७, १२६, १५४, १५५, १५६, १६०, १६१, १६३, १७०, १९४, २०५, २७७, २८६, २८९, २९०, २९५ २९७, ३०२, ३०३, ३०६, ३१५, ३१६, ३१८, ३१९, ३३३, ३९०, ३९५, ४०२, ४०३, ४०५, ४०६, ४०७, ४०८, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२२, ४२३, ४२४, ४२५, ४३३,

४३४, ४३५, ४३७, ४६६, ४६८, ४७०, ४७२, ४७३, ४७४, ४७५, ४७७, ४७८, ४७९, ४८०, ४८१, ४८३, ४८६ ।

पिप्पल—३७१ ।

पिप्पलाद—१११, ४१०, ४४४ ।

पुण्डरीक—५१० ।

पुरंदर—२३९ ।

पुरीषतरु—४४३ ।

पुरुहूत—२३९ ।

पुलस्त्य—११०, ३४६, ३७०, ३८४ ।

पुलह—११०, १७१, ३४६, ३७०, ३८४ ।

पृथ्वी—२४, २५, २६, ८४ ।

पैल—११० ।

प्रचेता—११०, ३४६, ३७० ।

प्रभावती—२२८ ।

प्रलंब—१६६ ।

प्रलंबासुर—१५२ ।

प्रह्लाद—२५० ।

ब

बक—१६६ ।

बकासुर—१५२, १५७ ।

बलदेव—८४, ११५ ।

बलभद्र—९१, ९७, ९८, १५१, १५२, १६४, १८९, १९०, १९७, २१७, २१८, २२१, २२९, २३५, २४९, २५३, ३०७ ।

बलराम—११३, २१७, २१९, २३८, २३९, २५५ ।

बलि—८४ २४९, २५४ २५६, २६८, २६९ ।

बाणासुर—६०, ६९, १२०, २६९, २७७, ५२६ ।

वृहस्पति—११०, १६०, २४३, ३७०, ४२९, ४३०, ४३२, ४७९, ४९३, ४९४, ५०२, ५२३ ।

व्रह्मा—१, ५, ८, १८, १९, २०, २३, २५, २६, २७, २८, २९, ३४, ४४, ४७, ५०, ५२, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६७, ६८, ७४, ७६, ७९, ८५, ८७, ८८, ९१, ११३, ११५, ११७, १२६, १४३, १४५, १४६, १४७, १५३, १५५, १५८, १५९, १६१, १६२, १७१, १७२, १७५, १७६, १७८, १८७, १८९, १९४, २००, २०१, २०५, २०६, २११, २१८, २१९, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २३७, २४३, २४४, २४६, २५२, २५४, २५७, २६२, २६८, २७०, २७२, २७३, २८१, २८२, २८३, २८४, २८७, २८८, २८९, २९०, २९५, २९६, २९८, ३०३, ३०५, ३१०, ३२०, ३२१, ३३४, ३४१, ३४५, ३४६, ३४७, ३५०, ३५१, ३५३, ३५४, ३५५, ३५६, ३५८, ३५९, ३६१, ३६५, ३६६, ३६७, ३६८, ३७०, ३७१, ३७३, ३७४, ३७५, ३७७, ३८०, ३८१, ३८२, ३८३, ३८४, ३८६, ३९०, ३९१, ३९५, ३९७, ३९९, ४००, ४०४, ४११, ४३०, ४३१, ४३३, ४३७, ४३९, ४४१, ४ ४३, ४४८, ४५३, ४५६, ४५७, ४६०, ४६१, ४६२, ४६४, ४७३, ४८४, ४९०, ४९१, ४९२, ४९३, ४९५, ४९६, ४९७, ५०१, ५०३, ५०४, ५०५, ५०८, ५१३, ५२४, ५२७, ।

भ

भगाङ्ग—२३९ ।

भनन्दन—१७६, १७७, १७८ ।

भरद्वाज—१११, २२७, ३७१ ।

भागुरी—११० ।

भानुमती—२२८ ।

भारत—१०४, ३०१, ३१७ ।

भारती—३७, ३०८, ३८२ ।

भीम—६४ ।

भीष्म—५८, ६४, २९५, ३७८ ।

भृगु—११०, २९५, ३४६, ३७०, ३८४, ५०५ ।

भैरव—४१० ।

म

मंडव्य—११० ।

मथुरा——६९, ७१, ७७, ८१, १००, ११३, ११९, १२७, ५२५, ५२७।

मदालसा——२२८।

मधु——१०६, ३०३, ३०५, ४६३।

मधुमती——३७।

मधुसूदन——६, ६५, १०६, १३०, १३१, १४८, १५१, १५२, १९३, २०३, २४०, २४१, २५४, ३००, ३२९, ३३८, ३४३, ३६७, ३८३, ३९६ ४३१, ५०९, ५१६।

मनसा——५११, ५१३।

मनु——११५, २०६, २१९, ३७६, ४४२।

मरीचि——११०, १२७, १६०, ३४६, ३७०, ३८४।

मरुत्वान्——२३९।

मरुद्भव——४११।

महाकाल——४१०।

महादेव——२९०, ४०८, ४२३, ४२४, ४५५, ५०३।

महामाया——५०८।

महेन्द्र——२३४, ५००।

महेश——२६, ६२, १४५, १९४, २४४, २६८, ३१०, ३४१, ३९७, ४०४, ४१६, ४१९, ४६२, ४९६, ४९७।

मांधाता——१२७।

माधव——३१, ३२, १४७, १८१, १९०, २२१, ३३१, ३३८, ३४२, ३६७, ५१९।

माधवी——१७, ३७, ३०८।

मायावती——६०।

मार्कण्डेय——८४, ११०, ३७१।

मित्रविन्दा——६०, ५२६।

मिथिला——३१५।

मुकुन्द——१०७।

मुचुकुन्द——६९, ११९।

मुष्टिक——५२६।

मृकण्डु——३७१।

मृत्यु——४११।

मेघवाहन——२३९।

मेनका——१६९, १७०, २२८, ४३५, ४३६।

मेना——४७८, ४८०।

मैत्रेय——१११, २२७।

मोहिनी——२२८, ३५७, ३५८, ३५९, ३६०, ३६१, ३६४, ३६६, ३६७, ३६९, ३७१, ३७२, ३८०, ३९०।

य

यति——१११।

यम——२१९, ४११।

यमराज——३८६।

यमुना——३७, ३०८।

यशोदा——२, ६४, ८०, ८४, ९१, ९२, ९३, ९५, ९७, १००, १०१, १०२, १०३, १०५, १०६, १०९, ११०, १११, ११२, ११५, १२१, १२८, १३०, १३१, १३२, १५०, १६४, २१७, २१९, २३९, २५१, ३१०, ३२२, ५२५, ५२७।

याज्ञवल्क्य——११०।

युधिष्ठिर——६४, १२०।

योगनिद्रा——१०६, ३०३।

र

रंभा——१३३, १३४, ३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५६, ३५८, ४८४।

रक्तभानु——१८०।

रति——२२८, ३०८, ३३४, ३४९, ३८९, ४१७, ४१८, ४७२, ४७३, ४८२।

रती——३७।

रत्नभान——३९, ३०६।

रत्नमाला——१६९, १७०, २२८।

रसिकेश्वरी——१८६।

राधा——२, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, २०, २२. २८, ३१, ३२, ३३, ३६,

BVB Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya
545

३७, ४०, ४१, ४२, ४३, ४७, ४८, ५०, ५३, ५४, ५६, ५९, ६१, ६४, ६६, ६५, ६७, ६८, ७०, ९१, १०७, ११३, ११६, ११७, ११८, १२०, १२६ १३५, १३८, १३९, १४०, १४१, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५५, १५८, १५९, १६०, १६४, १६९, १७५, १८१, १८४, १८६, १८७, १८८, १९३, १९४, २१७, २२८, २४२, २४४, २५१, २८८, २९८, ३२१, ३२२, ३३०, ३३१, ३३९, ३४२, ३४५, ३६९, ३७१, ३८२, ३९५, ३९८, ४००, ४१८, ४१९, ४२०, ४३९, ४६१, ४७०, ४८१, ४८७, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१, ५२३, ५२४।

राधाधन——११५ ।

राधाप्राणाधिक——११५ ।

राधामानसपूरण——११५

राधारमण——११५ ।

राधिकांग——११५

राधिका——८७, १४२, १४३, १७९, १८५, २०४, २१८, २८४, ३०८, ३०९, ३१०, ३११, ३१८, ३१९, ३२५, ३२८, ३२९, ३३४, ३३५, ३३६, ३४०, ३४४, ३५३, ३९०, ३९१, ३९६, ४८२, ४८६, ४८८, ५०३, ५०६, ५०९, ५२२, ५२५, ५२६, ५२७।

राधिकासक्तमानस——११५ ।

राधिकासहचारी——११५ ।

राम——१९२, २३८, २३९, ३१५, ३१६ ।

रामचन्द्र——१२८, १७०, २९५ ।

रावण——२५१ ।

रासवासिनी——१८६ ।

रासेश्वरी——१८६ ।

रुक्मिणी——६०, ८३, ५२६ ।

रुचि——३७० ।

रुद्र——२४४, २६७, २९०, ३४८, ३७६ ।

रेणुका——२२८ ।

रेवती——११६, १२० ।

रोहिणी——६०, ७१, ८४, ८७, ८८, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९७, १०३, ११६, १३२, १६०, १६४, २१९, २३९, ३३४, ४७२, ४७५, ४८५ ।

ल

लक्ष्मणा——६०, ५२६ ।

लक्ष्मी——१९, २७, २८, ५८, ६२, ६७, ६८, ७०, ८७, ९९, १२५, १३४, १३७, १४१, १६१, १६२, १७७, १८३, १९४, २०५, २०६, २४४, २८४, २८६, २८८ ,२९१, २९५, ३११, ३१५, ३७७, ४३०, ४३४, ४४७, ४६१, ४७२, ४७३, ४८९, ५०८ ।

लेखर्षभ——२३९ ।

लोपामुद्रा——४७२ ।

लोमश——११०, ३७१, ४१० ।

व

वज्रहस्त——२३९ ।

वत्स——११० ।

वरुण——१६२, २१९, ३९५, ५२३ ।

वसिष्ठ——११०, २८२, २८३, ३१६, ३४६, ३७०, ३८४, ४३६, ४३८, ४४२, ४४६, ४६५ ।

वसुंधरा——६०, ४७२, ४७६ ।

वसु——३७६ ।

वसुदामा——६०६ ।

वसुदेव——२, ६४, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ९१, ९४, ९५, ९८, ११२, ११३, १२८, १५४, १५७, २७७ ।

वसुभान——३०६ ।

वामदेव——११०, ३७१ ।

वामन——२२७, २३९ ।

वामनभ्राता——२३९ ।

वायु——२६२, ४७९ ।

वाराणसी——६९, १२० ।

दैनिक प्रार्थना

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे
विनिवेशयन्तम्।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं मनसा
स्मरामि ॥

श्री गोविन्द-दामोदर स्तोत्र

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव, गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ 1
विक्रेतुकामा किल गोपकन्या मुरारिपादार्पितचित्तवृत्तिः।
दध्यादिकं मोहवशादवोचद् गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ 2
गृहे-गृहे गोपवधू-कदम्बाः सर्वे मिलित्वा समवाप्य योगं
पुण्यानि नामानि पठन्ति नित्यं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ 3
सुखं शयाना निलये निजेऽपि नामानि विष्णोः प्रवदन्ति मर्त्याः
ते निश्चितं तन्मयतां व्रजन्ति गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ 4
जिह्वे सदैवं भज सुन्दराणि नामानि कृष्णस्य मनोहराणि
समस्त भक्तार्ति-विनाशनानि गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ 5
सुखावसाने इदमेव सारं दुखावसाने इदमेव ज्ञेयम्।
देहावसाने इदमेव जाप्यं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ 6
श्रीकृष्ण राधावर गोकुलेश गोपाल गोवर्धननाथ विष्णो
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ 7
जिह्वे रसज्ञे मधुरप्रिया त्वं सत्यं हितं त्वां परमं वदामि
आवर्णयेथा मधुराक्षराणि गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ 8
त्वामेव याचे मम देहि जिह्वे समागते दण्डधरे कृतान्ते
वक्तव्यमेवं मधुरं सुभक्त्या गोविन्द दामोदर माधवेति ॥

Funding by IKS-MoE

Funding by IKS-MoE

वाल्मीकि--११०।

वासव--२३९।

वासुकि--५१०, ५११।

वासुदेव--१०७।

विंध्याचल--१७१ ।

विडौजा--२३९।

विप्रचित्ति--२२८।

विभांडक--११०, ३७१ ।

विभाकर--१६४।

विभीषण--८४।

विभु--२३९।

विरजा--९, १०, १२, १३, १४, १५, १६, २९, ३६ ।

विश्वंभर--२०४।

विश्वकर्मा--५७, ८५, १२४, १४९, १६६, १६७, १६८ १७९, १८०, १८१, १८२, १८८, २०९, २९९, ४१५, ४७७, ४९४, ४९५, ४९६, ५०२, ५१८।

विश्वामित्र--११०

विष्णु--३, ६, २७, २८, ४६, ४७, ५६, ६०, ६१ ६२, ६३, ८०, ८५, ९२, १०७, १०९, ११४, १२०, १२३, १३७, १६१, १६२, १९४, २०९, २३१, २३२, २३३, २४४, २५२, २५४, २६८, २६९, २७७, २८४, २८७, २९७, ३०३, ३१३, ३१५, ३४१, ३४५, ३५९, ३७५, ३७७, ३९०, ४०२, ४०३, ४०४, ४११, ४१३, ४२८, ४२९, ४३०, ४३९, ४४२, ४४८, ४५१, ४५६, ५४७, ४५८, ४६१, ४६३, ४७३, ४९६, ४९७, ५०१ ५०५, ५०६, ५०८, ५११, ५२४।

वीरभान--३८, १६४, ३०६।

वृंदा--१८३, १८४, १८५, १८६।

वृंदावन--१४, ३१, ६८, ७०, ११८, १५०, १५६, १६२, १६३, १६६, १८०, १८१, १८४, १८५, २२२, २३८, २४०, २६९, ३१९, ३२३, ३२४, ३२५, ४२३, ४३५, ४७७, ५१६, ५१७, ५१९, ५२४, ५२६।

वृंदावनविनोदनी--१८६, १८७।

वृंदावनी--१८६।

वृत्रहा--२३९।

वृत्रासुर--२४३।

वृद्धश्रवा--२४०।

वृष--२४०।

वृषभानु--२२, ५३, ५४, ७१, ११६, १६८, १७६, १७७, १७८, १७९, १८९, ५२७।

वेद--४३०।

वेदमाता--४३०।

वेदवती--१८४, ३१४, ३१५, ३१६।

वेदव्यास--८४।

वेदशिरा--१११।

वैकुंठ--२७, २९, ७०, १०२, १०४, १४४, २८९, २९२, ३१५, ३७७, ३७८, ३७९, ३८९, ४०१, ४३९, ४४२, ४६१, ४७७, ४८५, ४९५, ४९९।

वैदर्भी--५८।

वैशंपायन--१११, २२७।

वोढु--११०, ३४६, ३७०, ३८३, ४१०।

व्यास--१, ११०।

व्रज--५२५।

श

शंकर--२१, २८, ५०, ५७, ६४, १०४, १०९, १५६, १६०, २७१, २८१, २८४, २८५, २८८, ३०५, ३१३, ३१७, ३१८, ३२०, ३३३, ३४८, ३९०, ३९४, ३९६, ३९७, ४०१, ४०४, ४०५ ४०८, ४२१, ४३५, ४३७, ४५४, ४५५, ४५९, ४६६, ४७६

शंकु--३४६, ३७१।

शंकुकर्ण--१११।

शंख--३४६।

शंखचूड--२२, २५।

शंखासुर—१८४ ।
शंतनु—६४ ।
शंभु—४१७, ४६०, ४६१ ।
शक—२३९ ।
शक्ति—११० ।
शची—४७५, ४९२ ।
शचीश—२३९ ।
शतचन्द्रनिभानना—१८६ ।
शतमख—२३९ ।
शतरूपा—६४, १६०, २९५, ४७२, ४७६ ।
शमीक—११० ।
शरच्चन्द्रप्रभानना—१८७ ।
शरद्वान—११० ।
शशिकला—१७, ३७, ३०८ ।
शाकटायन—११० ।
शाकल्य—११० ।
शातातप—३७१; ४११ ।
शालग्राम—४५ ।
शिव—१८, १९, २५, २६, ४५, ४७, ५१, ६७, ६८, ७६, ७८, ७९, ८७, ९१, १२५, १२६, १४१, १५४, १५८, १६१, १६३, १७०, १८९, १९३, १९४, २०५, २०६, २११, २१७, २१९, २२५, २५२, २५४, २५७, २७९, २८१, २८६, २८९, २९४, २९७, ३०३, ३०४, ३१०, ३१३, ३२१, ३४६, ३४७, ३७७, ३९१, ३९२, ३९३, ३९५, ३९८, ३९९, ४००, ४०२, ४०३, ४०४, ४१०, ४१२, ४१३' ४१४, ४१५, ४१६, ४१७, ४२०, ४२१, ४२२, ४२३, ४२५, ४२६, ४२८, ४३१, ४३३, ४३४, ४३६, ४३७, ४३८, ४३९, ४४०, ४४२, ४४८, ४५३, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४५९, ४६४, ४६५, ४६७, ४७१, ४७२, ४७४, ४७६, ४७७, ४८१, ४८२, ४८३, ४८५, ५०३, ५०४, ५०६ ५०८, ५११, ५१३, ५२४ ।
शुंभ—१०७ ।
शुकदेव—११० ।
शुक्र—११०, ३७०, ३७१, ४७९, ४९८ ।
शुभांग—३०६ ।
शुभा—३०८ ।
श्रृंगी—२२७, ४४३ ।
शेष—६८, ९१, ११५, १६१, १९३, १९४, २०५, २०६, २११, २१४, २१९, २४४, ४८५, ५०४ ।
शेषनाग—६७, ७१, ८५, १०८ ।
शैव्या—६०, ५२६ ।
शौनक—१११, १९० ।
श्यामसुन्दर—३८, १३१, ३२८, ३९७, ४२६, ४२७ ।
श्रीकृष्ण—१, २, १५; ७८, ७९, ८२, ८३, ८४, ९१, ९२, ९४, ९५, ९८, १००, १०२, १०६, १०७, ११३, ११७, १२३, १२४, १२६, १२८, १२९, १३३, १४०, १४१, १४२, १४३, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १५६, १५७, १५९, १६४, १६५, १६६, १६७, १६९, १७४, १७५, १८२, १८३, १८४, १८५, १८७, १८९, १९१, १९३, १९५, १९६, १९७, २०१, २०२, २०३, २०४; २०७, २०९, २१०, २१३, २१५, २२०, २२१, २२६, २३०, २३४, २३५, २३७, २३८, २४३; २४८, २५०, २५१, २५४, २५५, २६७, २६९, २७२, २७७, २७८, २८१, २८३, २८९, २९४ २९८, ३०१, ३०२, ३०५, ३०६, ३०७, ३०८, ३१०, ३११, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२६, ३२८, ३२९, ३३६, ३३७, ३३८, ३३९, ३४०, ३४४, ३४५, ३४७, ३५४, ३६१, ३६९, ३७६, ३८०, ३८३, ३८४, ३९१, ३९७, ४०१, ४०५, ४०६, ४१३, ४२०, ४२७, ४३२, ४३९, ४४५, ४५०, ४६१, ४६२, ४६५, ४७१, ४७६, ४८१, ४८६ ४८७ ४८८, ५०३, ५०५ ५०६, ५०७, ५०९, ५१६, ५१९, ५२२, ५२४,

Funding by IKS-MoE

५२७ ।
श्रीदामा—७, ११, १२, १५, १८, २०, २१, २२, ४०, ६९, ११६, १६४, ३०६, ३०८, ३०९ ।
श्रीनिकेत—४४३ ।
श्वेत—१२७ ।

ष

षडानन—२०५ ।
षष्ठी—८४ ।

स

संज्ञा—६०, ४७२, ४७६ ।
संवर्त—११० ।
सगर—१२७ ।
सती—३७ ।
सत्यभामा—६०, १२० ।
सत्या—६०, ५२६ ।
सदानन्द—३१० ।
सनक—११०, ३७०, ३८३, ४१० ।
सनत्कुमार—११०, १६२, २९५, ३४५, ३७३, ३८३, ४०१, ४१० ।
सनन्द—११०, ३७०, ३८३ ।
सनातन—११०, ११५, ३७१, ३८३, ४१० ।
सनातनी—३०३ ।
समन्तु—२२७ ।
सरस्वती—१९, २७, २८, ३७, ५५, ६०, ६२, ६७, ६८, ७०, ८७, १०९, १२६, १४१, १४५, २०६, २४४, २८४, २८६, २८८, २९१, ३०८, ३११, ३८१, ३९५, ४११, ४२१, ४२२, ४३०, ४७५, ५०८ ।
सर्वकारण—११५ ।
सर्वगति—११५ ।
सर्वमंगल—३०८ ।
सर्वमंगला—३७ ।
सर्वाधार—११५ ।
सवश—११५ ।
सहदेव—६४ ।
सहस्राक्ष—२३९ ।
सावित्री—२८, ३७, ६०, १२६, २०५, २०६, २८८, ३०८, ३११, ४२२, ४३०, ४७२, ४७३, ५०८ ।
साहसिक—२५७, २६०, २६२, २६५, २६८ ।
सिद्ध—३८३ ।
सीता—१८४, ३१६ ।
सुंदर—३०६ ।
सुंदरी—३७, ३०९ ।
सुक्रन्दन—२३९ ।
सुचन्द्र—१३४, १७६ ।
सुत्रामा—२३९ ।
सुदर्शन—१८३ ।
सुदामा—४०, ६९, १७९, ३०६ ।
सुधामुखी—३०८ ।
सुनन्द—८७, १६४, १७०, २८६ ।
सुनासीर—२३९ ।
सुपार्श्व—४०, ३०६ ।
सुपार्श्वक—१५७ ।
सुप्रभा—२२८ ।
सुबल—४०, ३०६ ।
सुभद्रा—६४ ।
सुमन्तु—११० ।
सुमुखी—३७ ।
सुरपति—२३९ ।
सुरभानु—१७६, १७७, १७८ ।
सुरसा—२०४, २०७, २०९ ।
सुराश्रय—२३९ ।
सुरेन्द्र—४४३ ।
सुशीला—१७, ३७, ६०, १६४, ३०८, ५१५, ५२३,
सुहोत्र—१५४, १५७ ।
सूत—१६९, १८३, १९०, २०२, २०७, २१३, ३१२, ३२५, ४८७ ।

सूर्य—६, ६०, १७२, २०१, २१९, २३४, २४४, २५९ २८३, २९५, २९७, ३१३, ३९०, ५०४।

सूर्यभानु—३८ ३०६।

सूर्यवर्चा—४१०।

सौभरि—११०, २१४, २१५, २४६।

स्वयंप्रभ—३०८।

स्वयंप्रभा—३७।

स्वयंभु—११०।

स्वयंभुव—१६०, २९५।

स्वाहा—६०, ४७२, ४७५।

ह

हनुमान—८४।

हर—४१९।

हरि—५, ७८, ८६, ९१, १०८, ११५, १७०, १७९, २२१, २२३, २२५, २३९, २५२, २७७, २८१, २८३, २८४, २८६, २९७, ३०३, ३०५, ३२०, ३२९, ३३५, ३४२, ३४८, ३५५, ३६७, ३६९, ३७५, ३८७, ४०४, ४२४, ४५८, ४५९, ५०१।

हरिहय—२३९,।

हिमवान्—४०७, ४०८, ४१०।

हिमालय—१६१, १६२, १७०, २९५, ३७८, ४०७, ४११, ४१५, ४२४, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३३, ४३४, ४३५, ४३७, ४४२, ४४४, ४६४, ४६५, ४६६, ४६८, ४७०, ४७१, ४७८, ४७९, ४८०।

हिरण्यकशिपु—२५०।

हिरण्याक्ष—२५०।

Funding by IKS-MoE

Funding by IKS-MoE